सूचीपत्र

भाव प्रकाश के पूर्व खंड का।

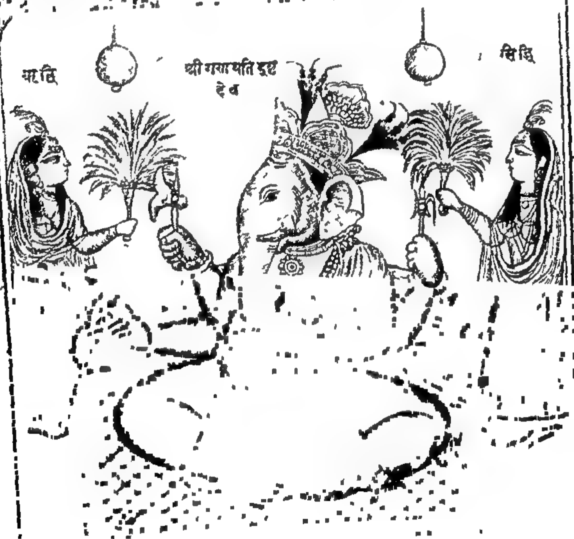
द्वितीयो भागः

अथ मांस वर्गः

सूचीपत्र
भावप्रकाश के मध्य खण्ड का
प्रथमोभागः

श्रीः

गणेश जी १





श्रीगणेशाय नमः।

भावप्रकाशस्य पूर्वखण्डे

प्रथमोभागः।

प्रणम्य परमात्मानं भिषजां सुखहेतवे ।
क्रियते रावकृष्णेन भाषा भावार्थबोधिनी ॥१॥
गजमुखममरप्रवरं सिद्धिकरं विघ्नहर्त्तारम् ।
गुरुमवगम नयन प्रद मिष्टकरी मिष्टदेवतां वन्दे ॥१॥
आयुर्वेदागमनं क्रमेण येनाभवद्भुमौ ।
प्रथमं लिखामि तमहं नानातन्त्राणि संदृश्य ॥२॥

भाषा- मैं भावमिश्र सिद्धि के करनेवाले और विघ्नके हरनेवाले गजके समान मुख ऐसे देवताओं में श्रेष्ठ श्रीमहाराज गणेशजी को नमस्कार करता हूं और ज्ञानरूपी नेत्रको देनेवाले गुरुजीको तथा वांछित फलको देनेवाली कुलदेवता को नमस्कार करता हूँ ॥१॥

पृथ्वीपर आयुर्वेद का आगमन अर्थात् वैद्यशास्त्र का आना जिस क्रमसे भया उसको पहिले मैं बहुत से तन्त्रों को देखकर लिखता हूँ ॥२॥

आयुर्वेदस्य लक्षणमाह

आयुर्हिताहितं व्याधिर्निदानं शमनं तथा ॥
विद्यते यत्र विद्वद्भिः स आयुर्वेद उच्यते ॥३॥

भा० आयुर्वेद का लक्षण । आयुके हित और अहित वस्तुका कथन रोग का निदान तथा रोग की शान्ती जिसमें है उसको विद्वान् पुरुष आयुर्वेद कहैं हैं

आयुर्वेदस्य निरुक्तिमाह

अनेन पुरुषो यस्मादायुर्विन्दति वेत्ति च ।
तस्मान्मुनिवरैरेष आयुर्वेद इति स्मृतः ॥४॥

(क) शरीर जीवयोर्योगो जीवनं तेनावच्छिन्नः काल आयुः । आयुर्वेदद्वारायुष्याण्यनायुष्याणि च द्रव्यगुणकर्माणि ज्ञात्वा तेषां सेवनत्यागाभ्यामारोग्येणायुर्विन्दति । तेनैव हेतुना परस्याप्यायुर्वेत्ति च क्रम माह तत्रादौ ब्रह्मणः प्रादुर्भावः ॥ (क)

आयुर्वेद की निरुक्ति ।

भा० जिस कारण मनुष्य इससे आयु पाताहै अथवा जानताहै उस कारण बड़े मुनियोंने इसको आयुर्वेद ऐसा कहाहै ॥४॥

(क) शरीर और जीवके संयोग को जीवन कहते हैं उससे घिरे हुवे समय को आयु कहते हैं। आयुर्वेद के द्वारा आयुके हित और अहित द्रव्य गुण कर्मों को जानकर उनके सेवन और त्यागसे अर्थात् हित द्रव्य हितगुण हितकर्म इनका सेवन और अहितद्रव्य अहितगुण अहितकर्म इनका त्याग इन दोनों से आरोग्यके साथ आयु पाताहै । और इसी हेतु से दूसरे की भी आयु जानताहै (क)

विधाताऽथर्वसर्व्वस्वमायुर्वेदं प्रकाशयन् ।
स्व नाम्ना संहितां चक्रे लक्षश्लोकमयी मृजुम् ॥५॥
ततः प्रजापतिं दक्षं दक्षं सकल कर्म्मसु ।
विधिर्धीनीरधिं साङ्गमायुर्वेदमुपादिशत् ॥ ६ ॥

भा० क्रमको कहतेहैं । उसमें प्रथम ब्रह्मासे निकला ॥ ब्रह्माजी ने अथर्वके सारे आयुर्वेद को प्रगट करके अपने नामसे लाखश्लोक की सरल संहिता बनाई ॥ ५ ॥ उसके अनन्तर सब कामोंमे चतुर ऐसे दक्षप्रजापति को ब्रह्माजी ने बुद्धिरूपी समुद्र ऐसे साष्टाङ्ग आयुर्वेद को पढ़ाया ॥ ६ ॥

अथ आयुर्वेद-लक्षण चित्र १



अथ ब्रह्म संहिता प्रादुर्भाव॰ चित्र २

दक्षप्रजापति

श्री ब्रह्मा

अथ दक्ष भा॰ चित्र ३



[अथदत्तप्रादुर्भावः॥] अथ दत्तः क्रियादत्तः सर्वे-
द्योवेदमायुषः।वेदयामास विद्वांसौ सूर्य्यांशौ सुर
सत्तमौ ॥७॥

अथाश्विनी सुत प्रादुर्भावः।

दत्तादधीत्य दस्रौ वितनुतः संहितां स्वीयाम् ।
सकल चिकित्सकलोक प्रतिपत्ति विवृद्धये धन्याम्॥८
स्वयम्भुवः शिरश्छिन्नं भैरवेण रुषाऽथ तत् ।
अश्विभ्यां संहितं तस्मात्तौ यातौ यज्ञभागिनौ ॥९॥

भा० अनन्तर दक्ष प्रजापति से निकला। अनन्तर जो संपूर्ण क्रिया में च
तुर ऐसे दक्षप्रजापति ने सूर्य के पुत्र देवताओं में श्रेष्ठ विद्वान् अश्विनी
कुमारों को पढ़ाया ॥७॥
अनन्तर अश्विनीपुत्र से प्रगट हुवा। अश्विनी कुमारों ने दक्ष प्रजापति
से पढ़कर सब वैद्य लोगों की क्रिया चातुर्यकी वृद्धि के अर्थ बहुत अच्छी अ
पनी संहिता बनाई ॥८॥ ब्रह्मा का सिर क्रोधरूपी भैरव ने काटा उसको अ
श्विनी कुमारों ने जोड़ा उस कारण वे यज्ञ के भागि हुवे ॥९॥

देवासुररणे देवा दैत्यैर्ये सक्षताः कृताः ।
अक्षतास्ते कृताः सद्योदस्राभ्यामद्भुतं महत्॥१०॥
वज्रिणोऽभूत् भुजस्तम्भः स दस्राभ्यां चिकित्सितः।
सोमाभिपतितश्चन्द्रस्ताभ्यामेव सुखीकृतः॥११॥

भा० देवता और दैत्यों की लड़ाई में दैत्यों से जो देवता घायल हुवे थे उनको
उसी समय में बड़ी अद्भुतता के साथ अश्विनी कुमारों ने अच्छा कर दिया॥१०॥
इन्द्र का हाथ जकड़ गयाथा वह अश्विनीकुमारों ने अच्छा किया। चन्द्र
अपने तेज विशेष से गिर गया अर्थात् हीनतेज हुवा था अश्विनी कुमारों ही ने

आरम्भ किया ॥ ११ ॥

विशीर्णा दशनाः पूष्णो नेत्रे नष्टे भगस्य च ।
शशिनो राजयक्ष्माऽभूदश्विभ्यान्ते चिकित्सिताः ॥ १२ ॥
भार्गवश्च्यवनः कामी वृद्धः सन् विकृतिं गतः ।
वीर्य्यवर्णस्वरोपेतः कृतोऽश्विभ्यां पुनर्युवा ॥ १३ ॥
एतैश्चान्यैश्च बहुभिः कर्म्मभिर्भिषजां वरौ ।
बभूवतुर्भृशं पूज्याविन्द्रादीनां दिवौकसाम् ॥ १४ ॥

भा॰ सूर्य्य के दांत गिर गये थे इन्द्रकी आंखें नष्ट होगईथीं, चन्द्रमा को राजयक्ष्मा रोग होगया था वे अश्विनीकुमारों से अच्छे कियेगये ॥ १२ ॥ भोगकी इच्छावाला भार्गवच्यवन वृद्ध होनेसे बुराकुरूप होगयाथा उसको अश्विनीकुमारों ने फिरसे सामर्थ्य और रंगरूप स्वर से युक्त तरुण किया ॥ १३ ॥ ये और बहुत से कामोंके करनेसे वैद्यों में श्रेष्ठ अश्विनीकुमार इन्द्रादिक देवताओं के अत्यन्त पूज्य हुवे ॥ १४ ॥

अथेन्द्रप्रादुर्भावः।

संदृश्य दस्रयोरिन्द्रः कर्म्माण्येतानि यत्नवान् ।
आयुर्वेदं निरुद्वेगं तौ ययाचे शचीपतिः ॥ १५ ॥
नासत्यौ सत्यसन्धेन शक्रेण किल याचितौ ।
आयुर्वेदं यथाधीतं ददतुः शतमन्यवे ॥ १६ ॥

भा॰ अनन्तर इन्द्रसे प्रगट हुवा । यत्नवाले इन्द्रने अश्विनीकुमारों के इन कामों को देखकर बहुत चमत्कारी वैद्यशास्त्र को उनसे माङ्गा (अर्थात् पढ़ने केवास्ते प्रार्थनाकी ॥ १५ ॥ सत्य के प्रणवाले इन्द्र से प्रार्थना कियेगये अश्विनीकुमारों ने जैसे आयुर्वेद पढ़ाथा वैसे इन्द्रको देदिया अर्थात् पढ़ाया ॥ १६ ॥

अथ अश्विनीकुमारश० चि० ५



अथ दुर्दंशाद० चित्र० ५



नासत्याभ्यामधीत्यैव आयुर्वेदं शतक्रतुः।
अध्यापयामस बहूनात्रेय प्रमुखान् मुनीन् ॥१७॥

अथात्रेय प्रादुर्भावः।

एकदा जगदालोक्य गदाकुल मितस्ततः। चिन्तया
मास भगवानात्रेयो मुनिपुङ्गवः ॥ १८ ॥ किं करोमि
क्व गच्छामि कथं लोका निरामयाः। भवन्ति नाम
यान्नेतान्न शक्नोमि निरीक्षितुम् ॥ १९ ॥
दयालु रहमत्यर्थं स्वभावो दुरतिक्रमः।
एतेषां दुःखतो दुःखं ममापि हृदयेऽधिकम् ॥२०॥

भा० ——— इन्द्र ने आयुर्वेद को अश्विनीकुमारों से पढके ही आत्रेया
दि बहुत से मुनियों को पढ़ाया ॥१७॥ अनन्तर आत्रेय से प्रगट हुवा। एक
समय में मुनि श्रेष्ठ भगवान् आत्रेयजी सब जगह पर रोग से पीड़ित संसार
को देखकर चिन्ता करने लगे ॥ १८ ॥ क्या करूं कहां जाऊं कैसे लोग निरोग
होवेंगे। इन रोगियों को देख नहीं सक्ता ॥ १९ ॥ मैं बहुत दयाल हूं स्वभाव बद
ल नहीं सक्ता। मेरे मन में इनके दुःख से अधिक दुःख होता है ॥ २० ॥

आयुर्वेदं पठिष्यामि नैरुज्याय शरीरिणाम्।
इति निश्चित्य गतवान् आत्रेयस्त्रिदशालयम् ॥२१॥
तत्र मन्दिर मिन्द्रस्य गत्वा शक्रं ददर्श सः। सिंहास
न समासीनं स्तूयमानं सुरर्षिभिः ॥ २२ ॥

भा०-मनुष्यों के निरोग होने के वास्ते वैद्य शास्त्र को पढूंगा। ऐसे निश्चय क
र के आत्रेयजी स्वर्ग में गये ॥ २१ ॥ वहां पर इन्द्र के मन्दिर में जाकर आत्रेयजी
ने आयुर्वेद के बडे आचार्य्य- देवताओं के सिरताज- तेज से सूर्य के समान

अपनी कान्ती से दिशाओं को प्रकाश करनेवाले-देवता और ऋषियों से स्तुति किये हुवे इन्द्र को सिंहासन पर बैठे हुवे देखा ॥ २२॥

भासयन्तं दिशो भासा भास्कर प्रतिमन्त्विषा ।
आयुर्वेदं महाचार्य्यं शिरोधार्य्यं दिवौकसाम् ॥२३॥
शक्रस्तु तं निरीक्ष्यैव त्यक्तसिंहासनो ययौ । तद
ग्रे पूजयामास भृशं भूरितपः कृशम् ॥ २४ ॥
कुशलं परिपप्रच्छ तथा गमन कारणम् । स मुनि
र्वक्तुमारेभे निजागमन कारणम् ॥२५॥

भा० इन्द्र उनको देखतेही सिंहासन छोड़कर उनके आगे गया और बहुत तपसे दुर्बलहुवे आत्रेयजी का बड़ा सत्कार किया ॥ २३ ॥ २४ ॥ कुशल और आगमन का कारण पूछा। उस मुनिने अपने आगमन का कारण कहना आरम्भ किया ॥ २५ ॥

देव ! राजन्नराजासि दिवएव यतो भवान् । विधा
त्रा विहितो यत्नात् त्रिलोकी लोकपालकः ॥ २६ ॥
व्याधिभिर्व्यथिता लोकाः शोकाकुलितचेतसः ।
भूतले सन्ति सन्तापं तेषां हन्तुं कृपां कुरु ॥२७॥
आयुर्वेदोपदेशं मे कुरु कारुण्यतो नृणाम् । तथे
त्युक्ता सहस्राक्षोऽध्यापयामास तं मुनिम् ॥२८॥

भा० हे देवताओं के राजा तुम स्वर्गही के राजा नहीं हो। क्यों कि ब्रह्माजी ने यत्न के साथ आपको तीनों लोकों के लोगोंका पालन करने वाला बनाया है ॥ २६ ॥ शोक से व्याकुल चित्तवाले और रोगसे पीड़ित लोग संसार में हैं इनके सन्तापको दूर करनेके अर्थ कृपा कीजिये ॥ २७ ॥

मनुष्यों पर दयाकरके मुझे आयुर्वेद का उपदेश कीजिये। बहुत अच्छा यह
कहकर इन्द्र ने उस मुनिको पढ़ाया ॥ २८ ॥

मुनीन्द्रः इन्द्रतः साङ्गमायुर्वेद मधीत्य सः । अ
भिनन्द्य तमाशीर्भिराजगाम पुनर्म्महीम् ॥ २९ ॥
अथात्रेयो मुनिश्रेष्ठो भगवान् करुणाकरः । स्वना
म्ना संहितां चक्रे नरचक्रानुकम्पया ॥ ३० ॥ ततो
ऽग्निवेशो भेडश्च जातूकर्णः पराशरः ॥ क्षीरपाणि
श्च हारीत मायुर्वेदं मपाठयत् ॥ ३१ ॥

भा० उस मुनिराज ने इन्द्र से अष्टाङ्ग सहित आयुर्वेद को पढ़कर आशीर्वादों
से इन्द्र को प्रसन्न करके फिरसे पृथ्वीपर आये ॥ २९ ॥ दयावान् मुनिवर भग
वान् आत्रेयजी ने [illegible] करके अपने नाम से संहिता
बनाई [illegible] जातूकर्ण पराशर और पाणि
और [illegible] ॥ ३१ ॥

तन्त्रस्य कर्त्ता प्रथममग्निवेशोऽभवत्पुरा ॥ ततो
भेडादयश्चक्रुः स्वं स्वं तन्त्रं कृतानि च ॥ ३२ ॥ श्राव
यामासु रात्रेयं मुनिवृन्देन वन्दितम् ॥ श्रुत्वा च ता
नि तन्त्राणि हृष्टोऽभूदत्रिनन्दनः ॥ ३३ ॥ यथावत् सू
त्रितन्त्रस्मात् प्रहृष्टा मुनयोऽभवन् ॥

भा० पूर्वकाल में प्रथम तन्त्र के करनेवाले अग्निवेश हुवे ॥ उसके अनन्तर
भेडादिकों ने अपने २ तन्त्र बनाये ॥ ३२ ॥ मुनिवृन्दोंसे नमस्कार कियेगये आ
त्रेयजी को सुनाया ॥ उन तन्त्रों को सुनकर आत्रेयजी प्रसन्न हुवे ॥ ३३ ॥ ठीक
ठीक बनी इसकारण मुनिलोग प्रसन्न हुवे ॥

दिवि देवर्षयो देवाः श्रुत्वा साध्विति तेऽब्रुवन् ॥ ३४॥

भरद्वाजप्रादुर्भावः।

एकदा हिमवत्पार्श्वे दैवादागत्य सङ्गताः ॥ मुनयो बहवस्तेषां नामभिः कथयाम्यहम् ॥ ३५॥ भारद्वाजो मुनिवरः प्रथमं समुपागतः ॥ ततोऽङ्गिरास्ततो गर्गो मरीचिर्भृगुभार्गवौ ॥ ३६॥ पुलस्त्योऽगस्ति रसितो वसिष्ठः सपराशरः ॥ हारीतो गौतमः सांख्यो मैत्रेयश्च्यवनोऽपि च ॥ ३७॥

भा० स्वर्ग में देव ऋषि और देवता लोगोंने सुनकर वेलोग बहुत अच्छा ऐसा कहने लगे ॥ ३४॥ भरद्वाज से प्रगट हुवा। एक समय में हिमालय के पास दैवयोगसे बहुतसे मुनिलोग आकर मिले ॥ उनके नाम मैं कहता हूं ॥ ३५॥ पहिले मुनिवर भारद्वाजजी आये ॥ अनन्तर अङ्गिरा और उसके अनन्तर गर्ग मरीचि भृगु भार्गव ॥ ३६॥ और पुलस्त्य अगस्ति असित वसिष्ठ पराशर सहित ॥ हारीत गौतम सांख्य मैत्रेय और च्यवन भी आये ॥ ३७॥

जमदग्निश्च गार्गश्च काश्यपः कश्यपोऽपि च ॥ नारदो वामदेवश्च मार्कण्डेयः कपिञ्जलः ॥ ३८॥ शाण्डिल्यः सहकौण्डिन्यः शाकुनेयश्च शौनकः ॥ आश्वलायन सांकृत्यो विश्वामित्रः परीक्षकः ॥ ३९॥ देवलो गालवो धौम्यः काम्य कात्यायनावुभौ ॥

और जमदग्नि गार्ग काश्यप कश्यप ॥ नारद वामदेव मार्कण्डेय कपिञ्जल कौण्डिन्य के साथ शाण्डिल्य शाकुनेय शौनक ॥ आश्वलायन सांकृत्य ॥ ३९॥ देवल गालव धौम्य काम्य कात्यायन दोनों ॥

कुशिको बादरायणः ॥ ४०॥

अथ आत्रेय प्रादु॰ चित्र ६



अथ भारद्वाज प्रादु॰ चित्र ७



हिरण्याक्षश्च लौगाक्षिः शरलोमा च गोभिलः ॥ वै खानसा वालखिल्या स्तथैवान्ये महर्षयः ॥ ४१ ॥ ब्रह्मज्ञानस्य निधयो यमस्य नियमस्य च ॥ तपतस्तेजसा दीप्ता हूयमाना इवाग्नयः ॥ ४२ ॥ सोपविष्टास्ते तत्र सर्वे चक्रुः कथामिमाम् ॥ धर्मार्थ काम मोक्षाणां मूलमुक्तं कलेवरम् ॥ ४३ ॥

भा० और काङ्कायन वैजपाय कुशिक बादरायण ॥ ४० ॥ हिरण्याक्ष लौगाक्षि शरलोमा गोभिल ॥ वैखानस वालखिल्य वैसेही और महर्षि लोग। ॥ ४१ ॥ जो ब्रह्मज्ञान के और यम नियम के भी समुद्र ॥ प्रज्वलित अग्नि के समान तप और तेजसे दीप्त अर्थात् प्रकाशवाले ये सब आये ॥ ४२ ॥ वहांपर बैठ कर वे सब इस कथा को कहने लगे । कि धर्म अर्थ काम मोक्ष इन की जड़ देह कही गई है ॥ ४३ ॥

तपःस्वाध्याय धर्माणां ब्रह्मचर्य्यव्रतायुषाम् ॥ हर्त्तारः प्रसृता रोगाःयत्र तत्र च सर्वतः ॥ ४४ ॥ रोगाः कार्श्यकरा बलक्षयकरा देहस्य चेष्टाहराः दृष्टा इन्द्रियशक्तिसंक्षयकराः सर्वाङ्गपीडाकराः ॥ धर्मार्थाखिलकाममुक्तिषु महाविघ्नस्वरूपा बलात् प्राणानाशु हरन्ति सन्ति यदि ते क्षेमं कुतः प्राणिनाम् ॥ ४५ ॥ ४६ ॥

भा० तप वेदपाठ और धर्मों का तथा ब्रह्मचर्य्य व्रत आयु इन के हरण करनेवाले रोग यहां वहां सब जगह फैलरहेहैं ॥ ४४ ॥ रोग दुबलापन करनेवाले, और बलको क्षयकरनेवाले, तथा शरीरकी चेष्टा हरनेवाले, और इन्द्रिय की शक्ति नष्टकरनेवाले देखे, और संपूर्ण शरीर में पीड़ा करनेवाले ॥ तथा धर्म अर्थ और संपूर्ण काम मुक्ति इन में बड़े विघ्नरूप ये रोग बलात्कार से प्राणों को शीघ्र हरतेहैं जब ये रोग विद्यमान हैं तब प्राणियों को सुख कहां अर्थात् नहीं

मिल सका ॥ ५५ ॥ ५६ ॥

तत्तेषां प्रशमाय कश्चन विधि श्चिन्त्यो भवद्भिर्बुधै र्योग्यैरित्यभिधाय संसदि भरद्वाजं मुनिं तेऽब्रुवन् ॥ त्वं योग्यो भगवन् । सहस्रनयनं याचस्व लब्धं क्रमा दायुर्वेद मधीत्य यं गदभयात्मुक्ता भवामो वयम् ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ इत्थं स मुनिभिर्योग्यैः प्रार्थितो विनयान्वितैः ॥ भरद्वाजो मुनिश्रेष्ठो जगाम त्रिदशालयम् ॥ ५९ ॥

भा० तिस्से उनके दूर होने के वास्ते आप ऐसे विद्वान् और योग्य पुरुषों से कोई प्रकार सोंचा जाना चाहिये इस तरह सभामें वे ऋषिलोग नाम लेकर भरद्वाज मुनिसे बोले ॥ ५७ ॥ हे भगवन् तुम योग्यहो । इन्द्र से प्रार्थना करोकि प्राप्त कियेहुवे आयुर्वेद को क्रमके साथ पढ़कर इन रोगों से हमलोग छूट जावें ॥ ५८ ॥ इस तरहपर विनयकरके युक्त और योग्य मुनियोंसे प्रार्थना किये गये वह मुनि श्रेष्ठ भरद्वाजजी महाराज स्वर्ग को गये ॥ ५९ ॥

तथेन्द्र भवनं गत्वा सुरर्षि गणमध्यगम् ॥ दृष्टवान् वृत्रहन्तारं दीप्यमान मिवानलम् ॥ ५० ॥ दृष्ट्वैव स मुनिं प्राह भगवान् मघवा मुदा ॥ धर्म्मज्ञ । स्वागतन्तेऽथ मुनिं तं समपूजयत् ॥ ५१ ॥ सोऽभिगम्य जयाशीर्भिरभिनन्द्य सुरेश्वरम् ॥ ऋषीणां वचनं सम्यक् श्रावयन् मुनिसत्तमः ॥ ५२ ॥

भा० उसी प्रकार इन्द्रके भवनमें जाकर देवता और ऋषियों के बीचमें बैठे हुवे वृत्रासुर के मारनेवाले तथा अग्निके समान प्रकाशमान् इन्द्रको देखा ॥ ५० ॥ उस भगवान् इन्द्रने मुनिको देखतेही आनन्द पूर्वक कहा ॥ हे धर्म के जानने

चले ॥ तुम्हारा आना कुशल क्षेमके साथ हुवा इसप्रकार कुशल पूछने के अनन्तर उस मुनीकी पूजा की ॥ ५१ ॥ उस मुनि श्रेष्ठ भरद्वाजजी ने इन्द्र से मिलकर और आशीर्वाद से प्रसन्न करके ऋषियों का कहना अच्छी तरह सुनाया ॥ ५२ ॥

व्याधयो हि समुत्पन्नाः सर्व्वप्राणिभयङ्कराः ॥ तेषां प्रशमनोपायं यथावद्वक्तु मर्हसि ॥ ५३ ॥ तमुवाच मुनिं साङ्गमायुर्वेदं शतक्रतुः ॥ जीवेद् वर्षसहस्राणि देही नीरुङ् निशम्य यम् ॥ ५४ ॥ सोऽनन्तपारन्त्रिस्कन्ध मायुर्वेदं महामुनिः ॥ यथावदचिरात् सर्वं बुबुधे तन्मना शुचिः ॥ ५५ ॥

भा० संपूर्ण जीवोंको भयदेनेवाले रोग उत्पन्न हुवे हैं ॥ उनके शमन होने का उपाय आप ठीक ठीक कह सक्ते हो ॥ ५३ ॥ इन्द्रने अंगसहित आयुर्वेद उस ऋषिको पढ़ाया ॥ जिस को सुनकर देही निरोगहोकर सहस्र वर्ष जीताहै ॥ ५४ ॥ पवित्र और एकाग्रचित्त हुवे उस महामुनि भरद्वाजने तीन कांड वाले अपार आयुर्वेद को अच्छीतरह पर थोड़े दिनों में सब जान लिया ॥ ५५ ॥

तेनायुः सुचिरं लेभे भरद्वाजो निरामयम् ॥ अन्यानपि मुनीं श्चक्रे निरुजः सुचिरायुषः ॥ ५६ ॥ तत्तन्त्रजनित ज्ञानचक्षुषा ऋषयोऽखिलाः ॥ गुणान् द्रव्याणि कर्म्माणि दृष्ट्वा तद्विधिमाश्रिताः ॥ ५७ ॥ आरोग्यं लेभिरे दीर्घमायुश्च सुखसंयुतम् ॥ आयुर्वेदोक्त विधिनाऽन्येऽपि स्युर्मुनयो यथा ॥ ५८ ॥

चरकप्रादुर्भावः ।

यदा मत्स्यावतारेण हरिणा वेद उद्धृतः॥ तदा शे.
षश्च तत्रैव वेदं साङ्गमवाप्तवान् ॥ ५९ ॥ अथर्वा
न्तर्गतं सम्यक् आयुर्वेदञ्च लब्धवान् ॥ एकदा
स महीवृत्तं द्रष्टुञ्चर इवागतः ॥ ६०॥

भा० उस से भरद्वाजजी ने आरोग्यता के साथ बहुत दिनतक आयु पाई । और मुनियों को भी निरोग और दीर्घायु किया ॥ ५६ ॥ सम्पूर्ण ऋषियों ने उस तन्त्र द्वारा उत्पन्न हुवे ज्ञानरूपी नेत्रों से गुण द्रव्य और कर्मों को देखकर उसकी विधि को स्वीकार किया ॥ ५७ ॥ आरोग्य और सुख के सहित दीर्घ आयु को पाया ॥ और भी मुनिलोग आयुर्वेद की कही विधिसे सुखी और दीर्घ आयु हुवे ॥ ५८ ॥ ॥ चरक का प्रादुर्भाव । जब भगवान ने मत्स्यावतार लेकर वेद निकाला । तब वहीं पर शेषजी ने अंग सहित वेद को पाया ॥ ५९ ॥ अथर्वण वेदके अन्तर्गत आयुर्वेद को अच्छे प्रकार हासिल किया ॥ एक समय में वह शेषजी पृथ्वीका समाचार देखने को जासूस के मानिंद आये ॥ ६० ॥

तत्र लोकान् गदैर्ग्रस्तान् व्यथया परिपीड़ितान्॥
स्थलेषु बहुषु व्यग्रान् म्रियमाणांश्च दृष्टवान् ॥
॥ ६१ ॥ तान् दृष्ट्वा ति दयायुक्त स्तेषां दुःखेन दुःखितः
॥ अनन्तश्चिन्तयामास रोगोपशमकारणम् ॥ ६२॥
सञ्चिन्त्य स स्वयं तत्र मुनेः पुत्रो बभूवह ॥

भा० वहां पर बहुतसे स्थानों में रोगोंसे ग्रसित और दुःख से पीड़ित । व्याकुल मरे से लोगों को देखा ॥ ६१ ॥ उन को देखकर बहुत दयावाले और उनके दुःख से दुःखित शेषजी रोग के शमन होनेका उपाय सोंचने लगे ॥ ६२ ॥ बाद अच्छी तरह पर सोच कर शेषजी ने ख़ुद वहां पर वेद और वेदांग के जानने वाले प्रसिद्ध और विशुद्ध

भार्गव॰ भृगु
अंगिरा
भारद्वाज॰
यमद
नारद
कश्यप

चरक प्रादु॰ चित्र॰ ६

चरक मुनी

प्रसिद्धस्य विशुद्धस्य वेदवेदाङ्ग-वेदिनः॥ ६३॥ यत
श्चर इवायातो न ज्ञातः केनचिद्यतः॥ तस्माच्चरक
नाम्नाऽसौ विख्यातः क्षितिमण्डले॥ ६४॥ स भा
ति चरकाचार्य्यो वेदाचार्य्यो यथा दिवि॥ सहस्र
वदनस्यांशो येन ध्वंसो रुजां कृतः॥ ६५॥ आत्रेय
स्य मुनेः शिष्या अग्निवेशादयोऽभवन्॥

भा॰ मुनिके पुत्र हुवे ॥ ६३॥ क्योंकि जिसकारण जासूस के से आये। और किसीसे नहींजाना उसकारण यह चरक नाम से संसार में प्रसिद्ध हुवा ॥ ६४॥ जिसने रोगों का नाश किया वह शेषजीका अंश चरकाचार्य्य पृथ्वी में शोभते हैं जैसे स्वर्गमें वेदाचार्य्य शोभते हैं ॥ ६५॥ अग्निवेशादिक बहुतसे मुनि आत्रेयजी के शिष्य हुवे ॥

मुनयो बहवस्ते च कृतं तन्त्रं स्वकं स्वकं॥ ६६॥
तेषां तन्त्राणि संस्कृत्य समाहृत्य विपश्चिता॥ च
रकेनात्मनो नाम्ना ग्रन्थोऽयं चरकः कृतः॥ ६७॥

धन्वन्तरि प्रादुर्भावः।

एकदा देवराजस्य दृष्टिर्निपतिता भुवि॥ तत्र तेन न
रा दृष्टा व्याधिभिर्भृशपीड़िताः॥ ६८॥ तान् दृष्ट्वा
हृदयं तस्य दयया परिपीड़ितम्॥ दयार्द्रहृदयः श
क्रो धन्वन्तरिमुवाच ह॥ ६९॥

भा॰ उन्होंने भी अपने अपने ग्रन्थ किये ॥ ६६॥ बहुत अच्छी बुद्धिवाले चरक ने उनके ग्रन्थों को लाकर और ठीक करके अपने नामसे यह चरक

ग्रन्थ बनाया ॥ ६७ ॥ धन्वन्तरी का प्रादुर्भाव । एक समय में इन्द्र की दृष्टी पृथ्वीपर पड़ी ॥ उसमें उसने रोगसे अत्यन्त पीड़ित मनुष्य देखे ॥ ६८ ॥ उनको देखकर इन्द्रका हृदय दयासे अत्यन्त क्षोभित ऊवा ॥ दयासे सींचे ऊवे चित्तवाले इन्द्र ने धन्वन्तरि से कहा ॥ ६९ ॥

धन्वन्तरे । सुरश्रेष्ठ । भगवन् । किञ्चिदुच्यते ॥ योग्यो भवसि भूतानामुपकारपरो भव ॥ ७० ॥ उपकाराय लोकानां केन किन्न कृतं पुरा ॥ त्रैलोक्याधिपतिर्विष्णुरभून्मत्स्यादि रूपवान् ॥ ७१ ॥ तस्मात्त्वं पृथिवीं याहि काशीमध्ये नृपो भव ॥ प्रतीकाराय रोगाणामायुर्वेदं प्रकाशय ॥ ७२ ॥ इत्युक्त्वा सुरशार्दूलः सर्वभूतहितेप्सया ॥ समस्तमायुषो वेदं धन्वन्तरिमुपादिशत् ॥ ७३ ॥ अधीत्य चायुषो वेदमिन्द्रात् धन्वन्तरिः पुरा ॥ आगत्य पृथिवीं काश्यां जातो बाहुज वेश्मनि ॥ ७४ ॥

भा० हे देवताओं में श्रेष्ठ भगवान् धन्वन्तरि कुछ कहता हूं ॥ आप योग्य हो प्राणियोंके उपकार में तत्पर हूजिये ॥७०॥ पहिले लोगोंके उपकारके वास्ते किसने क्या नहीं किया ॥ तीन लोक के मालिक भगवान ने मत्स्यादि रूपोंको धारणकिया ॥७१॥ तिस्से तुम पृथ्वी पर जाओ और काशीके वीच में राजा वनो ॥ रोगों के दूर होने के वास्ते आयुर्वेद को प्रकाश करो ॥ ७२ ॥ इस प्रकार से कहकर इन्द्र ने सम्पूर्ण जीवों के हित की इच्छासे समस्त आयुर्वेद धन्वन्तरि को पढ़ाया ॥७३॥ पहिले धन्वन्तरि ने आयुर्वेद को इन्द्र से पढ़कर अनन्तर पृथ्वीपर आकर काशी में बाहुज के घर में जन्म लिया ॥७४॥

नाम्ना तु सोऽभवत् ख्यातो दिवोदास इति क्षितौ ॥


सुश्रुत
विश्वामित्र


दिवोदास राजा
सुश्रुतादि मुनि

वालएव विरक्तोऽभूच्चचार सुमहत्तपः ॥७५॥ यत्ने
न महता ब्रह्मा तं काश्यामकरोन्नृपं ॥ ततो धन्वंत
रिर्लोके: काशीराजोऽभिधीयते ॥ ७६ ॥ हिताय देहि
नां स्वीया संहिता विहिताऽमुना ॥ अयं विद्यार्थिनो
लोकान् संहितान्ता मपाठयत् ॥ ७७ ॥

सुश्रुत प्रादुर्भावः।

अथ ज्ञानदृशा विश्वामित्र प्रभृतयोऽविदन् ।
अयं धन्वन्तरिः काश्यां काशिराजो ऽयमुच्यते ॥७८॥
विश्वामित्रो मुनिस्तेषु पुत्रं सुश्रुत मुक्तवान् ॥
वत्स ! वाराणसीं गच्छ त्वं विश्वे श्वर वल्लभाम् ॥७९॥
तत्र नाम्ना दिवोदासः काशिराजोऽस्ति बाहुजः॥
स हि धन्वन्तरिः साक्षादायुर्वेद विदां वरः ॥ ८०॥

भा० वह पृथ्वी में दिवोदास इस नामसे प्रसिद्ध हुवा। बालक पने में ही विरक्त हुवा और बहुत बड़ा तप किया ॥७५॥ ब्रह्माजी ने बड़े यत्न से उनको काशी का राजा बनाया ॥ तब से लोग धन्वन्तरि को काशीराज कहने लगे ॥७६॥ अनन्तर उन्होंने लोगों के हितार्थ अपनी संहिता बनाई ॥ और विद्यार्थि लोगों को वह संहिता पढ़ाई ॥ ७७॥ सुश्रुत का प्रादुर्भाव । अनन्तर ज्ञान चक्षु से विश्वामित्रादि मुनियों ने जाना। कि यह धन्वन्तरी है जिसको काशी में लोग काशीराज कहते हैं ॥ ७८ ॥ उन मुनियों में से विश्वामित्र मुनिने अपने पुत्र सुश्रुत से कहा ॥ कि हे पुत्र तुम विश्वेश्वर की प्यारी काशी को जाओ ॥ ७९॥ वहां पर बाहुज का पुत्र दिवोदास इसनाम से काशिराज है ॥ वह आयुर्वेद जानने वालों में श्रेष्ठ साक्षात् धन्वन्तरी है ॥८०॥

आयुर्वेदं ततोऽधीष्व लोकोपकृति हेतवे ॥ सर्वे

प्राणिदया तीर्थमुपकारो महामखः ॥ ८१ ॥ पितुर्व चनमाकर्ण्य सुश्रुतः काशिकां गतः ॥ तेन सार्द्धं समध्येतुं मुनिसूनुशतं ययौ ॥ ८२ ॥ अथ धन्वन्तरिं सर्वे वानप्रस्थाश्रमे स्थितम् ॥ भगवन्तं सुरश्रेष्ठं मुनिभिर्बहुभिः स्तुतम् ॥ ८३ ॥ काशिराजं दिवोदासं तेऽपश्यन्विनयान्विताः ॥ स्वागतञ्च इतिस्माह दिवोदासं यशोधनः ॥ ८४ ॥ कुशलं परिपप्रच्छ तथागमनकारणम् ॥

भा० सम्पूर्ण जीवों की दया है वह तीर्थ है और उपकार बड़ा यज्ञ है तिस्से लोगों के उपकार के अर्थ आयुर्वेद को पढ़ो ॥ ८१ ॥ पिताका वचन सुनकर सुश्रुत काशी को गया ॥ उसके साथ पढ़नेके अर्थ सौ मुनियों के पुत्र गये ॥ ८२ ॥ अनन्तर विनय युक्त उन सब मुनियों के पुत्रों ने वानप्रस्थाश्रम में स्थित देवताओं में श्रेष्ठ और बहुत से मुनियों से स्तुति किये हुवे दिवोदास नाम काशिराज धन्वन्तरि को देखा ॥ ८३ ॥ यश है धन जिनका ऐसे दिवोदासनें अच्छा आनाहुवा अर्थात् बड़ी कृपाकी ऐसा कहा और कुशल तथा आगमन का कारण पूंछा ॥

ततस्ते सुश्रुतद्वारा कथयामासुरुत्तरम् ॥ ८५ ॥ भगवान्मानवान्दृष्ट्वा व्याधिभिः परिपीड़ितान् ॥ क्रन्दतो म्रियमाणांश्च जाताऽस्माकं हृदि व्यथा ॥ ८६ ॥ आमयानां शमोपायं विज्ञातुं वयमागताः ॥

भा० तब उन्हों ने सुश्रुत के द्वारा अच्छी तरह पर कथन किया ॥ ८४ ॥ ८५ हे भगवान रोगोंसे दुखी और रोतेहुवे मरेसे मनुष्यों को देखकर हमारे हृदय में पीड़ा उत्पन्नहुई ॥ ८६ ॥ रोगों का उपाय जाननेके वास्ते हमलोग आये हैं ॥

आयुर्वेदं भवान् अस्मानध्यापयतु यत्नतः ॥ ८७ ॥ अङ्गीकृत्य वचस्तेषां नृपतिस्तानुपादिशत् ॥ व्याख्यातन्तेन ते यत्नाज्जगृहुर्मुनयो मुदा ॥ ८८ ॥ काशिराजं जयाशीर्भिरभिनन्द्य मुदान्विताः ॥ सुश्रुताद्याः सुसिद्धार्था जग्मुर्गेहं स्वकं स्वकम् ॥ प्रथमं सुश्रुतस्तेषु स्वतन्त्रं कृतवान् स्फुटम् ॥ सुश्रुतस्य सखायोऽपि पृथक् तन्त्राणि तेनिरे ॥ ९० ॥ सुश्रुतेन कृतं तन्त्रं सुश्रुतं बहुभिर्यतः ॥

भा० आप यत्न के साथ आयुर्वेद हमलोगों को पढ़ाइये ॥ ८७ ॥ उनका कहना स्वीकार करके राजाने उनको पढ़ाया ॥ उनसे पढ़ायेहुवेको उन मुनियों ने यत्नके साथ खुशीसे ग्रहण किया ॥ ८८ ॥ अच्छी तरह पर सिद्धहुवे प्रयोजनवाले आनंदयुक्त सुश्रुतादि मुनियोंने काशिराज को जयाशीर्वादोंसे प्रसन्न करके अपने अपने घरको गये ॥ ८९ ॥ उनमें पहिले सुश्रुतने अपने तन्त्रको स्पष्ट किया ॥ सुश्रुतके मित्रोंने भी अपने तन्त्रोंको अलग बनाया ॥ ९० ॥ सुश्रुत के बनायेहुवे तन्त्र को बहुतों ने अच्छी तरह पर सुना इसवास्ते ॥

तस्मात्तत्सुश्रुतं नाम्ना विख्यातं क्षितिमण्डले ॥ ॥ ९१ ॥

इत्यायुर्वेदप्रकरणे नृणां प्रादुर्भावः

आयुर्वेदाब्धिमध्यादतिमतिमुनयो योगरत्नानि यत्नाल्लब्ध्वा स्वे स्वे निबन्धे दधुरखिलजनव्याधिविध्वंसनाय ॥ तत्तद्ग्रन्थाद्गृहीतैः सुवचनमणिभिर्भावमिश्रैश्चिकित्सा शास्त्रे जाड्यान्धकारं

प्रशमयितुमिमं स विधत्ते प्रकाशम् ॥ १॥ ॥
श्रीपतिपदप्रसादादाशीर्भि भूमिदेवानाम् ॥
भावप्रकाशनाम्ना ग्रन्थोऽयं पठ्यतां सर्वैः ॥ २॥
एतस्य निबन्धस्य फलं चिकित्सा पुरुषस्य पुरुषस्तु च
तुर्विंशति तत्त्वजीवात्म समवायस्तस्मा चतुर्विंशति तत्त्वा
नां जीवात्मनश्च स्वरूप निरूपणाय सृष्टिक्रममाह। (ख)

भा० सुश्रुत नाम से पृथ्वी पर प्रसिद्ध ज़वा ॥ ८१ ॥ इस तरह पर आयुर्वेद के प्रकरणमें मनुष्यों का प्रादुर्भाव ज़वा है ॥
बज़त बुद्धिवान् मुनियोंने आयुर्वेद रूपी समुद्र के बीच में से योगरूपी रत्नों को यत्नसे पाकर सब लोगोंके रोग दूर होने के वास्ते अपने २ ग्रन्थों में स्थापन किया ॥ उन २ ग्रन्थों से लियेज़वे अच्छे २ वचनरूपी मणियों से भाव मिश्र के चिकित्सा शास्त्र में जो आज्ञारूपी अन्धकार है उसको दूर करने के वास्ते इस प्रकाश को बनाया है अर्थात् भावप्रकाश नाम ग्रन्थ को बनाया है ॥ १ ॥
श्रीभगवान के चरणों के प्रसाद से और ब्राह्मणों की आशीर्वाद से इस ग्रन्थको भाव प्रकाश नाम से सब पढ़ें ॥ २॥
इस ग्रन्थके सन्दर्भ का प्रयोजन पुरुषकी चिकित्सा अर्थात् रोगका प्रतीकार है। और पुरुष जो चौबीस तत्त्व जीव आत्मा इनका समवाय अर्थात् मेल है तिस्से चौबीस तत्त्वों का और जीवात्मा के स्वरूप निरूपण के वास्ते सृष्टिका क्रम कहते हैं ॥ (ख) ॥

आत्माज्योतिश्चिदानन्द रूपो नित्यश्च निस्पृहः ॥
निर्गुणः प्रकृतेर्योगात्सगुणः कुरुते जगत् ॥ १ ॥
सगुण इच्छादि युक्तः ॥ (ग)
सत्त्वं रजस्तमश्चेति गुणास्ते प्रकृतेः समाः ॥ सा ज
ड़ापि जगत् कर्त्री परमात्म चिदन्वयात् ॥ २॥
सतः साधोर्भावः सत्त्वं प्रकाशकं ज्ञानं सुखहेतुः रजोरागा

त्मकं दुःखहेतुः ताम्यति ग्लानिं प्राप्नोति अनेनेति तमः आव रकं मोहहेतुः। ते गुणाः समाः प्रकृति रित्यर्थः तथा सति न्यूनाधिकगुणाः विकृतिः अथ सुश्रुतमुपदिशन् धन्वन्तरिः (ख)॥ [प्रकृतेःस्वरूप विशेषणमाह।]

भा० आत्मा प्रकाश और ज्ञानरूप तथा नित्य निरिच्छ निर्गुण है परंतु प्रकृति के योगसे सगुण होकर जगत् को करता है ॥१॥ सगुण अर्थात् इच्छादिकर के युक्त (क)॥ सत्व रज तम इस तरहपर प्रकृति के वे सम गुण हैं। वो प्रकृति जड़ हुई भी अविनाशी ज्ञानरूप परमात्मा के चिदाभास से जगत को उत्पन्न करनेवाली है ॥२॥ साधु नाम उत्तम जो भाव अर्थात् धर्म को सत्व कहते हैं वह प्रकाश करनेवाला ज्ञान सुख का हेतु है ॥ रज इच्छा प्रीतिवाला दुःखका हेतु है। तम ग्लानि को देनेवाला और बुद्धिको आच्छादन करनेवाला मोहका कारण है। वे गुण सम हुवे प्रकृति कहलाते हैं। और जो न्यूनाधिक हुवे विकृति कहलाते हैं॥ (क)॥
अनन्तर सुश्रुत को उपदेश करते हुवे धन्वन्तरि ने ॥ (ख)॥
प्रकृतिके स्वरूप विशेष को कहा है ॥

सर्वभूतानां कारणमकारणं सत्त्वरजस्तमो लक्षण मष्टरूपमखिलस्य जगतःसम्भव हेतुरव्यक्तं नामेति॥ (ग)

अस्यायमर्थः।(घ) अव्यक्तं न व्यज्यतेस्मेति अव्यक्तं मूलप्रकृत्यपर पर्य्यायं ततः सर्वभूतानां कारणं समवायिकारणं अकारणं न विद्यते कारणं यस्य तत् सत्त्व रजस्तमो लक्षणं सम सत्त्वरजस्तमः स्वरूपं अष्टरूपं,अव्यक्तं महान् अहङ्कारः पञ्च तन्मात्राणीत्यष्टौ रूपाणि यस्य तत् यत इन्द्रियाणां महाभूतानाञ्च कारणतया महदादयोऽपि सप्त प्रकृतयः एवमखिलस्य जगतः सम्भवहेतुरव्यक्त

मित्युपसंहारः॥ (ङ)

भा॰ सम्पूर्ण जीवों का कारण और अकारण अर्थात् आप सबका कारण और अपना कोई कारण नहीं और सत्व रज तम लक्षणवाला अष्टरूप संम्पूर्ण जगत का उत्पत्ति हेतु अव्यक्त नाम है॥ (ग)॥

इसका अर्थ यह है कि (घ)। जो प्रगट नहीं होता वह अव्यक्त है अर्थात् मूल प्रकृति का दूसरा पर्य्याय है। जिस्से सब भूतोंका कारण अर्थात् समवायि कारण नय्यायिकोंके मत में द्रव्य गुणों का सम्बन्ध समवाय होता है। और यहाँ सांख्यके मत में द्रव्य द्रव्य का सम्बन्ध जिसको संयोग सम्बन्ध कहते हैं वह समवाय है॥ अकारण,नहीं है कारण जिसका वह अकारण सम सत्व रज तम स्वरूप और अष्टरूप नाम अव्यक्त महान् अहंकार और पंच तन्मात्रा अर्थात् रूप रस गंध शब्द स्पर्श यह आठ रूप हैं जिसके वह अष्टरूप जैसे इन्द्रियों का अर्थात् चक्षु श्रोत्र जिव्हा नासिका और त्वचा इनका तथा महा भूतोंका अर्थात् पृथ्वी जल तेज वायु आकाश इनके कारण रूपसे महदादिकभी सानप्रकृति होतेहैं॥

इस प्रकार संपूर्ण जगत के उत्पत्त का हेतु अव्यक्त है॥ (ङ)

[प्रकृति पुरुषयोः साधर्म्य माह।]

उभावप्यनादी उभावप्यनन्तौ उभावप्य लिङ्गा वुभावपि नित्या वुभावप्यपरा वुभावपि सर्वगतौ इति उभावपि नित्यौ लयं क्वचिदपि न यातः उभावप्य परौ न विद्यते परोऽपरो याभ्यान्तावपरौ (च)

अथातो नयो वैधर्म्यमाह।

एकातु प्रकृतिरचेतना त्रिगुणा वीजधर्म्मिणी प्रसवधर्म्मिण्य मध्यस्थ धर्म्मिणी चेति अचेतना जड़ा त्रिगुणा तुल्यगुणत्रयात्मिका वीजधर्म्मिणी सर्वेषां महदादीनां विकाराणां वीजत्वेनावस्थित प्रसवधर्म्मिणी पुरुषे

णाक्रान्ताक्षोभंप्राप्य सम्यगतिक्रम्य महदहङ्कारा दि क्रमेण जगतः प्रसवित्री अमध्यस्थधर्म्मिणी सुख दुःख भोग भोगिनी ॥ (छ) ॥

न नु सुखदुःख भोगादुदासीना पुरुषस्तु चेतनावान् निर्गुणोऽप्रसवधर्म्मा वीज धर्म्मो मध्यस्थधर्म्मो चेति (ज)

भा० प्रकृति और पुरुष का साधर्म्य अर्थात् समान धर्मता कहते हैं। दोनों अनादि दोनों अनंत दोनों अलक्षण दोनों नाश रहित दोनों अपर अर्थात् जिनके परे कोई नहीं और दोनों सबमें व्याप्त इस प्रकार साधर्म्य है। दोनों नित्य अर्थात् कभीभी नाशको नहीं प्राप्त होते दोनों अपर, अर्थात् नहीं है परे जिन्होंसे ॥ (च) ॥

साधर्म्य कथन करने के अनन्तर विरुद्ध धर्म के देखने से उन का वैधर्म्य कहते हैं। प्रकृति तो एक और जड़ तीन गुण वाली वीज धर्म वाली अर्थात् सब महदादि कों की बीजरूप होकर रहने वाली तथा प्रसवधर्मवाली अर्थात् महत्तत्त्व अहंकारादि क्रमसे जगत को उत्पन्न करने वाली अमध्यस्थ धर्मवाली अर्थात् सुख दुःख के भोगको भोगनेवाली इस प्रकार प्रकृति पुरुषों का वैधर्म्य है। अचेतना नाम जड़ा अर्थात् ज्ञान से रहित त्रिगुणा तीनगुणवाली वीजधर्म्मिणी अर्थात् सब महदादि विकारों के वीजरूप होके रहनेवाली प्रसव धर्म्मिणी अर्थात् पुरुष से आक्रान्त हुई क्षोभको पाकर महत्तत्व अहंकारादि क्रमसे जगत को उत्पन्न करनेवाली अमध्यस्थ धर्म्मिणी सुखदुःख के भोग को भोगनेवाली ॥ (छ) ॥

न कि सुखदुःख के भोगसे तटस्थ होनेवाली। पुरुष तो चेतना वाला और निर्गुण तथा अप्रसव धर्मवाला अवीज धर्मवाला और मध्यस्थ धर्मवाला इस प्रकार वैधर्म्य है ॥ (ज)

निर्गुणः अविद्यमान् सत्त्वादिगुणः। (क) ॥

अवीजधर्म्मा महाप्रलये महदादीनां विकाराणां प्रकृता

विव तस्मिन्ननवस्थानात् मध्यस्थधर्म्मी सुखदुःखे
च्छाद्वेषादिभ्यःउदासीनः ॥ (अ) ॥

[प्रकृतेर्नामानि आह।]

प्रधानं प्रकृतिः शक्तिर्नित्या चाविकृतिस्तथा ॥
एतानि तस्या नामानि पुरुषं या समास्थिता ॥ ३ ॥

गुणानाह।

सत्त्वं रजस्तमस्त्रीणि विज्ञेयाः प्रकृतेर्गुणाः ॥ तैश्च
युक्तस्य चित्तस्य कथयाम्यखिलान् गुणान् ॥ ४ ॥

अथ सत्त्वादि युक्तस्य मनसो गुणानाह।

आस्तिक्यं प्रविभज्य भोजनमनुत्तापश्च तथ्यं वचो।
मेधाबुद्धि धृतिक्षमाश्च करुणा ज्ञानञ्च निर्दम्भता॥
कर्मानिन्दितमस्पृहञ्च विनयो धर्म्मः सदैवादरा।
देते सत्त्वगुणान्वितस्य मनसो गीता गुणा ज्ञानिभिः॥ ५॥

भा० निर्गुणः सत्व रज तम इन तीन गुणों से रहित ॥ (क) ॥ अवीच धर्म्मा महाप्रलय में महदादि विकारोंको प्रकृतिके मानिंद उसमें नरहनेसें मध्यस्थ धर्म्मी सुखदुःख इच्छा द्वेषादिकों से उदासीन अर्थात् बे प्रयोजन ॥ (अ) ॥ ॥ प्रकृतिके नाम कहतेहैं ॥ प्रधान प्रकृति शक्ति नित्या अविकृति ये उसके नाम हैं जो पुरुषका आश्रय करके रहती है ॥ ३ ॥ ॥ प्रकृतिके गुण कहते हैं ॥ सत्व रज तम ये तीन प्रकृति के गुण जाने गयेहैं। उन से युक्त चित्तके सब गुण कहताहूं ॥ ४ ॥

सत्त्वादि युक्त मनके गुण कहते हैं।

आस्तिकता अच्छीतरह विभागकरके अर्थात् वैश्वदेव बलि अतिथि इनको दे करके भोजन और क्रोधसे रहितहोना सचबोलना तथा मेधा बुद्धि धृति क्षमा करुणा ज्ञान और दम्भसे रहितहोना तथा निन्दासे रहितकर्म और नि

स्पृह विनय तथा सर्वदा आदरसे धर्म्माचरण करना ये सत्वगुण से युक्त हुवे मन के गुण ज्ञानियों से कहे गये हैं ॥ ५॥

अस्ति धर्म्ममोक्ष परलोकादिकमिति बुद्ध्या चरतीत्यास्तिकः स्तस्य भाव आस्तिक्यं अनुतापः अक्रोधः धृतिः भूतप्रेतस्म रक्रोध लोभाद्यावेशराहित्यं ज्ञानमात्मज्ञानम् । निर्दम्भ ता कपटाभावः कर्म्म अनिन्दितं अस्पृहं निष्कामं च। (क)

भा० धर्म्म मोक्ष परलोकादिक है इस बुद्धि से जो आचरण करना है वह आस्तिक उसका जो धर्म्म वह आस्तिक्य अनुताप सन्ताप रहित अर्थात् क्रोधका अभाव धृतिः भूत प्रेत काम क्रोध लोभादियों के आवेश से रहित होना ज्ञानं आत्माका ज्ञान निर्दम्भता कपटका न होना निन्दासे रहितकाम अस्पृहं इच्छासे रहित होना ॥ (क) ॥

रजोगुणयुक्तमनसो लक्षणं।

क्रोधस्ताडनशीलता च बहुलं दुःखं सुखेच्छाधिका
दम्भः कामुकताऽप्यलीकवचनं चाधीरताहङ्कृतिः ।
ऐश्वर्य्यादभिमानितातिशयितानन्दोऽधिकश्चाटनं
प्रख्याता हि रजोगुणेन सहितस्यैते गुणाश्चेतसः ॥ ६॥

(ख) अलीकवचनं मिथ्याकथनं अटनं पृथ्वी परिभ्रमणम् (ख)

भा० रजोगुण से युक्तहुवे मन का लक्षण ॥ क्रोध मारपीट करने का स्वभाव बहुत दुःख सुखकी अधिक इच्छा दम्भ स्त्री भोग करने की इच्छा झूठ बोलना धीरज न धरना (अहंकार) ऐश्वर्य्य से बहुत अभिमान होना और बहुत आनंद होना तथा घूमना रजोगुणवाले मन के यह लक्षण कहे गये हैं ॥ ६॥ अलीकवचनं मिथ्याभाषणकरना अटनं पृथ्वीपर घूमना। ॥ (ख) ॥

अथ तमोयुक्त मनसो लक्ष॰

नास्तिक्यं सुविषण्णतातिशयितालस्यं च दुष्टा मतिः
प्रीतिर्निन्दितकर्म शर्मणि सदा निद्रालुताऽहर्निशम्।
अज्ञानं किल सर्वतोऽपि सततं क्रोधान्धता मूढता
प्रख्याता हि तमोगुणेन सहितस्यैते गुणाश्चेतसः॥७॥
तत्र प्रभूतसत्त्वस्तु सात्त्विकः पुरुषः स्मृतः। राज
सस्तामसश्चैव त्रिविधस्तेन मानवः॥८॥ ततो
ऽभवन्महत्तत्त्वं बुद्धितत्त्वापराभिधम्॥

भा॰ अनन्तर तमसे युक्त ऊवे मनका लक्षण॥ नास्तिकता अत्यन्त विषण्णता बहुत आलस्य और दुष्टमति बुरे कामोंमे प्रीति और आराम में प्रीति सर्वदा रात्रि दिवस निद्रालुता और चारों तरफ़से निरंतर अज्ञान तथा क्रोधके मारे अन्धा होना और मूर्खता तमो गुण से युक्त ऊवे मनके यह गुण कहे गये हैं॥७॥ उसमें बहुत सत्ववाला सात्त्विक पुरुष कहलाता है उसी तरह से रजोगुण अधिकवाला राजस तमोगुण अधिकवाला तामस इस प्रकार तीन तरह के मनुष्य कहे गये हैं॥८॥
उस के अनंतर दूसरे बुद्धि तत्त्व नामवाला॥ तीनों गुणों से युक्त सत्वाधिक स्फटिक समान महत्तत्व उत्पन्न ऊवा॥९॥

त्रिगुणं सत्त्वबहुलं निर्मलं स्फटिकोपमम्॥९॥
चिच्छाया प्राप्तचैतन्यं तदिच्छामयमीरितम्॥

ततः प्रकृतेस्त्रिगुणं त्रयोगुणा यत्र तत् तत्र सत्त्वबहुलं अत्रायमभिप्रायः। (क)॥ यथा निश्चले ह्रदादौ बहुद्रव्यपातात्तदीयं जलं वर्द्धते तथा चिद्रूपपुरुषेणाक्रमणं तुल्यगुणत्रयात्मिकायाः प्रकृतेर्ज्ञानहेतुः प्रकाशः सत्त्वगुणोद्रक्तः प्रवृद्धः सत्त्वतः प्रकृतेः सत्त्वबहुलं बुद्धितत्त्व

मभवत् ॥ (ख) ॥ महतस्त्रिगुणाज्जातो ऽहङ्कारस्त्रिगुणान्वितः ॥ सात्त्विको राजसश्चापि तामसश्चेति स त्रिधा ॥ १० ॥

भा० चित्त छाया से प्राप्तहुवा चैतन्य उसकी इच्छावाला कहा गया ॥ उसके अनंतर प्रकृति के त्रिगुण तीनहैं गुण जिसमें वह त्रिगुण इस्से यहांपर यह अभिप्रायहै कि । (क) । वह सत्त्वाधिक है । जैसे निम्नलजलाशय के बीच मे बहुतसी वस्तु गेरने से उसका पानी बढ़ताहै उसी प्रकार चिद्रूप पुरुष से घिरीहुई बराबर गुणवाली प्रकृति के ज्ञानका कारण प्रकाशरूप सत्वगुण बढ़ा । प्रकृति के सत्वगुण से बहुत बढ़ाहुवा सत्वाधिक बुद्धि तत्व हुवा ॥ (ख) ॥

महत्तत्त्व के त्रिगुण से त्रिगुणयुक्त अहंकार उत्पन्न हुवा । वह अहंकार सात्त्विक राजस तामस इस तरह से तीन प्रकार का हुवा ॥ १० ॥

महतः बुद्धितत्वात् त्रिगुणात् त्रयोगुणाः यत्र ततः ननुमहत्तत्त्वं त्रिगुणमुक्तमेव किमर्थं महतस्त्रिगुणादिति विशेषणं सत्यम् । (क) ॥ त्रिगुणादिति पुन विशेषणादुक्तं सत्त्वबहुलमिति विशेषणमत्र नानुवर्त्तते तेनाहङ्कारोत्पादकं महत्तत्त्वं त्रिगुणमपि रजोबहुलं बोद्धव्यम् (ख)

भा० त्रिगुणवाली महत् बुद्धितत्त्व से तीन गुण हैं जिसमें वह त्रिगुण । यहां पर शंका करतेहैं कि महत्तत्त्व तीनगुणवाला कहाही गया था तव महत. त्रिगुणात्, यह विशेषण फिरसे किसवास्ते दिया । सच है (क)

त्रिगुणात् यह फिरसे विशेषण देने से सत्त्वाधिक मालूम होताहै परन्तु यहांपर विशेषण पीछे नहीं जाता तिस्से अहंकार का उत्पन्नकरने वाला महत्तत्व तीनगुणवाला भी रजोगुण अधिक जानना चाहिये ॥ (ख) ॥

अहङ्कारस्य रजोगुणान्वितस्य मनोधर्म्मत्वात् (ग)

अहंकारोऽभिमानव्यापार लक्षणमाह.

अहङ्कार स्त्रिविधस्तानाह सात्त्विक इत्यादि ।

तस्य त्रिविधस्य कार्य्यमाह।

जातानि सात्त्विकात्तस्मादिन्द्रियाणि स राजसात् ।

तानि श्रोत्रं त्वचो नेत्रं रसना नासिका तथा ॥ ११॥

वाग्घंस्त चरणोपस्थं गुदान्ये कादशो मनः ॥ पञ्च

बुद्धीन्द्रियाण्याहुः प्राक्तनानीतराणि च ॥ १२ ॥

कर्मेन्द्रियाणि पञ्चैव कथयन्ति विपश्चितः ॥

भा० रजोगुण के युक्त अहङ्कार का मनोधर्म होनेसे । (ग) ॥ अहंकार अभिमान व्यापार वाला उसका लक्षण कहेहैं ॥ अहंकार तीन प्रकार का है उनको कहते हैं । सात्त्विक राजस तामस । उन तीन अहङ्कारों के काम कहते हैं । उस राजस के साहित सात्त्विक अहङ्कार से इन्द्रियां उत्पन्न हुई । वह कान त्वचा आंख जीभ नाक ॥ ११ ॥ वाणी हाथ पैर शिश्न गुदा ये दस और ग्यारहवां मन । पण्डित लोग पहिली पांच को बुद्धिन्द्रिय कहते हैं॥और दूसरी पांच को कर्म्मेन्द्रिय कहतेहैं ॥ १२ ॥

बुद्धीन्द्रियाणि बुद्धेराश्रयत्वात् कर्म्मेन्द्रियाणि क कर्म्माश्रयत्वात् सात्त्विकाहङ्कराज्जातत्वादिन्द्रियाणि प्रकाश लक्षणानि सत्त्वस्य प्रकाशकत्वात् ॥ (क) ॥

मनो बुद्धीन्द्रियं विज्ञैः कर्मेन्द्रिय मपि स्मृतम् ॥

मनोऽधिष्ठितमेवेद मिन्द्रियं यत् प्रवर्त्तते ॥ १४ ॥

भा० बुद्धीद्रिय अर्थात् ज्ञानेन्द्रिय बुद्धीके आश्रय होनेसे और कर्मेन्द्रिय कर्म्मो के आश्रय होनेसे सात्त्विक अहंकार के उत्पन्न होने से इन्द्रियप्रकाश

लक्षण वाली हैं क्यों कि सत्वगुण का प्रकाश धर्म्म होने से ॥ (क) ॥ बुद्धिवान् लोग मन और बुद्धीन्द्रिय को कर्म्मेन्द्रिय भी कहते हैं ॥ यह इन्द्रियां मनके मिलनेही से अपने अपने कर्म्मों में प्रवृत्त होती हैं ॥

[तत्र इन्द्रियाणां विषयानाह]

शब्दः स्पर्शश्च रूपञ्च रसो गन्धोह्यनुक्रमात् ॥
बुद्धीन्द्रियाणां विषयाः समाख्याता महर्षिभिः॥२५॥
वाच्यं ग्राह्यञ्च गन्तव्य मानन्दं त्याज्यमेव च ॥
कर्म्मेन्द्रियाणां विषया ज्ञातव्याः विषयो हृदः॥२६॥
तामसादप्यहङ्कार स्तन्मात्राणि सराजसात्। (हृदःमनसः॥ (ख)॥ यच्चाल्पसत्वसम्बन्धात् तल्लिङ्गानि भवन्ति हि॥ शब्द तन्मात्रकं स्पर्शतन्मात्रं रूपमात्रकम्॥ २७॥

भा० अब उक्तें इन्द्रियों के विषय कहते हैं ॥ शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध यह अनुक्रम से अर्थात् एकके पीछे एक इस क्रमसे बुद्धीन्द्रियों के विषय अर्थात् आकाश का शब्द वायु का स्पर्श अग्निका रूप जलका रस पृथ्वीका गन्ध इस क्रम से महर्षियों ने कहेहैं ॥ बोलना लेना चलना आनंद और छोड़ना यह कर्म्मेन्द्रिय के अर्थात् वाणी का बोलना हात का लेना पैर का चलना शिश्न का आनन्द और गुदा का मलत्याग इस क्रमसे ये कर्म्मेन्द्रियों के विषय जानने चाहियें और मनके विषय भी जानने चाहियें॥ राजस के साथ तामस अहंकार से भी और थोड़ेसे सत्व संबंधसे उसी लक्षण वाली पांच तन्मात्रा उत्पन्नहुईं ॥ वह शब्द तन्मात्रा के स्पर्श तन्मात्रक रूप तन्मात्रक रस तन्मात्रक गन्ध तन्मात्रक ये उत्पन्नहुईं ॥ २७ ॥

रस तन्मात्रकं गन्ध तन्मात्रमिति तानि तु ॥

तल्लिङ्गानि मोहादि लिङ्गानि तान्यद्भुतस्वभावानि बाह्ये न्द्रिय ग्राह्याणि मा सा मात्रा यस्मिन् तत्तन्मात्रकम् (क)

तन्मात्रेभ्यो वियद्वायुवन्हि वारि वसुन्धरा ॥ ए
तानि पञ्च जायन्ते महाभूतानि तत्क्रमात् ॥ १०॥

एकोत्तर परिवृद्ध्या वियदादयो जायन्त इत्यर्थः। (ख) तद्यथा। शब्दतन्मात्राच्छब्द गुणं वियज्जायते; शब्द तन्मात्र सहितात् स्पर्शतन्मात्राच्छब्द स्पर्शगुणो वायुर्जायते। (घ) ॥

भा० तल्लिङ्गानि अर्थात् मोहादि लक्षणवाली वोह अद्भुत स्वभाववाली और बाह्येन्द्रियों से अर्थात् कान नाक इत्यादिकों से गृहण करने योग्य शब्दादिक तन्मात्राही हैं वोह योगियों से ही गृहण की जाती हैं वोह जो मात्रा है जिस्मे वह तन्मात्रक हैं। (क) ॥ तन्मात्राओं से आकाश वायु अग्नि जल पृथ्वी ये पञ्च महाभूत क्रमसे अर्थात् शब्द से आकाश, स्पर्श से वायु, रूप से अग्नि, रस से जल, गन्ध से पृथ्वी, इसतरह उत्पन्नहुवे ॥ १० ॥
एक एक के उत्तर उत्तर बढ़नेसे आकाशादिक उत्पन्नहुवे। (ख) ॥
(ग) वह जैसे। शब्द तन्मात्रा से शब्दगुणवाला आकाश उत्पन्न हुवा। और शब्द तन्मात्रा के सहित स्पर्श तन्मात्रासे शब्दस्पर्श गुणवाला वायु उत्पन्न हुवा ॥ (घ) ॥

शब्दतन्मात्र स्पर्शतन्मात्र सहितात्रूप तन्मात्राच्छब्द स्पर्श रूप गुणो वन्हिर्जायते। (ङ) ॥ शब्द तन्मात्र स्पर्शतन्मात्ररूप तन्मात्र सहिताद्रस तन्मात्राच्छब्द स्पर्शरूप रसगुणं वारि जायते। (च) शब्द तन्मात्र स्पर्श तन्मात्र रूपतन्मात्र रसतन्मात्र

भा० शब्द तन्मात्र स्पर्शतन्मात्र के सहित रूप तन्मात्रा से शब्द स्पर्श रूप गुणवाली आग उत्पन्नहुई ॥ (ङ) ॥ शब्दतन्मात्र स्पर्शतन्मात्र रूपतन्मात्र सहित रस तन्मात्रा से शब्द स्पर्श रूप रस गुणवाला जल उत्पन्नहुवा (च)

सहितागंध तन्मात्राच्छब्द स्पर्श रूप रस गन्ध गुणा वसुन्धरा जायते । (छ) ॥

[अथ महाभूतानां गुणानाह]

शब्दः श्रोत्रेन्द्रियं चापि छिद्राणि च विविक्तता।
वियतः कथिता एते गुणागुण विचारिभिः ॥ १९॥
विविक्तताः शरीराणां भावानां शिरास्नाय्वस्थियेशी प्रभृतीनां जातिव्यक्तिभ्यां मिथः पृथक्त्वम् ॥ (क)

भा० शब्द तन्मात्र स्पर्शतन्मात्र रूपतन्मात्र रसतन्मात्र सहित गन्ध तन्मात्रा से शब्द स्पर्श रूप रस गन्धवाली पृथ्वी उत्पन्नहुई ॥ (छ) ॥ अनन्तर भूतों के गुण कहते हैं] शब्द श्रोत्रेन्द्रिय छिद्र अर्थात् छेक और विविक्तता अर्थात् असंयुक्तता ये आकाश के गुणों के विचार करने वालों ने गुण कहे हैं ॥ १९॥ विविक्तता अर्थात् शरीरोंके भाव (शिरा) छोटी नसें, (स्नायु) मोटी नसें, हड्डी मांस की थैली इत्यादिकों की जाति और व्यक्तियों से दोनों का अलगपन। (क) ॥

स्पर्शस्त्वगिन्द्रियञ्चापि लघुता स्पन्दनन्तनोः ॥
चेष्टाः सर्वशरीरस्य वायोरेते गुणाः स्मृताः॥ २०॥
रूपं नेत्रेन्द्रियं पाकः सन्तापस्तीक्ष्णता तथा ।
वर्णो भ्राजिष्णुताऽमर्षः शौर्यं वन्हे गुणा अमी ॥२१
रूपं लावण्यम् (ख) । पाकः उदराग्निनाहार पाकः

सन्ताप: औष्ण्यम् । (ग) ॥ तीक्ष्णता आशुकारित्ता वर्णो गौरादिः। (घ) ॥ भ्राजिष्णुता दीप्तिः अमर्षः क्रोधः(ङ)

रसो रसेन्द्रियं शैत्यं स्नेहश्च गुरुता तथा ॥ सर्व्वं द्रव समूहश्च शुक्लं वारि गुणाः स्मृताः ॥ २२ ॥

भा० स्पर्श और त्वगेन्द्रिय भी तथा हलकापन शरीर का हिलना और सब शरीर की चेष्टा ये वायु के गुण कहे गये ॥ २० ॥ रूप और चक्षुरिन्द्रिय पाक संन्ताप तीक्ष्णता वर्ण कान्ति क्रोध शूरता ये अग्नि के गुण कहे गये हैं ॥ २१ ॥ रूप सुन्दरता (ख) ॥ पाक जठराग्नि से आहार का परिपाक संताप (ग) ॥ गरमी तीक्ष्णता तेज़ी वर्ण गोरा रंग इत्यादि (घ) ॥ भ्राजिष्णुता दीप्ति अमर्षः गुस्सा । (ङ) ॥ रस और रसनेन्द्रिय ठंडापन तैलादिकों का चिकनापन भारीपन सब बहजानेवाली वस्तु का समूह और धान ये सब पानी के गुण हैं ॥ २२ ॥

गन्धो घ्राणेन्द्रियं चापि काठिन्यं गौरवं तथा ॥ वसुन्धरा गुणा एते गदिता गुण वेदिभिः ॥ २३ ॥ शब्दः स्पर्शश्च रूपञ्च रसो गन्धश्च तत् क्रमात् ॥ तन्मात्राणां विशेषाः स्युः स्थूलभाव मुपागताः ॥ २४ ॥

भा० गन्ध और नासिकेन्द्रिय भी तथा कठिनता भारीपन ये गुण पृथ्वी के गुण के जानने वालों ने कहेहैं ॥ २३ ॥ शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध ये क्रम से स्थूल भावको प्राप्तहुवे तन्मात्रों के विशेषण हैं ॥ २४ ॥

तत् क्रमात् शब्द तन्मात्रादि क्रमात् विशेषाः अनुभव योग्यैः सुख दुःख मोह रूपैर्धर्मै विशेष्यन्त इति विशेषाः अत्र कर्म्मणि घञ प्रत्ययः तन्मात्राणि त्वविशेषाणि य स्तान्यनुभवयोग्यैः सुखादिभि विशेष्टुं न शक्यन्ते सूक्ष्मत्वात् ॥ (च) ॥

प्रकृतेः कारणायोगान्मता प्रकृतिरेव सा ॥ मह
त्तत्वादयः सप्त प्रोक्ते विकृतयः स्मृताः ॥ २५ ॥
प्रकृतिरेव कारणमेव नतु कस्यचित् कार्य्यमितर्थः का
र्य्याणि इन्द्रियाणां सर्व्वभूतानां कारणत्वान्महर्षिभि
र्महत्तत्वादयः सप्त महानहङ्कारः पञ्च तन्मात्राणीति
॥ (क) ॥ प्रोक्ते: प्रकृते विकृतयः कार्य्याणि । (ख)

भा० तत्क्रमात् अर्थात् शब्द तन्मात्रादि क्रमसे विशेषाः अनुभव योग्य सुख दुःख रूप धर्म्मोंसे प्रभेद कियेगये वह विशेष कहलाते हैं । यहांपर कर्ममें घञ प्रत्यय है । तन्मात्रा तो अविशेषहैं क्योंकि उन को अनुभव योग्य सुखादिकों से अलग नहीं कर सके क्योंकि सूक्ष्म होने से । (च) ॥

प्रकृति का कारण योग न होने से वही प्रकृति कारण कही गई है और महत्तत्वादिक सात प्रकृति के विकार कहे गये हैं ॥ २५ ॥ प्रकृति ही कारणही अर्थात् किसीका कार्य्य नहीं और कार्य्य सब भूतों के अर्थात् प्राणिमात्रों के और इन्द्रियों के कारण होने से महर्षियों ने महान् अहंकार और पञ्च तन्मात्रा इस प्रकार । (क) ॥ महत्तत्वादि सात प्रोक्ते के अर्थात् प्रकृति के विकार कार्य्य कहेहैं ॥ (ख) ॥

इन्द्रियाणां च भूतानां कारणत्वान्महर्षिभिः ॥
महत्तत्वादयः सप्त प्रोक्ता प्रकृतयोऽपि च ॥ २६ ॥
तथा सति प्रकृति र्महानहङ्कारः पञ्च तन्मात्राणीत्ये
त्यष्टौ प्रकृतयः ॥ (ग) ॥

भा० महर्षियों ने इन्द्रिय और भूतों के कारण होने से महत्तत्वादि सातों को प्रकृति कहाहै ॥ २६ ॥ इसवास्ते प्रकृति महान् अहंकार और पञ्च तन्मात्रा इस प्रकार आठ प्रकृतियाँ हैं ॥ (ग) ॥

दशेन्द्रियाणि चित्तञ्च महाभूतानि पञ्च च ॥ एता
नि सृष्टिं जानद्भिर्विकाराः षोडश स्मृताः ॥ २७॥
[विकाराः कार्य्याणि।]
एवं चतुर्विंशतिभिस्तत्वे सिद्धे वपुर्गृहे ॥ जीवा
त्मा नियतेर्निघ्नोवसति स्वान्तदूतवान् ॥ २८ ॥
अत्र शब्दादीनां वियदादि महाभूतगुणानां धर्म्मिभ्यो
ऽभिन्नतया पृथकत्वं निरस्यन्नुक्तानाम् तत्वानामुप
संहारमाह । (क) ॥

भा० दशइन्द्रियां पांच महाभूत और चित्त इनको सृष्टि के जानने
वालोंने सोलह विकार ऐसा कहा है ॥ २७ ॥ सोलह विकार औ
र आठ कार्य्य इस प्रकार चौवीसों से सिद्ध हुवे तत्व ऐसे शरीर रूपी घर
में जीवात्मा शुभाशुभ कर्म्मों के स्वाधीन मनदूत के साथ रहता है ॥ २८ ॥
यहांपर आकाशादि महाभूतों के गुण शब्दादिकों का धर्म्म से अर्थात् आ
काशादिकों से भिन्नता करके अलग निकाल कर कहे हुवे तत्वों का उपसं
हार कहते हैं ॥ (क) ॥

चतुर्विंशतिभिरिति तानि च प्रकृतयोऽष्टौ विका
राः षोडशेति । महत्त्वत्तनि प्रकृत्यादीनां भावाः
नियतेः शुभाशुभ कर्म्मणः । (ख) ॥ निघ्नः
आयत्तः स्वान्तदूतवान् मनोदूतयुक्तः सदेही क
थ्यते पाप पुण्य दुःख सुखादिभिः व्याप्तो बद्धश्च
मनसा कृत्रिमैः कर्म्मबन्धनैः स जीवात्मा तस्य देहिनः
शरीरजीवात्मनोः संयोगकारकेण मनसा संयोगे ये
ये गुणा उत्पद्यन्ते । (ग) ॥

भा० चौदह प्रकृतियां आठ और सोलह विकार इस प्रकार चौबीस तत्त्व हैं ॥ आत्मा और प्रकृत्यादियों के धर्म्म शुभाशुभ कर्मों के स्वाधीन मनो दूत के युक्त वह देही कहाता है । पाप पुण्य सुख दुःखादिकों से घिरा हुवा मन और कर्म बन्धनों से बन्धा वह जीवात्मा कहाता है उस देही के अर्थात् शरीर जीवात्मा का संयोग कराने वाले मन के संयोग में जो जो गुण उत्पन्न होते हैं ॥ (ग) उनको कहते हैं । इच्छा द्वेष दुःख सुख विषय का ज्ञान मन का प्रयत्न और संकल्प विचारणा स्मृति बुद्धि कला विद्या का जानना ॥ (घ) ॥

[तानाह] इच्छा द्वेष दुःख सुखानि विषय ज्ञानं प्रयत्नो मनः सङ्कल्पश्च विचारणा स्मृति स्थो बुद्धिः कलाविज्ञता । (घ) ॥ प्राणस्योपरि यापनं गुद वर्त्म वायो रध : प्रेरणम् ॥ नेत्रोन्मेष निमेष कृत्यकरणोत्साहाश्च जीवे गुणाः ॥ २९ ॥

इच्छा सुखहेतु रभिलाषः द्वेषो दुःखहेतुर्मनः प्रवृत्तिः । (क) ॥ सुखं प्रीतिः दुःखमप्रीतिः विषय ज्ञानं शब्दादि ज्ञानम् प्रयत्नः कार्य्ये तात्पर्य्यं मनः संशयात्मकं तस्य कर्म्म संकल्पः । (ख) ॥ विचारणा ऊहापोहाभ्यां वस्तुविमर्शः । (ग) ॥

भा० प्राण का ऊपर की तरफ निकालना और गुदा के मार्ग के वायु का नीचे निकालना नेत्र का निमेष और उन्मेष अर्थात् आंख का खुलना मिचना और काम करने का उत्साह ये जीव के गुण हैं ॥ २९ ॥

इच्छा सुख के अर्थ अभिलाषा द्वेष दुःख के हेतु मन की प्रवृत्ति । (क) ॥ सुख प्रीति अर्थात् आनंद दुःख प्रीति का न होना विषयज्ञान शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध इनका ज्ञान प्रयत्न कार्य में तात्पर्य्य मनः संशयात्मक अर्थात् है या नहीं इस प्रकार के संशय वाला उसका कर्म्म सङ्कल्प । (ख) ॥

विचारणा तर्क वितर्क द्वारा वस्तुका निश्चय करना ॥ (ग) ॥

स्मृतिः पूर्व्वानुभूतस्यार्थस्य स्मरणम् ॥ (घ) ॥ बुद्धिः निश्चयात्मिका कलाविज्ञता शिल्प शास्त्रादिबोधः प्राणस्य हृदय स्थितस्य वायोः उपरियापनम्। (ङ) ॥ मुखादिप्रति नयनम् गुदवसा द्वायोरधः प्रेरण मपानस्याधः प्रेरणं नेत्रोन्मेष निमेषौ नेत्रयोरुन्मीलननिमीलने कृत्य करणोत्साहः कार्यारम्भे सामर्थ्ये नोत्साहः। (च) ॥ जीवे मनो युक्तस्य जीवात्मनोऽमी इच्छादयो गुणाः॥ (छ)

इति श्री मिश्र लटकन तनय श्रीमन्मिश्र भाव विरचिते भावप्रकाशे सृष्टि प्रकरणं प्रथमं समाप्तम् ॥१॥

भा० स्मृतिः पहिल अनुभव किये हुवे वस्तुका स्मरण। (घ) ॥ बुद्धिनिश्चयात्मिका अर्थात् निश्चयरूप कला विज्ञता शिल्प शास्त्र का जानना प्राणका हृदय में रहनेवाली वायू का ऊपरकी तरफ निकालना ॥ (ङ) ॥ अर्थात् मुख नासिकादि में लेजाना। गुदा के मार्ग से वायु का नीचे निकालना अर्थात् अपानवायु का नीचे निकालना ॥ नेत्रका निमेष और उनिमेष अर्थात् आँखका खोलना ढकना काम के करने में उत्साह काम के प्रारम्भ में सामर्थ्य द्वारा उत्साह। (च) ॥

इति श्री मिश्र लटकनके पुत्र श्री भाव मिश्र का निर्मित भाव प्रकाश ग्रन्थ में पहिला सृष्टि प्रकरण समाप्त हुवा ॥ १॥

चिकित्सायां शरीरी ह्यधिकृतः स शरीरी यथोत्पद्यते न द्योधयितुं गर्भोत्पत्ति क्रममाह ॥ (क) ॥

गर्भोत्पत्ति भूमिस्तु रजस्वला स्त्री। (ख) ॥
[ततोरजस्वला स्वरूपमाह]
द्वादशाद्वत्सरादूर्द्धं मापञ्चाशत्समाः स्त्रियः ॥
मासि मासि भगद्वारा प्रकृत्यैवार्त्तवं स्रवेत्॥१॥
आर्त्तवस्राव दिवसादृतुः षोडशरात्रयः॥ गर्भग्रह
णे योग्यस्तु स एव समयः स्मृतः॥२॥

भा० चिकित्सा में अर्थात् रोगके प्रतीकार में देही मुख्य किया गया है इस वास्ते वह देही जिस प्रकार उत्पन्न होता है उसको जानने के वास्ते गर्भ की उत्पत्ति का क्रम कहते हैं ॥ (क) ॥ गर्भ के उत्पत्ति की भूमि रजस्वला स्त्री हैं ॥ (ख) ॥ तिस्से रजस्वला का लक्षण कहते हैं ॥ बारह बरस के ऊपर से पचास बरसतक औरतें महीने २ स्वभाव से ही योनि द्वारा आर्तवको निकालती हैं अर्थात् कपड़े से बैठती हैं ॥१॥ कपड़े से बैठे हुवे दिनसे सोलह दिन ऋतु कहलाता है और वही समय गर्भ धारण करने योग्य कहा गया है ॥२॥

सर्व्वासामेव चतुःवर्ण स्त्रीणां सर्ववादि सम्मतः (क)।
पूर्व्वोक्तः समयः, ग्रन्थान्तरेतु विशेषः ॥ (ख) ॥
तद्यथा। (ग) ॥ स्नान दिवसादूर्द्ध द्वादशरात्रावधि
ब्राह्मण्याः दशरात्रावधि क्षत्रियायाः। (घ)
अष्टरात्रावधि वैश्यायाः षड्रात्रावधि शूद्रायाः गर्भधा
रणे शक्तिः॥ (ङ) ॥

भा० चारों वर्णों की सब स्त्रियों का यही ऋतुकाल सब वादियों के संमत है ॥ (क) ॥ पूर्वोक्त समय और ग्रन्थों में कुछ विशेष कहा है ॥ (ख) ॥ वह जैसे ॥(ग)॥ स्नानके दिनके ऊपर बारह दिन तक ब्राह्मणी का दस दिन तक क्षत्रिया की ॥(घ)॥ आठ दिन तक

[अथ रजस्वलाया नियमानाह]

आर्त्ते वस्रावदिवसादहिंसा ब्रह्मचारिणी ॥ शयीत दर्भे शय्यायां पश्येदपि पतिन्न च ॥ ३॥ करे शरावे पर्णे वा हविष्यं त्र्यहमाहरेत् ॥ अश्रुपातं न खच्छेद मभ्यङ्गमनुलेपनम् ॥ ४॥ नेत्रयो रञ्जनं स्नानं दिवास्वापं प्रधावनम् ॥ अत्युच्च शब्द श्रवणं हसनं बहु भाषणम् ॥ ५॥ आयासं भूमि खननं प्रवातञ्च विवर्ज्जयेत् ॥

भा० वैश्या का और छः दिनतक शूद्राका गर्भ धारण करने में सामर्थ्य होता है ॥ (ङ०) ॥ अनन्तर रजस्वला के नियम कहते हैं ॥ ॥ आर्त्तव स्राव अर्थात् कपड़े से होय उस दिनसे हिंसा न करे और ब्रह्मचर्य्य रक्खे तथा कुशा के विस्तरे पर सोवे और पति को भी न देखे ॥ ३॥ हाथ पर या सकोरे में या पत्तेपर हविष्यान्न को भोजन करें ॥ और आँसू का गिराना नाखून काटना तेल लगाना चन्दनादि सुगंध द्रव्य लगाना ॥ ४ ॥ आँखों में सुरमा लगाना न्हाना दिनमें सोना बहुत दौड़ना ऊंचे शब्द को सुनना हंसना बहुत बोलना ॥ ५॥ श्रम करना ज़मीन खोदना और बहुत हवा का सेवन इन को रजस्वला छोड़ देवे ॥

[एतस्या नियमकरणे दोषानाह]

अज्ञानाद्वाप्रमादाद्वा लोभाद्वा दैवतश्च वा ॥
सा चेत कुर्य्यान्निषिद्धानि गर्भो दोषांस्तदाप्नुयात् ॥ ६॥
एतस्या रोदनाद्गर्भो भवेद्विकृत लोचनः ॥ नखच्छेदेन कुनखी कुष्ठी त्वभ्यङ्गतो भवेत् ॥ ७॥ अनुलेपात्तथा स्नानात् दुःखशीलोऽञ्जनादन्धः ॥

भा० इन के नकरने में दोष कहते हैं ॥ वे समझी से या पागलपन से या लोभ से या दैव योग से वोह रजस्वला निषेध किये हुवे को करेतो गर्भ दोषकोप्राप्त होगा ॥ ६ ॥ इस के रोने से विकार युक्त नेत्र वाला गर्भ होगा नाखून के काटने से कुनखी और अभ्यंग से कुष्ठी होगा ॥ ७ ॥ अनुलेप और स्नान से सदा दुखी तथा आंख में आंजने से और दिनमें सोने से सदा सोने वाला होगा ॥

स्वापशीलो दिवास्वापाच्चञ्चलः स्यात् प्रधावनात् ॥ ८ ॥
अत्युच्च शब्द श्रवणाद्बधिरः खलु जायते ॥ तालु
दन्तौष्ठ जिव्हासु श्यावो हसन तो भवेत् ॥ ९ ॥ प्र
लापी भूरिकथनादुन्मत्तस्तु परिश्रमात् ॥ स्खलते
भूमि खननादुन्मत्तो वात सेवनात् ॥ १० ॥

भा० दौड़ने से चंचल होगा ॥ ८ ॥ बहुत ऊंचे शब्दके सुनने से बहिरा होगा तालुदांत ओठ जीभ में स्याही हसने से होगी ॥ ९ ॥ बहुत बोलने से बकवादी और बहुत श्रमसे उन्मत्त उत्पन्न होता है ॥ भूमि के खोदने से गिरता है और वायुके सेवन से उन्मत्त होता है ॥ १० ॥

[अथ रजस्वला कृत्यम्]

पूर्व्वं पश्येद्दतुस्नाता याद्दशं नरमङ्गना ॥ ताद्दशं
जनयेत् पुत्रं ततः पश्येत्पतिं प्रियम् ॥ ११ ॥
प्रिय मिति भर्त्तर्य्यनासन्ने पुत्रादिकमपि पश्येत् चतुर्थे
दिवसेऽपि रजोनिवृत्तौ स्त्री पतिना सङ्गच्छेत् नतु रजोऽनु
वृत्तौ ॥ (क) ॥ यत आह।

भा० अनन्तर रजस्वला का कृत्य अर्थात् जो करना चाहिये ॥ चौथे दिन न्हाइहुई औरत जिस प्रकार के पुरुष को देखेगी उस प्रकार के पुत्र को उत्पन्न करेगी इसवास्ते पति को देखे अथवा पति पास नहो तो पुत्रादिकों को देखे ॥ ११ ॥

चौथे दिन में भी रज निवृत्त होगयाहो तो अर्थात् स्त्रियों का मासिक धर्म बन्द होगया हो तो स्त्री पतिके साथ संभोग करें। और रजके निकलनेमें न करें ॥ (क) ॥ जिस्से कि कहते हैं ॥

प्रवहत्सलिले क्षिप्तं द्रव्यं गच्छत्यधो यथा ॥ तथा वहति रक्तेतु क्षिप्तं वीर्य्यमधो व्रजेत् ॥ १२॥

[अथ भर्तृकृत्यम्]

तत्र गर्भाधाने निषिद्धं विहितं च कालं तयोः। (क) फलञ्चाह । आयुःक्षयभयाद्भर्त्ता प्रथमे दिवसे स्त्रियम् ॥ द्वितीयेऽपि दिने रत्यै त्यजेद्दतुमतीं तथा ॥ १३॥ तत्र यश्चाहितो गर्भो जायमानो न जीवति ॥ आहितो यस्तृतीयेऽन्हि स्वल्पायु र्विकलाङ्गकः ॥ १४॥ अत श्चतुर्थी षष्ठी स्यादष्टमी दशमी तथा ।द्वादशी वापि या रात्रि स्तस्यान्तां विधिना भजेत् ।१५।

भा० वेग से वहते हुवे पानी में डाली हुई वस्तु जैसे नीचे जाती है वैसे बहते हुवे रक्त में डाला हुवा वीर्य्य नीचे जावेगा ॥ १२॥ ॥ अनन्तर पतिका कृत्य ॥ उस गर्भाधान में जो निषिद्ध काल और विहित काल है। (क) उन दोनोंका फल कहते हैं ॥ आयुके क्षय होनेके भयसे पति पहिले दिन स्त्री के पास नजावे। वैसेही दूसरे भी दिन रतिके अर्थ रजस्वलाको छोड़ देवे अर्थात् रजस्वला के साथ दूसरे दिनभी भोग नकरें ॥ १३॥ उस में अर्थात पहिले दूसरे दिन में जो खराब हुवा गर्भ नहीं जीता । और जो तीसरे दिन किया हुवा वह थोड़ी आयुवाला शिथिल अंग उत्पन्न होताहै ॥ १४॥ इस्से चौथेदिन छठेदिन आठवेंदिन दशवेंदिन औरत के साथ भोग करें ॥ और वारवें दिन भी विधिके साथ भोग करें।१५॥

विधिना गर्भाधानोक्त विधिना । (क) ॥

अन्ये तरोत्तरं विद्यादायुरारोग्यमेव च ॥
[तत्त्वान्तरे।] प्रजासौभाग्य मैश्वर्य्यं बलञ्चाभिग
मात् फलम् ॥ १६॥ मनो भवागार मुखे ऽबलानां
तिस्रो भवन्ति प्रमदा जनानाम् ॥ समीरणा चन्द्र
मुखी च गौरी विशेष मासा मुप वर्णयामि ॥ १७॥
प्रधान भूता मदना तपत्रे समीरणा नाम विशेषना
डी ॥ तस्या मुखेयत् पतितं तु वीर्य्यं तन्निष्फलं स्या
दिति चन्द्र मौलिः ॥ १८ ॥

भा॰ विधिसे अर्थात् गर्भाधानोक्त विधिसे (क) इसमें उत्तरोत्तर अर्थात् चौथेसे छठेमेंछठे से आठवें इस क्रमसे आयु और आरोग्य की अधिकता होती है ॥ और तन्त्रमे। स्त्री संभोग से प्रजा सौभाग्य ऐश्वर्य और बल प्राप्त होता है ॥ स्त्रियों के कामदेव के मंदिर के मुखपर तीन नाड़ियां होती हैं पहिली समीरणा दूसरी चन्द्र मुखी तीसरीगौरी इनका विशेष लक्षण और वर्णन करता हूं ॥ १७ ॥ मदन के छत्रपर समीरणा नाम विशेष नाडी है उसके मुखपर गिराहुवा वीर्य्य निष्फल होता है। ऐसा चन्द्र मौलि कहते हैं ॥ १८॥ और जो दूसरी चान्द्रमसी नाड़ी है वोह कामदेव के घरमें प्रधान है और वोह स्त्री कन्याकोही उत्पन्न करती है तथा थोडे मैथुन के उत्सवमें साध्य होती है अर्थात् गर्भको धारण करती है। ॥१९॥ ॥१९॥ ॥१९॥ ॥ १९ ॥ ॥

या चापरा चान्द्रमसी च नाड़ी कन्दर्पगेहे भवति
प्रधाना ॥ सा सुन्दरी योषितमेव सूते साध्याभवे
दल्परतोत् सवेषु ॥ १९ ॥ गौरीति नाड़ी यदु प
स्थ गर्भे प्रधानभूता भवति स्वभावात् ॥ पुत्रम्

प्रसूते बहुधाङ्गना सा कष्टेप भोग्यां सुरतोपविष्टा ॥ २० ॥ [युग्मायुग्म रात्रीणां फलमाह]

युग्मासु पुत्रा जायंते स्त्रियोऽयुग्मासु रात्रिषु। तत्र दम्पत्योः सम्भोगे यादृक् पुमान्युक्तस्ता दृङ्मुच्यते (क)

स्नातश्चन्दन लिप्ताङ्गः सुगन्ध सुमनोऽर्चितः॥
भुक्तवृष्यः सुवसनः सुवेशः समलङ्कृतः॥ २१॥
ताम्बूल वदनस्तस्याः मनुरक्तोऽधिक स्मरः॥
पुत्रार्थी पुरुषो नारी मुपेयाच्छयने शुभे॥ २२॥

भा० तीसरी गौरी नाड़ी स्वभावसे पुरुष गर्भमें प्रधान भूत होती है। वोह स्त्री कष्टसे उपभोग योग्य मैथुनपर आरूढ़ हुई पुत्रही को उत्पन्न करती है ॥ २० ॥ ॥ युग्म और अयुग्म रात्रिका फल कहते हैं ॥
युग्म रात्रिमें अर्थात् चार छः आठ दश बारह इन दिनों में पुत्र उत्पन्न होते हैं। और अयुग्ममें अर्थात् पांच सात नौ ग्यारह इन दिनोंमें कन्या उत्पन्न होती है॥ उन स्त्री पुरुषके संभोग में जैसा पुरुष होना चाहिये सो कहना है। (क) ॥ स्नान किया हुवा शरीरमें चन्दन लगाया हुवा अच्छे सुगंधित पुष्पोंसे पूजन किया हुवा अच्छे दुग्धादि पदार्थों को भोजन किया हुवा अच्छा कपड़ा पहिने हुवा अच्छेलिबास से रहनेवाला और अच्छे आभूषणों को पहिरे हुवे ॥ २१ ॥ पान खाये हुवा उसमें अधिक प्रीति करता हुवा अधिक कामदेववाला पुत्रार्थी पुरुष अच्छे शयन पर स्त्री के पास जावे ॥ २२॥

[तत्राऽयोग्यां स्त्रियमाह]

अत्याशितोऽधृतिः क्षुद्वान् सव्यथाङ्गः पिपासितः॥ बालो वृद्धोऽन्यवेगार्त्तस्त्यजेद्रोगी च मैथुनम् ॥ २३॥ तत्र स्त्री यादृशी योग्या तादृश्युच्यते। (क)।
पुरुषस्य गुणैर्युक्ता विहिता न्यून भोजना॥ नारी

ऋतुमती पुंसा सङ्गच्छेत्तु सुतार्थिनी ॥ २४॥

[तत्राऽयोग्यां स्त्रियमाह]

रजस्वला व्याधिमती विशेषाद्योनिरोगिणी ॥
वयोऽधिका च निष्कामा मलिना गर्भिणी तथा ॥
॥ २५॥ एतासां सङ्गमात्पुंसां वैगुण्यानि भवन्ति हि ॥

तत्र रजस्वला दिनत्रयं यावद्दतौ निषिद्धा ॥ (क) ॥
यत उक्तम्। प्रथमेऽहनि चाण्डाली द्वितीये ब्रह्मघातिनी ॥ तृतीये रजकी पुंसां यथा वर्ज्या तथाङ्गना ॥ २६

भा॰ उसमें अयोग्य पुरुष कहते हैं ॥ बहुत भोजन किया हुवा धीरज न रखनेवाला भूखा शरीर मे पीड़ावाला प्यासा बालक बूढा और वेगोंसे अर्थात् मलमूत्र दि वेगों से पीडित और रोगी इतने मनुष्य- मैथुन को छोड देवें ॥ २४॥ उस्से जैसी स्त्री होनी चाहिये सो कहतेहैं ॥ पुरुष के गुणों से युक्त और विहित तथा अल्प भोजन करने वाली और पुत्रको चाहनेवाली ऋतुमती नारी पुरुष के साथ भोग करे ॥ २४ ॥ उसमें जैसी स्त्री त्यागनी चाहिये सो कहते है ॥ रजस्वला याने कपडों से बैठी हुई रोगवाली विशेष करके भगके रोगवाली बडी उमरवाली और कामदेव से रहित मैली गर्भिणी ॥ २५॥
इनके संग से पुरुष को विकार उत्पन्न होते हैं। उसमे रजस्वला तीन दिन जब तक कि ऋतुकाल में निषिद्ध है॥ (क) ॥ जैसे कहा है ॥ पहिले दिन चांडाली दूसरे दिन ब्रह्मघातिनी तीसरे दिन रजकी अर्थात् धोबिन जैसे पुरुषोंको ये न छूनी चाहिये वैसेही औरत भी न छूनी चाहिये ॥ ॥ २६ ॥

व्याधिमती च वर्ज्या तत्र स्त्रीणां व्याधयः प्रदरादय उक्ता निषिद्धा तत्रापि विशेषाद्योनिरोगिणी ॥ (ख)

[गर्भावतरणक्रममाह।]

कामान्मिथुनसंयोगे शुद्धशोणितशुक्रजः॥
गर्भः संजायते नार्य्याः स जातो बाल उच्यते॥२७॥

गर्भः शुद्धः अशुद्धस्तु गर्भोऽशुद्धः शुक्रः शोणितयोरपि दम्पत्योर्भवति यत आह। (ग)॥

दम्पत्योः कुष्ठबाहुल्या दुष्टशोणितशुक्रयोः॥
यदपत्यन्तयोर्जातं ज्ञेयं तदपि कुष्ठितमिति।२८॥

कुष्ठं संजातं यस्य तत् कुष्ठितम्, अत्र तारकादित्वादितच् प्रत्ययः। (घ)॥

भा० रोगवाली छोड़ देने योग्य है उसमें औरतों के रोग प्रदरादि कहे उनसे युक्त निषिद्ध है उसमें भी विशेष करके योनिरोग वाली निषिद्ध है॥ (ख)॥ गर्भ के उत्पन्न होनेका क्रम कहते हैं॥ ॥ काम से दोनों के संयोग में स्त्री के शुद्ध रक्त और शुक्र से उत्पन्न हुवा गर्भ होता है वह हुवा बालक होता है॥२७॥ गर्भ शुद्ध होता है और अशुद्ध तो स्त्री पुरुषों के अशुद्ध रक्त शुक्र से होता है। जैसे कि कहते हैं (ग) कुष्ठ रोग की अधिक्यता से बिगड़े हुवे रक्त शुक्रवाले उन स्त्री पुरुषों से जो सन्तान उत्पन्न हुई उस्को भी कोढ़ी जानना चाहिये॥ २८॥ कुष्ठ उत्पन्न हुवा है जिसको वह कुष्ठित है। यहांपर तारकादित्व से इतच् प्रत्यय हुवा है॥ (घ)॥

यत्तु, वातादिदुष्टरेतसः प्रजोत्पादने न समर्थाः (ङ) इति सुश्रुतः॥ तत्र शुद्धप्रजोत्पादने न समर्था इति बोद्धव्यम्। (च)॥ रोगादिना शुद्धांस्तु प्रजां वातादिदुष्टशुक्राः अपि जनयन्ति जन्मांध

बधिरपङ्गवादि सम्भवात् ॥ (छ) ॥

ऋतौ स्त्री पुंसयोर्योगे मकरध्वज वेगतः ॥ पुंसः सर्व्व शरीरस्थः रेतो द्रावयतेऽथ तत् । वायुर्मेहनमार्गेण पातयत्यङ्गनाभगे ॥ तत संस्रुत्य व्यात्तमुखं याति गर्भाश्रयं प्रति ॥ तत्र शुक्रवदायाति नार्त्तवेन युतं भवेत् ॥ ३०॥

भा० जो कि वातादि दोषों से दुष्ट हुवा शुक्र सन्तान उत्पन्न करने में नहीं समर्थ होता ऐसा सुश्रुत ने कहा है (ङ) ॥ वहाँ पर शुद्ध संतान उत्पन्न करने में नहीं समर्थ होता ऐसा जानना चाहिये ॥ (च) ॥ रोगादि कों से अशुद्ध और वातादि दोषों से दुष्ट शुक्रवाली भी संतान को उत्पन्न करती हैं क्यों कि जनम के अन्धे बहिरे लूले इत्यादि उत्पन्न होने से ॥ (छ) ॥

ऋतुकाल में स्त्री पुरुष के मिलने में कामदेव के वेग से लिंग और योनि के संघर्षण से उष्णवायु द्वारा ताड़ित ॥ २९ ॥ पुरुष के सब शरीर में रहने वाला शुक्र पिघलता है अनंतर वायु उसको लिंग के मार्ग से औरत की भग में डालता है ॥ उसको आश्रय करके खुले मुखवाले गर्भाशय याने बच्चेदानी में जाता है। वहाँ पर शुक्र के मानिंद आये हुवे आर्तव से याने हैज़ से मिल जाता है ॥ ३० ॥

[गर्भाशयस्य स्वरूपमाह]

शङ्खनाभ्याकृति योनि स्त्र्यावर्त्ता सा च कीर्त्तिता ॥ तस्यास्तृतीये त्वावर्त्ते गर्भशय्या प्रतिष्ठिता ॥ ३१॥ यथा रोहित मत्स्यस्य मुखं भवति रूपतः ॥ तत् संस्थानां तथारूपां गर्भशय्यां विदुर्बुधाः ॥ ३२॥

भा० गर्भाशय का लक्षण कहते हैं ॥ शंख के नाभ की आकार तीन आवर्तवाली योनि कही गई है उसके तीसरे आवर्त्त में गर्भ

शय्या स्थापन की गई है । ३१ ॥ जैसे आकारसे रोहू मछली का मुख होता है वैसेही आकाररूप गर्भशय्याका पंडित लोग जानते हैं ॥ ३२ ॥

अयमर्थः। गर्भशय्या मुखं रोहित मत्स्येव भवति यथा च रोहित मत्स्यस्य स्थितिर्जले भवति तथा पित्ताशय पक्वाशयमध्ये गर्भशय्यायाः स्थितिर्भवति रूपमपि तस्येव भवति यथा रोहितस्य मुखं स्वल्पमाशयस्तु महानित्यर्थः ॥ (क) ॥

शुक्रार्त्त वसमास्ले षो यदैव खलु जायते । जीवस्तदैव विशति युक्तः शुक्रार्त्त वान्तर : ॥ ३३ ॥

भा० यह अर्थहै, गर्भशय्या का मुख रोहू मछली ही के मानिंद होता है। और जैसे रोहू मछली का रहना पानीमें होता है वैसे पित्ताशय और पक्वाशय के बीच में गर्भ शय्या की स्थिति है और रूपभी उसीके मानिंद है जैसे रोहूका मुख थोडी जगह और यों बहुत बड़ाहै ॥ (क) ॥ वहीं शुक्र और आर्त्तवका संयोग होता है उसी समय में शुक्र और आर्त्तवके बीच रहनेवाला जीव उनसे मिलाहुवा प्रवेश करता है ॥ ३३ ॥

सूर्य्यांशोः सूर्य्यमणितोद्यु भयस्माद्युताद्यथा। वन्हिः सञ्जायते जीवस्तथा शुक्रार्त्त वाद्युतात् ॥ ॥ ३४ ॥ असमानादि रनन्तश्चाऽव्यक्तो वक्तुं न शक्यते ॥ चिदानन्देक रूपोऽयं मनसापि न गम्यते ॥ ३५ ॥ एवं भूतोऽपि जगतो भाविनी बलवत्तया। अविद्या स्वीकृते कर्म्मवशो गर्भं विशत्यसो ॥ ३६ ॥

भा० सूर्य के किरण और सूर्य्य कान्त मणि इन दोनों के मिलने से जैसे आग उत्पन्न होती है वैसे शुक्र और आर्त्तव के मिलने से जीव उत्पन्न होता है ॥ ३४॥ अनादि अनंत और अव्यक्त जिसको कह नहीं सके । तथा चिदानन्द ही है एक रूप जिसका ऐसा यह आत्मा मनसेभी नहीं जाना जाना ॥ ३५ ॥ इस प्रकार का हुवाभी जगतकी भावी की बलवत्ता से अविद्या के द्वारा स्वीकार किया गया और कर्म के वशहुवा यह आत्मा गर्भ में प्रवेश करता है ॥ ३६ ॥

[गर्भे चतुर्विंशति तत्त्वमयम्]

स एव वेत्ता रसनो द्रष्टा घ्राता स्पृशत्यसौ ॥ श्रो
ता वक्ता च कर्त्ता च गन्ता रन्तोत्सृजत्यपि ॥ ३७॥
दिने व्यतीते नियतं सङ्कु चत्यम्बुजं यथा ॥ ऋतौ
व्यतीते नार्य्यास्तु योनिः संव्रियते तथा ॥ ३८ ॥

भा० गर्भ में चौबीस तत्त्व मय । वही जाननेवाला और स्वाद का लेने वाला देखनेवाला सूंघनेवाला यह स्पर्श करताहै । तथा सुननेवाला बोलने वाला करनेवाला चलनेवाला रत्नकोछोड़ताहै ॥ ३७ ॥ दिनके व्यतीत होने में जैसे नियम के साथ कमल संकोच को प्राप्त होता है अर्थात् सिकुड़ जाता है वैसेही स्त्री की योनि ऋतुकाल के व्यतीत होनेमें सिकुड़ जाती है ॥ ३८ ॥

ऋतौ रजोदर्शनात् । षोडशनिशात्मके काले तौ
धर्मेतर पुरःसरौ । योनिरत्र धराद्वारम् । (क)॥
बीजेऽन्तर्वायुना भिन्ने द्वौ जीवौ कुक्षिमागतौ ॥
यमावित्यभिधीयेते धर्मेतर पुरःसरौ ॥ (३९)॥

भा० ऋतु में अर्थात् रजस्वला हुवे दिन से सोलह दिनतक । के समय में । वे दोनों धर्म और अधर्म अगुवे हैं जिनके । यहां पर योनि पृथ्वी का द्वार है । (क) ॥

भाग वायु से दो बीजों के अलग होने पर दो जीव कुख में आते हैं तिस हेतु जोड़ा ऐसे कहे जाते हैं धर्म और अधर्म अगुवे हैं जिनके ॥ ३९॥

धर्म्मस्तदितरोऽधर्म्मस्तौ पुरःसरो ययोः तेन यमौ धर्म्माधर्म्माभ्यां भवत इत्यर्थः । (ख) ॥

आधिक्ये रेतसः पुत्रः कन्या स्यादार्त्तवेऽधिके।
नपुंसकं तयोः साम्ये यथेच्छा परमेश्वरी ॥४०॥

नन्वेवं सति कथं पुत्रोत्पत्तिः स दैवार्त्तवस्यैव बाहुल्यात् ॥ (ग) ॥ यत उक्तम् ॥ आर्त्तवं चतुरंजलि प्रमाणं शुक्रं प्रसृति मात्रमिति ॥ (घ) ॥

भा० धर्म उस्से दूसरा अधर्म्म वे दोनों अगुवे हैं जिनके तिस हेतु जोड़ा धर्माधर्म से होता है ॥ (ख) ॥ शुक्र की अधिकता से पुत्र उत्पन्न होता है और आर्त्तव अर्थात् स्त्री रज के अधिक होने से कन्या होती है। तथा उन दोनोंके बराबर होने से नपुंसक होता है जैसी इच्छा परमेश्वर की होवे ॥ ४० ॥

यहां पर शंका करते हैं कि ऐसा हो तो सर्वदा आर्त्तव ही की आधिकता होती है तिस्से कैसे पुत्रकी उत्पत्ति होती है ॥ (ग) ॥ जैसे कि कहा है। आर्त्तवका प्रमाण चार अञ्जुली है और शुक्रका एक पसर भर अर्थात् चुल्लू भर है ॥ (घ) ॥

[वाग्भटेऽप्युक्तमार्त्तवे यादिभिः]

मज्जा मेदो वसा मूत्र पित्त श्लेष्म शकृत्प्रसृक्।
रसो जलं च देहेऽस्मिन्न्वैकैकाञ्जलि वर्द्धितम्॥
४१ ॥ पृथक् च प्रसृतं प्रोक्तमोजो मस्तिष्करेतसाम्।
द्वावञ्जली तु दुग्धस्य चत्वारो रजसस्तने ॥ ४२॥

भा० वाग्भट में भी आत्रेयादि मुनियों ने कहा है। मज्जा अर्थात् हड्डी के भीतर का गूदा मेद वसा अर्थात् चरबी मूत्र पित्त कफ मल रुधिर रस और जल ये क्रम से एक २ अंजुलि अधिक हैं ॥ ४१ ॥ और अलग् कहा गया है एक एक पसा भर ओज और माथे में का भेजा तथा शुक्र। और दो अञ्जुली दूध और चार अञ्जुली रज ॥ ४२ ॥

समधातोरिदं मानं विद्यात् वृद्धिक्षयावतः। इति ॥ (क)। नैवं, यतो गर्भाशयस्थमेव शुक्रमार्त्तवं च गर्भोत्पत्तिहेतुः शुक्रं कदाचिदत्यन्तहर्षवशाद्दुग्धादि शुक्रलत्व द्रव्यसेवनात् शुक्र बाहुल्यात् गर्भाशये बहु स्रवति कदाचिद्वै मनस्यादिना शुक्राल्पत्वात्स्वल्पमिति एवमार्त्तवमपीति न दोषः ॥ (ख) ॥

भा० यह समधातु का मान है। इससे न्यूनाधिक होने से क्षय वृद्धि जानना चाहिये ॥ (क) ॥ इस तरह पर नहीं जैसे गर्भाशय में रहने वाला ही शुक्र और आर्त्तव गर्भ की उत्पत्ति का कारण है तो शुक्र कदाचित् बहुत खुशी के वश से अथवा दुग्धादि शुक्र को बढ़ानेवाली वस्तुओं के से या शुक्र के बाहुल्यता से गर्भाशय में शुक्र बहुत गिरता है। अथवा कदाचित् वैमनस्य से अथवा शुक्र की अल्पता से थोड़ा गिरता है इसी तरह आर्त्तव भी इससे दोष नहीं ॥ (ख) ॥

[सुश्रुतः पुनराह ॥]

वैलक्षण्याच्छरीराणामस्थायित्वात्तथैव च ॥ दोष धातु मलानां तु परिमाणं न विद्यते ॥ ४३ ॥

वैलक्षण्यात् दीर्घह्रस्व कृशादि भेदेन सादृश्याभावात् अस्थायित्वात् वयोऽहर्निशार्त्तु भुक्त्येक मात्रानवस्था

नान् एवं तामभिसङ्गम्य पुनर्मासाद् भजेदसौ मासादूर्द्ध मितिशेषः अर्वाक गमनेन गर्भद्वार विघट्टनात् गर्भच्युति प्रसङ्गः स्यात् केचित्तु, पुनः पुष्पदर्शनेन गर्भालाभ निश्चये मासादूर्द्ध गच्छेत् लब्ध गर्भे नैवगच्छेदिति वदन्ति ॥ (क) ॥

तत्र परिहार्य्ये परिहारार्थं सद्योगृहीतगर्भाया लक्षणमाह ॥ (ख) ॥

भा० और सुश्रुत ने कहाहै। शरीरों की विलक्षणता से तथा क्षणभंगुरपने से दोष धातु मल इनका परिमाण नहीं जाना जाता ॥ ४२ ॥ वैलक्षण्य से अर्थात् लंबा छोटा दुबला मोटा इन भेदों करके समान नहोने से और स्थायि न होने से अर्थात् अवस्था रात दिन ऋतु और भोजन इन में एक तरह नरहने से। इस प्रकार उसके साथ संभोग करके फिर से महीने भरमें संभोग करें परंतु महीने से ऊपर अर्थात् रजस्वला होने के उपरांत संभोग करें क्यों कि इससे पहिले गमन करनेमें गर्भद्वार के विघट्टनसे गर्भपात होता है। कोई कहतेहैं कि फिरसे रजस्वला होने में गर्भ के नरहनेके निश्चय होने पर महीने के ऊपर गमन करें और गर्भ रहे तो नगमन करें। ऐसा कोई कहते हैं ॥ (क) ॥

इसमें दूर करने के योग्य को दूर करने के वास्ते तत्काल ग्रहण की हुई गर्भ का लक्षण कहते हैं ॥ (ख) ॥

शुक्र शोणित तयो योने रस्त्रावो र्थ्य श्रमोद्भवः ॥
सक्थ्यि सादः पिपासाच ग्लानिः स्फुर्ति भगे भवेत्।
॥ ४४ ॥ [अथ तस्याः एवोत्तरकालीनं लक्षणमाह]
स्तनयोर्मुख कार्ष्ण्यं स्याद्रोमराज्युद्गम स्तथा ॥
अक्षि पक्ष्माणि चाप्यस्याः संमील्यन्ते विशेषतः ॥
॥ ४५ ॥ छर्दयेत् पथ्यभुक चापि गन्धादुद्विजते शुभात्

प्रसेकः सदनं चैव गर्भिण्या लिङ्गमुच्यते ॥ ४६ ॥

[तत्र पुत्रगर्भवत्या लक्षणं]

पुत्रगर्भयुतायास्तु नार्य्या मासि द्वितीयके ॥ गर्भो गर्भाशये लक्ष्यः पिण्डाकारोऽपरं शृणु ॥ ४७ ॥

पिण्डो वर्त्तुलाकृतिः मासि द्वितीयक इत्यस्य गर्भः पिण्डाकारो लक्ष्यः इत्यनेनैवान्वयो न त्वस्मिन्श्लोकेऽपि ॥ (क) ॥

दक्षिणाक्षि महत्त्वं स्यात् प्राक्क्षीरं दक्षिणे स्तने ॥ दक्षिणोरुः सुपुष्टः स्यात् प्रसन्नमुखवर्णता ॥ ४८

पुन्नामधेयद्रव्येषु स्वप्नेष्वपि मनोरथः ॥ आम्रादिफलमाप्नोति स्वप्नेषु कमलादि च ॥ ४९ ॥

भा० शुक्र और रुधिर का योनि से न निकलना काममें श्रम होना जांघ में पीड़ा प्यास ग्लानि और योनिमें फड़कना ये लक्षण होते हैं ॥ ४४॥ अनन्तर उसीका पश्चात् कालका लक्षण कहते हैं। छातियों के मुखका कापन, नाभिके ऊपर से स्तनतक रोमरोंकी कतार खड़ी होना, और इस की विशेष करके आंखों की पलकें गिरती हैं ॥ ४५॥ हितकारी भोजन को भी गेरे और अच्छे गन्ध से क्लेश होवे, प्रसेक और पीड़ा ये गर्भिणी के लक्षण कहेहैं ॥ ४६॥ [उसमें पुत्रगर्भवाली का लक्षण कहते हैं] पुत्रगर्भवाली स्त्री का दूसरे महीने में गर्भ गर्भाशय में पिंड के आकार अर्थात् गोल जानना चाहिये और दूसरा सुनो ॥ ४७ ॥ पिंड अर्थात् गोल आकार महीनें दूसरे का इसतरह पर इसका गर्भ पिंडाकार लक्ष्य है इस प्रकार इसीके साथ अन्वय है न कि अग्नि मश्लोक में भी ॥ (क) ॥ दाहिनी आंख बड़ी होवे और पहिले दाहिनी चूचीमें दूध होवे तथा दाहिनी जांघ भारी होवे और मुखपर अच्छी रंगत होवे ॥ ४८॥

स्वप्न में भी पुरुषनाम वाली वस्तु में इच्छा । स्वप्न में आम आदि फलों को और कमलादि कों को पातीहै ।४९ ॥

कन्या गर्भवती गर्भे पेशी मासि द्वितीयके ॥ पुत्री गर्भस्य लिङ्गानि विपरीतानि चेक्षते ॥ ५० ॥

[पेशी दीर्घा कृतिः।]

नपुंसकं यदा गर्भे भवेद्गर्भोऽर्बुदा कृतिः ॥ उन्नत भवतः पार्श्वे पुरस्तादुदरं महत् ॥ ५१ ॥

अर्बुदं वर्त्तुलं फलार्द्ध तुल्यं नपुंसक विशेषमाह ॥(क)

आसेक श्च सुगन्धी च कुम्भीकश्चेर्ष्यक स्तथा ॥ अमी सशुक्रा बोद्धव्या अशुक्रः षण्ड संज्ञकः ॥५२॥

भा० कन्या गर्भ वाली के दूसरे महीने के गर्भ में मांस की थैली होती हैं ॥ कन्या गर्भके चिन्ह उससे विपरीत देखे जाते हैं ॥ ५० ॥

[पेशी अर्थात् दीर्घाकार] जब गर्भमें नपुंसक होवे तब गर्भ अर्बुदाकार अर्थात् गोल फलके अर्द्धभाग समान आकार होता है दोनों पासे ऊंचे होते हैं और पेट आगेकी तरफ बड़ा होता है ॥ ५१ ॥

अर्बुद अर्थात् गोलफल के आधे भागके समान आकार ॥ (क) ॥

नपुंसक विशेष को कहते हैं । आसेक सुगन्धी कुम्भिक ईर्षक ये सशुक्र नपुंसक जानने चाहिये अशुक्र नपुंसक षंड संज्ञक है ॥ ५२ ॥

[एतेषां लक्षणमाह]

पित्रोस्तु स्वल्पवीर्यत्वादासेक्यः पुरुषो भवेत् ॥ स शुक्रं प्राश्य लभते ध्वजोच्छितिमसंशयं ॥ ५३ ॥

भा० इनके लक्षण कहते हैं । पिता के थोड़े वीर्य्य होनेसे आसेक्य पुरुष होताहै वह वीर्य को प्राशनकरके स्त्री संभोग करनेकी सामर्थ्य को प्राप्त होवेहै

पित्रोः मातापित्रोः स्वल्पवीर्यत्वात् स्वल्पशुक्रार्त्तवत्वात् आसेक्यनामा मुखयोनीति नामान्तरः स शुक्रं प्राश्येति स पुरुषोऽन्य पुरुषेण स्वमुखे मैथुनं कारयित्वा तस्य शुक्रं प्राश्य मेहनोत्थानं लभते इत्यर्थः ॥ (क) ॥

यः पूति योनौ जायेत सहि सौगन्धिको भवेत् ॥ स योनि शेफसौगन्धमाघ्राय लभते बलम् ॥ ५४ ॥

भा० पित्र के अर्थात् माबाप के शुक्र शोणित होनेसे आसेक्यनाम अर्थात् मुखयोनि इस नामान्तर वाला वह शुक्र प्राशन करके अर्थात् वह पुरुष दूसरे पुरुष से अपने मुखमें मैथुन कराकर उसका शुक्र प्राशन करके लिंगका उठना प्राप्त करताहै अर्थात् इन्द्रिय उठती है ॥ (क) ॥ जो दुर्गन्धयुक्त योनिमें उत्पन्न होवे वह सौगन्धिक है। वह योनि लिंग की गन्धको सूंघ कर मैथुन करने की सामर्थ्य को प्राप्त होता है ॥ ५४ ॥

सौगन्धिकः सौगन्धिक नामा नासा योनीति नामान्तरं बलं मैथुने शक्तिं स्वे गुदेऽब्रह्मचर्य्याद्यः स्त्रीषु पुंवत् प्रवर्त्तते (ख) ॥ स कुम्भीक इति ज्ञेयो गुद योनिस्तु स स्मृतः ॥ ५५ ॥

अब्रह्मचर्य्यात् ब्रह्मचर्य्यम मैथुनं अब्रह्मचर्य्यं मैथुनं यत्स्यात् ॥ (ग) ॥

भा० सौगन्धिकः सौगन्धिक नाम अर्थात् नाक योनि इस दूसरे नाम वाला। (ख) ॥ बल अर्थात् मैथुनमें सामर्थ्य। अपनी गुदा में दूसरे पुरुष से मैथुन करने से जो पुरुष स्त्री में पुरुष के मानिंद मैथुन करता है वह कुंभीक ऐसा जानना चाहिये और वह गुदयोनि ऐसा कहा गया है ॥ ५५ ॥ अब्रह्मचर्य्य अर्थात् मैथुन ॥ (ग) ॥

दृष्ट्वा व्यवायमन्येषां व्यवाये यः प्रवर्त्तते ॥ ईर्ष्यकः

स तु विज्ञेयो दृष्टि योनिस्तु स स्मृतः ॥ ५५ ॥
यो भार्य्यायां मृतौ मोहादङ्गनेव प्रवर्त्तते ॥ न
त्र स्त्री चेष्टिताकारो जायते षण्ड संज्ञकः ॥
॥ ५६ ॥ स्त्री चेष्टिताकारः स्त्र्याकार श्म
श्रु रहितः । स्त्री चेष्टितः स मेहनोऽपि पुरुष
शक्ति रहितः ॥ (क) ॥

भा० दूसरे का मैथुन देखकर जो मैथुन में प्रवृत्त होना है उसको ईर्ष-क ऐसा जानना चाहिये और वह दृष्टि योनि ऐसा कहा गया है ॥ ५५॥ ऋतुकाल में जो मोहके वस होकर स्त्री के साथ औरत के मानिंद मैथुन अर्थात् आप नीचे और स्त्री को ऊपर इस प्रकार करता है उसमें स्त्री चेष्टा और स्त्री के आकारवाला षण्ड संज्ञक उत्पन्न होता है ॥ ५६ ॥ स्त्री चेष्टिताकार स्त्री आकार अर्थात् दाढ़ी वग़ैरह से रहित और स्त्री चेष्टित अर्थात् लिङ्ग सहित हुवाभी पुरुष शक्ति रहित होता है ॥ (क) ॥

किन्तु स्त्रीवदधी भूतः स्व गुदे पुरुषान्तरेण मैथुनं
(ख) ॥ ऋतौ ऋतौ पुरुषवत् प्रवर्त्तेताङ्गना यदि
॥ तत्र कन्या यदि भवेत्सा भवेन्नर चेष्टिता ५७।
पुरुषवत् स्त्रिय मारुह्य सा तस्या योनौ स्वयोनि घ
र्षणं करोति ॥ (ग) ॥

भा० लेकिन् स्त्री के मानिंद नीचे होके अपनी गुदा में दूसरे पुरुष से मैथुन करानाहै ॥ (ख) ॥ ऋतुकाल में २ यदि स्त्री पुरुष के मानिंद अर्थात् आप ऊपर और पुरुष नीचे इस प्रकार मैथुन करेतो उसमें यदि कन्या हो तो नरके चेष्टा और आकारवाली उत्पन्न होती है ॥ ५७ ॥ पुरुष के मानिंद औरत को चढ़ाकर वो उसकी योनिमें अपनी योनिका

घर्षण करती है ॥ (ग) ॥

[अपरा अपि गर्भ प्रकृतीराह]

यदा नार्य्यावुपेयातां वृषस्यन्त्यौ कथञ्चन ॥
मुञ्चन्त्यौ शुक्र मन्योन्य मनस्थि स्तत्र जायते ॥
॥ ५८ ॥ अनस्थिः अत्रेषदर्थे नञ् तेनाल्प को
मलास्थि रित्यर्थः ॥ (क) ॥

ऋतुस्नाता तु या नारी स्वप्ने मैथुन माचरेत् ॥
आर्त्तवं वायुरादाय कुक्षौ गर्भं करोति हि ॥ ५९॥

भा० दूसरी भी गर्भकी प्रकृति कहते हैं ॥ जब दो औरतें मदान्ध हुई आपस्में नीचे ऊपर होके यत्नके साथ मैथुन करती है तब एक में एक शुक्र छोडती हैं उस्में जो सन्तान उत्पन्न होती है वह अस्थि रहित होती हैं ॥ ५८ ॥ (अनस्थि यहांपर थोड अर्थमें नञ् है तिस्से अल्प और कोमल अस्थि समझनी चाहिये) ॥
ऋतु में जो न्हाई हुई औरत स्वप्नमें मैथुन को करे तब वायु आर्त्तवको लेकर कूख में गर्भको करता है ॥ ५९ ॥

मासि मासि प्रवर्द्धेत स गर्भो गर्भलक्षणः ॥ क
ललं जायते तस्य वर्जितं पैतृकैर्गुणैः ॥ ६० ॥
गर्भलक्षणः प्रकृतगर्भलक्षणः । पैतृकैर्गुणैः केश
श्मश्रु लोमनखदन्त शिरास्नायु धमनीरेतःप्रभृतिभिः
॥ (क) ॥ सर्पवृश्चिक कुष्माण्डाकृतयो विकृ
ताश्च ये । गर्भास्ते योषितस्ताश्च ज्ञेयाःपापकृतो

भृशम् ॥ ६१॥ गर्भो वातप्रकोपेण दोहृदे चाप मानिते ॥ भवेत् कुब्जः कुणिः पङ्गुर्मूकोमिन्मिन एवच ॥ ६२॥

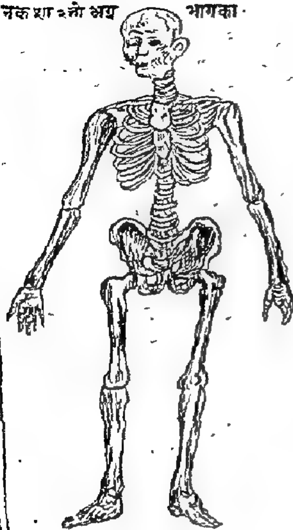
भा॰ गर्भके चिन्हवाला वह गर्भ महीने महीने में बढ़ता है ॥ उसका पितृ सम्बन्धी केशादि गुणों से रहित कलल अर्थात् मांस पिंडसा बच्चा होता है ॥ ६०॥ (गर्भलक्षण अर्थात् प्रकृत गर्भ चिन्ह पैतृक गुण अर्थात् केश डाढ़ी रोम नख दांत सिरा स्नायु धमनी शुक्र प्रभृतियों से रहित) ॥ (क) ॥
सांप बिच्छू कूष्मांड के आकार औरजो विकारको प्राप्तहुवा गर्भहै वे औरतों के बहुत पाप करनेसे होतेहैं ऐसा जानना चाहिये ॥ ६१॥ गर्भवायुके प्रकोपसे और दोहद के अपमान से अर्थात् गर्भवती स्त्री की जिस वस्तु में इच्छा होती है उस २ वस्तु को न देने से कुबड़ा कुनि पंगुला गूंगा मिन्मिना उत्पन्न होता है ॥ ६२॥

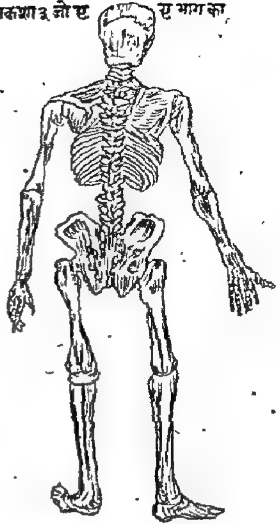
[पुत्राणामाहाराचारचेष्टाभेदस्य]
हेतुमाह

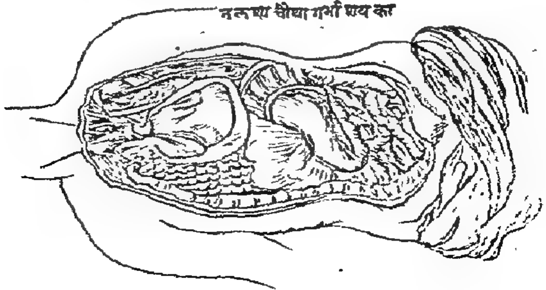
आहाराचारचेष्टाभिर्य्यादृशीभिः समन्वितौ ॥ स्त्रीपुंसौ समुपेयातां तयोः पुत्रोऽपि तादृशः॥६३॥
(समुपेयातां संयोगं गच्छेताम् ।)

[अथ गर्भलक्षणमाह]

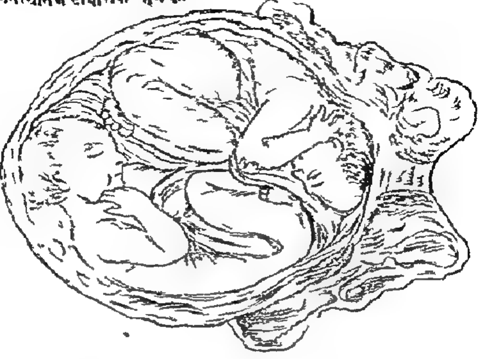
भा॰ पुत्रों के आहार और आचारोंकी चेष्टा के भेद के हेतुको कहते हैं ॥ जिस प्रकारके आहार और चेष्टासे युक्त स्त्री पुरुष संग करें उनका पुत्रभी वैसा उत्पन्न होवे ॥ ६३॥ (समुपेयातां संभोग करें)
[अनन्तर गर्भका लक्षण कहतेहैं]


नकशा २ जो अग्र
भागका

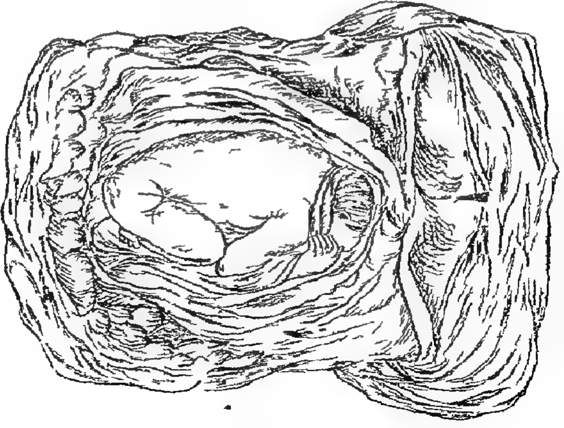

नकशा ३ जो पृ
ए भाग का


नक्शा चौथा गर्भाशय का

नकशा गर्भस्थानमे दो बालक रहने का



नकशा ६ गर्भस्थान मे १ बालक रहने का



गर्भाशयगतं शुक्र मार्त्तवं जीव संज्ञकः ॥ प्र
कृतिः सविकारा च तत्सर्व्वं गर्भसंज्ञकम् ॥
॥ ६४ ॥ कालेन वर्द्धितो गर्भो यद्यङ्गोपाङ्ग संयु
तः ॥ भवेत्तदा स मुनिभिः शरीरीति निगद्यते ६५
[अङ्गोपाङ्ग संयुक्तः व्यक्ताङ्गोपाङ्गः]
तस्य त्वङ्गान्युपाङ्गानि ज्ञात्वा सुश्रुतशास्त्रतः ॥
मस्तकादभि धीयन्ते शिष्याः शृणुत यत्नतः । ६६॥
आद्य मङ्ग शिरः प्रोक्तं तदुपाङ्गानि कुन्तलाः॥ त
स्यान्तर्मस्तु लुङ्गं च ललाटं भ्रूयुगन्तथा ॥ ६७ ॥

भा० गर्भाशय में प्राप्त शुक्र और आर्त्तव उसकी जीव संज्ञा है । और सो-
लह विकार के साथ प्रकृति उन सबकी गर्भसंज्ञा है ॥ ६४ ॥ जब
काल पाके बढ़ाहुवा अंग और उपांग से युक्त जब गर्भ होता है तब मुनि
लोग शरीरी ऐसा कहते हैं ॥ ६५ ॥ अंगोपाङ्ग से युक्त अर्थात् प्रगट
अङ्गोपाङ्ग वाला ॥ सुश्रुत ग्रन्थ से उसके अंग और उपाङ्गों को जान
कर मस्तक से कहते हैं हे शिष्यो यत्न पूर्वक सुनो ॥ ६६ ॥
पहिला अंग शिर कहाहै और उसके उपांग केश हैं ॥ उसके भीतर
मस्तुलुंग अर्थात् भेजा है तथा ललाट और दो भवें ॥ ६७ ॥

नेत्रद्वयं तयोरन्तर्वर्त्तिने द्वे कनीनिके ॥ दृष्टिद्वयं
कृष्णगोलौ श्वेतभागौ च वर्त्मनी ॥ पक्ष्माण्यपा
ङ्गौ शङ्खौ च कर्णौ तच्छष्कुली द्वयम् ॥ पालिद्व
यं कपोलौ च नासिका च प्रकीर्त्तिता ॥ ६८ ॥

भा० दो आंखें और उनके बीच में दो पुतलियां हैं ॥ दो दृष्टि दो कृष्णगोल
अर्थात् आंख के भीतर काली गोल दो और सफेद कौड़ी दो पलकें दो और

श्रोर पलकों के रोवें ॥ ६८ ॥ आँख की नोकें माथेपर की दो हड्डियाँ कान श्रोर उसके दो छिद्र तथा कानकी दोनों नोकें श्रोर दोगाल तथा नांक ये कही गई ॥ ६९ ॥

श्रोष्ठाधरौ च सृक्किण्यौ मुखं तालु हनु द्वयम् ॥ द
न्ताश्च दन्तवेष्टश्च रसना चिबुकङ्गलः ॥ ७० ॥
द्वितीय मङ्गं ग्रीवा तु यया मूर्द्धा विधार्यते ॥ तृतीयं
बाहु युगलं तदुपाङ्गान्यथ ब्रुवे ॥ ७१ ॥ तत्रोपरि
मतौ स्कन्धौ प्रगण्डौ भवतस्त्वधः ॥ कफोनियुगं
तदधः प्रकोष्ठ युगलन्तथा ॥ ७२ ॥

भा० होंठ और नीचे का होंठ तथा दोनो होठों के प्रान्त भाग याने खख-वाड़ा मुखनाल और दोनों जबाड़े ॥ दान्त मसूड़े जीभ ठुड्डी और गला ॥ ॥ ७० ॥ दूसरा अंग गर्दन जिसके द्वारा शिर धारण किया जाता है ॥ तीसरा अंग दोनों बाज़ू उसके उपांग कहते हैं ॥ ७१ ॥ उसके ऊपर दो कन्धे श्रोर नीचे दो प्रगंड अर्थात् कोहनी से लेकर बग़ल तक बाज़ू उसके नीचे कफसे युत दो प्रकोष्ट अर्थात् कोहनी से हाथ के पौंचे तक ॥ ७२ ॥ हाथ के दो पौचे दो तलवे दो हाथ उनकी दस श्रङ्गुलियां ॥

मणिबन्धौ तले हस्तौ तयोश्चाङ्गुलयो दश ॥
नखाश्च दश ते स्थाप्या दश च्छेद्याः प्रकीर्त्तिताः॥
॥ ७३ ॥ चतुर्थ मङ्गं वक्षस्तु तदुपाङ्गान्यथ ब्रुवे ॥
स्तनौ पुंसस्तथा नार्य्या विशेष उभयोरयम् ॥७४॥
यौवनागमने नार्योः पीवरौ भवतः स्तनौ ॥ गर्भ
वत्याः प्रसूताया स्तावेव क्षीरपूरितौ ॥ ७५ ॥

भा० नख दश येरखने योग्य श्रोर दस काटने योग्य कहे गये हैं ॥७३

नकशा पहिला १ शारीरक भाग का





हृदयं पुण्डरीकेण सदृशं स्यादधोमुखम् ॥ जा
ग्रतस्तद्विकसति स्वपतस्तु निमीलति ॥७६॥
आशयस्तत्तु जीवस्य चेतनास्थानमुत्तमम् ।
अतस्तस्मिं स्तमोव्याप्ते प्राणिनः प्रस्वपन्तिहि ॥७७॥
चेतनास्थान मुत्तम मिति अयमभिप्रायः॥ क१ ॥
चेतनाना मधिष्ठानं मनोदेहश्च सेन्द्रियः॥ केश-
लोमनखाग्रं च मलं द्रव्यगुणैर्विना ॥ ७८ ॥

भा॰ चौथा अंग छाती उसके उपाङ्ग कहतेहैं। दो स्तन पुरुषके तथा औरत के परन्तु दोनों में यह विशेषहै कि ॥ ७४ ॥ यौवन अवस्थाके आगमन में औरतों के स्तन उठेहुवे होतेहैं ॥ पेटवाली तथा जायेवाली औरत के वहीस्तन दूधसे भरजाते हैं ॥ ७५ ॥ हृदय कमल के सदृश अधोमुख हैं। जागने में वह खिला रहता है और सोनेमें वह सिकुड़ जाता है ॥ ७६ ॥ वह आशय जीवका चेतना स्थानहैं। इस हेतु तमोगुण से व्याप्त उस में प्राणि सोतेहैं ॥ ७७ ॥ चेतना स्थानं उत्तमं इसका यह अभिप्राय है कि १ (क) ॥ प्राणियों का अधिष्ठान अर्थात् जगह मन और इन्द्रियोंके सहित देह ॥ ७८ ॥

इत्युक्तवता चरकेण सकलं शरीरं चेतनास्थान मुक्तं ।
तदपेक्षया हृदयं विशेषतश्चेतना स्थान मिति ॥ (ख)
कक्षयोर्वक्षसः सन्धी जत्रुणी समुदाहृते ॥ कक्षे उभे
समाख्याते तयोः स्याताँ च वङ्क्षणौ ॥ ७९ ॥

भा॰ तथा केशरोम और नखाग्र और द्रव्य गुणोंके बिना मल येह हैं इस प्रकार कहनेवाले चरकने संपूर्ण शरीर चेतना स्थान कहाहै। उन की अपेक्षासे हृदय विशेषकरके चेतना स्थान है ॥ (ख) ॥

कांख और छाती के जोड़ को जत्रुणी कहते हैं ॥ दो कांखें कही गईं । और उन के दो वङ्क्षण अर्थात् कटिप्रदेश का ऊर्द्धभाग ॥७९॥
तथा पांचवां अंग उदर और छठा अंग दोनों पसलियां ।

उदरं पञ्चमञ्चाङ्गं षष्ठं पार्श्व द्वयं मतम् ॥
सपृष्ठवंशं पृष्ठं तु समस्तं सप्तमं स्मृतम् ॥ ८० ॥
उपाङ्गानि च कथ्यन्ते तानि जानीहि यत्नतः ॥
शोणिताज्जायते प्लीहा वामतो हृदयादधः ॥ ८१ ॥
रक्तवाहि शिराणां स मूलं ख्यातो महर्षिभिः ॥
हृदयाद्वामतोऽधश्च फुप्फुसो रक्तफेनजः ॥ ८२ ॥
अधो दक्षिणतश्चापि हृदयात् यकृतः स्थितिः ॥
तत्तु रञ्जक पित्तस्य स्थानं शोणितजं मतम् ॥ ८३ ॥

भा० पीठ के बांसके सहित छठा अंग समझना चाहिये और बाकी सब सातवां अंग कहा गया है ॥ ८० ॥ उपांगों को कहते हैं उनको यत्न पूर्वक समझो ॥ रुधिर से प्लीहा उत्पन्न हुई है बायें तरफ़ हृदय के नीचे उसको रक्तवाही नसों का मूल महर्षियों ने कहा है ॥ हृदय से बाईं तरफ़ नीचे रक्त की झागसे उत्पन्न हुवा फुप्फुस है ॥ ८२ ॥ हृदय के नीचे दाहनी तरफ़ यकृत है । वह रक्त से उत्पन्न है और रंजक पित्तका स्थान है ॥ ८३ ॥

अधस्तु दक्षिणे भागे हृदयात् क्लोम तिष्ठति ॥
जलवाहि शिरामूलं तृष्णाच्छादन कृन्मतम् ॥ ८४
क्लोमतिलकम् एतत्तु वालरक्तजम् ॥ (क) ॥

भा० हृदय से नीचे दाहिनी तरफ़ यकृत् के पास क्लोम है वह जलवाहि नसों का मूल है अर्थात् जड़ है और तृषणा का आच्छादन करने वाला है

॥ ८४ ॥ क्लोमतिलक यह वात और रक्त से उत्पन्न है ॥ (क)

[अथ वृद्ध वाग्भटः ।]

रक्तादनिलसंयुक्तात्कालीयकसमुद्भव इति ॥
मेदःशोणितयोः साराद्वृक्कयोर्युगलं भवेत् ॥८५॥
तौ तु पुष्टिकरौ प्रोक्तौ जठरस्थस्य मेदसः ॥ उक्ताः
सार्द्धास्त्रयो व्यामाः पुंसामन्त्राणि सूरिभिः ॥ ८६ ॥
अर्द्धव्यासेन हीनानि योषितोऽन्त्राणि निर्दिशेत् ।
उन्दुकञ्च कटी चापि त्रिकं वस्तिश्च वङ्क्षणौ ॥८७॥

भा० वृद्ध वाग्भट में कहाहै ॥ कि रक्त से मिले हुवे वायु से कालीयक की उत्पत्ति । मेद और रक्त के सारसे दो वृष्कल हुवे हैं वे दोनों जठर में रहनेवाले मेदको पुष्ट करतेहैं ऐसा पण्डितों ने कहाहै ॥ पण्डितों ने साढे तीन व्याम पुरुषों की आँतड़ीयां कही हैं (व्याम दोनों हाथों के फैलाव को) कहते हैं ॥ ८६ ॥ आधे पैमाने से हीन अर्थात् पौनेदो व्याम औरतों की अंतड़ियां कही गई हैं ॥ उन्दुक कटि त्रिक वस्ति अर्थात् पेडू वङ्क्षण ॥ ८७ ॥

कण्डराणां प्ररोहः स्यात् स्थानं तद्वीर्य्यमूत्रयोः
स एव गर्भस्याधानं कुर्य्याद्गर्भाशये स्त्रियाः ॥८८॥
शङ्खनाभ्याकृतिर्योनिस्त्र्यावर्त्ता सा च कीर्तिता ।
तस्यास्तृतीये त्वावर्त्ते गर्भशय्या प्रतिष्ठिता ॥ ८९ ॥

भा० ये कंडरा अर्थात् बड़ीरग इनके अंकुर हैं और शुक्र तथा मूत्रकी यह जगह है ॥ औरतों के गर्भाशय में वही गर्भका आधान करता है ॥ ८८ ॥ शंख नाभकी आकार तीन आवर्त्तवाली योनि कही गईहै । उसके तीसरे आवर्त्त में गर्भशय्या स्थापन की गई है ॥ ८९ ॥

वृषणौ भवतः सारात्कफासृग्भ्यां च मेदसाम् ॥
वीर्य्यवाहि शिराधारौ तौ मतौ पौरुषा वहौ ॥ ६०॥
गुदस्य मानं सर्वस्य सार्द्धं स्याच्चतुरङ्गुलम् ॥ तत्र
स्युर्व्वलयस्तिस्रः शङ्खावर्त्तनिभास्तु ताः ॥ ६१॥
प्रवाहिणी भवेत्पूर्वा सार्द्धाङ्गुलमिता मता ॥ उ-
त्सर्जनी तु तदधः सा सार्द्धाङ्गुलसम्मिता ॥ ६२॥

भा० मेद के सार और कफ रक्त से वृषण अर्थात् अंडकोश ह्वेहैं। वीर्य्य को धारणकरने वाली रगोंके आधार और पौरुष को धारण करनेवाले कहे गयेहैं ॥ ६०॥ सबके गुदाका मान साढ़ेचार अंगुलहै ॥ उसमें तीन वलि अर्थात् लपेट शंख के आवर्त्तके समान हैं ॥ ६१॥ पहिली वलि प्रवाहिणी नाम है वो डेढ़ अंगुल की कही गई हैं ॥ उसके नीचे उत्सर्जनी नाम दूसरी बलि है वोभी डेढ़ अंगुल कीहै ॥ ६२॥

तस्याधः सञ्चरणी स्यादेकाङ्गुलसमा मता ॥ अ
र्द्धाङ्गुलप्रमाणं तु बुधैर्गुदमुखं मतम् ॥ ६३॥ मलो
त्सर्गस्य मार्गोऽयं पायुर्देहे विनिर्मितः ॥ पुंसः
प्रोथौ स्मृतौ यौ तु तौ नितम्बौच योषितः ॥ ६४॥
तयोष्क कुन्दरे स्यातां सक्थिनी त्वङ्ग मष्टमम् ॥
तदुपाङ्गानि चत्रूमौ जानुनी पिण्डिका द्वयम् ॥ ६५॥

भा० उसके नीचे संचरणी नाम तीसरी वलिहै वो एक अंगुल के समान है। गुदा का मुख आधा अंगुल प्रमाण पंडितों ने कहाहै ॥ ६३॥ मल के निकालने का मार्ग शरीर में यह गुदा बनाई गई हैं ॥ जो पुरुष के प्रोथ कहे गये हैं वो औरतों के नितंब अर्थात् चूतड़ कहेगये हैं ॥ ६४॥ उनके दो कुंदर हैं और जांघ आठवां अङ्ग है। उसके उपांग कहते हैं घुटनेदो पिंडलियां

जङ्घे द्वे घुटिके पार्ष्णी तले च प्रपदे तथा ॥ पादा
वङ्गुलयस्तत्र दश तासां नखा दश ॥ ९६ ॥
अथेदं शरीर मपरेणापि येन येन समवायिकारणेनोत्प
द्यते तानि सर्वाण्याह ॥ (क)

अथ दोषाः प्रवक्ष्यन्ते धातवस्तदनन्तरम् ॥ आ
हारादेर्गतिस्तस्य परिणामश्च वक्ष्यते ॥ ९७ ॥
आर्त्तवं चाथ धातूनां मलास्तदुपधातवः ॥ आश
याश्च कलाश्चापि मर्माण्यथ च सन्धयः ॥ ९८ ॥

भा० दो जाँघ दो टखने दो एड़ियां दो तलवे दो प्रपद अर्थात् पांव के सिरे दो। पांव की अंगुलियां दस और उनके नाखून दस ॥ ९६ ॥ अनन्तर यह शरीर और जिन २ के मिलने से उत्पन्न होता है उन सबको कहते हैं (क) ॥ अनन्तर दोषों को कहते हैं उसके अनन्तर धातु कहते हैं । आहारादिकों की गति और उसका परिणाम कहते हैं ॥ ९७ ॥ आर्त्तव अर्थात् स्त्री का रज और धातुवों के मल तथा उनकी उपधातु । आशय कला मर्म और सन्धियां अर्थात् जोड़ ॥ ९८ ॥

शिराश्च स्नायवश्चापि धमन्यः कण्डरास्तथा ॥
रन्ध्राणि भूरि स्रोतांसि जालैः कूर्चाश्च रज्जवः ॥
॥ ९९ ॥ सेवन्यश्चाथ सङ्घाताः सीमन्ताश्च तथा
त्वचः ॥ लोमानि लोमकूपाश्च देह एतन्मयो म
तः ॥ १०० ॥

भा० छोटी नसें बड़ी नसें धमनी घोड़ नसें छिद्रं और बहुत से स्रोत जाल कूर्च रज्जू ॥ ९९ ॥ सेवनी संघात सीमन्त तथा त्वचा लोम और लोम कूप इनहीं से देह बनायागया है ॥ १०० ॥

[तत्र दोषस्वरूपमाह वाग्भटः]

वायुः पित्तं कफश्चेति त्रयो दोषाः समासतः ॥
विकृताऽविकृता देहं घ्नन्ति ते वर्द्धयन्ति च ॥ १॥
ते व्यापिनोऽपि हृन्नाभ्योरधोमध्योर्द्ध संश्रयाः ॥
वयोऽहोरात्रि भुक्तानामन्तमध्यादिगाक्रमात् ॥ २॥

[दोषशब्दस्य निरुक्तिमाह]

धातवश्च मलाश्चापि दुष्यन्त्येभिर्य्यतस्ततः ॥
वातपित्तकफा एते त्रयो दोषा इति स्मृताः॥ ३॥

भा० उनमें दोषों का स्वरूप वाग्भट कहते हैं । वायु पित्त कफ ये तीन दोष संक्षेप से कहेगये हैं ॥ वे अर्थात् वायु पित्त कफ बिगड़े हुवे शरीर को नाश करते हैं और अविकृत अर्थात् विकार से रहित हुए देह को पुष्ट करते हैं ॥१॥ वे सम्पूर्ण शरीर में फैले हुवे भी हृदय नाभि के नीचे वायु और हृदयनाभि के बीच में पित्त तथा हृदय नाभि के ऊपर कफ इस क्रमसे रहते हैं ॥ २॥ अवस्था दिन रात और भोजन इनके अंत मध्य और आदि इस क्रम से वायु पित्त कफ रहते हैं अर्थात् वृद्धावस्था में वायु तरुण अवस्था में पित्त और बाल अवस्था में कफ इसी प्रकार सायंकाल में वायु मध्यान्ह में पित्त और प्रातः काल में कफ, और रात के अन्त में वायु मध्यमें पित्त आदि में कफ तथा भोजन करनेपर परिपाक अवस्था के अन्त में वायु और मध्यमें पित्त और आदि में कफ इस क्रमसे रहते हैं ॥ २॥
दोष शब्द की निरुक्ति कहते हैं ॥ जिस हेतु धातु और मल जिसके द्वारा दोष को प्राप्त होते हैं अर्थात् बिगड़ते हैं तिस हेतु ये वात पित्त कफ तीन दोष कहे गये ॥ ३॥

(दोषा इत्यत्र दुष वैकृत्ये इति दुषधातोः। दुष्यन्त्येभिरिति वाक्ये। अकर्त्तरि च कारके संज्ञाया मित्य

नेन सूत्रेण करणेऽर्थे घञ् प्रत्ययः ।)

ते धातवोऽपि विद्वद्भिर्गदिता देहधारणात् ।

यतआह सुश्रुतः ।

विसर्गादानविक्षेपैः सोमसूर्यानिला यथा ॥

धारयन्ति जगद्देहं कफपित्तानिलास्तथेति ॥ ४॥

अत्र यथासङ्ख्येनान्वयो बोद्धव्यः । विसर्गादानं वातस्यैव । विक्षेपः शीतोष्णादीनां विविधप्रकारेण प्रेरणम् । मलाश्च ते रसादीनां मलिनीकरणान्मताः ॥

भा॰ दोषा यहांपर दुष् वैकल्यमें है इस्से दुष् धातु से दुष्यन्त्ये भिरिति इस वाक्य में । अकर्तरि च कारके संज्ञायां इस सूत्र से करण अर्थ में घञ् प्रत्यय् होता है) ॥ उनको विद्वानोंने धातु भी कहाहै देह के धारण करने से । जिस्सेकि सुश्रुत ने कहाहै ॥ चांद देने से सूरज लेने से और हवा पहुंचाने जैसे जगत को धारण करते हैं वैसे वायु पित्त कफ शरीर को धारण करते हैं ॥ ४ ॥

(यहां पर यथा संख्या से अन्वय जानना चाहिये । देना लेना वायु का ही । विक्षेप शीत और उष्णादिकों का नाना प्रकार से प्रेरण करना । वे रसादिकों के मलीन करने से मल कहेगये ॥)

तत्र वायोः स्वरूपमाह ।

दोषधातुमलादीनां नेता शीघ्रः समीरणः ॥

रजोगुणमयः सूक्ष्मो रूक्षः शीतो लघुश्चलः ॥ ५॥

(नेता स्थानान्तरं प्रापयिता । शीघ्रः आशुकारी)

अन्यच्च, उत्साहोच्छ्वासनिःश्वासचेष्टावेगप्रवर्त्तनैः ॥

सम्यक् गत्या च धातूनामिन्द्रियाणाञ्च पाटवैः ॥ ६॥

भा॰ उनमें वायु का स्वरूप कहते हैं) दोष धातु मल इनका लेजाने वा

ला और जल्दी करनेवाला वायु है । तथा रजोगुण स्वरूप सूक्ष्म रूक्ष शीतल लघु चञ्चल यह वायु का स्वरूप है ॥५॥ नेता अर्थात् दूसरी जगह लेजानेवाला शीघ्र अर्थात् जल्दी करनेवाला) और भी । उत्साह उच्छ्वास अर्थात् सांसलेना निश्वास चेष्टा और वेगोंका प्रवर्तन अर्थात् छींक जंभाई पाद इत्यादि चतुर्दश वेगों की प्रवृत्ति होनी और सप्तधातुवों की अच्छी गति से तथा इन्द्रियों की पटुता अर्थात् अपने २ विषयों को गृहण करने की शक्ति से ॥ ६ ॥

अनुगृह्णात्यविकृतो हृदयेन्द्रियचित्तधृक् ॥
रजोगुणमयः सूक्ष्मः शीतो रूक्षो लघुश्चलः ॥७॥
खरो मृदुर्योगवाही संयोगादुभयार्थ कृत ॥ दाह कृ
त् तेजसा युक्तो शीतकृत्सोम संश्रयात् ॥ ८ ॥
विभागकरणाद्वायुः प्रधानं दोषसंग्रहे ॥ पक्वाश
यकटीसक्थि स्रोतोस्थि स्पर्शनेन्द्रियम् ॥ ९ ॥
स्थानं वातस्य तत्रापि पक्वाधानं विशेषतः ॥ ए
को वायुः पित्तवन्नामस्थान कर्म्मभेदैः पञ्चविधः॥

भा० हृदय इन्द्रिय चित्तको धारण करण करनेवाला विकार रहित वायु देहको धारण करता है ॥ रजोगुण स्वरूप सूक्ष्म शीत रूक्ष लघु और चंचल ॥७॥ तथा खर अर्थात् तीखा कोमल और योगवाही अर्थात् जिसके साथ मिले उसीके गुण को बढ़ावे तथा संयोग से दोनों अर्थ को करनेवाला ॥ अर्थात् तेजसे मिलाहुवा दाह को करता है और सोमके मिलने से शीतको करता है ॥ ८ ॥ विभाग करने से दोषोंके संग्रह में वायु प्रधान हैं ॥ पक्वाशय अर्थात् अन्नके परिपाक का स्थान कमर जांघ स्रोत हड्डी और स्पर्शनेन्द्रिय अर्थात् जो इन्द्रिय त्वचामें रहती है और जिससे स्पर्श ज्ञान होता है ॥ ९ ॥ ये वात के स्थान हैं उनमें भी विशेष करके पक्वाशय वातका स्थान है ॥ एक वायु पित्त

के मानिंद नाम स्थान और क्रिया इत्यभेदोंसे पांच प्रकार का है ॥ १०॥

[तेषां वायूनां नामान्याह]

उदान स्तदनु प्राणः समानोऽपानएव च ॥ व्या
नश्चैतानि नामानि वायोः स्थान प्रभेदतः ॥११॥

[अथोदानादीनां स्थानान्याह

कण्ठे हृदि तथाधस्तात्कोष्ठवन्हे र्म्मलाशये ॥
सकलेऽपि शरीरेऽसौ क्रमेण पवनो वसेत् ॥१२॥

भा०उन वायुओं के नाम कहते हैं ॥ उदान उसके पीछे प्राण समान अपान व्यान स्थान भेदसे वायुके ये नाम कहे गये हैं ॥ ११॥ अनंतर उदानादिकों के स्थान कहते हैं । उदान कंठ में रहता है और हृदय में प्राण तथा जठराग्नि के नीचे समान और मलाशय में अर्थात् गुदामें अपान तथा सम्पूर्ण शरीर में व्यान इस क्रमसे ये रहता है ॥ १२॥

[अथ तेषां कर्म्माण्याह]

उदानो नाम यस्तूर्द्ध मुपैति पवनोत्तमः ॥ तेन
भाषित गीतादि प्रवृत्तिः कुपितस्तु सः ॥ १३॥
ऊर्द्धजत्रु गतान्रोगान्विदधाति विशेषतः ॥ यो
वायुःप्राणनामासौ मुखं गच्छति देह धृक् ॥१४॥
सोऽन्नं प्रवेशयत्यन्तः प्राणांश्चाप्यवलम्बते ॥

भा० अब उनके कर्म कहते हैं । उदान नाम पवनोत्तम जो ऊपर जाता है । उससे बोलना गाना इत्यादिमें प्रवृत्ति होती हैं और वो कोपको प्राप्त हुवा ॥ १३॥ ऊर्द्धजत्रु अर्थात् छाति और बगल की जोड़ के ऊपर के रोगों को विशेष करके करता है ॥ जो वायु प्राणनाम देह को धारण करने वाला

यह मुख में जाता है ॥ २४ ॥ वह अन्नको भीतर लेजाता है और प्राणोंको आ श्रय करके रहता है ॥

प्रायशः कुरुते दुष्टो हिक्काश्वासादिकान् गदान् ॥ २५॥
आमपक्काशयचरः समानो वन्हिसंगतः ॥ सोऽन्नं
पचति तज्जांश्च विशेषान्विविनक्तिहि ॥ २६ ॥

(तज्जानीत्यादि । अन्नगतान् रसमलमूत्रादीन् पृथक् करोतीत्यर्थः ।)

स दुष्टो वन्हिमान्द्यातिसार गुल्मान् करोति हि ॥
पक्काशयालयोऽपानः काले कर्षति चाप्ययम् ॥ २७॥

भा॰ और वह बिगड़ा हुआ प्रायः हिचकी खाँसी इत्यादिक रोगों को करताहै ॥ २५॥ जठराग्नि से मिला हुवा आमाशय और पक्काशय में आने जाने वाला समानवायु है वह अन्नको परिपाक करता है और उस अन्नसे उत्पन्नहुवे विशेषों को अलग २ करताहै ॥ २६ ॥
तज्जान् अर्थात् अन्नमें मिलेहुवे रस मल मूत्र आदिकों को अलग करता है) वह दुष्टहुवा अग्निमान्द्य अतिसार गुल्म इन रोगों को करता है ॥
पक्काशय है स्थान जिसका ऐसा यह अपानवायु मल मूल शुक्र गर्भ और आर्तव इनको आकर्षण करता हुवाभी समय पर नीचे करता है अर्थात् निकालता है ॥ २७ ॥

समीरणः शकृन्मूत्र शुक्र गर्भार्त वान्यधः ॥ क्रु
द्धस्तु कुरुते रोगान् घोरान् वस्ति गुदाश्रयान् ॥ २८॥
शुक्रदोष प्रमेहांश्च व्यानापान प्रकोपजान् ॥
कृत्स्नदेहचरो व्यानो रससंवाहनोद्यतः ॥ २९ ॥
स्वेदाऽसृक् स्रावकश्चापि पञ्चधा चेष्टयत्यपि ॥

गत्यु पक्षेपणोत् क्षेप निमेषोन्मेषणादिका ॥२०॥
प्रायः सर्व्वाः क्रियास्तस्मिन् प्रतिबद्धाः शरीरिणाम् ॥
प्रस्यन्दनञ्चोद्वहनं पूरणञ्च विरेचनम् ॥ २१ ॥
धारणञ्चेति पञ्चैताश्चेष्टा प्रोक्ता नभस्वतः ॥
क्रुद्धः स कुरुते रोगान् प्रायशः सर्वदेहगान् ॥२२॥
युगपत् कुपिता एते देहं भिन्द्युरसंशयम् ॥
देहं भिन्नं कुर्य्युर्म्मारयेयुरित्यर्थः ॥ (क)

भा० और वह कुपित हुवा भयंकर पेड़ू और गुदा के रोगों को करता है ॥ ॥२८॥ तथा शुक्रदोष और प्रमेह रोग को भी करता है । और व्यान अपानके प्रकोपसे उत्पन्न होनेवाले रोगों को भी करताहै । रस धातुको सब जगह पहुंचाने में तय्यार ॥ २६ ॥ और संपूर्ण शरीरमें घूमनेवाला तथा स्विद अर्थात् पसीना और रुधिर को बहानेवाला भी व्यान वायु चलना ऊपर होना नीचे होना और आंख का बन्द करना तथा खोलना इत्यादिक पांच प्रकारकी चेष्टा करताहै ॥ २० ॥
प्राणियों कि सब क्रिया प्रायः उसीमें बन्धरही हैं अर्थात् वायु के ही स्वाधीन हैं । बहुत चलना ऊपर लेजाना भरजाना मलादिकों का निकालना ॥२१॥ और धारण करना ये पांच चेष्टा वायुकी कही गई हैं । इसवास्ते वह वायु कुपित हुआ सब शरीर में फैले हुए रोगों को करता है ॥ २२ ॥
और जब ये तीनों वात पित्त कफ एक कालमें कोप को प्राप्त होवे निःसन्देह देहको नाश करते हैं ॥
देह को भिन्न करते हैं अर्थात् मार डालते हैं ॥ (क)

[अथ पित्तस्य स्वरूपमाह]

पित्त मुष्णं द्रवं पीतं नीलं सत्वगुणोत्तरम् ॥ सरं
कटु लघु स्निग्धं तीक्ष्ण मम्लन्तु पाकतः ॥२३॥

पीतन्निरामम् । (क) ॥ नीलं सामम् । एकं पित्तं वा-
तवन्नाम स्थान कर्म्म भेदैः पञ्चविधम् । (ख) ॥

[तेषां पित्तानां नामान्याह]

पाचकं रञ्जकञ्चापि साधकालोचके तथा ॥ भ्रा
जकञ्चेति पित्तस्य नामानि स्थान भेदतः ॥ २४ ॥

[अथ पाचकादीनां स्थानान्याह]

अग्न्याशये यकृत् प्लीन्हो हृदये लोचनद्वये ॥ त्व
चि सर्व्वे शरीरेषु पित्तं निवसति क्रमात् ॥ २५ ॥

भा० अनन्तर पित्तका स्वरूप कहते हैं ॥ पित्त उष्ण और द्रव अर्थात् पिघलने वाला तथा पीला और नीला और सत्व गुण प्रधान ऐसा है ॥ और सर अर्थात् रेचक कडुवा हलका स्निग्ध अर्थात् चिकना तीखा । तथा पाकमें अम्ल होता है ॥ २३ ॥ आम से रहित पित्त पीला होताहै (क) ॥ और आमके सहित पित्त नीला होताहै ॥ (ख) ॥ एक पित्त वायुके मानिंद नाम स्थान कर्म्म इन भेदों से पांच प्रकारका है ॥ उन पित्तों के नाम कहते हैं ॥ पाचक रंजक साधक आलोचक और भ्राजक इस प्रकार स्थानके भेद से नाम कहे गये हैं ॥ २४ ॥ अनन्तर पाचकादिकों के स्थान कहते हैं ॥ अग्न्याशय में पाचक पित्त और यकृत पिलही में रंजक पित्त तथा हृदय में साधक पित्त और दोनों नेत्रों में आलोचक पित्त त्वचामें भ्राजक पित्त इस क्रमसे सब शरीर में पित्त रहताहै ॥ २५ ॥

[अथ तेषां कर्माण्याह]

पाचकं पचते भुक्तं शेषाग्नि बलवर्द्धनम् ॥ रस
मूत्र पुरीषाणि विवेचयति नित्यशः ॥ २६ ॥

पाचकं पित्त माम पक्वाशय मध्यस्थं षड्विधमाहारं भी-

र्ज्यं भक्ष्यं चर्व्यं लेह्यं चूष्यं पेयं पचति दोषरसमूत्रपु रीषाणि पृथक्करोति च । (ख) ॥ तदग्न्याशयस्थ मेव स्वशक्त्या रसरञ्जनहृदयस्थ कफ तमोप नोदन रूपग्रहणप्रभा प्रकाशनाभ्यङ्गलेपादि पाचनाद्यग्निक र्म्मणां विशेषाणां पित्तस्थाना नामनुग्रहं करोति। (ग) शेषाण्यपि पित्तस्थानानि यकृत्प्लीहादीनि भागेन गत्वा तत्र तत्र रसरञ्जनादि कर्म्मभिरुप करोतीत्यर्थः ॥ (घ) ॥ कथम्भूतं पाचकं पित्तशेषाग्निबल वर्द्धनम् । शेषा अग्नयः पृथिव्यादि महाभूतगणाः (ङ)

भा० अनन्तर उनके कर्म्म कहतेहैं । पाचक पित्त भोजन कियेहुवे अन्न का परिपाक करता है । और शेष अर्थात् बाक़ी अग्नियों के बलको बढ़ा ने वालाहै । तथा प्रतिदिन रस मूत्र मल्ल इनको अलग करता है ॥ २६ ॥ पाचक पित्त आमाशय और पक्वाशय के बीच में रहनेवाला छः प्रकार के आहारको अर्थात भोजनकरने योग्यको भक्षण करनेयोग्य को चर्वण करनेयोग्यको चाटनेयोग्यको चूसनेयोग्यको और पीनेयोग्य को पकाता है और दोष रस मूत्र मल को अलग करता है ॥ (क) ॥
वह अग्न्याशय में रहनेवाला पित्त अपनी पाचन शक्ति से रसका रंगना । और हृदय में रहनेवाले कफ तथा तमको दूरकरना और रूपका ग्रहण करना कान्तिका प्रकाशकरना तथा अभ्यङ्ग लेपादिकोंका पाचनादि अग्निकर्म विशेष पित्तमें रहनेवालोंका उपकार करनाहै ॥ (ख) ॥
बाक़ीयों को भी अर्थात यकृत् पिलहि इत्यादिक पित्तके स्थानों में जाकर उन २ स्थानों में रस रंजनादि कर्मोंके द्वारा अनुग्रह करता है ॥ (ग) ॥
कैसाहै पाचक पित्त शेष अग्नियोंको । शेष ऐसे जो अग्नि अर्थात पृथि व्यादि महाभूत समुदाय ॥ (घ) ॥ जैसे कि चरक ने कहा है ॥ (ङ)

[यत उक्तं चरकेण ।]

भौमाप्याग्नेयवायव्याः पञ्चोष्माणः सनाभसा इति।
ऊष्माणः अग्नयः ॥ (क) ॥

[यत्र उक्तं वाग्भटे।]

दोषधातुमलादीनामूष्मेत्यात्रेयशासनमिति। (ख)
दोषधातुमलादीनामूष्मैवाग्निरित्यर्थः। (ग) ॥
रसादिधातुगता सप्त तेषां बलवर्द्धनम्। (घ) ॥

भा० भूमिसम्बन्धि जलसम्बन्धि अग्निसम्बन्धि वायुसम्बन्धि और आकाशसम्बन्धि इस प्रकार पाँच उष्मा अर्थात् अग्निहैं ॥ (क) ॥
और जैसे वाग्भट में कहाहै। दोष धातु मल इत्यादिकोंकी उष्मा होती हैं इस प्रकार आत्रेयजी का उपदेश है ॥ (ख) ॥
अर्थात् दोष धातु मल इत्यादिकों की उष्माही अग्नि हैं ॥ (ग) ॥
रसादि धातु में प्राप्त सात उष्मा उनके बल को बढ़ाने वाला है ॥ (घ) ॥

यथा गृहे स्थापितानि रत्नानि खद्योतवद् दूरभास्वराणि तान्यपि दीपज्योतिषा दूरप्रकाशकानि भवन्ति। तथा अग्न्याशयस्थ पाचकाग्नितेजसा सर्वे अग्नयो बलवन्तो भवन्ति। (ङ) ॥

[तथाच वाग्भटः।]

अन्नस्य पक्ता सर्वेषां पक्तॄणामधिको मतः ॥ त-
न्मूलास्ते हि तद्वृद्धिक्षयवृद्धिक्षयात्मका इति ॥ २७ ॥

भा० जैसे घरमें रक्खेहुवे रत्न पटवीजने के मानिंद दूरसे चमकदार मालूम होते हैं। परंतु वोभी दीपक के प्रकाश से दूर तक प्रकाश करने वाले होते हैं। उसीप्रकार अग्न्याशय में रहनेवाले पाचक अग्निके तेज़से सब अग्नि बलवान होती हैं ॥ (ङ) ॥   उसी प्रकार वाग्भट ने कहा है ॥

अन्न का पाक करनेवाला सब पकानेवालों में अर्थात् सब अग्नियों में मुख्य समझा गया है। वहीहै अर्थात् पक्वाशय में रहनेवाला पाचक अग्निही है जड़ जिनका ऐसेवे अग्नि उसके वृद्धि क्षयसे अर्थात् पाचक अग्निके वृद्धि और क्षयसे वृद्धि क्षय वाले होते हैं ॥ २७॥

ननु पित्तादन्योऽग्निराहोस्वित्पित्त मेवाग्निरिति सन्देहः। (क) ॥ उच्यते। पित्तस्योष्णादि गुणद्वाराहारपाचन रञ्जन दर्शनादि कर्म्मणश्च न खलु पित्तव्यतिरेकेणान्योऽग्निः। तस्मादग्निरूपस्यैव पित्तस्य स्थान भेदात्पाचक रञ्जक साधकालोचक भ्राजक संज्ञाः ॥ (ख) ॥

भा० यहांपर शंका करतेहैं कि पित्तसे अलग् अग्निहै या पित्त ही अग्नि है इस प्रकार सन्देह है ॥ (क) ॥ इसवास्ते कहता हूं। कि पित्त के उष्णादि गुणद्वारा आहारका पाचन और रञ्जन दर्शन इत्यादि कर्मोंसे पित्तके सिवाय दूसरा अग्नि नहीं है ऐसा निश्चय है ॥
तिस हेतु अग्निरूपही पित्तकी स्थानके भेदसे पाचक रंजक साधक आलोचक और भ्राजक ये संज्ञा हैं ॥ (ख) ॥

[तथाच वाग्भटः।]

पाचकं तिलमानं स्यात् काठिन्यान्नास्य दोषता।
अनुगृह्णात्यविकृतं पित्तं पाकोष्म दर्शनैः ॥ २८॥
क्षुत्तृट्रुचि प्रभा मेधा धी शौर्य्य तनु मार्दवैः ॥
पित्तं पञ्चात्मकं तत्र पक्वामाशय मध्यगम् ॥ २९॥

[और वाग्भट नें कहा है]

पाचक पित्त तिल प्रमाण है परंतु कठिनता से इसको दोषत्व नहीं हैं।

किंतु पाक ऊष्मा और दर्शन इनसे विकार रहित पित्त का उपकार करता है ॥ २८ ॥ क्षुधा तृषा रुचि कान्ति मेधा बुद्धि शूरता और शरीर का कोमलपन इनसे पक्वाशय और आमाशय के बीच रहनेवाला वह पित्त पंचात्मक अर्थात् पंच महाभूत स्वरूप कहा गया है ॥ २९ ॥

पञ्च भूतात्मकत्वेऽपि यत्तैजसगुणोदयम् ॥
त्यक्तद्रवत्वं पाकादिकर्म्मणानलशब्दितम् ॥ ३० ॥
पचत्यन्नं विभजते सारकिट्टौ पृथक् तथा ॥ त
त्रस्थमेव पित्तानां शेषाणामप्यनुग्रहम् ॥ ३१ ॥
करोति बलदानेन पाचकं नाम तत्स्मृतम् ॥

भा० जिस कारण पंच भूतात्मक धर्म होनेपर भी तैजस गुण अधिक वाला है। उस कारण द्रवत्व अर्थात् पिघलाव से रहित तथा पाकादि कर्म से अग्नि कहागया ॥ ३० ॥ अन्न को पकाता है और उसका सार तथा कीट को अलग करता है। और वहीपर रहनेपर रहनेवाले शेष पित्तोंपर बलदेने के द्वारा अनुग्रह करता है ॥ ३१ ॥ इससे पाचक नामसे कहा गया ॥

(क) ननु यदि पित्ताग्न्योरभेदस्तदा कथं घृतं पित्तस्य शमकमग्नेर्दीपकमिति। तथा मत्स्याः पित्तं कुर्व्वन्ति न च तेऽग्निदीप्तिकरा इति। तथा पित्ताधिक्यात्तीक्ष्णोऽग्निरित्यपि कथं स्यात्। तथा समदोषः समाग्निश्चे त्यपि वक्तुं न युज्यते। तथा द्रवं स्निग्धमधोगञ्च पित्तं वन्हिस्तोऽन्यथेति ॥ (ख) ॥

भा० (क) ननुशंका करतेहैं कि यदि पित्त और अग्नि एक ही है तब कैसे घृत पित्तका तो शमन करनेवाला और अग्निका दीपन करने वाला है।

और वैसेही मछलियाँ पित्तको करती हैं और अग्निको बढ़ानेवाली नहीं हैं। तथा पित्तकी अधिकता में तीक्ष्ण अग्नि भी कैसे होता है। वैसेही समदोष वाला सम अग्नि भी कहना ठीक नहीं है। तथा द्रव स्निग्ध नीचे जाने वाला पित्त है और इससे विपरीत अग्नि है ॥ (ख) ॥

अत्रोच्यते। पित्तमग्नेः सन्तताधिष्ठानम् ॥ (ग) ॥

[तथाचोक्तं तन्त्रान्तरे]

अग्निर्भिन्नगुणैर्युक्तः पित्तं भिन्नगुणैस्तथा ॥
द्रवं स्निग्धमधोगञ्च पित्तं वन्हिरतोऽन्यथा ॥ ३२॥
तस्मात्तेजोमयं पित्तं पित्तोष्मा यः स शक्तिमान् ॥
स सञ्चरति कुक्षिस्थः सर्वतो धमनीमुखैः ॥ ३३॥
स कायाग्निः स कायोष्मा स पक्ता स च जीवनम्।
अनन्यगतिरित्येवं देहे कायाग्निरुच्यते ॥ ३४॥

भा० यहांपर कहतेहैं। पित्त अग्निके निरन्तर रहने की जगह हैं। इस तरह पर कहाहै तन्त्रान्तर में। अग्नि और गुणोंसे युक्त और पित्त और गुणों से युक्त हैं। जैसे द्रव स्निग्ध और नीचे जानेवाला पित्त और इससे विपरीत अग्नि ॥ ३२॥ उस कारण पित्त तेज स्वरूप हैं ॥ और जो पित्तकी उष्माहैं वह शक्तिमान् हैं। वह कोख में रहनेवाला धमनी नाड़ियों के मुखसे सब स्थानों में संचार करताहै ॥ ३३॥ वह शरीर की अग्नि हैं। वह शरीर की ऊष्माहै वह पाक करनेवाला है और वह जीवन हैं। तथा एक गति इस प्रकार देहमें कायाग्नि कही गई हैं ॥ ३४॥

(अन्यच्च) वामपार्श्वाश्रितं नाभेः किञ्चित् सोमस्य मण्डलम् ॥ तन्मध्ये मण्डलं सौर्य्यं तन्मध्येऽग्निर्व्यवस्थितः ॥ ३५॥ जरायुमात्रप्रच्छन्नः का

चकोशस्थ दीपवत् ॥ ३५ ॥

[तथा च मधुकोषे]

(क) द्रवतेजःसमुदायात्मकस्यापि पित्तस्य तेजोभागोऽग्निरिति । तेन पित्तमप्यग्नि वन्मन्यते । अतितापितायोगोलकवत् । परमार्थतस्तु अग्निः पिताद्भिन्नस्वेति सिद्धान्तः ॥

भा० औरभी । नाभिके वाम पार्श्वके आश्रित छोटा सा सोम का मंडल है । उसके बीचमें सूर्य्यका मंडल है और उसके बीचमें अग्नि रहता है ॥ ३५ जरायु मात्र में ढकाहुवा है काँचके कोशके भीतर रहनेवाले दीयक के मानिंद ॥ ॥ उसतरह पर कहाहै मधुकोश में ॥

(क) द्रव और तेज इनके समुदाय स्वरूपवाले पित्तका तेजो भाग अग्नि हैं । तिस्से पित्तभी अग्निके मानिंद माना जाता है । बहुत तपाये हुवे लोहेके गोलेके मानिंद । परमार्थ से तो अग्नि पित्तसे अलग ही है । यह सिद्धान्त है ॥ (क) ॥

[अतएवाह रस प्रदीपे]

जाठरो भगवानग्नि रीश्वरोऽन्नस्य पाचकः ॥ सौक्ष्म्या द्रसानाऽऽददानो विवक्तुं नैव शक्यते ॥ ३६।
नाभि मध्ये शरीरस्य विशेषात्सोम मराडलम् ॥ सोम मराडल मध्यस्थं विद्यात्सूर्य्यस्य मडलम् ३७
प्रदीपवत्तत्र नृणां स्थितो मध्ये हुताशनः ॥ सूर्यो दिवि यथा तिष्ठं स्तेजो युक्तो गभस्तिभिः ॥ ३८ ॥

भा० इसवास्ते रस प्रदीप में कहाहै ॥ जठर में रहनेवाला भगवान् अग्नि अन्नका पाक करनेवाला ईश्वर सूक्ष्म भावसे रसोंको लेनेवाला है परन्तु विशेषकरके कह नहीं सकें ॥ ३६ ॥ शरीर की नाभिके बीचमें विशेषकर

के चन्द्र मंडल हैं। और चन्द्रमंडल के बीचमें रहनेवाला सूर्य्यमंडल जानना चाहिये ॥ ३७ ॥ दीवे के मानिंद मनुष्योंके बीच में अग्नि रहता है। जैसे सूर्य्य आकाश में रहकर तेज से युक्त ऐसी किरणों से सब जंगल और नदियों को सुखाता है ॥

विशोषयति सर्वाणि पल्वलानि सरांसि च ॥ तद्
च्छरीरिणां भुक्तं ज्वलनो नाभि माश्रितः ॥ ३८।३९
मयूखैः पचते क्षिप्रन्नानाव्यञ्जन संस्कृतम् ॥
स्थूलकायेषु सत्वेषु यवमात्रः प्रमाणतः ॥ ४० ॥

भा० वैसेही नाभिके आश्रित अग्नि अनेक प्रकार के व्यंजनों से संस्कार किये हुवे मनुष्यों के भोजन कियेहुवे को किरणों से पकाता है ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ बड़े शरीर वाले जीवोंमें जव बराबर रहता है। और छोटे शरीर वाले जीवों में तिल प्रमाण रहता है ॥ ४० ॥

ह्रस्वकायेषु सत्वेषु तिलमात्रः प्रमाणतः ॥ ४० ॥
कृमिकीट पतङ्गेषु वालमात्रोऽवतिष्ठत इति ॥
[पुनः प्रकृत मनुसरति]
रञ्जकं नाम यत्पित्तं तद्रसं शोणितं नयेत् ॥ यत्तु
साधक संज्ञं तत्कुर्य्याद् बुद्धिं धृतिं स्मृतिम् ॥ ४१ ॥
धृतिं मेधां यदालोचक संज्ञं तद्रूप ग्रहण कारणम्।

भा० तथा कृमि कीड़े पतंगे इनमें वाल बराबर रहता है ॥
॥ फिरसे उसको कहते हैं ॥
जो रंजक नाम पित्त है वह रसका रुधिर बनाता है। और जो साधकनाम पित्त है वह बुद्धि धृति स्मृति को करता है ॥ ४१ ॥ धृति अर्थात् मेधा। तथा जो आलोचक नाम पित्त है वह रूपके ग्रहण करने का कारण है ॥

भ्राजकं कान्तिकारी स्याल्लेपाभ्यङ्गादि पाचकम् ॥४२

[अथ श्लेष्मस्वरूपमाह]

श्लेष्मा श्वेतो गुरुः स्निग्धः पिच्छिलः शीतलस्तथा॥
तमोगुणाऽधिकः स्वादुर्विदग्धो लवणो भवेत् ॥४३॥
(क) एकः श्लेष्मा वातपित्ताविव नामस्थानकर्म्मभेदैः पञ्चविधः। (क) ॥

[अथ श्लेष्मणां नामान्याह]

कफस्यैतानि नामानि क्लेदनश्चाव लम्बनः॥ रसनः स्नेहनश्चापि श्लेष्मणः स्थानभेदतः॥४४॥

भा॰ और भ्राजक कान्तिका करनेवाला है तथा लेप और अभ्यंग आदियों का पाचक हैं ॥४२॥ अनंतर श्लेष्मा का स्वरूप कहते हैं ॥ (श्लेष्मा) कफ श्वेतहै भारीहै और स्निग्ध तथा फिस्लहटवाला है और शीतल तथा तमोगुण अधिक है मधुर और विदग्ध हुवा लवणहो जाहै ॥४३॥ (क) एककफ वात पित्तोंके मानिंद नाम स्थान और कर्म्म इन भेदोंसे पांच प्रकारका है ॥

[अनन्तर कफ के नाम कहते हैं]

स्थानोंके भेदसे कफ के येनाम हैं ॥ क्लेदन अवलंबन रसन स्नेहन और श्लेष्मण ॥४४॥

[अथ क्लेदनादीनां स्थानान्याह]

आमाशयेऽथ हृदये कण्ठे शिरसि सन्धिषु ॥ स्थानेष्विषु मनुष्याणां श्लेष्मा तिष्ठत्यनुक्रमात् ॥४५॥

भा॰ अनन्तर क्लेदादिकोंके स्थान कहते हैं ॥ आमाशयमें क्लेदन हृदयमें अवलंबन कंठमें रसन शिरमें स्नेहन और सन्धियोंमें श्लेष्मण इस क्रम

से मनुष्योंके इनस्थानों में श्लेष्मा रहना है ॥ ५५ ॥

(क) दोषाणां सकलशरीर व्यापिनामपि पञ्च पञ्च स्थानानीनि बाहुल्याभिप्रायेणोक्तानि ॥ (क) ॥

[तथाच वाग्भटः]

इति प्रायेण दोषाणां स्थानान्येकी कृतात्मनाम्। व्यापिनामपि जानीयात्कर्माणि च पृथक् पृथक् ॥ इति ॥ ५६ ॥ चरकश्च । ते व्यापिनोऽपि हृन्नाभ्यो रधोमध्योर्द्ध संश्रया इति ॥

भा० (क) सम्पूर्ण शरीर में फैलेहुवे भी दोषों के पाँच २ स्थान आधिक्याभिप्रायसे कहेगये हैं । उसी तरहपर कहा है वाग्भटने । इस प्रकार प्रायः करके सब शरीर में फैलेहुवे और मिले दोषोंके स्थान और अलग् अलग् कर्म्म इनको जानें ॥ ५६ ॥ इस प्रकार चरक ने भी कहाहै ॥ वे सम्पूर्ण शरीर में फैलेहुवे भी हृदय नाभिके नीचे और बीचमें तथा ऊपर रहते हैं ॥

[अथ तत्तत्स्थान गतस्य श्लेष्मणः कर्म्माण्याह]

क्लेदनः क्लेदयत्यन्नमात्मशक्त्या पराण्यपि ॥ ना अनुगृह्णाति च श्लेष्मस्थान्युदक कर्म्मणा ॥ ५७॥

(क) अयमर्थः क्लेदनोऽन्नं क्लेदयति तेन संहतमन्नं भेदं प्राप्नोति । अपराण्यपि श्लेष्मस्थानानि हृदयादीनि ॥ मार्गेण गत्वा तत्र तत्र हृदयावलम्बन संधारण रस ग्रहण समस्तेन्द्रिय तर्पण सन्धिसंश्लेषण द्युदक

कर्म्मभिरनुगृह्णाति उपकरोति ॥ (ख) ॥ तथाच
रसयुक्तात्मवीर्येण हृदयस्यावलम्बनम् ॥ त्रिक
सन्धारणं चापि विदधात्यवलम्बनः ॥ ४८ ॥

भा० अनन्तर उन २ स्थानों में प्राप्त कफ के कर्म्मों को कहते हैं। क्लेदन कफ अन्नको आर्द्र करता है और अपनी शक्ति से दूसरे श्लेष्म स्थानोंको भी उदक कर्मके द्वारा अनुग्रह करता है ॥ ४७ ॥ यह अर्थहै कि क्लेदन अन्नको गीला करता है उससे दृढ़ जुड़ाभी अन्न अलग होजाता है ॥ और भी श्लेष्म स्थान अर्थात् हृदयादिक ॥ मार्ग से वहां वहां पर जाकर हृदय का अवलंबन संधारण रसग्रहण सम्पूर्ण इन्द्रियोंका तर्पण अर्थात् तृप्त करना और संधियों का अच्छे प्रकार मेलन इत्यादिक उदक कर्म्मसे अनुग्रह करताहै ॥ (ख) ॥
औरभी। हृदय में रहनेवाला अवलंबन कफ रस से युक्त अपने सामर्थ्य से अवलंबन और त्रिक अर्थात् पीठकी हड्डी का नीचला हिस्सा उसका संधारण अर्थात् पकड़ना भी करता है ॥ ४८ ॥

(क) (त्रिकं शिरोबाहुद्वयसन्धिः)
उभावपि ततः सौम्यौ तिष्ठतश्चान्तिके यतः ॥
रसान्वितौ हि जानीतौ रसनारसनौ समौ ॥ ४९ ॥
(रसना रसनेन्द्रियं रसनः कण्ठस्थकफः।)
स्नेहनः स्नेहदानेन समस्तेन्द्रियतर्पणः ॥ श्ले
ष्मणः सर्वसन्धीनां संश्लेषं विदधात्यसौ ॥ ५० ॥

भा० (क) त्रिक अर्थात् शिर और दोनों भुजाओं की सन्धि जिससे कि सौम्यदोनों समीपमें रहते हैं तिस हेतु समान रसना अर्थात् जिव्हा और रसन अर्थात् कण्ठ में रहनेवाला कफ ये दोनों रस से युक्त जाने जाते हैं ॥ ४९ ॥
(रसना अर्थात् रसनेन्द्रिय रसनः अर्थात् कण्ठ में रहनेवाला कफ।)
स्नेहनकफ स्नेह दानसे अर्थात् तरावट देने से संपूर्ण इन्द्रियों को तृप्त

करताहै ॥ श्लेष्मण कफ सब संधियों को जोड़ताहै ॥ ५० ॥

[अथ धातुशब्दस्य निरुक्तिमाह]

रसे सप्त स्वयं स्थित्वा देहन्दधति यन् नृणाम् ॥
रसासृङ्मांस मेदोस्थि मज्जा शुक्राणि धातवः ॥ ५१ ॥
धातव इति धा धातोस्तु प्रत्ययः । (क्त) ॥

[अथ धातूनां कर्म्माण्याह]

प्रीणनं जीवनं लेपः स्नेहो धारण पूरणे ॥ गर्भो
त्पादश्च कर्माणि धातूनां कथितानि हि ॥ ५२ ॥

भा० [अनन्तर धातुशब्दकी निरुक्ति कहते हैं]
रस रुधिर मांस मेद अस्थि मज्जा और शुक्र ये सात आप रहकर मनुष्यों की देहको धारण करते हैं ॥ ५१ ॥ धातव इसमें धा धातुसे तु प्रत्यय होता है ॥ अनन्तर धातुवों के कर्म्म कहते हैं ॥ प्रीणन अर्थात् तृप्त करना जीवन अर्थात् प्राणका धारण करना लेप आर्द्र करना धारण करना भरना और गर्भका उत्पन्न करना ये कर्म्म क्रमके साथ अर्थात् रसका प्रीणन रुधिर का जीवन मांसका लेप मेदका स्नेह अस्थिका धारण मज्जा का पूरण और शुक्रका गर्भ उत्पन्न करना इस प्रकार कहे गये हैं ॥ ५२ ॥

[तत्र रसशब्दस्य निरुक्तिः]

यद्यथा रस धातुर्यस्ततोऽभवद्यो रसः ॥ स द्रवं
सकलं देहं रसतीति रसः स्मृतः ॥ ५३ ॥

भा० उसमें रस शब्दकी निरुक्ति कहते हैं। किंउ स्नि जो रस धातु जिस प्रकार जल का रस हुवा जिस हेतु द्रवके स हेन स हुरि। शरीर को आर्द्र करता है इस वास्ते रस कहागया ॥ ५३ ॥

[अथ रसस्य स्वरूपमाह]

सम्यक् पक्कस्य भुक्तस्य सारो निगदितोरसः ॥
स तु द्रवः सितः शीतः स्वादुः स्निग्धश्चलो भवेत्।५४
(क) सारो यथा गुड़ मधूक पुष्प बुब्बूलत्वग्वदरी मूला
दि भवः सारो मदिरा ॥ (क) ॥

[अथ रसस्य स्थान माह।]

सर्व्वदेह चरस्यापि रसस्य हृदयं स्थलम् ॥ स
मान मरुता पूर्व्वं यदयं हृदये धृतः ॥ ५५ ॥

भा० अनन्तर रस का स्वरूप कहते हैं। अच्छे प्रकार परिपाक हुवे भो जन कियेका जो सार वह रस कहा गयाहै। और वह रस द्रव अर्थात् वह जाने वाला है तथा श्वेत और शीत मधुर स्निग्ध और अस्थिर हो ताहै ॥ ५४ ॥ (क) सार जैसे गुड़ महुवे के फूल वबूल जिसको की कर कहते हैं उसकी छाल और वेरीकी जड़ इत्यादिकों से उत्पन्न हुवा सार अर्थात् मदिरा ॥ (क) ॥

[अनन्तर रसका स्थान कहते हैं।]

सम्पूर्ण शरीर में घूमनेवाले भी रसका स्थान हृदय है। क्यों कि पहिले य ह समान वायु के द्वारा हृदय में स्थापन किया गया ॥ ५५ ॥

[अथ रसस्य कर्म्माण्याह]

आरुह्य धमनीर्गत्वा धातून् सर्वानयं रसः ॥ पु
ष्णाति तदनु स्वीयैर्व्याप्नोति च तनुं गुणैः ॥ ५६ ॥
(क) गुणैः शीत स्निग्ध पोषकत्व गुणैः। (क)

भा० अनन्तर रसका कर्म्म कहतेहैं ॥ यह रस चढ़कर धमनियों में जा के सब धातुवों को पुष्ट करता है उसके पश्चात् अपने गुणों से शरीर में फै लता है ॥ ५६ ॥ (क) गुणों से अर्थात् शीत स्निग्ध और पोषकत्व गुणोंसे।

मन्दवन्हि विदग्धस्तु कट्वम्लो भवेद्रसः ॥ स कु
र्य्याद्विकुलान् रोगान् विषकार्यं करोत्यपि ॥ ५७ ॥

[अथ रक्तस्य स्वरूप माह]

यदा रसो यकृद्याति तत्र रञ्जक पित्ततः ॥ रागं पा
कं च संप्राप्य स भवेद्रक्त संज्ञकः ॥ ५८ ॥ रक्तं
सर्वशरीरस्थं जीवस्याधार मुत्तमम् ॥ स्निग्धं गुरु
चलं स्वादु विदग्धं पित्तवद्भवेत् ॥ ५९ ॥

(जीवस्याधार मुत्तम मिति)

भा० मन्दाग्नि से विदग्ध रस होता है अथवा कटु या अम्ल रस होता है। वह रस चक्रतसे रोगों को तथा विषके कार्य को करता है ॥ ५७ ॥

[अनन्तर रक्तका स्वरूप कहते हैं]

जब रस यकृत में अर्थात् कलेजे में जाता है तब वहांपर रञ्जक पित्तसे रंग और पाक को पाकर वह रस रक्त संज्ञक होता है ॥ ५८ ॥ रक्त सम्पूर्ण शरीर में रहनेवाला और जीवका आधार तथा श्रेष्ठ ॥ और स्निग्ध भारी अस्थिर और मधुर तथा विदग्धहुवा पित्तके सदृश होता है ॥ ५९ ॥

[जीवका आधार और उत्तम]

यत आह । जीवो वसति सर्वस्मिन्देहे तत्र विशेष
तः ॥ वीर्ये रक्ते मले यस्मिन् क्षीणे याति क्षयं क्षणा
दिति ॥ ६० ॥ (क) वीर्य्ये रक्ते मले च शरीरारंभके
वाग् भटोक्त परिमाणमिते मुख्ये जीवो वसति ननु दुष्ट
प्रदुष्टे रक्ते स्नावयोपदेशस्य वैयर्थ्य प्रसङ्गात् पित्त व
द्भवेत् । अम्लं भवेदित्यर्थः ॥ (क) ॥

भा० जैसे कि कहाहै । जीव संपूर्ण शरीर में रहताहै । और शुक्र में

रक्तमें मलमें रहना है परंतु जिसके क्षीण होनेसे क्षण में क्षयको प्राप्त हो जाते अर्थात् नाशको प्राप्त होता है उसमें विशेष करके रहना है ॥ ६०॥ (क) वाग्भटके कहेहुवे प्रमाणके बराबर शुक्र रक्त और मल ये शरीर के आरंभक हैं। अर्थात् इन्हींसे शरीर हुवा है। इस शुक्र में जीव रहताहै न कि दुग्ध में। क्यों कि वढ़नेमें रक्त निकालनेके उपदेश की व्यर्थता होगी इसवास्ते पिजवत् होता है अर्थात् खड़ा होता है ॥ (क)॥

[अथ रक्तस्य स्थानमाह]

यकृत् प्लीहा च रक्तस्य मुख्यस्थानन्तयोः स्थितम्।
अन्यत्र संस्थितवतां रक्तानां पोषकं भवेत् ॥ ६१॥

[अथ मांसस्य स्वरूपमाह]

शोणितं स्वाग्निना पक्वं वायुना च घनीकृतम्॥
तदेव मांसं जानीयात्तस्य भेदानपि ब्रुवे ॥ ६२॥

भा॰ अनन्तर रक्तका स्थान कहतेहैं॥ यकृत् और पिलही रक्त का मुख्य स्थान हैं॥ उनमें रहता हुवा और स्थानों में रहने वाले रक्तों का पोषण करने वाला होता है ॥ ६१॥

[अनन्तर मांस का स्वरूप कहते हैं]

निज अग्निसे परिपाक कियागया और वायु से गाढ़ा किया गया जो उसी को मांस कहते हैं और उसके भेदोंको भी कहता हूं ॥ ६२॥

(क) शोणितमिति शोणितस्थानगतत्त्वात् रस एव शोणितसंज्ञां लभते। एवमग्रे रसस्यैव मांसादिव्यपदेशः॥ [अथ मांसस्य पेशीमाह]

यथार्थं भूष्मणा युक्तो वायुः स्रोतांसि दारयेत्।

भा॰ (क) शोणितमिति। रुधिरके स्थानमें जानेसे रसही रुधिर संज्ञा को प्राप्त होताहै। ऐसेही आगे रसके ही मांसादिक नाम होते हैं॥ (क)॥

[अनन्तर मांसकी पेशी अर्थात् मांसके पिंड कहतेहैं]

ठीक २ गरमी से युक्त वायु स्रोतों को फाडता है और पश्चात् मांस में घुसकर पेशियों को अलग करता है ॥ ६३ ॥ अनुप्रविश्य पिशितं पेशी विंभजते तथा ॥ ६३ ॥ (यथार्थं यथा प्रयोजनम्)

[मांसपेशीनां संख्यामाह।]

मांसपेश्यः समाख्याता नृणां पञ्च शतानि हि।
तासां शतानि चत्वारि शाखासु कथितान्यथा ॥ ६४ ॥
कोष्ठे षडुत्तरा षष्टिः कथिता मुनिपुङ्गवैः ॥ ग्रीवा
या ऊर्ध्वगास्तास्तु चतुस्त्रिंशत् प्रकीर्त्तिताः ॥ ६५ ॥

भा० यथार्थं अर्थात् जैनना चाहिये ॥ मांस के पेशियों की संख्या कहते हैं ॥ मनुष्यों की मांस पेशी पान्सौ कहीगई हैं ॥ उनके चारसौ अर्थात् चारसौ मान्सपेशी चार शाखाओं में अर्थात् दोहाथ और दो पांव इनमें कहीगई हैं ॥ ६४ ॥ और कोष्ठमें छाँसठ बड़े मुनियों ने कही हैं ॥ तथा गलेके ऊपर जानेवाली वोह चौतीस कही गई हैं ॥ ६५ ॥

(क) ताः शाखागताः। [प्राह।]

(ख) एकैकस्यान्तु पादाङ्गुल्यां तिस्रस्तिस्रस्ताः पञ्चदश १५ पादाग्रे दश १० पादोपरि कूर्चसन्निविष्टा दश १० गुल्फतलयोर्दश १० गुल्फजानुनोरन्तरे विंशतिः २० जानुनि पञ्च ५ ऊरौ विंशतिः २० वंक्षणे दश १० एवमेकस्मिन् सक्थिनि शतं भवन्ति। एतेनेतर सक्थिबाहू-च व्याख्यातौ ॥ (ख) ॥

भा० (क) वोह अर्थात शाखामें प्राप्त। कहते हैं ॥ (क)
(ख) एक २ पांवकी उंगलियों में तीन २ मांस पेशी हैं इसे पांचों उंगलियोंमें वह पन्द्रह १५ हैं। पाँव के सिरेमें दश १० और पाँवके ऊपर कूर्च अर्थात

अंगुष्ठ और ऊंगलि के मध्यका ऊपर का भाग उस्से मिले हुवे दश १० गिट्टों के तलुवों मे दस १० गिट्टे और घुटनों के बीचमें बीस २० घुटने में पांच जांघ में वीस २० वंक्षण में अर्थात् कमर के नीचे के भागमें दस १० इस प्रकार एक सक्थि में सौ मांस की पेशी हैं ॥ इसी प्रकार दूसरी सक्थि और दोनों भुजा व्याख्या कियेगये ॥ (ख) ॥

[अथ कोष्ठगताः प्राह।]

(क) गुदे तिस्रः ३ शेफस्येका १ सेवन्यामेका १ वृषणयोर्द्वे २ स्फिजोः पञ्च ५ पञ्च ५ बस्ति मूर्द्धनि द्वे २ उदरे पञ्च ५ नाभ्यामेका १ पृष्ठोर्द्ध सन्निविष्टा उभयतः पञ्च ५ पञ्च दीर्घा ५ पार्श्वयोः षट् ६ वक्षसि दश १० अक्षको सौ प्रतिसमन्तात् सप्त ७। अक्षको अपु आ इति लोके अंसौ स्कन्धौ १ हृदि द्वे २ यकृति २ प्लीन्हि द्वे २ (नासायां द्वे २ नेत्रयोर्द्वे २ गण्डयोश्चतस्रः ४) तुण्डके द्वे २।

भा० अनन्तर कोष्ठ में प्राप्त हुवों को कहते हैं। (क) गुदामें तीन ३ लिंग में एक सेवनी अर्थात् लिंगके नीचे जो सीवन है उसमें एक १ अण्डकोशों में २ चूतड़ों में पांच पांच ५।५। पेडू के सिरपर दो २ उदर में पांच ५ नाभि में एक १ पीठके ऊपर मिले हुवे दोनों तरफ पांच पांच ५।५ दीर्घ। पसलियों में छ ६ वक्षस्थल अर्थात् छातीपर दस १० अक्षक अर्थात् असुवा और अंस अर्थात् कान्धा इनके आस पास सात ७। अक्षक अर्थात् अपुआ ऐसा लोक में कहते हैं और अंस अर्थात् कंधे। हृदय अर्थात् दिलपर दो २ यकृत् में दो २ पिलही में दो २ सूंडि में दो २ अनन्तर गले के ऊपर गई हुई को कहते हैं।

[अथ ग्रीवोर्द्ध गाः प्राह।]

(ख) ग्रीवायाञ्चतस्रः ४ हन्वोरष्टौ ८ काकलके एका

घण्टिकायामिति यावत्। गले एका १ तालुनि द्वे २ जिह्वायामेका १ ओष्ठयोर्द्वे २ नासायां द्वे २ नेत्रयो द्वे २ गण्डयोश्चतस्रः ४ कर्णयोर्द्वे २ ललाटे चतस्रः ४। शिरस्येका १ एवं मांसपेश्यः पञ्च शतानि भवन्ति।

भा० गलेमें चार ४ दोनों जवाड़ों में आठ ८ कण्ठमणि अर्थात् घंटिका में जिसको घांटी भी कहते हैं उसमें एक। तालू में दो २ जीभमें एक १ होठोंमें दो २ नाकपर दो २ आंख में २ गालोंपर चार ४ कानों में २ माथे पर चार ४ सिरमें एक १ इस प्रकार मांसकी पेशी अर्थात् पिंड ५०० हैं

स्त्रीणामपि भवन्त्येताः किन्तु विंशतिरुत्तराः॥
गर्भाशये गर्भमार्गे योनौ च स्तनयोरपि ॥ ६६॥

(क) एताः पञ्च शतानि मांसपेश्यः। अधिका विंशतिर्यथा। गर्भाशये तिस्रः ३ गर्भच्छिद्र संस्थिता शुक्रार्त्तव प्रवेशिन्यस्तिस्रः ३। योनावभ्यन्तरतो मुखाश्रिते प्रसृते द्वे २ योनावेव वहिर्निर्गते स्रोतः पार्श्व द्वयस्थिते वर्त्तुले योनिकर्णिकेति यावत्। द्वे २ स्तनयोः पञ्च ५ पञ्च ५ यौवने तासां वृद्धिर्भवति॥ (क)।

भा० औरतों की मांसकी पेशियां होती हैं। किन्तु वीस २० और होती हैं। गर्भमें और गर्भके मार्ग में योनि अर्थात् भगमें और स्तनों में भी॥ ॥ ६६॥ (क) ये पान्सौ मांसकी थैली है और वीस २० अधिक है। गर्भाशयें ३ गर्भके छिद्र में रहनेवाली और शुक्र आर्त्तवको प्रवेश करने वाली तीन ३ योनिके भीतरकी तरफ मुंहसे लगी फैली हुई दो २ योनिके ही बाहर निकलनेमें स्रोतके दोनों बगलमें रहनेवाली गोल जिसको योनिकर्णिका अर्थात् योनिके कान कहते हैं सो दो २ और स्तनोंमें पांच ५

पाँच ५ तारुण्य अवस्था में उनही की वृद्धि होती है ॥ (क) ॥

पुंसां पेश्यः पुरस्ताद्याः प्रोक्ता मेहन मुष्कजाः ॥
स्त्रीणामावृत्य तिष्ठन्ति फल मन्तर्गता हिताः ॥ ६७ ॥

(क) अस्यायमर्थः। पुंसां मेहन मुष्कयोश्च यास्ति स्रो मांसपेश्यः ॥ पूर्वे सुक्तास्ताः स्त्रीणां मेहन मुष्का भावात् फलं गर्भशमार्थं आवृत्य तिष्ठन्ति। (क) ॥

भा० पूर्व में पुरुषों के लिङ्ग और अराडकोश सम्बन्धी जो मांस पेशी कही गई वोह भीतर रहने वाली स्त्रियों के गर्भ लाभके अर्थ आवरण कर के रहती है ॥ ६७ ॥

(क) इसका यह अर्थ है कि पुरुषों के लिंग और अंडकोषों में जो तीन मांस पेशी पूर्व में कही गई थीं वो मांस पेशी स्त्रियों के लिंग और अंडकोषों के न होने से गर्भ लाभके अर्थ आवरण करके रहती हैं ॥ (क) ॥

[गयदासस्त्वाह।]

(ख) स्त्रीणां मांसपेश्य स्त्रिभिर्हीनानि पञ्चशतानि।

[तथा च भोजः]

पञ्चपेशी शतान्येव स्त्रीवर्ज्जं विद्धि भूमिप ! अ
तश्च तिस्रो हीयन्ते स्त्रीणां शेफसि मुष्कयोः ॥ ६८

[अथ मांसपेशीनां कर्माण्याह]

भा० गयदास कहते हैं कि। स्त्रियों की मांस पेशी तीन कम पानसौ ४९७ होती हैं ॥ (ख) ॥ वैसे ही भोजने कहा है।] हे राजा स्त्रियों को छोड़ कर अर्थात् पुरुषों ही की मांस पेशी पान सौ ही जानो। इसवास्ते स्त्रियों की तीन कम हैं लिंगमें और अंडकोषों में अर्थात् इनके नहोने से। ६८।

[अनन्तर मांसपेशी के कर्म्म कहते हैं]

शिरास्नाय्वस्थि पर्वाणि सन्धयश्च शरीरिणाम् ॥
पेशीभिः संवृतान्येव बलवन्ति भवन्ति हि ॥६९

[अथ मेदसः स्वरूपमाह]

यन्मांसं स्वाग्निना पक्वं तन्मेद इति कथ्यते ॥
तदतीव गुरु स्निग्धं बलकार्य्यति वृंहणम् ॥७०॥

[अथ मेदसः स्थानमाह]

मेदोहि सर्व्व भूतानामुदरेष्वस्थि संस्थितम् ॥
अत एवोदरे वृद्धिः प्रायो मेदस्विनो भवेत् ॥७१

भा० मनुष्यों के शिरा छोटेनसें स्नायु बड़ीनसें पर्व पोर सन्धि जोड़ ये सब मांस पेशीयों से लपेटीहुई ही बलवान हैं ॥ ६९ ॥

[अनन्तर मेदका स्वरूप कहते हैं]

जो मांस निज अग्निसे पकाहुवा है उसको मेद कहते हैं। वह बहुत भारी है और सचिक्कण तथा बल करनेवाला और वजन बढ़ने वाला है ॥७०

[अनन्तर मेदका स्थान कहतेहैं]

मेद सब जीवों के उदर में अस्थि से मिलाहुवा रहता है ॥ इसीवास्ते प्राय मेद वालों के उदर में ही वृद्धि होती है ॥ ७१ ॥

[अथास्थ्नः स्वरूपमाह]

मेदो यत् स्वाग्निना पक्वं वायुना चाति शोषितम्॥
तदस्थि संज्ञां लभते ससारः सर्व विग्रहे ॥७२॥

[अस्थि का स्वरूप कहते हैं]

जो मेद निज अग्निसे पका हुवा और वायु से बहुत शोषण किया हुवा होता है वह अस्थि संज्ञाको प्राप्त होता है। और वह सम्पूर्ण शरीर में सार है ॥७२

अभ्यन्तर गतैः सारै र्यथा तिष्ठन्ति भूरुहाः ॥ अ

स्थिसारै स्तथा देहा भ्रियन्ते देहिनो ध्रुवम् ॥७३॥

तस्माच्चिर विनष्टेषु त्वङ्मांसेषु शरीरिणाम् ॥ अ

स्थीनि न विनश्यन्ति सारा ह्येतानि सर्वथा ॥७४॥

भा० भीतर रहनेवाले सार अर्थात् जिसको साल कहते हैं । उस्से जैसे वृक्ष ठहरे रहते हैं । वैसेही अस्थि सार से देही देहों को धारण करते हैं ।७३॥ तिस कारण देहियों की त्वचा और मांस बहुत काल में नाश होने परभी अस्थियां नाशको नहीं प्राप्त होतीं इस्से येह सर्वथा सार हैं ॥ ७४ ॥

[अथास्थ्नां संख्यामाह ।]

शल्य तन्त्रेऽस्थि खण्डानां शतत्त्रय मुदाहृतम् ।

तान्ये वात्र निगद्यन्ते तेषां स्थानानि यानि च ॥७५॥

स विंशतिशतं त्वस्थ्नां शाखासु कथितं बुधैः ॥

पार्श्वयोः श्रोणि फलके वक्षः पृष्ठोदरेषु च ॥७६॥

भा० [अनन्तर अस्थियोंकी संख्या कहते हैं]
शल्य तन्त्र में अस्थियों के खंड तीनसौ ३०० कहे गये हैं । उनही को यहां पर कहते हैं । और जो उनके स्थान हैं उनको भी कहते हैं ॥ ७५ ॥ एक सेवीस अस्थियां शाखाओं में पंडितों ने कही हैं ॥ पसलियों में कटि प्रदेश में और वक्षस्थल में तथा पृष्ठ और उदर में भी ॥ ७६ ॥

जानीयाद्भिषगेतेषु शतं सप्तदशोत्तरम् ॥ ग्रीवा

यामूर्द्धगां विद्या दस्थ्नां षष्ठि स्त्रिसंयुतम् ॥७७॥

भा० इन स्थानों में वैद्य एकसौसतरह ११७ जाने। ग्रीवा में ऊपरकी तरफ़ जानेवाली अस्थियां तिरसठ ६३ जाने ॥ ७७ ॥

[तानि शाखागतान्याह]

(क) एकैकस्यां पादाङ्गुल्यां त्रीणि त्रीणि तानि पंच द-
श १५ पादतले पञ्चास्थि शलाकास्तदाधार भूतमेक
मस्थि १। एवं षट् ६ कूर्चे द्वे २ गुल्फे द्वे २ पार्ष्णावे
कम् १ जङ्घयोर्द्वे २ जानुन्येकम् १ ऊरावेकं एवं त्रिं
शदेकस्मिन् सक्थिनि भवन्ति।
एतेनेतर सक्थि बाहू च व्याख्यातौ ॥ (क)

[वह शाखाओंमें मांसोंको कहते हैं]

(क) एक एक पैरकी अंगुलियों में तीन तीन ३।३। अस्थियां हैं ॥ इस तरह पर पन्धरह होती हैं। पैरके तलुवे में पांच ५ अस्थियों की शलाका अर्थात् सलाइयां हैं। उनकी आधार भूत एक अस्थि हैं।
इस प्रकार छः६ अस्थियां हैं। पूर्वोक्त कूर्च्चस्थानमें २ टखनों में २ एडी में एक १ टांग में दो २ घुटने में एक १ और जांघ में एक १ इस प्रकार एक सक्थिमें तीस अस्थियांहैं। इसी तरहपर दूसरी सक्थि और दोनों भुजा व्याख्या किये गये ॥ (क) ॥

[अथ पार्श्वादिगतान्याह।]

(ख) पार्श्वयोः षट् त्रिंशत् ३६ ॥ शिश्ने भगे च एक
म् १ ॥ नितम्बयोरेकैकम् २ ॥ त्रिके एकम् १ ॥
वक्षस्यष्टौ ८ ॥ पृष्ठे त्रिंशत् ॥ ३० ॥ अक्षक संज्ञे द्वे २ ॥

॥ अथ ग्रीवोर्द्ध्वगतान्याह ॥

भा० अनन्तर पसलियों में प्राप्त अस्थियोंको कहतेहैं ॥ (ख) दोनों पसलियों में छत्तीस ३६ लिंगमें एक १ और भगमेंएक १ चूतड़ों में एक एक १। १। पूर्वोक्त त्रिकस्थानमें एक १ वक्षस्थलमें आठ ८ पीठ में तीस ३० अक्षक संज्ञ आघुवा में दो २।

[अनन्तर ग्रीवा के ऊपर प्राप्त अस्थियों को कहते हैं]

(ग) ग्रीवायां नव ९ कण्ठनाड्यां चत्वारि ४ हन्वो रे केकम् २ दन्ताः द्वात्रिंशत् ३२ ॥ नासायां त्रीणि ३ तालुन्येकं १ गण्डयोरेकैकं २ कर्णयोरेकैकम् २ ॥ भ्रुवोरेकैकम् २ शिरसि षट् ६ एतान्यस्थीनि पञ्च विधानि भवन्ति ॥ तानि यथा ।

भा० (ग) गले में ९ नौ ॥ कंठ नाड़ी में चार ४ । जबाड़ों में एक एक १।१। दांत बत्तीस ३२ नाक में तीन ३ तालु में एक १ गालों पर एक एक १।१। कानों में एक एक १।१। भुवों में एक एक १।१। सिर में छः ६ ये अस्थियां पांच प्रकार की होती हैं ॥ वोह जैसे ॥

तरुणानि कपालानि रुचकानि भवन्ति हि ॥
वलयानीति तानि स्युर्नलकानि च कानिचित् ॥७८
अक्षिकोश श्रुति घ्राण ग्रीवासु तरुणानि च ॥
शिरःशङ्ख कपोलेषु तात्वंसं प्रोथजानुनि ॥७९
कपालानि भवन्त्येषु दन्तेषु रुचिकानि च ॥
पाण्योः पार्श्व युगे पृष्ठ वक्षे जठर पादयोः ॥८०॥

भा० तरुण कपाल रुचक और वलय तथा कोई नलक ऐसे पांच प्रकार की होती हैं ॥ ७८ ॥ आंख कान नाक और गला इनमें तरुण होती हैं ॥ शिर शंख अर्थात मांथे पर की अस्थि और गाल इनमें तथा तालु कंधे और कमर इत्यादिक इनमें कपाल अस्थि होती हैं ॥७९॥ और दांतों में रुचक अस्थि होती हैं । हाथों में और दोनों पसलियों में तथा पीठ में वक्षस्थल में उदर में पावों में ॥ ८० ॥

(जानुनितम्बांस गण्डतालु शङ्ख शिरःसु कपालानि ॥

(दशनास्तु रुचका: शिर: शङ्ख कपालेषु तास्वंश प्रोयका दिषु ॥)

एतानि वलयानि स्यु र्नलकानि श्रृणुष्वऽधुना ॥ हस्त पादाङ्गुलितले कूर्च्चे च मणि बन्धके ॥ ८१ ॥
बाहुजङ्घाद्वये चापि जानीयान्नालकानि तु ॥

[अथास्थ्नां प्रयोजन माह]

मांसान्यन्त्रानि बद्धानि शिराभि: स्नायुभिस्तथा ॥
अस्थीन्यालम्बनं कृत्वा न शीर्य्यन्तिपतन्ति च ॥८२

भा० ये अस्थियां वलय हैं और अब नलकों को कहते हैं ॥
हाथ पैरों की अंगुलियों में और इन्ही के तलुवे में तथा पूर्वोक्त कूर्च में और पोंचेमें ॥ ८१ ॥ दोनों बाहु जंघा में भी नलक जाने ॥

[अस्थियों का प्रयोजन कहते हैं]

शिरा और स्नायु से बन्धी हुई मांस और आँतें अस्थियों को अवलंबन करके नक्षीण होती है न गिरती हैं ॥ ८२ ॥

[अथ मज्जा स्वरूप माह]

अस्थि वन् स्वाग्निना पक्वं तस्य सारो भवेद्घन: ॥
य: स्वेदवत् पृथग् भूत: समज्जे त्यभिधीयते ॥८३॥

[अथ मज्जा स्थान माह]

स्थूलास्थिषु विशेषेण मज्जात्वभ्यन्तरे स्थित: ॥

भा० अनन्तर मज्जाका स्वरूप कहते हैं ॥ जो अस्थि निज अग्नि से पकी हुई हैं उसका सार अर्थात् सत गाढ़ा होता है । उसमें से जो पसीने की मानिंद अलग हुवा वह मज्जा ऐसा कहलाता है ॥ ८३ ॥
अनंतर मज्जा का स्थान कहते हैं ॥ स्थूलास्थि में भीतर विशेषकरके मज्जा

[अनन्तर ग्रीवाके ऊपर प्राप्त अस्थियोंको कहते हैं]

(ग) ग्रीवायां नव ९ कण्ठनाड्यां चत्वारि ४ हन्वो रे केकम् २ दन्ताः द्वात्रिंशत् ३२ ॥ नासायां त्रीणि ३ तालुन्येकं १ गण्डयोरेकैकं २ कर्णयोरेकैकम् २ ॥ भ्रुवोरेकैकम् २ शिरसि षट् ६ एतान्यस्थीनि पञ्च विधानि भवन्ति ॥ तानि यथा ।

भा० (ग) गले में ९ नौ ॥ कंठ नाड़ी में चार ४ । जवाड़ों में एक एक १।१। दांत बत्तीस ३२ नाक में तीन ३ तालु में एक १ गालों पर एक एक १।१। कानों में एक एक १।१। भवों में एक एक १।१। सिर में छः ६ ये अस्थियां पांच प्रकार की होती हैं ॥ वोह जैसे ॥

तरुणानि कपालानि रुचकानि भवन्ति हि ॥
वलयानीति तानि स्युर्नलकानि च कानिचित् ॥७८
अक्षिकोश श्रुति घ्राण ग्रीवासु तरुणानि च ॥
शिरःशङ्ख कपोलेषु ताल्वंसं प्रोथ जानुनि ॥७९
कपालानि भवन्त्येषु दन्तेषु रुचिकानि च ॥
पाण्योः पार्श्व युगे पृष्ठे वक्षे जठर पादयोः ॥८०॥

भा० तरुण कपाल रुचक और वलय तथा कोई नलक ऐसे पांच प्रकार की होती हैं ॥ ७८ ॥ आँख कान नाक और गला इनमें तरुण होती हैं ॥ शिर शंख अर्थात माथे पर की अस्थि और गाल इनमें तथा तालु कंधे और कमर इत्यादिक इनमें कपाल अस्थि होती हैं ॥७९॥ और दांतों में रुचक अस्थि होती हैं । हाथों में और दोनों पसलियों में तथा पीठ में वक्षस्थल में उदर में पावों में ॥ ८० ॥

(जानुनितम्बांस गण्डतालु शङ्ख शिरःसु कपालानि॥

(दशनस्तु रुचका: शिर: शङ्ख कपालेषु तात्वंश प्रोथका दिषु ॥)

एतानि वलयानि स्यु र्नलकानि ब्रुवेऽधुना ॥ हस्त पादाङ्गुलि तले कूर्चे च मणि बन्धके ॥ ८१ ॥
बाहुजङ्घाद्वये चापि जानीयान्नालकानि तु ॥

[अथास्थ्नां प्रयोजन माह]

मांसान्यन्त्राणि बद्धानि शिराभि: स्नायुभिस्तथा ॥
अस्थीन्यालम्बनं कृत्वा न शीर्य्यन्तिपतंति च ॥८२

भा० ये अस्थियां वलय हैं और अब नलकों को कहते हैं ॥
हाथ पैरों की अंगुलियों में और इन्हीं के तलुवे में तथा पूर्वोक्त कूर्च में और पोंचे में ॥ ८१ ॥ दोनों बाहु जंघा में भी नलक जानें ॥

[अस्थियों का प्रयोजन कहते हैं]

शिरा और स्नायु से बन्धी हुई मांस और आंतें अस्थियों को अवलंबन कर के नष्ट होती हैं न गिरती हैं ॥ ८२ ॥

[अथ मज्जास्वरूप माह]

अस्थिवत्स्वाग्निना पक्व तस्य सारो भवेद्घन: ॥
य: स्वेदवत् पृथग् भूत: समज्जे त्यभिधीयते ॥८३॥

[अथ मज्जास्थान माह]

स्थूलास्थिषु विशेषेण मज्जात्वभ्यन्तरे स्थित: ॥

भा० अनन्तर मज्जाका स्वरूप कहते हैं ॥ जो अस्थि निज अग्नि से पकी हुई हैं उसका सार अर्थात् सत गाढ़ा होता है। उसमें से जो पसीने की मानिंद अलग हुवा वह मज्जा ऐसा कहलाता है ॥ ८३ ॥
अनंतर मज्जा का स्थान कहते हैं ॥ स्थूलास्थि में भीतर विशेष करके मज्जा

यहनीहै ॥ [अनन्तर शुक्र की उत्पत्ति कहते हैं]

अथ शुक्रस्योत्पत्तिमाह।

रसाद्रक्तं ततो मांसं मांसान्मेदः प्रजायते ॥ मेदसो ऽस्थि ततो मज्जा मज्ज्ञः शुक्रस्य सम्भवः ॥ ८४॥

(शुक्रस्येति वचनेन शुक्र सम्भव मुक्तम्।)

(क) ननु मासेन रसः शुक्रो भवति स्त्रीणां चार्त्तवं भवतीति। सुश्रुतस्यैव वचनेन रसादेव शुक्रस्योत्पत्ति रुच्यते। (ख) तदेतत्कथं सङ्गच्छते इदमेव सन्देहं दूरी कर्त्तु माहारादेर्गतिं परिणामं चाह ॥

भा० रस से रक्त होता है उससे मांस मांससे मेद। मेदसे मज्जा तथा मज्जा से शुक्र की उत्पत्ति होती है ॥ ८४ ॥
(शुक्र का इस वचन से शुक्र का सम्भव कहा गया)
(क) ननु कोई कहते हैं कि महीने में रससे शुक्र होता है ॥ और स्त्रियों का आर्त्तव महीने में होता है ॥ इस प्रकार सुश्रुत के कहने से रससेही शुक्र की उत्पत्ति कही है ॥ (क)
(ख) तिस्से यह क्योंकर ठीक हो सक्ता है ॥ इसी सन्देह को दूर करने अर्थ आहारादिकों की गति और परिणाम को कहते हैं ॥

यात्यामाशय माहारः पूर्वं प्राणानिलेरितः ॥ माधुर्य्यं फेन भावं च षड्रसोऽपि लभेत सः ॥ ८५॥

(क) आहार इत्यत्र आह्रियते इत्याहारः ॥ अकर्त्तरि च कारके) संज्ञाया मिति सूत्रेण कर्म्मणि घञ्।)
स च षट् विधः। तथा च।

प्रथम प्राण वायुके द्वारा भेजाहुवा आहार आमाशय मेंजाताहै।वह आहार छः रसोंसे युक्त भी क्षणमात्र मधुरता को प्राप्त होताहै ॥ ८५॥ (क) (आहार यहांपर आहरण किया जाताहै इस प्रकार आहारहै। अकर्त्तरि च कारके संज्ञायां इस सूत्रसे कर्म्म में घञ् होताहै।) वह आहार छः प्रकारका है। उस प्रकार कहाहै।

आहार्य्यं षट्विधं भोज्यं भक्ष्यं चर्व्यन्तथैवच॥
लेह्यं चोष्यं तथा पेयं तदुदाहरणानि तु॥८६॥
भोज्य मोदन सूपादि भक्ष्यं मोदक मण्डकम्॥
चर्व्यं चिपिट धान्यादि रसालादि तु लेह्यते॥८७॥
चोष्य माम्र फलेक्ष्वादि पीयते पानकं पयः॥

भा० आहार करनेके योग्य छः प्रकारके हैं भोज्य,भक्ष्य चर्व्य लेह्य चोष्य पेय। उसका उदाहरण कहते हैं॥ ८६॥ चावल दाल इत्यादि भोज्यहैं॥ और मोदकादिक भक्ष्यहैं तथा चर्व्य चिड़वा और लावा इत्यादि क तथा रसालादिक चाटे जातेहैं॥ ८७॥ और आम्रफल गन्ना इत्यादि क चोष्यहैं अर्थात् चूसने योग्यहैं। और पानीका पीना तथा दूध पीया जाताहै॥

[आमाशय माह चरकः।]

नाभिस्तनान्तरे जन्तो राहु रामाशयं बुधा इति।

[अत्र विशेष माह।]

नाभेर्वितस्ति मात्रं च कण्ठ देशात् षडङ्गुलम्॥

भा० आमाशय को चरक कहतेहैं। पंडित नाभि और स्तनके बीच में आमाशय को कहते हैं॥ इसमें विशेष कहतेहैं॥ नाभिसे वितस्त भर कंठ देश से छः अंगुल॥

उरसस्तद् विजानीयात् शेषे तु हृदयं मतम् ॥८८॥
उरो रक्ताशयस्तस्मादधः श्लेष्माशयः स्मृतः ॥
आमाशयस्तु तदधस्तदधो दहनाशयः इति ॥८९॥
(क) (प्राणानिलेरित इति। हृदयाधिष्ठानेन प्राणनाम्ना वायुना मुखं गतेनान्तः प्रवेशितः।)
[तथा च सुश्रुतः।]

भा० उसको उर जानना चाहिये और बाकी को हृदय कहते हैं ॥८८॥ उर को रक्ताशय कहते हैं। और उसके नीचे श्लेष्माशय कहाहै। उसके नीचे आमाशय और आमाशय के नीचे पक्काशय इस प्रकार कहाहै ॥८९॥ (प्राणवायु से प्रेरित अर्थात् हृदय में रहनेवाले प्राण नाम मुख में प्राप्त वायु से भीतर कियागया। उस तरह पर सुश्रुत ने कहा है ॥

यो वायुः प्राणनामासौ मुखं गच्छति देहधृक् ॥
सोऽन्नं प्रवेशयत्यन्तः प्राणांश्चाप्यवलम्बते ॥९०॥
(क) क्लेदननामा कफः क्लेदयति क्लेदनात्संहतं भिनत्ति च। [उक्तं च सुश्रुते।]
क्लेदनः क्लेदयत्यन्नं संहतं च भिनत्त्यन्न इति।
(क) स आहारः षड्रसोऽप्यामाशये माधुर्य्यं लभते आमाशयस्थस्य मधुरस्य कफस्य योगात् ॥ (क)

भा० शरीर को धारण करनेवाला जो प्राणनाम वायु मुख में जाता है। वह अन्न को भीतर करता है और प्राणोंको अवलंबन भी करता है ॥ ९० ॥ (क) क्लेदन नाम कफ आर्द्र करता है और कठिन अन्न को ढीला करता है।
[सुश्रुत में कहाहै]

क्लेदन अन्नको आर्द्र करताहै और कठिन हुवे को ढीला भी करताहै । (क)
(क) वह आहार षट्रस वाला भी आमाशय में मधुरता को प्राप्त होता है
क्यों कि आमाशय में रहनेवाले मधुर कफके योग से । (क) ॥

[उक्तञ्च श्लेष्म स्वरूपम्]

श्लेष्मा श्वेतो गुरुः स्निग्धः पिच्छिलः शीतल
स्तथा ॥ तमो गुणाधिकः स्वादु र्विदग्धो लवणो भ
वेदिति ॥ ६१ ॥

(क) फेण भावञ्च लभते जठरानल तेजसा ।

भा० कफ का स्वरूप कहा है । कफ सुफेद है भारी है तरहै पिच्छिल
अर्थात् फिस्लापनवाला है तथा ठंडा है और तमोगुण अधिक वाला है
तथा मधुर है और विदग्धहुवा लवण होता है ॥ ६१ ॥ तथा,
(क) जठराग्नि के तेज से फेन भाव को प्राप्त होता है । अर्थात् कागसा
होजाता है ॥ (क) ॥

[यत आह वाग्भटः ।]

सन्धुक्षितः समानेन पचत्यामाशय स्थितम् ॥
औदर्य्योऽग्निर्यथा बाह्यः स्थालीस्थं तोयतण्डुल
मिति ॥ ६२ ॥ (क) अथ सं स्वाहारः प्राण
वायुना प्रेरितस्ततः किञ्चित् १स्खलितः पाचका
रव्य पित्तोष्मणा यत्पक्कोऽम्लरसो भवति ।

भा० जैसा कि वाग्भट ने कहा है । जैसे प्रज्वलित बाह्याग्नि अर्थात्
लौकिकाग्नि बटुवे में के जल से संयुक्त चावलों को पकाता है ।
वैसे समान वायु से तेज किया हुवा जठराग्नि आमाशय में स्थित अन्न
को पकाता है ॥ ६२ ॥ (क) अनन्तर वही आहार प्राणवायु से

प्रेरितहुवा थोड़ा २ गिरताहुवापाचकाख्य पित्तकी उष्मां से जो पकताहै वह खट्टा रसहोता है ॥ (क) ॥

उक्तं च । (ख) अथ पाचक पित्तेन विदग्धं चाम्लतां व्रजे न् । (ग) पाचक पित्तेन पाचक पित्तस्योष्मणा । ततः स एवाहारो नाभि मण्डला धिष्ठानेन समान नाम्ना वा युना प्रेरितो ग्रहणी मभि नीयते ॥

भा० कहाहै । (ख) अनन्तर पाचक पित्तसे विदग्धहुवा अम्ल ताको मा सहोता है ॥ (ग) पाचक पित्तसे अर्थात् पाचक पित्तकी उष्मां से । वही वही आहार नाभि मण्डल में रहनेवाले समान नाम वायु से प्रेरितहु- वा ग्रहणी में पहुंचाया जाता है ॥ (ग) ॥

[ग्रहणी लक्षण माह ।]

षष्ठी पित्त धरा नाम या कला परि कीर्तिता ॥ आम पक्वा शयां तस्यां ग्रहणी सा ऽभि धीयते ॥ ६३॥

(क) पित्त धरा पाचकाख्यं पित्तं यदग्न्या धिष्ठानं तद्धार यति तत्र ग्रहण्या मामाशय पक्वाशय मध्यवर्त्ति पा चकाख्य पित्ताधिष्ठाने नाग्निनाहारः पच्यते सकटूष्म भवति ॥

[ग्रहणी का लक्षण कहते हैं]

भा० जो छठी पित्त धरा नाम कला कही गई थी । वो उस आमाशय पक्वा शय में ग्रहणी ऐसी कही गईहै ॥ ६३॥ (क) पित्तधरा जो अग्नि के अधिष्ठान पाचकनाम पित्तको धारण करती है ॥ उस ग्रहणी में पक्वा- शय के बीच रहनेवाला पाचकाख्य पित्त के अधिष्ठान अग्नि के द्वा रा जो आहार पकता है वह कटूष्मा होता है ॥

तथा च । अन्नस्य पच्यते कोष्ठे वन्हिना जायते

कटु रिति। अयमर्थः। (ग) आहारो ग्रहण्यां कोष्ठ वन्हिना ग्रहणी स्थित पाचक पित्तेन वन्हिना पच्यते पच्यमानः स ग्रहणी स्थितस्य कटुरसस्य यो गात् कटु भवति॥ (घ) एतदाहार पाके विशेष माह। शरीरं पाञ्च भौतिकम्। तत्र पञ्चसु भूतेषु पञ्चाग्नय स्तिष्ठन्ति।

भा॰ (ख) वैसेही। ग्रहणी में कोष्ठाग्नि से जो पकता है वह कटु हो ता है। (ग) यह अर्थ है कि आहार ग्रहणी में कोष्ठाग्नि से अ-र्थात् ग्रहणी में रहनेवाले पाचक पित्त रूपी वन्हीसे पकता है। वह पकाहुवा ग्रहणी में रहने वाले कटुरस के योग से कटु होताहै॥ (घ) इस आहार के पाक विशेष कहते हैं। शरीर पंच भूतसे बना हुवा है। उन् पांचों भूतों में पांच अग्नि रहती हैं।

उक्तं चरकेन भौमाप्याग्नेय वायव्या पञ्चोष्माणः सनाभसाः। पञ्चाहार गुणान् स्वान् स्वान् पार्थिवा दीन् पचन्त्यनु। (क) अत्रोष्म पदेनाग्नि रुच्यते।

आहारोऽपि पाञ्च भौतिकः तत्र पाचक पित्तस्ये नाग्निनोत्तेजितेन शरीर वर्त्तिना भूभागाग्नि नाहार वर्त्ति भूभागः पच्यते। पक्वो भूभागः स्वकीयान् गु-णानभि वर्द्धयति। एवं

भा॰ चरक ने कहा है। भूमि संबन्धि जल संबन्धि अग्निसंबन्धि वायु-सम्बन्धि और आकाश सम्बन्धि येह पांच उष्मा हैं॥ पार्थिवादिक अपने २ पांच आहार गुणोंको पकाते हैं॥ ६४॥ (क) यहां पर उष्मा शब्द से अग्नि कही है। पकाहुवा पृथ्वीका अंश अपनेगुणों को बढ़ाता है इस प्रकार जलादिक के भाग भी पकते हैं।

जलादि भागा अपि पच्यन्ते ।

[तथाच सुश्रुते]

पञ्च भूतात्मके देहे आहारः पाञ्चभौतिकः ॥
विपक्वः पञ्चधा सम्यग् गुणान् स्वानभिवर्द्धये
दिति ॥ ६५ ॥

(क) गुण शब्देनात्र गुणिनः पृथिव्यादय उच्यन्ते। तेन गुणान् शरीर वर्त्तिनः पार्थिवादीन् भागानभिव र्द्धयेदित्यर्थः।

भा० वैसेही सुश्रुत में कहाहै । पंच भूतवाले शरीर में पंच भूत से बनाहुवा आहार पकाहुवा पांच प्रकार अच्छीतरह से अपने अपने गुणों को बढ़ाताहै ॥ ६५ ॥ (क) गुणशब्द से यहां पर गुणवाले पृथिव्यादिक कहे गयेहैं । उस्से गुणों को अर्थात् शरीर में रहनेवाले पार्थिवादि भागों को बढ़ाना है ॥

(ख) एव महोरात्रेण पक्व आहारो मिष्टः पटुश्च मधुरो भवति। अम्लस्त्वम्लो भवति। (ग) कटु तिक्तः कषायश्च कटुर्भवति। उक्तञ्च,

मिष्टः पटुश्च मधुर मम्लोऽम्लं पच्यते रसः ॥ कटुतिक्त कषायाणां विपाको जायते कटुरिति। ६६॥

भा० (ख) इस प्रकार दिन रात में पकाहुवा मधुर और पटु अर्थात् लवण आहार मधुर होता है । तथा अम्ल अर्थात् खट्टा आहार पककर के खट्टा ही होताहै ॥ (ग) और कटु अर्थात् चरपरा तथा तीता और कसैले पककर चरपरा होता है ॥

कहाहै । मधुर लवण रसका पकके मधुर होताहै और कटु तिक्त क षायोंका विपाक प्रायः कटु होता है ॥ ९६ ॥

(क) एवं विपक्कस्याहारस्य सारो निगदितो रसः शे षो ग्रहणीस्थो मलद्रवः मलद्रवस्य जलभागः शि राभिर्नस्तिं नीतो मूत्रं भवति । उक्तञ्च ।

आहारस्य रसः सारः सारहीनो मलद्रवः ॥
शिराभिस्तज्जलं नीतं वस्तिं मूत्रत्वमाप्नुयात् ॥ ९७॥
शेषं किट्टञ्च यत्तस्य तत्पुरीषं निगद्यते ॥ स
मानवायुना नीतन्तिष्ठति मलाशये ॥ ९८ ॥

भा० इस प्रकार पकेहुवे आहारका सार रस कहा गया है ॥ वाकी ग्र हणीमें रहनेवाला मैला अरक उस मैले अरक का जलका भाग शिराओंके द्वारा वस्ति अर्थात् पेड़ूमें पहुंचा हुवा मूत्र होता है ।क कहाहै । आहारका सार रस होताहै और सारहीन मल द्रव कहलाता है । शिराओंके द्वारा वह जल वस्तिमें पहुंचा मूत्रको प्राप्त होता है ॥ ॥ ९७ ॥ और वाकी उसका जो किट्टहै वह मल कहलाता है ॥ समान वायुके द्वारा पहुंचाया गया वह मलाशयमें रहता है ॥ ९८ ॥

(ख) तत्र मलाशये नापानवायुना प्रेरितं मूत्रं मेढ़ भगमार्गेण । पुरीषं गुदमार्गेण शरीराद्वहिर्य्याति ।
उक्तञ्च । मूत्रञ्चोपस्थमार्गेण पुरीषं गुदमार्गतः ॥
अपानवायुना क्षिप्तं वहिर्याति शरीरतः ॥ ९९ ॥

भा० उस मलाशय में अपानवायु से प्रेरणा किया हुवा मूत्र लिंग और भगके मार्ग से तथा गुदमार्ग से मल शरीर के वाहर निकलताहै ॥ कहाहै ॥ लिंग मार्ग से मूत्र और गुद मार्ग से मल अपानवायु से फेंका हुवा शरीर से वाहर निकलता है ॥ ९९ ॥

(क) उपस्थः शिश्नो भगश्च । रसस्तु समान वायुना प्रेरितो धमनीमार्गेण शरीरारम्भकस्य रसस्य स्थानं हृदयं गत्वा तेन सह मिश्रितो भवति । उक्तञ्च ।

रसस्तु हृदयं याति समान मरुतेरितः ॥ स तु व्या
नेन विक्षिप्तः सर्वान् धातून् विवर्द्धयेत् ॥ ९९ ॥
केदारेषु यथा कुल्याः पुष्णान्ति विविधौषधीः ॥
तथा कलेवरे धातून् सर्वान् वर्द्धयते रसः ॥ १०० ॥

भा० (क) उपस्थ । लिंग और भग । रस समान वायु से प्रेरण किया हुवा धमनी मार्ग से शरीर का आरंभ करनेवाले रस के स्थान हृदय में जाकर उसके साथ मिश्रित होता है ॥ समान वायु से प्रेरित हुवा रस हृदय में जाता है । वह रस व्यानवायु से फेंका गया सब धातुओं को बढ़ाता है ॥ ९९ ॥ जैसे खेतों में नाना प्रकार की औषधियों को नहरें पुष्ट करती हैं । वैसेही शरीर में सब धातुओं को रस बढ़ाता है ॥ १०० ॥

(रसस्तु तत्र तत्र त्रिधा विभज्यते ।)

उक्तञ्च चरके । स्थूलः सूक्ष्मस्तन्मलश्च तत्र तत्र
त्रिधा रसः ॥ स्वंस्थूलोऽंशः परं सूक्ष्मस्तन्मलो
याति तन्मलम् ॥ १ ॥

(क) अयमर्थः । स्थूलोऽंशः स्वं याति यथास्थितस्ति ष्ठति सूक्ष्मस्त्वंशः परं द्वितीयं धातुं याति तन्मलः रसादिमल । तन्मलं शरीरारम्भकं तत्तद्धातुमलं यातीत्यर्थः ।

भा॰ रसको उन उन स्थानोंमें तीन प्रकारसे विभाग किया जाताहै ॥
चरकमें कहाहै । स्थूल सूक्ष्म और उनका मल इस प्रकार उन उन स्थानोंमें रस तीन प्रकार होता है । आप स्थूल अंश रहता है और सूक्ष्म अंश दूसरी धातुमें जाताहै तथा उन उन धातुवोंके मल शरीर के आरम्भक कफ पित्त प्रस्वेदादि होजाते हैं ॥ २०१ ॥
(क) यह अर्थहै । स्थूल अंश आप होजाताहै अर्थात् यथा रि न रहताहै । और सूक्ष्म अंश दूसरी धातु में जाता है । तथा उनका मल अर्थात् रसादियों का मल उनका मल आर्थात् शरीर के आरम्भक, उन २ धातुवों का मल होजाता है ॥

यथा लौकिकाग्निनेक्षुरसः पच्यते तथा शरीरारम्भकस्य रसस्याग्निनाहाररसः पच्यते पच्यमानः स पञ्चाहोरात्रान् सार्द्धदण्डमेकञ्च यावत् प्राक्तन रसधातावेव तिष्ठति । उक्तं च सुश्रुते ।
(ख) स खलु रसः त्रीणि त्रीणि कलासहस्राणि पञ्चदश कला एकैकस्मिन्धातावुपतिष्ठते । अत्र कलानां विंशतिः मुहूर्तः स च दण्डद्वयात्मकः ।
तथा च भोजः । धातौ रसादौ मज्जान्ते प्रत्येकं क्रमतो रसः ॥ अहोरात्रात् स्वयं पञ्च सार्द्धं दण्डं च तिष्ठति ॥
॥२०२॥ (क) प्रत्येकमेकैकस्मिन्नित्यर्थः । ततो यथा पच्यमानादिक्षुरसान्मलो निर्गच्छति । तथा

भा॰ जैसे लौकिकाग्नि से गन्नेका रस पकाया जाता है वैसे शरीरके आरम्भक रसकी अग्निसे आहार का रस पकाया जाताहै ।
पकाहुवा वह रस पांच दिन और डेढ़ घड़ी तक पहली धातु में ही रहता है ।

पच्यमानाद्दाहाररसान्मलो निर्गच्छति स: कफ:।

भा० सुश्रुतमें कहा है। (ख) वह रस तीन तीन कला सहस्र और पंन्द्रह कला एक एक धातु में रहता है। यहाँ पर वीस कला का मुहूर्त होता है। वह दो घड़ी का होता है। उस तरह पर भोजने कहा है। रस आप क्रमके साथ मज्जा तक हर एक रसादि धातु में पांच दिन डेढ़ घड़ी रहता है ॥ १०२ ॥

(क) प्रत्येक अर्थात् एक एक में। जैसें उस पके हुवे गन्ने के रस से मैल निकलता है। वैसेही पके हुवे आहारके रससे मल निकलता है। वह कफ है। [उक्तं च सुश्रुते।]

कफ पित्त मला खेषु प्रस्वेदो नखरोम च ॥ नेत्र विट् चक्षुष: स्नेहो धातूनां क्रमशो मला:॥ २॥

(क) खेषु मल: कर्णादि श्रोतो मल: स च कफ: प्राणानिल प्रेरितो धमनी मार्गेण शरीरारम्भकं क्षेरनाख्यं कफ गत्वा पुष्णाति तत: सारभूतस्याहार रसस्य द्वौ भागौ भवत: स्थूल: सूक्ष्मश्च तत्र सूक्ष्मो भाग: शरीरारम्भकं रसं पोषयति सकल शरीराधिष्ठानेन व्यानवायुना प्रेरितो धमनीभि: सञ्चरन् पोषण स्नेहन जठरानलोष्म कृतसन्ताप निवारणादिभिर्गुणै: सकलशरीरं पुष्णाति तत: स्थूलो भाग: प्राणवायुना प्रेरितो धमनी मार्गेण शरीराम्भकस्य रक्तस्य स्थानं गत्वा यकृत् प्लीह रूपं गत्वा तेन सह मिलितो भवति।

भा० कहा है सुश्रुत में। कफ पित्त और कर्णादि स्रोतों में के मल तथा पसीना नख रोम और नेत्रका मल तथा नेत्रका स्नेह ये क्रमसे

धातुवों के मल हैं ॥ १०३ ॥ (क) स्रेषु मलाः अर्थात् कर्णादि स्रोतों के मल। वह पूर्वोक्त रस धातु का मल कफ प्राण वायु से प्रेरित हुवा धमनी नाड़ी के मार्ग से जाकर शरीर का आरम्भक क्लेद नाख्य कफ को पुष्ट करता है। उसके अनन्तर उस सारभूत आहार के दो भाग होते हैं। स्थूल और सूक्ष्म। उसमें सूक्ष्म भाग शरीर के आरम्भक रस को पुष्ट करता है। और सम्पूर्ण शरीर में रहनेवाले व्यान वायु के द्वारा प्रेरित तथा धमनियों के द्वारा संचार करता हुवा पोषण स्नेहन और जठराग्नि की उष्मा से किये गये सन्ताप के निवारणादि गुणों से संपूर्ण शरीर पुष्ट होता है। और उसका स्थूल भाग प्राणवायु से प्रेरित हुवा धमनी मार्ग से शरीर का आरंभक रक्त स्थान में जाकर अर्थात् यकृत प्लीह रूप में जाकर उसके साथ मिल जाता है ॥ (क)

(ख) ततः प्राक्तनस्य रक्तस्याग्निना पुनः पच्यमानः पञ्चाहोरात्रात्सार्द्धदण्डञ्च यावत् प्राक्तनरक्तधातावेव तिष्ठति। (ग) ततो यथाग्निना पुनःपुनः पच्यमानादिक्षुविकारं वारं वारं मलं निर्गच्छति। (घ) तथा पुनः पुनः पच्यमानादाहाररसात् प्रतिवारं मलं निर्गच्छति। (ङ) तत्र रक्ताग्निना पच्यमानान्मलं पित्तं निर्गच्छति।

भा० उसके अनन्तर पहिली रक्ताग्नि के द्वारा फिर से पका हुवा पांच दिन और डेढ़ घड़ी तक पहिली रक्त धातु में ही रहता है (ख) ॥ (ग) जैसे उस बार बार पकाने से गन्ने का विकार बार बार मैल निकलता है ॥ (घ) वैसे फिर फिर से पके हुवे आहार रस से प्रतिवार मल निकलता है ॥
(ङ) उस मे रक्ताग्नि के द्वारा पके हुवे रस से मल पित्त निकलता है ॥ (ङ) ॥

(च) तच्च पित्त समान वायुना प्रेरितं धमनी मार्गेण शरीरारम्भकं पाचकाख्यं गत्वा पुष्णाति। (छ) ततः सारभूतस्याहार रसस्य द्वौ भागौ भवतः स्थूलः सूक्ष्मश्च तत्र सूक्ष्मोभागो रञ्जकाग्निना पित्तेन स रक्तीकृतः। (ज) शरीरारम्भकं रक्तं व्यान वायुना प्रेरितो धमनीभिः सञ्चरन् सकल शरीर गतानि रुधिराणि पुष्णाति। (झ) ततः स्थूलो भागः व्यानवायुना प्रेरितो धमनीभिः शिराभिश्च शरीरारम्भकानि मांसानि याति।
(ञ) ततो मांसाग्निना पुनः पच्यमानः पञ्चाहोरात्रात सार्द्धदण्डश्च यावन्मांसेष्वेव तिष्ठति। ततः पच्यमानात्तस्मान्मलं निर्गच्छति

भा० (च) वह पित्त समान वायु से प्रेरित हुवा धमनी मार्गके द्वारा जाकर शरीरका आरंभक पाचकनाम पित्तको पुष्ट करताहै। (छ) अनन्तर उस सारभूत आहार रसके दो भाग होते हैं। स्थूल और सूक्ष्म। उसमें वह सूक्ष्म भाग रञ्जकाग्नि पित्तसे लाल किया गया। (ज) शरीरका आरंभक रक्त व्यानवायु के द्वारा प्रेरित और धमनीयोंके द्वारा सञ्चार करताहुवा सम्पूर्ण शरीर में मासहुवे रुधिरको पुष्ट करता है।
(झ) तदनन्तर उसका स्थूल भाग व्यानवायु से प्रेरित हुवा धमनी नाड़ियों के द्वारा शरीरके आरम्भक मांसमें जाता है। (ञ) उसके अनन्तर मांसकी अग्नि से पुनः पका हुवा पांच दिन और डेढ़ घड़ी तक मांस मे ही रहता है॥

(ठ) तद्व्यान वायुना क्षिप्रं कर्णावागत्य कर्णविड्भवति । (ड) ततः सारभूतस्य रसस्य द्वौ भागौ भवतः । (ढ) स्थूलः सूक्ष्मश्च ततः सूक्ष्मो भागो मांसानि पुष्णाति । (ण) ततः स्थूलोभागो व्यान वायुना प्रेरितो धमनीभिः शरीरारम्भकस्य मेदसः स्थानमुदरं याति । (त) ततो मेदसोऽग्निना पुनः पच्यमानः पञ्चाहोरात्रात् सार्द्धं दण्डं च यावन्मेदस्येव तिष्ठति ।

भा० अनन्तर पकेहुवे उससे मल निकलता है ॥ (ट) ॥
(ठ) वह मल व्यानवायु के द्वारा शीघ्र कानोंमे जाकर कानो का मैल होजाताहै ॥ (ड) और उस सारभूत रसके दो भाग होजाते हैं। (ढ) स्थूल और सूक्ष्म । उसका सूक्ष्म भाग मांस को पुष्ट करता है। (ण) और स्थूल भाग व्यानवायु से प्रेरित हुवा धमनीयोंके द्वारा शरीरका आरम्भक मेदका स्थान उदर में जाता है ॥
(त) उसके अनन्तर मेदकी अग्नि से फिर पका हुवा पांच दिन और डेढ घडी तक मेदमेंही रहताहै ॥

(थ) ततः पच्यमानात्तस्मान्मलो निर्गच्छति प्रस्वेदरूपः । (द) स च शीतः स्रोतस्येव तिष्ठति शरीरोष्मणा तप्तश्चेत्तदा व्यान वायुना प्रेरितः शिरामार्गैः लोमकूपेभ्यो वहिर्याति ॥ (ध) जिव्हादन्तकक्षा मेढ्रादि मलञ्च मेदो मलमित्येके ।

भा० अनंतर उस पकेहुवे से प्रस्वेद अर्थात् पसीनारूप मल निकलताहै । (थ) ॥ (द) वह प्रस्वेद ठंढा हुवा स्रोतों ही में रहता है । जब शरीर की उष्मा से गरम होताहै तब व्यानवायुसे प्रेरित

हुवा नसोंके मार्गके द्वारा रोम कूपसे बाहर निकलता है ॥
(ध) जीभ दांत कांख लिंग इत्यादिकों का मल मेदका मल है ऐसा कोई कहते हैं ॥

(न) ततः सार भूत रसस्य द्वौ भागौ भवतः स्थूलः सूक्ष्मश्च तत्र सूक्ष्मो भागः मेदः पुष्णाति उदरे तिष्ठन् व्यान वायुना प्रेरितो धमनीभिः शिराभिश्च शरीरारम्भकाण्य स्थीनि याति ।
(प) ततोऽस्थ्यग्निना पुनः पच्यमानं पञ्चाहोरा त्रात्सार्द्ध दण्डञ्च यावदस्थिष्वेव तिष्ठति ॥

(भा० (न) उस सारभूत रसके दो भाग होते हैं । स्थूल और सूक्ष्म। उसमें सूक्ष्मभाग मेदको पुष्ट करता है। और स्थूल भाग उदरमें रह ताहुवा व्यान वायुके द्वारा प्रेरित हुवा धमनी नाडियों से शरीरके आरम्भक अस्थियों में जाता है । (प) उसके अनंतर अस्थिकी अग्निके द्वारा फिरसे पकाहुवा पांच दिन और डेढ़ दंड तक अस्थि में ही रह ताहै । (फ) अनन्तर पकेहवे उससे मल निकलता है ॥

(फ) ततः पच्यमानात् तस्मात् मलो निर्गच्छति ।
(ब) स च व्यानवायुना प्रेरितः शिराभिः मार्गेण गत्या ङ्गुलिषु नखः स्तनो लोमानि भवन्ति ।
(भ) ततः सारभूतस्य रसस्य द्वौ भागौ भवतः स्थूलः सूक्ष्मश्च तत्र सूक्ष्मभागो अस्थीनि पुष्णाति ततः स्थूल भागो व्यानवायुना प्रेरितः स्रोतो मार्गे मज्जा स्थानानिः स्थूलास्थ्य भ्यन्तराणि याति ॥

भा॰ (ब) वह मल व्यानवायु से प्रेरित हुवा नसोंके मार्गसे आकर अंगुलियों में नख स्तन और रोम होजाते हैं। (भ) और उस सार भूत रसके दो भाग होते हैं। स्थूल और सूक्ष्म। उसमें सूक्ष्म भाग अस्थियोंको पुष्ट करता है। और उसका स्थूल भाग व्यानवायु से प्रेरित हुवा स्रोत मार्गसे मज्जास्थान स्थूल अस्थिके भीतर जाता है॥
(म) अनंतर मज्जाकी अग्निसे फिर पकाहुवा पांचदिन और डेढ़ दंड तक मज्जामें ही रहता है अनंतर पकेहुवे उससे मल निकलता है।
(य) वह व्यान वायु से प्रेरित हुवा नसोंके मार्गसे आंखों में आकर नेत्र का मल और नेत्र का स्नेह हो जाता है॥
(र) तदनन्तर उस सारभूत रसके दो भाग होते हैं॥

(म) ततो मज्जाग्निना पुनः पच्यमानः पञ्चाहोरात्रात् सार्द्ध दण्डञ्च यावन्मज्जन्येव तिष्ठति ततः पच्यमानात्तस्मान्मलं निर्गच्छति। (य) तच्च व्यानवायुना प्रेरितं शिरामार्गे नयनयोरागत्य नेत्रविट् चक्षुःस्नेहश्च भवति। (र) ततः सारभूतस्य रसस्य द्वौ भागौ भवतः॥ (ल)
स्थूलः सूक्ष्मश्च तत्र सूक्ष्मभागो मज्जानं पुष्णाति ततः स्थूलो भागो व्यानवायुना प्रेरितः धमनीभिः शिराभिश्च शुक्रस्य स्थानं सकलं शरीरं गत्वा शरीरारम्भकेण शुक्रेण सह मिश्रितो भवति।

भा॰ (ल॰) स्थूल और सूक्ष्म। उसमें सूक्ष्म भाग मज्जाको पुष्ट करता है। और स्थूल भाग व्यानवायु से प्रेरित हुवा धमनी नाड़ियों के द्वारा शुक्र का स्थान सम्पूर्ण शरीर में जाकर शरीर के आरम्भक शुक्र के साथ मिलजाता है॥

(ष) ततः शुक्राग्निना पुनः पच्यते पच्यमाने तस्मि न्मलं नास्ति। (श) स हि सहस्रधा ध्मात सुव र्णवत्। उक्तञ्च। (ष)।

स्वाग्निभिः पच्यमानेषु मलः षट्सु रसादिषु।
षट्सु धातुषु जायन्ते मलानि मुनयो जगुः॥ १०४
यथा सहस्रधा ध्माते न मलं किल काञ्चने॥
तथा रसे मुहुः पक्वे न मलं शुक्रताङ्गते॥ १०५॥

भा० तदनन्तर शुक्र की अग्निसे फिर पकाते हैं॥ उस पकेहुवे में मल नहीं होता॥ (ष)॥ (श) वह हजार प्रकार आँच दियेहुवे सोनेके मानिंद होता है॥ (ष) कहाहै।
अपनी अग्नि से पके हुवे छः रसादिकों में मल होता है इसवास्ते छः धातुवों में मल उत्पन्न होता है ऐसा मुनिलोग कहते हैं॥ १०४॥
(जैसे हजार आँच दियेगये सोनेमें निश्चयकरके मैल नहीं रहता। वैसेही वार वार पक के शुक्रत्वको प्राप्तहुवे रस में मल नहीं होता। ॥ १०५॥

ततः सारभूतस्य रसस्य द्वौ भागौ भवतः स्थूलः सू क्ष्मश्च। (क)॥ तत्र सूक्ष्मः स्नेहभागः ओज- स्तस्य लक्षणमाह।

ओजः सर्वशरीरस्थं स्निग्धं शीतं स्थिरं सितम्।
सोमात्मकं शरीरस्य बलपुष्टिकरं मतम्॥ १०६

भा० उसके अनंतर सारभूत रसके दो भाग होते हैं। स्थूल और सूक्ष्म। (क)॥ उसमें सूक्ष्म स्नेह भाग ओज होता है उस का लक्षण कहते हैं॥

ओज सब शरीर में रहनेवाला स्निग्ध अर्थात् सचिक्कण और शीत स्थिर और श्वेत तथा सोमात्मक अर्थात् सोमस्वरूप और शरीर के बल तथा पुष्टि को करनेवाला कहागया है ॥ १०६ ॥

(बलं चेष्टापाटवम् ।) [तथाच]

चेष्टासु पाटवं यत्तु बलम् तदभिधीयते ॥

यत्तु सुश्रुते रसादीनां शुक्रान्तानां धातूनां यत्परं तेज स्तत्खलुत्तदोजस्तदेव बलमिति तेजस्तेजद्रवः। (ख) अत्रायमभिप्रायः, यस्माद्रसादोजो भवति स रसः सर्वधातुस्थानगतत्वात्तद्धातुवन्मन्यत इति सर्व धातूनां स्नेहमोजः । (ग)

भा० बल अर्थात् चेष्टा सामर्थ्य । वैसे कहा है । जो चेष्टा में पटुताहै उसको बल ऐसा कहते हैं ॥ जोकि सुश्रुत में कहा है । शुक्र पर्यंत रसादि धातुवों का जो शुद्ध तेज है वह ओज और वही बल है । तेज अर्थात् तेजका पानी । (ख) ॥ यहां पर यह अभिप्राय है कि जिस रससे ओज होता है वह रस सब धातुवों में प्राप्त होने से उन् २ धातुवों के मानिंद समझा गया है (ग) ॥

क्षीरे घृतमिव तदेव बलमिति । (घ) ॥ तत्कार्य कारणयोरभेदोपचारात । (ङ) ॥ अभेद कथनञ्च चिकित्सैक्यार्थम् । [अन्यच्च]

गुरु शीतं मृदु स्निग्धं सान्द्रं स्वादु स्थिरं तथा ॥

भा० जैसे दूध में घृत,वही बल है (घ) ॥ उन के कार्य और कारणों के भेद न होनेसे (ङ) ॥ यहांपर अभेदकथन चिकित्सा की एकार्थता है ॥ [औरभी]

भारी शीत मृदु स्निग्ध सान्द्र अर्थात गाढा मधुर स्थिर स्वच्छ पिच्छिल अर्थात् फिसलहट पन और सूक्ष्म ऐसे दशगुण वाला ओज कहा गया है ॥ १०७ ॥

प्रसन्नं पिच्छिलं सूक्ष्ममोजो दशगुणं स्मृतम् ॥ १०७॥

[चरके तु]

अष्टबिन्दु प्रमाणं तदीषद्रक्तं सपीतकम् ॥ अ
ग्निसोमात्मकत्वेन द्विरूपं वर्णितन्तु तत् ॥ १०८॥

[वाग्भटश्च]

ओजश्च तेजो धातूनां शुक्रान्तानां परं स्मृतम् ॥
हृदयस्थमपि व्यापि देह स्थिति निबन्धनम् ॥ १०९॥
यस्य प्रवृद्धौ देहस्य तुष्टि पुष्टि बलोदयाः ॥ य
न्नाशे नियतो नाशो यस्मिं स्तिष्ठति जीवनम् ॥११०॥

भा० चरक में तो। वह आठ बून्द प्रमाण और थोड़ा रक्त पीलाई के सहित है। क्यों कि अग्नि और सोम स्वरूप होनेसे वह ओज दुरंगा वर्णन किया गया है ॥ १०८ ॥ वागभट नें भी कहा है ॥
शुक्र पर्यन्त रसादि धातुवों का जो उत्कृष्ट तेज है उसको ओज कहा है। हृदय में रहता हुवा भी व्याप्त होकर देहकी स्थिति का कारण है ॥ ॥ १०९ ॥ जिसके बढ़ने में देहको तुष्टि और पुष्टि तथा बल इनका उदय होता है ॥ तथा जिसके नाशमें अवश्य नाश होजाता है और जिसकेरहने में जीवन होता है ॥ ११० ॥

निष्पद्यन्ते यतो भावो विविधा देहसंश्रयाः ॥
उत्साह प्रतिभा धैर्य्य लावण्य सुकुमारताः ॥१११

क०) ततः स्थूलो भागो रसो मांसेन पुंसां शुक्रं स्त्रीणा

न्वार्त्तवं शुक्रञ्च भवति। उक्तं च सुश्रुते।

(ख) एवं मासेन रसः शुक्रो भवति।

भा० जिस्से कि देह में रहनेवाले नाना प्रकारके भाव अर्थात् धर्म्म विशेष ये उत्साह कान्ति धैर्य्य सुंदरता और सुकुमारता इत्यादिक प्राप्त होते हैं ॥ १११ ॥ (क) और उसका स्थूलभाग रस महीने भरमें पुरुष के शुक्र और औरतों के आर्तव अर्थात् मासिक धर्म्म और शुक्र भी होता है ॥ (ख) जैसे कि श्रुत में कहा है।) इस तरह पर रस महीने में शुक्र होता है ॥

(ग) स्त्रीणाञ्चेति चकारात् स्त्रीणामपि शुक्रं भवति। अतएवोक्तं सुश्रुते।

योषितोऽपि स्रवत्येव शुक्रं पुंसः समागमे ॥

तत्र गर्भस्य किञ्चित्तु करोतीति न चिन्त्यते ॥ ११२॥

(क) गर्भस्य शुद्धस्य विकृतस्य तु गर्भस्य कारणं तदपि भवति ॥ [यत उक्तम्]

यदा नार्य्यावुपेयातां वृषस्यन्त्यौ कथञ्चन ॥ मुञ्चन्त्यौ शुक्रमन्योऽन्यमनस्थि स्तत्र जायत इति ११३

(ख) एतेन स्त्रीणां सप्तमो धातुरार्त्तवं शुक्र मष्टममिति बोधितम् ॥ आशयाधिक्यवत्।

भा० (ग) और स्त्रियों का भी इस चकारसे स्त्रियों के भी शुक्र होता है ॥ इसीवास्ते सुश्रुत में कहाहै ॥ पुरुष के साथ संभोग करने में औरतें भी शुक्र को छोड़ती हैं ॥ और उसमें थोड़े से गर्भको करती हैं इसवास्ते विचार नहीं किया गयाहै ॥ ११२ ॥
(क) शुद्ध गर्भका और विकृत गर्भका तो कारण वहभी होताहै अर्थात् शुक्र भी होताहै ॥ [जैसा कि कहा है]
जब औरतें मदान्ध हुई किसी न किसी यत्न से आपसमें मैथुन करातीहैं

तब आपसमें शुक्र छोड़ती हैं उसमें अस्थि रहित सन्तान उत्पन्न होती है। ॥ ११३ ॥ (क) इस्से औरतोंकी सातवीं धातु आर्त्तव है आठवीं धातु शुक्र कही गई है ॥ आशय की अधिकता के मानिंद अर्थात् औरतों के जैसे एक गर्भाशय अधिक है वैसेही शुक्रभी आठवींधातु अधिक है ॥

स्त्रीणां गर्भोपयोगि स्यादार्त्तवं सर्व सम्मतम् ॥
तासामपि बलं वर्णं शुक्रं पुष्टिं करोति हि ॥११४

(क) एवं रस एव केदार कुल्या न्यायेन सर्वान् धातून् पूरयन् मासेन नव दण्डोत्तरेण शुक्रमार्त्तवं भवतीति सिद्धान्तः ॥ (ख) एवं सति रसाद्रक्तमिति सङ्गतमेव ॥

भा० स्त्रियों के गर्भका उपयोगि आर्त्तवहै यह सबका सम्मत है। उन का शुक्र बल वर्ण और पुष्टि को करता है ॥ ११४ ॥
(क) इस प्रकार रसही केदार और कुल्या अर्थात् पानी जानेकी छोटी नहर उसके न्यायसे सब धातुवों को भरता हुवा एक महीना और नौ दंड में शुक्र और आर्त्तव होता है यह सिद्धान्त है ॥
(ख) इस प्रकार होने में जो रससे रक्त ऐसा कहा गया ठीक है ॥

(ग) ततो मांसं ततो रक्तोत्पत्ते रनन्तरं मांसं जायते रसादेवेत्यर्थः ॥ (घ) मांसान्मेदः प्रजायत इति। मांसादनन्तरं मेदः प्रजायते रसादेवेत्यर्थः ॥
(ङ) मेदसोऽस्थि जायते रसादेवेत्यर्थः ॥

भा० (ग) ततो मांसं। अर्थात् रक्तोत्पत्तिके अनन्तर मांस होता है ॥ अर्थात् रसही से होता है। (घ) मांसान्मेदः प्रजायत इति। अर्थात् रसही से मांसके अनन्तर मेद उत्पन्न होता है ॥
(ङ) और मेदके अनन्तर रसही से अस्थि होती है ॥

(ङ) मेद सोऽस्थि जायते रसादेवेत्यर्थः। (च) एवं ततो मज्जा अग्रे शुद्धं शुक्रं सम्भवतीत्यर्थः। (छ) रसः शरीरे त्रिधा सञ्चरति। तथा चोक्तम्

रसः शरीरे शब्दार्चिर्जलसन्तानवत् त्रिधा॥
सञ्चरत्यनुरूपोऽयं नित्यमेवहि देहिनाम्॥

भा० (च) इसी प्रकार उसके अनन्तर मज्जा और आगे शुद्ध शुक्र उत्पन्न होता है। (छ) शरीर में रस तीन प्रकार से संचार करता है। वैसे कहा है। प्राणियों के शरीर में रस शब्द सन्तान और अग्नि शिखा सन्तान तथा जल सन्तान के मानिन्द तीन प्रकार वैसेहुवा नित्यही पुरुषोंके संचार करता है।

अस्यायमभिप्रायः। (क) पुरुषास्तीक्ष्णाग्नयो मध्यमाग्नयो मन्दाग्नयश्च भवन्ति। (ख) तत्र तीक्ष्णाग्नीनां स रसः शब्दसन्तानवत् शीघ्रं सञ्चरति। (ग) मध्यमाग्नीनामर्चिः सन्तानवन्मध्यवेगेन चरति मन्दाग्नीनां जलसन्तानवन्मन्दं चरति।

भा० इसका यह अभिप्राय है कि। (क) पुरुष तीक्ष्णाग्नि मध्यमाग्नि मन्दाग्नि होते हैं। (ख) उसमें तीक्ष्ण अग्निवाले पुरुषों का वह रस शब्द सन्तान के मानिंद शीघ्र संचार करता है। (ग) और मध्यमाग्निवाले पुरुषोंका अग्नि ज्वालाकी सन्तानके मानिंद मध्य वेगसे घूमता है। तथा मन्दाग्नियों का जल सन्तान के मानिन्द धीरे चलता है।

(घ) तेनमासेन रसात् शुक्रं भवतीति। (ङ) यदुक्तम्। तन्मध्यवेगेन चरति। (च) मन्दाग्नीनां जलसन्तानवन्मन्दं चरति तेनमासेन रसः शुक्रं

भवतीनि यदुक्तं तन्मध्यमाग्नीनधिकृत्योक्तम् ॥
(छ) दीप्ताग्नीनान्तु रसः किञ्चिन्यूनेन मासेन शुक्रं भवति। (ज) मन्दाग्नेः किञ्चिदधिकेन मासेनेति सिद्धान्तः ॥ (झ) तर्हि वाजीकरणानामौषधीनां किं प्रयोजनमित्याह ॥

भा० तिस्से महीनेमें रससे शुक्र होताहै ॥ (ङ) जो कहा कि वह मध्यवेगसे चलताहै ॥ (च) मन्दाग्नियों का जल सन्तानके मानिंद मन्द चलताहै ॥ उस्से महीनेमें रस शुक्र होताहै ॥ जो कहा वह मध्यमाग्नियों को अधिकार करके कहाहै ॥
(छ) तीक्ष्णाग्नियों का रस कुछ कम महीने में शुक्र होताहै ॥
(ज) और मन्दाग्नियों का कुछ ऊपर महीने में शुक्र होताहै यह सिद्धान्तहै। (झ) तो वाजीकरण औषधियों का क्या प्रयोजन है। इस्से कहतेहैं ॥ (ञ) ॥

वाजीकरिण्यः औषध्यः स्वप्रभावगुणोच्छ्रयात् ॥
(ट) विरेचयन्ति ताः शुक्रं विरेकिद्रव्यवन्नृणाम्। वाजीकरिण्यः याभिः औषधीभिः पुरुषः शुक्राधिक्यात् स्त्रीषु वाजीवत् सामर्थ्यं प्राप्नोति ताः वाजीकरिण्यः स्वप्रभावगुणोच्छ्रयात् ॥
(ड) तत्र काश्चिदौषध्यः स्वप्रभावाधिक्यात्।

भा० वाजीकरण औषधियां अपने प्रभाव और गुणकी अधिक्यता से वो औषधियां विरेचन औषधियोंके मानिंद पुरुषके शुक्रको निकाल देतेहैं। (ट) वाजीकरिण्यः। जिन औषधियों से पुरुष शुक्र की अधिक्यतासे औरतों में घोडेके मानिन्द सामर्थ्य को प्राप्त होना

है। (ठ) वो वाजीकरणाय अपने प्रभाव और गुणकी अधिकता से ।
(ड) अर्थात् उनमें कोई औषधियां अपने प्रभावकी अधिकता से ।

(ढ) काश्चित् स्वगुणाधिक्यात्। काश्चित् स्व प्रभाव गुणाधिक्यात्। (ण) तत्र सङ्कल्प पाद लेप विशिष्ट कान्तास्पर्शादयः स्वप्रभावाधिक्यात् शुक्रं विरेचयंति। (त) घृत क्षीरादयः स्व गुणाधिक्यात्। (थ) स्निग्ध त्वादाधिक्यात् माषादयः स्व प्रभाव स्निग्धत्वादि गुणाधिक्यात् ॥

भा० (ढ) और कोई अपने गुणकी अधिकता से तथा कोई दोनोंकी अधिकता से (ण) शुक्र को निकालती हैं। सकल्प का पैर में लेप कियाहुवा कान्ताका आलिंगनादिक अपने प्रभावकी अधिकता से शुक्र को विरेचन करता है ॥ (त) घृत दुग्धादिक अपने गुण की अधिकता से। (थ) और चिकनेपन की अधिकता से माषादिक अर्थात् उड़द वगैरह अपने प्रभाव और स्निग्धत्वादि गुणों की अधिकता से ॥

(द) वाजीकरणाय इति बहुवचन माद्यर्थानुवर्त्तनम्। (ध) बल्यं बृंहणं जीवनीय गणादयः तद्वद्बोद्धव्याः। (न) विरेचयन्ति स्वप्रभाव गुणाधिक्यात्। (प) शीघ्रमेवं रसाद्युत्पादन पूर्वकं शुक्रं जनयित्वा प्रवर्त्तयन्ति ॥ [यत आह]

भा० वाजीकरणाय है ऐसे बहुवचन पहिले अर्थ को लौटाने के हेतु कहा है। (ध) बल देने योग्य और बृंहण अर्थात् शुक्रादिक का बढ़ानेवाले जीवनीय गणादिक उनके मानिन्द जानने चाहिये ॥ (न) विरेचन करती हैं अपने प्रभाव और गुणकी अधिकता से ॥

(प) शीघ्रही रसादियों के उत्पादन पूर्वक अर्थात् रसादियों को उत्पन्नकर पश्चात् शुक्र को उत्पन्न करके बढ़ाती हैं ॥ [जैसा कि कहाहै]

दुग्धं माषाश्च भल्लातः फलमज्जा मलानि च ॥
जनकानि निगद्यन्ते रेचनानि च रेतसः ॥ ११५॥

[ननु बालानां कथं शुक्रं न दृश्यत इत्याह]

बालानां शुक्रमस्त्येव किन्तु सौक्ष्म्यान्न दृश्यते ॥
पुष्पाणां मुकुले गन्धो यथा सन्नपि नाप्यते ॥ ११६
तेषां तदेव तारुण्ये पुष्टत्वा व्यक्तिमेति हि ॥
कुसुमानां प्रफुल्लानां गन्धः प्रादुर्भवेद्यथा। ११७।

भा० दूध उड़द भिलावेके फलकी मज्जा और आँवले ये शुक्र के उत्पन्न करनेवाले और रेचन करनेवाले कहे गये हैं ॥ ११५॥ प्रश्न)। बालकों के शुक्र क्यों नहीं दिखता। सो कहते हैं। बालकों के शुक्र रहता है लेकिन सूक्ष्म होने से नहीं दिखता। जैसे फूलों की कलियों में गंध रहता हुवाभी नहीं मालूम होता ॥ ११६॥ उन बालकों का वही शुक्र युवावस्थामें पुष्ट होने से प्रगट होता है ॥ जैसे खिले हुवे फूलोंमें से गन्ध निकलता है ॥ ११७ ॥

रोमराज्यादयः पुंसां नारीणामपि यौवने ॥
जायतेऽत्र च यो भेदो ज्ञेयो व्याख्यानतः स च ॥

(क) व्याख्यानं यथा पुंसां रोमराजीश्मश्रुप्रभृतयः।
नारीणान्तु रोमराजीस्तनस्तन्यार्त्तव प्रभृतयः।

भा० वैसे रोमावल्यादिक पुरुषोंके तथा औरतोंके भी यौवन अवस्था में निकलते हैं। यहांपर जो भेदहै वह व्याख्यान से जानना चाहिये ॥ ११८ ॥ (क) व्याख्यान जैसे पुरुषोंके रोमावली श्मश्रु अर्थात् दा

इत्यादिक होते हैं वैसेही औरतों के रोमपंक्ति स्तन दूध आर्त्त इत्यादिक होते हैं ॥ (ख) प्रश्न) । वृद्ध का अन्न रस धातु वृद्धि क्यों नहीं करता सो कहते हैं ॥

(ख) ननु, अन्नरसो वृद्धस्य धातुवृद्धिं कथं न करोती त्याह ।

वार्द्धके वर्द्धमानेन वायुना रसशोषणात् ॥ न तथा धातुवृद्धिः स्यात्तत स्तत्रानिलं जयेत् ॥११९॥

[अथ शुक्रस्य स्वरूपमाह।]

शुक्रं सौम्यं सितं स्निग्धं बलपुष्टिकरं स्मृतम् ॥ गर्भबीजं वपुः सारो जीवस्याश्रय उत्तमः ॥ १२०॥

भा० वृद्धावस्था में बढ़े हुवे वायुके द्वारा रस शोषण होने से उस प्रकार धातु वृद्धि नहीं होती तिस कारण उसमें वायु को जीते अर्थात् वातशमन औषधियों का सेवन करें ॥ ११९ ॥

[अनन्तर शुक्र का स्वरूप कहते हैं]

शुक्र सौम्य श्वेत स्निग्ध और बलपुष्टि को करनेवाला कहा गया है। तथा गर्भका बीज शरीर का सार और श्रेष्ठ जीवका आश्रय अर्थात् स्थान कहा गया है ॥ १२० ॥

[जीवस्याश्रय उत्तम इति आह।]

जीवो वसति सर्वस्मिन्देहे तत्र विशेषतः ॥ वीर्ये रक्ते मले यस्मिन् क्षीणे याति क्षयं क्षणात् ॥१२१

[अथ गर्भसञ्जनन शुक्रस्य लक्षणमाह।

भा० जीवका आश्रय उत्तम इसको कहते हैं । सब शरीर में जीव रहता है परंतु विशेष करके शुक्रमें रक्तमें मलमें रहता है । क्यों कि जिनके क्षीण होनेमें क्षणमें क्षयको प्राप्त होता है ॥ १२१ ॥

[अनन्तर गर्भको उत्पन्न करनेवाले शुक्रका लक्षण कहतेहैं]

स्फटिकाभं द्रवं स्निग्धं मधुरं मधुगन्धि च ॥ शुक्र-
मिच्छन्ति केचित्तु तैलक्षौद्रनिभञ्च तत् ॥ १२२ ॥

[अथ शुक्रस्य स्थानमाह]

यथा पयसि सर्पिस्तु गूढश्चेक्षुरसो यथा ॥ एवं
हि सकले काये शुक्रं तिष्ठति देहिनाम् ॥ १२३ ॥

भा० स्फटिक के तुल्य आभावाला और द्रव अर्थात् वहनेवाला तथा स्निग्ध मधुर और मधु ऐसी गन्धवाला होताहै। और कोई कहते हैं कि तैल तथा शहत सा शुक्र होता है ॥ १२२ ॥
अनन्तर शुक्रका स्थान कहते हैं। जैसे दुग्धमें घृत और गन्नेके रसमें गुड़ रहता है ऐसेही मनुष्योंके सम्पूर्ण शरीर में शुक्र रहता है ॥ १२३ ॥

(क) अत्र सर्पिर्दृष्टान्तो बहुशुक्रे ऽल्पमथनेन सर्पिः
शुक्रयोर्लाभात् । इक्षुरस दृष्टान्तस्तु स्वल्प शुक्रे
पुंसि अतिपीडने नेक्षुरसस्य शुक्रयोर्लाभात् ॥

[अथ शुक्रस्य क्षरणमार्गमाह।]

द्व्यङ्गुले दक्षिणे पार्श्वे वस्तिद्वारस्य चाप्यधः ॥
मूत्रस्रोतपथे शुक्रं पुरुषस्य प्रवर्तते ॥ १२४ ॥

भा० (क) यहाँ पर बहुत शुक्रवाले पुरुष में थोड़े मथने के द्वारा घृत और शुक्र का लाभ होने से घृतका दृष्टान्त दिया है ॥
और थोड़े शुक्रवाले पुरुष में बहुत मथने के द्वारा इक्षुरस और शुक्र का लाभ होनेसे इक्षुरसका दृष्टान्त दिया गया है ॥

[अनन्तर शुक्र के निकलने के मार्ग कहते हैं]

वस्ति द्वारके नीचे दहनी तरफ़ दो उंगल मूत्र स्रोतके मार्गसे पुरुष का शु
क्र निकलता है ॥

[वृद्ध वाग्भटोऽप्याह।]

(क) सप्तमी शुक्रधरा द्व्यङ्गुले दक्षिणे पार्श्वे वस्ति द्वा
रस्य चाप्यधो मूत्रमार्गमाश्रिता सकल शरीर व्यापि
नी शुक्रं प्रवर्त्तयतीति ॥ सप्तमी कला ।

[अथ शुक्र क्षरण कारण माह।]

कृत्स्नदेह स्थितं शुक्रं प्रसन्न मनसस्तथा ॥
स्त्रीषु व्यायच्छतश्चापि हर्षात्तत्सम्प्रवर्तते॥१२५॥

(स्त्रीषु व्यायच्छतः स्त्रीषु रतरूपं व्यायामं कुर्वत ः॥

भा० वृद्ध वाग्भट ने भी कहा है ॥ (क) सातवीं शुक्रको धारण कर
नेवाली दो उंगल दाहिनी तरफ़ वस्ति द्वारके नीचे मूत्र मार्गको आश्रय
ण करनेवाली सम्पूर्ण शरीर में फैली हुई शुक्रको निकालती है। वो
सातवीं कला है ॥

अनन्तर शुक्रके गिरनेका कारण कहते हैं ॥ सम्पूर्ण शरीर में रहने वाला
शुक्र प्रसन्नचित्त तथा स्त्री में मैथुनरूप कसरत करने वाले के भी हर्ष से
वह शुक्र निकलता है ॥ १२५ ॥

[स्त्री में व्यायच्छतः अर्थात् सुरतरूप व्यायाम करने वाले के]

[अन्यच्च।]

शुक्रं कामेन कामिन्या दर्शनात्स्पर्शनादपि ॥
शब्द संश्रवणात् ध्यानात् संयोगाच्च प्रवर्तते १२६

[अथार्त्तवस्य स्वरूपमाह]

स्त्रीणांरस एव मासेनार्त्तवं भवतीत्युक्तं पुनराह शुक्र-

त एव।)

रसादेव रजः स्त्रीणां मासि मासि त्र्यहं स्रवेत् ॥
तद्वर्षात् द्वादशादूर्ध्वं याति पञ्चाशतः क्षयम्।१२७
मासेनोपचितं काले धमनीभ्यस्तदार्त्तवम् ॥
ईषत्कृष्णं विवर्णं च वायुर्योनिमुखं नयेत्।१२८।

[गर्भग्रहणयोग्यस्यार्त्तवस्य लक्षणमाह]

शशासृक्प्रतिमं यत्तु यद्वा लाक्षारसोपमम् ॥
तदार्त्तवं प्रशंसन्ति यद्वासो न विरञ्जयेत्॥१२९॥

भा० औरभी। कामिनी की कामनासे अर्थात् संभोगकी इच्छासे अथवा उसके दर्शनसे या स्पर्शसे या उसका शब्द श्रवण करनेसे या चिन्तनसे या लिपटानेसे शुक्र निकलता है ॥ १२६ ॥

[अनंतर आर्त्तवका स्वरूप कहतेहैं।]

स्त्रियोंका रस ही महीने में आर्त्तव होता है ऐसा कहकर फिरसे कहतेहैं शुक्रसेही। रससेही औरतोंका रज महीने महीने में तीन दिन स्राव होता है। वह आर्त्तव बारह वर्षके ऊपरसे निकलता है और पचास बरसमें क्षय होजाता है ॥ १२७ ॥ महीने भरमें संचय हुवे आर्त्तव को समयपर वायु धमनियोंके द्वारा थोड़ा बदरंग और काला योनि द्वारसे निकालता है ॥ १२८ ॥

[गर्भ रहने के योग्य आर्त्तवका लक्षण कहते हैं]

शश अर्थात् खरगोशके रक्त समान जो आर्त्तव अथवा लाख के रस सदृश जो है उसको अच्छा कहते हैं और २ जो कपड़े को नहीं रंगता अर्थात् जो धोनेसे जाता रहै ॥ १२९ ॥

(क) आर्त्तवस्य वर्णद्वयाभिधानम्। वातादिप्रकृतिभेदेन वर्णभेदात्। यद्वासो न विरञ्जयेत्। यद्वासो लग्नं प्रक्षालितं तद्वासस्त्यजति नतु विकृतरक्तं कुर्यात्।

(क) आर्त्तव के दो रंग कहेहैं। वातादि प्रकृति के भेद से वर्ण भेद कहे हैं। और जो कपड़े को नहीं रंगता अर्थात् जो कपड़े से लगा हुवा धोने से उस कपड़े से छूट जाता है। उसको खराब लाल नहीं करता।

ऋतुस्त्रीणां रजोदर्शनात् षोड़श निशाः तत्र भवमार्त्तवं गृहीत गर्भाणाम् स्त्रीणामार्त्तव वहानां स्रोतसां गर्भेणावरोधा दार्त्तवं न स्रवति। (ख) किन्तु तदेवाधः प्रतिहत मूर्द्ध मागत मुपचीय मान मपरा भवति। अपरा-तु श्रीवर इति लोके। शेषं चोर्द्ध तरमागतं पयोधरा याति तस्माद्गर्भिण्यः पीवर पयोधरा भवन्ति।

भा० औरतों का ऋतुकाल रजोदर्शन दिनसे सोलह दिन रहता है। उसमें हुवा आर्त्तव गर्भको धारण की हुई स्त्रियोंके आर्त्तव वाही स्रोतोंका गर्भ द्वारा अवरोध होनेसे अर्थात् रोक होनेसे आर्त्तव नहीं निकलता। (ख) किन्तु वही नीचेसे टकर खाया हुवा ऊपर आके संचय हुवा अपरा अर्थात् गर्भनाड़ी होता है॥ और दूसरी लोगों में श्रीवर ऐसा कहते हैं बाकी उससे ऊपर आया हुवा स्तनोंमें जाता है। तिस्से गर्भिणी के भरे हुवे स्तन होते हैं॥

[अथ धातुष्वतिरिक्तान् गुणानाह]

अतिरिक्ता गुणा रक्ते वन्हेर्मांसे तु पार्थिवाः॥ मेदस्य यां रसे चास्थ्नि पृथिव्य निल तेजसाम्॥१३०॥
मज्ज्ञि शुक्रे च सोमस्य मूत्रे च शिखिनो गुणाः॥
भुवस्तथार्त्तवे त्वग्ने रसे क्षीरे तथाम्भसः॥१३१॥

भा० अलन्तर धातुवोंमें अलग गुणोंको कहते हैं। रक्तमें अग्निके अलग गुण हैं॥ और मांस में पार्थिव गुण। वैसेही मेदमें अल्लके गुण और

स्तनयो र्मध्य मधिष्ठायो रस्या माशय द्वारं सत्वरज स्तमसा मधिष्ठानं हृदयं नाम शिरा मर्म्म चतुरङ्गुलं सद्यो मारकं ॥

वस्तिर्नाभिः पृष्ठकटी गुद वंक्षण शेफ़साम् ॥ मध्ये वस्ति तनुत्वक च एक द्वारो ह्यधो मुखः ॥ १५४

(क) स्नायु मर्म्मे दञ्चतुरङ्गुलं सद्यो मारकम् नाभिः प्रसिद्धा पक्वामा शयो र्मध्ये शिरा प्रभवा नाभि र्नाम ॥ शिरा मर्म्मेद ञ्चतुरङ्गुलं सद्यो मारकम् ॥

भा० हृदय प्रसिद्ध है स्तनों के बीच छाती में आमाशय का द्वार सत्व रज तम इनकी जगह हृदय नाम सिरा मर्म्म चार अङ्गुल प्रमाण सद्यो मारक हैं ॥ वस्ति अर्थात् पेडु नाभ पीठ कटि गुदा और पूर्वोक्त वंक्षण नघा लिंग इनके बीचमें बारीक चामका नीचे मुखवाला एक द्वार बस्ति नाम स्नायु मर्म्म यह चार अंगुल का तात्काल मारक है ॥ १५४॥ नाभि प्रसिद्ध है। पक्वाशय और आमाशय के बीच में सिरा ओंकी निकलने की जगह नाभि नाम सिरा मर्म्म येह चार अंगुल का तत्काल मारक है ॥

वक्षो मर्माणि सीमन्ता स्तला क्षिप्रेन्द्र वस्तयः ॥ वृहत्यौ पार्श्वयोः सन्धी कठीक तरुणे चये ॥ १५५ नितम्बाविति चैतानि कालान्तर हराणि तु ॥

[वक्षो मर्म्माणि।]

(उरसः स्तन मूलस्य नरो हि स्तन रोहिते।)

(क) स्तनयो रध रस्ता द्व्यङ्गुल मुभयतः स्तनमूले नाम शिरा मर्म्मणी द्व्यंगुले कफ पूर्ण कोष्ठ तया कास प्र्वा

साभ्यां च कालान्तर मारके ॥ स्तनयोरुपरि उभयतः द्व्यङ्गुलं यावत् । स्तन रोहिते नाम द्वे मांस मर्म्मणी रक्त पूरित कोष्ठतया कालान्तर मारकौ ।

भा॰ वक्षस्थल के आठ मर्म्म और पांच सीमन्त तथा चार तल और क्षिप्र चार इन्द्रवस्ति चार वृहती दो पार्श्वसन्धी दो कटीक तरुण दो ॥ १५५ ॥ नितम्ब दो ये तेतीस कालान्तर मारक हैं ॥ वक्षस्थल के मर्म्म कहते हैं ।] स्तनों के नीचे दो अंगुल दोनों तरफ स्तनमूल नाम शिरा मर्म्म दो अंगुल के हैं । वो कफ से भरे को ष्ठ होने से कास और श्वास के द्वारा कालान्तर में मारक हैं अर्थात् इन मर्म्मों के कटने से कास श्वास हो के पश्चात् मरता है ॥ (ख) स्तन के ऊपर दोनों तरफ स्तनरोहित नाम दो मांस मर्म्म हैं । वे मर्म्म रक्त से पूरित कोष्ठ होने से कालान्तर में मारक हैं ॥

अपलापौ अंस कूटयो रधस्तात् पार्श्वयो रुपरि द्वौ शिरा मर्म्मणी । अर्द्धाङ्गुले रक्तेन पूयताङ्गते न कालान्तर मारकौ । अपस्तम्भौ उरसः उभयोः नाड्योः वातवहे शिरा मर्म्मणी । अर्द्धाङ्गुले वात पूर्ण कोष्ठतया कासश्वासाभ्यां च कालान्तर मारके सीमन्ताः शिरसि पञ्च सन्धयः सन्धिमर्म्माणि चतुरङ्गुलानि । उन्माद भय चित्तविनाशैः कालान्तर मारकाः ॥

भा॰ कंधे के जोड़ के नीचे और पसलियों के ऊपर दो आधे अंगुल के शिरा मर्म्म हैं । वे मर्म्म रक्त से पीप हो जाने पर कालान्तर में मारक हैं । [छा]ती की दोनों वातवहा नाड़ी अपस्तम्भ नाम शिरा मर्म्म आधे अंगुल का है । वो मर्म्म वायु से पूर्ण कोष्ठ होने से कास श्वास के द्वारा कालान्तर में मारक हैं । शिर में पांच जोड़ सीमन्त नाम सन्धिमर्म्म चार -

अंगुल प्रमाण हैं ।उन्माद भय चित्त विनाशके द्वारा कालान्तर में मारक हैं ॥

(ग) तलानि। मध्याङ्गुलि मनुक्रम्य हस्तस्य मध्यन्तल मेव मपरस्य हस्तस्य। पादयो श्चत्वारि तलानि मांस मर्म्माणि द्व्यङ्गुलानि रुजाभिः कालान्तर मारकाणि। क्षिप्राणि अङ्गुष्ठाङ्गुल्यो मध्यं क्षिप्रम्। तच्च हस्त द्वयो र्द्वे तथा पादयोः सर्वं चत्वारि स्नायु मर्म्माण्यर्द्धाङ्गुलान्यालेपकेण कालान्तर मारकाणि ॥

भा० (ग) मध्यमांगुलि को अनुक्रम करके हाथ का मध्यतल है इसीतरह दूसरे हाथका। और पावोंके दो इस प्रकार चार तल हैं। मांस मर्म्म दो अङ्गुल के पीड़ाके द्वारा कालान्तर में नाश करनेवाले हैं ॥
क्षिप्र अंगुष्ठ और अङ्गुलि के बीच को क्षिप्र कहते हैं। वे दोनों हाथके दो तथा दोनों पावोंके दो इस प्रकार चार स्नायु मर्म्म अर्द्धाङ्गुल प्रमाण होते हैं और आलेपक के द्वारा कालान्तर में मारक हैं ॥

(घ) इन्द्रवस्तयः प्रकोष्टयोर्मध्ये द्वौ जङ्घयोर्मध्ये द्वौ। एवं चत्वारि मांस मर्म्माणि द्व्यङ्गुलानि शोणित क्षयेण कालान्तर मारकाः। बृहत्यौ। स्तन मूलादुभयतः पृष्ठ वंशं यावत्। शिरा मर्म्माणी। अर्द्धाङ्गुले शोणिताति प्रवृत्ते रुपद्रवैः कालान्तर मारके ॥

भा० (घ) इन्द्रवस्ति। प्रकोष्ठ अर्थात् कोहनी से लेकर हाथके पहुंचे तक उनके बीचमें दो और जांघोंके बीच में दो इस प्रकार चार मांस मर्म्म दो अंगुल के हैं। जो रक्त के क्षय से कालान्तर में मारक होते हैं।
बृहती। स्तनमूल से दोनों तरफ पीठके बांस तक आधे अंगुल के दो शिरा

मर्म्म होतेहैं। वो रक्त के अधिक निकालेने से कालान्तर में मारक होते हैं ॥

पार्श्वसन्धी जघन पार्श्वयोः सन्धी शिरा मर्मणी अर्द्धाङ्गुलौ शोणित पूर्ण कोष्ठतया कालान्तर मारकौ ॥

(ङ.) कटीक तरुणे त्रिक सन्निधाने उभयतः श्रोणिका एडे स्वतीकृत्या स्थि स्थिते अस्थि मर्मणी अर्द्धाङ्गुले शोणित क्षयात्पाण्डु विवर्ण रूपङ्कृत्वा कालान्तर मारके ॥

भा॰ पार्श्वसन्धी। कमर पसलियों का जोड़ पार्श्वसन्धी नाम दो शिरा मर्म्म अर्द्धाङ्गुल के होते हैं। और वो रक्त पूर्णकोष्ठ होनेसे कालान्तर में मारक हैं ॥ (ङ.) कटीक तरुणें। त्रिक अर्थात् कमर के जोड़के पास में दोनों तरफ कमर के नलमें सोधपर रहनेवाली अस्थि मर्म्म आधे अंगुलके हैं। वो रक्तक्षय से पाण्डु विवर्ण रूप को करके कालान्तर में मारक होते हैं ॥

नितम्बौ प्रसिद्धौ द्वौ उभयतः श्रोणी काण्डयो रुपर्य्याशयाच्छादनौ पार्श्वान्तर प्रतिबद्धौ नितम्बौ नाम अस्थि मर्मणी अर्द्धाङ्गुलावधः काय शोषेण दौर्बल्ये न च कालान्तर मारकौ ॥

भा॰ कमर की नलके ऊपर आशय के आच्छादन पसलियो के बीच में बन्धे हुवे नितम्ब नाम अस्थिमर्म आधे अंगुलके हैं। वो नीचेके धड़ सूक जानेसे दुर्बलता के द्वारा कालान्तर में मारक होते हैं ॥

लोहिताक्षाणि जानूर्वी कूर्चा विटप कूर्परा ॥ कुकुन्दरे कक्षधरे विधुरे सकृकाटिके ॥ १४६॥
अंसांस फलका यापाङ्गो नीले मन्ये फणे तथा ॥

वैकल्य करणान्या हुरावर्त्तौ द्वौ तथैवच ॥१५७॥

(क) ऊर्व्वोरूर्द्ध मधो वंक्षण सन्धि लोहिताक्षन्तु च द्वेबाह्वे द्वे ऊर्व्वोरेवन्तानि चत्वारि शिरा मर्म्माण्य र्द्धाङ्गुलानि वैकल्य कराणि ॥

भा॰ लोहिताक्ष अणि जानु ऊर्वी कूर्च विटप कूर्पर कुकुन्दर कक्षध र विधुर कृकाटिक ॥ १५६ ॥ अंस अंस फलक अपाङ्ग नील मन्य फण तथा ॥ दो आवर्त इस प्रकार ये वैकल्य कारक हे गये हैं । लोहिताक्ष । (क) जांघ के ऊपर और वंक्षण सन्धि के नीचे वोलोहिताक्ष मर्म्म है । दो बाहु में और दो जांघ में वोह चार शिरा मर्म्म अर्द्धाङ्गुल के विकल करने वाले हैं ॥

(ख) तत्र शोणित क्षयेन पक्षघातः सक्थिसादो वा। आण्यः। जानुनः ऊर्द्ध उभयोः पार्श्वयो स्त्य ङ्गु- ला एकस्मिन् जानुनि द्वे अपरस्मिन्द्वे एवञ्चतस्त्रः स्नायु मर्माण्यर्द्धाङ्गुलानि वैकल्य कराणि तत्र शो- थाभि वृद्धिः सक्थिस्तम्भश्च ॥

भा॰ (ख) उसमें रक्तक्षय से पक्षघात अर्थात् लकवा या सकथिसाद अर्थात् जांघ पीड़ा होती है ॥ आणिन्यः । जानु के ऊपर दोनों ग़लों में तीन अंगुल एक जानूमें २ दो दूसरे जानूमें दो २ इस प्र कार चार स्नायु मर्म्म अर्द्धाङ्गुल के वैकल्य कर हैं ॥ उनमें सूजन ब ढ़ती है और पांव अकड़ जाते हैं

(ग) जानु जङ्घयोः सन्धौ सन्धि मर्माणि द्व्यङ्गुले वै कल्य करे तत्र खञ्जता ऊर्व्वोः द्वे ऊर्व्वो मध्ये द्वे प्र- गण्डयोः मध्ये द्वे एवं चतस्त्रः शिरा मर्म्माणी एका-

ङ्गुल्याः वैकल्यकर्यस्तत्र शोणितक्षयात्सक्थि शोषः । कूर्चौः पादयोः रङ्गुष्ठाङ्गुल्यो मध्ये तयो रूर्द्ध मधश्च एवं चत्वारि स्नायु मर्म्माणि वैकल्य कराणि तत्र पादयो र्भ्रमणं वेपने भवतः ।

भा॰ (ग) घुटने और जांघ के जोड़में जानुनाम सन्धि मर्म्म दो अङ्गुल के वैकल्य कर होतेहैं । उन में लंगड़ापन होताहै । जांघों के बीच में दो और प्रगसव अर्थात् कोहनी के ऊपर कांखतक इनमें दो ऐसे ऊर्वी नाम चार शिरामर्म्म एक अंगुल के विकल करनेवाले हैं । उसमें रक्त के क्षय से टांग सूख जाती है । कूर्च पैरोंके अंगुष्ठ और अंगुलियों के बीच में उन के नीचे ऊपर इसप्रकार चार स्नायु मर्म्म वैकल्य कर हैं । उसमें पैरों का फिरना और कांपना होता है ॥

(घ) विटपे द्वे वंक्षण वृषणयो मध्ये स्नायु मर्माणि एकाङ्गुल्यवैकल्य करे च तत्राल्प शुक्रताच कूर्परौ । कफोणिजो द्वौ सन्धि मर्मणी द्व्यङ्गुलौ वैकल्य करौ तत्र बाहु मध्ये सङ्कोचः । कुकुन्दरे पार्श्व जघन वहिर्भागे पृष्ठ वंशस्योभयतो नाति निम्ने कुकुन्दरे नाम मर्म्मणी । तत्र स्पर्शाज्ञान मधः काये । चेष्टोप घातश्च । मर्मणी अर्द्धाङ्गुले वैकल्यकरे ।

भा॰ विटप दो वंक्षण और अंडकोशों के बीच में स्नायुमर्म्म एक अंगुल के वैकल्य करहैं । उस में अल्प शुक्रता होती है ॥
कोहनी में दो सन्धि मर्म्म दो अंगुल के वैकल्य कर हैं । उस में बाहु के बीच मे सकोच होताहै । पसली और कमर के वहि र्भाग में पीठ के बांस के दोनो तरफ न बहुत नीचे की तरफ झुकेहुवे कुकुन्दर नाम सन्धि मर्म्म अर्द्धाङ्गुल के वैकल्य कर हैं ॥

(ङ) तत्रस्पर्शाज्ञानमधः कायस्य चेष्टोपघातश्च। कक्षधरे। वक्षः कक्षयोर्मध्ये द्वे स्नायु मर्मणी एकाङ्गुले वैकल्यकरे तत्रपक्षाघातः। विधुरे कर्णपृष्ठतोऽधः संश्रिते किञ्चिन्निम्नाकारे द्वे स्नायु मर्म्मणी अर्द्धाङ्गुले वैकल्यकरे तत्र वाधिर्य्यम् ॥

(च) कृकाटिके शिरो ग्रीवयोरुभयतः । सन्धि द्वे। सन्धि मर्मणी अर्द्धाङ्गुले वैकल्यकरे शिरष्कम्पः। अंसौ स्कन्धौ वाहु मूर्द्ध ग्रीवामध्ये अंस पीठ स्कन्धनिबन्धनावंसौ नाम। स्नायु मर्मणी अर्द्धाङ्गुले वैकल्यकरे तत्र वाहु स्तम्भः ॥

भा० (ङ) उसमें छेदना दि क्रिया होनेसे नीचे के शरीर में स्पर्शज्ञान जाता रहेताहै। और चेष्टा बन्द होजाती हैं॥ कक्षधर। छाती और कांखकेबीच में दो स्नायुमर्म एकांगुलके वैकल्यकर हैं। उसमें पक्षाघात होता है। विधुर। कानके पीठसे नीचे लगेहुवे कुछ दबे से दो स्नायु मर्म आधे अंगुल के वैकल्य कर हैं। उसमें बहिरापन होता है॥

(च) कृकाटिके। शिर और गलेके दोनों तरफ दो जोड़ु सन्धि मर्मनाम अर्द्धांगुल के विकलकरनेवाले हैं। उसमें शिर कम्प होता है। बाहु शिर गला इनके बीच में कंधोंका आधार और कन्धोंसे बन्धेहुवे दो स्नायुमर्म आधे अंगुल के वैकल्यकर हैं। उसमें बाहु अर्थात् भुजा अकड़ जातीहैं॥

(छ) अंसफलके पृष्ठोपरि पृष्ठवंशमुभयत स्त्रिक सम्बद्धे ग्रीवायां अंस द्वयस्य च संयोगो यत्र तत्त्रिकं।

भा० (छ) अंसफलके। पीठके ऊपर पीठके बाँसके दोनों तरफ त्रिकसे लगेहुवे गलेमें दोनों कन्धोंकाजोड़ जिसमें है उसको त्रिक कहते हैं।

अस्थि मर्मणी अर्द्धाङ्गुले वैकल्यकरे तत्र बाह्वोःशून्यताशोषश्च। (ज) अपाङ्गे नेत्रयोरन्तौ शिरा मर्मणी अर्द्धाङ्गुलौ वैकल्यकरौ तत्रान्ध्यं दृष्ट्युपघातोवा। नीले मन्येच कण्ठनाड़ी मुभयतश्चतस्रो धमन्यः द्वे नीले द्वे मन्ये। तत्र एकामन्या एकानीला। एकस्मिन् पार्श्वे मन्यानीला: अपरस्मिन् पार्श्वे द्वे द्वे शिरा मर्मणी द्व्यङ्गुले वैकल्यकरे तत्र मूकता विकृति स्वरताऽरसग्राहिता च। फणे घ्राण मार्ग मुभयतः मांसमर्मणी अर्द्धाङ्गुले वैकल्य करे तत्र गन्धाज्ञानम्॥

भा० अंसफलक नाम दो अस्थिमर्म आधे अंगुलके वैकल्यकर हैं। उसमें भुजा सूनी पड़ती हैं और सूकभी जाती हैं॥

(ज) अपाङ्ग। नेत्रोंके अन्तमे दो शिरा मर्म आधे अंगुल के वैकल्यकर हैं॥ उसमें अन्धापन या दृष्टिमें चोट होजाती है। नील और मन्य येह कंठनाड़ी दोनों तरफ चार धमनी दोनील दो मन्य हैं॥ उसमें एक मन्य और एकनील एक तरफ तथा एक मन्य और एकनील दूसरी तरफ इसप्रकार दोदो शिरा मर्म दो अंगुल के वैकल्य कर हैं॥ उसमें गूंगापन और बुरास्वर तथा रसका ग्रहण नकरना ये होताहै। घ्राण मार्गपर दोनों तरफ दो मांस के मर्म आधे अंगुलके वैकल्य कर हैं। उसमें गंधका ज्ञान जाता रहता है॥

(झ) आवर्त्तौ भ्रुवो रुपरि निम्नयोः सन्धि मर्मणी अर्द्धाङ्गुले वैकल्यकरे तत्रान्ध्यं दृष्ट्युपघातः॥ गुल्फौ द्वौ मणिबन्धौ द्वौ तथा कूर्च्च शिरांसि च॥ रुजाकरा णिजानीयात् दृष्ट्वा चैतानि बुद्धिमान्॥ १५८॥

भा०(क) आवर्त्त। भवोंके ऊपर दबेहुवे दो सान्धिमर्म्म आधे अंगुलके वैकल्य करते हैं। उसमें अंधापन और दृष्टिमें चोट होती हैं। गुल्फ दो मणिबन्ध दो तथा कूर्च सिर। इनको रुजाकर अर्थात् पीड़ा करनेवाले बुद्धिवान् देखकर जानलिवें ॥ १५८ ॥

(क) गुल्फौ घुरिटके सन्धि मर्म्मणी द्व्यङ्गुलौ रुजाकरौ तत्र रुजा पादस्तम्भः खञ्जता च द्वौ मणिबन्धौ हस्त प्रकोष्ठ सन्धी सन्धिमर्म्मणी द्व्यङ्गुलौ रुजाकरौ। तत्र हस्तयोः क्रियाशाट्यं कूर्च्च शिरांसि। पाद सन्धेरधः उभयतः एकस्मिन् पादे द्वे च द्वितीये। एवञ्चत्वारि स्नायु मर्म्माण्येकाङ्गुलानि रुजाकराणि तत्र रुजा शोफश्च ॥

भा० गुल्फ घुरिटक सन्धि अर्थात् टरवने का जोड़ सन्धि मर्म्म नाम दो अंगुलके रुजाकर हैं। उनमें पीड़ा और पैरका जकड़ना तथा लूलापन होता है ॥ दो मणिबन्ध अर्थात् हाथके पोंचेका जोड़ मणिबन्ध नाम सन्धिमर्म्म दो अंगुलके पीड़ा करने वाले हैं। उस में हाथ की चेष्टा बन्द होजाती है ॥ कूर्च्च शिर। पैरके जोड़ के नीचे दोनों तरफ एक पैरमें दो और दूसरे में दो इस प्रकार चार स्नायु मर्म्म एक अंगुलके पीड़ा करते हैं। उसमें पीड़ा और सूजन होती है ॥

उत्क्षेपौ स्थापनी चैव विशल्यघ्नं निकम्मतम् ॥

(ख) उत्क्षेपौ शङ्खयोरुपरि केशान्तौ। स्नायु मर्म्मणी अर्द्धाङ्गुले तयाविद्धयाः स शल्यो जीवेत्पाकात्पतति शल्योवा उद्धृतशल्यस्तु म्रियेत।

भा० उत्क्षेप दो और एक स्थपनी ये तीन विशल्यघ्न हैं ॥

अतएव विशल्य मुद्धृते शल्यं हन्तीति विशल्यघ्नं मर्म्मे-
स्थापनी । एका भ्रुवो मंध्ये शिरा मर्म्मेद मर्द्धाङ्गुलम्
विशल्यघ्नम् ॥

भा० (क) शंख के ऊपर के शनक उत्क्षेप नाम दो स्नायुमर्म्म दो अंगुल के हैं । उनके कटने में सशल्यजीता है अर्थात् जबतक कांटा फंसा रहता है तब तक जीता है ॥ अथवा पाकसे कांटा गिर पड़ता है । और कांटेके उखेड़ने मरजाता है । इसीवास्ते विशल्य अर्थात् निकाला हुवा शल्य मारता है इसे विशल्यघ्न कहते हैं । मर्म्मस्थापनी । एक भवोंके बीचमें यह शिरामर्म्म अर्द्धाङ्गुल का विशल्यघ्न है ॥

सप्तरात्रान्तरे हन्युः सद्यःप्राणहराणि हि ।
कालान्तर प्राणहरं पक्षे मासे च मारकम् ॥ १५९॥
सद्यः प्राणहरन्त्वान्ते विद्धं कालेन मारयेत् ॥
कालान्तरे प्राणहर मन्ते विद्धन्तु दुःखदम् ॥ १६०॥
(अन्ते मर्म्मसमीपे)
मर्म्माण्य धिष्ठाय हि ये विकारा मूर्च्छन्ति काये
विविधा नराणाम् ॥ प्रायेण ते कृच्छ्रतमा भवंति
वैद्येन यत्नैरपि साध्यमानाः ॥ १६१ ॥

भा० सद्यःप्राणहर मर्म्म सात दिन के बीच में नाश करते हैं । और कालान्तर में प्राण हरने वाले मर्म्म महीने में या पंद्रह दिनमें मारक हैं ॥ १५९ ॥ सद्यःप्राणहर मर्म्म पास बिन्धने से कालान्तर मारते हैं ॥ कालान्तर प्राणहर मर्म्म निकट बिंधे हुवे दुःख देते हैं ॥ १६० ॥ अन्त अर्थात् मर्म्मके समीप । मनुष्यों के शरीर में मर्म्मों के ऊपर जो नाना प्रकार के विकार होते हैं

चोह् विकार प्रायः वैद्योंके द्वारा यत्नसे भी प्रतीकार किये गये अत्यन्तक ष्टसाध्य होते हैं ॥ १६१ ॥

(अथ सन्धयः ।) ते [द्विविधाश्चेष्टावन्तः स्थिराश्च ।]

शाखासु हन्व्योः कट्याञ्च चेष्टावन्तो भवन्ति हि । शेषास्तु सन्धयः सर्वे स्थिरा स्तज्ज्ञै रुदाहृताः ॥ १६२ कथिता देहिनां देहे सन्धयो द्वे शते दश ॥ शाखासु तेऽष्टषष्टिश्च कोष्ठेत्वेको न षष्टिका ॥ १६३ ॥ ग्रीवायां ऊर्द्ध्वदेशे नु त्र्यशीतिस्ते प्रकीर्त्तिताः ॥ प्रथ मं परिगण्यन्ते तेषु शाखागता इह ॥ १६४ ॥

भा० अनन्तर सन्धि कहतेहैं । वो सन्धि दो प्रकार कीहोती हैं । चेष्टा वाली और स्थिर । हाथ पावों में और जबाड़ों में तथा कमर में चेष्टा वा ली सन्धियी हैं । और बाकीसब स्थिर उनके जानने वालों ने कहाहैं । ॥ १६२ ॥ प्राणियों के देहमे दो से दश २१० सन्धियां अर्थात् जोड़ कहे गये हैं । वे जोड़ हाथ पावों मे अड़सठ (६८) और कोष्ठ में उनसठ । १६३ ॥ और गलेके ऊपरके भाग में वेजोड़ अस्सी (८०) कहे गये हैं । उन में पहिले यहांपर हाथ पावों में के जोड़ गिनिजाते हैं ॥ १६४ ॥

(क) एकैकस्यां पादाङ्गुल्यां त्रयस्त्रयो द्वावङ्गुष्ठे ते चतुर्दश । गुल्फ जानु वंक्षणेष्वेकैक मेवं सप्तदश ए कस्मिन् सक्थिनि भवन्ति ॥

(ख) एतेनेतर सक्थि बाहू च व्याख्यातो । एवमष्टष ष्टि शाखासु । [अथ कोष्ठगतानाह ।]

(ग) त्रयः कटीकपालेषु चतुर्विंशतिः पृष्ठवंशे तावन्त एव पार्श्वयो रष्टावुरसि एवमेकोनषष्टिः कोष्ठे ॥

भा० (क) एक एक पैरकी उंगलियों में तीनतीन ३।३। और दोदो अंगूठों में इस प्रकार दो जोड़ चौदह १४) होते हैं। टखना और घुटना तथा पूर्वोक्त वंक्षण इनमें एकेक इस प्रकार सत्रह १७) एक पांवमें होते हैं ॥ (ख) इसी हिसाब से दूसरे पांवमें और दोनों हाथों में कही गई हैं। इस प्रकार हाथ पांवमें अड़सठ जोड़ होते हैं। अनन्तर कोष्ठके जोड़ोंको कहते हैं ॥ (ग) तीन कमरमें ३। पीठके बांस में चौबीस २४) उतनी ही पसलियों में आठ छातीमें इस प्रकार उनसठ कोष्ठ में ॥

[अथ ग्रीवोर्द्ध्वगतानाह।

(घ) अष्टौ ग्रीवायां त्रयः कण्ठ नाडीषु हृदयक्लोमफुफ्फुसनिबद्धास्त्वष्टादश। द्वात्रिंशद्दन्तमूलेषु एकः काकलके नासायाञ्च एकैकः द्वौ द्वौ वर्त्ममण्डल गण्डकर्णशङ्खेषु द्वौ हनुसन्धी द्वावुपरिष्टात् भ्रुवोः शङ्खयोश्चोपरिष्टात् पञ्चशीर्षकपालेष्वेको मूर्द्धनीति कण्ठमणौ घण्टिकेति प्रसिद्धे एतेसन्धयोऽष्टविधा भवन्ति ॥

भा० [अनन्तर गलेके ऊपर केजोड़ोंको कहते हैं। आठ गलेमें ८) तीन कंठमें ३) हृदय क्लोमसे बन्धी हुई नाड़ियोंमें अठारह १८। बत्तीस दांतोंकी जड़में ३२। कंठमणिमें एक १। नाकमें एक १। आंखोंकी गोलाई में दो २। गालोंमें दो २। कानोंमें दो २। शंखमें दो २। जबाड़ोंमें दो २। भवोंके ऊपर दो २। शंखके ऊपर दो २। खोपड़ीमें पांच। शिरमें एक। १। कंठमणि अर्थात् घंटिका जिसको घांट भी कहते हैं। येजोड़ आठप्रकार के होते हैं ॥ [तेयथा।]

कोरो दूखल सामुद्गाःप्रतरस्तुन्नसेविनी। काकतुंड मंडलेच-शंखावर्तोऽष्टसन्धयः ॥ २६५ ॥ (क) कोरोयत्नः। नलिकेत्यन्ये उदूखलः प्रसिद्धः समुद्गः संपुटः समुद्ग एव सामुद्गः अत्र स्वार्थे अण्। प्रतरन्त्यनेनेति प्रतरो वेलकः तुन्नस्येव तुन्नीरस्य सेवि

नी स्तूनी स्तूनसेविनी। काकतुंडं काकमुखं। मण्डलं प्रसिद्धं शंखस्यावर्त्तः शङ्खावर्त्तः। एते यथा नाम प्रकृतयः सन्धयो भवन्तीत्यर्थः। (ख) एषामङ्गुलि मणिबन्ध गुल्फ जानु कूर्परेषु : कोराः सन्धयः। कक्षा वंक्षण दन्तेषु उदूखलाः अंस पीठ गुद भग नितम्बेषु सामुद्गाः॥ ग्रीवा पृष्ठ वंशयोस्तु प्रतराः शिरः कटीकपालेषु तु न सेविन्यः। हन्वोरुभयतः काकतुण्डाख्याः कण्ठ हृदय क्लोम नाडीषु मण्डलाख्याः। शिर श्रोत्रः शृङ्गाटकेषु शंखावर्त्ताः

भा० [जैसे] कोर उदूखल सामुद्ग प्रतर तुन्नसेविनी काकतुंड मंडल और शंखावर्त्त ये आठ सन्धियों के भेद हैं॥ १६५॥

(क) कोर अर्थात् खराखवार और लोग नलिका भी कहते हैं॥ उदूखल अर्थात् ऊखल के मानिंद सामुद्ग अर्थात् ढकना संपुट समुद्ग ही सामुद्ग इस अर्थमें अण् प्रत्यय होता है। चलनी है इससे वह प्रतर अर्थात् बेल। तून में रहनेवाला ही तूनी इसकी सेविनी अर्थात् सुई तूनी तूनसेविनी। काकतुण्ड अर्थात् कौव्वे का मुख। मण्डल प्रसिद्ध अर्थात् गोल। शंख का आवर्त्त अर्थात् भवर। ये जैसे नाम वैसे रूप जोड़ हैं॥

(ख) इनमें से उङ्गलि पोंचा टखने घुटना कोहनी इनमें कोर सन्धि है। कांख वंक्षण और दांतों में उदूखल जोड़ है। अंस पीठ गुदा भग नितम्ब इनमें सामुद्ग सन्धि है। गरदन और पीठ के बांस में प्रतर संधि है। सिर कटी कपाल में तुन्नसेवनी। जबाड़े के दोनों तरफ़ काक मुख। कंठ हृदय क्लोम नाड़ी में मण्डल। श्रोत्र शृङ्गाटक में शंखावर्त्त।

अस्थ्नां तु सन्धयो ह्येते केवलाः समुदाहृताः॥ पे-
शी स्नायु शिराणान्तु सन्धिसंख्या न विद्यते॥ १६६॥

[अथ शिरामाह।]

सन्धिबन्धन कारिण्यो दोषधातु वहाः शिराः।

नाभ्यां सर्वाणि बद्धा स्ताः प्रतन्वन्ति समन्ततः ॥१६७

शरीरं सकलञ्चै तच्छिराभिः पोष्यते सदा ॥ प्रणा-
लीभि रिवारामा कुल्याभिः क्षेत्रधान्यवत् ॥१६८॥
(क) अत्र प्रणालीभिः कुल्याभिरिति दृष्टान्तद्वयं स्थूल सूक्ष्म शिराभेदात् ॥

भा० केवल अस्थियों के जोड़ इतने कहेगये हैं । पेशी स्नायु और शिरा इनकी सन्धि संख्या नहीं है ॥ १६६ ॥ अनन्तर शिरा कहते हैं ॥ जोड़के बन्धन को करनेवाली और दोषधातु को धारण करनेवाली रगें होती हैं ॥ वो सब नाभिसे बन्धी हुई आस पास फैली हैं ॥ १६७ ॥ यह शरीर सर्वदा शिराओंसे पोषण किया जाता है । जैसे नाली से बाग और छोटी नहर से खेतका धान तैय्यार किया जाता है ॥ १६८ ॥
(क) यहां पर नाली और छोटीनहर यह दो दृष्टान्त छोटीबड़ी नसों के भेद से कही गई हैं ॥

प्रसारणाकुञ्चनादि क्रियाभिः सततं तनोः ॥ शि-
रा एवोपकुर्वन्ति ताःस्युः सप्तशतानि तु ॥ १६९॥
यथा द्रुमदले साक्षात् दृश्यन्ते प्रतताः शिराः ॥
तथैव देहिनो देहे वर्त्तन्ते सकले शिराः॥ १७०॥
नाभिस्थाः प्राणिनां प्राणाः प्राणान्नाभिरुपाश्रिता।
शिराभिरावृता नाभिश्चक्रनाभिरिवारकैः ॥१७१॥

भा० फैलना सिकुड़ना इत्यादिक क्रियाओंसे निरंतर शरीर में शिराही उपकार करती हैं । वोह सात सौ हैं ॥ १६९ ॥ जैसे वृक्ष के पत्ते में फैली हुई साफ रगें दिखती हैं । वैसेही मनुष्य के सब शरीर में शिरा रहती हैं ॥ १७० ॥ प्राणियों के प्राण नाभिस्थ हैं और नाभि प्राणों के पास मिली हुई हैं । तथा शिराओं से घिरी हुई नाभि है जैसे आरक अर्थात् तीलियों से

चक्र नाभिके मानिंद् ॥ १७१ ॥

(क) तद्यथा तासां खलु मूल शिरा चत्वारिंशत ॥ तासां दश वातवहाः दश पित्तवहाः दश श्लेष्मवहाः दश रक्त वहाः तासां खलु वातवहाना वातस्थानगतानां सप ञ्च सप्तति शतानि भवन्ति ॥ तावन्त्य एव पित्तवहाः पित्तस्थान गताः । श्लेष्मवहाः ताः श्लेष्मस्थान गताः रक्तवहा यकृत् प्लीह गताः एवं शिराः सप्तशतानि भवति।

भा० वो जैसे । उनमें प्रधान शिरा चवालीस हैं । उनमें दश वात वहा ; दश पित्तवहा, दश कफवहा, दश रक्तवहा, इस प्रकार चालीस हैं ॥ वातस्थान में प्राप्त उन वात वहों के एकसे पचहत्तर १७५ हैं । ऐसे ही पित्तस्थान में प्राप्त पित्तवहा और श्लेष्मस्थान में प्राप्त श्लेष्मवहा भी एकसे पिचहत्तर १७५ ॥ तथा यकृत् प्लीहमें प्राप्त रक्त वहा एकसे पिचहत्तर १७५ इस प्रकार सातसे शिरायें ॥

तत्र वातवहाः एकस्मिन् सक्थिनि पञ्चविंशति एतेनेतरसक्थि बाहूच व्याख्यातो । विशेषतः को ष्ठे चतुस्त्रिंशत् तासां श्रोण्यां गुदमेढ्राश्रिता अष्टौ। द्वे द्वे पार्श्वयोः । षट् पृष्ठे ६ तावन्त्य एवोदरे ६ दश वक्षसि १० एक चत्वारिंशत् जत्रुणः ऊर्द्धम् तासां चतुर्दश १४ । ग्रीवायां ४ चतस्रः कर्णयोः २ नव जिव्हायां ६ षट् नासिकायां ८ अष्टौ नेत्रयोः ॥

भा० उसमें वातवहा एक सक्थिमें २५ पचीस इसी हिसाब से दूसरी

सक्थि और दोनोंबाहू व्याख्या किये गये अर्थात् दो सक्थि और दोबाहु मिलके सो १०० । हैं । विशेष करके कोष्ठमें चौतीस ३४ उनमें श्रोणी गुद लिंग इनके आश्रित आठ । ८ । दो २ पसलियों में छः पीठमें उतनेही उदर में दशवक्षस्थल में इसप्रकार ३४ एक चालीस जत्रुके ऊपर उनमें ग्रीवामें चौदह कानोंमें ४ नौ जिव्हामें छः नाकमें आठ आंखोंमें ऐसे ४१

(ख) एवं वातवहानां सपञ्च सप्ततिशतं भवन्ति । एवं विभागः पित्तवहानामपि विशेषस्तु पित्तवहा नेत्रयोर्दश १० कर्णयोर्द्वे २ एवं रक्तवहा श्लेष्मवहास्तु (षोडश १६ ग्रीवायां कर्णयो र्द्वे २) एवं शिराणां सप्तशतानि व्याख्यातानि ॥

क्रियाणामप्रतीघातममोहं बुद्धिकर्म्मणाम् ॥ (क) करोत्यन्यान् गुणांश्चापि स्वाः शिराः पवनश्चरन् १७२

भा० (ख) इस प्रकार वातवहा एकसौ पिचहत्तर हैं । इस प्रकार पित्तवहों का भी विभाग है । परन्तु विशेष करके पित्तवहा आंखमें दश कानों में दो । इस प्रकार रक्तवहा और श्लेष्म वहा हैं ॥ इस प्रकार सात सौ शिरा व्याख्या की गई हैं । अपनी शिरामें विचरता हुवा वायु क्रियाओं क अप्रतिघात अर्थात् नष्ट नहोने देना और ज्ञानेन्द्रियों का अमोह अर्थात् मोह न होनेदेना इनको करता है ॥ १७२ ॥

(क) क्रियाणां प्रसारणाकुञ्चनादीनाम् । अमोहं बुद्धिकर्म्मणाम् । बुद्धीन्द्रियाणां मनसो बुद्धेश्च स्वे स्वे विषये ज्ञानं करोतीत्यर्थः । अन्यान् गुणान् रसादिव्यायनद्वारा शरीरपोषणादीन् ।

भा० (क) क्रियाणां अर्थात् फैलाना सुकड़ना इत्यादिकों का । अमोहं बुद्धिकर्मणां अर्थात् ज्ञानेन्द्रियोंका और मनका तथा बुद्धिका अपने अपने विषयों में ज्ञान करना है । और गुण अर्थात् रसादि धातुवों का

फैलाने के द्वारा शरीर पोषणादि को भी करता है ॥

यदा तु कुपितो वायुः स्वाः शिराः प्रतिपद्यते ॥ तदा-
स्य विविधा रोगा जायन्ते वातसम्भवाः ॥ १७३॥
भ्राजिष्णुता मन्नरुचिमग्निदीप्तिमरोगताम् ॥ क-
रोत्यन्यान् गुणांश्चापि पित्तमात्मा शिराश्चरन् १७४

(क) अरोगतां पैत्तिक रोगानुत्पत्तिं करोति। अन्यान् गु-
णान् मेधा बुद्धि दर्शन शक्त्यादीन् ॥

भा० जब कुपित हुवा वायु अपनी शिरामें प्राप्त होता है तब इसको वात के नाना प्रकारके रोग उत्पन्न होते हैं ॥ १७३ ॥ अपनी शिरामें विचरता हुवा पित्त कान्ति और अन्नकी रुचि तथा दीप्ताग्नि और रोग का न होना इनको करता है। तथा और गुणोंको करता है ॥ १७४ ॥
(क) अरोगताम् अर्थात् पैत्तिक रोगों को न उत्पन्न करना। और गुणों को अर्थात् मेधा बुद्धि और दर्शन शक्ति इत्यादिकों को उत्पन्न करता है ॥

यदा तु कुपितं पित्तं सेवते स्ववहाः शिराः ॥ तदा-
स्य विविधा रोगा जायन्ते पित्तसम्भवाः ॥ १७५॥
स्नेहमङ्गेषु सन्धीनां स्थैर्य्यं बलमरोगताम् ॥ क-
रोत्यन्यान् गुणांश्चापि बलासः स्वाः शिराश्चरन् १७६

(क) अरोगतां श्लैष्मिकरोगानुत्पत्तिं अन्यान् गुणान् बल
पुष्ट्यादीन् ॥

भा० जब कुपित हुवा [illegible] इसके [illegible]
भव नाना प्रकार के रोग [illegible]
की स्थिरता और बल तथा अरोगता इनको कफ अपनी शिरामें विचरता हुवा

करताहै ॥ १७६ ॥ (क) अरोगता अर्थात् कफके रोगोंको न उत्पन्न करना। अन्यगुण अर्थात् बलपुष्टि आदिको करताहै ॥

यदा तु कुपितः श्लेष्मा स्वाः शिराः प्रतिपद्यते ॥
तदास्य विविधा रोगा जायन्ते श्लेष्मसम्भवाः ॥१७७॥
धातूनां पूरणं वर्णं स्पर्शज्ञान मसंशयम् ॥ स्वाः शि-
रास्तु चरद्रक्तं कुर्य्याच्चान्यान् गुणानपि ॥ १७८ ॥
(अन्यान् गुणान् बलपुष्ट्यादीन्)
यदा तु कुपितं रक्तं सेवते स्ववहाः शिराः ॥ तदास्य
विविधारोगा जायन्ते रक्तसम्भवाः ॥ १७९ ॥
तत्रारुणा वातवहाः पूर्य्यन्ते वायुना शिराः ॥
पित्तादुष्णाश्च नीलाश्च शीता गौर्य्यः स्थिराः कफात् ८०
असृग्धरास्तु ता रक्ताः स्युः र्नात्युष्णशीतलाः ॥

भा० जब कुपित हुवा कफ अपने शिराओं में प्राप्त होता है तब इनके कफके नाना प्रकारके रोग उत्पन्न होते हैं ॥ १७७ ॥ (क) अपनी शिराओंमें विचरता हुवा रक्त धातुवों का भरना रंग और स्पर्शका ज्ञान इनको अवश्य करताहै तथा और गुणोंको भी करताहै ॥ १७८ ॥
(क) अन्य गुण अर्थात् बल पुष्टि आदिको भी करता है ॥ जब कुपित हुआ रक्त अपनी शिराओंमें प्राप्त होता है तब रक्त संभव विविध रोग उत्पन्न होते हैं ॥ १७९ ॥ उसमें अरुण वर्णकी वातवह शिरा वायु से भरजाती है। और पित्तसे गरम तथा नीले रंगकी होती है। और कफसे स्थिर भारी ठंडी होतीहै ॥ १८० ॥ तथा रक्तवहावों शिरा न बहुत गरम न ठंडी लाल रंगकी होती है।

[अथ स्नायुः। तत्र स्नावोः स्वरूपमाह।]

मेदसः स्नेहमादाय शिरा स्नायुत्वमाप्नुयात् ॥
शिराणां हि मृदुः पाकः स्नायुनान्तु ततः स्वर ॥१८१॥

स्नायवो बन्धनानि स्यु र्देह मांसास्थि मेदसाम् ॥
सन्धीना मपि यत्तास्तु शिराभ्यः सुदृढाः स्मृताः॥ १९२॥
नौर्यथा फलकास्तीर्णा बन्धनै र्बहुभिर्युता ॥ नि
युक्ताऽगाधसलिले भवेद्भारसहा भृशम् ॥ १९३॥
एवमेव शरीरेऽस्मिन्यावन्तः सन्धयः स्मृताः॥
स्नायुभिर्बहुभिर्बद्धा स्तेन भारसहा नराः॥ १९४॥

भा० अनन्तर स्नायुवों का स्वरूप कहते हैं ॥ शिरा मेदके चिकना पनको लेकर स्नायु होजाती हैं। शिराओं का मृदुपाक होताहै और स्नायुवों का उस्से खर पाक होताहै ॥ १९१॥ शरीर के मांस अस्थि और मेद इनके बन्धन स्नायु हैं। और सन्धियोंके भीबन्धनहैं। तथा वो स्नायु शिराओंसे दृढ कियेगयेहैं ॥ १९२॥ जैसे काष्टकी पटियों से व्याप्त और बहुत से बन्धनोंसे युक्त नाव अथाह पानीमें छोड़ीबहुत बोझे के सहनेवाली होतीहै ॥ १९३॥ इसीप्रकार इस शरीर में जितनेस्नायु से बंधेहुवे जोड़ कहेगये हैं। उसी से भारको सहनेवाले मनुष्य होते हैं ॥ १९४॥

(फलकै काष्ठपट्टैः आस्तीर्णाव्याप्ताः।)

शतानि नव जायन्ते शरीरे स्नायवो नृणाम् ॥
तासां विवरणं ब्रूमः शिष्याः। शृणुत यत्नतः॥
शाखासु षट्शतानि स्युः कोष्ठे त्रिंशत् शतद्वयम्॥
ग्रीवाया मूर्द्धदेशे तु स्नायूनां सप्ततिः स्मृताः॥ १९६

भा० (क) फलक अर्थात् लकड़ियों की पटियोंसे व्याप्त। मनुष्यों के शरीर में नौसे स्नायु हैं ॥ उनका व्याख्यान कहते हैं। हे शिष्यो यत्न से सुनो ॥ १९५॥ शाखाओं में अर्थात् दो हाथ और दो पावों में छसे ६०० (स्नायु हैं ॥ और कोष्ठ में दोसै तीस २३० (तथा ग्रीवा के ऊपर सत्तर कहे गये हैं ॥ २९६ ॥

[तत्र शाखागताः प्राह]

(क) एकैकस्यां पादाङ्गुल्यां षट् षट् तास्त्रिंशत्। तावन्त्य एव तलकूर्चगुल्फेषु। तावन्त्य एव जङ्घायां दश जानुनि। चत्वारिंशदूरौ। दशवङ्क्षणे। एवं सार्द्धं शतमेकस्मिन् सक्थिनि भवन्ति। एतेनेतरसक्थि बाहू च व्याख्यातौ।

भा० उसमें शाखामें प्राप्त स्नायुवों को कहते हैं। (क) पांव की एक २ उंगुलियों में छः २ हैं। इसतरह वो पांचों उंगुलियों में मिलके तीस हैं। और उतनीही तलुवे और कूर्च तथा टकनोंमें। उतनी ही अर्थात् ३० टांगमें दस घुटनेमें चवालीस जंघामें दस वंक्षणमें इस प्रकार १५० (एक सक्थिमें है। इसी हिसाब से दूसरी सक्थि और दो बाहू इनमें कहे गये हैं॥

[अथ कोष्ठगताः प्राह।]

(ख) षष्ठिः कट्यां तावन्त्य एव पार्श्वयोः। अशीतिः पृष्ठे त्रिंशदुरसि। [अथ ग्रीवोर्द्धगताः प्राह]

(ग) षट् त्रिंशद् ग्रीवायाम्। चतुस्त्रिंशन्मूर्द्धि एवं स्नायूनां नवशतानि भवन्ति। [अथ धमन्यः]

धमन्यो नाभितो जाता श्चतुर्विंशति संख्यया॥
दशोर्द्धगा दशाऽधोगा शेषास्तिर्य्यग्गताः स्मृताः॥२८७॥

भा० अनन्तर कोष्ठमें प्राप्तों को कहते हैं॥ (क) साठ कमर में उतनी ही पसलियों में (६०) तीस ३० छाती में। इस प्रकार दोसे तीस (२३०)हैं। अनन्तर ग्रीवाके ऊपर प्राप्तहुवों को कहते हैं॥ (क) छत्तीस ग्रीवामें ३६ (चौंतीस ३४ मस्तक में। इस प्रकार नौसे स्नायु हैं॥

पुरीष शुक्रार्त्तवादीनधो वहन्ति । तास्तु पित्ताशयङ्गता त्रिधा जायन्ते तास्त्रिंशत् ।

भा० (ख) तथा दोसे बोलता है दोसे सोता है दोसे जागता है दो आँसू को धारण करनेवाली और दो औरतों के दूधको धारण करती हैं स्तनसे मिली हुई । और वोही पुरुष के शुक्रको स्तनों के द्वारा धारण करती हैं । ये तीस हैं । इनके द्वारा उदर पसलियाँ पीठ उरू कंधा ग्रीवा शिर और बाहू ये धारण किये गये हैं । और हिलायेभी जाते हैं ॥ और अधोगत । वात मूत्र मल शुक्र आर्त्तव इनको नीचेकी तरफ़ धारण करती हैं ॥ वो धमनी पित्ताशयमें प्राप्तहुई तीन प्रकार होती हैं । वो तीस हैं ।

तासाम्मध्ये द्वे द्वे वातपित्त कफ शोणित रसान् वहतः। तादृश द्वे अन्नवहे अन्त्राश्रिते द्वे तोयवहे द्वे वस्तिगते मूत्रवहे द्वे शुक्रस्य प्रादुर्भावाय द्वे तद्विसर्गाय ते एव नारीणामार्त्तव प्रादुर्भावाय तेऽधि सृजतश्च । द्वे स्थूलान्त्र प्रतिबद्धे पुरीषं विसृजतः ।

भा० उन तीसों के बीचमें दो दो वात पित्त कफ रुधिर और रस इनको धारण करती हैं । वो दस हैं । अंतड़ियों को धारणकरनेवाली २ और आंतों से मिली हुई पानी को धारणकरनेवाली दो २ । वस्ती में प्राप्त मूत्रको धारण करनेवाली दो २ । शुक्र के उत्पन्न होनेके वास्ते २ । और उसके त्यागके वास्ते दो २ । वोही औरतोंका आर्त्तव प्रादुर्भाव होने के वास्ते और उत्पन्न होनेके वास्ते भी । तथा दो मोटी आंतोंसे बंधीहुई मलको छोड़ती हैं।

अष्टावन्यास्तिर्य्यग्गताः स्वेदमर्पयन्ति । एतास्त्रिंशत् एताभिरधोनाभेः पक्वाशय कटी मूत्र पुरीष वस्ति गुदमेढ्र सक्थीनि धार्य्यन्ते चाल्यन्ते च । तिर्य्यग्गतानान्तु चतसृणामेकैकं शतधा सहस्र

धा चोत्तरोत्तरं विभज्यन्ते । (ग) तास्त्वसङ्ख्यास्ता भि रिदं शरीरङ्गवाक्षितम् निबद्धमाततम् गवाक्षवत् निबद्धमायतङ्गवाक्षो वातायनं यथा गवाक्षे बहूनिछिद्राणि भवन्ति तथा अस्मिन्देहे जालवत् शिराः व्याप्यतिष्ठन्तीति भावः निबद्धमायतङ्गवाक्षितम् ।

भा० तिरछी गईहुई आठ पसीना देतीहैं । येनौसहैं । इन्होंसे नाभके नीचे पक्वाशय कमर मूत्र मल बस्ति गुद लिंग और सक्थि धारण की गईहैं । और चलाई भी जाती हैं । और तिरछी-गईहुई चारोंमेंसे एक२ सौतरह पर तथा हज़ार तरह पर उत्तरोत्तर अर्थात एकके अनन्तर एक इस क्रमसे विभाग की गईहैं ॥ (ग) वो असंख्य हैं । उनसे शरीर झरोखे के मानिन्द व्याप्तहुवा बनाया गयाहै । गवाक्ष के मानिन्द विस्तृत रचागया । गवाक्ष अर्थात हवा आनेकी जगह । जैसे झरोखे में बहुत से छेक होतेहैं उसी प्रकार इस शरीर में जालके मानिन्द शिरा व्याप्त होकर रहतीहैं बनाहुवा फैला झरोखे के मानिंद ॥

गवाक्षाकारान्तनिकरयुक्तं कृतमित्यर्थः । तासां मुखानि रोमलग्नानि यैर्मुखैः स्वेदः स्रवति रसञ्चाभिसन्तर्पयन्त्यन्तर्बहिश्च । तैरेवाभ्यङ्ग परिषेकावगाहनालेपनवीर्य्याणि त्वचि पक्वान्यन्तः प्रवेशयन्ति । तैरेव स्पर्शं शुभं अशुभं वा गृह्णन्ति यथा स्वभावतः खानि मृणालेषु बिसेषु च ॥

भा० अर्थात् झरोखे के आकार आनों के समुदायों से युक्त कियाहुवा । उनके मुख रोमोंसे लगे हुवेहैं । जिन मुखोंसे पसीना निकलताहै । और रस भीतरबाहर आसपास सींचा जाताहै । और उन्हींसे अभ्यङ्ग

परिषेक अवगाहन आलेपन इनके पके इवे वीर्य्य त्वचामें भीतर पहुंचाते हैं। तथा उन्हीसे अच्छा बुरा स्पर्श लियाजाता है। जैसे स्वभाव से कमल की फूलकी डंडीमें छेक होतेहैं

धमनीनान्तथा खानि रसो यै रभितश्चरेत् ॥ १८८॥

पञ्चाभि भूतास्त्वथ पञ्च कृत्वः पञ्चेन्द्रियम्पञ्च सु भावयन्ति। पञ्चेन्द्रियम्पञ्चसु भावयित्वा पञ्च त्वमायान्ति विनाशकाले ॥ १८९॥

(ख) धमन्यः कथं भूताः पञ्चाभि भूताः पञ्चभ्यः आ काशादि महाभूतेभ्यः अभि समन्तात् भूताः उभयात्म कं मनश्च यस्य तं पञ्चेन्द्रियं जीवात्मानम्पञ्चसु इन्द्रि याधिष्ठानेषु श्रोत्रादिषु पञ्चकृत्वः पञ्चवारान् ॥

भा॰ वैसे धमनियों के छेक होतेहैं। जिनके द्वारारस आस पास घूमता है ॥ १८८ ॥ आकाशादि पंच महाभूत स्वरूप धमनी पंचेन्द्रिय अर्थात् जीवात्माको श्रोत्रादिकोंमें पंचवार प्राप्त करतीहैं। अर्थात् पर्य्यायसे एकबारही प्राप्तकरती हैं। पञ्चेन्द्रियोंको पांचों में योजना करके विनाशकाल में पंचत्व को प्राप्त होती हैं ॥ १८९ ॥

इसका यह अर्थहै कि। धमनी कैसी हैं पांचों से आस पास घिरीहैं। अर्थात् आकाशादि महाभूतोंसे आसपास घिरीहुई। उभयात्मक मनभी जिसके उस पचेन्द्रिय अर्थात जीवात्माको पांचों में अर्थात् इन्द्रियों के अधिष्ठान श्रोत्रादिकों में पंचवार अर्थात् पर्य्याय से एक बार ही प्राप्तकरती हैं ॥

पर्य्यायेण त्वेकदैव भावयन्ति प्रापयन्ति पञ्चेन्द्रि यं पञ्चाना मिन्द्रियाणां समाहारः पञ्चेन्द्रियं श्रोत्रा दि तदुपलक्षितं कर्म्मेन्द्रियम्मनश्च। पञ्चसु पृथि

व्यादिषु। बुद्धीन्द्रिय विषयेषु तदुपलक्षितेषु हस्ता दिषु कर्मेन्द्रिय विषयेषु। मन्तव्ये मनो विषये च भाव यित्वा प्राप्य संयोज्येति यावत्। विनाशकाले पञ्चत्वं आकाशादि भावं। आयान्ति प्राप्नुवन्तीत्यर्थः॥

भा० पंचेन्द्रियं। पांचों इन्द्रियोंका समाहार पंचेन्द्रिय श्रोत्रादि उस करके उपलक्षित कर्म्मेन्द्रिय और मनभी॥ पांचोंमें अर्थात् पृथि व्यादिकोंमें। ज्ञानेन्द्रिय विषय और उसकरके उपलक्षित हस्तादि कर्मेन्द्रिय विषयों में और मनन योग्य मनो विषयमेंभी प्राप्तक रके विनाश कालमें पंचत्व अर्थात् आकाशादि भावको प्राप्त होतीहैं॥

[अथ कण्डरा]

महत्यः स्नायवः प्रोक्ताः कण्डरास्ता स्तु षोडश॥
प्रसारणाकुञ्चनयोः दृष्टं तासां प्रयोजनम्॥९८०॥
चतस्रो हस्तयो स्तासां तावन्त्यः पादयोः स्मृताः॥
ग्रीवाया मपि तावन्त्य स्तावन्त्यः पृष्ठसङ्गताः॥९८१॥

(क) तत्र पादहस्त गतानां कण्डराणां नखाः प्ररोहाः ग्रीवानि बन्धनानामधो भागगतानां प्ररोहो मेढ्रः पृष्ठ निबन्धानां प्ररोहा नितम्ब मूर्द्धोरुवक्षोऽंसफलक पिण्डाः॥

भा० अनन्तर कण्डरा। बड़ी स्नायुवों को कण्डरा कहते हैं। वो सोलह हैं। पसारने और सिकोड़ने में उनका प्रयोजन देखा गयाहै॥ ९८०॥ सो कंडरा हातों में चार और उतनीही पैरोंमें कही गई हैं॥ गरदन में भी चार और पीठसे लगी हुई भी चार हैं॥ ९८१॥

(क) उनमें से हात पैरोंमें प्राप्त हुई कंडराओंके अंकुर नख हैं। गरदन से बन्धी हुई अधोभाग में प्राप्त हुई कंडराओं के अंकुर शिश्नहैं।

और पीठ से लगी रुई के अंकुर ऋतड मूर्द्ध उरु वक्ष स्तन पिंड हैं।

[अथ रंध्राणि।]

नेत्र श्रवण नासानां द्वे द्वे रन्ध्रे प्रकीर्तिते॥ मुख मेहन पायूना मेकैकं रन्ध्र मुच्यते॥ २६२॥

दशमं मस्तके प्रोक्तं रन्ध्राणीति नृणां विदुः॥ स्त्रीणामन्यानि च त्रीणि स्तनयो गर्भवर्त्मनि॥ २६३॥

भा० अनन्तर छिन्द्रोंको कहतेहैं। आँख कान नाक इनमें दो २ छिद्र कहे गयेहैं। मुख शिश्न गुदा इनमें एक २ छिद्र कहा है॥ २६२॥ दसवां मस्तक में कहा गयाहै। इस प्रकार मनुष्योंके छिद्र जाने गयेहैं स्त्रियों के और तीन हैं। स्तनों में दो गर्भाशय में एक॥ २६३॥

[अथ स्रोतांसि।]

मनः प्राणान्न पानीय दोष धातूप धातवः॥ धातूनाञ्च मला मूत्रं मल मित्यादयः स्तनौ॥ २६४॥

सञ्चरन्ति हि ये मार्गैः तानि स्रोतांसि सञ्जगुः॥ बहूनितानि संख्याय प्रावचन्ते नैव भाषितुम्॥ २६५

भा० अनन्तर स्रोतोंकोकहतेहैं॥ मन प्राण अन्न जल दोष धातु और उपधातु। और धातुओं के मल मूत्र मल इत्यादिक तथा स्तन हैं॥ २६४॥ जिस मार्गसे ये संचार करतेहैं उसको स्रोत कहते हैं। वो बहुतहैं उनकी संख्या नहीं कह सके॥ २६५॥

[अथ जालानि।]

(क) निरन्तर रन्ध्राणि करकलितानि समाहितानि च जालानीवजालानि।

जालानि तु शिरास्नायु मांसास्थ्या मुद्भवन्ति हि॥

नानि चत्वारि चत्वारि सर्वान्येव च षोडश ॥ १८६॥
(ख),तानि मणिबन्धगुद संस्रतानि परस्पर निबद्धानि परस्पर संश्लिष्टानि परस्पर गवाक्षितानि चेति येर्गवा क्षितमिदं शरीरम् । अथ मर्थः । एकस्मिन्मणिबन्धे । एकञ्जालं शिरायाः । अपरं स्नायोस्तृतीयं मांसस्य चतुर्थमस्थ्नः एवञ्चत्वारि जालानि ।

भा०(क) अनन्तर जालोंको कहते हैं । निरन्तर छिद्र समूहों सेवधे हुवे समाहित जालों के मानिन्द जाल । जाल शिरा स्नायु मांस अस्थि योंका उद्भव करती हैं । वो चार २ एक एक में होते हैं इस तरह पर वो सब सोलह हैं ॥ १८६ ॥ (ख) वो मणिबन्ध गुदामें मिले हुवे परस्पर बन्धेहुवे और एकसे एक मिलहुवे परस्पर गवाक्षित हैं । जिन्हों से यह शरीर गवाक्षितसा हैं । यह अर्थ है । एक मणिबन्ध में । एक जाल शिराका । दूसरा स्नायुका । तीसरा मांसका । चौथा अस्थि का । इस प्रकार चार जाल हैं ॥

एते नेतर मणिबन्धौ गुल्फौच व्याख्यातौ । गवाक्षितं विरचितं निरन्तर जालाकार रन्ध्र निकर परिकल्पित मित्यर्थः ॥ [अथ कूर्चाः ।].

कूर्चाःस्यु र्हस्तयो र्द्वौ तु तावन्तौ पादयोरपि । ग्रीवायामेक एकस्तु मेढ्रे सर्व्वेऽपि षट् स्मृताः ॥ १८७॥
कूर्चा अपि शिरास्नायु मांसास्थि प्रभवाः स्मृताः ॥

भा० इसी तरह पर दूसरे मणिबन्धमें और गुल्फ में व्याख्यान किये गये । झरोखे सा बनायागया निरन्तर जालके आकार छिद्रोंका समुदाय से परिकल्पित हैं ॥ [अनन्तर कूर्चों को कहते हैं] कूर्च हाथों में दो उतनेही पैरों में भी गले में एक शिश्नमें एक इस प्रकार सब छः कहे १८७

कूर्च्चे भी शिरा स्नायु मांस अस्थि भभव कहे गये हैं ॥

[अथ रज्जवः।] पृष्ठवंशस्योभयतः महत्यो मांस रज्जवः॥

चतस्रो मांस पेशीनां बन्धनन्तत् प्रयोजनम् ॥ १९८॥

अथ सेवन्यः।] सेवन्यः सप्त तासान्तु भवेयुः पंच मस्तके।

एका शेफसि जिह्वाया मेका विद्धनता क्वचित् ॥ १९९॥

अथ सङ्घातः।] (क) चतुर्दशास्थ्नां सङ्घाताः तेषान्त्रयो गुल्फ जानु वंक्षणेषु। एतेनेतर सक्थि बाहू च व्याख्यातौ। त्रिकं शिरसोरेकैकम्। अत्र तु त्रिकपदेन बाहू ग्रीवास्थि सङ्घात उच्यते।

भा० अनन्तर रज्जु कहतेहैं] पीठके बांसके दोनों तरफ बड़े मांसकी रज्जु हैं। चार मांस पेशीयोंके बन्धन उनका प्रयोजन है ॥ १९८ ॥
अनन्तर सेवनी कहते हैं।] सेवनी सातवीं पांच मस्तक में हैं। एक शिश्न में जीभमें एक इनके बेधसे कभी मृत्यु होजाता है ॥ १९९ ॥ अनन्तर संघात कहते हैं ॥ चौदह अस्थियों के संघात हैं। (क) वो तीन गुल्फ जानू वंक्ष ण इनमें हैं। इसीतरह पर दूसरी सक्थि और बाहु व्याख्या कीगई। त्रिक और शिरमें एक एक हैं। यहांपर त्रिकपदसे बाहु ग्रीवा अस्थि इनका संघात कहा है

अथ सीमन्ताः।] चतुर्दशैव सीमन्ताः कथिता मुनिपुङ्गवैः

सङ्घाताः द्योभिता यैस्तु सीमन्तास्ते प्रकीर्त्तिताः ॥ २००॥

(यैः अस्थिभिः।) [अथ त्वचः।] क्षीरस्य पच्यमानस्य

यथा सन्तानिका भवेत ॥ पच्यमानस्य शुक्रस्य रज

सश्च तथा त्वचः ॥ २०१ ॥ पूर्व्वावभासिनी तासां मि

ध्मस्थानं च सा स्मृता ॥ [अथाव भास्सनी।]

भा० अनन्तर सीमंत कहते हैं। मुनीश्वरों ने चौदह सीमन्त कहेहैं। जिनसे धातु शोभित होते हैं उनको सीमंत कहाहै। जिन अस्थियों से अनन्तर त्वचा कहतेहैं॥ परिपाक हुवे दुग्धकी मलाई जैसे होती है वैसेही परिपाक हुवे शुक्र की तथा रक्तकी त्वचा होतीहैं ॥ १०१॥ पहिली अव भासनी नाम त्वचा है। वो सिध्मनाम कुष्ठका स्थान कही गई है॥ अनन्तर अव भासनीको कहतेहैं

(क) भ्राजकेन पित्तेना वभासनात्। परिणाहेन विस्तारितस्य ब्रीहेर्विंशति भागे ऽष्टादश भागः प्रमाणन्तस्याः॥ ब्रीहि रत्र यवः॥ सासिध्म पद्मकण्टक योरधिष्ठाना।

द्वितीया लोहिता ज्ञेया तिलकालक जन्मभूः॥

(ख) सा यव षोडश भाग प्रमाणा तिलकालकन्यच्छ व्यङ्गना मधिष्ठानम्।

भा० भ्राजक पित्तके द्वारा प्रकाश होनेसे। परिणाह से विस्तार कियेहुवे ब्रीहिका बीसवां भाग वा अठारह वाँ भाग उसका प्रमाणहै। ब्रीहि यहां पर जव कहागया है। वो सिध्मकंटकोंकी जगह हैं॥ (ख) दूसरी लोहित जाननी चाहिये। जो तिलकालक कीजगह हैं। वो जवके सोलवें हिस्सेका प्रमाणहै। और तिलकालक तथा न्यच्छव्यङ्गोंका अधिष्ठान हैं॥

(ग) तृतीया तु भवेच्छ्वेता स्थानञ्चर्म्मदलस्य सा॥ सा यवद्वादशभाग प्रमाणा चर्म्मदलाजगल्लिका मशकाना मधिष्ठानम्।

ताम्रा चतुर्थी विज्ञेया किलासश्वित्र भूमिका॥

(यवाष्ट भाग प्रमाणा।)

पञ्चमी वेदिनी नाम पञ्चभाग प्रमाणिका॥

विसर्पकुष्ठाधिष्ठाना ज्ञेया षष्ठी तु लोहिता ॥ २०१॥
विख्याता रोहिणी षष्ठी ग्रन्थिगण्डापची स्थितिः। पु
व्रीहिमात्र प्रमाणा सा ग्रन्थिगण्डापचीस्थितिः॥२०२
(क) व्रीहि प्रमाणा ग्रन्थ्यपची गल गण्ड माला र्बुद श्ली पदानामधिष्ठानम्।

भा० (ग) तीसरी श्वेता है वो चर्म्मदल की जगह हैं। वो जवके बारहवें भागके प्रमाण हैं। चर्म्मदल अजगल्लिका मशक इनकी जगह हैं ॥ (घ) चौथी ताम्रा है वो किल्लास और श्वित्रनाम कुष्ठोंकी जगह हैं। वो जवके आठवें भागप्रमाण है ॥ पांचवी वेदनी नाम जवके पांचवें भाग प्रमाण हैं। छठी विसर्पकुष्ठकी जगह लोहित नामवाली है ॥ २०१॥ प्रसिद्ध है छठी रोहिणी ग्रंथि गंडापचीकी जगह है। वो व्रीहिमात्र प्रमाण ग्रन्थिगण्डापची की जगह है ॥ २०२॥ व्रीहि प्रमाणवाली ग्रन्थि अपची गलगंड माला अर्बुद श्लीपद इनकी जगह है ॥

स्थूलात्वक् सप्तमी ख्याता विद्रध्यादेः स्थितिः स्तु सा। साव्रीहि द्वयप्रमाणा। ततएवोक्तं शार्ङ्गधरेण स्थूला व्रीहि द्विमात्रयेति सप्तापि त्वचः सन्तुलिता विंशति तमभागी न्यवद्व यवप्रमाणा। षड्यवप्रमाणान्तु अङ्गुष्ठोदर तुल्यम्। यत उक्तम्। उदरे अङ्गुष्ठ प्रमाणं गाढ़ मध विध्येदिति। एतत् प्रमाणं मांसलेषु स्थूलेषु बोद्धव्यम्। न तु ललाटसूक्ष्माङ्गुल्यादिषु ॥

भा० स्थूलत्वचा सातवीं प्रसिद्ध है वो विद्रधि आदिकी जगह है। वो दो व्रीहिके प्रमाण होती हैं। उसी से शार्ङ्गधरने कहा है ॥ स्थूल व्रीहिकी दोमात्रा से। सात भी त्वचा कही गई। विंशति तमभाग अर्थात् बीसवें भाग से बहुत दाम। नकि छ जवके प्रमाण। छ जवके प्रमाण सो

अंगुठे के उदर के तुल्य होना है। जिस्सेकि कहा है। उदर में अंगुष्ठ प्रमाण बहुत न बेधकरे ॥ यह प्रमाण मांसल स्थूल जगह में जानना चाहिये। नकि मस्तक सूक्ष्म अंगुलियों में ॥

[अथ लोमानि लोमकूपाश्च]

अस्थ्नां मलानि लोमानि असंख्यानि भवन्ति हि ॥
सन्ति यावन्ति लोमानि तावन्तो लोमकूपकाः ॥ २०४ ॥
अङ्ग-प्रत्यङ्ग-निर्वृत्ति स्वभावादेव जायते ॥ सन्नि
वेशश्च गात्राणां नान्यस्तेकारणान्तरम् ॥ २०५ ॥

(क) निर्वृत्तिः सिद्धिः स्वभावात् ईश्वरात्। सन्निवेशो रचनाविशेषः ॥

भा० अनन्तर लोम और लोमकूपोंको कहतेहैं ॥ हड्डियों के मल लोम असंख्य हैं। जितने लोमहैं उतनेही लोम कूप हैं ॥ २०४ ॥ अंग और प्रत्यङ्ग की निर्वृत्ति सभाव सेही होतीहैं। और गात्रोंका सन्निवेश अर्थात कारीगरी भी इसही में है कोई दूसरा कारण नहीं है ॥ २०५ ॥ (क) निर्वृत्तिः अर्थात् सिद्धिः स्वभाव से अर्थात् ईश्वर से सन्निवेश रचना विशेष ॥

अङ्ग-प्रत्यङ्ग-निर्वृत्तौ ये भवन्त्यगुणाः गुणाः ॥
ते ते गर्भस्य विज्ञेया धर्म्माधर्म्मनिमित्तजाः ॥ २०६ ॥
दन्तानां पतनं जन्म पुनः पाते त्वसम्भवः ॥ तले
ष्वनुद्भवो लोम्नामेतत् सर्व्वं स्वभावतः ॥ २०७ ॥
गर्भे मासि मासि यद्भवति । तदाह ॥

भा० अंग प्रत्यंग की निर्वृत्ति में जो गुण दोष होते हैं वो वो गर्भके जानने चाहियें धर्म और अधर्म के निमित्त से होते हैं ॥ २०६ ॥ दांतोका गिरना और उत्पन्न होना तथा फिरसे गिरने में न होना। और तलुवों में लोम

न होना येह सब स्वभावसेही हैं ॥ २०७ ॥ गर्भका महीने २ में जो होना है उसको कहते हैं ॥

गर्भाशये निपतितं यादृक् शुक्रं तथार्त्तवम् ॥ तादृगेव द्रवी भूतं प्रथमे मासि तिष्ठति ॥ २०८ ॥ मरुत्पित्तकफैस्तत्रस्थः पच्यमाना द्वितीयके ॥ कललस्थि महाभूतं समुदायो धनी भवेत् ॥ २०९ ॥

(क) अत्र मरुत्कफयोरपि पाक हेतुत्वे तयोरप्यूष्मणोऽनधिकर त्वात् ॥ [यत उक्तं चरके।]

भा० गर्भाशय में जैसा शुक्र तथा रज गिरता है वैसाही गीलासा पहिले महीने में रहता है ॥ २०८ ॥ दूसरे महीने में उस स्थानमें रहनेवाले वात पित्त कफ से पकाया गया कललमें रहनेवाला महाभूतों का समुदाय गाढ़ा होता है ॥ २०९ ॥ (क) यहां पर वायु कफ को भी पाक हेतुत्व में उनका उष्माकार नहोने से। जैसे किकहा है चरक में।

भौमाप्याग्नेय वायव्याः पञ्चोष्माणः सनाभसाः॥ तृतीये मासि शिरसो हस्तयोः पादयोस्तथा ॥ २१०॥ पिण्डिकाः पञ्च सिध्यन्ति सूक्ष्माश्चा वय वास्तनोः॥ सर्व्वाण्यङ्गान्युपाङ्गानि चतुर्थेः स्युः स्फुटानि हि।२११ हृदयव्यक्त भावेन व्यज्य ते चेतनापि च ॥ तस्माच्चतुर्थे गर्भस्तु नानावस्तू नि वाञ्छति ॥ २१२॥

भा० भूमिसम्बन्धि जलसम्बन्धि अग्निसम्बन्धि वायुसम्बन्धि आकाशसम्बन्धि ये पांच उष्मा हैं ॥ तीसरे महीनेमें शिरको दोनों हाथोंकी और पैरोंकी दूसनरहपर पांच पिंडिका होती हैं और सूक्ष्म अवयव होते हैं ॥ २१० ॥ सम्पूर्ण अंग और उपांग चौथे महीने में प्रगट होते हैं।

हृदय के प्रगट होने से चेतन भी स्पष्ट मालूम होता है ॥ २११ ॥ इसीवास्ते चौथे महीने में गर्भ नाना वस्तुवों की इच्छा करता है । तिस्से दो हृदयवाली औरत होती है। उस वास्ते दोहदिनी कही है ॥ २१२ ॥

ततो द्विहृदया यत स्यान्नारी दोहदिनी मता ॥ दौह
दा वक्रिया कुब्जकुनिषण्डञ्च वामनम् ॥ २१२॥
विकृताक्षमनक्षं वा पुत्रं नारी प्रसूयते ॥ यतः स्त्री
दोहदं प्राप्य वीर्य्यवन्तं चिरायुषम् ॥ पुत्रं प्रसूयते
तस्मात् तस्यै वाञ्छित मर्पयेत् ॥ २१४ ॥ इन्द्रिया
र्था स्तुतौ याञ्छान्भोक्तुं मिच्छति गर्भिणी ॥ गर्भवा-
धा भयात्तासां भिषग् हृत्याद्दापयेत ॥ २१४ ॥

भा० दोहद के अपमान से कुबड़ा लूला नपुंसक बावना बुरी आँखवाला या बे आँखवाला इस किस्म के पुत्र को औरत जन्माती है ॥ २१३ ॥ और जैसे स्त्री दोहद को पाकर पराक्रमी दीर्घायु ऐसे पुत्रको उत्पन्न करती है ॥ इस वास्ते उसको वांछित देवें ॥ २१४ ॥ गर्भिणी जो जो खाने पीने और पहिरने की वस्तू इच्छा करे उनको गर्भबाधा के भयसे वैद्य लाके दिवावें ॥ २१४ ॥

[भोक्तु मुपभोक्तु मित्यर्थः।]

सा प्राप्तदोहदा पुत्रं जनयेत गुणान्वितम् ॥ अल
ब्ध दोहदा गर्भे लभेतात्मनि वा भयम् ॥ २१५ ॥
येषु येष्विन्द्रियार्थेषु दोहदे सावमानिता ॥ प्रसू-
येत सुतं तार्तिस्तस्मिं स्तस्मिं स्तदिन्द्रिये ॥ २१६ ॥

भा० भोक्तुं अर्थात् उपभोग के अर्थ ॥ वो पाई हुई दोहदवाली गुणयुक्त पुत्र उत्पन्न करती है । और नेलाभहुई दोहदवाली अपने में कुछ भयको प्राप्त करती है या गर्भमें कुछ भयको प्राप्त करती है ॥ २१५ ॥ वो दोहदने जो

इन्द्रिय के अर्थों को अवमान की गई अर्थात् खाने की देखने की इत्यादिक वस्तुवों की चाहने पर नहीं गई वो उस उस इन्द्रियमें पीड़ा करके युक्त पुत्रको जन्माती है ॥ २१६ ॥

[सार्त्तिसव्यथामदौहृदस्यविशेषफलमाह।]

राजसन्दर्शने यस्या दौहृदं जायते स्त्रियः ॥ अर्थवन्तं महाभागं कुमारं सा प्रसूयते ॥ २१७ ॥

दुकूलपट्टकौशेय भूषणादिषु दौहृदात् ॥ अलङ्कारैषिणं पुत्रं ललितं सा प्रसूयते ॥ २१८ ॥

आश्रमे संयतात्मानं धर्म्मशीलं प्रसूयते ॥ देवताप्रतिमायन्तु प्रसूते पार्षदोपमम् ॥ २१९॥

भा० दौहृदका विशेष फल कहते हैं ॥ जिन औरतों को राजाके देखने का दौहृद होता है । वह बड़ी प्रारब्ध वाला द्रव्यवान् पुत्र को उत्पन्न कर लेंहैं ॥ २१७ ॥ दुकूल पट्ट कौशेय अर्थात् रेशमी कपड़ा और अलंकार इत्यादिकों के दौहृद से अलंकार को चाहनेवाला सुंदर पुत्रको वो उत्पन्न करती हैं ॥ २१८ ॥ आश्रममें एकाग्र चित्तवाला धर्म्मशील जनती है । देवताके प्रतिमासा और ममथ के ऐसा पुत्र उत्पन्न करती हैं ॥ २१९ ॥

(क) आश्रमे तपस्विनामाश्रमे दौहृदात् पार्षदोपमं प्रमथोपमम् ॥

दर्शने व्यालजातीनां हिंसाशीलं प्रसूयते ॥ रक्तान्तं लोमशं शूरं महिषामिष दौहृदात्॥ २२० ॥

वाराहमांसे स्वप्नालुं शूरं संजनयेत सुतम् ॥ मृगमांसे तु तच्छीलं विक्रान्तं वनचारिणम् ॥ २२१॥

भा० (क) आश्रम में अर्थात तपस्वियों के आश्रम में । व्याल जातियों-

के दर्शन में अर्थात् सर्पव्याघ्रादिकों के देखने में हिंसा स्वभाववाला उत्पन्न होता है ॥ भैंसके मांसके दौहृद से लाल आंखवाला और बहुत रोवनेवाला शूर ऐसे पुत्र को उत्पन्न करती है ॥ २२० ॥ सूवर के मांस के दौहृद से बहुत नींदवाला शूरको उत्पन्न करती हैं । मृग मांस में उसी कासा स्वभाव वाला विक्रान्तवनमें घूमनेवाला पुत्र उत्पन्न करती है ॥ २२१ ॥

अन्येऽनुक्तेषु या नारी दौहृदं विदधाति हि ॥ शरीराचारशीलैः सा समानं जनयिष्यति ॥ २२२ ॥

पञ्चमे मानसं षष्ठे बुद्धिर्ज्ञानि प्रबुद्धते ॥ सर्वाण्यङ्गान्युपाङ्गानि भृशं व्यक्तानि सप्तमे ॥ २२३॥

ओजोऽष्टमे सञ्चरति माता पुत्रौ मुहुः क्रमात् ॥ तेन तौ म्लानमुदितौ स्यातां जातो न जीवति ॥ २२४

भा० दूसरे जो कहा नहीं गया उसमें जो औरत दौहृद की धारणा करती है वो शरीर के आचार और शीलसे समान को करेगी ॥ २२२ ॥ पांचवें महीने में मन छठे महीने में बुद्धि मालूम होती है ॥ सातवें महीने में सब अंग और उपांग अच्छीतरह से प्रगट होते हैं ॥ २२३ ॥ आठवें महीने में ओजमाता और लड़के में बार २ संचार करता है ॥ उससे वो म्लान मुदित होते हैं । उसमें हुवा बालक नहीं जीता ॥ २२४ ॥

न जीवत्यष्टमे जातस्तत्रौजो नस्थिरं यतः ॥ तथा नैर्ऋत्यभागत्वाद्दापयेत्तद्बलिं ततः ॥ २२५ ॥

(नैर्ऋत्याय भागश्च बालेषु रुद्रेण दत्तः ॥)

[यत उक्तं कुमारतन्त्रे ।]

अष्टमे मासि नैर्ऋत्याय मांसोदनं बलिं दापयेदिति ।

नवमे दशमे मासि नारी बालं प्रसूयते ॥ एकादशे द्वादशे वा ततोऽन्यत्र विकारतः ॥ २२६ ॥

भा० आठवें महीने में हुवा नहीं जीता क्यों कि उसमें ओज स्थिर नहीं रहता। उसी से नैऋत्य के भाग होने से उसका बलि दिवावें ॥ २२५ ॥ नैऋत्य के अर्थ भाग वा नक को रुद्रने दिया। जैसा कि कुमारतन्त्र में कहा है ॥ आठवें महीने में नैऋत्य के अर्थ मांसोदन बलि दिवावें ॥ नवें दसवें महीनेमें औरत पुत्रको उत्पन्न करती हैं ॥ ग्यारवें महीने या बारहवें महीने पुत्र जनती हैं। इसके ऊपर विकार से हुवा जानना चाहिये ॥ २२६ ॥

गर्भे यदङ्गं प्रथमं भवति। तदाह।

शिरो भवति चाङ्गस्य पूर्वमित्याह शौनकः ॥ शिर
स्येवोपजायन्ते प्रधानानीन्द्रियाणि यत् ॥ २२७ ॥
हृदयं जायते पूर्वं कृतवीर्य्योऽवदन्मुनिः ॥ बुद्धेश्च
मनसश्चापि यतस्तत् स्थानमीरितम् ॥ २२८ ॥
पाराशर्य्य इति प्राह पूर्वं नाभिसमुद्भवः ॥ प्राणी
यत्र स्थितो देहं वर्द्धयत्यूष्मसंयुतः ॥ २२९ ॥
पाणिपादं भवेत् पूर्वं मार्कण्डेय मुनेर्मतम् ॥ देहि
नः सकलाः चेष्टाः पाणिपादाश्रया यतः ॥ २३० ॥

भा० गर्भ में जो अंग पहिले होता है उसको कहते हैं ॥ अंग के पहिले शिर होता है ऐसा शौनक कहते हैं ॥ क्यों कि शिरमेंही होती हैं मुख्य इन्द्रियें ॥ २२७ ॥ पहिले हृदय होता है। ऐसा कृतवीर्य्य मुनि कहते हैं। क्यों कि बुद्धि और मनका भी वोही स्थान कहा गया है ॥ २२८ ॥ पाराशर्य ऐसा कहते हैं कि पहिले नाभि होती है। जिसमें प्राण उष्मा हुवा देहको बढाता है ॥ २२९ ॥ हात पांव पहिले होते हैं ऐसा मार्कंडेय मुनिका मत है। क्यों कि देह की संपूर्ण चेष्टा हाथ पावोंके आश्रय होती हैं ॥ २३० ॥

प्रथमं जायते कोष्ठं ततः सर्वाङ्गसम्भवः ॥ एतत्तु
कथयामास गौतमो मुनिपुङ्गवः ॥ २३१ ॥ सर्वा-

त्यङ्गान्युपाङ्गानि युगपत् सम्भवन्ति हि ॥ सूक्ष्म
त्वान्नोपलभ्यन्ते मते धन्वन्तरे रिदम् ॥ २३२॥
आमस्यानुफले भवन्ति युगपत् मांसास्थिमज्जादयो।
लक्ष्यन्ते न पृथक् पृथक् तनुतया पुष्टास्तएव स्फुटाः॥
एवं गर्भसमुद्भवे त्ववयवाः सर्वे भवन्त्ये कदा। लक्ष्याः
सूक्ष्मतया न ते प्रकटता मायान्ति वृद्धिङ्गताः॥२३३॥

भा० पहिले कोष्ठ होता है क्यों कि उससे संपूर्ण अंगकी उत्पत्ति होतीहैं इस प्रकार मुनिश्रेष्ठ गौतमजी महाराज ने कहाहै ॥ २३१ ॥ सब अंग और उपांग एक साथही उत्पन्न होतेहैं। सूक्ष्म होनेसे नहीं मालूम होते यह धन्वन्तरिका मतहै ॥ २३२॥ आमके छोटे फलमें एक साथही मांस अस्थि मज्जादिक होतेहैं। परन्तु अलग् अलग् नहीं मालूम होते बहुत सूक्ष्म होनेसे। और वोही पुष्ट हुवे स्फुट मालूम होतेहैं ॥ २३३॥

(क) मज्जादयः इत्यादि शब्देन त्वक्केशर मज्जत्वगङ्कुर वृत्तानि गृह्यन्ते ॥ (ख) अथ शरीरे पितृज मातृज रसजात्मजा भागा उच्यन्ते। तत्र-

केशा श्मश्रु च लोमानि नखा दन्ताः शिरास्तथा॥
धमन्यः स्नायवः शुक्रमेतानि पितृजानि हि॥२३५॥
मांसासृक् मज्जमेदांसि यकृत् प्लीहान्त्र नाभयः॥
हृदयञ्च गुदञ्चापि भवन्त्येतानि मातृतः॥ २३६॥

भा० ऐसेही गर्भके उत्पन्न होने में सब अवयव एकसाथही होतेहैं। वे सूक्ष्म होनेसे प्रगट ताको नहीं प्राप्त होते और जब पुष्ट होते हैं तब देखने योग्य होतेहैं ॥ २३४ ॥ (क) मज्जादय इत्यादि शब्दसे त्वचा केशर मज्जा अङ्कुरादिक लियेगयेहैं। (ख) अनन्तर शरीर में पितृज मातृज रसज आ-

त्मज भागोंको कहते हैं ॥ उसमेंकेश श्मश्रु लोम नख दांत और शिरा तथा धमनि स्नायु शुक्र ये पितृज हैं ॥ २३५॥ मांस रुधिर मज्जा मेद यकृत् प्लीह आंत नाभि हृदय गुदा ये माता से बनी हैं ॥ २३६॥

शरीरोपचयो वर्णो बलं देह स्थिति स्तथा ॥ रसादेतानि जायन्ते भिषजो मुनयो जगुः ॥ २३७॥ ज्ञानं विज्ञानमायुश्च सुख दुःखादिकं तथा ॥ इन्द्रियाणि च सर्वाणि भवन्त्येतानि चात्मनः ॥ २३८॥

(क) दुःखादिकमित्यादि शब्देन नानायोनिजन्मादिकमुच्यते। आत्मनः आत्मसन्निकर्षात् नत्वात्मनो जायन्ते आत्मनो निर्विकारात् प्रकृतिभावानु पेतः॥

भा० शरीर की वृद्धि वर्ण बल और देहकी स्थिति ये रसही से उत्पन्न होतेहैं ऐसा वैद्य मुनि कहते हैं ॥ २३७ ॥ ज्ञान विज्ञान आयु और सुख दुःख तथा सम्पूर्ण इन्द्रियां ये अपनी हैं ॥ २३८॥ (क) सुख दुःखादि दुःख शब्द से नाना योनि के जन्मादिक कहेहैं ॥ आत्मनः अर्थात् आत्मा के सम्बन्धसे न कि आत्मासे उत्पन्न होता है। आत्मा का निर्विकार होने से प्रकृति भाव से मिलाहुवा है ॥

(गर्भस्य किं किं विशिष्टोपकारकं तत्त दाह।)

अग्नी सोमो मही वायुर्नभः सत्वं रजस्तमः ॥ पञ्चेन्द्रियाणि भूतात्मा गर्भं सञ्जीवयन्ति हि ॥२३९॥

(क) अग्निरत्र पाचका लोचक रञ्जक भ्राजक साधकानाम् तथा पाञ्चभौतिकानां तथा सप्तधातु गतानामग्नीनाम्। शक्तिरूपतयावस्थितो वाचोधि देवत्वं प्राप्तो यो-

गर्भके क्या २ अधिक उपकार करते हैं उसको कहते हैं ॥ अग्नि चन्द्र पृथ्वी वायु आकाश और सत्व रज तम तथा पांच इन्द्रियां और भूतात्मा गर्भको जिवाते हैं ॥ २३९ ॥ (क) अग्नि यहांपर पाचक आलोचक रंजक भ्राजक साधक इनकी तथा पंच महाभूत सम्बन्धियों की और सप्तधातु अग्नियों की शक्तिरूप करके ठहरा हुआ वाचाके अधिदेवत्व को प्राप्तहुवा जानना चाहिये

द्रव्यः ॥ (ख) स पाचकादिकर्म्मणा जीवयति सोमश्च पञ्चात्मक श्लेष्म रस शुक्रादीनां सोमात्मकानां भावानां रसेन्द्रियस्य च शक्तिरूपतया वस्थितो मनसश्चाधिदेवत्वं प्राप्तो बोद्धव्यः। (ग) स च सौम्य धातो रोजः प्रभृतेः पोषणेन पवनपावक संशुष्क भागस्यार्द्रता विधानेन जीवयतीति शेषः।

भा० (ख) वो पाचकादि कर्म्मों से जिवाताहै। सोमभी पंचात्मक श्लेष्म रस शुक्रादि सोमात्मक भावोंका रसनेन्द्रिय का भी शक्ति रूप करके ठहराहुवा मनके अधिदैवत्वको प्राप्तहुवा जानना चाहिये ॥ (ग) वो सौम्य धातु ओज प्रभृतिका पोषणके द्वारा अर्थात् वायु अग्नि से सूके अवे भागको आर्द्रताके विधान से पोषण करता हैं।

मही च जलेन क्लिन्नस्यापि कठिन विधानेन वपुर्दोष धातुमलाङ्गोपाङ्गादीनां सञ्चारणेनोच्छ्वास निःश्वासाभ्यां मनोरूपतया परिणतं जीवात्मनः शरीरान्तरे जीवनग्रहण मोक्षणे हेतुरिति तदपि जीवयति पञ्चेन्द्रियाणि श्रोत्रत्वङ्नेत्र जिह्वा घ्राणानि शब्दादिग्रहणकर्म्मणा ॥

भा० पृथ्वी भी जन्नसे क्लिन्न हुवेका भी कठिन विधानसे शरीर के शेष धातु मल और अंगोपाङ्गादिकों का संचारण से तथा उच्छ्वास निश्वासों के द्वारा मनोरूप करके परिणाम को प्राप्त जीवात्मा के शरीर के बीच में जीवन प्रकाश मोलण का हेतु हैं । वो भी जीवता है पंचेन्द्रियों को श्रोत्र त्वचा । नेत्र जिह्वा घ्राणोंको शब्दादियों के ग्रहण कर्म्मसे ॥

(घ) भूतात्मा कर्म्मपुरुषः स चाशेषस्य च राशेश्चैतन्य हेतुर्जीवयतीति । [अपरं गर्भस्य जीवनोपायमाह]

गर्भस्य नाभिनाड्या तु नाड़ी रसवहा स्त्रियाः ॥
संलग्ना तेन गर्भस्य वृद्धिर्भवति नित्यशः ॥ २५०॥
निःश्वासोच्छ्वास संक्षोभस्वप्नांशान् सोऽधिगच्छति।
मातुर्निश्वसितोच्छ्वाससङ्क्षोभ स्वप्नसम्भवान् २५१

(क) सङ्क्षोभः सञ्चलनं माता निश्वासादिकायाश्चेष्टाः करोति तास्ता गर्भोऽपि करोतीत्यर्थः ॥

भा० (घ) भूतात्मा कर्म्म पुरुष वो सम्पूर्णराशि का चैतन्य कारण जीवन करता है । गर्भ के नाभिकी नाड़िसे औरतोंकी रसवहा नाडी मिली है उससे प्रतिदिन गर्भकी वृद्धि होती है ॥ २५० ॥ माता के निश्वास श्वास से और उच्छ्वास संचलन तथा स्वप्न इनके संभव से निःश्वासउच्छ्वास संक्षोभ स्वप्नांश इनको वह प्राप्त होता है ॥ २५१ ॥

(क) अर्थात् माताके सांस लेने से गर्भ सांस लेता है उसके सोने से वो सोता है उसके चलने फिरनेसे वह चलना फिरता है ॥ संक्षोभ अर्थात् हिलना ॥

[अथ गर्भवृद्धेर्हेतुमुपायमाह ।]

गर्भस्य नाभिमध्ये तु ज्योतिःस्थानं ध्रुवं स्मृतम् ॥
तदा धमति वातश्च देहस्तेनास्य वर्द्धते ॥२५२॥
उष्मणा सहितश्चापि दारयत्यस्य मारुतः ॥ कर्द्धति-

ऊर्ध्वगाधस्ताच्च स्रोतान्सि तु यथा तथा ॥ २४३॥

(क) यथा दारयति विस्तारयति। तथा तथा देही वर्द्ध यति इति पूर्वेणान्वयः। दृष्टिरोमकूपानाम वृद्धिमाह।

दृष्टिश्च रोमकूपाश्च न वर्द्धन्ते कदाचन ॥ ध्रुवा- ण्येतानि मर्त्यानामिति धन्वन्तरेर्मतम् ॥ २४४॥

भा० अनन्तर गर्भ वृद्धि के कारण उपाय को कहते हैं ॥ गर्भ की नाभि के बीचमें ज्योतिस्थान कहा गया है। जब वायु उसको धौंकता है तब इसका देह बढ़ता है ॥ २४२॥ उष्मा करके सहित भी वायु ऊंचा नीचा तिरछा जैसे तैसे इसको दारण करता है ॥ २४३॥

(क) जैसे जैसे दारण करता है अर्थात् विस्तार करता है वैसे २ देह बढ़ती है। इस प्रकार पूर्वके साथ अन्वय है ॥ दृष्टि रोमकूपों की वृद्धि कहते हैं। दृष्टि और रोमकूप ये कभी भी नहीं बढ़ते। क्यों कि मनुष्यों के ये सदासे हैं ऐसा धन्वन्तरि का मत है ॥ २४४॥

[नखकेशानां सदा वृद्धिमाह]

शरीरे क्षीयमाणेऽपि वर्द्धेते द्वाविमौ सदा ॥ स्वभा वं प्रकृतिं कृत्वा नखकेशाविति स्थितिः ॥ २४५।

(प्रकृतिं कृत्वा कारणं कृत्वा स्थिति मर्य्यादा)।

[अचेतनान्यङ्गान्याह।]

चेतनानामधिष्ठानं मनो देहश्च सेन्द्रियः ॥ केश लोमनखाग्रान्तमलद्रव्य गुणैर्विना ॥ २४६ ॥

भा० नखकेशोंकी सदा वृद्धि कहते हैं। शरीर के क्षीण होनेपर भी ये दो सदा बढ़ते हैं। स्वभाव प्रकृतिको करके अर्थात् कारण करके नख केश इस प्रकार रहते हैं ॥ २४५॥ अचेतन अंगोंको कहते हैं ॥ चेतनों का अधिष्ठान मन और इन्द्रियों के साथ देह मल द्रव्य गुणों के विना केश लोम नख

के अग्रपर्यन्त हैं ॥ २४६ ॥ गर्भको वात मल मूत्र के न करने में कारण कहते हैं ॥

[गर्भस्य वातविण्मूत्रोत्सर्गाकरणे कारणमाह]

वातात्पत्वादयोगाच्च वायोः पक्काशयस्य च ॥ वा
त मूत्र पुरीषाणि गर्भस्थो न विमुञ्चति ॥ २४७ ॥

(अयोगात् । दृष्दयोगात् ।) गर्भारोदने कारणमाह ।

जरायुणा मुखे च्छन्ने कण्ठे च कफवेष्टिते ॥ वायो
र्मार्गनिरोधाच्च न गर्भस्थः प्ररोदिति ॥ २४८ ॥

भा० पक्काशय के वात के अल्प होने से तथा वायुके थोड़े होने से वात मूत्र मलको गर्भमें रहनेवाला नहीं छोड़ता ॥ २४७ ॥ अयोगसे अर्थात् थोड़े योगसे ॥ गर्भके न रोनेका कारण कहते हैं] गर्भाशय से मुख ढका रहने और कफसे कण्ठ वेष्टित होने में वायुका मार्ग रुकने से गर्भ में रहने वाला नहिं रोता ॥ २४८ ॥

[अथ गर्भवती कृत्या कृत्यानि ।]

गुर्विणी प्रथमा दन्ह : महष्टा भूषिता शुचिः ॥ भवे
च्छुक्लाम्बरधरा गुरुविप्रार्च्चने रता ॥ २४९ ॥ भोज्य
न्तुमधुरप्रायं स्निग्धं हृद्यन्द्रवं लघु ॥ संस्कृतं दीपनी
यन्तु नित्यमेवोपयोजयेत् ॥ २५० ॥ गुर्विणी नतु कु
र्वीत व्यायाम मपतर्पणम् ॥ व्यवायञ्च न सेवेत न
कुर्यादति तर्पणम् ॥ २५१ ॥

भा० अनन्तर गर्भवतीके कृत्य और अकृत्योंको कहते हैं ॥ गर्भिणी पहिले दिनसे हर्पयुक्त भूषणोंसे युक्त पवित्र रहे और श्वेतवस्त्र को धारण करने

वाली तथा गुरु ब्राह्मणोंकी पूजामें तत्पर होवे ॥ २४९॥ और भोजन मधुर प्राय स्निग्ध स्वादिष्ठ हलका संस्कार किया हुवा और दीपनीय ऐसें भोजन को नित्य उपयोग करें अर्थात भोजन करें ॥ २५० ॥ गर्भिणी व्यायाम अर्थात कसरत और उपनर्पण इनको नकरें तथा व्यवाय अर्थात मैथुन इसको भीन करे और बहुत तृप्ति भी नकरें ॥ २५१ ॥

रात्रौ जागरणं शोकं यानस्यारोहणं तथा ॥ रक्तमो
क्षं वेगरोधं न कुर्य्यादुत्कटासनम् ॥ २५२ ॥ दोषा
भिघातैगर्भिण्या यो यो भागः प्रपीड्यते ॥ स स भा-
गः शिशोस्तस्य गर्भस्थस्य प्रपीड्यते ॥ २५३ ॥ मलि
नां विकृताकारां हीनाङ्गीन्न स्पृशेत् स्त्रियम् ॥ न
जिघ्रेदपि दुर्गन्धं न पश्येन्नयना प्रियम् ॥ २५४ ॥
वचांसि नापि शृणुयात्कर्णयो रप्रियाणि च ॥ नान्नं
पर्य्युषितं शुष्कं भुञ्जीत क्वथितं न च ॥ २५५ ॥

भा० रात्रमें जागना शोक और सवारीका चढना तथा फस्त लेना रोकना वेगों का रोकना और उकडूं बैठना इनको भी गर्भिणी न करें ॥ २५२॥ दोष और अभिघात से जो २ भाग गर्भिणीका पीडित होता है वो २ भाग उस गर्भ में रहनेवाले बालक का भी पीडित होता है ॥ २५३ ॥ मलीन विकृत आकारवाली हीन अंगवाली ऐसी स्त्री को स्पर्श न करें । दुर्गन्ध को न सूंघे और नेत्रके अप्रियको न देखें ॥ २५४ ॥ कानों को अप्रिय वाणीको भी न सुनें । वासी रूखा ओटा दिया हुवा ऐसे अन्नको भोजन नकरें ॥ २५५॥

चैत्यपमशान वृक्षांश्च भावांश्चाप्ययशस्करान्॥
बहिर्निष्क्रमणं क्रोधं शून्यागारञ्च वर्ज्जयेत् २५६
नोच्चैः ब्रूयान्न तत्कुर्याद् येन गर्भो विनश्यति ॥ ने

लाभ्यङ्गोद्वर्त्तनञ्च नात्यर्थं कारयेदपि ॥ २५७ ॥
नात्युद्धासनं कुर्य्यान्नात्युच्चं शयनासनम् ॥ एतां
स्तु नियमान् सर्वान् यत्नात् कुर्वीत गुर्विणी ॥ २५८

भा० चैत्य श्मशान वृक्ष और अपशकी करने वाले पदार्थ । तथा वा स्वर का जाना क्रोध और सूनेमकान, इनको त्यागदेवे ॥ २५६ ॥ उच्च स्वर से नबोले और उसकोनकरे जिस्से गर्भनष्ट होवे । तेलका लगाना उबटना इनको बहुत नकरे ॥ २५७ ॥ झुकने योग्य विस्तरानकरे । तथा बहुत ऊंचेपर शयन आसन नकरे । इन सब नियमों को गर्भिणी यत्न से करे ॥ २५८ ॥

[अथ प्रसव मासानाह]

नवमे दशमे मासि नारी गर्भं प्रसूयते ॥ एकाद
शे द्वादशे वा ततोऽन्यत्र विकारतः ॥ २५९ ॥

[अथ सूतिका गृहाकृतिः ।]

अष्टहस्तायतञ्चारु चतुर्हस्त विशालकम् ॥ प्रा
चीद्वार मुदग्द्वारं विदध्यात् सूतिका गृहम् २६०

भा० अनन्तर बालक होनेके महीनोंको कहते हैं ॥ स्त्री नवम दशम मास में बालकको जनाती है ॥ अथवा ग्यारह बारह मासमें पु त्रको उत्पन्नकरती है । उसके उपर विकार से होता है ॥ २५९ ॥ अनन्तर सूतिका गृहकी आकृति कहते हैं ॥ अष्ट हाथ चौड़ा चार हाथ लंबा सुन्दर पूरब उत्तर दरवाज़ा ऐसा सूतिका घर बनावे ॥ २६० ॥

[आसन्न प्रसवायाःलक्षणमाह ।]

याते हि शिथिले कुक्षौ मुक्ते हृदय बन्धने ॥ सशू
ले जघने नारी विज्ञेया प्रसवोन्मुखा ॥ २६१ ॥ आ
सन्न प्रसवायास्तु कटीपृष्ठस्तु सन्मथम ॥ भवेत्

मुहुः प्रवृत्तिश्च मूत्रस्य च मलस्य च ॥ २६२ ॥

[अथासन्नप्रसवाया उपचारः।]

तैलेनाभ्यक्तगात्राणां संस्नाता मुष्णवारिणा ॥ य
वागूम्पाययेत कोष्णां मात्रया घृतसंयुताम् ॥ २६३॥
कृतोपधाने मृदुभि विस्तीर्णे शयने शनैः ॥ आभु-
ग्नसक्थि चोत्ताना नारी तिष्ठे द्व्यथान्विता ॥ २६४॥

भा० आसन्न बालक होनेवाली का लक्षण कहते हैं ॥ कुक्षके ढीले होने में और हृदयबन्धन के छूटने में तथा कटिदेश में शूल होनेसे निकट प्रसव होनेवाली स्त्री जाननी चाहिये ॥ २६१ ॥ आसन्न प्रसवा के कटिपीठ इसमें पीड़ा और बार बार मल मूत्र की प्रवृत्ति ये होती हैं ॥ २६२ ॥

अनन्तर आसन्न प्रसवा का उपचार कहते हैं ॥ शरीर को तेल लगाकर गरम पानी से स्नान की हुई घृत से मिले हुवे कुछ गरम यवागू को मात्रा से पिला' जावे ॥ २६३ ॥ जोघों को न सिकुड़के उत्तान पीड़ा करके युक्त स्त्री रहै ॥

(आभुग्नसक्थि आसङ्कोचितोरू।) अथ जनयित्री।]

चतस्रोऽशङ्कनीयाश्च स्रावने कुशला हिताः ॥ छृक्ताः
परिचरे युक्ताः सम्यक् छिन्ननखाः स्त्रियः ॥ २६५॥

[अथ जनयित्री कृत्यम।]

अपत्यमार्गं तैलेन समभ्यज्य समन्ततः ॥ सु का तु
'तास्तु सुभगे प्रवाहस्वेति तां वदेत् ॥ २६६ ॥

भा० अनन्तर दाईको कहते हैं ॥ चार अशंकनीय और हित स्रावन में कुशल बूढ़ी और नखसे रहित वो दाइयां सेवा करें ॥ २६५ ॥

[अनन्तर दाइयों का कृत्य कहते हैं।]

गर्भमार्गके आसपास तेल चुपड़के। एक उनमेंसे सुभगे प्रवाहण कर ऐसा उसको कहे ॥ २६६ ॥

अव्यथामा प्रवाहिष्ठा: प्रवाहेथा व्यथा यदि ॥ प्रवाहेथा: शनै: पूर्वं प्रगाढञ्च तत: परम् ॥ २६७ ॥ ततो गाढ़तरं गर्भे योनिद्वार मुपागते ॥ २६८ ॥ अपरासहितो गर्भो यावन्न पतति भूतले ॥ २६८ ॥

[व्यथा रहिताया: प्रवाहणाद्धे गुण्यमाह।]

मूकं वा बधिरं कुब्जं श्वास कास क्षयान्वितम् ॥ स्तते ध्वस्त तनुं बाल मकाले तु प्रवाहणात् ॥ २६९ ॥

इति श्रीमिश्र लटकन तनय श्रीमन्मिश्र भाव विरचिते भावप्रकाशे गर्भप्रकरणं द्वितीयम् ॥ २ ॥

भा० प्रवाहण अर्थात् पीछेसे दबाना। व्यथा नहोतो प्रवाहण न करे। और यदि व्यथा होतो प्रवाहण करे। पहिले धीरे २ प्रवाहण करे उसके अनन्तर ज़ोरसे करे ॥ २६७ ॥ और जब गर्भ योनि द्वारमें आवे तो उससे भी अधिक प्रवाहण करे। जब तक नालके साथ गर्भ भूमिपर गिरे तब तक प्रवाहण खूब ज़ोरसे करे ॥ २६८ ॥ व्यथा रहित के प्रवाहण से जो नुकसान होता है उसको कहते हैं। गूङ्गा या बहिरा कुबड़ा अथवा श्वांस कांस क्षयसे युक्त। अकाल के प्रवाहण से इस प्रकारका और ध्वस्त शरीर बालक को उत्पन्न करती है ॥ २६९ ॥

॥ इतिश्री मिश्र लटकन के पुत्र श्रीभाव मिश्र का विरचित भाव प्रकाश में दूसरा बालक का प्रकरण समाप्त ॥ २ ॥ *

[अथ बालस्य जन्मोत्तर विधि:]

अथ बाले समुत्पन्ने विदधीत विधिं तत: ॥ यथैव

कुलवृद्धा स्त्रीव्यवहार परम्परा ॥१॥

[अथ प्रसूताया नियमानाह ।]

प्रसूता हितमाहारं विहारञ्च समाचरेत् ॥ व्यायामं मैथुनं क्रोधं शीतसेवां विवर्जयेत् ॥ २॥ मिथ्याचारात सूतिकाया यो व्याधिरुपजायते ॥ स कृच्छ्रसाध्योऽसाध्यो वा भवेत्तत्पथ्यमाचरेत् ॥ ३ ॥

भा० अनन्तर बालक के जन्म होने के अनन्तर की विधी कहते हैं ॥ अनन्तर बालक होवेपर कुलकी वृद्ध स्त्री ... है अनुसार विधिकरे ॥१॥ [अनन्तर जच्चा के नियम कहते हैं] जच्चा हित आहार और विहार को करे । श्रम मैथुन क्रोध सेवन छोड़ देवे ॥२॥ विरुद्ध आचार से जच्चा को जो व्याधि होती है ॥ वो कष्ट साध्य या असाध्य होती है । इसवास्ते पथ्य करे ॥ ३॥

[प्रसूताया नियमसमयाऽवधिमाह।]

सर्वतः परिशुद्धा स्यात् स्निग्धं पथ्याऽल्पभोजना ॥ स्वेदाभ्यङ्गपरानित्यं भवेन्मासमतन्द्रिता ॥ ४ ॥

(क) सर्वतः परिशुद्धा तु अवसृष्ट दुष्टरुधिरा अतन्द्रिता सावधाना ॥

प्रसूता सार्द्धमासान्ते दृष्टे वा पुनरार्तवे ॥ सूतिकानाम हीना स्यादिति धन्वन्तरेर्मतम् ॥ ५ ॥

भा० अनन्तर जच्चा के नियम समय की अवधि कहते हैं ॥ एक मास पर्यंत जच्चा का दुष्ट रुधिर निकले और माफ़ (?) इनके हितु भोजन करे ॥ तेलका लगाना पसीना लिवाना रोज़करे और सावधान रहै ॥ ४॥-सर्वतः परिशुद्धा अर्थात निःसृत दुष्ट रुधिर अतन्द्रित अर्थात् सावधान। यदि जच्चा डेढ़ महीने के बाद रजस्वला हो तो जच्चापने से हीन होती है वह धन्वन्तरिका मत है ॥ ५॥

व्युपद्रवां विशुद्धाञ्च विज्ञाय वरवर्णिनीम् ॥ ऊ-
र्द्ध चतुर्थ्यो मासेभ्यो नियमं परिहारयेत् ॥ ६ ॥

[अथ स्तन्यस्वरूपमाह।]

रसप्रसादो मधुरः पक्काहार निमित्तजः ॥ कृत्स्नाद्दे
हात् स्तनौ प्राप्तः स्तन्यमित्यभिधीयते ॥ ७ ॥
(रसप्रसाद रसस्य सारः।) [स्तन्यस्य प्रवृत्तिमाह।]
स्तन्यं त्रिरात्रात् स्त्रीणां वा चतूरात्रादनन्तरम् ॥ प्र
वर्त्तयन्ति विवृत्ता धमन्यो हृदये स्थिताः ॥ ८ ॥

भा० सुहागवाली को उपद्रव से हीन और विशुद्ध देखके। चार महीनेके बा
द नियम छुड़ादेवे ॥ ६ ॥ [अनन्तर दूधका स्वरूप कहते हैं]
रस का सार मधुर पक्क आहार से उत्पन्न हुवा। सम्पूर्ण शरीर से स्तन में पहुं
चा दूध कहाता है ॥ ७ ॥ (रसप्रसाद अर्थात् रसकासार ॥) दूधके निक
लनेको कहते हैं। स्त्रियों का दुग्ध तीन या चार दिनके बाद हृदय में रहने वा
ली फैली हुई धमनियां निकालती हैं ॥ ८ ॥

[अथ स्तन्यप्रवृत्तिमाह।]

पयःपुत्रस्य संस्पर्शाद्दर्शनात् स्पर्शनादपि ॥ ग्रह-
णादप्यु रोजस्य शुक्रवत्सं प्रवर्त्तते ॥ ९ ॥ स्नेहो
निरन्तरस्तस्य प्रवाहे हेतुरुच्यते ॥

[अथ स्तन्यस्याल्पतेहेतुमाह।]

अवात्सल्याद्भयाच्छोकात् क्रोधादत्यय तर्पणात् ॥
स्त्रीणां स्तन्यं भवेत् स्वल्पं गर्भान्तर विधारणात् ॥ १० ॥

[अथ स्तन्यस्य वृद्धिहेतुमाह।]

भा० अनन्तर स्तन्यकी प्रवृत्तिको कहते हैं ॥ दूध पुत्रको छाती से लगाने से देखने से । या छाती के पकड़ने से अथवा चूचियों को छूनेसे शुक्रके मानिंद निकलताहै ॥ ९ ॥ प्रेम उसके निरन्तर निकलने में कारण कहाहै ॥ अनन्तर दूध के उत्पन्न होनेमें कारण कहते हैं ॥ प्रेमके न होनेसे भयसे शोक से क्रोधसे और तृप्तिके न होने से ॥ स्त्रियों का दूध अल्प होता है । अथवा दूसरे गर्भको धारण करने से अल्प होता है ॥ १० ॥

शालिषष्टीक गोधूमान् मांस क्षुद्र यवानपि ॥ कालशाक मलावूञ्च नारिकेरं कसेरु कम् ॥ ११ ॥ शृङ्गाटकं वरींचापि विदारी कन्द मेवच ॥ लशुनं दुग्ध वृद्ध्यै स्त्री सेवेत सुमना भवेत् ॥ १२ ॥ कमलमस्य तण्डुलानां कल्कं या क्षीरे पेषितम् पिबति ॥ सा भवति भृशं तरुणी क्षीरभरे णैव तुङ्ग कुच युगला ॥ ॥ १३ ॥ [कलमो धान्यविशेषस्तस्य लक्षणमाह ।]

भा० अनन्तर दूधके बढ़नेका कारण कहते हैं । काल शाक इसको श्राद्धशाक भी कहतेहैं ॥ और गौड़देश में नारिका प्रसिद्ध है । और कद्दू नारिकेल कसेरू ॥ ११ ॥ सिंघाड़े शतावरी विदारीकन्द लहसुन । इनको स्त्री दुग्ध वृद्धिके अर्थ सेवनकरे उससे भरहुवे स्तन वाली होतीहै ॥ १२ ॥ कलम एक किसिमका कश्मीर में बड़ा धान होताहै उसके चावलोंको दूध से पीसकर्के कल्कको जो पीती है । वो तरुणी अत्यन्त दूधके भारसेही उन्नत दोनों कुचवाली होतीहै ॥ १३ ॥ कलमधान्य विशेषहै उसका लक्षण कहतेहैं ॥

कलमः कलिविख्यातो जायते स वृहद्वने ॥ काश्मीरदेश एवोक्तो महातण्डुल संज्ञकः ॥ १४ ॥ विदारिकन्दस्य रसं पिबेत् स्तन्यस्य विवृद्धये ॥ तच्चूर्णं तस्य वृद्ध्यर्थं पिबेद्वा क्षीरसंयुतम् ॥ २५ ॥

कलम कलि नाम से प्रसिद्ध वो बड़े वनमें होता है। काश्मीर देशमें महा तं
डुल नाम से कहते हैं ॥ १४ ॥ दुग्ध की वृद्धि के अर्थ विदारीकंद का रस
पीवे ॥ अथवा उसका चूर्ण दुग्ध वृद्धि के अर्थ दूध के साथ पीवे ॥ २५ ॥

[अथ स्तन्यस्य दुष्टहेतुमाह।]

धात्र्या गुरुभिराहारै र्विहारै र्दोषलै स्तथा ॥ देह
दोषाः प्रकुप्यन्ति ततः स्तन्यं प्रदुष्यति ॥ २६ ॥
मिथ्याहार विहारिण्या दुष्टा वातादयः स्त्रियाः ॥
दूषयन्ति पयस्तेन शारीरे व्याधयः शिशोः ॥ २७ ॥

भा० अनन्तर दूधके दुष्ट होनेका कारण कहते हैं ॥ गरिष्ट और दोषल
आहार विहारों से धायके शरीर में दोष प्रकोप को प्राप्त होते हैं। उस्से दु
ग्ध बिगड़ताहै ॥ २६ ॥ विरुद्ध आहार और विहार वाली स्त्री के दुष्ट वा
तादिक दूधको बिगाड़तेहैं। उस्से बालक के शरीर में रोग होतेहैं ॥ २७ ॥

[अथ दुष्टस्तन्यस्य लक्षणमाह।]

कषायं सलिल प्लावि स्तन्यं मारुत दूषितम् ॥ पित्ता
दम्लञ्च कटुकं राज्योऽम्भसि तु पीतिका ॥ २८ ॥
कफ दुष्टन्तु घतोये निमज्जति च पिच्छिलम् ॥ द्व
न्द्वजन्तु द्विलिङ्गं स्यात् त्रिलिङ्गं सान्निपातिकम् ॥ २९ ॥

भा० अनन्तर दुष्टदुग्ध का लक्षण कहते हैं ॥ कसैला पानीमें तैरने वाला
ऐसा दुग्ध वायुसे दूषित होता है। पित्तसे खट्टा कडुवा जलमें डालने से पीली
लकीरें होतीहैं ॥ २८ ॥ और जो दुग्ध कफ से दुष्ट होता है वह पानीमें डूबजा
ताहै तथा पिच्छिल होताहै। और दो लक्षण वाला द्वन्द्वज तथा तीन ल
क्षणवाला सान्निपातिक होताहै ॥ २९ ॥

[अनन्तर बिगड़े दुग्धकी शोधन विधि कहते है]

अथ दुष्टस्तन्यस्य शोधन विधिमाह।

धात्री क्षीर विशुद्धार्थं मुद्गयूष रसाशिनी ॥ भार्गीदा रुबचा पिष्ट्वा पिबेत्साति विषास्तथा ॥ २०॥ पाठा मूर्व्वाब्द भूनिम्बै दारु शुण्ठी कलिङ्गकैः ॥ सारिवा मत्स्य पित्ताख्यैः क्काथः स्तन्य विशोधनः॥ २१

(मत्स्य पित्ता कटुकी)

पटोल निम्बासन दारु पाठा मूर्व्वा गुडूची कटु रोहिणीञ्च ॥ सनागरञ्च क्वथितञ्च तोये धात्री पिबेत स्तन्य विशुद्धि हेतोः ॥ २२॥

भा० धाय दूध अच्छा होने के वास्ते मूंग का पानी और रसा भोजन करने वाली होवे। भारंगी दार हर्दी वच अतीस इनको पीसके पीवे ॥ २० ॥ पाठा मुरी नागर मोथा चिरायता दारहर्दी सोंठ करंजुवा। सारिवा कुटकी इनका क्काथ दूध शोधक है ॥ २१ ॥ (मत्स्य पित्ता कुटकी। पटोल पत्र निम्ब आसन दारहर्दी पाठा मुरी गिलोय कुटकी और सोंठ जल में औटा- के धाय पीवे दुग्ध शुद्धि के अर्थ ॥ २२ ॥

[अथ शुद्धस्य लक्षणमाह।]

नीरे स्तन्यं यदेकी स्या दक्विवर्ण मतन्तुमत् ॥ पाण्डुरं तनु शीतञ्च तद्दुग्धं शुद्धमादिशेत् ॥ २३॥

[धात्री लक्षणमाह।]

पीताय यदि बालस्य विदध्या दुपशांतरम् ॥ सुविचार्य्य गुणान्दोषान कुर्य्याद्धात्रीं सदेहशीम् ॥ २४

भा० अनन्तर शुद्धका लक्षण कहते हैं ॥ जब पानीमें दूध मिल जावे और दधिसा वर्ण और तारसे रहित ॥ शुभ्र सूक्ष्म तथा शीत ऐसे दूधको शुद्ध कहते हैं ॥ २३॥ [धात्री अर्थात् धायका लक्षण कहते हैं]

जब बालक को दूध पीने के वास्ते धाय रक्खे । तो गुण दोषों को अच्छे प्रकार विचार करके तब इस प्रकार की धाय रक्खे ॥ २४ ॥

सवर्णां मध्यवयसां सच्छीलां मुदितां सदा ॥ शुद्ध
दुग्धांम्बहु क्षीरां सवत्सामति वत्सलाम् ॥ २५ ॥
स्वाधीना मल्पसन्तुष्टां कुलीनां सज्जनात्मजाम् ॥
कैतवेन परित्यक्तां निजपुत्र दृशं शिशौ ॥ २६ ॥

भा० अपनी ज़ात की बीच वय वाली अच्छे स्वभाव वाली सर्वदा हर्षयुक्त रहनेवाली शुद्ध दुग्ध वाली बहुत दुग्ध वाली बचोंवाली बहुत प्रीतिवाली ॥ २५ ॥ स्वाधीन और थोड़े में सन्तोष होनेवाली कुलीन तथा अच्छे घर की बेटी और धूर्त्तता से रहित बालक में निजपुत्र के समान दृष्टि रखनेवाली ऐसी धाय को करे ॥ २६ ॥

[अथ निषिद्धां धात्री माह ।]

शोकाकुला क्षुधार्त्ता च श्रान्ता व्याधिमती सदा ॥
अत्युच्चा नितरां नीचा स्थूलाती व भृशाकृशा ॥ २७ ॥
गर्भिणी ज्वरिणी चापि लम्बोदत पयोधरा ॥ अजी-
र्णी भोजिनी चापि तथा पथ्य विवर्ज्जिता ॥ २८ ॥
आसक्ता क्षुद्रकार्य्येषु दुःखार्त्ता चञ्चलापि च ॥
एतासां स्तन्यपानेन शिशुर्भवति सामयः ॥ २९ ॥

भा० अनन्तर निषिद्ध धात्री को कहते हैं । शोक से व्याकुल क्षुधा से पीड़ित थकी हुई और सदा की रोगवाली । बहुत ऊंची और बहुत नीची या बहुत मोटी अथवा बहुत दुर्बल ॥ २७ ॥ गर्भिणी ज्वरवाली बहुत लंबे और बहुत बड़े चूंचेवाली अजीर्ण में भोजन करनेवाली तथा पथ्य से रहित ॥ २८ ॥ क्षुद्र कार्य्यों में आसक्त और दुःख से पीड़ित और चञ्चल । इन के दुग्ध पान से बालक व्याधियुक्त होता है ॥ २९ ॥

[अथ बालस्य स्तन्यपान विधिः।]

तत्र माता प्रशस्ताङ्गी चारुवस्त्रा पुरोमुखी ॥ उपवि-
श्यासने सम्यग्द क्षिणं स्तनमम्बुना ॥ ३० ॥ प्रक्षा
ल्येषत्परिस्राव्य मन्त्राभ्यामभिमन्त्रितम् ॥ उद-
ङ्मुखं शिशुं क्रोडे शनैः सन्धार्य पाययेत् ॥ ३१ ॥
(मातेत्युपलक्षणम् धात्रीच ईषत्परिस्राव्य।)

[अन्यथा वैगुण्य माह।]सुश्रुतः।

अस्रावितं स्तनं बालः पिवन् स्तन्येन भूयसा ॥ पू-
र्णश्रोत वमीकास श्वासै र्भवति पीडितः ॥ ३२ ॥

भा० अनन्तर बालक के दुधपान की विधि कहते हैं ॥ इसमें अच्छे अं-
गवाली और अच्छे कपड़ोंको पहरीहुई माता आगेकी तरफ मुखकीहुई
आसनपर बैठकर अच्छीतरह पर दाई चूंची को पानीसे धोकर ॥ ३० ॥
और थोड़ासा दूध निचोड़के मन्त्रों से अभिमंत्रित कर उत्तरमुख बालक
को गोदमेंलेके धीरे २ पिलावे ॥ ३१ ॥ माताका यह उपलक्षण है धायभी
थोड़ा निचोड़के) इसके विरुद्ध करनेसे जो विगाड़ होताहै उसको सुश्रुत
कहतेहैं। वे निचोड़ीहुई चूंची को बालक पीकर बहुत दूधसे नाड़ियों
के स्रोत भरना वमन कांस श्वांस इनके द्वारा पीड़ित होता है ॥ ३२ ॥

[अभिमंत्रणमाह।]

क्षीरनीर निधिस्तेतु स्तनयोः क्षीर पूरकः ॥ सदैव सु-
भगो बालो भवत्वेष महाबलः ॥ ३३ ॥ पयोऽमृ
त समम्पीत्वा कुमारस्ते शुभानने ॥ दीर्घमायु र
वाप्नोतु देवाः प्राप्यामृतं यथा ॥ ३४ ॥

भा० अभिमंत्रण को कहते हैं ॥ यह मंत्र यांपर लिखे ॥

(क) मन्त्रौच पित्रान्येन ब्राह्मणेन पठनीयौ)

यावत्मन्त्र पाठस्तावन्माता धात्र्या दक्षिण हस्तेन स्पर्शः कार्य्यः ।

[अथजनन्याः क्षीराभावे धात्र्याश्चालाभे प्रकारमाह ।]

क्षीरसात्म्यतया क्षीर माजङ्गव्य मथापिवा ॥ दद्यादा स्तन्य पर्य्याप्ते बालेभ्यो वीक्ष्य मात्रया ॥ ३५ ॥

(ख) क्षीर सात्म्यतयेति यतः शिशोः क्षीरमेवा सात्म्यम्भवति न त्वन्नादिकम् । स्तन्य पर्य्याप्ते रिति यावत् स्त्रियाः स्तन्यस्य सन्ततो भावेन प्राप्ति र्भवति । अथ यावत् स्तन्य पानस्य योग्यता तावदित्यर्थः ॥

भा० (क) पिता और ब्राह्मणों के द्वारा इन मन्त्रों को पढ़वावे । जब तक मन्त्र पाठ होवे तब तक मां या धाय दहिने हाथ से स्पर्श करे । अनन्तर मां के दूध न होने मे या धायके न मिलनेमें प्रकारको कहते हैं ॥ क्षीरकी सात्म्यता से दूध बकरी का गायका देवे । दूध पीनेकी योग्यता तक देखकर मात्रा से बालक के अर्थ देवे ॥ ३५॥

(ख) क्षीर सात्म्यता इति । क्यों कि बालक की दूधही सात्म्य होताहै । न कि अन्नादिक । स्तन्य पार्य्याप्ते: इति । अर्थात् जब तक स्त्रियों के दूध की निरन्तर भावसे प्राप्ति होती है । अथवा । जब तक दुग्ध पान की योग्यता है तब तक इत्यर्थः ॥ [अथ बालस्यान्न प्राशन समयः ।]

यथोक्त विधिना बालं मासि षष्ठेऽष्टमेऽपि च ॥ अन्नं सम्प्राशयेत्किञ्चित्ततस्तद्वर्द्धयन् क्रमात् ॥ ३६

[अथ बालस्य परिचर्य्या विधिः ।]

बालमङ्कं सुखस्वप्ना नचैनं तर्ज्जयेत् क्वचित् ॥ सहसा बोधयेन्नैव नायोग्य मुपवेशयेत् ॥ ३७ ॥

भा० अनन्तर बालक का अन्नप्राशन समय कहते हैं ॥ बालक को छठे या आठवें महीने में यथोक्त विधिसे। अन्नप्राशन करावे उसके अनन्तर थोड़ा २ क्रमके साथ बढ़ाके अन्नप्राशन करावे ॥ ३६ ॥ अनन्तर बालक की परिचर्य्या विधि कहते हैं ॥ बालक को गोदमें सुलावे और इसको कभी भिड़के नहीं। तथा सहसा न जगावे और अयोग्य स्थान में न रक्खे ॥ ३७ ॥

[अयोग्यं उपवेशना समर्थं।]

नाकृष्य स्थापयेत् क्रोडे न क्षिप्रं शयने क्षिपेत् ॥
खेलयेन्न क्वचित्कार्य्ये विधिमावश्यकं विना। ३८

(क) आवश्यको विधिः भेषज दान तैलाभ्यङ्गोद्वर्त्तनादिभिः ॥

तच्चित्तमनुवर्त्तेत नं सदैवानु मोदयेत् ॥ निम्नोच्च
स्थान तश्चापि रक्षेद्बालं प्रयत्नतः ॥ ३९ ॥

भा० अयोग्य अर्थात् उपवेशन के असमर्थ। और बालक को खेंचके गोद में न लेवे तथा शीघ्र बिस्तरे पर न डाल देवे। आवश्यक विधिके विना किसी कार्य्य में खेलावे ॥ ३८ ॥
(क) आवश्यक विधि अर्थात् औषधका देना तैलका अभ्यङ्ग उबटना इत्यादिकों के बिना ॥ उसके मनके अनुकूल चले और सदा उसको प्यार करे। और नीची ऊंची जगह से बालक को यत्नके साथ रक्षा करे ॥ ३९

[बालस्य स्वभावाद्धितान्याह।]

अभ्यङ्गोद्वर्त्तनं स्नानं नेत्रयोरञ्जनन्तथा ॥ वसने मृदुधारणञ्च तथा भृङ्गानुलेपनम् ॥ ४० ॥ जन्मं प्रभृति पथ्यानि बालस्यै तानि सर्व्वथा ॥

[बालस्य कवलादेः समयमाह।]

कवलः पञ्चमाद्वर्षा दष्टमान्तस्य कर्म्मच ॥

विरेक : षोडशाद्वर्षाद्विंशतेश्चैव मैथुनम् ॥ ४१ ॥

[बालादेरवमाह सुश्रुतः ।]

वयस्तु त्रिविधम्बाल्यं मध्यमं वार्द्धकन्तथा ॥ ऊन षोडश वर्षस्तु नरो बालो निगद्यते ॥ ४२ ॥ त्रिविधः सोऽपि दुग्धाशी दुग्धान्नाशी तथान्नभुक ॥ दुग्धाशी वर्ष पर्य्यन्तं दुग्धन्नाशी शरद्द्वयम् ॥ ४३ ॥

भा० बालक को स्वभाव सेजो हितहै उसको कहतेहैं ॥ तेलका लगाना उबटना स्नान आंखों में अञ्जन । और जो मृदु वमन है तथा मृदु अनुलेपन ॥ ४० ॥ बालक को येसब जन्मसे लेकर पथ्यहैं ॥ बालक के कवलादिकों का समय कहते हैं ॥ बालक को पांचवें वर्ष से ग्रास देवे और आठवें वर्षमें उसका कर्म्म । और सोलवें वरस से विरेचन । तथा बीस वरस से मैथुन ॥ ४१ ॥ बालक आदिकी अवधि कहते हैं सुश्रुत । वय तीन प्रकारके हैं बालक तरुण और वृद्ध । सोलह वरस से कम मनुष्य बालक कहलाताहै ॥ ४२ ॥ वो बालक भी तीन प्रकारके हैं । एक तो खाली दूध पीने वाले । दूसरे दूध और अन्नको खाने वाले । तीसरे अन्न खानेवाले । एक वर्षका दुग्धभोजी और दो बरस का दुग्धान्न भोजी ॥ ४३ ॥

तदुत्तरं स्यादन्नाशी एवं बालस्त्रिधा मतः ॥ म ध्ये षोडश सप्तत्यो मध्यमः कथितो बुधैः ॥ ४४ चतुर्द्धा मध्यमम्प्राह युवा द्वात्रिंशतो मतः ॥ चत्वारिंशत्समा याव त्तिष्ठे द्वीर्य्यादि पूरितः ॥ ४५ ॥ ततः क्रमेण क्षीणः स्या द्यावद्भवति सप्ततिः ॥

भा० उसके अनन्तर अन्नभोक्ती ऐसे बालक तीन प्रकार के कहेहैं ॥ सोलह और सत्तर के बीचमें मध्य वय पण्डितों ने कही है ॥ ४४ ॥ चार प्रकार का मध्यम कहाहै युवा बत्तीस वरस तक । और जबतक चाली

स बरस होते हैं तब तक वीर्य्य से लेके रसादि सपूरित रहते हैं ॥ अनन्तर क्रमके साथ क्षीण होते हैं सत्तर बरस तक ॥ ४५॥ (क) वीर्य्य इत्यादि शब्दसे रसादि सर्वधातु इन्द्रिय बल उत्साह कहे हैं।

(क) वीर्य्यादित्यादि शब्देन रसादि सर्व्व धात्विन्द्रिय बलोत्साहा उच्यन्ते। क्षीणः सर्व्व धात्विन्द्रिय बलोत्साहै र्हीनः॥

ततस्तु सप्ततेरूर्द्धं क्षीण धातु रसादिकः॥ क्षीयमाणेन्द्रिय बलः क्षीणरेता दिने दिने॥ ४६॥
बली पलित खालित्य युक्तः कर्मसु चाक्षमः॥ कासश्वासादि भिः क्लिष्टो वृद्धो भवति मानवः॥४७

भा० क्षीण अर्थात् सब धातु इन्द्रिय बल उत्साह से हीन। अनन्तर सत्तर बरस ऊपर क्षीणधातु रसादिक। और इन्द्रिय बलहीन तथा दिन २ क्षीणशुक्र होता है ॥ ४६॥ झुर्रियां सफेद बाल सिरके बाल उड़जाना इनसे युक्त और कामकरने में असमर्थ। तथा कास श्वास से पीड़ित वृद्ध मनुष्य होता है ॥ ४७॥

बाल्ये विवर्द्धते श्लेष्मा पित्तं स्यान्मध्यमेऽधिकम्॥ वार्द्धके वर्द्धते वायु र्विचार्य्यैतदुपक्रमेत्॥ ४८॥ (क) उपक्रमेत् चिकित्सेत् तन्त्रान्तरेतु।
बाल्यं वृद्धि श्छविर्मेधा त्वग्दृष्टिः शुक्र विक्रमौ॥ बुद्धिः कर्मेन्द्रियञ्चेतो जीवितन्दशतो ह्रसेत्॥४९

भा० बाल अवस्था में कफ की वृद्धि होती है। तरुण में पित्त अधिक होता है तथा वृद्ध अवस्थामें वायु बढ़ता है। इस को विचार करके चिकित्सा करे। ॥ ४८॥ (क) उपक्रम करे अर्थात् चिकित्सा करे ॥ बालकपन धातुओं की वृद्धि छवि मेधा त्वचा दृष्टि शुक्र पराक्रम। बुद्धि और कर्मेन्द्रिय और।

संज्ञा ये सब क्रमके साथ दस दस बरस उत्तरोत्तर में हीनता को प्राप्त होतेहैं ४९

[अथ प्रकृतिलक्षणानि]

सप्त प्रकृतयो नृणां वातात्पित्तात्कफात्तथा ॥ संसर्गात्सन्निपाताच्च भवन्ति भिषजाम्मते ॥ ५० ॥ शुक्रशोणित संयोगे यो दोषस्तूत्कटो भवेत् ॥ प्रकृति जीयते तेन तस्या लक्षण मुच्यते ॥ ५१ ॥

भा॰ अनन्तर प्रकृतिके लक्षण कहतेहैं ॥ वैद्योंके मतमें मनुष्योंकी सात प्रकृति होती हैं। वात पित्त कफ से तीन संसर्ग सेतीन और सन्निपात से एक। इस प्रकार सात ॥ ५० ॥ शुक्र रज के संयोग में जोदोष अधिकहोता है। उस्से प्रकृति होती है। उसका लक्षण कहताहूं ॥ ५१ ॥

[वाग्भटे त्वात्रेयादयः।]

शुक्रासृग्गर्भिणी भोज्य चेष्टा गर्भाशयान्तरे ॥ यः स्याद्दोषोऽधिकस्तेन प्रकृतिः सर्व्व योदिता ॥ ५२ ॥ (क) सोऽपि दोषः स्वभावावस्थितो नतु दुष्टः दुष्टेन तु शुक्र शोणितयो र्दुष्टा शुद्ध गर्भासम्भवात्।

भा॰ वाग्भटमें आत्रयादिकों ने कहाहै ॥ शुक्र और आर्त्तव में तथा गर्भिणी के आहार विहार में और गर्भाशय के बीच में जोदोष अधिकरहताहै उस करके प्रकृति होतीहै ॥ ५२ ॥ (क) वोहभी दोष स्वभाव सेही रहता है। न कि बिगड़ा हुवा। क्यों कि दुष्ट करके शुक्र शोणित में दुष्ट और अशुद्ध गर्भ के असम्भव होने से ॥

जागरूकोऽन्यकेपाश्व स्फुटिताङ्घ्रि कर: कृशः ॥ शीघ्रगो बहुवाग्रूक्षः स्वप्ने वियतिगच्छति ॥ ५३ ॥ एवं विधः स विज्ञेयो वात प्रकृतिको नरः ॥ पित्त प्रकृति

क्रो लोको यादृशोऽस्य निगद्यते ॥५४॥ अकालपलि नोगौरः क्रोधी स्वेदीन बुद्धिमान् ॥ बहुभुक्ताम्रनेत्रश्च स्वप्नेज्योतींषि पश्यति ॥५५॥ एवं विधो भवेद् यस्तु पित्तप्रकृतिको नरः ॥ श्यामकेशः क्षमी स्थूलो बहुवीर्य्यो महाबलः ॥५६॥ स्वप्नेजलाशया लोकी श्लेष्मप्रकृतिकोनरः ॥ दृश्यते प्रकृतौ यत्र रूपं दोषद्वयस्य तु ॥५७॥ द्विसंसर्गे ग्रा जानीयात्सर्व्वे लिङ्गैः त्रिदोषजम् ॥

भा॰ जागरण स्वभाव अर्थात् कम सोनेवाला। थोड़े केशवाला और जिसके हाथ पाव अलग२ से निकले हों तथा कृश बहुत चलनेवाला बहुत बोलनेवाला रूखे बदनवाला जो आकाश के स्वप्न देखे ॥५३॥ इस प्रकार के मनुष्य को वात प्रकृति जानना चाहिये ॥ पित्त प्रकृतिवाला पुरुष जिस प्रकारका होता है उसको कहता हूं ॥५४॥ युवा अवस्था में केश पक जावें गौर वर्ण क्रोधी पसीना बहुत आवे बुद्धिवान् ॥ बहुत भोजन करनेवाला। रक्तनेत्र स्वप्नमें तेज देखे ॥५५॥ इस प्रकार का जो हो वोह पित्त प्रकृति मनुष्य है ॥ कालेकेश क्षमावाला मोटा बहुत वीर्य्यवाला बड़ा पराक्रमी ॥५६॥ स्वप्नमें जलाशयों को देखनेवाला कफ प्रकृति मनुष्य है ॥ जिस प्रकृति में दो दो दोषों का लक्षण दीखे ॥५७॥ उसको द्वन्द्वज प्रकृति जाने। और सब लक्षणों से सन्निपात की प्रकृति जाने ॥

[वाग्भटेतु।]

प्रायस्त एव पवना ध्युषिता मनुष्याः दोषात्मकाः स्फुटितधूसर केशगात्राः ॥ शीतद्विषश्चलधृतिः स्मृतिबुद्धिचेष्टाः। सौहार्द दृष्टि गतयोऽतिबहु प्रलापाः ॥५८॥ अल्पपित्त कफ जीवित निद्रा।

सत्वधाक बहु जल्लर वाच: ॥ नास्तिका बहु भुज: स विलासा गीत हास्य मृगया केलि सुलोला: ॥ ५९ ॥ मधुराम्ल कटूष्णा सात्म्य कांक्षा कशं दीर्घा कृतय: मशब्द ज्ञाना नदृढा न जितेन्द्रिया न वीर्य्या: न च कान्तादयिता बहु प्रजावा ॥ ६० ॥ अंगानि चैवाङ्गर धूसराणि वृत्तान्य चारूणि मृतोपमानि। उन्मीलितानीव भवन्ति सुप्ते शैल द्रुमान्ते गगनं प्रयाते ॥ ६१ ॥ अधन्या मत्सराध्माना स्तेना: प्रोद्बद्ध पिण्डिका: ॥ स्वप्ने शृगालोष्ट्र गृध्राखु काको लूकाश्च वातिका: ॥ ६२ ॥

भा० वाग्भट में कहाहै। प्राय:वोही वायु करके स्थित मनुष्य दोषवाले स्फुटितगात्र और धूसरकेश तथा शीतसे द्वेष करने वाले। चञ्चल धृति स्मृति और बुद्धि की चेष्टा वाले। आँखों में शीलवाले बहुतबोलनेवाले ॥ ५८ ॥ अल्प पित्त कफ वायु और निद्रा करके युक्त अर्थात् बहुत जिड़ २ करनेवाला ॥ नास्तिक बहुत भोजन करनेवाला विलास करके युक्त गाना हंसना शिकार का खेलना इनमें तत्पर ॥ ५९ ॥ मधुर अम्ल कटु उष्ण इनकी सात्म्य इच्छा ॥ दुबला और लंबी आकृतिवाला ॥ शब्द के सहित समझने वाला। दृढ़ न होना न जितेन्द्रिय न आर्य्य न स्त्रीवाला। और न बहुत सन्तति वाली स्त्रीवाला ॥ ६० ॥ इसका शरीर स्वर धूसर लंबा रूखा मृतोपम। सोनेमें आँख खुलीसी होतीहैं। पहाड़ वृक्ष के ऊपर तथा आकाश में जाता है ॥ ६१ ॥ नेकी जिसमें नहो दूसरे की दौलत पर हसद करदे पेट फूला हुआ चोर। निकली हुई पिंडली वाला स्वप्न में सियार ऊंठ गिद्ध घोड़ा कौवा व उल्लू। इनको जो देखताहै वो वात प्रकृति मनुष्य है ॥ ६२ ॥

पित्तं वन्हिर्वन्हिजं वैतदस्मात् पित्तोद्रिक्तस्तीव्र तृष्णाबुभुक्षु: ॥ गौरोष्णाङ्ग स्ताम्रहस्ताङ्घ्रि: सुभग:

भूगे मानी पिङ्गकेशोऽल्परोमा ॥ ६३ ॥ दयितमाल्यविलेपनमण्डनः सुरचितः शुचिराश्रितवत्सलः। विभवसाहसबुद्धिबलान्वितो भवति भीष्मगतिः द्विषतामपि ॥ ६४ ॥ मेधावी प्रशिथिलितसन्धिबन्धमांसो। नारीणामनभिमतोऽल्पशुक्रकामः ॥ आवासश्चलिततरङ्गनीरकेषु। भुक्तेऽन्नं मधुरकषायतिक्तशीतम् ॥ ६५ ॥

भा० पित्त और अग्नि तथा अग्निसे होनेवाले ये और इनसे पित्त बढ़ैहवे बहुत तृषावालाभूखा ॥ गौरा और उष्ण शरीरवाला लालीको लिये हाथ और पांव शूर अभिमानी भूरेकेश थोड़े रोवें वाला ॥ ६३ ॥ प्रियमाल्य विलेपन इनसे भूषित सुन्दर पवित्र उत्रसे युक्त ऐश्वर्य्य साहस बुद्धि बल करके युक्त और शत्रुवों को भयानक गति होता है ॥ ६४ ॥ कान्तिवाला ढीले जोड़ों के बन्ध और मांस स्त्रियों के प्रिय नहीं होता थोड़ा शुक्र और थोड़ी मैथुन शक्तिवाला। उठे तरंगवाला जलाशयमें रहना भोजनमें मधुर कषाय तिक्त और शीत अन्न ॥ ६५ ॥

धर्मद्वेषी स्वेदनः पूतिगन्धिः भूर्य्युच्चारक्रोधपानाशनेर्ष्यः। सुप्तः पश्यन् कर्णिकारान् पलाशान् दिग्दाहोल्का विद्युदर्कानलांश्च ॥ ६६ ॥ तनूनि पिङ्गानि चलानि येषां तन्वल्पपक्ष्माणि हिमप्रियाणि। क्रोधेन मद्येन रवेश्च भासा रागं व्रजन्त्याशु विलोचनानि ॥ ६७ ॥

भा० धर्मका शत्रु बहुत पसीने आवें और जिस्‌में बुरी वास आवे हकलाके बोले क्रोधी भोजनकी ईर्षा करनेवाला। और सुपनेमें कनेर पलास इनके वृक्षोंको देखे और दिग्दाह उल्का बिजली सूर्य्य अग्नि ये देखे ६६

इनके पर्याग भूरे चंचल छोटी थोड़ी पलकें और पीन प्रिय । तथा क्रोध मद्य और सूर्यके प्रकाश से शीघ्र रक्त वर्ण होतेहैं ऐसे नेत्रवाले ॥ ६७ ॥

मध्यायुषो मध्यबलाः पण्डिताः क्लेशभीरवः ॥ व्याघ्राखु कपिमार्जार वृकाख्तूताश्च पैत्तिकाः॥ ६८॥ श्लेष्मा सोमः श्लेष्म लस्तेन सौम्या गूढ़ स्निग्ध श्लिष्ट सन्ध्यस्थिमांसः । क्षुत्तृट्द दुःख क्लेश धर्मै रतप्तो बुद्धायुक्तः सात्विकः सत्यसन्धः ॥ ६९ ॥ प्रियङ्गु दूर्वाशरकाण्ड दर्भ गोरोचना पद्मसुवर्ण वर्णः ॥ प्रलम्बबाहुः पृथुपीन वक्षाः महाललाटो घननील केशः ॥ ७०॥

भा० मध्य आयु मध्यबल पंडित क्लेशसे डर । व्याघ्र चूहा बन्दर बिल्ली भेड़िया मकड़ी इनको जो देखे सो पैत्तिक है ॥ ६८ ॥ कफ जलहै उस कर के श्लेष्मल अर्थात् कफ प्रधान सौम्य गूढ़ स्निग्ध मिलीहुई जोड़ोंकी हड्डी और मांस ॥ क्षुधा तृषा दुःख क्लेश इनके धर्मोंसे जो नहीं संतप्त होता बुद्धि वा सात्विक सच्चा ॥ ६९ ॥ प्रियङ्गु दूर्वा सरकंडा दर्भ गोरोचन कमल सोना इनका सावर्ण । लंबे हाथ चौड़ी और मांसल छाती बड़ा सिर घरे लंबे और काले केश ॥ ७० ॥

मृद्वङ्गः समसु विभक्तः चारुदेहो बह्वोजा रतिरसयुक्त सपुत्र भृत्यः ॥ धर्मात्मा वदति न निष्ठुरं च जातु प्रच्छन्नं वहति दृढं चिरञ्च वैरम् ॥ ७१ समद द्विरदेन्द्र तुल्य यानो जलदाम्भोधि मृदङ्ग पङ्क घोषः ॥ स्मृतिमानभियोगवान्विनीतो न च बाल्येऽप्यतिरोदनो न लोलः ॥ ७२ ॥

भा० मृदु और सम तथा अच्छे प्रकार विभक्त सुंदर शरीरवाला ॥ और बहुत ओजवाला रतिरस करके युक्त पुत्र तथा भृत्यों करके सहित ॥ धर्मात्मा और कदाचित् भी जो कठोर नहीं बोलता। तथा छिपृता और दृढ़ बहुत कालतक वैरको धारण करताहै ॥७०॥ मदके सहित गजके समान तुल्य स्थूल मेघ समुद्र मृदंग दुंदुभिके समान आवाज ॥ स्मृतिवाला अभियोगवाला विनीत और बाल्य अवस्थामें भी बहुत नरोनेवाला न चंचल ॥ ७२॥ तिक्त कषाय कटुक उष्ण और थोड़ा भोजन करनेपर बलवान ॥ भीतर रक्तता अच्छे प्रकार स्निग्ध विशालदीर्घ सुव्यक्त शुक्ल और काले पलकवाले ऐसे चक्षु होतेहैं ॥

तिक्तं कषायं कटुकोष्णरूक्ष मल्पञ्च भुंक्ते बलवांस्त थापि ॥ रक्तान्त सुस्निग्ध विशालदीर्घ सुव्यक्त शुक्ला सित पक्ष्मलाक्षः ॥ ७३ ॥ अल्पाहार क्रोध पानाश ने हः प्राज्ञो वित्तो दीर्घसूत्री वदान्यः ॥ हृद्गम्भीरः स्थूल वक्षाः क्षमावान्निद्रालुश्चाऽलुब्ध सत्त्वः कृतज्ञः ॥ ॥७४॥

भा० थोड़ा भोजन करनेवाला क्रोधवान और अशनमें इच्छावाला बुद्धिवान् द्रव्यवान दीर्घसूत्री और उदार ॥ गम्भीर हृदयवाला स्थूलवक्ष क्षमावाला निद्रालु अलुब्ध अर्थात् लोभी न होना और कृतज्ञ ॥ ७४ ॥

ऋजुर्विपश्चित्सुभगः सलज्जो भक्तो गुरूणां स्थिर सौहृदश्च ॥ स्वप्ने सपद्मान् सविहङ्गमालान्तोयाश यान् पश्यति तोयदांश्च ॥७५॥ विष्णुरुद्रेन्द्रवरुण तार्क्ष्य हंस गजाधिपैः ॥ श्लेष्म प्रकृतयस्तुल्यास्त था सिंहाश्व गो वृषैः ॥७६॥

भा० सीधा पंडित अच्छे भाग्यवाला सलज्ज गुरुवोंका भक्त और स्थिर मित्रतावाला स्वप्नमें कमलके सहित जलाशय पक्षियों की पंक्ति तथा मेघ

इनकेजैसे ॥७५॥ विष्णु रुद्र वरुण चन्द्र गरुड़ हंस और गजेन्द्र इनके समान श्लेष्म प्रकृतिवाले होतेहैं ॥तथा सिंह और सांड इनकेभीसमान होतेहैं ॥
॥७६॥

(क) ननु प्रकृति हेतूनां मध्ये योऽधिकः स स्वव्याधीन् कथं न करोतीत्याशङ्कामाह ॥ विषजातो यथा कीटो न विषेन प्रबाध्यते ॥ तद्वत् प्रकृतयो मर्त्यं शक्नुवन्ति न बाधितुम् ॥७७॥ (रक) एतौ द्वौ न जायते षदर्थे तेन विशेषेण विषजदाहादिना ॥ इषत् प्रबाध्यते ननु भृशं तथाच प्रकृतयः ॥ प्रकृतिहेतवो दोषाः बाधितुं न शक्नुवन्ति ॥

भा॰ ननु शंकाकरते हैं कि प्रकृति कारणोंके बीचमें जो अधिक होताहै वो ह अपनी व्याधियों कोकैसे नहिं करता। इस आशंका में कहतेहैं ॥ जैसे विषसे उत्पन्नहुवा विषसेबाधा नहीं पाता ॥७७॥ (क) येदो नतप् में भी इषवर्ष होतेहैं उस विषजदाहादि विशेषण करके। इषत्बाधा करताहै नकि बहुत उसी प्रकार प्रकृतियाँ भी॥ प्रकृतिके कारण जो दोषबाधा नहीं करसकेहैं॥ करचरणस्फुटि तन्वं स्वेद निद्राधिक्यादिना ईषद्बाधितुं शक्नुवन्त्येव। नतु ज्वरादिभिः॥ प्रकोपो वान्यभावो वा क्षमो वा नोपजायते ॥ प्रकृतीनां स्वभावेन जायतेतु गतायुषः॥७८॥

इति श्री मिश्र लटकन तनय श्रीमन्मिश्र भाव विरचिते भावप्रकाशे बाल प्रकरणं तृतीयम् ॥३॥ ❋ ॥

भा॰ हाथ पांव फटि तन्व स्वेद निद्राकी आधिक्यता आदिकरके थोड़ी बाधा कर सक्ताहै ॥ न कि ज्वरादिक। प्रकोप अथवा अन्यभाव या क्षम नहीं होता॥ प्रकृतियों के स्वभाव से गतायु होताहै ॥७८॥

इतिश्री मिश्रलटकन केपुत्र श्रीमन् मिश्रभावके विरचित भावप्रकाश में बाल प्रकरण तृतिय समाप्तहुवा ॥ ३॥ ॥

[अथदेशाः।]

भूमिदेशास्त्रिधानूपो जाङ्गलो मिश्रलक्षणः॥

[तत्रानूपलक्षणम्।] नदीपल्वलशैलाढ्यःफुल्लोत्पल कुलैर्युतः ॥ ७९॥ हंससारसकारण्ड चक्रवाकादिसेवितः ॥ शशवाराह महिषरुरुरोहिकुलाकुलः ॥ ८०॥ प्रभूतद्रुमपुष्पाढ्यो नीलशस्य फलान्वितः॥ अनेक शालिकेदार कदलीक्षुविभूषितः ॥ ८१॥ आनूपदेशो ज्ञातव्यो वातश्लेष्मामयान्विमान्॥

भा० अनन्तर देशकहतेहैं ॥ भूमितथा देश तीन प्रकारके होतेहैं। आनूप जांगल और मिश्रलक्षण ॥ ॥ उसमें अनूपका लक्षण। नदी क्षुद्र जलाशय पर्वत इन करके युक्त प्रफुल्लित बहुतसे कमलोंसे युक्त ॥७९॥ हंस सारसजल कुक्कुट चकवा इत्यादि करके सेवित ॥ खर गोश शूकर महिषकाला हिरण और रुक्ष ॥इनके कुलोंसे व्याप्त ॥ ८०॥ बहुतसे वृक्ष पुष्पोंसे भरेहुवे नील धान्य फलों करके युक्त। बहुत से धानोंसे युक्तखेत और केले ऊख इनसे शोभित ॥ ॥ ८१॥ इसको अनूपदेश जानना चाहिये। वातकफकेरोग पीड़ावालाहै ॥

[अथजाङ्गल लक्षणम्]

आकाश शुभ्र उच्चश्च स्वल्प पानीय पादपः ॥ शमीक-रीर बिल्वार्क पीलुकर्कन्धु सङ्कुलः ॥ ८२ ॥ हरिणै णार्क्ष पृषत गोकर्णखर सङ्कुलः ॥ सुस्वादु फलवा-न्देशो वातलो जाङ्गलः स्मृतः ॥ ८३ ॥

भा० अनन्तर जांगलका लक्षण कहते हैं ॥ आकाश शुभ्र और ऊंचाभी थोड़ाजल और थोड़े वृक्ष ॥ शमी करीर बेल आंक पीलू वेर इनकरके संकुल ॥ १८२ ॥ हरिण काला हरिन इत्यादि मृग और खर इनसे व्याप्त। अच्छे

मधुर फलवाले देश और वानलको जांगल कहाहै ॥ ८३ ॥

[तन्त्रान्तरेतु।] बहूदकनगोऽनूपः कफमारुत रोगवान्॥

जाङ्गलोऽस्याङ्गशाखो च पित्त रक्तमारुतोत्तरः॥ ८४॥

[साधारण लक्षणम्।]

संसृष्ट लक्षणो यस्तु देशः साधारणो मतः॥ समा,सा धारणो यस्मा च्छीत वर्षोष्ण मारुताः॥ ८५॥ समता तेन दोषाणां तस्मात् साधारणो वरः॥ [सुश्रुतात्।] उचिते वर्त्तमानस्य नास्तिदुर्देशजं भयम्॥ आहार स्वप्न चेष्टादौ तद्देशस्य कृते सति॥ ८६॥

भा० मतांतर में कहते हैं ॥ बहुत जल और पर्वतका अनूपदेश है और कफवायुके रोगवाला। और जांगल अल्प अंग तथा शाखवाला और पित्त रक्त मारुतो नर लेनाहै ॥ ८४॥ साधारणका लक्षण कहते हैं ॥ मिलेहुवे लक्षणों से युक्त जो देश है वो साधारण कहाहै ॥ जिस कारण साधारणमें शीत वर्षा उष्ण वायु सम होते हैं ॥ ८५॥ उस कारण वो वसकरके दोषों का साधारण श्रेष्ठ कहागया ॥ सुश्रुतात् अर्थात् सुश्रुत से। उचित में करने वालेको दुष्ट देश का भय नहीं होता ॥ उसी देशका भोजन सोना चेष्टा करनेसे दुर्देशज भय नहीं होता ॥ ८६॥

[वृद्ध वाग्भटः।] यस्य देशस्य यो जन्तु स्तज्जान्तस्यौषधं हितम्॥ देशादन्यत्र वसतस्तत्तुल्य गुणमौषधम्॥ ८७ स्वे देशे निचिता दोषा अन्यस्मिन् कोपमागताः॥ बलवन्तस्तथा नस्यु जलजा स्थानजा स्तथा॥ ८८॥

भा० वृद्धवागभट्टने कहाहै ॥ जिस देशका जो प्राणी है उसको उस देश में उत्पन्न हुईही औषधि हित है ॥ देशसे अलग रहने वालेको उसीके तुल्य गुण औषधि हित है ॥ ८७॥ अपने देशमें संचय हुवे दोष दूसरे में कोपको

प्राप्त होवे। उस प्रकार बलवान नहीं होते। जैसे जलज और स्थलज में होतेहैं ॥ ८८॥

[अथ दिनादि चर्य्या।]

मानवो येन विधिना स्वस्थस्तिष्ठति सर्वदा ॥ तमेव का रयेद्वैद्यो यतः स्वास्थ्यं सदेप्सितम् ॥ ८९ ॥ दिनचर्य्यां निशाचर्य्यां ऋतुचर्य्यां यथोदिताम् ॥ आचरन् पुरुषः स्वस्थः सदा तिष्ठति नान्यथाः ॥ ९० ॥

भा० अनन्तर दिनचर्य्या कहतेहैं ॥ मनुष्य जिस बिधिकरके सर्वदा स्वस्थ रहताहै। उसीको वैद्य करावे क्योंकि स्वास्थ्य सर्वही इच्छित है ॥ ८९॥ दिनचर्य्या रात्रिचर्य्या और ऋतुचर्य्या जैसे कहीहै। उसको आचरनकरने वाला पुरुष सदाही स्वस्थ्य रहताहै ॥ अन्यथा स्वस्थ नहीं रहता ॥ ९० ॥

[तत्र स्वस्थस्य लक्षणमाह।]

सुश्रुतः। समदोषः समाग्निश्च समधातु मलक्रियः॥ प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः स्वस्थ इत्यभिधीयते ॥ ९१ ॥ (क) क्रियात्र कर्म तेन समक्रियः। शरीरानुरूपकर्मा। तत्र दिनचर्य्यामाह ॥ ब्राह्मेमुहूर्त्ते बुद्ध्येत स्वस्थो रक्षार्थमायुषः॥ तत्र दुःखार्त्तशान्त्यर्थं स्मरेद्धि मधुसूदनम् ॥ ॥ ९२ ॥ दध्याज्यादर्शसिद्धार्थ विल्व गोरोचना स्रजाम्।

भा० उसमें स्वस्थका लक्षण कहतेहैं ॥ समदोष सम अग्नि समधातु सममल और समक्रिया। प्राण इन्द्रिय मन इनकी प्रसन्नता वालेको स्वस्थ ऐसा कहतेहैं ॥ ९१ ॥ (क) क्रिया यहांपर कर्म लेना चाहिये उसकरके समक्रियः। अर्थात् शरीरके अनुरूप कर्म करनेवाला। उसमें दिनचर्य्याको कहतेहैं ॥ स्वस्थपुरुष आयुकी रक्षाके अर्थ ब्राह्ममुहूर्त में जागे। उसमें दुःख शान्तिके अर्थ मधुसूदनको स्मरणकरे ॥ ९२॥ दही घृत दर्पण सरसों बेल गोरोचन माल्य इनका देखना स्पर्शकरना

दर्शनं स्पर्शनं कार्य्यं प्रबुद्धे न शुभावहम् ॥ ९३ ॥ स्व
माननं घृते पश्येत् यदीच्छेत् चिरजीवितम् ॥ आयु
ष्य मुषसि प्रोक्तं मलादीनां विसर्जनम् ॥ ९४ ॥ तदन्त्र
कूजनाध्मानोदर गौरव वारणम् ॥ आदि शब्देन
वात मूत्रादीनां ग्रहणम् ॥ ९५ ॥ आटोप शूलौ परि
कर्त्तिका च सङ्गः पुरीषस्य तथोर्द्ध वात ॥ पुरीष मा
स्यादथवा निरेति पुरीष वेगेऽभिहते नरस्य ॥ ९६ ॥

भा० जागे हुवे पुरुष ने करना चाहिये येह शुभावह है ॥ ९३ ॥ अपना मुख घृतमे देखे चिरजीवित की इच्छा करे ॥ प्रातःकाल में यह आयुष्य कहा है। और मलादि का त्यागभी आयुष्य है ॥ ९४ ॥ वोह यहाँ पर पेटमें गुड़ गुड़ा शब्द। आध्मान उदर और भारीपन इनका दूर करने वाला है। आदि शब्दसे वात मूत्रादियोंका ग्रहण है ॥ ९५ ॥ आटोप शूल गुदामें कटावसी पीड़ा मल न होना और ऊर्द्ध वात अथवा मलके वेगसे अभिहत मनुष्यके मुखसे मल निकलता है ॥ ९६ ॥

(क) परिकर्त्तिका। गुदे परिकर्त्तनवत्पीड़ा। पुरीषस्य सङ्गो
निरोधः। ऊर्द्ध वातः उद्गाद्वाहुल्यम्। ॥ वात मूत्र पुरी
षाणां सङ्गोऽध्मानं क्लमो रुजा। जठरे वातजाश्चान्ये
रोगाः स्यु वात निग्रहात् ॥ ९७ ॥ वस्तिमेहनयोः शूलं
मूत्रकृच्छ्रं शिरोरुजा ॥ विनामो वङ्क्षणानाहः स्या
ल्लिङ्गं मूत्र निग्रहे ॥ ९८ ॥

भा० (क) परिकर्त्तिका गुदामें कैंची से काटने कीसी पीड़ा। मलका संग अर्थात् अवरोधपना। ऊर्द्ध वात अर्थात् डकारोंका बहुत होना। वात मल मूत्रोंका अवरोध आध्मान क्लम पीड़ा। और पेटमें वातज और रोग वात के

अवरोध से होते हैं ॥ ९७॥ पेड़ु लिंगमें शूल मूत्र कृच्छ्र शिरमें पीड़ा। शरीर का झुकाव वंक्षण में आकर्षण के मानिंद पीड़ा ये लक्षण मूत्र निग्रहमें होते हैं ॥

(क) विनामः शरीरस्य नम्रता वङ्क्षणानाहः। वङ्क्षणस्याकर्षणवत्पीड़ा॥ न वेगितोऽन्यकार्यः स्यान्न वेगानीरयेद् बलात् ॥ काम शोक भयक्रोधान् मनोवेगान्विधारयेत् ॥ ९८॥ गुदादि मलमार्गाणां शौचं कान्ति बलप्रदम् ॥ पवित्रकरमाख्यातं मलक्ष्मी कलि पापहृत् ॥ ॥१००॥ प्रक्षालनं मतं पाण्योः पादयोः शुद्धिकारणम् ॥ मलश्रम हरं वृष्यं चक्षुष्यं रजसापहम् ॥ १०१॥

भा० (क) विनाम अर्थात् शरीरकी नम्रता वंक्षणानाह अर्थात् वंक्षणों को आकर्षणके मानिन्द पीड़ा। वेग से युक्त हुवा और कार्य न करे वेगोंको बल से न रोके ॥ काम शोक भय क्रोधों को और मनोवेगों को न धारण करें ॥ ९८॥ गुद आदि मलके मार्गों की शुद्धता कान्ति बलको देनेवाली है। और पवित्र को करने वाली कहागया है। अलक्ष्मी कलि पापका नाश करे है ॥ १००॥ हाथ पावों का धोना शुद्धिका कारण कहा है ॥ मल श्रम को दूर करने वाला वृष्य चक्षुष्य अर्थात् चक्षुका हित रजस का नाशक ॥ १०१॥

[दन्तकाष्ठविधिः]

भक्षयेद्दन्त पवनं द्वादशाङ्गुलमायतम् ॥ कनिष्ठिकाग्रवत् स्थूल मृज्व ग्रन्थि तथाऽव्रणम् ॥ १०२॥ एकैकं घर्षयेद्दन्तं मृदुना कूर्चकेण तु ॥ दन्त शोधन चूर्णेन दन्तमांसान्यबाधयन् ॥ १०३॥ क्षौद्र त्रिकटुकाक्तेन तैल सिन्धु भवेन वा ॥ चूर्णेन तेजोवत्याश्च दन्तान्नित्यं विशोधयेत ॥ १०४॥

दंतवन की विधि बारह अंगुलका दतवन भक्षणकरे। कनिष्ठिका के अग्रभाग समान स्थूल सीधा और बे गाँठ का तथा व्रण से रहित ॥ १० ॥ दंत शोधन चूर्ण से दंत मांसों का बाधा न देता हुवा ॥ मृदु कूर्चक से एक २ दांतों को घिसे ॥ १० ॥ शहत त्रिकुटके साथ अथवा तेल सेंधव से। तेजोवती के चूर्ण से दांतों को नित्य विशोधन करे ॥ १० ॥

(क) तेजोवती तेजवल्कल इति लोके प्रसिद्धा ॥

मधूको मधुरे श्रेष्ठः करञ्जः कटुके तथा ॥ निम्ब स्तिक्तके श्रेष्ठः कषाये खदिरस्तथा ॥ १०५ ॥ समयन्तु समालोक्य दोषञ्च प्रकृतिं तथा ॥ यथोचितै रसैर्वीर्य्यै र्युक्तं द्रव्यं प्रयोजयेत् ॥ १०६ ॥ तेनास्य मुखवैरस्य दन्ता जिह्वास्यजा गदाः ॥ रुचिवैशद्य लघुता न भवन्ति भवन्ति च ॥ १०७ ॥ अर्के वीर्य्यं वटे दीप्तिः करञ्जे विजयो भवेत् ॥

भा० (क) तेजोवती अर्थात् तेजकी छाल लोकमें प्रसिद्ध है ॥ मधुर में मधुक श्रेष्ठ है। और कटुक में करंज श्रेष्ठ है ॥ तिक्तक में निम्ब श्रेष्ठहै। तथा कषाय में खैर श्रेष्ठ है ॥ १०५ ॥ समय और दोष प्रकृति कोदेखकर। यथोचित रस वीर्य्य से युक्त द्रव्यको योजना करे ॥ १०६ ॥ उस करके मुखकी विरसता दंत जिव्हा इनमें रोगनहीं होते और स्वच्छता हलकापन ये होते हैं ॥ १०७ ॥ आंक में वीर्य्य वटमें दीप्ति और करंज में विजय होताहै ॥

प्लक्षे चैवार्थ सम्पत्ति र्बदर्य्यां मधुराशनम् ॥ १०८ ॥ खदिरे मुखसौगन्ध्यं बिल्वेतु विपुलं धनम् ॥ उदुम्बरे तु वाक सिद्धि राम्रे त्वारोग्य मेव च ॥ १०९ ॥ कदम्बेतु धृतिर्मेधा चम्पके दृढवाक् श्रुतिः ॥ शिरी

षे कीर्त्ति सौभाग्य मायुरारोग्य मेवच ॥ ११० ॥ अपा मार्गे धृतिर्मेधा प्रज्ञाशक्ति स्तथा पने ॥ दाडिम्यां सुन्दराकारः ककुभे कुटजे तथा ॥ १११ ॥ जाती तगर मन्दारे दुःस्वप्नञ्च विनश्यति ॥ गुलिका ताल हिन्ताले केतकश्च वृहद्वरः ॥ ११२ ॥

भा० पाकर में अर्थ सम्पत्ति बेरमें मधुर भोजन ॥ १०८ ॥ खदिर में मुख की सुगन्धिता बेलमें विपुलधन गूलरमें सिद्धि आममें आरोग्य ॥ १०९ कदम्ब में धृति मेधा चम्पक में दृढ़ वाणी और श्रुति। शिरीष में कीर्ति सौभाग्य तथा आयु आरोग्य भी ॥ ११० ॥ चिर्चिरे में धृतिमेधा प्रज्ञा शक्ति उसीप्रकार पनसमें भी शक्ति ॥ दाडिम में सुन्दर आकार अर्जुन और कुटज में भी उसी प्रकार ॥ १११ ॥ चमेली तगर और पारिजात इनसे दुष्ट स्वप्न का नाश होता है ॥ चिरभिटी ताल हिताल अर्थात् छोटे तालके किसिमका वृक्ष केवड़ा सुपारी ॥ ११२॥

खर्जूरं नारिकेरञ्च सप्तैते तृणराजका : ॥ तृणराज समुत्पन्नं यः कुर्य्याद् दन्तधावनम ॥ ११३॥ नर-श्वाशृगाल योनिः स्याद्यावद्गङ्गां न पश्यति ॥ न खा-देद् गलताल्वोष्ठ जिह्वा दन्त गदेषु नत ॥ ११४ ॥ मुखस्य पाके शोथे च श्वास कास वमीषु च ॥ दु बेलो जीर्ण भुक्तश्च हिक्का मूर्च्छा मदान्वित : ॥ ११५

भा० खर्जूर नारिकेल ये सात तृणराज हैं ॥ इन तृणराजोंका दातवन जो मनुष्य करे ॥ ११३ ॥ वह मनुष्य चांडालयोनि होता है ॥ जबतक गंगा जीका दर्शन न करे ॥ गला तालु होंठ जीभ और दांत इनके रोगो में दातवन न करे ॥ ११४ ॥ मुखके पाक में शोथ में श्वास कास वमन में दुर्बल अजीर्ण

वाला हिचकी मूर्छा और मदकरके युक्त ॥ २१५ ॥

शिरोरुजार्त्तस्तृषितः श्रान्तःपानक्लमान्वितः॥ अर्द्दितः कर्णशूली च नेत्ररोगी नवज्वरी ॥ २१६॥ वर्ज्जयेद्दन्तकाष्ठन्तु हृदामययुतोऽपि च ॥

अजीर्णभुक्तः न जीर्णं भुक्तं यस्य सः ।

जिह्वानिर्लेखनं हैमं रजतं ताम्रजं तथा ॥ पाटितं मृदु तत् काष्ठं मृदु पत्रमयं तथा ॥ २१७॥

भा० शिरकी पीड़ासे पीड़ित प्यासा थका मद्यपान की ग्लानिसे युक्त। अर्द्दित रोगी कर्णशूलवाला नेत्ररोगी नवज्वरवाला ॥ २१६ ॥ दतवन नकरे और हृदयरोगवाला भी नकरे ॥ ॥ अजीर्णभुक्तः अर्थात् जीर्ण नहींहुवा भोजन जिसका वोह ॥ जीभ साफ़ करनेकी वा सोनेकी या चांदीकी अथवा ताम्बेकी ॥ अथवा मृदुकाष्ठ का चीराहुवा अथवा मृदु पत्ता ॥ २१७ ॥

(तत् काष्ठं दन्तशोधनयोग्यं काष्ठम्)

दशाङ्गुलं मृदु स्निग्धं तेन जिह्वां लिखेत् सुखम् ॥ तज्जिह्वा मलवैरस्य दुर्गन्धजड़ताहरम् ॥ २१८॥ गंडूषमपि कुर्व्वीत शीतेन पयसा मुहुः ॥ कफतृष्णा मलहरं मुखान्तः शुद्धिकारकम् ॥ २१९॥ सुखोष्णोदक गराडूषः कफ रुचि मलापहः ॥ दन्तजाड्य हरश्चापि मुखलाघव कारकः ॥ १२०॥

भा० तत् काष्ठ अर्थात् दातवन करनेयोग्य काष्ठ। दश अंगुलका मृदु स्निग्ध उससे सुख पूर्वक जीभको साफ़ करे ॥ वोह जीभका मल विरसता दुर्गन्ध जड़ता इनका नाशक है ॥ २१८॥ शीतजलसे बारंबार कुल्ला भी करे। कफ तृषा मलका नाशक और मुखके भीतर शुद्धिकरनेवाला है ॥ २१९॥ सीले गरम

जलका कुल्ला कफ अरुचि मलका नाशक है ॥ दान्तों के ठरेपन का नाशक और मुखका हलकापन करने वाला है ॥ १२० ॥

विषमूर्च्छा मदार्तानां शोषिणां रक्तपित्तिनाम् ॥ कुपि-
तान्दि मलक्षीणा रूक्षाणां स न शस्यते ॥ १२१ ॥
सुखोष्णोदक गण्डूषः।
मुखप्रक्षालनं शीत पयसा रक्तपित्तजित् ॥ मुखस्य
पीड़िका शोष नीलिकाव्यङ्ग नाशनम् ॥ १२२ ॥ कुर्य्या
द्वापि कटूष्णेन पयसास्य विशोधनम् ॥ कफवातहरं
स्निग्धं मुख शोष विनाशनम् ॥ १२३ ॥

भा० विष मूर्च्छा मदकरके पीड़ित शोषवाले रक्त पित्ती वाले ॥ कुपित नेत्र मल और क्षीण रूखे इनको वोह प्रशस्त नहीं है ॥ १२१ ॥ यह सुखोष्णोदक गण्डूष है। मुखका धोना शीतजल से रक्त पित्त को जीतता है। मुखकी पीडिका शोष नीलिका और व्यङ्ग इनको दूर करने वाला है ॥ १२२ ॥ कटु उष्ण जलसे मुखका शोधन करे। कफ वात का नाशक स्निग्ध मुख शोषका विनाशक है ॥ १२३ ॥

कटुतैलादि नस्यार्थे नित्याभ्यासेन योजयेत् ॥ प्रातः
श्लेष्मणि मध्यान्हे पित्ते सायं समीरणे ॥ १२४ ॥
सुगन्ध वदना स्निग्ध निःस्वना विमलेन्द्रियाः ॥ नि
र्वली पलितव्यङ्गा भवेयुर्नस्य शीलिनः ॥ १२५ ॥
सौवीर मञ्जनं नित्यं हितमक्ष्णो स्ततो भजेत् ॥
(लोचने भवतस्तेन मनोज्ञे सूक्ष्मदर्शने ॥ १२६)

भा० कटुतैलादि नस्यके अर्थ नित्य अभ्यास से योजना करें ॥ प्रातःकाल कफ मध्यान्ह पित्त सायंकाल वात इनमें नस्य योजना करें ॥ १२४ ॥ सुगन्धमुख स्निग्ध निःस्वन स्वच्छ इन्द्रिय ॥ झुर्रियां बाल पकना व्यङ्ग इनसे

वनसे रहित नास लेनेवाले होतेहैं ॥ १२५ ॥ श्वेत सुरमेंका अञ्जन सदा नेत्रोंको हितहै तिस्से सेवन करे ॥ उस्से नेत्र सुन्दर और सूक्ष्म दर्शन होतेहैं ॥ १२६ ॥

(क) सौवीरं श्वेत सुरमा इति लोक प्रसिद्धम् ॥

स्रोतोऽञ्जनं मतं श्रेष्ठं विशुद्धं सिन्धु सम्भवम् ॥ दृष्टेः कण्डू मलहरं दाहक्लेद रुजापहम् ॥ १२७ ॥ अक्ष्णो रूपावहञ्चैव सहते मारुता तपौ ॥ नेत्ररोगा नजायन्ते तस्मा दञ्जनमाचरेत् ॥ १२८ ॥

(ख) स्रोतोऽञ्जनं कृष्णसुरमा इति लोके ॥ विशुद्धं शोधनं विनापि सिन्धु सम्भवम्। सिन्धुनाम पर्वतः तत्र सम्भवम् ॥ रात्रौ जागरितःश्रान्तः छर्दितो भुक्तवां स्तथा ॥

भा० (क) सौवीर अर्थात् श्वेत सुरमा ऐसे लोकमें प्रसिद्ध है। काला सुरमा श्रेष्ठहै। और बिने सुधा पहाड़ी सुरमा प्रशस्त है ॥ दृष्टिकी खाज और मलका नाशक तथा दाह क्लेद पीड़ाकोदूर करने वाला हैं ॥ १२७ ॥ नेत्रोंका रूपावह और मारुत तथा आतपको सहतेहैं ॥ नेत्रमें रोग नहीं होते इसवास्ते अंजनका सेवनकरे ॥ १२८ ॥ (ख) स्रोतोऽञ्जन अर्थात् कालासुरमा ऐसा लोकमें कहते हैं ॥ विशुद्ध अर्थात् शोधनके विनाही सिंधुसम्भव अर्थात् सिंधुनाम पर्वत उसमें हुवा। रातका जागा थका वमन किया हुवा भोजन किया हुवा ॥

ज्वरातुरः शिरःस्नातो नह्यक्षणोरञ्जन माचरेत् ॥ १२९ ॥ पञ्चरात्रा न्नख श्मश्रु केश रोमाणि कर्त्तयेत् ॥ केश श्मश्रु नखादीनां कर्त्तनं सम्प्रसाधनम् ॥ १३० ॥ पौष्टिकं धनमायुष्यं शौचकान्तिकरं परम् ॥ में

भा० ज्वरसे पीड़ित और शिरसे स्नान किया हुवा आंखोंमें सुरमा न डाले ॥ १२९ ॥ पांचवें दिन नख दाढी केश रोम इनको कतरवावे ॥ केश दाढ़ी नख आदियोंका कतरना शोभाको देनेवालाहै ॥ १३० ॥ पौष्टिक और धन आयुके हित तथा

शौच कान्ति को अत्यन्त करने वाला है ॥ सं प्रसाधन अर्थात् शोभा को कार ने वाला ॥ (ग) सम्प्रसाधनम् शोभाजनकम् ॥

उत्पाटयेत्त लोमानि नासायाः न कदाचन ॥ तदु-
त्पाटनतो दृष्टे दौर्बल्यं त्वरया भवेत् ॥ १३१॥ के
शपाशे प्रकुर्व्वीत प्रसाधन्यातु साधनम् ॥ केश
प्रसाधनं केश्यं रजोजन्तु मलापहम् ॥ १३२ ॥

भा० नाक के बाल कभी न उखड़वावे। उसके उखेड़ने से दृष्टि की दुर्बलता शीघ्र होती है ॥ १३१ ॥ सिरके बालों में कंघीसे सफ़ाई करे ॥ केशकी सफ़ाई केश को हित तथा मिट्टी धूल जूवां मैल इनकी नाशक है ॥ १३२ ॥

आदर्शालोकनं प्रोक्तं माङ्गल्यं कान्तिकारकम् ॥
पौष्टिकं बल्यमायुष्यं पापालक्ष्मी विनाशनम् ॥ १३३
लाघवं कर्मसामर्थ्यं विभक्त घन गात्रता ॥ दोषक्ष-
योऽग्निवृद्धिश्च व्यायामादुपजायते ॥ १३४ ॥ व्या-
याम दृढ गात्रस्य व्याधिर्नास्ति कदाचन ॥ विरुद्धं
वा विदग्धं वा भुक्तं शीघ्रं विपच्यते ॥ १३५ ॥

भा० शीशे का देखना शुभ और कान्तिकारक है। पौष्टिक बल के हित आयु के हित तथा पाप और अलक्ष्मी इनका दूर करने वाला है ॥ १३३ ॥ हलकापन कर्म करनेमें सामर्थ्य विभक्त और घन शरीर का होना ॥ दोष क्षय तथा अग्निकी वृद्धि ये सब कसरत करने से होता है ॥ १३४ ॥ व्यायाम से दृढ़ शरीर वाले को व्याधि कभी नहीं होती ॥ विरुद्ध या विदग्ध भोजन किया हुवा सब शीघ्र पच जाता है ॥ १३५ ॥

भवन्ति शीघ्रं नैतस्य देहे शिथिलतादयः ॥ नचै-
नं सहसाक्रम्य जरा समधिरोहति ॥ १३६ ॥ न चा-
स्ति सदृशं तेन किञ्चित् स्थौल्यापकर्षकम् ॥

स सदा गुणमाधत्ते बलिनां स्निग्धभोजिनाम् ॥ १३७॥ वसन्ते शीतसमये सुतरां स हितो मतः ॥ अन्यदापि च कर्त्तव्यो बलार्द्धे न तथा बलम् ॥ १३८ ॥ हृदयस्थो यदा वायुर्वक्त्रं शीघ्रं प्रपद्यते ॥ मुखञ्च शोषं लभते तद् बलार्द्धस्य लक्षणम् ॥ १३९॥ किंवा ललाटे नासाया गात्रसन्धिषु कक्षयोः ॥ यदा सञ्जायते स्वेदो बलार्द्धन्तु तदादिशेत् ॥ १४०॥ भुक्तवान् कृतसम्भोगः कासी श्वासी कृशः क्षयी ॥

भा० इसके शरीर में शिथिलता आदिक शीघ्र नहीं होते ॥ वृद्धावस्था सहसा इसको घेर के नहीं चढती ॥ १३६ ॥ उसके समान [illegible] कुछभी स्थूलता को घटाने वाला नहीं है ॥ वह सदा स्निग्ध भोजन करनेवाले बलवानों को गुण देता है ॥ १३७ ॥ वसन्त और शीत समय में वोह बहुत हित है ॥ और समय में भी आधी कसरत करनी चाहिये ॥ १३८ ॥ जब हृदय में रहनेवाला वायु शीघ्र मुख में प्राप्त होनावे और मुख सूखने लगता है वोह आधी कसरत का लक्षण है ॥ [illegible] के जोड़ बगल इन में पसीना होता है उसको आधी कसरत कहते हैं ॥ १४० ॥ भोजन किया हुवा स्त्री से भोग किया हुवा । खाँसीवाला दमेवाला दुर्बल क्षयवाला ॥

रक्तपित्ती क्षती शोषी न तं कुर्य्यात् कदाचन ॥ १४१॥ अतिव्यायामतः कासो ज्वरः छर्द्दिः श्रमः क्लमः ॥ तृष्णा क्षयः प्रतमको रक्तपित्तञ्च जायते ॥ १४२ ॥ अभ्यङ्गं कारयेन्नित्यं सर्वेष्वङ्गेषु पुष्टिदम् ॥

भा० रक्तपित्ती क्षतवाला शोषरोगवाला उसको कभी न करें ॥ १४१ ॥ बहुत कसरत करने से खाँसी ज्वर वमन श्रम क्लम तथा, क्षय प्रतमक श्वास और रक्तपित्त ये होते हैं ॥ १४२ ॥ सब शरीर में नित्य अभ्यङ्ग करवावे पुष्टि

को देनेवालाहै ॥ थिर काल पांव इनमें उसको विशेष करके करे ॥ १४३ ॥

शिरःश्रवणपादेषु तं विशेषेण शीलयेत् ॥ ४३ ॥ सार्षपं गन्धतैलञ्च यत्तैलं पुष्पवासितम् ॥ अन्यद्रव्ययुतं तैलं नदुष्यति कदाचन ॥ १४४ ॥ गन्धतैलम्। (क) गन्धद्रव्याणाम् गुर्व्वादीनामग्नियोगेन निष्काशितः स्नेहः ॥ ॥ अभ्यङ्गो वातकफहृच्छ्रम शान्ति बलं सुखम् ॥ निद्रावर्णमृदुत्वायुष्करोति देहपुष्टिकृत् ॥ १४५ ॥

भा० सरसोंका तैल गन्धतैल या चमेली आदिका तैल अथवा और द्रव्योंसे युक्त तैल कभी बिगाड़ नहीं करता ॥ १४४ ॥ ॥ गन्धतैल ॥ (क) गुर्वा आदि गन्ध द्रव्योंका अग्नि संयोगसे निकाला हुवा तैल। अभ्यंग वात कफ का दूर करने वाला श्रमको शान्ति करने वाला बल सुखको देनेवाला निद्रा वर्ण मृदुत्व आयु इनको करता है और शरीरको पुष्ट करने वाला है ॥ १४५ ॥

अभ्यङ्गः शीलितो मूर्द्धि सकलेन्द्रियतर्पकः ॥ दृष्टिपुष्टिकरो हन्ति शिरोभूमिगतान् गदान् ॥ १४६ ॥ केशानां बहुतां दार्ढ्यं मृदुतां दीर्घतां तथा ॥ कृष्णतां कुरुते कुर्य्याच्छिरसः पूर्णतामपि ॥ १४७ ॥ न कर्णरोगा न मलं न च मन्या हनुग्रहः ॥ नोच्चैःश्रुतिर्न बाधिर्य्यं स्यान्नित्यं कर्णपूरणात् ॥ १४८ ॥

भा० शिरमें अभ्यङ्ग किया हुवा संपूर्ण इन्द्रियोंका तृप्ति करनेवालाहै। और दृष्टि तथा पुष्टिको करने वाला है। और शिरमें उत्पन्न व्याधियों को नाश करता है ॥ १४६ ॥ केशकी अधिकता दृढता मृदुता तथा दीर्घता। और कृष्णता करता है और शिरको पूर्णताभी करता है ॥ १४७ ॥ नित्य कान में तैल डालने

से कर्णरोग मैल मन्यास्तंभ हनुग्रह । ऊंचेसेसुनना और बहिरापन ये नहींहोते ४८

रसाद्यैः पूरणं कर्णे भोजनात् प्राक् प्रशस्यते ॥ तैला-
द्यैः पूरणं कर्णे भास्करेऽस्तमुपागते ॥ १४९ ॥ पादाभ्य
ङ्गश्च तत् स्थैर्य्यं निद्रादृष्टि प्रसादकृत् ॥ पाद सुप्तिं
श्रमस्तम्भसङ्कोच स्फुटन प्रणुत् ॥ १५० ॥ व्यायाम क्षु-
ण्ण वपुषं पद्भ्यां संमर्दितं तथा ॥ व्याधयो नोप सर्पन्ति
वैनतेय मिवोरगाः ॥ १५१ ॥

भा० रसादिकोंका कानमेंडालना भोजनके पहिले प्रशस्तहै । तैलादिकोंका कानमें डालना सायंकालमें प्रशस्त है ॥१४९॥ पैरोंमें तेलका मलना पैरोंको मज़बूत और दृष्टि का प्रसाद करनेवालाहै ॥ पैरका सो जाना श्रम स्तंभ संकोच और फूटना इनको नाश करताहै ॥ १५० ॥ कसरत से कुटे हुवे और पावोंसे मर्दित ऐसे शरीर के पास व्याधियां नहीं जातीं जैसे सर्प गरुड़ के पास नहीं फटकते ॥ ॥१५१॥ ॥

लोम कूपं शिराजालं धमनीभिः कलेवरे ॥ तर्पयं द्बल
माधत्ते स्नेह युक्तोऽवगाहने ॥ १५२ ॥ अद्भिः संसिक्त मू
लानां तरूणास्पल्लवादयः ॥ वर्द्धन्ते हि तथा नृणां स्ने
हसंसिक्त धातवः ॥ १५३ ॥ नवज्वरी भजीर्णीच नाभ्य
क्तव्यः कथञ्चन ॥ तथा विरिक्तो वान्तश्च निरूढो य-
श्च मानवः ॥ १५४ ॥ (क) निरूढः दत्तो निरूह वस्ति
श्च यस्मैसः ॥ (क) ॥

भा० स्नेह युक्त शरीर के स्नानकरने में धमनियों के द्वारा रोमकूप और शिराजाल तृप्तिको प्राप्त होतेहैं और बलको धारण करतेहैं ॥ १५२ ॥ जैसे वृक्षोंकी जड़ोंको पानीके सींचने से पल्लवादिक बढ़तेहैं ॥ वैसेही मनुष्यों को स्नेह से स-

सिक्त होनेसे धातु बढते हैं ॥ ५३ ॥ नये ज्वर वाला और अजीरण वाला येकभी अभ्यङ्ग भी नकरें ॥ उसी प्रकार विरेच लिया हुवा वमन लिया हुवा और जो निरूढ मनुष्य ये भी नकरें ॥ २५४ ॥ (क) निरूढः । अर्थात । दीहै निरूह वस्ति जिसको वोह ।

पूर्व्वयोः कृच्छ्रता व्याधे रसाध्यत्व मथापिवा ॥
शे षाणां नत्विह प्रोक्ता वह्नि सादादयो गदाः ॥ २५५ ॥
(क) पूर्व्वयोः तरुणज्वरिणोऽजीर्णिनोश्च ॥
उद्वर्त्तनङ्कफ हरं मेदोघ्न शुक्रदम्परम् ॥ बल्यं शोणित कृच्चापि त्वक प्रसाद मृदुत्व कृत् ॥ २५६ ॥
मुखलेपात दृढं चक्षुः पीनो गण्ड स्तथाननम् ॥
कान्तमव्यङ्ग पिडकं भवेत्क मल सन्निभम् ॥ २५७ ॥

भा० तरुण ज्वरी और अजीर्णी इनके व्याधिकी कष्ट साध्यता अथवा असाध्यता होती है ॥ और शेष अग्निमान्द्यादिक रोग यहांपर नहीं कहे हैं ॥ २५५ ॥
(क) पूर्व्वयोः अर्थात तरुण ज्वर और अजीर्ण वालों के ॥
उबटना कफ मेदका नाशक शुक्रको बढाने वाला ॥ और बलको करने वाला रक्तको उत्पन्न करनेवाला तथा त्वचाकी स्वच्छता और मृदुताको करने वाला है ॥ २५६ ॥ मुख लेपसे दृढ नेत्र और मांसल गाल तथा मुख कान्ति युक्त पीटिका और व्यङ्गसे रहित होता है तथा कमलके समान होता है ॥ २५७ ॥

दीपनं वृष्यमायुष्यं स्नान मोजो बल प्रदम् ॥ कण्डू मलश्रमः स्वेद तन्द्रा तृड दाह पाकजुत् ॥ २५८ ॥
वाधै श्च सेकैः शीताद्यैः रुष्णान्तर्याति पीडितः ॥ नरस्य स्नानमात्रस्य दीप्यते तेन पावकः ॥ २५९ ॥ पीतेन पयसा स्नानं रक्तपित्त प्रशान्तिकृत् ॥ तदेवोष्ण-

न तोयेन वस्त्यं वातकफापहम् ॥ २६०॥ शिरः स्नानमचक्षुष्य मत्युष्णेनाम्बुना सदा ॥ वातश्लेष्म प्रकोपेतु हितन्तच्च प्रकीर्त्तितम् ॥ २६१॥ अशीते नाम्भसास्नानं पयः पानञ्चवास्त्रियः ॥ एतद्वो मानवाः। पथ्यं स्निग्ध मल्पञ्च भोजनम् ॥ २६२॥

भा० स्नान दीपन वृष्य आयुके हित ओज और बलका देनेवाला है। और स्नान मैल श्रम पसीना तन्द्रा तथा दाह पाक इनका नाशक है ॥ २५८॥ अथवा बाह्य शीतादिकों के सेकसे पीडित हुवेकी उष्मा भीतर होती है स्नान नाम्न कियेहुवे मनुष्यकी अग्नि उसकरके दीप्त होती है ॥ २५९॥ शीतजलसे स्नान रक्त पित्तका नाशकरनेवाला है। उष्णजलसे दही स्नान बल और वात कफका नाशक है ॥ २६०॥ सदा अति उष्णजल से सिरका न्हाना नेत्रके अहित है। और वही उष्णजल वात कफ के प्रकोप में हित कहा है ॥ २६१॥ गरम जलका न्हाना दूधका पीना जवान औरत ये मनुष्य के हित हैं। और स्निग्ध अल्प भोजन ॥ २६२॥ (हरिश्चन्द्रस्येतत्।)

यः सदामलके स्नानं करोति सविनिश्चितम् ॥ वलीपलित निर्मुक्तो जीवेद वर्ष शतन्नरः ॥ २६३॥ स्नानं ज्वरेऽतिसारेच नेत्र कर्णानिलार्त्तिषु ॥ आध्मान पीनसाजीर्णे भुक्तवत्सु च गर्हितम् ॥ २६४॥ स्नानस्यानन्तरं सम्यग्वस्त्रेणाङ्गस्य मार्ज्जनम् ॥ कान्तिप्रदं शरीरस्य कण्डुत्वग्दोष नाशनम् ॥ २६५॥

भा० [हरिश्चन्द्रका यह है] जो सदा आंवलेके पानीसे स्नान करता है वली अर्थात् झुर्रियाँ सिरके बालका पकना इनसे निर्मुक्त हुवा मनुष्य सौ बरस जीता है ॥ २६३॥ स्नान ज्वरमें अतिसार में नेत्र कर्ण और अनिल इनकी पीड़ा में तथा आध्मान पीनस अजीर्ण और भोजन किये हुवे में निंदित है ॥ २६४॥ स्नान के अनन्तर अच्छीतरह पर वस्त्र से शरीर को पूंछे। शरीर की कान्तीको देनेवाला खाज त्वचा का दोष नाशक है ॥ २६५॥

कौशेयौर्णिक वस्त्रञ्च रक्त वस्त्रन्तथैव च ॥ वात
श्लेष्म हरन्त्तु शीतकाले विधारयेत् ॥ १६६ ॥
(कौशेयं पट्टाम्बरम् टसर वस्त्रञ्च ।
मेध्यं सुशीतम्पित्तघ्नं कषायं वस्त्रमुच्यते ॥ तद्धार
येदुष्ण काले तत्रापि लघु शस्यते ॥ १६७ ॥
कषायङ्कौ कमो इति लोके कषाय रागरक्तं वा ।

भा० रेशमी ऊनी तथा रक्तवस्त्र वात कफ का नाशक होता है ॥ उसको शीत कालमें धारण करे ॥ १६६ ॥ कौशेय पट्टाम्बर टसर वस्त्र भी। मेध्य सुशीत पित्त नाशक कषाय वस्त्र कहा है। उसको गरमी में धारण करे उसमें भी हलका प्रशस्त है ॥ १६७ ॥ कषायं कुकई इति लोकमें। या कषा रंग से रक्त ॥

शुक्लन्तु शुभदं वस्त्रं शीतातप निवारणम् ॥ नचोष्ण
न्नचवा शीतन्तत्तु वर्षासु धारयेत ॥ १६८ ॥ यशस्य
ङ्काम्यमा युष्यं श्रीमदानन्द वर्द्धनम् ॥ त्वचं वशीक
रं रुच्यं नवनिर्मल मम्बरम् ॥ १६९ ॥
(क) काम्यं कामोद्दीपकम् ।
कदापि न जनै: सद्भि:धार्य्यम्मलिन मम्बरम् ॥ तत्तु
कण्डू क्रमिकरं ग्लान्य लक्ष्मी करम्परम् ॥ १७० ॥

भा० शुक्ल वस्त्र शुभद और शीत आतपका निवारण है। न उष्ण न शीत उसको वर्षा में धारण करे ॥ १६८ ॥ यशका करनेवाला काम्य आयुष्य सम्पत्ति आनन्द को बढ़ानेवाला। त्वचा हित वशीकर रुच्य नवीन स्वच्छ वस्त्र होता है ॥ १६९ ॥ (क) काम्यं अर्थात कामोद्दीपक ।
म कभी भी सज्जनों से धारण करने योग्य होता है मलीन वस्त्र ॥ वोह मलीन वस्त्र खाज क्रमिकर और ग्लान अशोभा करनेवाला है ॥ १७० ॥

(अलक्ष्मी अशोभा दारिद्र्यञ्च ।

कुङ्कुमञ्चन्दनञ्चापि कृष्णागुरु च मिश्रितम् ॥ उ
ष्णं वात कफध्वंसि शीत काले तदिष्यते ॥ १७१ ॥ च
न्दनं घनसारेण वलकेन च मिश्रितम् ॥ सुगन्धि
परमं शीत मुष्णकाले प्रशस्यते ॥ १७२ ॥

(घनसारः कर्पूरः, वालं ह्रीवेरम् ।)

चन्दनङ्कुसृणोपेतं मृगनाभिसमायुतम् ॥ नचोष्णं
नचवा शीतं वर्षाकाले तदिष्यते ॥ १७३ ॥

भा॰ अलक्ष्मी अर्थात् अशोभा और दारिद्र भी ॥) केसर चन्दन कृष्णा गरु मिलाहुवा । उष्ण वात कफका नाशक है । शीत कालमें वो प्रशस्त है । ॥ १७१ ॥ चन्दन कपूर सुगंधवाला के साथ मिश्रित । सुगन्धि परम और शी तहै वोह उष्णकालमें प्रशस्त है ॥ १७२ ॥ (गनसार कपूर वाले सुगन्ध वाला ॥) चन्दन केसर करके युक्त और कस्तूरी के सहित । यह न उष्ण न शीतहै इसवास्ते वर्षा कालमें प्रशस्त है ॥ १७३ ॥

(घुसृणङ्कुङ्कुमम् । मृगनाभिः कस्तूरी ।)

अनुलेप स्तृषा मूर्च्छा दुर्गन्ध स्वेद दाह जित् ॥ सौभा
ग्यतेजस्त्वग्वर्ण प्रीत्योजोबल बर्द्धनः ॥ १७४ ॥ स
स्नानानर्ह लोकानामनुलेपोऽपि नो हितः ॥ सुगन्धि
पुष्प पत्राणां धारणङ्कान्ति कारकम् ॥ १७५ ॥ पाप
रक्षो ग्रह हरं कामदं श्रीविवर्द्धनम् ॥ भूषणे भूषये
दङ्गं यथा योग्यं विधानतः ॥ १७६ ॥

भा॰ (घुसृण अर्थात् केसर) मृगनाभि कस्तूरी) इनका अनुलेप तृषा मूर्छा दुर्गन्ध पसीना दाहका जीतनेवाला है । सौभाग्य तेज त्वचाकी कान्ति प्रीति ओज बल इनका बढाने वाला है ॥ १७५ ॥ स्नानके अयोग्य पुरुषोंको येत

अनुलेप भी हित नहीं है ॥ सुगन्धि पुष्प पत्रों का धारण कान्ति कारक है ॥ १७५॥ पाप राक्षस ग्रह इनका हरनेवाला कामका उत्पन्न करने वाला श्री का बढ़ाने वाला है । यथा योग्य विधिसे शरीर को भूषणों से भूषित करे ॥

शुचि सौभाग्य सन्तोष दायकं काञ्चनं स्मृतम् ॥ ग्रह दृष्टि हरम्पुष्टि करं दुःस्वप्न नाशनम् ॥ १७७ ॥ पाप दौर्भाग्य शमनं रत्नाभरण धारणम् ॥ माणिक्यन्तरणेः सुजात्य ममलं मुक्ताफलम् शीतगो । माहेयस्य च विद्रुमो निगदितः सौम्यस्य गारुत्मकम् ॥ देवेज्य स्य च पुष्प रागमसुरा चार्यस्य वज्रं शनेः । नीलन्निर्मलमन्ययोश्च गदिते गोमेद वैडूर्यके ॥ १७८ ॥

भा० सुवर्ण पवित्रता सौभाग्य सन्तोष का देने वाला कहा है । ग्रहों की दृष्टि को हरणे वाला पुष्टिकारक दुःस्वप्न नाशन है ॥ १७७ ॥ रत्नों के भूषणों का धारण पाप दुर्भाग्यता का शमन है ॥ ॥ अच्छी जानका स्वच्छ माणिक सूर्य का • मोती चन्द्रका • मूंगा मंगल का कहा है । बुधका पन्ना । बृहस्पतिका पुखराज • शुक्र का हीरा • शनिका नीलम • राहुका गोमेद । और केतुका वैडूर्य ॥ १७८ ॥

वासः शृङ्गार रत्नानां धारणम्प्रीति वर्द्धनम् ॥ रक्षोघ्न मर्घ्य मोजस्यं सौभाग्यकर मुत्तमम् ॥१८०॥ सततं सिद्धमन्त्रस्य महौषध्या स्तथैवच ॥ रोचना सर्षपादीनां माङ्गल्यानाञ्च धारणम् ॥ १८१ ॥

भा० कपड़ा आभूषण रत्नोंका धारण प्रीति का बढ़ाने वाला है ॥ राक्षसों का नाशक द्रव्य कोदेनेवाला ओजको बढ़ाने वाला और उत्तम सौभाग्यको करनेवाला है ॥ १८० ॥ निरंतर सिद्ध मंत्र का तथा महोषधि का । और

गोरोचन सरसों इत्यादिकोंका और मंगलके करने वालों का धारण ॥ १८१

आयुर्लक्ष्मी करं रक्षोहरं मङ्गलदं शुभम् ॥ हिंसा भय विध्वंसि वशीकरण कारणम् ॥ १८२ ॥ ततो भोजन वेलायां कुर्य्यान्माङ्गल्य दर्शनम् ॥ तस्य प्रदर्शन न्नित्य मायु धर्म्म विवर्द्धनम् ॥ १८३ ॥ लोकेऽस्मिन्मङ्गलान्यष्टौ ब्राह्मणो गौर्हुताशनः ॥ पुष्पस्रक् सर्पिरादित्य आपो राजा तथाष्टमः ॥ १८४ ॥

भा० आयु लक्ष्मीको करनेवाला राक्षसोंका नाशक मंगलको देनेवाला। और शुभहै। तथा व्याघ्रादि हिंसकों का भयनाशक और वशीकरण का हेतुहै ॥ १८२ ॥ उसके अनन्तर भोजनके समय में मांगल्य दर्शनकरे। उसका नित्यदर्शन आयु धर्मका बढानेवाला है ॥ १८३ ॥ लोकमें आठ वस्तु मंगल हैं। ब्राह्मण अग्नि गाय पुष्पमाला घृत सूर्य्य जल राजा ये आठहैं ॥ १८४ ॥

पादुका रोहणङ्कुर्य्यात् पूर्व्वं भोजनतः परम् ॥ पाद रोग हरं वृष्यं चक्षुष्य ञ्चायुषो हितम् ॥ १८५ ॥ शरीरे जायते नित्यं वाञ्छा नृणाञ्चतुर्विधा ॥ बुभुक्षा च पिपासा च सुषुप्सा च रतस्पृहा ॥ १८६ ॥ भोजनेच्छा विघातात्स्यादङ्गमर्दोऽरुचिः श्रमः ॥ तन्द्रा लोचन दौर्व्बल्यं धातुदाहो बलक्षयः ॥ १८७ ॥

भा० भोजन के प्रथम और पश्चात् खडाऊं पर चढे। पाद रोग को हरनेवाला वृष्य और चक्षुष्य तथा आयुके हित ॥ १८५ ॥ नित्य मनुष्यों के शरीर में चार प्रकार की इच्छा होती है ॥ भोजनकी इच्छा प्यासकी इच्छा सोनेकी इच्छा रतेच्छा ॥ १८६ ॥ भोजनकी इच्छाके विघात से अङ्ग मर्द अरुचि श्रम

तन्द्रा नेत्र की दुर्बलता धातु चार बलक्षय होता है॥ १८७॥—

विघातेन पिपासाया शोषः कण्ठास्ययोर्भवेत् ॥श्र
वणस्यावरोधश्च रक्तशोषो हृदि व्यथा ॥१८८॥ निद्रा
विघाततो जृम्भा शिरोलोचन गौरवम् ॥ अङ्गमर्दस्त
था तन्द्रास्या दन्नापाक एवच ॥१८९॥ बुभुक्षितो न
योऽश्नाति तस्याहारेन्धनक्षयात् ॥मन्दो भवति का
याग्नि र्यथाचाग्नि निरिन्धनः ॥ १९०॥ आहारं पच
ति शिखी दोषाना हार वर्जितः ॥

भा० प्यासके विघात से शोष कंठ और मुखका होता है ॥ श्रवण के अव रोध रक्तशोष हृदय में पीड़ा होती है ॥ १८८॥ निद्राके विघात से जंभाई और शिर नेत्र में भारीपन ॥ शरीर का टूटना तथा तन्द्रा अन्नका अपरिपाक भीहोताहै ॥ १८९॥ जो बुभुक्षित भोजन नहीं करता उसके आहाररूपी इन्धन के क्षय से ॥ कायाग्नि मन्द होती है जैसे बेइन्धन अग्नि मन्द होती है ॥ १९०॥ अग्नि आहार को पकाता है। और आहार वर्जितहुवा दोषों को पकाताहै ॥ पचति दोषक्षये च धातून् धातुक्षये च प्रा-

णान् ॥ आहारः प्रीणनः सद्यो बल कृद्देह धारणः॥
स्मृत्यायुः शक्तिवर्णौजः सत्व शोभा विवर्द्धनः ॥१९२
॥ यथोक्त गुण सम्पन्नं नरः सेवेत भोजनम् ॥

भा० तथा दोष के क्षय होने से धातुओंको पकाता है और धातु क्षयहोने में प्राणों को पकाता है ॥ १९१॥ आहार तर्पण और तत्काल बलको करनेवाला शरीर का धारण ॥ स्मृत आयु शक्ति वर्ण ओज सत्व शोभाका बढ़ानेवाला ॥ १९२॥ यथोचित गुण से युक्त भोजन को मनुष्य करें ॥

विचार्य्य दोष कालादीन् कालयो रुभयोरपि ॥१९३॥

(क) उभयोः कालयोः प्रातः सायञ्च । तथाच

सायं प्रातर्मनुष्याणामशनं श्रुतिबोधितम् ॥ नान्तरा भोजनङ्कुर्य्यादग्निहोत्रसमो विधिः ॥ १९४ ॥ प्रातः ।

(ख) प्रातः । प्रथम यामादुपरि द्वितीय यामादर्वाक् तथाच ।

याममध्ये न भोक्तव्यं यामयुग्मं न लङ्घयेत् ॥ याममध्ये रसोत्पत्तिर्य्यामयुग्माद् बलक्षयः ॥ १९५ ॥ अन्यच्च

क्षुत सम्भवति पक्वेषु रसदोषमलेषु च ॥ काले वा यदि वा काले सोऽन्नकाल उदाहृतः ॥ १९६ ॥

भा० प्रातःकाल और सायंकाल में दोषकाल आदिकोंको विचार करके भोजनकरे ॥ १९३ ॥ (क) उभयोः कालयोः अर्थात् सायंकाल और प्रातःकाल वैसे सुबह उत्तम मनुष्योंका भोजन श्रुति द्वारा कहाहुवाहै ॥ और बीच में भोजन नकरे अग्नि होत्रके समान विधिहै ॥ १९४ ॥

(ख) प्रातः अर्थात् प्रथम पहरके ऊपर और दूसरे पहरके पहले उसप्रकार कहाहै ॥ प्रथम प्रहरके बीचमें भोजन नकरना चाहिये । और दूसरे पहर को उलंघन नकरे । अर्थात् दोपहर के बाद भोजन नकरे ॥ प्रहर के बीच में रसकी उत्पत्ति होतीहै । और दूसरे पहर के अनन्तर बलका क्षय होताहै ॥ १९५ ॥ रसदोष मलके पाक होनेमें क्षुधा होतीहै ॥ समयपर अथवा समयके बाहर वोही अन्नकाल कहाहै ॥ १९६ ॥ [रसादीनां पाक ज्ञानमाह]

उद्गार शुद्धिरुत्साहो वेगोत्सर्गो यथोचितः ॥ लघुता क्षुत्पिपासा च जीर्णाहारस्य लक्षणम् ॥ १९७ ॥ स्थानमाह]

आहारन्तु नरः कुर्य्यान्निर्हारमपि सर्वदा ॥ उभाभ्यां लक्ष्म्युपेतः स्यात् प्रकामो हीयते श्रिया ॥ १९८ ॥

निर्हारो मल मूत्रोत्सर्गः । अन्यच्च ।

भा० रसादियों के पाक का ज्ञान कहते हैं । शुद्ध डकार उत्साह मल मूत्र का यथोचित होना ॥ हलकापन क्षुधा प्यास यह आहार जीर्ण होने का लक्षण है ॥१९७॥ मनुष्य एकान्त में भोजन और मल मूत्र का त्याग करे । क्यों कि दोनों से शोभा करके युक्त मनुष्य होता है । और प्रकाश में करने से शोभा से हीन होता है ॥ १९८ ॥ निर्हार: अर्थात् मल मूत्र का त्याग । और भी ।

(क) आहार निर्हार विहार योगाः सदैव सद्भिर्विजने विधेयाः।

[भोजनपात्रमाह ।]

दोषहृद्दृष्टिदं पथ्यं हैमं भोजन भाजनम् ॥ रौप्यं भवति चाक्षुष्यं पित्तहृत् कफवातकृत् ॥ १९९ ॥ कांस्यं बुद्धिप्रदं रुच्यं रक्तपित्त प्रसादनम् ॥ पैत्तलं वातकृद्रूक्ष मुष्णं कृमि कफ प्रणुत् ॥ २०० ॥ आयसे काचपात्रे च भोजनं सिद्धिकारकम् ॥ शोथ पाण्डु हरं वल्यं कामलापहमुत्तमम् ॥ २०१ ॥ शैलेये मृण्मये पात्रे भोजनं श्रीनिवारणम् ॥ दारूद्भवे विशेषेण रुचिदं श्लेष्म कारितु ॥ २०२ ॥

भा० भोजन और मलमूत्र का त्याग और विहार इनका योग विद्वानों ने सदा ही निर्जन स्थानों में विधान किया है ॥ [भोजन के पात्रों को कहते हैं] दोषों का नाशक दृष्टि का देनेवाला और पथ्य सोने का पात्र होता है ॥ चांदी का पात्र नेत्र का हित पित्तनाशक और कफवात को करनेवाला होता है ॥ १९९ ॥ कांसी का बुद्धि को देनेवाला अरुचि रक्त पित्त का प्रसादन होता है । पित्तल वात का करनेवाला रूखा उष्ण और कृमिकफ का नाशक होता है ॥ २०० ॥ लोहे के और काच के में भोजन सिद्धिकारक है । शोथ पांडु को दूर करनेवाला बल्य कामल का नाशक होता है ॥ २०१ ॥ पथ्थर के और मट्टी के पात्र में भोजन श्री निवारण है ॥ लकड़ी के पात्र में विशेष करके रुचि को देनेवाला और कफ कारी होता है २०२ ॥

पात्रं पत्रमयं रुच्यं दीपनं विषपाप नुत ॥ जल पात्रन्तु ताम्रस्य तदभावे मृदो हितम् ॥ २०३ ॥ पवित्रं शीत

लं पात्रं गठितं स्फटिकेन यत् ॥ काचेन रचितन्तद्वत्त
था वैडूर्य्यसम्भवम् ॥ २०४ ॥ भोजनाग्रे सदा पथ्यं
लवणार्द्रक भक्षणम् ॥ अग्निसन्दीपनं रुच्यं जिह्वा
कण्ठ विशोधनम् ॥ २०५ ॥

भा० पत्तेका पात्र रुचिको करनेवाला दीपन विष और पापका नाशक होता है ॥ जलपात्र ताम्बेका हितहै और यह न होतो मिट्टीका हित है ॥ २०३ ॥ स्फटिक से जो गठित पात्रहै वह सदा पवित्र है और शीतलहै ॥ और जो कांच से रचितहै उसीके समान है तथा वैडूर्य्य से उत्पन्न भी वैसाही है ॥ २०४ ॥ भोजन से पहिले अद्रक और नोन का भक्षण सदा पथ्यहै ॥ अग्निका दीपन रुच्य तथा जिव्हा कण्ठका विशोधन है ॥ २०५ ॥

(क) ननु लवणस्य पित्तजनकत्वादार्द्रकस्य कटुकत्वेन
पित्तलत्वाद्बुभुक्षितस्य वृद्धपित्तस्य कथम्प्रथमं लवणार्द्र
क युचितम् । उच्यते । लवणं सैन्धवं ज्ञेयं चन्दनं रक्त चन्दन
मिति वचनाल्लवण मत्र सैन्धवम् तत्त्रिदोषघ्नं । यत आ
ह । गुणग्रन्थे ।

भा० (क) ननु शंका करतेहैं कि लवण को पित्तजनकत्व होने से और अद्रक कटुत्व करके पित्तल होनेसे वृद्धिको प्राप्तहुवे पित्तवाले बुभुक्षितको कैसे प्रथम लवण अद्रक का भक्षण उचितहै ॥ कहतेहैं ॥ लवण सैन्धव और चन्दन रक्त जानना चाहिये इस वचनसे लवण यहां पर सैन्धव है वोह त्रिदोष नाशक है । जैसे कि कहाहै । गुणग्रन्थमें ॥

सैन्धवं लवणं स्वादु दीपनम्पाचनं लघु ॥ स्निग्धं रु
च्यं हिमं वृष्यं सूक्ष्मं नेत्र्यं त्रिदोषहृत् ॥ २०६ ॥

(ख) आर्द्रकन्तु कटुकमपि न पित्तविरोधि मधुरपाकित्वा
त् । यत आह । तत्रैव ॥ आर्द्रिका भेदिनी गुर्व्वी तीक्ष्णो-

ष्णा दीपनी च सा ॥ कटुका मधुरा पाके सूक्ष्मा वात
कफापहा ॥ २०७ ॥ (क) अथ चान्यदपि लवणा सा-
र्द्रकञ्च नात्र पित्त विरोधि संयोग स्वभावात् । संयोगस्व
भावे चैतादृशम् ॥ भोजनस्य पूर्व्वे लवणा र्द्रक भक्षण
बोधक वचन मेव प्रमाणयति ।

भा० सैन्धव लवण स्वादु दीपन पाचन हलका ॥ स्निग्ध रुचिकारक शी
त वृष्य सूक्ष्म नेत्रका हित और त्रिदोष का नाशक है ॥ २०६ ॥
(ख) अद्रक तो कटुक तथा भी पित्तका विरोधी नहीं है मधुर पाक के होने
से । जैसे कि कहा है उसी में ॥ अद्रक सेवन करनेवाला भारी तीक्ष्ण उष्ण
दीपन ॥ कटु और पाकमें मधुर सूक्ष्म वात कफका नाशक होता है ॥
२०७ ॥ (क) अनन्तर औरभी लवण अद्रक यहांपर पित्तका विरोधी नहीं
है । क्यों कि संयोग स्वभाव होनेसे । संयोग स्वभाव तो इस प्रकार कहा है ॥
भोजनका पूर्व लवण अद्रक भक्षण बोधक वचन ही प्रमाण करता है ॥

भोजनादौ दृष्टिदोष विनाशाय ब्रह्मादीन् स्मरेत् । त-
द्यथा अन्नं ब्रह्मा रसो विष्णुर्भोक्ता देवो महेश्वरः ॥
इतिसञ्चिन्त्य भुञ्जानं दृष्टि दोषो न बाधते ॥ अञ्जनीग-
र्भ सम्भूतं कुमारं ब्रह्मचारिणम् ॥ दृष्टि दोष विनाशा-
य हनुमन्तं स्मराम्यहम् ॥ अश्नीयात्तन्मना भूत्वा पूर्व्वं
तु मधुरं रसम् ॥ मध्येऽम्ल लवणौ पश्चात् कटु तिक्त क-
षायकान् । फलान्यादौ समश्नीयात् दाडिमादीनि बुद्धि
मान् । विना मोच फलन्तद्वत् वर्ज्जनीया च कर्कटी ॥ २११ ॥

भा० भोजन के आदिमें दृष्टिदोष विनाशके अर्थ ब्रह्मा दिकों को स्मरण करे ।
जैसे कि अन्न ब्रह्मा विष्णुरस भोक्ता देव महेश्वर ॥ इस प्रकार स्मरण कर
के भोजनकरनेवाले को दृष्टि दोषबाधा नहीं करता ॥ २०८ ॥ अंजनी के गर्भ
में उत्पन्न हुआ कुमार ब्रह्मचारी ऐसे हनुमान को दृष्टिदोषके विनाश के अ

थे हम स्मरण करते हैं ॥ २०९ ॥ तन्मन होके प्रथम मधुर रसको भोजन करे। मध्यमें अम्ल लवण और अन्तमें कटुतिक्त कषायों को भोजनकरे ॥ २१० ॥ दाडिम आदि फलोंको आदिमें बुद्धिवान् भक्षणकरे ॥ केलेके बिना और ककड़ी को भी वैसेही छोड़देवे ॥ २११ ॥

मृणाल विश शालु ककन्देक्षु प्रभृतीनपि ॥ पूर्व्वमेव हि भोज्यानि नतु भुक्ता कदाचन ॥ २१२ ॥ (क) मृणालं पद्म नालं विशम्भिशण्डकम् शालूक कन्द प्रसिद्धम् ।
गुरु पिष्ट मयं द्रव्यं तण्डुलान् पृथुकानपि ॥ न जातु भुक्तवान् खादेन्मात्रां खादे द्बुभुक्षितः ॥ २१३ ॥ घृत-पूर्व्वं समश्नीयात्त कठिनं प्राक् ततो मृदु ॥ अन्ते पुन र्द्रवाशी तु बलात रोगेण मुच्यति ॥ २१४ ॥

भा० कमलकी डंडी और कुमुदादिकों की जड़का कन्द तथा करव प्रभृतियों को भी। प्रथम ही भोजनकरना चाहिये और भोजन करके कभीन भक्षण करना चाहिये ॥ २१२ ॥ (क) मृणाल अर्थात् पद्मनाल विसम्मि सण्ड क शालूककन्द प्रसिद्ध है ॥ भारी पिट्ठीकी चीज़ और चावल चिड़वे इन को भोजन किया हुवा कभीन खावे और बुभुक्षित थोड़ासा खावे ॥ २१३ ॥ प्रथम कठिन घृतके साथ भोजनकरे ॥ उसके बाद मृदु ॥ पुनः अन्तमें पतली वस्तुका भोजन करने वाला होवे ॥ इस प्रकार करने से बलात्कार से रोग करके मुक्त होता है ॥ २१४ ॥

मृणाल विशासालु ककन्देक्षु प्रभृतीनपि ॥ पूर्व्वमेवहि भोज्यानि नतु भुक्ता कदाचन ॥ २१५ ॥
(क) अयमर्थः। प्राक् घृत पूर्व्वं कठिनं समश्नीयात्। यथा काश्यादि वासिनः। (ख) प्रथमं सव्यञ्जनाद्ब

त पूर्व्वां रोटिकाम्भुञ्जन्ते। ततो मृदु ससूपादि मोदनभु
ञ्जन्ते। अन्ते पुनर्द्रवाशी॥ भोजनान्ते दधि तक्र दुग्धादि
भुञ्जन्ते। यद्यत् स्वादुतरन्तद्धि दद्यादुत्तरोत्तरम्॥ भुक्ता
यत् प्रार्थ्यते भूयस्तदुक्तं स्वादु भोजनम्॥ २१६॥

भा० (क) यह अर्थहै कि प्रथम घृतके साथ कठिन वस्तु भक्षण करे। जैसे काशीके रहनेवाले॥ (ख) प्रथम व्यंजन के सहित घृतके साथ रोटीको खाते हैं॥ उसके अनन्तर दालके साथ चावल भोजन करतेहैं। अन्तमें पुनः द्रवाशी होवे॥ अर्थात् भोजनके अन्तमें दही मट्ठा दूध इत्यादि भोजन करतेहैं। जोजो बहुत मीठाहो उसको उत्तरोत्तर भोजन नकरें जो फिरसे चाहे सो स्वादु भोजन कहाहै॥ २१६॥ स्वाद्वन्नस्य गुणमाह।

सौमनस्यं वलम्पुष्टि मुत्साहं वृद्धि मायुषः। स्वादु स-
ञ्जनयत्यन्न मस्वादुच विपर्य्ययम्॥ २१७॥ अत्युष्णा-
न्नं वलं हन्ति शीत शुष्कञ्च दुर्ज्जरम्॥ अति क्लिन्नं
ग्लानिकरं युक्त्ययुक्तं हि भोजनम्॥ २१८॥ अति द्रु-
ताशिताहारे गुणान्दोषान्न विन्दति॥ भोज्यं शीत
महृद्यञ्च स्याद्विलम्बित मश्नुतः॥ २१९॥

भा० स्वादु अन्नके गुण कहते हैं। सौमनस्य वलपुष्टि उत्साह और आयुकी वृद्धि। इनको स्वादु अन्न उत्पन्न करताहै॥ और अस्वादु इसके विपरीतको करताहै॥ २१७॥ अतिउष्ण अन्न वलको नाश करता है। और शीत शुष्क दुर्जर बहुत गलाहुवा ग्लानिको करताहै। तथा युक्ति करके अयुक्त भोजनभी ग्लानि करताहै॥ २१८॥ आहारके अतिशीघ्र भोजन करने में गुण नहीं होता। किन्तु दोष होताहै॥ शीत भोजन अप्रियहोताहै। और देरमें भोजन करनेसे अहृद्य होता है॥ २१९॥ [गुरु त्रिविधन्तन्निवारयन्नाह।]

मन्दानलो नरो द्रव्यं मात्रागुरु विवर्ज्जयेत्॥ स्वभावत
श्च गुरु यत् तथा संस्कारतो गुरुः॥ २२०॥ मात्रागुरु

स्तु मुद्गादिः माषादिः प्रकृतेर्गुरुः ॥ संस्कार गुरु पिष्टान्नं प्रोक्त मित्युप लक्षणम् ॥ २२१ ॥ आहा रं षड् विधञ्चूष्यं पेयं लेह्य न्तथैवच ॥ भोज्य म्भक्ष्यन्तथा चर्व्यं गुरु विद्यात् यथोत्तरम् ॥ २२२ ॥

भा॰ भारी तीन प्रकारका होताहै उसको दूर करके कहते हैं ॥ मन्दाग्नि वाला मनुष्य मात्रा गुरु स्वभावगुरु और संस्कारगुरु ऐसे द्रव्यको तज देवे। जो स्वभावसे भारी है या संस्कार से भारी है ॥ २२० ॥ मात्रा गुरु मूंग इत्यादिक होते हैं। और उड़द इत्यादिक स्वभाव से गुरु होते हैं ॥ तथाच पिट्ठी इत्यादिकी संस्कार गुरु कहाहै यह उपलक्षण है ॥ २२१ ॥ आहार छः प्रकार का होताहै। चूष्य पेय लेह्य ॥ भोज्य तथा भक्ष्य चर्व्य ये उत्तरोत्तर गुरु जाने ॥ २२२ ॥ [चूष्यं इक्षु दाड़िमादि।]

(क) पेयम् पानक शर्करोदकादि लेह्यं रसाला क्वथितादि क्वथिता कढ़ी इति लोके। भोज्यं भक्त सूपादि। भक्ष्यं लड्डुकं मण्डुकादि चर्व्यञ्चिपिटञ्चणकादि स्वभाव गुरु संस्कार गुरुणोः स्वभाव लघुत्वात्भक्ष्यस्य भोजन परिमाणमाह ॥

भा॰ चूष्य ऊख दाड़िमादिक पेय पानक शर्बत इत्यादिक लेह्य रसाला कढ़ी इत्यादिक। क्वथिता अर्थात् कढ़ी। भोज्य दाल चावल। भक्ष्य लड्डु मीठरू इत्यादिक। चर्व्य चिड़वा चना इत्यादिक। स्वभावगुरु और संस्कार गुरु का स्वभाव लघुता से भक्ष्यका भोजन परिमाण कहते हैं ॥ (क) ॥

गुरूणा मर्द्ध सौहित्यं लघूनां तृप्तिरिष्यते।

(ख) अयमर्थः माष पिष्टान्नादिभिरर्द्ध सौहित्यं कर्त्तव्यं मुद्गादिभिः स्वभावादेव लघुभिर्मात्रया तृप्तिःकर्त्तव्ये

त्यर्थः॥ द्रवो द्रवोत्तरश्चापि न मात्रा गुरुरिष्यते॥

(ग) द्रवः पेयादि द्रवोत्तरः तक्राद्यधिक ओदनादिः मात्रातोऽधिकोऽपि मात्रा गुरुर्न मन्तव्यः। पेयस्य सर्व्वतो लघुत्वात्। उक्तञ्च सुश्रुतेन।

(घ) पेयलेह्यादि भक्ष्याणां गुरु विद्यात् यथोत्तरमिति। पेयम्पेयादि। लेह्यं रसालादि। आदिशब्दात् भोज्यमोदन सूपादि। भक्ष्यम्मोदकादिः

द्रव्याढ्य मपि शुष्कन्तु सम्यगेवोपपद्यते॥ विशुष्क मन्न मभ्यस्तं न पाकं साधु गच्छति॥२२३॥

भा० गुरु पदार्थोंकी आधितृप्ति और लघु पदार्थोंकी पूर्णतृप्ति इष्ट है॥ यह अर्थ कहाहै कि उड़द पिट्ठी वगैरेंकी आधि तृप्ति करनी चाहिये॥ स्वभाव से ही हलके मूंग वगैरों की मात्रा करके शरीरकी तृप्ति करनी चाहिये। द्रव अर्थात् द्रवोत्तर भी मात्रागुरु इष्ट नहीं है॥ (ग) द्रव अर्थात् पेयादि द्रवोत्तर अर्थात् खवा दि अधिक ओदनादिक। मात्रासे अधिक को भी मात्रा गुरु नमानना चाहिये। पेयका सर्वतः लघु होने से। कहाहै सुश्रुत ने भी। (घ) पेय लेह्यादिक भक्ष्य पदार्थों को यथोत्तर गुरु जाने॥ पेय अर्थात् पेयादि लेह्य अर्थात् रसालादिक। आदि शब्द से भोज्य चावलदाल इत्यादिक। भक्ष्य मोदकादिक। शुष्क भी द्रव्यसे भराहुवा अच्छी तरह पाक को प्राप्त होताहै॥ और बहुत सूकाहुवा अन्न सेवन किया अच्छे प्रकार पाक को नहीं प्राप्त होता॥ २२३॥

(क) अयमर्थः शुष्कमपि स्रोतोरोधकमपि द्रव्याढ्यं सम्यक् पाकं याति। केवलस्य शुष्कान्नस्य दोषमाह। विशुष्क मन्न मित्यादि। [अपक्वन्तक्किम्भवतीत्यपेक्षायामाह पिण्डीकृतमसंक्लिन्नं विदाह मुपगच्छति॥

[पिण्डीकृतम् । अष्ठीलावदुद्भूतम् ।]

(ख) असंक्लिन्नं न सम्यगार्द्रं । विदाहमुपगच्छति विदग्धं भवतीत्यर्थः । शुष्कादीनां वैगुण्यमाह ।

शुष्कं विरुद्धं विष्टम्भि वन्हिव्यापद् कृद्भवेत् ॥

(ग) शुष्कञ्चिपिटकादि । विरुद्धं क्षीरमत्स्यादि । विष्टम्भि चणकमसूरादि वन्हिमान्द्यकुर्य्यात् ॥

न भुक्त्वा न रदांश्छित्वा न निशायां न वा वहन् ॥ न जलान्तरितानद्भिः सक्तून्नद्यान्न केवलान् ॥२२४॥

पुनर्दानं पृथक्पानं सामिषम्पयसा निशि ॥ दन्तछेदनमुष्णञ्च सप्त सक्तुषु वर्ज्जयेत् ॥ २२५ ॥

भा० यह अर्थहै । कि शुष्क भी स्त्रोत का करने वाला भी गर्धसे भरा हुवा अच्छीतरह पर पाकको प्राप्त होताहै । केवल शुष्क अन्नका दोष कहतेहैं । विशुष्क अन्न इत्यादि । अपक्व वोह अन्न क्या होना है इस अपेक्षामें कहतेहैं ॥ पिंडसाहुवा न गलाहुवा ऐसा अन्न विदाहको प्राप्त होताहै । पिंडीकृत अर्थात् अष्ठीलाके मानिंद उठाहुवा । असंक्लिन्न अर्थात् अच्छे प्रकार जो आर्द्र नहीं । विदाह को प्राप्त होताहै । अर्थात् विदग्ध होनाहै ॥ शुष्कादियों का वैगुण्य कहतेहैं ॥ शुष्क विरुद्ध विष्टंभि ये यथार्थ अग्निमान्द्यको करने वाले होतेहैं ॥ (ग) शुष्क अर्थात् चिड़वा इत्यादिक । (विरुद्ध) दूध मछली इत्यादि । (विष्टम्भि) चना मसूर आदिक । अग्निमान्द्य करतेहैं ॥ न भोजन करके न दांतोंको छीलके न सायंकाल में न वेगोंका धारण करताहुवा । न जल करके व्यवहित सक्तू पानी के साथ केवल न भक्षण करे ॥ २२४ ॥ फिरसे देना खाली पीना मांसके साथ पानी से सायंकाल में दन्तछेदन और गरम ये सात सक्तूमें छोड देवे ॥ २२५ ॥

सुश्रुतः । पाक्तृनाभाशुजीर्णेन मृदुता दव लेहिके ॥

[विषमाशनस्य लक्षणमाह ।]

आलस्य गौरवा टोप शब्दांश्च कुरुतेऽधिकम् ॥ ही-
नमात्रं तनोः कार्श्यं करोति च बलक्षयम् ॥२२६॥
(क) आधिकं अन्नम्। अकाले भुक्तस्य दोषमाह ।
अप्राप्तकाले भुञ्जानो ह्यसमर्थः तनुर्नरः॥ तां
स्तान् व्याधीन वाप्नोति मरणञ्चाधि गच्छति॥२२७॥

भा० सश्रुत ने कहाहै । शीघ्र जीर्ण होनेकरके मृदु होने से सत्तू का अवलेह प्रशस्तहै ॥ विषमाशन का लक्षण कहते हैं ॥ अधिक मात्रा आलस्य भारीपन गुड गुड़ा शब्दों को भी करती है ॥ और हीन मात्रा शरीर की कृशता औरबल क्षय को भी करती है ॥ २२६॥ (क) अधिक अन्न। अकाल में भोजन कियेका दोष कहते हैं ॥ अप्राप्त कालमें भोजन करनेवाला असमर्थ शरीर मनुष्य होता है ॥ उन २ व्याधियों को पाता है। और मरणको भी पहुंच जाता है ॥२२७॥

(ख) अप्राप्तकालः कालादति प्राक् भुञ्जानः असमर्थ शरीरो भवति। तथा सति तां स्तान् व्याधीन् शिरोव्यथा विसूचिकालसक विलम्बिकादीन् प्राप्नोति। तेषामाधिक्ये मरणमपि प्राप्नोतीत्यर्थः ॥

कालेऽतीतेऽन्नतो जन्तो र्वायुनोपहतेऽनले। कृच्छ्रा
द् विपच्यते भुक्तं न स्याद्भोक्तुं पुनः स्पृहा ॥२२८॥

भा० (क) (अप्राप्तकाल) समय से बहुत प्रथम भोजन करनेवाला असमर्थ शरीर होताहै। वैसे होनेसे उन २ व्याधियों को अर्थात् शिरपीड़ा विसूचिका अलसक विलम्बिकादि व्याधियोंको पाताहै ॥ उनके बढ़जाने में मरण को भी प्राप्त होता है ॥ बहुत अवेरमें भोजनकरनेवाले मनुष्यकी वायु से नष्टहुई अग्नि में भोजन कियाहुवा कष्ट से पाक होता है। और फिर से भोजनकी इच्छा नहीं होती ॥ २२८ ॥

कुक्षेर्भागद्वयं भोज्यैस्तृतीयं वारि पूरयेत् ॥ वायोः सञ्चारणार्थाय चतुर्थमवशेषयेत् ॥ २२९ ॥ रसेनान्नस्य रसना प्रथमेनोपतर्पिता ॥ न तथा स्वादुमाप्नोति ततः शोध्याम्बु नान्तरा ॥ २३० ॥ अत्यम्बुपानान्न विपच्यतेऽन्नमनम्बुपानाच्च स एव दोषः ॥ तस्मान्नरो वन्हिविवर्द्धनाय मुहुर्मुहुर्वारि पिवेद्भूरि ॥ २३१ ॥ भुक्तस्यादौ जलम्पीतं कार्श्यं मन्दाग्निदोषकृत् ॥ मध्येऽग्निदीपनं श्रेष्ठमन्ते स्थौल्यकफप्रदम् ॥ २३२ ॥ (अन्यच्च।) समस्थूलकृशाभुक्तमध्यान्तःप्रथमाम्बुपा ।(इति वाग्भटः।)

भा० कूख के दो हिस्से भोज्य पदार्थों से भरे। और तीसरे में पानी भरे। तथा चौथा हिस्सा वायुके आने जानेके वास्ते बाकी छोड़े ॥ २२९ ॥ अन्न के रस से जिव्हा पहले तृप्त कीहुई ॥ वैसी स्वादु नहीं होती तिसे जल करके भीतरसे शोधन करनी चाहिये ॥ २३० ॥ बहुत जलके पान से अन्न परिपाक नहीं होता। और जलके न पीनेसे भी अन्न परिपाक नहिं होता ॥ तिसे मनुष्य अग्निकी वृद्धिके अर्थ बार २ थोड़ा जल पीवे ॥ २३१ ॥ भोजन के पहिले जल पीने से कृशता और मन्दाग्नि दोष होता है ॥ और मध्य मे जल पीनेसे अग्नि दीपन होता है इसवास्ते श्रेष्ठ है ॥ तथा अन्त में स्थूलता और कफकारी होता है ॥ २३२ ॥ औरभी। भोजनके मध्य जल पीनेवाला सम अन्तमें पीनेवाला स्थूल प्रथममें पीनेवाला कृश इसप्रकार

(भुक्तं भोजनं) तृषितस्तु भवेद्गुल्मी क्षुधितस्तु जलोदरी ॥२३३॥ (क) ननु शिष्टा भोजनान्ते दुग्धं पिवन्ति तत्कथमुचितं। यतस्त्रिधा विभक्तस्य भोजनकालस्य प्रथमो भागो वातस्य द्वितीयः पित्तस्य तृतीयः

कफस्य अतएवाह ॥ अश्नीयात् तन्मना भूत्वा पूर्व्वं न्तु मधुरं रसम् ॥ मध्येऽम्ल लवणौ पश्चात् कटु तिक्त कषायकान् ॥२३४॥ [अस्यायमभिप्रायः।]

भा० होतेहैं। ऐसा वाग्भटनेकहाहै ॥ (भुक्त) भोजन। प्यासा भोजन नकरे। और क्षुधितजल न पीवे ॥ तृषितजलके पीनेसे गुल्म रोगवाला होताहै। और क्षुधित जलोदर रोगवाला होताहै ॥ २३३॥ (क) ननु शंका करते है कि शिष्टलोग भोजन के अन्त में दूध पीते है।
सो कैसे उचित हैं। क्योंकि तीन प्रकार विभाग किये हुवे भोजनकाल का प्रथम भाग वातका।
और दूसरा पित्तका तीसरा कफका ॥ इसीवास्ते कहते हैं ॥ स्वस्थ चित्त होकर प्रथम मधुर रस भोजनकरे। बीचमें खट्टा और नोनका भोजन करे। अन्तमें कडुवा तीता कसैला अन्न भोजनकरें ॥ २३४॥
(क) इसका यह अभिप्रायहै ॥

(क) भोजने पूर्व्वं भुक्तो मधुरो रसो बुभुक्षितस्य वातपित्तयोः शमको भवति भोजनमध्ये भुक्तावम्ल लवणौ पित्ताशये च वन्हि वृद्धिं कुरुतः। भोजनान्त समये भुक्ताः कटु तिक्त कषायरसाः कफं शमयन्तीति। अथ भोजनावसान समयस्य कफकालत्वात तत्रकथं श्लेष्म जनकं दुग्धं पातुमुचितम्भवति ॥ यत उक्तम्।

भा० भोजन में खाया हुवा मधुर रस बुभुक्षित के वात पित्त का शमन करताहै। भोजन के बीच में भक्षण किये हुवे अम्ल लवण पित्ताशयमें अग्निकी वृद्धिकरते हैं। भोजन के अन्त समय में भक्षण किये हुवे कटु तिक्त कषाय रस कफको शमन करते हैं ॥ अनन्तर भोजनके अन्तका समय कफका समय होनेसे उसमें कैसे कफको उत्पन्न करनेवाले दुग्धको पीना उचित है॥ ऐसोकि कहा है।

दुग्धं स्वादु रसं स्निग्धं ओजस्य धातु वर्द्धनम् ॥ वात
पित्त हरं वृष्यं श्लेष्म लङ्गुरु शीतलम् ॥ २३५ ॥
इति उच्यते । विदाहीन्य न्नपानानि यानि भुंक्ते हि मान
वः ॥ तद्विदाह प्रशान्त्यर्थं भोजनान्ते पयः पिबेत् ॥
॥ २३६ ॥ [तथाच ब्रह्मपुराणे ।]
कुर्य्यात् क्षीरान्तमाहारं न दध्यन्त कदाचनेति ॥
लवणाम्ल कटूष्णानि विदाहीन्यति यानि तु ॥
तद्दोषं हर्तुमाहारं मधुरेण समापयेत् ॥ २३७ ॥

भा० दुग्ध मधुर रस स्निग्ध ओजको करनेवाला धातु की वृद्धि करनेवा ला ॥ वात पित्तका नाशक वृष्य कफको करने वाला भारी शीतल ये गुण हैं ॥ २३५ ॥ इस प्रकार कहाहै ॥ मनुष्य जो विदाही अन्न पानों को भोजन करता है ॥ उसके दाह शमन के अर्थ भोजन के अन्तमें दुग्ध पीवे ॥ २३६ ॥ उस प्रकार ब्रह्मपुराण मे कहाहै ॥ अन्त में दुग्ध भोजन करे ॥ और अन्त में दही कभी भोजन न करे ॥ लवण अम्ल लवण कटु उष्ण और जो बहु त विदाही है ॥ उसका दोष निकालने के लिये मधुर रस से लरवीर करें । अर्थात अन्त में मधुर भोजन करे ॥ २३७॥

(क) भोजनावसान समये दुग्धादि मधुर भोजने नैव प
ठित: कफो लवणाम्ल कटुभोजन जनित पित्तस्य वृद्धिं वि
नाशयति पित्तवृद्धि विनाशनेन कफस्यापि वृद्धिस्तु क्षी -
णा भवति । क्षीणा कफ वृद्धिरग्नि मान्द्यादीन् व्याधी
नुत्पादयितुं न शक्नोति ॥ (ख) ननु शत्रोर्नाशनेन
शत्रु हन्तुर्वृद्धि दृश्यते ननु क्षीणता तत कथं कफ: क्षीणा

इति। उच्यते। बलवच्छत्रु विनाशनेन शत्रु हन्तुः दृश्य ते। तथाच। नाशनात् प्रत्यनीकस्य स्वयं च क्षीयते यथा॥ वन्हि सन्तप्तलोहस्य नमता नाशयेज्जलम्॥२३८॥

भा० (क) भोजन के अन्त समयमें दुग्धादी मधुर भोजन सेहीं बढ़ा हुवा कफ लवण अम्ल कटु भोजन से उत्पन्न हुवे पित्तकी वृद्धि को नाश करता है। पित्त वृद्धि के विनाश से कफकी भी वृद्धि क्षीण होती है॥क्षीण हुई कफकी वृद्धि अग्नि मान्द्यादि व्याधियों को नहीं उत्पन्नकर सक्ती॥ (ख) ननु शंका करते हैं कि शत्रुके नाशसे शत्रु नाश करनेवाले की वृद्धी दीखती है। न कि क्षीणता त व कैसे कफ क्षीण होता है॥ कहते हैं। बलवान शत्रुके नाशसे शत्रु नाश करने वालेकी क्षीणता दीखती है। उस प्रकार कहा है। शत्रु के नाश से आप क्षीण होता है॥ जैसे आगसे सन्तप्त हुवे लोहको नमता जल नाश करता है २३८॥

(क) ननु भोजनावसान समये भुक्ताः कटु तिक्त कषायाः रसाः कफ शमयिष्यन्ति वातस्य वृद्धिं विधा स्यन्ति इति चेत्त॥ तन्न कट्वादीनां क्षीणशक्तिकत्वात्। [तथा च] यदेकं नाशयेद्दोषं तन्नान्यं वर्द्धयेत् कुतः॥ नाशने ह्येक दोषस्य यतस्तत् क्षीणशक्तिक मिति॥२३९

(ख) वस्तुतो य एव रसः प्राचुर्य्येण भुक्तस्तस्यैव सर्वे रसा वशा भवन्ति॥ [यत आह: सुश्रुतः॥

भा० (क) ननु शंका करते हैं कि भोजनके अखीर के समय में भक्षणकिये हुवे कटु तिक्त कषाय रस कफका शमन करेंगे और वातकी वृद्धि कोभी क रेंगे। सो ठीक नही॥ क्यों कि कटु आदियोंकी क्षीण बल होने से। उस त रह पर कहा है॥ जो एक दोष को नाश करता है वो दूसरे को कैसे नही ब ढ़ाता। क्यों कि एक दोषके नाशमें भी क्षीण बल होता है॥२३९॥

(ख) वस्तुतः जोही रस अधिक करके भक्षण किया गया है उसी के वश

सब रस होतेहैं ॥ (रव) ॥ जैसे कि कहाहै सुश्रुत नें ॥

जग्धाः सर्वेऽपि गच्छन्ति बलिनो वशयतां रसाः॥
यथा प्रकुपिता दोषाः वशं यान्ति वलीयसः॥२४०॥
(वलिनः रसस्य बलीयसः दोषस्य।)
सर्वं भुक्त्वा समाचामेद्रूक्षग्रहणपूर्व्वकम् ॥ भोजने
दन्तलग्नानि निर्हत्याचमनं चरेत् ॥२४१॥ दन्तान्तर
गतं चान्नं शोधनेनाहरेत् शनैः॥ कुर्य्यादनिर्हृतं त
द्धि मुखस्यानिष्टगन्धताम् ॥ २४२॥ दन्तलग्नम
नि हार्य्यं लेपं मन्ये तदन्तवत् ॥

भा० भक्षण किये हुवे सब रस वलिके वश होते हैं ॥ जैसे प्रकोप को प्राप्तहु-वे दोष वलवान् दोषके आधीन होतेहैं ॥२४०॥ (वलिनः) रसका। (वलीयसः) दोष का) ॥ इस प्रकार कहकर रुक्षवस्तुको लेके अंचवे ॥ भोजन में दांतों से लगेहुवे को निकालकर कुल्ले करे ॥ २४१॥ दांतों के भीतर लगेहुवे अन्नको सींकसे धीरे २ निकाले ॥ उसके न निकालने से मुखमें बुरी गन्धहोतीहै ॥ २४२॥ दांतोंपर जमाहुवा — लेपन निकालना चाहिये क्यों कि उसका नाशक हैं ॥

न तत्र वहुशः कुर्य्यात् यत्नं निर्हरणं प्रति ॥ २४३॥
आचम्य जलयुक्ताभ्यां पाणिभ्यां चक्षुषी स्पृशेत् ॥
भुक्त्वा च संस्मरेन्नित्यमगस्त्यादीन् सुखावहान् ॥२४४
विष्णुरात्मा तथा चान्नं परिणामश्च वैयया ॥ सत्ये
न तेन मद्भुक्तं जीर्य्यत्वन्न मिदन्तथा ॥ २४५॥

भा० उसको निकालने के वास्ते बहुत यत्न नकरे ॥ २४३॥ आचमनक

रके जलसे युक्त हातों से नेत्रों को स्पर्शकरे ॥ भोजन करके सुख को देनेवाले अगस्त्य आदियों को नित्य स्मरण करे ॥ २४४॥ जैसे विष्णु आत्मा वैसे ही अन्न परिणाममयी ॥ उस सत्य करके यह मेरा भोजन कियाहुवा अन्न परिपाक हो ॥ २४५॥

अगस्तिरग्निर्बड़वानलश्च भुक्तं ममान्नं ज्वलयत्वशेषम् ॥ सुखञ्च मे तत्परिणामसम्भवम्। यच्छन्त्वरोगं ममचास्तु देहम् ॥ २४६॥ अङ्गारकमगस्तिञ्च पावकं सूर्य्यमश्विनौ ॥ पञ्चैतान् संस्मरेन्नित्यं भुक्तं तस्याशु जीर्य्यति ॥ २४७ ॥ इत्युच्चार्य्य स्वहस्तेन परिमार्ज्य तथोदरम् ॥ अनायासप्रदायीनि। कुर्य्यात् कर्म्माण्यतन्द्रितः ॥ २४८ ॥

भा० अगस्ति अग्नि और बड़वानल भी भोजन कियाहुवा मेरा सम्पूर्ण अन्न भस्मकरो ॥ मुझे उसके परिणाम से उत्पन्नहुवा सुखभी देओ और मेरा देह अरोग रहो ॥ २४६ ॥ मंगल अगस्ति अग्नि सूर्य्य अश्विनीकुमार ॥ इन पांचों को जो नित्य स्मरणकरे उसका भोजन कियाहुवा शीघ्र पचजाताहै ॥ २४७ ॥ इस प्रकार उच्चारण करके अपने हात से उदरका परिमार्जन करके परिश्रम को नदेनेवाले कर्मों को सावधान होके करे ॥ २४८ ॥

(क) अतन्द्रितः निरन्तरं जाग्रत तिष्ठेन्नतु स्वप्यात। भुक्तमात्रस्य तु स्वपाद्धन्त्यग्निं कुपितः कफः इति वचनात्। जीर्णे संवर्द्धते वायुर्विदग्धे पित्तमेधते ॥ भुक्तमात्रे कफश्चापि क्रमोऽयं भोजनोपरि ॥ २४९ ॥

भा० (क) अतन्द्रित अर्थात् निरन्तर जाग्रत होके रहे न कि सोवे ॥ भोजन करके सोनेसे कोपको प्राप्तहुवा कफ अग्निको नाश करता है इस वचनसे। अन्नके पचजानेपर वायु बढ़ता है और विदग्धमें पित्त तथा भोजनकरने मात्रमें कफ येक्रम भोजन के ऊपर होताहै ॥ २४९ ॥

(ख) विदग्धे किञ्चित् पक्के किञ्चिदपक्के। भुक्तमात्रे स ञ्जातस्य कफस्य प्रतीकारमाह।

धूमेनापोह्य हृद्यैर्वा कषाय कटु तिक्तकैः॥ पूग क र्पूर कस्तूरी लवङ्ग सुमनः फलैः॥ २५०॥ फलैः क टुकषायैर्वा मुखवैशद्यकारिभिः॥ ताम्बूलपत्र स- हितैः सुगन्धैर्वा विचक्षणः॥ २५१॥

भा॰ (ख) विदग्ध अर्थात कुछ पका और कुछ कच्चा। भुक्त मात्रमें उत्पन्न हुवे कफकी चिकित्सा कहते हैं। अगुरु आदिके धुवेंसे हृदयके कषाय क टु तिक्त॥ सुपारी कपूर कस्तूरी लवङ्ग जायफल अथवा कटु कषाय मुख को सफा करनेवाले फलोंसे सुगन्ध पानके सहित बुद्धिवान् कफको दूर कर के॥ २५१॥

(क) धूमेन अगुर्वादि धूमेन। अपोह्य कफं दूरीकृत्य कषाय कटुतिक्तकैः फलैः कर्पूर कस्तूरी लवङ्गा दिभिः। पूगैः क्रमुकैः सुमनःफलैः जातीफलैः एला हरीत क्यादि फलैः॥ रती सुप्तोत्थिते स्नाते भुक्ते वान्ते च सङ्ग रे॥ सभायां विदुषां राज्ञां कुर्य्यात्ताम्बूल चर्वणम्॥ ५२ ताम्बूलमुक्तं तीक्ष्णोष्णा रोचनन्तु वरम् सरम्॥ तिक्तं क्षारोषणं काम रक्तपित्त करं लघु॥ २५३॥

भा॰ (क) धूमेन अर्थात् अगुरु आदिकके धूमसे॥ अपोह्य अर्थात् कफ को दूरकरके। कषाय कटु तिक्त फल कपूर कस्तूरी लवंग आदियों से। पूग अर्थात् सुपारी सुमनफल अर्थात् जायफल। इलायची हड़ आदिक के फलसे॥ मैथुनमें सोके उठनेपर स्नानकरनेपर भोजनकरनेपर वमन करनेपर युद्धमें॥ पंडित और राजाकी सभामें ताम्बूलका चर्वण करे॥ ॥२५२॥ ताम्बूल तीक्ष्ण उष्ण रोचन कसैला सर॥ तीखा क्षार कटु और का म रक्तपित्त को करनेवाला लघु॥ २५३॥

वक्त्रं श्लेष्मास्यदौर्गन्ध्यं मल वातश्रमा पहम् ॥ मुख वैशद्य सौगन्ध्य कान्ति सौष्ठव कारकम् ॥ २५४ ॥ हनुदन्तमलध्वंसि जिव्हेन्द्रिय विशोधनम् ॥ मुख प्रसेक शमनं गलामय विनाशनम् ॥ २५५ ॥ नवं तदेव मधुरं कषायानु रसं गुरु ॥ बलासजननं प्रायः पत्रशाक गुणं स्मृतम् ॥ २५६ ॥ वङ्गदेशोद्भवं पर्णं परं कटुरसं सरम् ॥ पाचनं पित्तजनक मुष्णं कफहरं स्मृतम् ॥ २५७ ॥ पर्णं पुराणमकटु खुल्लकन्तनु पांडुरम् ॥ विशेषाद गुणवद्विद्य अन्य हीन गुणं स्मृतम् ॥ २५८ ॥ [ताम्बूलगुणाः।]

भा० वक्त्र कफ मुखकी दुर्गन्धता और मल वात श्रम इनका नाशक ॥ मुख की स्वच्छता और सुगन्धता तथा कान्ति और अच्छापन इनका कारक ॥ २५४ ॥ जबाड़ा और दान्त इनके मलका नाशक तथा जिव्हेन्द्रिय का शोधन ॥ मुखके लारका शमनकरनेवाला तथा गलेके रोगका नाशक । कहाहै ॥ २५५ ॥ वही नया पान मधुर और पीछेसे कषायरस भारी ॥ कफ का उत्पन्न करनेवाला और प्रायः पत्र शाकके समान गुण कहाहै ॥ २५६ ॥ वङ्गला पान अत्यन्त कटुरस और सर ॥ पाचन पित्तका उत्पन्न करनेवाला उष्ण कफका नाशक कहाहै ॥ २५७ ॥ पुराना पान मीठा छोटा पतला सफ़ेद ॥ विशेष करके गुणवाला जानना चाहिये । और दूसरा हीन गुण कहा है ॥ २५८ ॥ [ताम्बूल के गुण कहते हैं।]

पूगं गुरु हिमं रूक्षं कषायं कफ पित्तनुत् ॥ मोहनं दीपनं रुच्य मास्यवैरस्य नाशनम् ॥ २५९ ॥ पूगं स्याद्दृढमध्यं यत् स्विन्नं वापि त्रिदोषनुत् ॥ स रसं गुर्वभिष्यन्दि तद् भृगं वह्निनाशनम् ॥ २६० ॥

खदिरः कफपित्तघ्नश्चूर्णं वात बलासनुत् ॥ संयोग
त स्त्रिदोषघ्नं सौमनस्यं करोति च ॥ २६१॥ मुख वैश
द्य सौगन्ध्य कान्ति सौष्ठ व कारकम् ॥ प्रभाते पूग म
धिकं मध्यान्हे खदिरं तथा ॥ २६२॥ निशासु चूर्णम
धिकं ताम्बूलं भक्षयेत सदा ॥ आयुरग्रे यशो मूले ल
क्ष्मी मध्ये व्यवस्थिता ॥ २६३॥ तस्मादग्रं तथा मूलं
मध्यं पर्णस्य वर्जयेत ॥ पर्णमूले भवेद्व्याधिः पर्णा
ग्रे। पाप सम्भवः ॥ २६४॥

भा॰ सुपारी भारी शीत रूखी कफ पित्तको नाशक ॥ मोहन दीपन रुचिका रक और मुखकी विरसता को नाशक ॥ २५९॥ जो सुपारी कैडी नहीं होती औ र चिकनी होती हैं वोह त्रिदोषनाशक होती है। जो कुछ हरी होती है वोह भारी और अभिष्यन्दी तथा अत्यन्त अग्निनाशक होतीहै ॥ २६०॥ कथ्था कफ पि त्त का नाशक और चूना वात कफका नाशक होताहै ॥ संयोग से त्रिदोष ना शक और अच्छेयनको भी करताहै ॥ २६१॥ मुखकी शुद्धि सुगन्धता का न्ति और सुन्दरताको करने वाला होताहै ॥ प्रातःकाल में सुपारी अधिक औ र मध्यान्ह में कथ्था अधिक ॥ २६२॥ तथा सायंकालमें अधिक चूना इस प्रकार ताम्बूल सदा भक्षणकरै ॥ इसके अग्रभागमें आयु और जडमें यश और बीचमें लक्ष्मी रहेहै ॥ २६३॥ इसवास्ते पानका अग्र और मूल त्यागदेवें ॥ पानके जड़ में रोग होताहै ॥ और पानके अग्रभागमें पापकी उत्पत्ति होती है। ॥ २६४॥

चूर्णं पर्णं हरत्यायुः शिरा शुद्धि विनाशिनी ॥ आद्यं
विषोपमं पीतं द्वितीयं भेदि दुर्जरम् ॥ २६५॥ तृतीया
द्यु पातव्यं सुधातुल्यं रसायनम् ॥

भा॰ चूना और पान आयुको हरताहै और शिरशुद्धि नाशनी है ॥ पहिलाख नेसे विषके समान होताहै। और दूसरा भेदन करनेवाला दुर्जर ॥ २६५॥

तीसरे को मिलाके पीछेसे खाना चाहिये वोह अमृतके समान रसायन होता है ॥

ताम्बूलं नातिसेवेत न विरिक्तो बुभुक्षितः ॥ २६६ ॥
देहदृक् केश दन्ताग्नि श्रोत्र वर्ण बलक्षयः ॥ शोषः
पित्तानिलास्रं स्यादिति ताम्बूल चर्वणात् ॥ २६७ ॥
ताम्बूलं न हितं दन्त दुर्बलेक्षण रोगिणाम् ॥ विष
मूर्छा मदार्त्तानां क्षयिणां रक्तपित्तिनाम् ॥ २६८ ॥
भुक्त्वा शतपदं गच्छेच्छनैस्तेन तु जायते ॥ अङ्गस
ङ्घात शैथिल्यं ग्रीवा जानु कटी मुखम् ॥ २६९ ॥ भुक्तो
पविशस्तन्द्रा शयानस्य तु पुष्टता ॥ आयुश्चं क्रम
माणस्य मृत्युर्धावति धावतः ॥ २७० ॥

भा० विरेचन लियाहुवा और बुभुक्षित ये ताम्बूल को बहुत न सेवन करें ॥ ॥ २६६ ॥ बहुत ताम्बूलके चर्वणसे शरीर दृष्टि केश दन्त अग्नि कर्ण और वर्ण तथा बल इनका क्षय ॥ शोष पित्त और वातरक्त होता है ॥ २६७ ॥ ताम्बूल दन्त दुर्बल नेत्र रोगियोंको ॥ और विष मूर्छा मद करके पीड़ितको तथा क्षय रोगवाला और रक्तपित्ती इनको हित नहीं है ॥ २६८ ॥ भोजन करके धीरे २ सौक़दम चले बहुत चलनेसे शरीरका संघात और गर्दन घुटना कमर तथा मुख इनमें शैथिल्य होताहै ॥ २६९ ॥ भोजन करके बैठने वालेको तन्द्रा और सोनेवाले को पुष्टिता तथा टहलनेवाले को आयु ये प्राप्तहोते हैं। और दौड़ने वाले के पीछे मृत्यु दौड़ता है ॥ २७० ॥

(चंक्रममाणस्य पदशतं शनैर्गच्छतः।)

श्वासानष्टौ समुत्तानस्तान् द्विः पार्श्वे तु दक्षिणे ॥ तत
स्तद्द्विगुणान् वामे पश्चात् स्वप्याद् यथासुखम् ॥
२७१ ॥ वामदिशायामनलो नाभेरूर्द्ध्वेऽस्ति जन्तूनाम् ॥

(क) तस्मात्तु वामपार्श्वे शयीत भुक्तं पयाकार्यम् ।
त्रिदोषशमनी खट्वा तूली वातकफापहा ॥ भूशय्या
बृंहणी वृष्या काष्ठपट्टीतु वातला ॥ २७२॥ [अन्यः पुन
राह] भूशय्या वातलातीव रूक्षा पित्तास्रनाशिनी॥
सुशय्या शयनं हृद्यं पुष्टि निद्रा धृतिप्रदम् ॥ २७३॥
श्रमानिल हरं वृष्यं विपरीत मतोऽन्यथा ॥ सम्वाह
नं मांस रक्त त्वक् प्रसादकरं परम् ॥ २७४॥

भा० चंक्रम माणस्य अर्थात् सौक़दम् धीरे २ चलने वालेका) सीधा सो कर आठ श्वास लेवे और दोनों करवट में उन श्वासो को लेवें ॥ दहिनी करवट सोलह और बायें करवट बत्तीस श्वास लेवे पश्चात् जैसा चाहे वैसा सो रहे ॥ २७१ ॥ प्राणियों के बायें तरफ नाभिके ऊपर अग्निहै ॥
(क) जिस्से बायें करवट से वो भोजन कियाहुवा शीघ्र पाक होनेके अर्थ । तोशक बिछी खाट त्रिदोषको शमन करनेवाली और वात कफ की नाशक है ॥ और ज़मीनकी शय्या बंहण पुष्ट होती है ॥ तथा तख़्तेकी शय्या वातकी करनेवाली होतीहै ॥ २७२॥ दूसरा फिरसे कहते हैं ॥ पृथ्वी की शय्या वातको करनेवाली और बहुत रूक्ष तथा रक्त पित्त को नाश करने वाली है ॥ अच्छी शय्यापर सोना हृद्य पुष्टि निद्रा धैर्य्य इनको देनेवाली है ॥ २७३ श्रम वातका दूर करनेवाला वृष्य होताहै और कुशय्या का सोना इस्से विपरीत होताहै ॥ २७४ ॥

प्रीति निद्राकरं वृष्यं कफ वात श्रमा
पहम् ॥ प्रवात रौक्ष्य वैवर्ण्य स्तम्भकृद्दाह पित्तनुत् ॥
॥ २७५॥ स्वेद मूर्च्छा पिपासाघ्न मप्रवातमतोऽन्य
था । सुखं प्रवातं सेवेत ग्रीष्मे शरदि चान्तरा ॥ २७६॥
निर्वात मायुषे सेव्य मारोग्याय च सर्वदा ॥ पूर्वोऽ
निलो गुरुः सोष्णः स्निग्धः पित्तास्र दूषकः ॥ २७७॥

भा० संवाहन मांस रक्त त्वचा इनकी अत्यन्त प्रसन्नता करनेवाला ॥ २७४॥ प्रीति और निद्राका करने वाला रूक्ष्य कफ वात श्रम इनका नाशक होता है ॥ प्रवात रूक्षता वैवर्ण्य स्तम्भ इन को करनेवाला और दाह पित्तका नाशक होताहै ॥ २७५ ॥ पसीना मूर्च्छा तृषा इनका नाशक है और मन्द वात इससे विपरीत होताहै ॥ ग्रीष्म और शरद में अच्छी तरह पर प्रवात का सेवन करे ॥ २७६ ॥ निर्वात आयुके अर्थ और आरोग्यके अर्थ सर्वदा सेवन करना चाहिये ॥ पूर्वका वायु भारी कुछ गरम स्निग्ध पित्त रक्तका बिगाडनेवाला ॥ २७७ ॥

विदाही वातलः श्रान्ति कफ शोष वतां हितः ॥ स्वादुः पटु रभिष्यन्दी त्वग दोषार्शो विषक्रमीन् ॥ ॥ २७८ ॥ सन्निपातं ज्वरं श्वास मामवातञ्च कोपयेत ॥ (क) (स्वादुर्भक्ष्य द्रव्येषु बाहुल्येन मधुर रस जनकः) दक्षिणः पवनः स्वादुः पित्तरक्तहरो लघुः ॥ वीर्य्येण शीतलो बल्यश्चक्षुष्यो नतु वातलः ॥ २७९ ॥ पश्चिमः पवन स्तीक्ष्णः शोषणो बलहृल्लघुः ॥ मेदः पित्तकफध्वंसी प्रभञ्जन विबर्द्धनः ॥ २८० ॥

भा० विदाही वातल होता है थका व कफ वाले को शोष वाले को हित है ॥ और स्वादु लवण अभिष्यन्दि होता है ॥ त्वचा का दोष बवासीर विष कृमि ॥ २७८ ॥ तथा सन्निपात ज्वर श्वास और आमवातको भी करताहै ॥ (क) (स्वादु अर्थात् खानेके पदार्थों में अधिक करके मधुर रसको उत्पन्न करनेवाला) दक्षिण का वायु स्वादु पित्तरक्तको दूर करनेवाला हलका ॥ वीर्य्य करके शीतल पुष्ट नेत्रका हित होताहै वातल नहीं होता ॥ २७९ ॥ पश्चिम का वायु तीक्ष्ण शोषण बलका हरनेवाला हलका ॥ मेद पित्तकफका नाशक । और वात बढ़ानेवाला होता है ॥ २८० ॥

उत्तरो मारुतः शीतः स्निग्धो दोष प्रकोप कृत ॥ क्ले

दन: प्रकृतिस्थानां बलदो मधुरा मृदु: ॥ २८१ ॥

(दोषप्रकोपकृत् आतुराणाम्।)

आग्नेयो दाहकृद्रूक्षो नैर्ऋतो न विदाहकृत् ॥ वाय

व्यस्तु भवेत्तिक्त: ऐशान कटुक: स्मृत: ॥ २८२ ॥

विष्वग्वायुरनायुष्य: प्राणिनां बहुरोगकृत् ॥ अत

स्तेनैव सेवित: स्यान्न शर्म्मणे ॥ २८३ ॥ व्यज

नस्यानलो दाह स्वेद मूर्च्छा श्रमापह: ॥ तालवृन्त

भवो वात स्त्रिदोषशामको मत: ॥ २८४ ॥

भा॰ उत्तर की वायु शीत स्निग्ध और दोषोंको प्रकोप करनेवाला क्लेदन और प्रकृतिस्थोंको बल देनेवाला मधुर तथा मृदु होताहै ॥ २८१ ॥ (दोषप्रकोप करनेवाला रोगियोंका) अग्निकोणका वायु दाह करनेवाला रूक्ष होता है। और नैऋत वाला विदाह करनेवाला नहीं है। वायुकोणका वायु तीखा होताहै ॥ और ईशान दिशाका कडुवा कहा गयाहै ॥ २८२ ॥ चारोंवायु आयुके अहित और प्राणियोंके बहुत रोग करनेवाली होतीहै ॥ इसवास्ते उसको न सेवन करे ॥ यदि सेवन करेतो कल्याणके अर्थ नहीं होता ॥ २८३ ॥

वंशव्यजनजस्तूष्णो रक्तपित्तप्रकोपण: ॥ चामरो व

स्त्रसम्भूतो मायूरो वेत्रजस्तथा ॥ २८५ ॥ एते दोषजि

तो वाता: स्निग्धा: हृद्या: सुपूजिता: ॥ दिवास्वापं न

कुर्व्वीत यतोऽसौ स्यात् कफावह: ॥ २८६ ॥ ग्रीष्मव

र्ज्येषु कालेषु दिवा स्वप्नो निषिध्यये ॥

भा॰ पंखेकी हवा दाह स्वेद मूर्च्छा और श्रमकी नाशक होती है ॥ ताडके पंखे की हवा त्रिदोष शमक होतीहै ॥ २८४ ॥ बांसके पंखेकी वायु उष्ण रक्त पित्तको प्रकोप करनेवाली होतीहै ॥ चवर की कपडे की मोरछल वेंतके पंखे की ये वायु ॥ २८५ ॥ दोषको जीतनेवाली स्निग्ध हृद्य और श्रेष्ठहै ॥ दिनमें शयन

ग्रीष्म से रहित कालमें दिनका शयन निषेध किया है ॥

उचितो हि दिवास्वप्नो नित्यं येषां शरीरिणाम् ॥ २८७॥
वातादयः प्रकुप्यन्ति तेषामस्वपतां दिवा ॥
व्यायामप्रमदाध्ववाहनरतान् क्लान्तानतीसारिणः
शूलश्वासवतस्तृषापरिगतान् हिक्कामरुत्पीडितान् २८८
क्षीणान् क्षीणकफान् शिशून् मदहतान् वृद्धान् रसाजीर्णिनो । रात्रौ जागरिताव्नरान्निरशनान् कामं दिवा स्वापयेत् ॥ २८९ ॥ दिवा वा यदि वा रात्रौ निद्रासात्मीकृता तु यैः ॥ न तेषां स्वपतां दोषो जाग्रतां चोपजायते ॥ २९० ॥
(स्वपतां दिवा । जाग्रतां रात्रौ ।)

भा० जिन प्राणियोंको नित्य दिनमें सोना उचित है ॥ २८७ ॥ उनको दिनमें न सोनेसे वातादिक प्रकोपको प्राप्त होतेहैं ॥ कसरत स्त्री मार्ग-वाहन इनमें आसक्त श्रमसे पीड़ित अतिसार वाले ॥ शूल श्वासवाले तृषा रोगवाले हिचकी और वातसे पीड़ित ॥ २८८ ॥ क्षीण तथा क्षीण कफ वाले क मदकरके पीड़ित वृद्ध और रसाजीर्णवाले तथा रातमें जागे हुवे लंघनकरने वाले इनको दिनमें अवश्य सुलावे ॥ २८९ ॥ जिन्होंने दिनमें या रातमें सोनेकी आदत की है ॥ उन सोनेवालोंको दोष नहीं होता ॥ और जागने वालोंकोउत्पन्न होता है ॥ २९० ॥ ।(दिनमें सोनेवालोंको और रातमें जागनेवालोंको)

भोजनानन्तरं निद्रा वातं हरति पित्तहृत् ॥ कफं करोति वपुषः पुष्टिं सौख्यन्तनोति हि ॥ २९१ ॥ शयनं पित्तनाशाय वातनाशाय मर्द्दनम् ॥ वमनं कफनाशाय ज्वरनाशाय लङ्घनम् ॥ २९२ ॥ आसीनं घूर्णितं यत्तु

नाभिष्यन्दि न रूक्षणम् ॥ [अपरानप्युदरेऽन्नस्य संस्थापनहेतूनाह ।] शब्दान् स्पर्शांश्च रूपाणि रसान् गन्धान् मनः प्रियान् ॥ भुक्तवानपि सेवेत तेनान्नं साधु तिष्ठति ॥२६३॥ (उदरे इति विशेषः।)

[अन्नस्योदरे स्थितिहेतूनाह ।] शब्दः स्पर्शस्तथा रूपं रसो गन्धो जुगुप्सितः ॥ भुक्तममेध्यनच्चान्नं मतिहास्यंञ्च वामयेत् ॥२६४॥ (अमेध्यत मपवित्रम्।)

[अन्यदपि वर्ज्जनीयमाह ।] शयनं चासनञ्चाति न भुञ्जन् द्रवाधिकम् ॥ नाग्न्यातपौ न प्लवनं न यानं नापि वाहनम् ॥२६५॥ (क) प्लवनं बाहुभ्यां जलप्रतरणं यानंमार्गे चलनम् वाहनमश्वादि ।

भा० भोजनके अनंतर निद्रा वातको हरतीहे । और पित्तकी नाशक है ॥ कफको करतीहै और शरीर को पुष्टि तथा सौख्य को भी करती है ॥ २६१ ॥ पित्तको नाश करनेके अर्थ शयन और वातको नाश करनेके अर्थ मर्द्दन ॥ कफ नाशके अर्थ वमन और ज्वर नाशके अर्थ लंघन हैं ॥ २६२ ॥ बैठना और मर्द्दन न अभिष्यंन्दि है न रूक्ष है ॥ औरभी उदरमें अन्नके संस्थापनका हेतु कहते हैं। मनके प्रिय शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध इनको । भोजन किया हुवा सेवन करे । उस्से अन्न अच्छा रहताहे ॥ २६३॥ उदर में यह शेषहे ॥ उदर में अन्नके न ठहरने के हेतु वों को कहते हें ।] निन्दित शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध ॥ और अपवित्र भोजन किया हुवा अन्न तथा बहुत हसना भी वमन करताहे ॥ २६४॥ (अमेध्यत । अपवित्र) और भी वर्जनीयों को कहते हैं ।] बहुत सोना बहुत बैठना और बहुत पतला इनको न सेवन करें ॥ आग धूपतैरना सवारी और वाहन इनको भी बहुत न सेवन करे ॥ २६५॥ (क) (प्लवन) हाथों से पानी में तैरना । (यानं) मार्ग में चलना । (वाहन) घोडा इत्यादिक ।

व्यायामञ्च व्यवायञ्च धावनं यानमेव च । युद्धं

गीतञ्च पाठञ्च मुहूर्त्तं भुक्तवांस्त्यजेत् ॥ २६६॥

[परिवर्जनार्थं मजीर्णस्य हेतूनाह ।] अत्यम्बु पानाद्वि षमाशनाच्च सन्धारणात् स्वप्नविपर्य्ययाच्च ॥ कालेऽपि सात्म्यं लघु चापि भुक्तमन्नं न पाकं भजते नरस्य ॥ २६७॥

ईर्ष्या भयक्रोधसमन्वितेन लुब्धेन रुग्दैन्य निपीड़ितेन ॥ विद्वेषयुक्ते न च सेव्यमानमन्नं न सम्यक् परिपाकमेति ॥ २६८ ॥ (सन्धारणात् । अधो वातमलमूत्रादीनाम्।)

[अध्यशन लक्षणमाह ।] अजीर्णे भुज्यते यत्तु तदध्यशनमुच्यते ॥ [तन्निवारणमाह ।]

प्रागभुक्ते चानले मन्दे द्विरह्नो न समाचरेत् ॥

भा० कसरत मैथुन दौड़ना सवारी युद्ध गाना पाठ इनको भोजन किया हुवा दो घड़ी न करे ॥ २६६ ॥ त्यागके अर्थ अजीर्णके हेतुवोंको कहते हैं ॥ बहुत पानी पीनेसे विषम भोजनसे वेगोंके धारणकरनेसे सोनेके विपर्य्यय से भी ॥ समयपर सात्म्य हलका भी भोजन किया हुवा अन्न मनुष्यके अच्छी तरहपर पाक नहीं होता ॥ २६७॥ ईर्षा भय क्रोध इन करके युक्त लोभी रोग और दीनता करके पीड़ित ॥ तथा जो विद्वेषकरके सेवन किया गया अन्न अच्छे प्रकार पाक को नहीं प्राप्त होता ॥ २६८ ॥ (संधारण) अधोवात मलमूत्रोंका ।) अध्यशनका लक्षण कहते हैं । अजीर्णमें जो भोजन कियाजाता है उसको अध्यशन कहते हैं ॥ [उसके दूर करने को कहते हैं] प्रातःकाल भोजन करनेमें अजीर्ण होवेतो फिरसे दिनमें दूसरी बार भोजन न करे ॥

(क) अरयायमर्थः प्रातर्भुक्तेऽजीर्णे सति । अहन्येव पुनर्न भुञ्जीत इत्यर्थः । रात्रौ पुनस्तथापि सति भुञ्जीतैव । [यत आह सुश्रुत एव ।] प्रातराशे त्वजीर्णे तु सायमाशे तु दुष्यतीति ॥ पूर्वभुक्ते विदग्धेऽन्ने भुञ्जानो हन्ति

पावकान् ॥ २९९॥ (ख) अस्यत्वयमर्थः। पूर्व्वे भुक्ते रात्रि भुक्ते अन्ने विदग्धे किञ्चित् पक्के किञ्चिदपक्के प्रा तर्भुञ्जानः पावकं हन्तीत्यर्थः। [यत आह] सायमाशे त्वजीर्णेतु प्रातर्भुक्तं विषोपममिति।

भा० (क) इसका यह अर्थहै कि प्रातःकाल। भोजन करने में अजीर्ण हो तो दिनमेंही फिरसे न भोजनकरे। रातमें फिरसेवैसेही होतो भोजन अवश्य करे॥ जैसे कि सुश्रुतनेही कहाहै॥ प्रातःकालके भोजन कियेमें अजीर्णहो तो सायंकाल के भोजन मेंदोष होताहै। पहिले भोजन कियेहुवे विदग्ध अन्नमें भोजन करनेवाला अग्निको नष्ट करताहै॥ २९९॥ (ख) इसका यह अर्थ है कि (पूर्वे भुक्ते) रातके भोजन किये अन्नमें। (विदग्धे) कुछ पके और कुछ कच्चेमें। सवेरे भोजन करनेवाला अग्निको नष्ट करताहै। जैसे कि कहाहै] सायंकाल के भोजन कियेहुवे अजीर्ण मेंप्रातःकालका भोजन किया विष केस मान होताहै॥

[सायमाशाजीर्णे भोजनोपायमाह।]

भवेद्यदि प्रातरजीर्णशङ्का तदाभयां नागर सैन्धवाभ्याम्। विचूर्णितां शीतजलेन भुक्त्वा भुञ्जीत चान्नं मित मन्नकाले॥ ३००॥ आयुःक्षय भयाद्विद्वान्नाह्नि सेवेत कामिनीम्

भा० सायंकालके भोजन कियेहुवे अजीर्णमें भोजनका उपाय कहतेहैं॥ जो प्रातःकालमें अजीर्णकी शंका होतो हड़ सोंठ सैन्धव लवण इनके चूर्ण को शीतल जलसे भक्षण करके भोजनके समयपर थोड़ासा अन्न भोजन करे॥ ॥ ३००॥ आयु क्षयके भयसे विद्वान् दिनमें कामिनी को नहीं भोगकरते॥

अवशो यदि सेवेत तदा ग्रीष्म वसन्तयोः॥ ३०१॥ (अवशः अजितेन्द्रियः॥) आस्यावर्ण कफ स्थौल्य सौकुमार्य्यः सुखप्रदाः॥ अध्वावर्ण कफस्थौल्य सौ

कुमार्य्य विनाशनः ॥ ३०२ ॥ यत्तु चंक्रमणं नाति देह
पीड़ाकरं भवेत् ॥ तदायुर्बलमेधाग्नि प्रद मिन्द्रियबो
धनम् ॥ ३०३ ॥ उष्णीषं कान्तिकृत्केश्यं रजोवात क
फापहम् ॥ लघु तच्छस्यते यस्माद् गुरु पित्तादि रोग
कृत् ॥ ३०४ ॥ उपानद्धारणं नेत्र्यमायुष्यं पादरोगहृत्
॥सुखप्रचार मौजस्यं वृष्यञ्च परिकीर्त्तितम् ॥ ३०५॥

भा॰ यदि अवश अर्थात् जितेन्द्रिय नहो तब ग्रीष्म और वसन्तमें सेवन करे ॥ ३०१ ॥ (अवश) जितेन्द्रिय न होना। बहुत बैठे रहना कफ स्थूलता सुकुमारता और सुख इनको देनेवालाहै ॥ बहुत मार्गका चलना कफस्थूलता और सुकुमारता इनका नाश करने वालाहै ॥ ३०२॥ जो भ्रमण शरीर को बहुत पीड़ा करने वाला नहीं होता ॥ वो भ्रमण आयु बल बुद्धि और अग्निको देने वाला और इन्द्रिय का बोधन है ॥ ३०३ ॥ पगड़ी कान्ती को करनेवाली केशके हित धूलवायु कफ की नाशक है ॥ वोह पगड़ी हलकी अच्छी है क्यों कि भारी पित्त और नेत्र रोगको करनेवाली है ॥ ३०४ ॥ जूतेका पहिरना नेत्रका हित आयुको हित और पांवके रोग का नाशक है ॥ अच्छी सवारी ओजको देनेवाली वृष्यभी कही गई है ॥ ३०५ ॥

पादाभ्यामनुपानड्भ्यां सदा चंक्रमणं नृणाम् ॥ अना
रोग्य मनायुष्य मिन्द्रियघ्न महष्टिदम् ॥ ३०६ ॥ छत्र
स्य धारणं वर्षातपवातरजोऽपहम् ॥ हिमघ्नं हित
मक्ष्णोश्च माङ्गल्यमपि कीर्त्तितम् ॥ ३०७ ॥ सत्वोत्सा
ह वलस्थैर्य्य धैर्य्य तेजो विवर्द्धनम् ॥ अवष्टम्भकर
ञ्चापि भयघ्नं दण्ड धारणम् ॥ ३०८ ॥ ऊर्द्धोच्छाद
न संयुक्ता शिविका सर्ववल्लभा ॥ तस्यामारोहणं
नृणां त्रिदोषशमकं मतम् ॥ ३०९ ॥

भा० मनुष्योंको सर्वदा बिन जूते पैरोंसे घूमना ॥ आरोग्यको न करनेवाला आयु के अहित इन्द्रियका नाशक दृष्टिको न देनेवाला है ॥ ३०६ ॥ छत्रका धारण व र्षा शीत धूप धूर गुबार का नाशक है ॥ शीत नाशक नेत्रका हित और मंगलका रक भी कहा है ॥ ३०७ ॥ सत्व उत्साह बल स्थिरता धैर्य्य और तेजका बढ़ाने वाला है ॥ (अवष्टंभ अर्थात् कुब्जियत को करनेवाला और भयका नाशक दंड का धारण है ॥ ३०८ ॥ ऊपर कपड़े से मंदी हुई पालकी सबके दिल पसन्द होती है । मनुष्यों को उसमें सवार होना विशेष श्रमक कहा है ॥ ३०९ ॥

वातश्लेष्म मदार्त्तानां महिता भ्रम कर्त्तरिः ॥ पित्तानिलकरो हस्ती लक्ष्म्यायुः पुष्टिवर्द्धनः ॥ ३१० ॥ घोटकारोहणं वात पित्ताग्नि श्रम कृन्मलम् ॥ मेदोवर्णकफघ्नञ्च हितं तद्बलिनां परम् ॥ ३११ ॥ आतप स्वेद मूर्च्छास्र पित्त तृष्णाक्लमश्रमान् ॥ दाहं विवर्णतां कुर्य्यादेतान् छाया व्यपोहति ॥ ३१२ ॥ वृष्टिर्वृष्या हिमा बल्या निद्रालस्य विधायिनी ॥ भयावहा मोहकरी कुहेतिः कफवातला ॥ ३१३ ॥ (कुहेतिः कुहेरा इति लोके ।)

भा० नाँव वात कफके रोग से पीड़ितों को अहित और भ्रम करनेवाली होती है ॥ हाथी पित्तवातको करनेवाला और लक्ष्मी तथा आयु पुष्टिको बढ़ानेवाला है ॥ ३१० ॥ घोड़े की सवारी वात पित्त अग्नि और श्रम इनको करनेवाली है ॥ मेद वर्ण और कफकी नाशक है ॥ और वोह बलवानों को परम हित है । ॥ ३११ ॥ धूप पसीना मूर्च्छा रक्त पित्त तथा क्लम श्रम दाह विवर्णता इनको करता है ॥ और इनको छाया नाश करती है ॥ ३१२ ॥ वृष्टि वृष्य शीत बल्य और निद्रा तथा आलस्य को करनेवाली ॥ भया वह मोहको करनेवाला कुहेरा होता है ॥ ३१३ ॥ (कुहेतिः) कुहेरा इतिलोकमें प्रसिद्ध है ॥

अग्निवात कफस्तम्भ शीतवेपथुनाशनः ॥ आमा

भिष्यन्दि शमनो रक्तपित्त प्रकोपसः ॥ ३१४ ॥ सद्यः श्लेष्मकरो धूमो नेत्रयो रहितो भृशम् ॥ शिरोगौरव कृच्चापि वात पित्तञ्च कोपयेत ॥ ३१५ ॥ [अथाचारः] मैत्रीं सद्भिः समं कुर्यात स्नेहं सत्सु तु सर्वथा ॥ संसर्गं साधुभिः कुर्यादसन्सङ्गं परित्यजेत ॥ ३१६ ॥

(क) सत्सु सर्वथा सज्जनेषु मनोवाक्कर्मभिः— ॥

सेवेत देव भूदेव वृद्ध वैद्य नृपातिथीन् ॥ विमुखान्नार्थिनः कुर्य्यान्नाव मन्येत कानपि ॥ ३१७ ॥ गुरूणां सन्निधौ तिष्ठेत् सदैव विनयान्वितः ॥ पाद प्रसारणादीनि तत्र नैव समाचरेत् ॥ ३१८ ॥

भा० गरमवायु कफ अकड़ाव और कंप इनका नाशक है ॥ आम अभिष्यन्द इनका शमन और रक्त पित्तका प्रकोप करनेवाला ॥ ३१४ ॥ धूंवां तत्काल कफको करनेवाला और नेत्रोंको अत्यन्त अहित ॥ शिरके भारीपन को करनेवाला और वात पित्तको भी बिगाड़ता है ॥ ३१५ ॥ अनन्तर आचारको कहते हैं ॥ मित्रता सज्जनोंके साथ करे और प्रीति सत्पुरुषोंमें अवश्य करे । साधुवोंके साथ मेल करे तथा असत् पुरुषोंका संग न करे ॥ ३१६ ॥ (क) सत्सु अर्थात् सज्जनोंमें मनवाणी कर्म से ॥
देव ब्राह्मण वृद्ध वैद्य राजा अतिथि इनकी सेवा करे ॥ भिक्षुकादिकोंको विमुख न करे और अपमान किसीका भी न करे ॥ ३१७ ॥ सर्वदाही विनय करके युक्त गुरूके पास रहे । पैरोंका फैलाना वहांपर बिलकुल न करे ॥ ३१८

अपकार परेऽपि स्या दुपकार परः पुमान् ॥ आत्मवत् सकलान् पश्ये द्वैरिणो दूरतो वसेत् ॥ ३१९ ॥ न किञ्चिदात्मनः शत्रुन्नात्मानं कस्य चिद्रिपुम् ॥ प्रकाशयेन्नापमानं न च निस्नेहतां प्रभोः ॥ ३२० ॥

नात्मानमुदके पश्येन्न मग्नः प्रविशेज्जलम् ॥ तथा नाज्ञान गाम्भीर्य्यं न हिंस्र प्राणिसेवितम् ॥ ३२१ ॥ काले हितं मितं सत्यं सम्वादि मधुरं वदेत् ॥ भुञ्जीत मधुर प्रायं स्निग्धं काले हितं मितम् ॥ ३२२ ॥ न रात्रौ दधि भुञ्जीत न च निर्लवणं तथा ॥ ना मुद्ग सूपमना क्षौद्रं न चाप्य घृत शार्करम् ॥ ३२३ ॥ जनस्याशयमालक्ष्य यो यथा परितुष्यति ॥

भा० बुराई करनेवाले परभी मनुष्य भलाई करता रहे ॥ अपनें सा सबको देखे । और शत्रु से दूर रहे ॥ ३१९ ॥ अपने शत्रु को ज़राभी ज़ाहिर न करे और अपनेको भी किसीका दुशमन ज़ाहिर न करे ॥ तथा अपमान और मालिक की नाराज़गीको भी जाहिर न करे ॥ ३२० ॥ अपनेको जलमें न देखे और जलमें नंगा होके न घुसे । तथा गम्भीरता प्रसिद्ध हैं और हिंसा करने वाले जीवों का पालन न करे । ३२१ परस्पर भाषण करने समयपर हितकम तथा सत्य और मधुर बोलें ॥ समय पर अक्सर मधुर स्निग्ध थोड़ा भोजन करे ॥ ३२२ ॥ रात में दही न भोजन करे और लवणके विनाभी न भोजन करे ॥ और मूंगकी दालके विना और शहत के विना तथा घी चीनी के विना दही न खावें ॥ ३२३ ॥ दूसरे की सेवामें चतुर पुरुष जन का आशय देखकर जो जैसे खुश होवे उसके साथ वैसेही वर्त्ते ॥ ३२४ ॥

त तथैवानुवर्त्तेत पराराधन पण्डितः ॥ ३२४ ॥ नैकः सुखी न सर्वत्र विश्वस्तो न च शङ्कितः ॥ नोद्यमे विरमेत् क्वापि हेलावीषेत फलेन नु ॥ ३२५ ॥ (हेलो फल हेलो । उद्यमे फले धनादौ ।) वेगान न धारये ज्जातु मेनो वेगान्विधारयेत् ॥ न पीडयेदिन्द्रियाणि न चैतानति लालयेत् ॥ ३२६ ॥

भा० अकेला आपही सुखी नहोवे और सबपर विश्वास नकरे तथा सब पर शंका युक्त भी नहोवे ॥ कहीं भी उद्यम में विराम नकरे ॥ और कारण में ईर्षा करे फलमें नकरे ॥ ३२५ ॥ (हेतौ) फलहेतु में । उद्यम फलमें अर्थात् धनादिक में ॥ मलमूत्रादिक चौदह वेगों को कभीभी नधारणकरे । किंतु मनके वेगोंको धारणकरें ॥ इन्द्रियों को बहुत पीड़ा नदेवे । और उनको बहुत प्यार भी नकरे ॥ ३२६ ॥

वर्षातपादिषु च्छत्री दण्डी रात्रौ भयेषु च ॥ सोपानत्कस्तनुं रक्षेत् विचरेद्युगमात्रदृक् ॥ ३२७ ॥

(क) युगमात्रदृक् अग्रतो हस्त चतुष्टयमितां भूमिं पश्यन् ।

नदीन्तरेन्न बाहुभ्यान्नाग्निस्कन्धमभिव्रजेत् ॥ सन्दिग्ध नावं वृक्षञ्च नारोहेद् दुष्टयानकम् ॥ ३२८ ॥

(दुष्टयानं दुष्टगजघोटकादि ।)

नासंवृतमुखं कुर्य्यात् सभायाञ्च विचक्षण ॥ कासं श्वासं तथोद्गारं जृम्भणं क्षवथु तथा ॥ ३२९ ॥ नासिकां न विकुष्णीयान्नासीतोत्कटुकः क्वचित् ॥ नोर्द्ध्वजानुश्चिरन्तिष्ठेन्न नखैर्न लिखेद्भुवम् ॥ ३३० ॥

भा० बरसात और गरमी में छत्र को धारणकरे रातमें तथा भयमें दंड धारणकरे । जूता पहिन के शरीरकी रक्षाकरे ॥ तथा चार हाथ भूमिको आगे देख कर चले ३२७ ॥ (क) युगमात्र दृक । आगे चारहाथ प्रमाण भूमिको देखकर । दो नदियों के बीच में बाहु से न तैरे ॥ जहां आगलगी हो उसके सामने नजावे ॥ दुष्ट सवारी के मानिंद खतरे वाली नाव तथा वृक्षपर न चढ़े ॥ ३२८ ॥ (ख) दुष्ट न अर्थात् दुष्ट घोड़ा हाथी इत्यादिक । पंडित सभामें मुखखोलो न बैठे ॥ खासी सांस डकार जंभाई तथा छींक या थूकना ये भी सभामें नकरे ॥ ३२९ ॥ नाकको नकुरेदे । और कहींभी उकडूं होके नबैठे । घुटनेको ऊपर करके बहुत देरतक नठहरे ॥ तथा भूमिको नखसे नकुरेदे ॥ ३३० ॥

सम्मार्ज्जनी रसो नैव देहे दद्यात् कदाचन । न नखेन तृणं च्छिन्द्यान्नोच्छिष्टो ब्राह्मणं स्पृशेत् ॥ ३३१ ॥ नोपरक्तं नचोद्यन्तं नास्तं वातं दिवाकरम् ॥ सर्वथा न समीक्ष्येत न जले प्रतिविम्बितम् ॥ ३३२ ॥ नैक्षेत सततं सूक्ष्मं दीप्ता मेध्या प्रियाणि च ॥ पौरन्दरं धनु नैव दर्शयेत् कमपि क्वचित् ॥ ३३३ ॥ नेच्छेद् बलवता युद्धं न भारं शिरसा वहेत् ॥ गात्रं न वादयेत् केशान् हस्तेन धुनुयान्न च ॥ ३३४ ॥

भा॰ झाड़ू और धूल को कभीभी शरीरमें न लगावे ॥ नख से तृण को न काटे और जूठा ब्राह्मण को न छुवे ॥ ३३१ ॥ ग्रहण लगे हुवे उदय होते हुवे तथा अस्त होते हुवे सूर्य्यको । कभी न देखे और जलमें प्रतिबिम्ब पड़े हुवे को भी न देखे ॥ ३३२ ॥ निरन्तर सूक्ष्मको न देखे । दीप्त अमेध्य और अप्रिय इनको भी न देखे । कोई भी इन्द्रके धनुष को न देखे ॥ ३३३ ॥ अपने से बलवान के साथ युद्ध करे । और शिरपर बोझा न उठावे । शरीर को न बजावे और केशोंको हाथ से न चाले ॥ ३३४ ॥

न गच्छेत् पूज्ययोर्मध्ये दम्पत्योरन्तरेण च ॥ रिपोरन्नं न भुञ्जीत गणिकान्नमपि क्वचित् ॥ ३३५ ॥ प्रतिभूर्न भवेत् क्वापि न च साक्षी वृथा भवेत् । (प्रतिभूःजामिनः) स्थागीन्न धारयेज्जातु द्यूतं दूरात्परित्यजेत् ॥ ३३६ ॥ (स्थागी थाती ।) विश्वासं नाचरेत् स्त्रीणान्ताःस्वतन्त्रा श्च नाचरेत् ॥ रक्षणीयाः सदा यत्ना द्यौवनेतु विशेषतः ॥ ॥ ३३७ ॥ न भिन्ने शयने सुप्या न्नानेक विवरेऽपि च ॥ नैको देवालये नैव रात्रौ तरुतलेऽपि च ॥ ३३८ ॥

भा० वृक्षोंके बीचमेंसे नजावे। तथा स्त्रीविन्द औरतके वीचमेंसे नजावे। शत्रुका अन्न न भोजनकरे तथा वेश्याका अन्नभी न भोजनकरे॥ ३३५॥ (क) कहींपर भी ज़ामिन नहोवे और झूठी गवाही नदेवे॥ (प्रतिभूः) ज़ामिन। थानीकी कभी न धारणकरे। और जूंवेको दूरसे छोड़ देवे॥) (त्यागी अर्थात् थाती। स्त्रियोंका विश्वास नकरे। और उनको स्वतन्त्र भी नकरे॥ यत्नके साथ सर्वदा रक्षणीय हैं परन्तु यौवनमें विशेष करके रक्षा करनी चाहिये॥ ३३६॥ जूंदे विस्तरे पर नसोवे। और अनेक छेक वाले विस्तर पर भी नसोवे। अकेला देवालय में नजावे। रातमें वृक्ष के नीचेभी अकेला न जावे॥ ३३७॥

सर्वं दिनानि गमयेत् सदाचारः परःसदा॥ नतोरात्रिप्रयुक्तानि कुर्य्यात् कर्म्माणि मानवः॥ ३३८॥ इत्याचारं समासेन भाषितं यः समाचरेत्॥ स विन्दत्यायुरारोग्यं प्रीतिं धर्म्मं धनं यशः॥ ३३९॥

[अथ सन्ध्यायां निषिद्धानि कर्माण्याह।]

एतानि पञ्च कर्म्माणि सन्ध्यायां वर्ज्जयेद्बुधः॥ आहारं मैथुनं निद्रां सम्पाठञ्चैव मध्वनि॥ ३४०॥ भोजनाज्जायते व्याधि मैथुनाद्गर्भवैकृतिम्॥ निद्रायाः निःस्वना पाठादायुर्हानि गतेर्भयम्॥ ३४१॥

भा० इस प्रकार सदाचार पर हुवा दिनोंको निरन्तर गुज़ारे॥ उसके अनन्तर मनुष्य रातमें कहे हुवे कर्म्मोंको करे॥ ३३८॥ इस प्रकार संक्षेप से कहे हुवे आचारको जो करे॥ वोह आयु आरोग्य प्रीति धर्म्म धन और यश इनको पाता है॥ ३३९॥ अनन्तर सायंकालमें जो निषिद्ध कर्म हैं उनको कहते हैं। पण्डित इन पांच कर्म्मोंको सायंकाल में नकरे॥ भोजन मैथुन निद्रा पाठ करना और रास्तेका चलना ये पांच कर्म्म॥ ३४०॥ भोजन से व्याधि उत्पन्न होती है॥ मैथुन [illegible] विगाड़॥ सोनेसे निरुत्साहता पाठ से आयुकीहा[illegible]॥ ३४१॥

[अथ रात्रिचर्य्यामाह।]

ज्योत्स्ना शीता स्मरानन्दप्रदा तृट्पित्तदाहहृत् ॥ ततो हीनगुणः कुर्य्याद्वश्याया योऽनिलकफम् ॥ ३४२ ॥ तमो भयावहं मोहदिग्भ्रोह जनकम्भवेत् ॥ पित्तहृत्कफहृत् कामवर्द्धनं क्लमहृच्च तत् ॥ ३४३ ॥ रात्रौ च भोजनङ्कुर्य्यात् प्रथमप्रहरान्तरे ॥ किञ्चिदूनं समश्नीयात् दुर्ज्जरन्नन्न वर्ज्जयेत् ॥ ३४४ ॥ शरीरे जायते नित्यं देहिनः सुरतस्पृहा ॥

भा० चान्दनी शीत और कामके आनन्दको देनेवालीहै। तथा तृषा दाह पित्त को देने वालीहै ॥ उससे हीन गुण पालाहै वात कफको करता है ॥ ३४२ ॥ अन्धेरा भयको देनेवाला और मोह तथा दिशाभ्रम को करने वाला होता है ॥ दोह पित्तका नाशक कफ को दूर करनेवाला और कामका बढ़ाने वाला तथा विना परिश्रमको थकान को करनेवाला है ॥ ३४३ ॥ रात को पहिले पहरके बीच में भोजन करे। कुछ कम भोजन करें उसमें खराब जलेको छोड़ देवें ॥ ३४४ ॥ मनुष्य के शरीरमें नित्य मैथुन की इच्छा होती है ॥

अव्यवायात्प्रमेहः मेदो वृद्धिः शिथिलता तनोः ॥ ३४५ ॥ बालेति गीयते नारी यावद्वर्षाणि षोडश ॥ ततस्तु तरुणी ज्ञेया द्वात्रिंशद्वत्सरावधि ॥ ३४६ ॥ तदूर्द्ध्वमधिरूढा स्यात् पञ्चाशद्वत्सरावधि ॥ वृद्धा तत्परतो ज्ञेया सुरतोत्सवविवर्ज्जिता ॥ ३४७ ॥

भा० कसरत नकरने से प्रमेह मेदकी वृद्धि शरीर की शिथिलता होती है ॥ ३४५ ॥ सोलह बरस तक स्त्री बाला इस प्रकार कहीजातीहै ॥ उसके ऊपर बत्तीस बरस तक तरुणी जाननी चाहिये ॥ ३४६ ॥ उसके ऊपर पचास बरसतक अधिरूढ़ा अर्थात् अधेड़ होती है ॥ उसके बाद सुरतोत्सव से रहित वृद्धा जाने। ४७

(अधिरूढा (क) प्रौढा।) निदाघशरदो बाला हिता विषयिणां मता ॥ तरुणी शीतसमये प्रौढा वर्षावसन्तयोः ॥ ३४८ ॥ नित्यम्बाला सेव्यमाना नित्यं वर्द्धयते बलम् ॥ तरुणी ह्रासयेच्छक्तिं प्रौढोद्भावयते जराम् ॥ ३४९ ॥ सद्यो मांसन्नवन्चान्नं बाला स्त्री क्षीरभोजनम् ॥ घृतमुष्णोदके स्नानं सद्यः प्राणकराणि षट् ॥ ३५० ॥

भा॰ (अधिरूढा) प्रौढा। ग्रीष्म और शरदमें अय्याशों को बाला हित कही है ॥ शीतकालमें तरुणी और वर्षा वसन्त में प्रौढा प्रशस्त है ॥ ३४८॥ नित्य सेवन कीहुई बाला प्रतिदिन बल को बढ़ाती है। तरुणी शक्तिको घटातीहै ॥ और प्रौढा वृद्धावस्था को उत्पन्न करती है ॥ ३४९ ॥ तत्कालका मांस नवीन अन्न बाला स्त्री दुग्धभोजन घृत उष्णोदक में स्नान ये छः तत्काल बलकी करने वाले हैं ॥ ३५० ॥

पूति मांसं स्त्रियो वृद्धा बालार्कस्तरुणं दधि ॥ प्रभाते मैथुनं निद्रा सद्यः प्राण हराणि षट् ॥ ३५१ ॥ (क) प्राण शब्दोऽत्र बलवाचकः बालार्कः कन्यार्कः।)

वृद्धोऽपि तरुणीं गत्वा तरुणत्व मवाप्नुयात् ॥ वयोऽधिकां स्त्रियङ्गत्वा तरुणः स्थविरायते ॥ ३५२ ॥ आयुष्मन्तो मन्दजरा वपुर्वर्ण बलान्विताः ॥ स्थिरोपचित मांसाश्च भवन्ति स्त्रीषु संयताः ॥ ३५३ ॥

भा॰ सड़ा मांस वृद्धास्त्री कन्याका सूर्य्य तरतका जमाया दही प्रातः काल में मैथुन और निद्रा ये छः तत्कालबलको हरने वाले हैं ॥ ३५१ ॥ (क) प्राण शब्द यहांपर बलवाचक है। (बालार्क) कन्या का सूर्य्य ॥

भा० वृद्धभी तरुणी के साथ भोग करने से तरुणता को प्राप्त होता है ॥ और तरुण पुरुष अपने से वयमें अधिक स्त्रीके साथ भोग करने में वृद्ध होताह ॥ ३५२ ॥ स्त्री से रुके ऊवे पुरुष आयुवाले अल्पवृद्धता युक्त शरीर की कान्ति और बल करके युक्त । कठिन और बढ़े ऊवे मांसवाले होते हैं ॥ ३५३ ॥

सेवेत कामतः कामं बला द्वाजीकृतो हिमे ॥ भक्ता
मन्तु निषेवेन मैथुनं शिशिरागमे ॥ ३५४ ॥ त्र्यंहा
द्वसन्त शरदोः पक्षात् वृष्टि निदाघयोः ॥ सुश्रुतस्तु
त्रिभिस्त्रिभिरहोभिर्हि समेयात्प्रमदान्नरः ॥ सर्व्वे
ष्वृतुषु घर्म्मेषु पक्षात्पक्षाद्व्रजेद्बुधः ॥ ३५५ ॥
(क) (समेयात् सङ्गच्छेत् घर्म्मे ग्रीष्मे।)
शीते रात्रौ दिवा ग्रीष्मे वसन्तेतु दिवानिशि ॥ वर्षा
सु वारिदध्वाने शरत्सु स्वरसः स्मरः ॥ ३५६ ॥

भा० शीत में वाजीकरण की औषधि किया ऊवा इच्छासे बलके साथ मैथुन करे । और शिशिर ऋतु में बऊत मैथुन करे ॥ ३५४ ॥ वसन्त और शरद में तीसरे दिन संभोग करे । तथा वर्षा और ग्रीष्म में पन्द्रहवें दिन मैथुन करे ॥ (सुश्रुत ने कहा है ।) सब ऋतुवों में पुरुष तीसरे २ दिन स्त्री के पास जावे ॥ और ग्रीष्म में पन्धरह २ दिनमें चतुर पुरुष स्त्री के पास जावे ॥ ३५५ (क) (समेयात्) सङ्ग करे । (घर्म्मे । ग्रीष्म में) शीत ऋतु में रात को ग्रीष्म में दिन को और वसन्त में दिन तथा रात को ॥ वर्षा ऋतु में मेघके गरजने पर और शरद में स्वरसमें काम होता है ॥ ३५६ ॥

उपेयात् पुरुषो नारीं सन्ध्ययो र्नेच पर्व्वसु ॥ गोस
र्गे चार्द्ध रात्रे च तथा मध्य दिनेऽपि च ॥ ३५७ ॥ विहा
रम्भार्थया कुर्य्याद्देशेऽनि शय संवृते ॥ नर्म्मे श्रा

व्याङ्गनागाने सुगन्धे सुखमारुते ॥ देशे गुरु जनाम
मे विक्ततेऽतिव्यपाकरे ॥ ३५८ ॥ श्रूयमाणे व्यथाहे
तु वचने न रमेत ना: ॥ स्नातश्चन्दन लिप्ताङ्ग: सु
गन्ध: सुमनोऽन्वित: ॥ ३५९ ॥

भा० पुरुष स्त्रीके पास प्रातःकाल और सायंकाल की सन्धित पर्वमें न जावे ॥ रातके पिछले पहरमें आधी रात में तथा दोपहर दिनके मध्यमें ॥ ५७ ॥ स्त्री के साथ विहार बहुत बन्द जगह में करे ॥ मनोहर सुनने के योग्य अङ्गना के गान में सुगन्ध अच्छे वायु में ॥ गुरुजन के पास खुले ऊंचे बहुत शरम की जगह में ॥ ३५८ ॥ व्यथा के करने वाले वचनों के सुनने में पुरुष न रमण करे ॥ स्नान किया चन्दन शरीर में लगाये हुवा सुगन्ध पुष्पों करके युक्त ॥ ३५९ ॥ भुक्तवृष्य: सुवसन: सुवेष: समलङ्कृत: ॥

ताम्बूल वदन: पत्न्या मनुरक्तो धिक: स्मर: ॥ ३६० ॥
पुत्रार्थी पुरुषो नारी मुपेयाच्छयने शुभे ॥ अत्याशि
तोऽधृति: क्षुद्वान् सव्यथाङ्ग: पिपासित: ॥ ३६१ ॥
बालो वृद्धोऽन्य वेगार्त्तस्त्यजे द्रोगी च मैथुनम् ॥
(क) (रोगी मैथुन सम्बर्द्धनीय रोग युक्त: ॥)
भार्य्यां रूप गुणोपेतां तुल्य शीलां कुलोद्भवाम् ॥ अ
भिकामोऽभिकामान्तु हृष्टो हृष्टामलङ्कृताम् ॥ ३६२ ॥

भा० दुग्धादि पदार्थों को भोजन किया हुवा अच्छे वस्त्र पहिरे हुवा अच्छे लिवास वाला आभूषणों से युक्त ॥ पान खाये हुवा पत्नी में बहुत प्रीति वाला अधिक कामयुक्त ॥ ३६० ॥ ऐसा पुत्रार्थी पुरुष अच्छे शयन पर स्त्री के साथ सो रहे ॥ बहुत भोजन किया हुवा अधीरज वाला क्षुधित शरीर में पीड़ा वाला प्यासा ॥ ३६१ ॥ बालक वृद्ध और मलादि वेगों से पीड़ित और रोगी ये मैथुन न करें ॥ (रोगी) मैथुन को बढ़ाने वाले रोग से युक्त ॥ रूप गुणों से युक्त सुशील अच्छे कुल में उत्पन्न हुई ॥ प्रीति वाली हर्षयुक्त

ऐसी स्त्री को वाजीकरण औषधियों से वृंहित अधिक कामदेववाला हर्ष युक्त पुरुष युक्ति के साथ भोग करे ॥ ३६२॥

सेवेत प्रमदां युक्त्या वाजी करण वृंहितः ॥ रजस्वला मकामाञ्च मलिना मप्रियान्तथा ॥ ३६३॥ वर्ण वृद्धां वयोवृद्धां तथा व्याधि प्रपीड़िताम् ॥ हीनाङ्गीं गर्भिणीं द्वेष्यां योगि रोग समन्विताम् ॥ ३६४॥ सगोत्राङ्गु रुप त्नीञ्च तथा प्रव्रजितामपि ॥ नाभिगच्छेत्पुमान्नारीं भूरि वैगुण्य शङ्कया ॥ ३६५॥ रजस्वलाङ्गत वतो नरस्या संयतात्मनः ॥ दृष्टरायु स्तेजसां हानि रधर्मश्च ततो भवेत ॥ ३६६॥ लिङ्गिनीं गुरुपत्नीञ्च सगोत्रां सण पर्व्वसु ॥ वृद्धाञ्च सन्ध्ययोश्चापि गच्छतो जीवन क्षयः ॥ ३६७॥ (क) (लिङ्गिनीं। प्रव्रजिताम्।)

भा० कपड़ों से बैठी हुई जिसका कामदेव न जागा हो मलीन अप्रिय ॥ ३६३॥ जात में बड़ी उमर में बड़ी तथा व्याधिसे पीड़ित ॥ हीन अंगवाली गर्भिणी कर्कशा योनि रोगसे युक्त ॥ ३६४॥ सगोत्रा और गुरुकी स्त्री तथा फकीरन के पासभी बहुत विकार की शंका हो तो पुरुष स्त्री के पास न जावे ॥ ३६५॥ रजस्वला के पास सोनेवाले अजितेन्द्रिय पुरुषकी दृष्टि और आयु तथा तेज की हानि होती है। और उससे अधर्म्मभी होता है ॥ ३६६ ॥ ब्रह्मचर्य्य को धारण करनेवाली और गुरु की स्त्री तथा अपने गोत की और वृद्धा इनके साथ भोग करने से और पर्व्वों में मैथुन करने में। अथवा सायं प्रात संध्यामें मैथुन करनेसे आयु का क्षय होता है ॥ ३६७॥ (क) तपस्विनी)

गर्भिण्यां गर्भपीड़ा स्या द्व्याधितायां बलक्षयः ॥ हीनाङ्गीं मलिनां द्वेष्यां क्षामाम्वन्ध्या मसंवृते ॥ ३६८॥ द्वेषो ऽभि

गच्छतो रेतः क्षीणं ग्लानं मनो भवेत् ॥

(क) गर्भिणीं गर्भवास दिवसात् द्वितीये मासि गर्भस्थिते र निश्चिते यथोक्तनक्षत्रादि लाभाभावे वा तृतीये मासि पुंसवने कृते नाभिगच्छेत् ॥

भा० गर्भणी के साथ सोनेसे गर्भमें पीड़ा होतीहै और रोगवाली के पास सोने से बलका क्षय होताहै ॥ हीन अंगवाली मैली द्वेष करनेवाली दुर्बल बांझ इनके पास सोनेवाले का और बेपड़देकी जगह सोनेवालेका शुक्र क्षीण होता है ॥ ३६८ ॥ तथा मनभी ग्लानियुक्त होता है ॥ (क) गर्भरहे हुवे दिनसे दूसरे महीने में गर्भ रहनेका निश्चय नहोनेमें अथवा यथोक्त नक्षत्रादिकोंकेन मिलने में तीसरे महीनेमें पुंसवन करनेपर न सोवे ॥

[यथा पुंसवनानन्तरमाह व्यासः।]

नंनस्त्यजेन्नदीतीरं देवखातोदकं तथा ॥ भर्त्तुः शय्यां मृतापत्यां तथैवामिष भोजनम् ॥ ३६९ ॥ [अन्यच्च] आमिषस्याशनं यत्नात्प्रमदा परिवर्जयेत् ॥ देवाराम नदीयानं प्रयोगं पुरुषस्य चेति ॥ ३७० ॥ क्षुधितः क्षुब्ध चित्तश्च मध्यान्हे तृषितोऽबलः ॥ स्थितस्य हानिं शुक्रस्य वायोः कोपश्च विन्दति ॥ ३७१ ॥

भा० जैसे कि पुंसवनके अनन्तर कहाहै व्यासने ॥ पुंसवनके अनन्तर नदी का किनारा देवता तथा गढ़े का पानी पतिकी शय्या जिसके बच्चे होके मरते होंवो स्त्री तथा मांस भोजन इनको त्यागदेवे ॥ ३६९ ॥ औरभी । मांसका भोजन। देवस्थान बाग़ नौका और मैथुन इनको गर्भवती स्त्री यत्न पूर्वक छोड़देवे ॥ ३७० ॥ मध्यान्ह में क्षुधित प्यासा क्षोभको प्राप्तहुवे चित्तवाला दुर्बल ये स्थित शुक्रकी हानि और वायु के कोपको मानेहैं ॥ ३७१

व्याधितस्य रुजा क्लीबं मूर्च्छा मृत्युश्च जायते ॥ प्रत्यूषे

चार्द्धे रात्रे च वातपित्ते प्रकुप्यत : ॥ ३७२॥ तिर्य्यग् यो
नावयोनौ वा दुष्ट योनौ तथैव च ॥ उपदंशा
स्तथा वायो: कोप: शुक्र सुखक्षय: ॥ ३७३॥ उच्चारिते
मूत्रिते च रेतसश्च विधारणे ॥ उत्ताने च भवेत् शीघ्रं
शुक्राश्मर्य्यास्तु सम्भव: ॥ ३७४ ॥ सर्व्वमेतत् त्यजेत -
स्माद् यतो लोकद्वयाऽहितम् ॥ शुक्रन्तूपस्थितम्मो
हान्न सन्धार्य्यं कदाचन ॥ ३७५॥ स्नानं सशर्करं क्षीरं
भक्ष्यं भैक्षव संस्कृतम् ॥

भा० आधी रात में और दो घड़ी के तड़के में वात पित्त प्रकोप हुवे रोगी को पीड़ा
मिलही मूर्छा और मौत भी होती है ॥ ३७२ ॥ तिर्य्यग योनिमें या अयोनि में अथ
वा दुष्ट योनिमें मैथुन करने में उपदंश होतेहैं ॥ और वायुका कोप तथा शुक्र
और सुखका क्षय होता है ॥ ३७३॥ मल मूत्र किये हुवे में शुक्रके धारण करने
में और उत्तान में मैथुन करने से शुक्राश्मरी का सम्भव होता है ॥ ३७४ ॥ उस कार
ण इन सबको त्याग करे क्योंकि इहलोक और परलोक मे भी अहित है ॥ नि
कलने को तैयार हुवे शुक्रको मोहके वस होके कभी न रोके ॥ ३७५॥ स्नान
शर्करा के सहित दूध मिष्टान्न को पीवे॥

पानं मांसरस: स्वप्नो सुरतान्तेहिता अमी ॥ ३७६॥ मू
ल कास ज्वर श्वास कार्श्य पाण्ड्वामय क्षय: ॥ अति
व्यवायाज्जायन्ते रोगाश्चाक्षेपकादय : ॥ ३७७॥ रा
त्रौ जागरणं रूक्षं कफदोष विषार्त्तिजित् ॥ निद्रा
तु सेविता काले धातु साम्यमतन्द्रिताम् ॥ ३७८ ॥
पुष्टि वर्ण बलोत्साह वन्हिदीप्तिं करोति हि ॥

भा० मांस रसका पीना और सोना ये मैथुन के अन्तमें हित हैं ॥ ३७६ ॥ शूल कांस स्वांस ज्वर कृशता पांडुरोग क्षय। और आक्षेपका द्विक बहुत मैथुन से होते हैं ॥ ३७७॥ रातका जागना रूक्षते और कफ दोष विष पीड़ा का जीतने वाला है ॥ समय पर नींद लेनेसे धातुकी साम्यता और सावधानता होती है ॥ ३७८ ॥ पुष्टि वर्ण बल उत्साह अग्निदीप्ति कोभी करती है ॥

यो लेढि शयन समये मधु मिश्रं बीजपूरदल चूर्णम् ॥ स तुलज्जा करं वात प्रसर निरोधात् सुखं स्वपिति ॥ ३७९ ॥ सवितुः समुदय काले प्रसृतीः सलिलस्य पिवेदष्टौ ॥ रोग जरा परि मुक्तो जीवेद्वत्सर शतं साग्रम् ॥ ३८० ॥ (क) अस्य जल पानस्योपक्रम काले रात्रे श्चतुर्थ प्रहरे प्रवेशः ॥ [तथाच भोजः।]

भा० जो मनुष्य शयन के समय में मधुके साथ विजोरे के पत्तेका चूर्ण चाटे ॥ वा लज्जाकर वात प्रसर् निरोधसे सुख पूर्वक सोताहै ॥ ३७९ ॥ सूर्योदय कालमें आठ चुल्लू पानी पीवे ॥ रोग और बुढ़ापे से मुक्तहुवा पूरे सौ वरस जीता है ॥ ३८० ॥ इस जल पान के उपक्रम कालमें रातके चौथे पहरका प्रवेश कहा है ॥ उसे प्रकार भोजने कहा है ॥

पिवति पर्य्युषितं जलमन्वहन्तिमिर शान्ति रसे प्रहरे यदि। एतज्जलपान काल मर्य्यादा सूर्योदयात्ति सन्निहितप्रातः कालः। [तथाच तन्त्रान्तरे।] अम्भसः प्रसृतीरष्टौरवावनुदिते पिवेत् ॥ वात पित्त कफान् जित्वा जीवेद्वर्ष शतं सुखी इति ॥ ३८१॥

(क) सलिल स्यात्र पर्य्युषित ग्रहणं भोजवचनानुरोधात्।

अर्शः शोथग्रहण्यो ज्वरजठरजराकुष्ठमेदोविकारः॥ मूत्राघातास्र पित्तश्रवणगल शिरःश्रोणि शूलाक्षि रोगाः॥ ३८२॥

भा० रातके चौथे पहर में प्रतिदिन जो बासी पानी पीताहै ॥ ये जलपान काल मर्य्यादा सूर्य्योदय वह सन्निहित प्रातः कालहै ॥ उस प्रकार तन्त्रान्तर में कहा है ॥ आठ अंजुलपानी सूर्य्योदय के पहिले पीवे । तो वात पित्त कफ इनको जीतकर सुख पूर्वक सौ बरस जीताहै ॥ ३८१॥
(क) जलका यहांपर बासी का ग्रहण है ॥ भोजवचन के अनुरोध से ॥ अर्श शोथ ग्रहिणी ज्वर जठर कुष्ठ मेदका विकार ॥ मूत्राघात रक्तपित्त कर्णगल शिर श्रोणि और नेत्र शूल ॥ ३८२॥

ये चान्ये वातपित्त क्षतज कफकृता व्याधयः सन्ति जन्तोस्तांस्तानभ्यासयोगादपहरति पयःपीतमन्ते निशायाः॥ ३८३॥ विगत घननिशीथे प्रातरुत्थाय नित्यम् । पिबति खलु नरोयो घ्राण रन्ध्रेण वारि॥ स भवति मति पूर्णश्चक्षुषा तार्क्ष्य तुल्यो । बलि पलित विहीनः सर्वरोगैर्विमुक्तः॥ ३८४॥

भा० जो और वात पित्त क्षतज कफ कृत रोग मनुष्य के हैं । उन २ रोगों को अभ्यासके योग से रातके अन्तमें पियाहुवा दूध नाश करता है ॥ ३८३॥ रातका बहुत अंधेर निवृत्त होनेपर प्रातःकाल में उठकर नित्य जो मनुष्य नाक से पानी पीता है । वाह पूर्ण बुधिवान् होताहै और गिद्धके समान दृष्टिवाला होताहै । तथा झुर्रीवालों की सुफ़ेदी इनसे रहित और सब रोगों से विमुक्त होताहै ॥ ३८४॥
(क) (निशीथोऽत्र निशान्धकारः।)

पातव्यं नासया नीरं मस्तनिवय मात्रया॥ (ख) व्यङ्गवली पलितघ्नं पीनमवैस्वर्य कासा शोथहरम्॥

रजनी त्वयेम्बु नस्यं रसायनं दृष्टि सञ्जनम् ॥ ३०५॥
स्नेहे पीते क्षते शुद्धा वाध्माने स्तिमितोदरे ॥ हिक्का
यां कफवातोत्थे व्या धौ नद्वारि वारयेत् ॥ ३०६॥
(क) (नद्वारि नासापेयम्।) [अथर्त्तु चर्य्या।]

चय कोप शमा यस्मिन् दोषाणां सम्भवन्ति हि ॥ ऋ
तुषट्कं तदाख्यातं रवेराशिषु सङ्क्रमात् ॥ ३०७ ॥ ग्री
ष्मो मेष वृषो प्रोक्तः प्रावृण्मिथुन कर्कयो ॥ सिंह क
न्ये स्मृता वर्षा तुला वृश्चिकयोः शरत् ॥ ३०८ ॥

भा० (क) निशीथ यहांपर रातका अन्धेरा समझना चाहिये। तीन चुल्लू पानी नाकसे पीना चाहिये ॥ प्रातःकालमें पानीकी नास मुखपर कांधव्वा कुर्री बालकी सुफ़ेदी इनका नाशक और पीनस स्वरभंग कास सूजन इनका दूर करनेवाला। रसायन और दृष्टि उत्पन्न करनेवाला है ॥ ३०५॥ स्नेह पान किये में क्षतरोग में वमन विरेचन करनेपर आध्मान में पेटके भारीपन में। और हिचकी में और कफ वात से उत्पन्न हुवे रोग में नाकसे पानी न पीवे ॥ ०६ ॥ ॥ अनन्तर ऋतु चर्य्या कहते हैं ॥ दोषोंका संचय प्रकोप और प्रशमन जिसमें होता है और राशिपर सूर्य्यके घूमने से। वे छः ऋतु कहाते हैं ॥ ३०७ ॥ मेष वृष में ग्रीष्म, मिथुन कर्क में प्रावृट्। सिंह कन्या में वर्षा, तुला वृश्चिक में शरत् ॥ ३०८ ॥

धनुर्ग्राही च हेमन्तो वसन्तः कुम्भमीनयोः ॥
(क) मेष वृषो रविणा सङ्क्रान्तौ। एवं मिथुन कर्कटावि
त्यादि ॥ [अन्येतु] शिशिरः पुष्पसमयो ग्रीष्मो वर्षा
शरद्धिमाः ॥ माघादि मासयुग्मैः स्युर्ऋतवः षट् क्र
मादमी ॥ ३०९॥ गङ्गाया दक्षिणे देशे वृष्टेर्बहुल भा
वतः ॥ उभौ मुनिभिराख्यातौ प्रावृट् वर्षाभिधावृतू ।३१०

भा० धन मकर में हेमन्त, और कुम्भ मीन में वसन्त इस प्रकार छ ऋतु कहेहैं ॥ और आचार्य्य कहते हैं। शिशिर वसन्त ग्रीष्म वर्षा शरत् हिम ॥ ये छ ऋतु माघसे लेकर दो २ महीने में क्रमके साथ होतेहैं ॥ ३८६॥ गंगाके दक्षिण देशमें वर्षा के बहुत होने से मुनियों ने प्रावृट् वर्षा दो ऋतुके नाम कहे हैं। ३६०

उत्तरायणमाद्यैः स्तैः परैः स्याद्दक्षिणायनम् ॥ आद्य मुष्णं बलहरं ततोऽन्यद् बलदं हिमम् ॥ ३६१॥ हेमन्तः शीतलः स्निग्धः स्वादुर्ज्जठर वन्हिकृत् ॥ शिशिरः शीतलोऽतीव रूक्षो वाताग्निवर्द्धनः ॥ ३६२॥

(क) हेमन्तः स्वादुः प्रायेण द्रव्येषु स्वादुरसजनकः एवमन्यत्रापि बोद्धव्यम् ॥ ॥ वसन्तो मधुरः स्निग्धः श्लेष्मवृद्धि करश्च सः ॥ ग्रीष्मो रूक्षोऽतिकटुकः पित्तकृत् कफ नाशनः ॥ ३६३

भा० पहिले तीन ऋतुवों से उत्तरायण और अन्तकी तीन ऋतुवों से दक्षिणायन होता है। पहिला उत्तरायण उष्ण और बल को हरनेवाला तथा उस्से दूसरा अर्थात् दक्षिणायन शीत और बलको देनेवालाहै ॥ ३६१॥ हेमन्त शीतल स्निग्ध स्वादु और उदराग्नि को करनेवाला है ॥ शिशिर अधिक शीत रूखा वात और अग्निको करनेवाला है ॥ ३६२॥ (क) हेमन्त स्वादुः अर्थात् प्रायः करके पदार्थों में मधुर रसको उत्पन्न करनेवाला। इस प्रकार औरोंमें भी जानना। वसन्त मधुर चिकना और कफको बढ़ानेवालाहै ॥ ग्रीष्म रूखा बहुत कटु पित्तको करनेवाला और कफका नाशक है ॥ ३६३॥

वर्षा शीता विदाहिन्यो वन्हिमान्द्यानिलप्रदाः ॥ शरदुष्णा पित्तकर्त्री नृणां मध्यबलावहा ॥ ३६४॥ चय प्रकोपोपशमा वायोर्ग्रीष्मादिषु त्रिषु ॥ वर्षादिषु च पित्तस्य श्लेष्मणः शिशिरादिषु ॥ ३६५॥

भा० वर्षा शीत विदाह की करने वाली अग्नि मान्द्य और वात को देने वाली है ॥ शरत् उष्ण पित्त को करने वाली और मनुष्यों के मध्य बल को देने वाली है ॥ ३८४ ॥ वायु का संचय प्रकोप और शमन ग्रीष्म से आदि लेके इन तीन ऋतुवों में होता है ॥ वर्षा से आदि लेके तीन ऋतुवों में पित्त का और शिशिर से आदि तीन में कफ का संचय प्रकोप शमन होता है ॥ ३८५ ॥

चीयते लघुरूक्षाभिरोषधीभिः समीरणः ॥ तद्विध स्तद्विधे देहे कालस्योष्णतान्न कुप्यति ॥ ३८६ ॥

(क) तुल्येऽपि काले स्निग्धे तद्विधो रूक्षो लघुश्च नाद्विधे रूक्षे लघौ च ॥ अद्भिरम्ल विपाकाभिरोषधीभिश्च तादृशाम् ॥ पित्तं याति च यं कोपं न तु कालस्य शैत्यतः ॥ ॥ ३८७ ॥ (तादृशाम् अम्लविपाकम् ।)

भा० हलकी रूखी औषधियों से वायु संचय होता है ॥ हलका रूखा वायु हलकी रूखी देहमें कालकी उष्णता से प्रकोपको नहीं प्राप्त होता ॥ ३८६ ॥ अम्ल विपाक को करनेवाली औषधी और पानीसे इस प्रकार ॥ पित्त संचय को प्राप्त होता है ॥ तथा कालके शीत होनेसे कोपको नहीं प्राप्त होता ॥ ३८७

चीयते स्निग्ध शीताभिरुदकौषधिभिः कफः ॥ तुल्ये च काले देहे च श्लिनत्वान्न प्रकुप्यति ॥ ३८८ ॥

(ख) तुल्येऽपि काले स्निग्धे शीतले च । (श्लिनत्वात् देहे शुष्कत्वात् ।) हिमे याति शमं पित्तं वायुः श्लेष्मा च चीयते ॥ स वायुः शिशिरे कोपं यात्येवोपहतः कफः ॥ ३८९ ॥ हेमन्ते सञ्चितः श्लेष्मा शिशिरेत्व तिचीयते ॥ शीत स्निग्ध गुरुद्रव्यैः शैत्य श्लिन्नो न कु

प्यति ॥ ५००॥ (क) क्लिन्नः काठनीभूतः।

इति कालस्वभावोऽयं महारादिवशात् पुनः ॥ चया

दीन् यान्ति सद्योऽपि दोषाः काले विशेषतः॥ ५०१

भा० चिकनी शीत औषधी और जल से कफ सञ्चय होता है ॥ काल के समान होने पर भी देहमें गीलापन होने से कोप नहीं होता ॥ ३९८ ॥ हिममें पित्त शमन होता है। और वायु कफ सञ्चय होते हैं ॥ शी नष्टहुवा वायु और कफ शिशिरमें कोप को प्राप्त होते ही हैं ॥ ३९९ ॥ हेमन्त में सञ्चयहुवा कफ शिशिर में बहुत सञ्चय होता है ॥ शीत स्निग्ध और भारी पदार्थों से शीतता और गीला हुवा प्रकोप को नहीं प्राप्त होता ॥ ५०० ॥

(क) (क्लिन्न) कठिनीभूत) इस प्रकार यह कालस्वभाव है पुनः आहारादि वश से दोष काल में विशेषकरके तत्काल चय कोप शमन को प्राप्तहोते हैं।

(क) चयकोपशमाः पूर्वान्हे वसन्तस्य लिङ्गं मध्यान्हे ग्रीष्मस्य अपरान्हे प्रावृषः प्रादोषे वार्षिकम् ॥ शारदम र्द्धरात्रे प्रत्यूषसि हेमन्तमुपलक्षयेत् ॥ (ख) एवमहोरा त्रमपि वर्षमिव शीतोष्णवर्षादोषोपचय प्रकोपो पश माः जानीयादिति सुश्रुतः ॥

चय कोप समा दोषा विहाराहार सेवनैः ॥ समानैर्या न्त्यकालेऽपि विपरीते विपर्य्ययम् ॥ ५०२ ॥

भा० (क) पहले पहर में वसन्त का चिन्ह मध्यान्ह में ग्रीष्मका अपरान्ह में प्रावृट् का । और सायंकाल में वर्षा का ॥ आधीरात में शरद् का और पिछली रात में वसन्तका ॥लक्षण जान लेवे ॥ (ख) इस प्रकार रात दिन की भी वर्षा की नाईं शीत उष्ण वर्षा और दोषों, सञ्चय प्रकोप शमन जाने । इस प्रकार सुश्रुत ने कहा है ॥ समान आहार विहार के सेवन से दोष अपने काल में सञ्चय प्रकोप शमन होते हैं ॥ और विपरीत आहार विहार से काल में भी विपरीत सञ्चय प्रकोप शमन होते हैं ॥ ५०२॥

(क) समानैः तुल्यैः चयादि योग्यैरिति यावत् । विपर्य्यये कालेऽपि वैपरीत्यं बोध्यम् । [एवं चय लक्षण माह सुश्रुतः स्वस्थानस्थस्य दोषस्य वृद्धिः स्याच्छाव कोष्ठता ॥ पी तावभासना वन्हि मन्दता चाङ्ग गौरवम् ॥ ४०३ ॥ आ लस्यञ्चय हेतौतु द्वेषश्च चय लक्षणम् ॥ सञ्चयोप हृता दोषा लभन्ते नोत्तरां गतिम् ॥ ४०४ ॥

भा० इसप्रकार चय लक्षण कहाहै सुश्रुतने ॥ अपने स्थानमें रहनेवाले दोषकी वृद्धि में कोठेका कालापना ॥ज़र्दी अग्नि मन्दता शरीरका भारीपना होताहै ॥ ४०३ ॥ सञ्चय के निदान में आलस्य और चयके लक्षण में द्वेष होताहै । संचयमें दूर कियेहुवे दोष उत्तर गति अर्थात् प्रकोपको नहिं प्राप्त होते ॥ ४०४ ॥

ते तूत्तरासु गतिषु भवन्ति बलवत्तराः ॥ वर्षासु प्रबलो वायुस्तस्मान्मिष्टादय स्त्रयः ॥ ४०५ ॥ रसाः सेव्या विशेषेण पवनस्योप शान्तये ॥ (मिष्टादय स्त्रयः मधुराम्ल लवणाः) भवेद्वर्षासु वपुषः क्लिन्नत्वं यद्विशेषतः ॥ तत् क्लेश शान्तये सेव्या अपि कट्वादय स्त्रयः ॥ ॥ ४०६ ॥ (कट्वादयस्त्रयः कटु तिक्त कषायाः ।) स्वेदनं मर्द्दनं सेव्यं दध्युष्णं जाङ्गलामिषम् ॥ गोधूमाः शालयो माषा जलं कौपं जलं च्युतम् ॥ ४०७ ॥

भा० वे प्रकोपमें बहुत बलवान होतेहैं । वर्षामें वायु प्रबल होता है । उसकारण मधुर अम्ल लवण ये तीन रस ॥ ४०५ ॥ वातकी शान्ति के अर्थ विशेष करके सेवन करनेचाहियें ॥ वर्षा में जो शरीर का गीलापन अधिक होताहै । उस क्लेशकी शान्तिके अर्थ कटुक तिक्त कषाय ये तीन रस सेवन करनेचाहियें ॥ ४०६ ॥ पसीना लिवाना मलना दधि उष्ण जांगल मांस ॥ गेहूं चावल उड़द कुवेका पानी अथवा चुवाया पानी इनका सेवनकरे ॥ ४०७ ॥

न भजेत् पूर्वे पवनं वृष्टिं घर्मं हिमं श्रमम् ॥ नदीनीरं दिवा स्वप्नं रूक्षं नित्यञ्च मैथुनम् ॥ ४०८ ॥ सर्पिः स्वादु कषाय तिक्त करसा यच्छीतलं यल्लघु ॥ क्षीरं स्वच्छ सितेक्षवः पटुरसः स्वल्पं पलं जाङ्गलम् ॥ ४०९ ॥ गोधूमा यव मुद्ग शालिसहिता नादेयमंशूदकम् ॥ चन्द्रश्चन्दन मिन्दु राजि रजनी माल्यं पटो निर्मलः ॥ ४१० ॥

भा॰ सामने की वायु वृष्टि शीत धूप श्रम । नदी का नीर दिनका सोना रूखा पदार्थ नित्य मैथुन इनको न सेवन करे ॥ ४०८ ॥ घृत मधुर कषाय तिक्त रस और जो शीत अथवा लघु ॥ दूध सफेद चीनी गन्ना लवण रस थोड़ा जांगल मांस ॥ ४०९ ॥ गेहूं जव मूंग चावल नदीका पानी और अंशूदक कपूर चन्दन चान्दनी रात माला स्वच्छ वस्त्र ॥ ४१० ॥

विश्राम: सुहृदां गणेषु मधुरा वाचः सरः क्रीड़नम् ॥ पित्तानाञ्च विरेचनं बलवतो युक्तं शिरा मोक्षणम् ॥ ४११ ॥ एतान्यत्र घनावसानसमये पथ्यानि मुञ्चेद्दधि ॥ व्यायामाम्ल कटूष्ण तीक्ष्ण दिवस स्वप्नं हिमञ्चातपम् ॥ ४१२ [अंशूदक लक्षणमाह ।] दिवसेऽर्ककरैर्जुष्टं निशि शीतकरांशुभिः ॥ ज्ञेयमंशूदकं नाम स्निग्धं दोष त्रया पहम् ॥ ४१३ ॥ (क) अत्र समग्र प्राप्त्यर्थे दिवस दिवापाद द्वये निशापादंच। चन्द्रः कर्पूरः ॥

भा॰ मित्रों की सभामें मधुर वाणी के साथ विश्राम । तालाव में क्रीड़ा करना । पित्तों के विरेचन बलवान की फस्त खुलाना ॥ ४११ ॥ ये शरद ऋतुमें पथ्य हैं ॥ और दही कसरत खटाई कड़वी उष्ण तीखी वस्तु तथा दिनका सोना शीत और धूप इनको छोड़ देवे ॥ ४१२ ॥ अंशूदक का लक्षण कहा है ॥

दिन में सूर्य्य की किरणों से सेवित और रात में चान्द की किरणों से सेवित जो जल उसको अंशूदक जाने। वो स्निग्ध और तीनों दोषो का नाशक है ॥ ४१३॥ (क) यहांपर संपूर्ण दिवस शब्दहै इसवास्ते दिन दो हिस्से और रात एक हिस्से होनी चाहिये ॥

इक्षवः शालयो मुद्गा सरोऽम्भः क्वथितं पयः।

शरद्येतानि पथ्यानि प्रदोषे चेन्दु रश्मयः ॥ ४१४ ॥

प्रातर्भोजन मम्ल मिष्ट लवणानभ्यङ्ग घर्म्मश्रमान् ॥ गोधूमे क्षवशालि माषपिशितं पिष्टं नवान्नं तिलान् ॥ ४१५॥ कस्तूरी वर कुङ्कुमा गुरु युता मुष्णाम्बु शौचं तथा ॥ स्निग्धं स्त्रीषु सुरतं गुरूष्ण वसनं सेवेत हेमन्तके ॥ ४१६॥ शिशिरे शीतमधिकं रौक्ष्यं वा दानकालजम् ॥ विशेषत स्ततस्तत्र हेमन्तस्य मतो विधिः ॥ ४१७

भा० गन्ने चावल मूंग नदीका पानी औटा दूध। और सायंकाल में चांदनी ये शरद् कालमें पथ्य हैं ॥ ४१४ ॥ अम्ल मधुर लवण इन रसों का प्रातःकाल में भोजन तैलका लगाना घर्म श्रम ॥ गेहूं गन्ना चावल उड़द मांस पीठी नया अन्न तिल ॥ ४१५॥ कस्तूरी कश्मीर का केसर मलया गिरका काला चन्दन शौच में गरमपानी। स्निग्ध पदार्थ मैथुन भारी गरम कपड़ा इनको हेमन्त ऋतु में सेवनकरे ॥ ४१६॥ शिशिर में शीत अधिक होता है आदानकाल की रूक्षता होतीहै। इसवास्ते उसमें विशेषकरके हेमन्त की विधि पथ्यहै ॥ ४१७ ॥

वान्तिं नस्य मथाभयाञ्च मधुना व्यायाम मुद्वर्त्तनम् ॥ सं सेवेत मधौ कफघ्न कवलं धूम्रं पलञ्जाङ्गलम् ॥ ४१८॥ गोधूमान् बहु शालिभेद सहितान्मुद्गान् यवान् षष्टिकान्। लेपश्चन्दन कुङ्कुमागुरु कृतं रूक्षङ्कटूष्णं लघु ॥ ४१९ मिष्टमम्लं दधिस्निग्धं दिवा स्वप्नञ्च दुर्ज्जरम् ॥ अवश्या

य मपि प्राज्ञो वसन्ते परिवर्ज्जयेत् ॥ ४२०॥ स्वादु स्नि-
ग्ध हिमं लघु द्रव मयन्द्रव्यं रसालां सिताम् ॥ शक्तुं क्षी
र दध्याङ्गुलानि सितया शालिं रसं मांसजम् ॥ ४२१॥
शीतांशुं शय नन्दि वा मलयजं शीतम्पयः पानकम्।
सेवेतोष्ण दिने त्य जेत्तुकटुक क्षाराम्लघर्म्मश्रमान् ॥
॥४२२॥ ऋतुष्वेषु य एतेषु विधिमि र्वर्त्तते नरः॥ दो
षा नृतु कृतान्नैव लभते स कदाचन ॥ ४२३ ॥
इति श्रीलटकनमिश्र तनय श्रीमन्मिश्र भाव विरचिते भाव
प्रकाशे दिनचर्य्य र्तु प्रकरणञ्चतुर्थम् ॥ ४॥

भा० वमनझलास और मधुकेसाथ हड़ तथा कसरत उबटना इनको वसन्त में सेवन करे। और कफ नाशक यास तथा जांगल मांस का कवाव इनको भी सेवन करे ॥ ४१८॥ गेहूं बहुत क़िसम के चावल और मूंग जव तथा साठी चांवल। चन्दन केसर कृष्णागरु और रूक्ष कटु तथा लघु इस प्रकार को बनाया हुवा लेप इनको भी वसन्त में सेवन करे ॥ ४१६॥ मधुर अम्ल दधि स्निग्ध दिनका सोना जला भुना इनको बुद्धिवान् शिशिर और वसन्त में त्याग देवे ॥ ४२०॥ मधुर स्निग्ध शीत लघु और पतली वस्तु तथा शिकरन चीनी॥ सत्त दूध दमों उंगली चमेली से भूषित चांवल शोरुवा ॥ ४२१॥ चान्दनी दिनका सोना मलया गिर को चन्दन ठंडा पानी पयानक अर्थात् पन्ना इनको गरमी की ऋतु में सेवन करे। और कटु क्षार अम्ल धूप श्रम इनको त्याग देवे ॥ ४२२॥ जो मनुष्य ऋतु ओं में इस विधि से चलता है। उस मनुष्य को ऋतु कृत दोष कभी नहीं होते ॥४२३॥
इति श्री लटकन मिश्र के पुत्र श्री भावमिश्र के रचित भाव प्रकाश में दिनचर्य्या और ऋतु प्रकरण चतुर्थ समाप्त हुवा ॥ ४॥

[अथ व्याधेर्लक्षणम्। तत्र वाग्भटः।]

रोगस्तु दोष वैषम्यं दोष साम्य मरोगता ॥ रोगा दुः

रुजस्य दातारो ज्वर प्रभृतयो हि ते ॥ १ ॥ ते च स्वाभावि
काः केचित्केचिदागन्तवः स्मृताः ॥ मानसाः केचिदा
ख्याताः कथिताः केऽपि कायिकाः ॥ २ ॥

(तत्र स्वाभाविकाः शरीर स्व भावादेव जाताः ॥)

(क) क्षुत्पिपासा सुषुप्त्या च जरा मृत्यु प्रभृतयः अथवा स्व स्व-
भाविका दुत्पत्ते र्जाता स्वाभाविकाः सहजा इति यावत् ।
(ख) ते च जन्मान्धत्वादयः आगन्तवोऽभिघातादि जनिताः।
अथवा जन्मोत्तर भाविनः । कामक्रोध लोभमोह भयाभि
मानदैन्य पैशुन्य शोक विषादेर्ष्या सूया मात्सर्य्य प्रभृतयः।
अथवा उन्मादापस्मार मूर्च्छा भ्रम मोह तमः संन्यास प्रभृतयः।

भा० अनन्तर व्याधि का लक्षण अष्टाङ्ग हृदय में वाग्भट ने कहा है । दोषों की विषमता रोग है और दोषों की समानता आरोग्य है ॥ वे ज्वर आदि रोग दुःख के देने वाले हैं ॥ १ ॥ वे रोग कोई रोग स्वाभाविक और कोई आगन्तुक कहे गये हैं । और कोई मानसिक तथा कोई कायिक इस प्रकार कहे गये हैं ।२॥ उन्में स्वभाविक शरीर में स्वभाव से ही उत्पन्न हैं) (क) क्षुधा तृषा निद्रा जरा मृत्यु आदि । अथवा अपने स्वभाव से ही उत्पन्न हुवे ही स्वाभाविक अर्थात् साथ होने वाले । (ख) वे जन्म का अन्धापन इत्यादिक । आगन्तुक चोट से उत्पन्न हुवे । अथवा जन्म के पश्चात् होने वाले । काम क्रोध लोभ मोह भय अभिमान दीनता चुगली शोक खेद ईर्षा और शत्रुता मत्सरता आदि । अथवा उन्माद अपस्मार अर्थात् मिरगी मूर्छा भ्रम मोह अन्धेरी और अचेतता इत्यादिक

कायिकाः पाण्डु रोग प्रभृतयः कर्म्मजाः कथिताः केचि
द्दोषजाः सन्ति चापरे ॥ कर्म्म दोषोद्भवाश्चान्ये व्याधय
स्त्रिविधाः स्मृताः ॥ ३ ॥ (क) तत्र कर्म्मजाः व्याधयः।

यत्प्राक्तनन्दुष्कर्म्म प्रबलङ्केवल भोगनाश्यम्। प्रायश्चि
त्तनाश्यं वा ततो जाताः ननु दुष्ट वातादि दोषेणजनितास्त
था॥ ॥यथाशास्त्रन्तु निर्णीतो यथाव्याधि चिकित्सितः।
न शमं याति यो व्याधिः स ज्ञेयः कर्म्मजो बुधैः॥५॥

भा० कायिक पांडुरोग आदि। कर्म्मज कों कहेगये हैं। और कोई दोषज हैं। और कोई कर्म्म दोषोंसे उत्पन्न इस प्रकार तीन तरहकी व्याधि कही है॥३॥ (क) उनमें कर्म्मजव्याधि जो पूर्व जनमके दुष्कर्म्मसे प्रबलहुवा और भाग क्षराही नाश होनेवाला अथवा प्रायश्चित्त से नाशहोनेवाला उस्से उत्पन्न हुवा। न कि वातादि दोषसे हुवा इस प्रकार। शास्त्र के अनुसार निश्चय हुई और पथ्य व्याधि चिकित्सा सेजो व्याधि शमनको नहीं प्राप्तहोती है उसको पंडित कर्म्मज कहते हैं॥५॥

[दोषजाः। मिथ्याहार विहार प्रकुपित वात पित्तकफजाः।]
(क) ननु मिथ्याहार विहारिणामपि प्राक्तन सुकृतेन नैरु
ज्यं दृश्यत एव। ततो दोषजेष्वपि प्राक्तनं दुष्कर्मैव कारणम्
तत्कथं दोषजा इत्युच्यते। दोषजेष्वपि वस्तुतः। आदि
कारणं दुष्कर्म वर्त्तत एव किन्तु तत्र मिथ्याहार विहार दू
षिता दोषा हेतवो दृश्यन्त इति दोषजा इत्युच्यन्त इति समा
धिः। [कर्मदोषोद्भवाः।]

भा० [दोषज] मिथ्या आहार और विहार से प्रकोपको प्राप्तहुवे वात पित्त कफ से उत्पन्न हुई॥ (क) ननु शंका। मिथ्या आहार विहारवालोंको भी पूर्व जन्मान्तर के सुकृत कर्मसे ही आरोग्यता होती है। उस्से दोषज में भी पूर्व जन्मान्तर का दुष्कर्म ही कारण है। तो कैसे दोषज कहते हैं। यथार्थमें तो दोषज में भी आदिकारण दुष्टकर्म ही रहता है। लेकिन उस्में मिथ्या आहार विहारसे दूषित दोष कारण देखे जाता है। इस्से दोषज कहते हैं ये समाधान है।

[कर्म्मदोषोंसे उत्पन्न हुवोंको कहते हैं।]

स्वल्पदोषा गरीयांसस्ते ज्ञेयाः कर्म्मदोषजाः॥

(ख) अत्र कारणं दुष्कर्म प्रबलं यतो दोषाल्पत्वेऽपि व्याधे गरीयस्त्वन्तत्कर्म्म क्षयादेव क्षीणं भवति। दोषाः स्वल्पा अपि निदानत्वेनोक्ता दृश्यन्त एवेति दोषाणां कारणता मन्यन्त इति। कर्म्मक्षयात् कर्म्म जाता दोषजाः स्व स्व भेषजैः।

कर्म्मदोषोद्भवा यान्ति कर्म्मदोषक्षयात्क्षयम्॥

भा० थोड़े दोष बहुत भारी होजावें उसको कर्म्मदोषज जानना। (क) यहांपर कारण दुष्ट कर्म प्रबल है। जैसेकि स्वल्प व्याधिमें बहुत बढ़े हुवे दोष कर्म्मक्षय से ही क्षीण होते हैं। दोष स्वल्प भी निदान करके कहे हुवे देखे जाते ही हैं और दोषोंकी कारणता मानते हैं। कर्म्मके क्षय से कर्मजात दोष अपनी २ औषधि से। कर्म दोषोंसे उत्पन्न हुवे कर्मदोष के क्षयसे क्षयको प्राप्त होते हैं॥

(ग) दोषजाः स्व स्व भेषजैरिति दोषजेष्वादिकारणं॥ दुष्कर्म्म तद्भेषजार्थ द्रव्य क्षयादि जनित दुःख भोगेन कटु तिक्त कषायाद्यहृद्य भक्षणादि जनित दुःख भोगेन च क्षयं यान्ति। एषा दुष्टा हेतवो दोषास्ते स्व स्व भेषजैः क्षयं यान्तीत्यर्थः॥ साध्या याप्या असाध्याश्च व्याधयस्त्रिविधास्मृताः॥ सुखसाध्यः कष्टसाध्यो द्विविधः साध्य उच्यते॥५॥ [याप्य लक्षणमाह।]

भा० (क) दोषज अपने २ औषध सेइति। दोषसे उत्पन्न हुवमें आदिकारण दुष्टकर्म्म, और उसके औषधके अर्थ द्रव्य क्षयादि से हुवे दुःख भोग करके ही कटु तिक्त कषादि अप्रिय भक्षण से उत्पन्न हुवे दुःखसे नाशको प्राप्त होते हैं।

पांच दुष्ट कारण वे दोष । अपने २ औषध से नाशको प्राप्त होते हैं । साध्य या प्य असाध्य तीन प्रकारकी व्याधि कही गई है ॥ सुखसाध्य तथा कष्टसाध्य दो प्रकारका साध्य कहते हैं ॥ ५ ॥ याप्य का लक्षण कहा है ।

याप्यनीयन्तु तं विद्यात् क्रिया धारयते हि यम् ॥ क्रियायान्तु निवृत्तायां सद्यो यश्च विनश्यति ॥ ६ ॥ प्राप्ता क्रियाधारयति सुखिनं याप्य मातुरम् ॥ प्रपतिष्य दिवागारं स्तम्भो यत्नेन योजितः ॥ ७ ॥ साध्या याप्य त्वमायान्ति याप्यश्चासाध्यतान्तथा ॥ घ्नन्ति प्राणान साध्यास्तु नराणाम क्रियावताम् ॥ ८ ॥

भा० यापनीय उसको जानना चाहिये जिसको क्रियाने पकड़ रखाहै । क्रिया के निवृत्त होनेमें जो तत्काल नाशको प्राप्त होता है ॥ ६ ॥ प्राप्तक्रिया जिस सुखि याप्य आतुर को धारण करती है । वो गिरेहुवे मकानमें थांब लगाये हुवे के मानिन्द है ॥ ७ ॥ साध्यरोग याप्य होते हैं और याप्य असाध्यता को प्राप्त होतेहैं पथ्यादिक न करनेवाले पुरुषों के प्राणों को असाध्य रोगनाशकरतेहैं ॥ ८ ॥

(क) अक्रियावतां चिकित्सा रहितानाम् । [अथोपद्रवस्य लक्षणम् ।] रोगारम्भक दोषस्य प्रकोपादुपजायते ॥ योऽन्यो विकारः स बुधै रुपद्रव इहोदितः ॥ ९ ॥

[अथारिष्टस्य लक्षणमाह ।] रोगिणो मरणं यस्माद वश्यम्भावि लक्ष्यते ॥ तल्लक्षणमरिष्टं स्यादिष्टञ्चापि तदुच्यते ॥ १० ॥ [अथ चिकित्साया लक्षणमाह ।]

भा० (क) चिकित्सासे रहितोंको । अनन्तर उपद्रवों का लक्षण कहते हैं । रोगको आरंभ करनेवाले दोषों के प्रकोप सेजो दूसरा विकार उत्पन्न होताहै उसको पंडित यहांपर उपद्रव कहतेहैं ॥ ९ ॥ अनन्तर अरिष्ट का लक्षण

कहतेहैं ॥ रोगिका अवश्य होनेवाला मरण जिससे जाना जाताहै । वोह लक्षण अरिष्ट होताहै और रिष्ट भी उसको कहतेहैं ॥ अनन्तर चिकित्साका लक्षण कहतेहैं ॥ १० ॥

या क्रिया व्याधि हरणी सा चिकित्सा निगद्यते ॥ दोष धातु मलानां या साम्यकृत सैव रोगहृत ॥ ११ ॥

(क) क्रियात कर्म व्याधिर्हन्यते ऽनयेति व्याधि हरणी करणाधि करणयोश्चेति सूत्रेण करणार्थेल्युट् तथाच । याभिः क्रियाभिर्जायन्ते शरीरे धातवः समाः॥ सा चिकित्सा विकाराणां कर्म्म तद्भिषजाम्मतम् ॥ १२ ॥ या ह्युदीर्णं शमयति नान्यं व्याधिं करोति च ॥ सा क्रिया न तु या व्याधिं हरत्यन्य मुदीरयेत् ॥ १३ ॥ (क्रियात चिकित्सा ।) तथा चामर सिंहः ।

भा० जो क्रिया व्याधिको दूर करनेवाली होती है उसको चिकित्सा कहतेहैं । दोष धातु मल इनकी समानता करनेवाली जोहै वोही रोग नाशक है ॥ ११ ॥ (क) क्रिया यहाँपर कर्मव्याधिनाशकी जातीहै इससेवो व्याधिहरणीहै । करणाधिकरणयोश्चेति इस सूत्रसे करण अर्थ में ल्युट् है । उस प्रकार कहा है ॥ जिस क्रियासे शरीरमें धातु सम होतेहैं । वो चिकित्सा है । और विकारों का वोह कर्म्म वैद्योंके सम्मत है । प्रकोप हुवेको शमन करती है और दूसरी व्याधिको नहिं करती । वो क्रियाहै । तथा जो एक व्याधिको दूर करे और दूसरीको उत्पन्न करे वो क्रियानहीं ॥ १३ ॥ (क) क्रिया यहाँपर चिकित्सा । उस प्रकार अमर सिंहने कहाहै ॥

आरम्भो निष्कृतिः शिक्षा पूजनं सम्प्रधारणम् ॥ उपायः कर्म्म चेष्टा च चिकित्सा च नव क्रिया इति ॥ १४ ॥

[अथ चिकित्सा विध्यु पदेशः ।

जातमात्रः चिकित्स्यः स्यान्नोपेक्ष्योऽल्पतया गदः॥ वन्हि शत्रु विषैस्तुल्यः स्वल्पोऽपि विकरोत्यसौ ॥२५॥

रोगमादौ परीक्षेत ततोऽनन्तरमौषधम् ॥ ततः कर्म भिषक् पश्चात् ज्ञानपूर्वं समाचरेत् ॥ २६॥

भा० आरंभ निष्कृति शिक्षा पूजन संप्रधारण ॥ उपाय कर्म चेष्टा और चिकित्सा ये नव क्रियाके पर्याय हैं ॥ २५॥ अनन्तर चिकित्सा की विधि का उपदेश है। उत्पन्न मात्रही रोग चिकित्सा योग्य है। थोड़ाभी रोग उपेक्षा करने योग्य नहीं होता ॥ आग शत्रु विष इनके समान अल्पभी विकारको करता है ॥२५॥ प्रथम रोगकी परीक्षा करे उसके अनंतर औषधि करे। उसके अनंतर वैद्य पश्चात् कर्म ज्ञान पूर्वक करे ॥ २६॥

(क) [अयमर्थः] भिषक् आदौ रोगं परीक्षेत विचारयेत्। ततः पश्चाद्रोगौषधविचारानन्तरं ज्ञान पूर्वं सावधानो न त्वज्ञाय कर्म्म चिकित्सा मौषधदानादि रूपां समाचरेदित्यर्थः। रोगाज्ञानेन चिकित्सा करणे दोषमाह।

भा० (क) यह अर्थ है ॥ वैद्य प्रथम रोगकी परीक्षा करे। अर्थात् विचार करे। उसके पश्चात् अर्थात् रोग औषधि विचार के अनंतर सावधान होके। न कि बेसमझे कर्म अर्थात् चिकित्सा अर्थात् औषधि दान रूप को करे ॥ रोग के बिनजाने चिकित्सा करने में दोष कहते हैं।

यस्तु रोगमविज्ञाय कर्म्माण्यारभते भिषक्। अप्यौषध विधानज्ञस्तस्य सिद्धिर्यदृच्छया ॥ २७॥

(ख) स्वैरितया सिद्धिर्भवति नापि भवतीत्यर्थः। अन्यच्च

भेषजं केवलं कर्त्तुं यो जानाति न चामयम् ॥ वैद्य कर्म्म स चेत् कुर्य्याद् बधमर्हति राज्ञतः ॥ २८॥

(क) [रोगज्ञाने भेषजाज्ञाने दोषमाह।]

यस्तु केवल रोगज्ञो भेषजेष्व विचक्षणः ॥ तं वैद्यं प्राप्य रोगी स्याद्यथा नौर्नाविकं विना ॥ २९ ॥

भा० जो वैद्य औषधि का जाननेवाला रोगको बिनजानें चिकित्सा करता है उसकी सिद्धी अपनी खुशी की है अर्थात् कभी होती है कभी नहींभी होती ॥ २७॥ औरभी, जो वैद्य केवल औषधका जानते हैं और रोगको नहीं जानते ॥ वो वैद्य कर्म करैं तो राजासे वध होने योग्य हैं ॥ २८ ॥ रोगका ज्ञान और औषधका न ज्ञान इसमें दोष को कहते हैं ॥ जो केवल रोगका जानने वालाहै और औषधि में अविचक्षण ॥ उस वैद्यको पाकर रोगी उस प्रकार का होताहै जैसे मल्लाह के बिन नाव ॥ २९ ॥

(क) नाविकं कर्णधारं विना यथा नौ सङ्कटे पतति तथा रोगी त्यर्थः। [अन्यच्च]

यस्तु केवल शास्त्रज्ञः क्रियास्वकुशलो भिषक् ॥ स मुह्यत्यातुरं प्राप्य यथा भीरुरिवाहवम् ॥ ३० ॥

[रोगौषधयोर्ज्ञाने गुणमाह ।] यस्तु रोग विशेषज्ञः सर्वभेषजकोविदः ॥ देशकाल विभागज्ञस्तस्य सिद्धिर्न संशयः ॥ ३१ ॥ आदावन्ते रुजां ज्ञाने प्रयतेत चिकित्सकः ॥ भेषजानां विधानेन ततः कुर्याच्चिकित्सितम् ॥ ३२ ॥ (क) चिकित्सितं सिध्यतं भावे क्तः।

भा०(क) जैसे मल्लाह के विना नाव संकट में पडतीहै वैसे रोगी इत्यर्थः। औरभी। जो वैद्य केवल शास्त्रको जानने वाला है। और क्रियामें अकुशल हैं। वोह रोगीको पाकर मोहको प्राप्त होतेहैं। जैसे संग्राममें डरपोक मोहको प्राप्त होताहै ॥ ३० ॥ रोग और औषधके ज्ञानमें गुणको कहते हैं। जो रोग विशेषको जानने वालाहै। और संपूर्ण औषधियों को भी जानताहै देश काल विभागको जानताहै उसकी सिद्धि अवश्य होती है ।३१।

वैद्य आदि अन्तरोगके ज्ञानहोनेपर प्रयत्न करे ॥ उसके अनन्तर औषधके विधान से चिकित्सा करे ॥ २२ ॥
(क) चिकित्सित इस प्रकार यहाँपर भावमें क्त होता है ॥

रा विकाराणामकुशलो न जिह्रीयात् कदाचन ॥ न हि सर्व्व विकाराणां नामतोऽस्ति ध्रुवा स्थितिः ॥ २३॥
(क) न जिह्रीयात् न लज्जेत । ध्रुवा नियता ।
नास्तिरोगो विनादोषैर्यस्मात्तस्माच्चिकित्सकः ॥ अनुक्तामपि दोषाणां लिङ्गैर्व्याधिमुपाचरेत् ॥२४॥ येन कुर्वन्त्यसाध्यानां चिकित्सां ते भिषग्वराः ॥ अतो वैद्यैः श्रमः कार्य्यः साध्यासाध्य परीक्षणे ॥ २५॥

भा० विकारोंके जाननेमें अकुशल कभीन शरमावे। क्यों कि सम्पूर्ण विकारों के नामसे नियत स्थिति नहींहोती ॥२३॥ (क) जिसकारण विनादोषोंके रोग नहीं होता । उसकारण वैद्य दोषोंके लक्षणों से नकीहुवे रोगका भी इलाज करे ॥ २४ ॥ जो असाध्य रोगोंकी चिकित्सा नहींकरते । वे श्रेष्ठ वैद्य हैं ॥ इसवास्ते साध्य असाध्य कीपरीक्षामें वैद्योंको श्रमकरना चाहिये ॥२५
रोगज्ञानोपाया अग्रे वक्ष्यन्ते । शीते शीत प्रतीकारमुष्णे तृष्णा निवारणम् । कृत्वा कुर्य्यात् क्रियां प्राप्तां क्रियाकालं न हापयेत् ॥२६॥ अप्राप्ते वा क्रियाकाले प्राप्ते वा न क्रिया कृता ॥ क्रियाहीनातिरिक्ता च साध्येष्वपि न सिध्यति ॥२७॥ (क) [अयमर्थः।] काले चिकित्साऽवसरे । अप्राप्ते ऽनागते । या क्रिया चिकित्सा । यथा ज्वरे जीर्णतामप्राप्ते तरुण एव कषायदानक्रिया न सिध्यति ।

भा० रोग ज्ञान के उपाय आगे कहे हैं ॥ शीत में शीतका इलाज । और उष्ण में उष्ण का निवारण करके प्राप्त क्रिया को करे और क्रिया कालको न त्याग करे ॥ २६ ॥ अप्राप्त क्रियाकालमें जो चिकित्साकीजातीहै और जो प्राप्तकाल में नहीं कीजाती ॥ तथा हीन क्रिया या औरकी और क्रियाभी बहु साध्यरोग में भी नहीं सिद्ध होती ॥ २७ ॥ (क) यह अर्थ है कि चिकित्सा का समय न जानेपर । जो चिकित्सा । जैसे जीर्णता को नप्राप्त हुवे ज्वरमें अर्थात् तरुण ज्वर में कषायदान क्रिया नहीं सिद्ध होती ॥

(ख) या च क्रिया चिकित्सावसरे प्राप्ते न कृत्वा । अर्थात् पश्चात् कृता । (ग) यथा दाहे कथञ्चिच्छान्ते पश्चाच्छीतलानुलेपनादि क्रिया । तथा हीनातिरिक्ता च क्रिया साध्येष्वपि न सिद्ध्यति ॥ अतिरिक्तां हीनां च क्रियां वर्ज्जयन्नाह

विकारेऽल्पे महत् कर्म्म क्रिया लघ्वी गरीयसी ॥ द्वयमेतद कौशल्यं कौशल्यं युक्त कर्म्मता ॥ २८ ॥

क्रियायास्तु गुणालाभे क्रियामन्यां प्रयोजयेत् ॥ पूर्वस्यां शान्तवेगायां न क्रिया सङ्करोहितः ॥ २९ ॥

(क) भिन्नरूपाभिस्तु क्रियाभिःसाङ्कर्य्यमपि न दोषाय ।

भा० (ख) जो क्रिया चिकित्साका अवसर प्राप्त होनेमें नहीं की गई । अर्थात् पीछे से कीगई ॥ (ग) जैसे दाह किसी न किसी तरह शान्त होनेमें पीछे से शीतल अनुलेपनादि क्रिया । उसी प्रकार हीन और अतिरिक्त क्रिया साध्यमें भी नहीं सिद्ध होती ॥ अतिरिक्त और हीन क्रिया को त्यागते हुवे कहते हैं ॥ अल्प विकारमें बड़ी क्रिया और बड़े विकारमें हीन क्रिया । ये दोनोही अकुशलता हैं । और उचित कर्म्मही कुशलता है ॥ २८ ॥ क्रियाका गुण न प्राप्त होतो दूसरी क्रिया करे ॥ पहिली क्रियासे शान्त वेग होनेमें क्रिया संकर हित नहीं होती है ॥ २९ ॥ (क) भिन्न रूप क्रियासे जो सांकर्य्य हित होता है वो दोषके अर्थ नहीं है ॥ जैसे कि कहा है ।

(क) [यत आह] क्रियाभिस्तुल्यरूपाभिर्न्न क्रियासङ्क रो हितः ॥ ताभिस्तु भिन्नरूपाभिः साङ्कर्य्यं नैव दुष्यति ॥ ३०॥ [अत एवोक्तम्] लङ्घनं बालुकास्वेदो नस्यं निष्ठीवनं तथा ॥ अवलेहोऽञ्जनञ्चापि। प्राक् प्रयोज्यं त्रिदोषजे ॥ ३१॥ [ज्वर इतिशेषः।] नचैकान्ते न निर्द्दिष्टे शास्त्रे निविशते बुधः॥ स्वयमप्यत्र भिषजा तर्कनीयं चिकित्सना ॥ ३२ ॥ [यत आह] उत्पद्यते च सावस्था दोषकाल वलम्प्रति। यस्या कार्य्यमकार्य्यं स्यात् कर्म्मकार्य्यं विवर्जितम् ॥ ३३ ॥ (क) विवर्ज्जितं कर्म्म कर्त्तव्यं भवतीत्यर्थः।

भा॰ तुल्यरूप क्रियाओंसे जो संकर होता है वो हित नहीं है। भिन्नरूप उनसे जो संकरता होती है। वो दोष नहीं करती ॥ ३०॥ इसीवास्ते कहाहै ॥ लंघन बालूका स्वेदना स कुल्ला। तथा अवलेह और अंजन भी इन को त्रिदोषसे उत्पन्न हुवेमें पहिले देना चाहिये ॥ ३१॥ ज्वर ग्रेह शेष ए कान्त करके कहे हुवे शास्त्रपर पंडित नहीं रहते ॥ यहाँ पर वैद्य कोखुद भी चिकित्सना। विचारनी चाहिये ॥ ३२॥ जैसे कि कहा है ॥ दोषकालबल में वो अवस्था उत्पन्न होती है। जिसमें करने के योग्य कर्म्म अकार्य्य होताहै अर्थात् करनेके अयोग्य होता है ॥ और कार्य्य कर्म्म छोड़ा जाताहै ॥ ३३॥ (क) विवर्ज्जित कर्म्म करने के योग्य होता है ॥

[अथ चिकित्सायां फलमाह।]

क्वचिदर्थः क्वचिन्मैत्री क्वचिद्धर्म्मः क्वचिद्यशः ॥ कर्म्माभ्यासः क्वचिच्चेति चिकित्सा नास्ति निःफलम् ॥ ३४ ॥ आयुर्व्वेदोदितां युक्तिं कुर्व्वाणा विहिताश्च ये।

पुण्यायुर्वृद्धिसंयुक्ता निरोगाश्च भवन्ति ते ॥३५॥
नैव कुर्व्वीत लोभेन चिकित्सा पुण्यविक्रियम् ॥
ईश्वराणां वसुमतां लिप्सेतार्थन्तु वृत्तये ॥३६॥
चिकित्सितं शरीरं यो न निष्क्रीणाति दुर्म्मतिः ॥
स यत्करोति सुकृतं सर्व्वं तद्भिषगश्नुते ॥३७॥
न देशो मनुजैर्हीनो न मनुष्या निरामयाः ॥ ततः
सर्व्वत्र वैद्यानां सुसिद्धा एव वृत्तयः ॥३८॥

(अस्य चिकित्साया अङ्गानि।)

भा० अनन्तर चिकित्साका फल कहतेहैं ॥ कहींपर अर्थ कहीं मैत्री अर्थात् मित्रता कहीं धर्म्म और कहीं यश। तथा कहींपर कर्म्मका अभ्यास इस प्रकार चिकित्सा निष्फल नहीं होती ॥३४॥ जो आयुर्वेद में कही हुई विहितयुक्ति को करनेवालेहैं ॥ वे पुण्य आयुकी वृद्धि से युक्तहुवे निरोगी होतेहैं ॥३५॥ लोभसे चिकित्सा तथा पुण्यका विक्रय नकरे ॥ वृत्तिके अर्थ राजा और धनाढ्यों के द्रव्यको चाहे ॥३६॥ चिकित्सा कियेहुवे शरीरको जो दुर्म्मति शुद्ध नहीं करता ॥ वोजो सुकृत करताहै उसको वैद्य भक्षण करताहै ॥३७॥ मनुष्योंकरके हीन कोई देश नहींहै और रोगसे रहित कोई मनुष्य नहीं है ॥ तिस्से सब जगह वैद्योंकी सुसिद्धही वृत्तियांहैं ॥३८॥ अनन्तर चिकित्साके अंगोंको कहतेहैं ॥)-

रोगी दूतो भिषग्दीर्घ मायुर्द्रव्यं सुसेवकः ॥ सदौषधं चिकित्सायामं इत्यङ्गानि बुधाजगुः ॥३९॥
[तत्र रोगिणो लक्षणमाह।] रोगो यस्यास्ति रोगी स स चिकित्स्यस्तु यादृशः ॥ यादृशश्चाचिकित्स्योऽपि वक्ष्यमाणो निशाम्यताम् ॥४०॥ [तत्र चिकित्स्यः।]

भा० रोगी दूत वैद्य दीर्घ आयु द्रव्य अच्छा सेवक ॥ और अच्छी दवा द
सप्रकार चिकित्साके ये अंग पंडितोंने कहेहैं ॥ ३९॥ उसमें रोगीका ल
क्षण कहतेहैं ॥ रोग जिसको है वो रोगी वोह जिस प्रकार चिकित्सा यो
ग्य होताहै और चिकित्सा के अयोग्य आगे कहे हुवोंको सुनिये ॥
उसमें चिकित्सा के योग्यको कहतेहैं ॥

निजप्रकृति वर्णाभ्यां युक्तः सत्वेन चक्षुषा ॥ चि
कित्स्यो भिषजां रोगी वैद्यभक्तो जितेन्द्रियः ॥४१॥
(क) सत्वं व्यसनाभ्युदय क्रियादिष्वविह्वलताकरं तेन
युक्तः । चक्षुषा चक्षुरुपलक्षितेन । ततोऽन्येनापीन्द्रिये
ण चिकित्स्यः रोगान् मोचयितव्यः ॥ [अन्यत्र]
आयुष्मान् सत्ववान् साध्यो द्रव्यवान् मित्रवानपि ।
चिकित्स्यो भिषजा रोगी वैद्यवाक्य कृदास्तिकः ॥ ४२॥
आयुर्वेदोऽस्तीति मतिर्यस्य । आस्तिकः । (अथाचिकि
त्स्यः) चण्डः साहसिको भीरुः कृतघ्नो व्यग्र एव च ।
शोकाकुलो मुमूर्षुश्च विहीनः करणैश्च यः ॥ ४३॥

भा० स्वभाविक प्रकृति और वर्णसे युक्त और बलसुक्त तथा चक्षुसे हीन
न हुवाहो ॥ वैद्यका भक्त और जितेन्द्रिय इस प्रकारका रोगी वैद्योंके चिकि
त्सायोग्यहोताहै ॥४१॥ (क) व्यसन और अभ्युदयकी क्रिया आदि में
विव्हलताको न करनेवाला उसकरके युक्त । चक्षुके उपलक्षणसे उस्से
अन्य इन्द्रियों करके । चिकित्सा योग्य होताहै ॥ । औरभी ।
आयुवाला बलवाला द्रव्यवान् और मित्रों करके युक्त ॥ तथा वैद्यके क
थनानुसार चलनेवाला आस्तिक इस प्रकारका रोगी वैद्यके द्वारा चि-
कित्सा करने योग्यहै ॥ ४२॥ आयुर्वेद है इस प्रकार की बुद्धिहै जिसकी
वोह आस्तिक ॥ अनन्तर चिकित्साके अयोग्य को कहतेहैं ॥ क्रोधी
साहसको करनेवाला भीरु कृतघ्न और व्यग्रचित्त शोकसे पीड़ित मरने

वाला और जो सामग्रीसेहीन ॥ ४३ ॥

वैरी वैद्यविदग्धश्च श्रद्धाहीनश्च शङ्कितः॥ भिषजा
मविधेयाःस्युर्नोपक्रम्याः भिषग्विधाः॥ ४४ ॥
एतानुपाचरन्वैद्यो बहून् दोषान वाप्नुयात् ॥

(क) चण्डोऽत्यन्त क्रोधशीलः। साहसिकः अविचार्य्यका
री भीरुर्भयशीलः। कृतघ्नो वैद्यकृतोपकार लोपकः।
व्यग्रोव्याकुलः। विहीनःकरणैश्च यःजितेन्द्रियशक्ति
रहितः। वैरी न चिकित्स्यः कदाचिद्रोगो द्रेके अपवाद
भयात् ।वैद्यविदग्धो वैद्यधूर्त्तः। तथा च सुश्रुत ॥

भा० वैरीवैद्यकीबुराई करनेवाला श्रद्धाहीन तथा शंकायुक्त ॥वैद्योंके अविधेय अर्थात् चिकित्सा करनेके अयोग्य होतेहैं औरजोवैद्यके क़िसिमसेहैं वोह भी असाध्यहै ॥ इनका उपचार करनेसे वैद्य बहुत दोषोंको प्राप्त होताहै ॥ ४४ ॥ (क) अत्यन्त क्रोध स्वभाव। विना सोचे करनेवाला। डरपोक। वैद्यके कियेहुवे उपकारको नमाननेवाला। व्याकुल। सामग्रीसे रहित जितेन्द्रिय शक्तिरहित। वैरी। चिकित्साकरने के अयोग्य। कदाचित् रोगके उद्रेक में अपवादके भयसे। वैद्यधूर्तः। उस प्रकार सुश्रुत ने कहाहै ॥

स न सिद्धि मवाप्नोति वैद्यस्तु गृहे यस्य न पूज्यते।

(क) शङ्कितोवैद्य विश्वासरहितः। भिषजामविधेयाः।
वैद्य वचना विधायिनः।भिषग्विधाः वैद्यतुल्याः एते
नोपक्रम्याः॥नचिकित्स्याः। [अथ दूतस्य लक्षणम्]

यश्चिकित्सकमानेतुं याति दूतः स कथ्यते ॥ स च
यादृक् समुचित स्तादृगत्र निगद्यते॥ ४५॥

भा॰ जिसरोगीके घरमें वैद्य इज्जत नहीं कियाजाता। वोह असाध्य होताहै ॥ (क) वैद्यके विश्वास सेरहित। वैद्यके कहने को न करने वाले। वैद्यके समान। ये चिकित्सा करनेके योग्य नहींहै ॥

अनन्तर दूतका लक्षण कहतेहैं ॥ जो वैद्यको लानेके वास्ते जाताहै उसको दूत कहतेहैं। वोह जिस प्रकारका उचित है उसको यहाँपर कहते हैं ॥ ४५ ॥

दूताः सुजातयोः व्यङ्गाः पटवो निर्मलाम्बराः। सुखिनोऽश्ववृषारूढाः शुभ्रपुष्प फलैर्युताः ॥ सजातयः सुचेष्टाश्च सजीव दिशिसङ्गता ॥ भिषजं समये प्राप्ता रोगिणः सुखहेतवे ॥ ४७ ॥

स जातयः रोगिसमान जातयः।

यस्यां प्राणमरुद्याति सानाड़ी जीव संज्ञिता ॥

[अथ दूतस्य यात्रायां शाकुन विचारः।]

भा॰ दूत अच्छी जातका व्यंग से रहित चतुर निर्म्मलवस्त्र के युक्त ॥ सुखी अश्व वृष पर आरूढ़ तथा शुभ्र पुष्प फल से युक्त ॥ ४६ ॥ अपने जातका अच्छी चेष्टावाला वह जीव दिशामें संगत समयपर वैद्य के प्राप्तहुवा रोगी के सुख हेतु होताहै ॥ ५७ ॥ रोगी के समानजातवाला ॥ जिसनाड़ी में प्राणवायु चलताहै वो जीव संज्ञावाली नाड़ीहै।

अनन्तर दूतकी यात्रा में शाकुन विचार कहतेहैं ॥

वैद्याह्वानाय दूतस्य गच्छतो रोगिणः कृते ॥ न शुभं सौम्य शाकुनं प्रदीप्तन्तु सुखावहम् ॥ ५८ ॥

(क) प्रदीप्तमग्निः दूतो रोगी च रिक्तहस्तो वैद्यं न पश्येत्। [अथच] रिक्तहस्तो न पश्येत्तु राजानं भिषजं गुरुमिति ॥ [अथ वैद्यस्य लक्षणम्]

भा० रोगीके अर्थ वैद्य को बुलाने के वास्ते जानेवाले दूतके सौम्य शकुन शुभनहीं होता और प्रदीप्त शकुन सुखावह होता है ॥ ४८ ॥
(क) दीप्त अग्नि दूत रिक्त हस्त रोगी वैद्य को नदेखे ॥ और खाली हाथ राजा को वैद्य को और गुरू को भी खाली हाथ न देखे ॥

चिकित्सां कुरुते यस्तु स चिकित्सक उच्यते ॥ स च यादृक् समीचीन स्तादृशोऽपि निगद्यते ॥४९॥
तत्वाधिगत शास्त्रार्थो दृष्टकर्मा स्वयङ्कृती ॥ लघु हस्तः शुचिः शूरः सज्जोपस्कर भेषजः ॥ ५० ॥
प्रत्युत्पन्न मतिर्धीमान् व्यवसायी प्रियम्वदः ॥ स त्यधर्म्म परो यश्च वैद्य ईदृक् प्रशस्यते ॥ ५१ ॥

भा० जो चिकित्सा को करताहै उसको वैद्य कहते हैं ॥ वह जिस प्रकार अच्छा होता है उस प्रकारके वैद्य को कहते हैं ॥ ४९ ॥ अच्छी प्रकार पढ़ा हुवाहै शास्त्रका अर्थ जिसने कामोंको देखा हुवा आपही किया हुवा। हलके हाथ वाला पवित्र शूर अच्छे औषध और शस्त्रादि करके युक्त ॥ ५० ॥ तर्क बुद्धिवाला बुद्धिवान व्यवसायवाला प्रियबोलनेवाला ॥ सत्य धर्म्ममें तत्पर इस प्रकारका जो वैद्य है वह प्रशस्त है ॥ ५१ ॥

(क) दृष्टकर्म्मा दृष्टा परेण कृता चिकित्सा येन सः स्वयङ्कृती स्वयं चिकित्साकुशलः। लघुहस्तः सिद्धिमद्धस्तः। [अथ निषिद्धो वैद्यः।] कुचैलः कर्कशस्तब्धो ग्रामीणः स्वयमागतः ॥ पञ्च वैद्या न पूज्यन्ते धन्वन्तरि समा यदि ॥ ५२ ॥ कर्कशः अप्रियवादी स्तब्धः साभिमानः। ग्रामीणः व्यवहारा चतुरः।

भा० (क) देखीहै दूसरे की कीहुई चिकित्सा जिसने। आप चिकित्सामें

कुशल हाथकी सिद्धिवाला ॥ अनन्तर निषिद्ध वैद्य को कहते हैं ॥
मैले कपड़े पहननेवाला । अप्रिय भाषण करनेवाला । मूर्ख गंवार और बिन बुलाये आनेवाला । ये पांच प्रकारके वैद्य धन्वन्तरि के समान हुये भी नहीं पूजन किये जाते हैं ॥ ५२॥ (क) अप्रियवादी । अभिमानी। व्यवहार में मूढ़ ॥

[अथ वैद्यस्य कर्म्माह।]

व्याधेस्तत्त्वपरिज्ञानं वेदनायाश्च निग्रहः। एतद्वैद्यस्य वैद्यत्वं न वैद्यः प्रभुरायुषः ॥ ५३॥

[अस्यायमर्थः] (क) व्याधेः सम्यक् परिचयो व्यथा शांतिकरणं वैद्यस्य कर्म्म न तु वैद्य आयुषः प्रभुरित्यर्थः। अपरे त्वेवं व्याचक्षते। व्याधेस्तत्त्वतः परिचयो वेदनाया शान्तिकरणञ्च । एतदेव वैद्यस्य वैद्यत्वं किन्तु वैद्य आयुषः प्रभुः आगन्तु मृत्युघातहरणात् ।

तथा च सुश्रुते धन्वन्तरिः ॥

भा० अनन्तर वैद्यके कर्म्म कहते हैं । रोगके तत्त्वका ज्ञान । और वेदनाका अवरोध । ये वैद्य का वैद्यपना है वैद्य आयुका स्वामी नहीं है॥ ५३॥
(क) इसका यह अर्थ है । रोगका जानना । पीड़ाकी शान्ति । ये वैद्यका कर्म है न कि वैद्य आयुका प्रभु है ॥ दूसरे इस प्रकार व्याख्या करते हैं ॥
व्याधिका तत्त्वसे परिचय और वेदना की शान्ति करनी भी । ये ही वैद्यका वैद्यत्व नहीं है किन्तु वैद्य आयुका स्वामी है । क्यों कि आगन्तुक घात मृत्यु के हरण करने से । इस प्रकार सुश्रुतमें धन्वन्तरि ने कहा है ॥

एकोत्तरं मृत्युशत मथर्व्वाणः प्रचक्षते। तत्रैकः कालसंज्ञः स्यात् शेषास्त्वागन्तवः स्मृताः ॥ ५४॥

[अयमर्थः] अथर्व्वाणः अथर्व्व तत्त्वज्ञत्वेनाथर्व्व तुल्याः।

मृत्युमेकोत्तरं शतंप्रचक्षते । तत्रैको मृत्युः कालसंयुक्तः । काल आयुषोऽन्ते शरीरिणामवश्यं संहर्त्ता । सर्वैरु पायैर्निवारयितु मशक्यः । स ब्रह्मादीनामायुषोऽन्ते संहरति । यत आह लिङ्गपुराणे । कार्त्तिकेयं प्रति महादेवः । (ख) ममायुर्ग्रसते कालः कुतः पुत्र । रसायनमिति । तेन कालेन संयुक्ता । संहाराय नियुक्तः सोऽवश्यं भावी । शेषाः शतं मृत्यवः आगन्तवः। आगन्तुरूपहेतु जन्मानः कार्य्यकारणयो रभेदोपचारात । आगन्तवो हेतवोयथा ॥

भा० एकसे एक (१०१) मृत्यु अथर्वण वेदके जाननेवालोंने कहेहैं। उसमें एक की काल संज्ञाहै बाकी आगन्तुक कहेगये हैं ॥ ५४॥ (क) इसका यह अर्थहै । अथर्ववेदके जानने से अथर्व के समान । मृत्यु एकसे एक कहेहैं । उसमें एक मृत्यु कालकरके युक्त है ।काल आयुके अन्तमें मनुष्यों का अवश्य संहार करताहै । अर्थात् सब उपायोंसे दूर करनेको । अशक्य । वह ब्रह्मादिकोंकी आयुके अन्तमें संहार करता है । जैसे कि लिंगपुराण में कार्तिक स्वामी से महादेव ने कहाहै ॥ (ख) हे पुत्र मेरी आयुको काल ग्रसता है। तब रसायन कहां ॥ उसकालसे संयुक्त । संहारके अर्थ नियुक्त वह अवश्य होनेवाला है । बाकी १०० मृत्यु आगन्तुक हैं । आगन्तुरूपकारण जन्मवाले । कार्य्य और कारणके अभेदोपचार से । आगन्तुक हेतु जैसे ॥

विषभक्षणमजीर्णेऽत्यन्त भोजनञ्च दुर्देशजलपानम् । तथाऽनिबलवैरि व्याघ्र वनमहिषमत्तमातंगा

दि ॰ भियुद्दम् ॥ दन्द्वशूकेन क्रीडनमत्युच्चवृक्षाग्रारो हणम् बाहुभ्याम् । महातरङ्गिणीतरणमेकाकिनो रा- त्रौ दुर्गमार्गे गमनम् ॥ ५६ ॥ इत्यादि । आगन्तुहेतजा मृत्यवो दुर्निमित्ता भाविभावनाबलवत्त्वादायुषि सत्यपि मारयन्ति । यथा मक्षिका तैलवर्त्तिवह्निषु विद्यमानेषु वायुना दीपं नाशयन्ति । तथा च ।

तथा सत्यपि तैलादौ दीपं निर्वापयेन्मरुत् ॥ एव

मायुष्यहीनेऽपि हिंसन्त्यागन्तुमृत्यवः ॥ ५७ ॥

भा० विभक्षण अजीर्ण बहुतभोजन दुष्टदेशका जलपान । उसीप्रकार बहुत बलवाले वैरी व्याघ्र जंगली भैंसा और मत्तहाथी इनके साथ युद्ध ॥ ५५ ॥ दो नोकदार पदार्थों करके खेलना और बहुत ऊंचे वृक्षकी चोटी पर चढ़ना और हाथोंसे । बड़ी तरंगवाली नदीमें तैरना । अकेला रातमें अथवा किले में और मार्ग में जाना ॥ ५६ ॥ इत्यादि । आगन्तु हेतुसे उत्पन्नहुए दुर्निमित्त भावी भावनाके बलसे आयुके रहने पर भी मारडालते हैं ॥ जैसे दीवेमें तेलबत्ती और आग रहनेपरभी वायुसे दीप नाशहोता है । उस प्रकार कहा है । उस प्रकार होनेपर भी तेल लेकर आदिमें दीवे को वायु बुझावता है । इसी प्रकार आयुके हीन न होने परभी आगन्तुक मृत्यु नाश करते हैं ॥ ५७ ॥

(क) किन्तु आगन्तुनिमित्तानि निवारयितुञ्च शक्यन्ते ।

यत आह सुश्रुते धन्वन्तरिः ।

दोषागन्तुनिमित्तेभ्यो रसमन्त्रविशारदौ ॥ रक्षेतां

नृपतिं नित्यं यत्नाद्वैद्यपुरोहितौ ॥ ५८ ॥

(ख) वैद्यमन्त्रिणौ नृपतिं नित्यं यत्नाद्रक्षेताम् । कुतः दोषागन्तुनिमित्तेभ्यः दोषा निषिद्धाहारविहारभूयिता

वातपित्त कफ रोगोत्पादका:। आगन्तव- निषिद्धा विहारा अति बलवैरि विग्रहादय:। ते निमित्तानि येषान्तेभ्य: शातमृत्युभ्य:। ननु वैद्य पुरोहितौ कथं शातं मृत्युं निवारयितुं शक्तौ तत्राह। (ख) यतस्तौ रसमन्त्र विशारदौ प्रथमं वैद्य दिनचर्य्या रात्रि चर्य्यर्तु चर्य्योक्ताहार विहाराभ्यां वात पित्त कफ धातुमलान् समानेव रक्षति ॥

भा० (क) किन्तु आगन्तु निमित्त रोगों को दूर करसक्ते हैं। जैसा सुश्रुत में धन्वन्तर ने कहा है। रस और मंत्र में निपुण ऐसे वैद्य और पुरोहित दोष और आगन्तु निमित्तों से सदा राजा की रक्षा करें ॥ ५०॥ (ख) वैद्य और मंत्रशास्त्री राजा को नित्य यत्न से बचावें। कैसे। दोष अर्थात् निषिद्ध आहार विहार से दूषित वात पित्त कफ इन रोगों का उत्पन्न करनेवाला। आगन्तुक अर्थात् निषिद्ध विहार अतिबलवाले शत्रु के साथ लड़ाई। वे हैं निमित्त जिनके उन शात मृत्यु आदियों से। (ननु) शंका। वैद्य पुरोहित क्योंकर शात मृत्यु को निवारण कर सक्ते हैं। उसको कहते हैं। (ख) क्योंकि वे दोनों रसमंत्र में चतुर होतेहैं। प्रथम वैद्य दिनचर्य्या रात्रिचर्य्या और ऋतुचर्य्या इनमें कहेहुये आहार विहारोंसे समान वात पित्त कफ और धातु मल इनको ही रक्षा करता है ॥

ततो रक्षज्ञत्वा द्रुसे मृत्युं जयादिभि निषिद्धाहार विहार दूषित दोषजनितान् विकारान् मृत्यु हेतून प्रहरति। मंत्रीच सद् बुद्धि दानेन मृत्युहेतुभ्यो निषिद्ध विहारेभ्यो नृपतिं निवारयति। तत आगन्तु मृत्यवो निवारयितुं शक्या तत्त्ववश्यम्भा विनः। [अथायुर्विचार:।]

भिषगादौ परीक्षेत रुग्णस्यायु: प्रयत्नत: ॥ तत आयुषि वीक्षितो चिकित्सा सफला भवेत् ॥ ५१ ॥

भा० और रसके जाननेके कारण मृत्युको जय करनेवाले रसोंसे निषिद्ध आहार विहारोंसे दूषित दोषों से उत्पन्न हुवे मृत्युके कारण विकारोंको दूर करतेहैं। तथा मंत्री भी अच्छी बुद्धि देनेके द्वारा। मृत्युके हेतु निषिद्ध विहारोंसे राजाको हटाते हैं। उसकारण आगन्तु मृत्युवों को दूर करनेको समर्थहैं। और न कि अवश्य होनेवालोंको ॥ अनन्तर आयुका विचार कहतेहैं ॥ वैद्य पहले यत्नके साथ रोगीकी आयुपरीक्षा करे ॥ क्यों कि आयु बहुत होनेमें चिकित्सा सफल होती है ॥ ५९ ॥

[तत्र दीर्घायुषो लक्षणानि।]

सौम्या दृष्टि र्भवेद् यस्य श्रोत्रं वक्त्रन्तथैवच ॥ स्वादुगन्धं विजानाति स साध्यो नात्र संशयः ॥ ६० ॥
पाणिपादौ च यस्योष्णौ दाहः स्वल्पतरो भवेत् ॥ जिह्वा तु कोमला यस्य स रोगी न विनश्यति ॥ ६१ ॥
स्वेद हीनो ज्वरो यस्य श्वासो नासिकया चरेत ॥ कण्ठश्च कफहीनः स्यात् स रोगी जीवति ध्रुवम् ॥ ६२ ॥
यस्य निद्रा सुखेन स्यात् शरीरं द्युतिमद्भवेत् ॥ इन्द्रियाणि प्रसन्नानि स रोगी नैव नश्यति ॥ ६३ ॥

भा० उसमें दीर्घायुका लक्षण कहतेहैं ॥ जिसकी दृष्टि और कर्ण तथा मुख सौम्य होतेहैं ॥ और मधुर तथा गन्ध को जो जानता है वो रोगी साध्यहै इसमें कुछ संशय नहीं है ॥ ६० ॥ जिसके हाथ पैर गरम और दाह थोड़ा होताहै। और जिसकी जिह्वा कोमल होती है वह रोगी नहीं मरता ॥ ६१ ॥ जिसको विना पसीने ज्वर होताहै। और नाकसे सांस चलता है। तथा कंठ कफसे हीन हो वह रोगी अवश्यही जीता है ॥ ६२ ॥ जिसको नींद सुखसे आतीहै और शरीर कान्तिवाला है। और जिसकी इन्द्रियें प्रसन्न हैं वह रोगी मरता ही नहीं ॥ ६३ ॥

[अथ स्वल्पायुषो लक्षणानि।]

शरीरशीलयोर्यस्य प्रकृतेर्विकृतिर्भवेत् ॥ तदरिष्टं समासेन व्यासतश्च निबोध मे ॥ ६४ ॥ शृणोति विविधान् शब्दान् विपरीतान् शृणोति च। यो न शृणोति चाकस्मात्तं वदन्ति गतायुषम् ॥ ६५॥ यस्तूष्ण मिव गृह्णाति शीतमुष्णञ्च शीतवत् ॥ उष्णगात्रोऽतिमात्रं यो भृशं शीतेन कम्पते ॥ ६६॥ (तमपि गतायुषं वदन्तीत्यन्वयः)

भा० अनन्तर अल्पायुका लक्षण कहतेहैं ॥ जिसका शरीर और स्वभाव बदल जाताहै संक्षेपसे वही अरिष्ट है विस्तार पूर्वक कहता हूं ॥ ६४॥ जो नानाप्रकार के शब्दोंको सुनताहै और जो विपरीत सुनताहै तथाजो अकस्मात नहीं सुनता उसको गतायु कहतेहैं ॥ ६५॥ जो शीतको गरम के सदृश ग्रहण करताहै औरजो उष्णको शीतके सदृश ग्रहण करताहै। और जिसका शरीर बहुत गरमहै अथवा बहुत शीतसे कांपताहै उसको भी गतायु कहतेहैं ॥ ६६ ॥

प्रहारं नैव जानाति यो गच्छेदन्यथापि वा ॥ पांशुनेवावकीर्णानि यश्च गात्राणि मन्यते ॥ ६७ ॥ वर्णान् यथा वा राज्यो वा यस्य गात्रे भवन्ति हि ॥ स्नातानुलिप्तं यञ्चापि भजन्ते नीलमक्षिकाः ॥ ६८ ॥ विपरीतेन गृह्णाति रसान् यश्चोपयोजितान् ॥ यो वा रसान्न सेवेत तं गतासुम्प्रचक्षते ॥ ६९ ॥ सुगन्धं वेत्ति दुर्गन्धं दुर्गन्धञ्च सुगन्धवत् ॥ गृह्णाति यो ऽन्यथा गन्धं शान्ते दीपे निरामयः ॥ ७० ॥

भा० जिसको चोट नहीं मालूम होती या उलटा चलता है । और जिसका शरीर धूल लगी हुवासा है उसको गतायु कहते हैं ॥ ६७ ॥ जिसके शरीर में वर्ण और का और होजाता है । अथवा लकीरें पड़जाती हैं ॥ और जिस स्नान करके लेप किये हुयेपर नीले भ्रमर बैठते हैं ॥ ६८ ॥ और जो उपयोग किये हुवे रसों को विपरीत अथवा जो रसों को न सेवन करे उसको गतायु कहते हैं ॥ ६९ ॥ जो निरोगी सुगंधको दुर्गंध जाने और दुर्गंधको सुगंध ॥ इस प्रकार जो अन्यथा गन्धको ग्रहण करता है और दीवेके शान्त होनेमें देखता है ॥ ७० ॥

रात्रौ सूर्य्यं ज्वलन्तं वा दिवा वा चन्द्रवर्चसम् ॥ दिवा ज्योतींषि यश्चापि ज्वलितानीव पश्यति ॥ ७१ ॥

(क) दिवा वा चन्द्रवर्चसम् । सूर्य्यमित्यन्वयः। ज्योतींषि नक्षत्राणि । विद्युत्वतोऽसितान्मेघान् गगने निर्घने घनान् ॥ विमानयान प्रासादैर्यश्च सङ्कुलमम्बरम् ॥ ७२॥ यश्चानिलं मूर्तिमन्तमन्तरीक्षे च लोकते ॥ धूमनीहार वासोभिरावृता मिव मेदनीम् ॥ ७३॥ प्रदीप्तमिव यो लोकं यो वाप्लुतमिवाम्भसा ॥ भूमिमष्टापदाकारां लेखाभिर्यश्च पश्यति ॥ ७४ ॥ यो न पश्यति अरुन्धतीं यश्च देवी मरुन्धतीम् ॥ ध्रुवमाकाशगङ्गाञ्च तं वदन्ति गतायुषम् ॥ ७५ ॥

भा० या रातमें प्रकाशमान सूर्य्य अथवा दिनमें प्रकाशित चन्द्रको और दिनमें आग लगनेके समान नक्षत्रों को देखता है उसको गतायु कहते हैं ॥ ७१ ॥ (क) दिनमें चन्द्रमा प्रकाश। रातमें सूर्य्य इस प्रकार अन्वय है । (ज्योतींषि) अर्थात् नक्षत्र । साफ आस्मान में बिजलीवाले काले मेघों को। और विमान असवारी इनसे घिरे हुवे आकाश को जो

देखता है ॥ ७२ ॥ और जो आकाशमें मूर्तिवाले वायुको देखता है। तथा धूम और कुहेरा इन करके वस्त्रसे वेष्टित हुई के मानिंद देखता है उसको गतायु कहते हैं ॥ ७३ ॥ जो लोकको जलने हुवेके समान देखता है। अथवा पानीसे डूबनेके समान देखता है। या लकारोंसे अष्टकोण हुई के मानिन्द देखता है उसको गतायु कहते हैं ॥ ७४ ॥ जो नक्षत्रोंको नहीं देखता और अरुन्धती देवी को भी नहीं देखता। तथा ध्रुव और आकाश गङ्गाको भी नहीं देखता उसको गतायु कहते हैं ॥ ७५ ॥

आदर्शेऽम्बुनि घर्मे वा छायां यश्च न पश्यति ॥ प
श्यत्येकाङ्गहीनां वा विकृतां वान्यसत्वजाम् ॥ ७६ ॥
श्वकाक कङ्क गृध्राणां प्रेतानां यक्षरक्षसाम् ॥ आतु
रो लभते मृत्युं स्वस्थो व्याधि मवाप्नुयात् ॥ ७७ ॥
ह्री श्रियौ नश्यतो यस्य तेज ओजः स्मृति प्रभा (प्रतिभा)
। अकस्माच्च भजन्ते यं स गतासु रसंशयम् ॥ ७८ ॥
यस्याधरोष्ठौ पतितो क्षिप्तश्चोर्द्ध तथोत्तरः ॥ उभौ
वाजाम्बवाभासौ दुर्लभं तस्य जीवितम् ॥ ७९ ॥
आरक्ता दशना यस्य श्यावा वा स्युः पतन्ति वा । ख
ञ्जन प्रतिमा वापि तं गतायुषमादिशेत् ॥ ८० ॥

भा० जो शीशेमें जलमें धूपमें छाया को नहीं देखता ॥ और जो देखता है तो एक अंगसे हीन विकृत और जीवोंकी सी ॥ ७६ ॥ कुत्ता कौव्वा गिद्ध और प्रेतोंकी तथा यक्षराक्षस। इनकी छाया जो देखता है वो रोगी मृत्युको प्राप्त होता है और स्वस्थ रोगी होजाता है ॥ ७७ ॥ अकस्मात् जिसकी लज्जा और कान्ति नष्ट होजाती है। तथा तेज ओज स्मृति प्रभा ये जिसके अकस्मात् हो जाते हैं। उसको अवश्य गतायु कहना चाहिये ॥ ७८ ॥ जिसके नीचे ऊपर के होठ लटक पड़ते हैं तथा उत्तं डालनेसे

ऊपर होजाता है ॥ और दोनों जामन के समान काले पड़ जाते हैं उसका जीवना दुर्लभ है ॥ ७९ ॥ जिसके दांत आसपास लाल हों अथवा काले हों या गिरपड़ें अथवा खंजन के समान कान्ति हो। उसको गतायु कहते हैं ॥ ८० ॥

कृष्णा तथाम्बुलिप्ता च जिह्वा शूना च यस्य वै ॥ कर्कशा वा भवेद्यस्य सोऽचिराद्विजहात्यसून् ॥ ८१ ॥ कुटिला स्फुटिता वापि शुष्का वा यस्य नासिका ॥ अवस्फूर्जति भग्ना वा स न जीवति मानवः ॥ ८२ ॥ (स्फूर्जति श्वासवेगेनोच्चैः शब्दं करोतीत्यर्थः।) सङ्क्षिप्ते विषमे स्तब्धे रूक्षे सास्रे च लोचने ॥ स्यातां परिस्रुते यस्य स गतायुर्नरो ध्रुवम् ॥ ८३ ॥

भा० काली तथा लिपी हुई या कांटे से युक्त जिसकी जीभ होती है ॥ अथवा कर्कश होती है वोह शीघ्र प्राणों को त्याग करता है ॥ ८१ ॥ टेढ़ी फटी सी या शुष्क या भग्न हुई जिसकी नाक धौंकनी के मानिन्द धौंकती है। वो मनुष्य नहीं जीता ॥ ८२ ॥ (श्वास के वेग से उच्च शब्द करती है।) भीतर को धसी हुई या छोटीबड़ी अथवा पथराई हुई रूखी रक्त के सहित बहतीहुई इस प्रकार की जिसकी आंखें होती हैं वो मनुष्य निश्चय गतायु है ॥ ८३ ॥

केशाः सीमन्तिनो यस्य सङ्क्षिप्ते विनते भ्रुवौ ॥ लुठन्ति चाक्षिपक्ष्माणि सोऽचिराद्याति मृत्यवे ॥ ८४ ॥ (लुठन्ति पतन्ति।) नाहरत्यन्नमास्यस्थं न धारयति यः शिरः ॥ एकाग्रदृष्टिर्मूढात्मा सद्यः प्राणान् विमुञ्चति ॥ ८५ ॥ उत्थाप्यमानो बहुशः संमोहं योऽधिगच्छति ॥ बलवान् दुर्बलो वापि त—

भिषगा दिशेत् ॥ ८६ ॥ निद्रा निरन्तरं यस्य यो जागर्त्ति च सर्व्वदा ॥ मुह्येद्वा वक्तु कामश्च प्रत्याख्येयः स जानता ॥ ८७ ॥ उत्तरोष्ठञ्च यो लिह्यादुत्करांश्च करोति यः ॥ प्रेतैर्वा भाषते सायं प्रेतरूपं तमादिशेत् ॥ ८८ ॥ (उत्करान् हस्त पादादि विक्षेपान् ।) खेभ्यश्च रोम कूपेभ्यो यस्य रक्तं प्रवर्त्तते ॥ पुरुषस्या विषार्त्तस्य स सद्यो जीवितं त्यजेत् ॥ ८९ ॥ सम्यक् चिकित्स्यमानस्य विकारो योऽभिवर्द्धते ॥ प्रक्षीणबलमांसस्य लक्षणं तद् गतायुषः ॥ ९० ॥

भा० जिसके सिरके बाल उ डगये हों या छोटी झुकी भवें जिसकी हो जावें ॥ और आंख की पलकें गिरपड़ें वोह थोड़े ही काल में मरजाता है ॥ ८४ ॥ जिसके मुखमें का अन्न नीचे नहीं उतरता और जिसका सिरनीचे गिरा पड़ता है ॥ एकाग्र दृष्टि किया हुवा स्तब्ध इस प्रकार का रोगी तत्काल प्राणोंको त्याग करता है ॥ ८५ ॥ उठने से जो बहुत से मोहको प्राप्तहोता है ॥ बलवान हो दुर्बल हो उसको वैद्य असाध्य कह देवे ॥ ८६ ॥ जो निरन्तर सोता है अथवा सर्वदा जागता है ॥ तथा बोलने की इच्छाकरता हुवा मोहको प्राप्त होताहै ॥ वो बुद्धिवान वैद्यके द्वारा जवाब देने योग्य है ॥ ८७ ॥ जो रोगी नींचे ऊपरके होठों को चाटे तथा जो हाथ पैरोंको पीटता है ॥ अथवा सायंकालमें प्रेतोंके साथ भाषण करता है उसको प्रेत रूप कहते हैं ॥ ८८ ॥ विषसे पीड़ित न हो ऐसे जिसपुरुषके मूं आंख कान इत्यादि छिद्रोंमेंसे अथवा रोम कूप से रक्त निकलता है ॥ वोह तत्काल मरता है ॥ ८९ ॥ अच्छी तरह इलाज किये का भी जो रोग बढ़ता है । और कमज़ोर तथा दुबले का जो रोग बढ़ता है वोह गतायु का लक्षण है ॥ ९० ॥

भूता प्रेताः पिशाचा श्च रक्षांसि विविधानि च ॥

मरणाभिमुखं जन्तु मुपसृत्य च नित्यशः ॥ तानि ये यज्ञवीर्य्याणि प्रतीच्छन्ति जिघांसया ॥ ६१॥ तस्मा त्मोघाः क्रियाः सर्वा भवन्त्येव गतायुषः॥

(क) नन्वायुषि सति चिकित्सायाः साफल्यमुक्तम्। आ युश्चेदस्ति तदा तदेव जीवन हेतुः॥ किं चिकित्सावि धानं तत्रोच्यते॥ (ख). आयुषि सति चिकित्सायाः फ लं वेदनानिग्रहः। (उक्तञ्च)

आयुष्मान् पुरुषो जीवेन् सव्यथो भेषजं विना॥
भेषजेन पुनर्जीवेन् स एवहि निरामयः॥ ६२॥

भा० भूत प्रेत पिशाच और नाना प्रकारके राक्षस। प्रतिदिन मरण के सन्मुख हुवे रोगीके पास जाकर उन औषधियों के वीर्य्यों को नष्ट करते हैं॥ ६१ उस कारण गतायु की सब क्रिया निष्फल होती हैं॥ (क) (ननु शंका) आयुके रहने पर चिकित्साकी सफलता कही। आयु होतो होती है तब वोही जीवनका हेतु है। क्या चिकित्सा का विधान उसमें कहा है॥ (ख) आयुके होनेपर चिकित्साका फल वेदनाका निग्रह है। कहा है। बिना औषध के आयुवाला पुरुष व्यथाके सहित जीता है॥ औरजो औषध करके फिरसे जीवे वोही निरोगी है॥ ६२॥

(क) किञ्च। आयुषि सत्यपि रोगी चिकित्सां विना उत्था तुं न शक्नोति। यत आह चरकः।

सति चायुषि नोपायं विनोत्थातुं क्षमो रुजो॥ दर्शि तश्चात्र दृष्टान्तः पङ्क लग्नो यथा गजः॥ ६३॥

किञ्च। चिकित्सां विनायुष्मानप्यवसीदति।

भा० (क) आयु के होनेपर भी रोगी चिकित्सा के बिना अच्छा नहीं हो सक्ता। जैसे कि कहाहै चरक ने। रोगी आयु होनेपर भी चिकित्सा के बिना उठ नहीं सक्ता॥ इसमें दृष्टान्त दिखायाहै। कि जैसे दल २ में फसा गज॥ ९३॥ चिकित्सा के बिना आयुवाला भी पीड़ित होताहै॥

यत आह सएव।

संति चायुषि नष्टः स्या दामयैश्चा चिकित्सितः॥
यथा सत्यपि तैलादौ दीपो निर्व्वाति वात्यया॥ ९४॥

अत एवोक्तम्। साध्या याप्यत्व मायान्ति याप्या गच्छन्त्यसाध्यताम्॥ घ्नन्ति प्राणान साध्यास्तु नराणाम क्रियावता मिति॥ ९५॥ चिकित्सा तु अनिश्चितायुषोऽपि कर्त्तव्या। यत आह।

भा० जैसे कि कहाहै वोही। आयुके रहनेपर भी चिकित्सा न किया हुवा पुरुष रोगोंसे मरजाताहै॥ जैसे तैलके रहनेपरभी आँधीसे दीवा गुल होजाताहै॥ ९४॥ इसीवास्ते कहा है॥ साध्यरोग याप्य होते हैं। और याप्य असाध्य होजाते हैं॥ वे इलाजवाले मनुष्योंको असाध्य रोग नाश करते हैं॥ ९५॥ इलाज तो अनिश्चित आयुवालेकी भी करनी चाहिये। जैसे कि कहाहै।

तावत्प्रतिक्रिया कार्य्या यावच्छ्वसिति मानवः॥
कदाचिन दैवयोगेन दृष्टाऽरिष्टोऽपि जीवति॥ ९६॥

१ (क) इति तु यस्या साध्यत्वं सन्दिग्धं तं प्रत्युक्तम्॥

येषु त्वसाध्यता शास्त्रेणानुभवेन विनिश्चिताः ते तु नन्नै चिकित्स्या। यत उक्तम्।

सद्वैद्यास्तेन ये साध्या नारभन्ते चिकित्सितु मिति

।अथ द्रव्यम्। सर्वे द्रव्य मये सन्ति रोगिप्रभृतयो यतः॥

विना वित्तं न भैषज्यं चिकित्साङ्गं ततो धनम् ॥ ६७॥

अथ परिचारकस्य लक्षणम्।

स्निग्धोऽजुगुप्सु बलवान् युक्तोव्याधितरक्षणे ॥ वैद्य वाक्य कृदश्रान्तो युज्यते परिचारकः ॥ ६८ ॥

भा॰ तब तक चिकित्सा करनी चाहिये जब तक मनुष्य श्वास लेता है । क्यों कि कदाचित् दैवयोग से मरण चिन्ह वालाभी रोगी जीवताहै ॥ ६६ ॥ (क) येह तो जिसकी असाध्यता सन्देह युक्त है उसके प्रति कहाहै ॥ जिनमें असाध्यता शास्त्र सेवा अनुभव से निश्चय की गई वे फिरसे चिकित्सा करने के योग्य नहीं है । जैसकि कहाहै ॥ वे सद्वैद्य नहीं है जो साध्यकी चिकित्सा शुरू नहीं करते ॥ अनन्तर द्रव्य कहतेहैं ॥ रोगि आदि सब द्रव्य चाहते हैं । क्यों कि बिना द्रव्य चिकित्साका अंग औषध नहीं होता इसवास्ते धन चाहिये ॥ ६७॥ अनन्तर सेवक का लक्षण कहतेहैं ॥ प्रीतिवाला अनिन्दक बलवान रोगी की रक्षा करने में युक्त । वैद्यके कहने के अनुसार चलने वाला । मेहनती इस प्रकार का परिचारक होना चाहिये ॥ ६८ ॥

(क) स्निग्धः प्रीतः अजुगुप्सुः अनिन्दकः । अथ भेषजस्य लक्षणम् ॥ वैद्यो व्याधिं हरेद्येन तद्द्रव्यं प्रोक्तमौषधम् ॥ तद्यादृशं भवेद्यस्या द्रोगघ्नन्तादृशं ब्रुवे ॥ ६६ ॥

[तत्रौषध ग्रहण परिभाषा।]

प्रशस्त देशे सञ्जातं प्रशस्तेऽहनि चोद्धृतम् ॥ अल्प मात्रं बहुगुणं गन्धवर्ण रसान्वितम् ॥ ७० ॥

भा॰ अनन्तर औषधका लक्षण कहतेहैं । वैद्य जिसके द्वारा व्याधिको दूर करताहै उसवस्तु को औषध कहते हैं । वोह जिस प्रकारकी रोग नाशक अवश्य होनी चाहिये वैसे को कहते हैं ॥ ६६ ॥ उसमें औषध लेने के नियम को कहतेहैं । अच्छे देशमें उत्पन्न हुई अच्छे दिन उखेड़ी । थोड़ी मा

ना करके युक्त बहुत गुणवाली गन्धवर्ण रसकरके युक्त ॥ १०० ॥

दोषघ्नमग्लानिकरमविकारि यत् ॥ समी
क्ष्य काले दत्तञ्च भेषजं स्याद्गुणावहम् ॥ १०१ ॥
आग्नेया विन्ध्यशैलाद्याः सौम्यो हिमगिरिः स्मृतः ॥
अतस्तदौषधानि स्युरनुरूपाणि हेतुभिः ॥ १०२ ॥
(क) आग्नेयाः अधिकाग्न्यांशाः सौम्यः अधिक सोमां
शः ॥ औषधयोः सर्वौषधानि । अन्नस्यार्थे अस्य ।

भा० दोष नाशक ग्लानि न करनेवाली न बहुत विकार को करने वाली।
देखकर समय पर दी हुई इस प्रकारकी औषधी गुणवह है ॥ १०१ ॥
विन्ध्याचलादिक पर्वत आग्नेय अर्थात् अधिक उष्ण गुण हैं ॥ और हि
मालय पर्वत सौम्य अर्थात् अधिक शीत गुण कहा गया है ॥ इसवास्ते उ
न में के औषध कारण के सदृश होते हैं ॥ १०२ ॥

(अनुरूपाणि सदृशानि ।)

अन्येष्वपि प्ररोहन्ति वनेषूपवनेषु च ॥ गृह्णीया
त्तानि सुमना शुचिः प्रातः सुवासरे ॥ १०३ ॥ आदि
त्यसम्मुखो मौनी नमस्कृत्य शिवं हृदि ॥ साधारण
धराद्रव्यं गृह्णीयादुत्तराश्रितम् ॥ १०४ ॥
(क) साधारण धराद्रव्यं । सर्वभूमि भवन्द्रव्यम् । उत्तरा
श्रितं स्वस्मात् उत्तरदिग्भवम् ॥

वल्मीककुत्सितानूपश्मशानोषरमार्गजाः ॥
जन्तुवन्हि हिमव्याप्ता नौषध्यः कार्य्यसाधिकाः ॥ १०५ ॥

भा० औरभी बाग़ जंगलेंमें उत्पन्न होती हैं। पवित्र और स्वस्थ चित्त होकर अच्छे दिन प्रातःकालमें उनको ग्रहण करे ॥ २०३ ॥ सूर्य्यके सन्मुख मौन धारणकरके हृदयमें शिवका ध्यानकर औरनमस्कारकरके उत्तर दिशाकी साधारण भूमिसे औषधका ग्रहण करे ॥ २०४ ॥

(क) सब भूमिमें उत्पन्न हुवे द्रव्योंको। अपनेसे उत्तरकी तरफ़ हुवे बिंबोट। कुत्सित व बहुत पानीकी जगह श्मशान ऊसर औरस्तेमें होनेवाली। तथा जीवजन्तु आग पाला इनसे व्याप्त औषधि कार्य्य साधक नहीं होती ॥ २०५ ॥

शरद्यखिलकार्य्यार्थं ग्राह्यं सरसमौषधम् ॥ वि
रेकवमनार्थन्तु वसन्तान्ते समाहरेत् ॥ २०६ ॥

(क) वसन्तान्ते वसन्त मध्ये समाहरेत् संगृह्णीयात्।

अतिस्थूलजटा याः स्युः तासां ग्राह्या स्त्वचो ध्रुवम्।
गृह्णीयात् सूक्ष्ममूलानि सकलान्यपि बुद्धिमान् २०७

अन्यच्च। महान्ति येषां मूलानि काष्ठगर्भाणि सर्व्वतः ॥
तेषान्तु वल्कलं ग्राह्यं ह्रस्वमूलानि सर्व्वशः ॥ २०८ ॥
न्यग्रोधादेस्त्वचो ग्राह्या सारः स्याद्बीजकादितः ॥
तालीसादेश्च पत्राणि फलं स्यात् त्रिफलादितः ॥ २०९

भा० शरदकालमें संपूर्ण कार्य्योंके अर्थ रस करके युक्त औषध लेनी चाहिये। वसन्तमें वमन और विरेचनके अर्थ लावे ॥ २०६ ॥ जो बहुत मोटी जटावाली ओषधी हैं उनकी छाल लेनी चाहिये ॥ औरछोटे मूलवाली सबकी जड़ बुद्धिवान् लेवे ॥ २०७ ॥ औरभी। जिनकी बड़ी जड़ चारों तरफ़ काष्ठसे भरीहैं ॥ उनकी छाल और छोटी जड़वालोंकी जड़ लेनी चाहिये ॥ २०८ ॥ वटादि वृक्षोंकी त्वचा लेनी चाहिये और विजयसारादिकोंका सार लेना चाहिये। तालीसादिकोंके पत्र और त्रिफलादिकोंके फल लेने चाहियें ॥ २०९ ॥

क्वचिन्मूलं क्वचित् कन्दः क्वचित् पत्रं क्वचित् फलम् ॥
क्वचित् पुष्पं क्वचित् सर्व्वं क्वचित् सारः क्वचित् त्वचः ॥
॥२१०॥ चित्रकं सूरणं निम्बो वासाच त्रिफला क्रमात् ॥
धातकी कण्टकारी च खदिरः क्षीरपादपः ॥ २११ ॥
क्वचिन्निम्बस्य गृह्णीयात् पत्राभावे त्वचामपि ॥
बालंफलन्तु विल्वस्य पक्वमारग्वधस्य च ॥२१२॥

भा० कहींपर जड़ कहीं कन्द कहीं पत्ते कहीं फल ॥ कहीं पुष्प कहीं सब कहीं सार और कहीं छाल कही है ॥ २१० ॥ क्रमसे चित्रका मूल सूरण का कन्द निंबके पत्ते और वांसेके भी पत्ते त्रिफला के फल धायका फूल कटेली का सब अंग खदिर का सार और वटादिकों की छाल लेनी चाहिये ॥ २११ ॥ कहींपर नीम के पत्तोंकी जगह छालभी लेवे ॥ बेलका कच्चा फल और अमलतास का पक्का फल लेवे ॥ २१२ ॥

अङ्गेऽनुक्ते जटा ग्राह्या भागेऽनुक्तेऽखिलं समम् ॥ पात्रेऽनुक्ते मृदः पात्रं कालेऽनुक्तेत्वह र्मुखम् ॥ २१३॥
नवान्येवहि योज्यानि द्रव्याण्यखिलकर्मसु ॥ विना विडङ्ग कृष्णाभ्यां गुड़ धान्याज्य माक्षिकैः॥२४॥
(धान्यमन्न) पुराणन्तु प्रशस्तं स्यात्ताम्बूलङ्काञ्जिकन्तथा॥ शुष्कंनवीन द्रव्यन्तु योज्यं सकलकर्म्मसु ॥२५॥

भा० जहांपर औषधिका अंग न कहा हो तो वहां जड़ लेनी चाहिये और भाग न कहाहो तो सब समभाग लेवे ॥ पात्र न कहा हो तो मट्टीका पात्र लेवे और समय न कहा होतो प्रातःकाल लेना चाहिये ॥ २१३॥ सब कामों में नवीनही द्रव्य योजना करना चाहिये ॥वाय विडंग पीपल गुड़ धानघृत शहतइनको छोड़के बाकी सब नवीन होनी चाहियें ॥ १४ ॥ (धान्य अर्थात अन्न) पुराने पान और कांजी अच्छी होनीहै ॥ सबकामोंमें सूकी और

नवीन औषध योजना करनी चाहिये ॥२२५॥

आर्द्रन्तु द्विगुणं युञ्ज्या देष सर्व्वत्र निश्चयः॥ गुडू
ची कुटजो वासा कूष्माण्डश्च शतावरी ॥ २२६॥
अश्वगन्धा सहचरी शतपुष्पा प्रसारिणी॥ प्रयोक्त
व्या: सदै वार्द्रा द्विगुणं नैव कारयेत्॥ २२७॥

(क) सहचरः कुरण्टकः कटसरैआ इतिलोके ॥

वासा निम्ब पटोल केतकबला कूष्माण्डकेंदीवरी।
वर्षाभूः कुटजाश्च कन्द सहिता सापूति गन्धास्मृता॥
॥२२८॥ ऐन्द्री नाग बला कुरुण्टक पुरोछत्रामृता सर्व्व
दा ॥साद्रा एवतु तत्र क्वचित द्विगुणिता कार्य्येषु योज्या
बुधैः॥ २२६॥

भा० गीलीदवा दूनी देनी चाहिये यह सब जगह निश्चय है ॥गिलोय कुरै
य्या बांसा पेठा सतावर असगन्ध कटसरैया सौंफ गंध्रेसारणी ॥ इनको
सदा गीलीही प्रयोग करनी चाहिये और दुगनी नकरे ॥ २२६॥ २२७॥ बांसा
नीम पटोल केवड़ा वरियारा पेठा सतावर। गदापूरना॥ कुरैया कन्द सहित
वो गन्ध प्रसारणी कहीहै ॥ २२८॥ इन्द्रायन गुल शकरी पीले फूलकी कट
सरैया गूगल सौंफ गिलोय सदा॥ इनको गीलीही योजना करे और पं
डित कहींपर दुगनीभी योजना करे ॥२२६॥

(क) ऐन्द्री इन्द्र वारुणी। वरी शतावरी। पूतिगन्धा।
गन्धप्रसारणी नागबला गुल शकरी।
कुरण्टकः पीत पुष्प कटसरैआ पुरो गुग्गुलः॥

घृतन्तैलञ्च पानीयं कषायं व्यञ्जनादिकम्॥
पक्का पीती कृतं चोष्णं तत्र सर्व्वं स्याद्विपोपमम्॥ २३०॥

भा० घृततैल जलकाढ़ा और दाल तरकारी इत्यादिकों को ॥ पकाके फि नहुवेको फिरसे गरम करेतो वोह सब विषके समान होता है ॥ २२० ॥

[अथ द्रव्याणां परीक्षा।]

सूक्ष्मास्थिमांसला पथ्या सर्व्वकर्म्मणि पूजिता ॥ क्षिप्ताम्भसि निमज्जेद्या भल्लातश्च तथोत्तमा ॥ २२१ ॥ वराह मूर्द्ध वत्कन्दो वाराही कन्द संज्ञकः ॥ सौवर्च्च लन्तु काचाभं सैन्धवं स्फटिक प्रभम् ॥ २२२ ॥ सुवर्णे च्छविकं ज्ञेयं स्वर्णमाक्षिक मुत्तमम् ॥ इन्द्र गोप प्रतीकाशं मनो ह्वा चोत्तमा मता ॥ २२३ ॥ श्रेष्ठं शिला जतुज्ञेयं प्रक्षिप्तं न विशीर्य्यते ॥ तोय पूर्णे कांस्य पात्रे प्रतानेन विवर्द्धते ॥ २२४ ॥ कर्पूरः स्तुवरः स्निग्धः एला सूक्ष्म फला वरा ॥ श्वेत चन्दन मत्य न्तं सुगन्धि गुरु पूजितम् ॥ २२५ ॥

भा० अनन्तर द्रव्योंकी परीक्षा कहतेहैं ॥ छोटी गुठलीवाली गूदेदार और पानीमेंडालनेसे जो डूब जाती है इस प्रकार की हड़ सब कामों में अच्छीहै ॥ उसी प्रकारका भिलावाभी अच्छा होता है ॥ २२१ ॥ सूवर के सिरके सदृ शजोकन्द होताहै ॥ उसको वाराही कन्द कहतेहैं। कांच के समान सोंचल। और सैन्धव स्फटिक के समान होताहै ॥ २२२ ॥ सोनेकी सी रंगत वालीको अच्छी सोना माखी जाननी चाहिये। वीरवहूटी कीसी रंगतवाली मैन सिल अच्छी होतीहै ॥ २२३ ॥ अच्छी शिलाजीत उसको जानना चाहिये कि जो फेका हुवा नहीं बिखरता। और पानी भरेहुवे कांसेके कटोरे में बेल सूतके समान जो बढ़ताहै ॥ २२४ ॥ कसैला चिकना कपूर अच्छा होताहै। छोटे फलवाली इलायची अच्छी होतीहै। और स्वेतचन्दन बहुत सुगन्ध करके युक्त और भारी अच्छा होता है ॥ २२५ ॥

रक्त चन्दनमत्यन्तं लोहितम्प्रवरं मतम् ॥ काक

तुण्डा निभः स्निग्धो गुरुः श्रेष्ठो गुरुर्मतः ॥२२६॥
सुगन्धि लघु रूक्षञ्च सुरदारु वरं मतम् ॥ सर
लं स्निग्धमत्यर्थं सुगन्धि च गुणावहम् ॥२२७॥
अति पीता प्रशस्तातु ज्ञेया दारु निशा बुधैः ॥ जा
तीफलं गुरु स्निग्धं समं शुभ्रान्तरं वरम् ॥२२८॥
मृद्वीका सोत्तमा ज्ञेया यो स्वाङ्गोस्तनसन्निभाः॥
करमर्द्द फलाकारा मध्यमा सा प्रकीर्त्तिता ॥२२९॥
(क) गोस्तन सन्निभाः मुनक्का इतिलोके। करमर्द्द फला
कारा। करौन्दीदाख इतिलोके।
भा० लालचन्दन बहुत लाल अच्छा होताहै ॥ और अगर कौव्वाठो
ठी के समान रंगनवाला चिकना भारी अच्छा होता है ॥२२६॥ सुगन्ध यु
क्त हलका रूखा देवदार अच्छा होताहै। और दूसरी क़िसमका देवदार
बहुत चिकना सुगन्धि गुणकारक होताहै ॥ २२७ ॥ बहुत पीली दार
हल्दी अच्छी होतीहै ॥ जायफल भारी चिकना सम भीतर सुफेद अ-
च्छा होताहै ॥ २२८॥ जो मुनक्का गायके थनोंकीसी होतीहै वो अच्छी
है करोंदे के फलके आकार जो मुनक्का होतीहै वो मध्यम कही गई
है ॥ २२९ ॥

खण्डन्तु विमलं श्रेष्ठं चन्द्रकान्त समप्रभम् ॥ ग
व्याज्य सदृशं रुच्यं गन्धं मधु वरम्मतम् ॥२३०॥

अथ स्वभावतो हितानि।

शालीनां लोहितः शालिः षष्ठिकेषु च षष्टिका ॥
शूकधान्ये ष्वपि यवो गोधूमः प्रवरो मतः ॥२३१॥
शिम्बिधान्ये वरो मुद्गो मसूर श्चाढ़की तथा ॥ रसे

षु मधुरः श्रेष्ठो लवणेषु च सैन्धवः ॥ १३२॥ दाडि
मामलकन्द्राक्षा खर्ज्जूरञ्च परुषकम् ॥ राजादनं
मातुलुङ्गं फलवर्गेषु शस्यते ॥ १३३॥ (क)

परुषकं फारसा इतिलोके ॥ राजदनं खिरणी इतिलोके । मातुलुङ्गं बिजउरा इतिलोके ।

पत्रशाकेषु वास्तुकं जीवन्ती पोतिका वरा ॥ पटो
ल फलशाकेषु कन्दशाकेषु सूरणम् ॥ १३४॥
एणः कुरङ्गो हरिणो जाङ्गलेषु प्रशस्यते ॥ पक्षि
णां तित्तिरिर्लावो वरो मत्स्येषु रोहितः ॥ १३५ ॥

भा० चन्द्रकान्त के समान स्वच्छ खाँड अच्छी होनी है ॥ गो घृत के समान रुचिकर और सुगन्ध इस प्रकार का मधु श्रेष्ठ कहा है ॥ १३०॥ अनन्तर स्वभाव से जो हित वस्तु हैं उनको कहते हैं ॥ धानों में लाल धान और साठी चावलों में साठ दिन में होनेवाले श्रेष्ठ हैं ॥ और शूक धानों में भी जौ गेहूं श्रेष्ठ कहे हैं ॥ १३१॥ शिंबी धान्य अर्थात् सेमवाले धान्य में मूंग मसूर अरहर श्रेष्ठ है ॥ रसमें मधुर रस श्रेष्ठ है । और लवणोंमें सेंधा श्रेष्ठ है ॥ १३२ ॥ अनार आंवले दाख खजूर फालसे । खिरनी बिजौरा नीबू ये फलवर्ग में प्रशस्त हैं ॥ १३३ ॥ सागों में बथुवा जीवंती पोई अच्छे हैं ॥ फल शाक में परवल और कन्द शाकों में ज़िमीकन्द । प्रशस्त है ॥ १३४ ॥ जांगल मांस में एण कुरंड हरिण प्रशस्त है । पक्षियों में तीतर बटेर श्रेष्ठ है । और मछलियों में रोहू मछली अच्छी है । १३५

हरिणस्ताम्रवर्णः स्यादेणः कृष्णतयामतः ॥ कु
रङ्गस्ताम्र उद्दिष्टो हरिणाकृतिको महान् ॥ १३६
जलेषु दिव्यं दुग्धेषु गव्यमाज्येषु गोभवम् ॥ तैले
षु तिलजन्तैलं मेदवेषु सिताहिता ॥ १३७ ॥

[अथ स्वभावादहितानि।]

शिम्बीषु माषान् ग्रीष्मर्त्तौ लवणेष्वौषरं त्यजेत्।
फलेषु लकुचं शाके सार्षपं न हितम्मतम् ॥२३८॥
गोमांसं ग्राम्य मांसेषु न हितं महिषीवसा ॥मेषी
पयः कुसुम्भस्य तैलन्त्याज्य ञ्च फाणितम् ॥२३९॥
इक्षुरसः परिपक्वो योऽर्द्ध घन फाणितम् ॥
(क) लाह्व छोयाराव इति लोके। अथ संयोग विरुद्धानि।

भा० हरिण लालवर्ण होताहै। और एण काला हिरन कहा गया है। और कुरंग लाल वर्ण कहा गयाहै। तथा हिरन के समान आकृतिवाला और बड़ा होताहै। २३६ ॥ जलों मे आकाशका जल दूधोंमें गायका दूध घृतों में गो घृत। तैलोंमें तिलकातैल। गुड़ आदि यों मे चीनी श्रेष्ठहै। २३७ ॥ अनन्तर स्वभाव से अहित वस्तुओं को कहते हैं॥ शिंबी धान्यों में उड़द। ऋतुवों में ग्रीष्म। लवणों में पांगा लवण। इनको त्याग करे और फलों में वढल शाकों में सरसोंका शाक ये वस्तु अहित कही हैं ॥ २३८ ॥ ग्राम के मांसों में गोमांस और भैंसकी चरबी हित नही है ॥ मेढ़ीका दूध, कुसुंभतैल अर्थात् करड़ का तैल, और राव इनको त्याग करनाचाहिये ॥ २३९ ॥ गन्नेके रसको पकाके जो आधा गढ़ा किया जाता है उसको राव कहतेहैं। अनन्तर संयोगसे अहितकरनेवाली वस्तुओंको कहतेहैं ॥

मत्स्यमानूप मांसञ्च दुग्धयुक्तं विवर्ज्जयेत् ॥कपो
तं सर्षपस्नेहं भर्ज्जितम्परि वर्ज्जयेत् ॥ २४० ॥मत्
स्यानि क्षीरविकारेण तथा क्षौद्रेण वर्ज्जयेत् ॥ प्रानू
न मांसपयोयुक्तानुष्णोद्दधि विवर्ज्जयेत् ॥ २४२॥
उष्णोन्नम्भोऽम्बुना क्षौद्रं पायसं कृशरान्वितम् ॥

रम्भाफलं त्यजेत् तक्रं दधिविल्वफलान्वितम् ॥२४२
दशाह सुषितं सर्पिः कांस्ये मधुघृतं समम् ॥ कृता
न्नञ्च कषायञ्च पुनरुष्णीकृतं त्यजेत् ॥२४३॥ ए
कत्र बहु मांसानि विरुध्यन्ते परस्परम् ॥ मधुसर्पिर्व
सा तैलं पानीयं वा पयस्तथा ॥ २४४॥

भा० मछली और अनुपमांसको भी दूधके सहित न सेवन करे ॥ और सर सोंके तेलसे भुनेहुये कबूतर के मांस को न सेवन करे ॥ २४० ॥ तथा मीठे के या शहत के साथ मछलियों को न भक्षण करे ॥ मांस रस के साथ सत्तू और उष्ण दधि इनको भी त्यागदे ॥ २४१ ॥ उष्ण या आकाश का जल इन के साथ मधु और खिचड़ी के साथ दूध इनको भी त्यागदे ॥
मठे के साथ केला और दही बेल फल के साथ त्यागदेवे ॥४२ कांसे के बर्तन में दस दिनका रक्खाहुवा घी और बराबर घी सहत को भी न सेवन करे ॥ २४२ ॥ सिद्ध किया अन्न और कषाय इनको फिरसे गरम करके न सेवन करे। एक जगह कई क़िस्म के मांसोंको मिलाके न सेवन करे ॥ २४३ ॥ मधु घृत चरवी तेल जल दूध इन को आपुसमें मिलाके न सेवन करे ॥ २४४॥

[अथ भेषज ग्रहण सङ्केतः।] लवणं सैन्धवं प्रोक्तं चन्द
नं रक्तचन्दनम् ॥ चूर्णलेहा सवस्नेहाः साध्या धवलच
न्दनैः ॥ २४५ ॥ कषाय लेपयोः प्रायो युज्यते रक्तचन्द
नम् ॥ अंतःसम्मार्ज्जने ज्ञेया ह्यजमोदा यवानिका ॥
॥ २४६ ॥ वहिःसम्मार्ज्जने सैव विज्ञातव्याजमोदिका ॥
पयःसर्पिः प्रयोगेषु गव्यमेव हि गृह्यते ॥ २४७॥
सकृद्रसो गोमयकं मूत्रं गोमूत्रमुच्यते ॥

भा० अनन्तर औषधोंके ग्रहणकरनेका संकेत कहतेहैं ॥ लवण कहा होवेतो सैन्धव और चंदनकी जगह रक्तचंदन जानना चाहिये ॥ चूर्ण लेह आसव घृत तेलादि ये स्वेतचन्दनसे सिद्ध करने चाहिये ॥ २४५ ॥ कषाय

और लेपमें प्राय रक्तचन्दन मिलाया जाता है ॥ खाने पीने में अजवायन लिखी होतो अजमोद लेनी चाहिये ॥ १४५ ॥ और लेपादिक मेंवोही अजवायन लेनी चाहिये ॥ योगमें दूध और घी लिखाहो तो गायका ही लेना चाहिये ॥ १४६ ॥ गोबरका रस होवे तो गायका और मूत्र गोमूत्र लेना चाहिये ॥

[प्रतिनिधिः] चित्रका भावतो दन्ती क्षारः शिखरि जो ऽथवा ॥ अभावे धन्वयासस्य प्रक्षेप्या तु दुरालभा ॥ ॥ १४८ ॥ (शिखरी अपामार्गः।) तगरस्याप्यभावे तु कुष्ठं दद्याद्भिषग्वरः ॥ मूर्वाभावे त्वचो ग्राह्या जिङ्गिनी प्रभवा बुधैः ॥ १४९ ॥ अहिंस्राया अभावे तु मानकन्दः प्रकीर्त्तितः ॥ लक्ष्मणाया अभावे तु नीलकण्ठशिखा मता ॥ १५० ॥

भा॰ बदले में देनेकी वस्तुओंको कहतेहैं ॥ चित्रकके अभावमें जमालगोटेकी जड़ अथवा ओंगेका खार लेवे ॥ वांसेके अभाव में जवासा लेवे ॥ १४८ ॥ वैद्य तगरके अभाव में कूठ देवे। मरोड़ फलीके अभावमें मजीठ की छाल। मालकंगनीके अभावमें मानकेचूको लेवे ॥ लक्ष्मणा के अभाव में मोरशिखा देवे ॥ १५० ॥

वकुलाभावतो देयं कल्हारोत्पल पङ्कजम् ॥ नीलोत्पलस्याभावेतु कुमुदं देयमिष्यते ॥ १५१ ॥ जातीपुष्पं न यत्रास्ति लवङ्गं तत्र दीयते ॥ अर्कपर्णादि पयसो ह्यभावे तद्रसो मतः ॥ १५२ ॥ पौष्करा भावतः कुष्ठं तथा लाङ्गल्य भावतः ॥ स्थौणेय कस्या भावे तु भिषग्भिर्दीयते गदः ॥ १५३ ॥ चविका गज पिप्पल्यो पिप्पली मूलवत् स्मृतो ॥ अभावे सोमराज्या

स्तु प्रपुन्नाट फलं मतम् ॥ १५४ ॥ यदि न स्याद्दारु
निशा तदा देया निशा बुधैः ॥

भा० मौलसरीके अभावमें स्वेतकमल । नीलोफर के अभाव में लाल कवल देना चाहिये ॥ १५१ ॥ चंमेली फूल जहां न मिले वहां लवंग देना चाहिये ॥ आकवगैरह का दूध न मिलनेमें उसीका रस दे ॥ १५२ ॥ पुष्कर मूल के अभावमें कलंहारी के अभावमें कूठ देवे ॥ ककरौंदे के अभावमें भी वैद्य कूट देनेहैं ॥ १५३ ॥ चाव और गजपीपल पीपलांमूल के समान कहे गयेहैं ॥ बकची के अभावमें चकोड़ के बीजदेवे ॥ १५४ ॥ जहां दारुहलदी न मिले वहां हलदी देवे ॥

(क) सोमराजी वाकुची । प्रपुन्नाट फलं चक्रमर्द फलम् ।
दारुनिशा दारुहरिद्रा निशा हरिद्रा ।

रसाञ्जनस्याभावे तु सम्यग्दार्व्वी प्रयुज्यते ॥ सौरा
ष्ट्र्यभावतो देया स्फटिका तद्गुणा जनैः ॥ १५५ ॥

(ख) सौराष्ट्री सोरटी माटी इतिलोके । स्फटिका फटिकारी इतिलोके ॥

तालीस पत्रकाभावे स्वर्णताली
प्रशस्यते ॥ भार्ग्यभावे तु तालीसं कण्टकारी जटाथ
वा ॥ १५६ ॥ रुचकाभावतो दद्याल्लवणं पांशुपूर्व्वकम् ।
अभावे मधुयष्ट्यास्तु धातकीञ्च प्रयोजयेत् ॥ १५७ ॥

भा० रसौत के अभावमें अच्छीदारु हरदी देवे ॥ सोरठी मांटी के अभावमें फटकरी देवे । वो उसी के गुणवाली है ॥ १५५ ॥ तालीस पत्रके अभाव में स्वर्ण तालीसपत्र देवे ॥ भारंगी के अभावमें तालीसपत्र अथवा कटेली की जड़ देवे ॥ १५६ ॥ सौंचल के अभावमें खारीनमक देवे ॥ मुलहठी के अभावमें धावेका फूल देवे ॥ १५७ ॥

(क) रुचकं चोहार इतिलोके पांशुलवणं खारी अथवा रेह ।

इति लोके । अम्लवेतसकाभावे चुक्रं दातव्य मिष्यते ॥ द्राक्षा यदि न लभ्येत प्रदेयं काश्मरी फलम् ॥ २५८ ॥ तयोरभावे कुसुमं बन्धूकस्य मतं बुधैः ॥ लवङ्गकुसुमं देयं नखस्याभावतः पुनः ॥ २५९ ॥ कस्तूर्य्यभावे कङ्कोलं क्षेपणीयं विदुर्बुधाः ॥ कङ्कोलस्याप्यभावे तु जातीपुष्पं प्रदीयते ॥ २६० ॥

भा० अम्लवेत के अभाव में इमलीदेवे । औरयदि दाख न मिले तो कुंभेर का फल देवे ॥ २५८ ॥ वे दोनों न मिले तो दुपहरिया का फूल देवे । नख न मिले तो लवंग देवे ॥ २५९ ॥ कस्तूरी के अभावमें कंकोल देनी चाहिये ॥ ऐसा पंडित कहतेहैं ॥ और कंकोल भी न मिले तो चमेली के पुष्प डाले ॥ २६० ॥

सुगन्धिमुस्तकं देयं कर्पूराभावतो बुधैः ॥ कर्पूराभावतोऽथवा ग्रन्थिपर्णं विशेषतः ॥ २६१ ॥ कुङ्कुमाभावतो दद्यात् कुसुम्भकुसुमं नवम् ॥ श्रीखण्डचन्दनाभावे कर्पूरं देय मिष्यते ॥ २६२ ॥ अभावेत्वे तयो वैद्यः प्रक्षिपेत् रक्तचन्दनम् ॥ रक्तचन्दन काभावे नवोशीरं विदुर्बुधाः ॥ २६३ ॥ मुस्ताचातिविषाभावे शिवा भावे शिवामता ॥ अभावे नागपुष्पस्य पद्मकेसर मिष्यते ॥ २६४ ॥

भा० कर्पूर न मिले तो नागरमोथा देना चाहिये ॥ और कपूर के अभावमें उकरीदा विशेषकरके देना चाहिये ॥ २६१ ॥ केसर के अभावमें नवीन कुसुंभ के फूलडालने चाहिये ॥ श्रीखंड चन्दन के अभाव में कपूर देवे ॥ २६२ ॥ इनके अभावमें वैद्य रक्तचन्दन देवे रक्तचन्दन के अभावमें नवीन खस देवे ॥ २६३ ॥ अतीसके अभावमें मोथा हडके अभाव में आंवला नागकेसर के अभावमें पद्मकेसर डाले ॥ २६४ ॥

मेदा जीवक काकोली ऋद्धिद्वन्द्वे ऽपि वा सति ॥ वरी विदार्य्यश्वगन्धा वाराही च क्रमात् क्षिपेत् ॥ २६५॥ (वरी शतावरी।) वाराह्याश्च तथाभावे चर्मकारालुको मतः ॥ वाराहीकन्द संज्ञस्तु पश्चिमे गृष्टि संज्ञकः ॥ २६६॥ वाराही कन्द एवान्य श्चर्म्मकारालुको मतः ॥ अनूप सम्भवे देशे वराह इव लोमवान् ॥ २६७॥ भल्लात का सहत्वे तु रक्तचन्दन मिष्यते ॥ भल्लात भावनश्चि त्रं नलश्चे तोर भावतः ॥ २६८॥ सुवर्णभावतः स्व र्णमाक्षिकं प्रक्षिपेत् बुधः ॥ श्वेतन्तु माक्षिकं ज्ञेयं बुधैः रजतवत् क्रमम् ॥ २६९॥

भा० मेदा जीवक काकोली ऋद्धि और वृद्धि इनके न मिलनेमें भी। सतावर विदारीकंद असगंध वाराही कंद इनको क्रमसे डाले ॥ २६५॥ वाराहीकन्द के अभाव में जंगली आलू को डाले ॥ वाराही कन्द का नाम पश्चिम देश में ग्रष्टि कहते हैं ॥ १६६॥ और लोग वाराहीकन्द को चर्मकार आलू कहते हैं ॥ अनुपदेश में वाराह के मानिन्द रोमवाला होता है ॥ १६७॥ भिलावे के नहीं सहन होनेमें रक्तचन्दन देवे ॥ भिलावे के अभावमें चित्रक और गन्ने के अभाव में नर्कट देवे ॥ २६८॥ स्वर्ण के अभावमें बुद्धिवान् सोनामखी डाले ॥ रूपामाखी को चाँदी के समान पंडितों ने कहा है ॥ २६९॥

माक्षिकस्याप्यभावेतु प्रदद्यात् स्वर्णगैरिकम् ॥ सुवर्णमथवा रौप्यं मृतं यत्र न लभ्यते ॥ २७०॥ तत्र कान्ते न कर्म्माणि भिषक्कुर्य्याद्विचक्षणः ॥ कान्ताभावे तीक्ष्ण लोहं योजयेद्वैद्य सत्तमः ॥२७१॥

अभावे मौक्तिकस्यापि मुक्ताशुक्तिं प्रयोजयेत् ॥ मधु यत्र न लभ्येत तत्र जीर्णगुडो मतः ॥ २७२ ॥ मत्स्य गडा भावतो दद्यु र्भिषजः सितशर्कराम् ॥ असम्भवे सितायास्तु बुधैः खण्डं प्रयुज्यते ॥ २७३ ॥ क्षीरा भावे रसो मौद्गो मासूरो वा प्रदीयते ॥ अत्र प्रोक्तानि वस्तूनि यानि तेषु च तेषु च ॥ २७४ ॥

भा० रूपा मारवी के अभावमें सुनहरी गेरू देवे ॥ जहाँपर सोनेका या चांदीका भस्म नहीं मिलता ॥ २७० ॥ वहाँपर चतुर वैद्य कान्तिसार से काम करे ॥ और जहाँपर कान्तिसार न मिले वहां तीक्ष्णलोहको वैद्यवर योजनाकरे ॥ २७१ ॥ मोतीके अभावमें भी मोतीकी सीप देवे ॥ शहत जहांपर नहीं मिलता वहां पुराना गुड़ देवे ॥ २७२ ॥ वैद्य मिश्री के अभाव में सफेद चीनी देवे और सफेदचीनी भी न मिले तो खांड देवे ॥ २७३ ॥ दूधके अभावमें मूंगका या मसूरका पानी देवेहैं ॥ यहाँपर कहीगई जो वस्तुहैं उन २ में ॥ २७४ ॥

योज्यमेकतरा भावे परं वैद्येन जानता ॥ रसवीर्य्य विपाकाद्यैः समं द्रव्यं विचिन्त्य च ॥ २७५ ॥ युञ्ज्याद्विविधमन्यद्वाद्रव्यानान्तु रसादिवित् ॥ योगे यदप्रधानं स्यात्तस्य प्रतिनिधिर्मतः ॥ २७६ ॥ यत्तु प्रधानं तस्यापि सदृशं नैव गृह्यते ॥ व्याधेर्युक्तं यत् द्रव्यं गणोक्तमपि तत् त्यजेत् ॥ २७७ ॥ अनुक्तमपि युक्तं यत् योजयेत् तद्रसा दिवित् ॥

भा० जाननेवाले वैद्यके द्वारा एक के अभावमें दूसरे को देना चाहिये ॥ रस वीर्य्य विपाक आदि इनकरके समद्रव्यको विचार करके ॥ २७५ ॥ किस्म २ के औरभी द्रव्यों को योजनाकरै रसोंके जाननेवाला योगमें जो अप्रधानहै उसकी प्रतिनिधी कहीगईहै ॥ २७६ ॥ औरजो प्रधान है उसके सदृश कोनही

ही ग्रहण करने ॥ व्याधि के अयुक्त जो द्रव्य हो वोह गण में कहा हुवाभी त्याग देवे ॥ १७७ ॥ और न कहा हुवाभी जो युक्त है उसको रसादिक के जानके वा यो जना करे ॥ [इतस्तु द्रव्यगत पञ्च पदार्थ कर्म्माण्याह ।]

द्रव्ये रसो गुणो वीर्य्यं विपाकः शक्तिरेव च ॥ पदार्थः पञ्च तिष्ठन्ति स्वं स्वं कुर्व्वन्ति कर्म्म च ॥ १७८ ॥ (तत्र वागभटः ।) रसः स्वाद्वम्ल लवण तिक्तोषण कषायकाः ॥ षट् द्रव्य माश्रितास्ते च यथा पूर्व्वंबलावहाः ॥ १७९ ॥ (ऊषणः कटुः) तत्राद्या मारुतं घ्नन्ति त्त्रय स्तिक्तादयः कफम् ॥ कषाय तिक्त मधुराः पित्तमन्ये तु कुर्व्वते ॥ १८० ॥

भा० यहाँपर द्रव्यमें प्राप्त पांच पदार्थों के कर्मको कहते हैं ॥ द्रव्यमें रस गुण वीर्य्य विपाक शक्ति ये पांच पदार्थ रहते हैं और अपने २ कर्मोंको भी करते हैं ॥ १७८ ॥ उसमें वाग्भट ने कहा है] मधुर अम्ल लवण कटु कषाय तिक्त ये छः रस द्रव्य के आधिन रहते हैं वे एक से एक पहले बलको देने वाले हैं ॥ १७९ ॥ उनमें पहले तीन वायुको नाश करते हैं । और अंतके तिक्तादि तीन कफको नाश करते हैं ॥ कषाय तिक्त मधुर पित्तको नाश करते हैं ॥ और मधुर कफ अम्ल पित को कटु वायु को इस प्रकारसे करते हैं ॥ १८० ॥

ये रसा वातशमनाः भवन्ति यदि तेषु वै ॥ रौक्ष्यलाघवशैत्यानि न ते हन्युः समीरणम् ॥ १८१ ॥ ये रसाः पित्तशमना भवन्ति यदि तेषु वै ॥ तीक्ष्णोष्ण लघुता चैव न ते तत्कर्म्म कारिणः ॥ १८२ ॥ ये रसा श्लेष्म शमना भवन्ति यदि तेषु वै ॥ स्नेह गौरव शैत्यानि न ते हन्युः कफं तदा ॥ १८३ ॥

भा० जोरस वात के शमन करनेवाले हैं यदि उनमें ॥ रूक्षता हलकापन और शीताहै तोवेवायु को नहीं नाशकरते ॥ १८१ ॥ जोरस पित्त के शमन करने वाले हैं यदि उनमें ॥ तीक्ष्णता उष्णता और लघुता है तो वेउस कर्मकोकर नेवाले नहिं होते ॥ १८२ ॥ जो रस कफको शमनकरनेवाले हैं यदि उनमें ॥ चिकनापन भारीपन और शीतलता होवेतो वेकफको नहीं नाश करते। ॥ १८३ ॥

[तत्र मधुररसस्य गुणाः ।] मधुरो हि रसः प्रीतो धातुस्त न्य बलप्रदः ॥ चक्षुष्यो वात पित्तघ्नः कुर्य्यात् स्थौ ल्य मलक्रिमीन् ॥ १८४ ॥ रसेषु प्रवरश्चापि स्निग्धः प्रीत्यायुषो हितः ॥ [अथातियुक्तस्य मधुर रसस्यगु- णाः ॥] बाल वृद्ध क्षत क्षीण वर्णकेशेन्द्रियौजसाम् ॥ प्रशस्तो वृंहणः कण्ठ्यो गुरुः सन्धान कृत् मतः ॥१८५॥ विषघ्नः पिच्छिलश्चापि स्निग्धः प्रीत्यायुषो हितः ॥ सोऽतियुक्तो ज्वरश्वास गलगण्डार्बुद क्रमीन् ॥१८६ स्थौल्याग्निमान्द्य मेहांश्च कुर्य्यात मेदः कफामयान् ॥

भा० उसमें मधुर रसका गुण कहते हैं।] मधुररस प्रीत रसादिक धातु दूध और बलको देनेवालाहै ॥ चक्षु के हित वात पित्त का नाशक और स्थूल ता मल क्रमी इनको करता है ॥ १८४ ॥ रसोंमें श्रेष्ठ भी है और स्निग्ध प्री ती आयुके हितहै ॥ अनन्तर बहुत सेवन कियेहुवे मधुर रसका गुणकह तेहैं ।] बालक वृद्ध क्षत क्षीणवर्ण केश इन्द्री और ओज इनको प्रशस्तहै ॥ धातुओंके बढ़ानेवाला कंठका हित भारी संधान करनेवाला कहा गया है ॥ १८५ ॥ और विषका नाशक चेपदार चिकना प्रीति आयु के हितभी है ॥ सोह बहुत सेवन किया हुवा ज्वर श्वास गलगंड अर्बुद क्रमी ॥ १८६ स्थूलता अग्निमान्द्य प्रमेह मेद और कफके रोगों को करता है ॥

[अथाम्लस्यगुणाः।] रसोऽम्लः पाचनो रुच्यः पित्तश्ले

ष्मासृदो लघुः ॥ लेखिनोष्णो बहिः शीतक्लेदनः पवना पहः ॥ २८७॥ स्निग्धस्तीक्ष्णः सरः शुक्र विबन्धानाह दृष्टिहा ॥ हर्षणो रोमदन्तानाम दिभ्रू विनिकोचनः॥ ॥ २८८ ॥ लेखिनः लेखनः बहिः शीतः स्पर्शेशीतः वि निकोचनः सङ्कोचनः। [अथातियुक्तस्याम्लस्य गुणाः।]

सोऽतियुक्तो भ्रमं कुर्य्यात् तृड् दाहतिमिरज्वरान् ॥

कण्डु पाण्डुत्ववीसर्पशोथ विस्फोट कुष्टकृत् ॥ २८९॥

भा० अनन्तर अम्लका गुण कहते हैं ॥ पाचन रुचिको करनेवाला पित्तक फ रक्त इनको करनेवाला हलका ॥ लेखन उष्ण स्पर्श में शीत क्लेदन वायुका नाशक अम्ल रस होता है ॥ २८७ ॥ स्निग्ध तीक्ष्ण रेचन शुक्र विबंध आनाहओ र दृष्टि इनका नाशक ॥ तथा रोम दांत इनका हर्षण और आंखकी भवोंका सुकड़ानेवाला होता है ॥ २८८ ॥ अनन्तर अतीयुक्त अम्लका गुण कहते हैं ॥ वो अतिसेवन किया हुवा भ्रम तृषा दाह तिमिर और ज्वर इनको करता है ॥ तथा कन्डू पान्डुता विसर्प शोथ विस्फोट और कुष्ठ इनको करने वालाहै ॥ २८९ ॥

[अथ लवणस्य गुणाः।]

लवणः शोधनो रुच्यः पाचनः कफपित्तदः ॥ पुं स्त्ववातहरः काय शैथिल्य मृदुताकरः ॥ २९० ॥ चक्षुर्नासास्यजलदः कपोलगलदाहकृत् ॥

भा० अनन्तर लवणके गुण कहते हैं।] शोधन रुचिको करने वाला पाचन कफ पित्तको करनेवाला। पुरुषत्व और वातका नाशक शरीरकी शिथि लता तथा मृदुता इनका करने वाला ऐसा लवण होता है ॥ २९० ॥ चक्षु नासिका मुख इनमें पानी को देनेवाला और गाल तथा गले में दाह को करने वाला होता है ॥

[अतियुक्तस्य लवणस्य गुणाः।] सोऽतियुक्तोऽतिपाका

स्त्र पित्तकोठक्षतादिकृत्॥ वली पलितखालित्यं कुष्ठ वीसर्प्प तृट्प्रद:॥ १९२॥ कोठो वरटाकृतदंशशोथवत्। पलितं केशशुक्लता। खलित्यं शिरसि केशनाश:॥ [अथ कटुगुणा:।] कटुरुष्णश्च तीक्ष्णश्च विशदो वात पित्तकृत्॥ श्लेष्म हृल्लघु राग्नेय: क्रिमि कण्डू विषापह:॥ रूक्षस्तन्य हरश्चापि मेद:स्थौल्यापकर्षण:॥ अश्रुदो नासिकास्याक्षि जिह्वाग्रोद्वेजको मत: ॥ १९३॥ दीपन: पाचनो रुच्यो नासिकाशोधणो भृशम्। क्लेद मेदो वसा मज्जा शकृन्मूत्रोप शोषण:॥ १९४ स्रोत:प्रकाशको रूक्षो मेध्यो वर्च्चो विबन्धकृत्॥

भा० बहुत सेवन कियेहुवे लवणका गुण कहतेहैं॥ वोह अति सेवन कियाहुवा नेत्रपाक रक्त पित्त चकत्ते और क्षतादि को करताहै।झुर्रियां बालों की सफ़ैदी गंजापन कोढ़ विसर्प और तृषा इनको देताहै॥ १९१॥ अथकटुकेगुणकहतेहैं॥ कटु उष्ण तीक्ष्ण विशद और वात पित्तके करने वाला होताहै॥ कफकानाशक हलका अग्निगुणवालाक्रिमि कन्डु विषका नाशक होताहै॥ १९२॥ रूक्ष दूधकानाशक मेद और स्थूलता का घटानेवाला। आंसुवोंके देनेवाला नासिकामुखनेत्र और जिव्हाके अग्रभागमें क्षोभ करनेवाला कहागयाहै॥ १९३॥ दीपन पाचन रुचिके योग्य नासिकाका अती शोधण करनेवाला क्लेद मेद वसा मज्जा मलमूल इनका सुकानेवाला है॥ १९४॥ श्रोतोंका प्रकाश करनेवाला रूक्ष मेध्य मलका रोकनेवालाहै॥

आग्नेय: अधिकाग्न्यंश:। मेध्यो मेधायै: हित:। वर्च्चो विबन्धकृत्। मलबद्धं करोति। [अतियुक्तस्य कटुरसस्य गुणा:।] सोऽतियुक्तो भ्रमिदाह मुखताल्वोष्ठ शोष

कृत् ॥ कराठादि पीड़ा मूर्च्छान्तर्दाहदो बलकान्तिहृत् ॥ २६५ ॥ [अथ तिक्तरसस्य गुणाः।] तिक्तः शीन स्तृषा मूर्च्छा ज्वर पित्त कफान् जयेत् ॥ कृमि कुष्ठ विषोत्क्लेद दाह रक्त गदापहः ॥ २६६ ॥ रुच्यः स्वय मरोचिष्णुः कराठ स्तन्य विशोधनः ॥ वातलोऽग्नि करोनासा शोषणो रूक्षणो लघुः ॥ २६७ ॥

भा० अति सेवन किये हुवे कडु रसका गुण कहते हैं ॥] अति सेवन किया हुवा मुख तालु होंठ इनका शोषणकरनेवाला। कंठादिमें पीड़ा मूर्छा अन्तरदाह इनकोकरनेवाला और बलकान्तिका नाशक होताहै ॥ २६५॥ अनन्तर तिक्तरसका गुण कहतेहैं।] तित्त रस शीत तृषा मूर्छा ज्वर पित्त कफ इनको जीतता है ॥ कृमि कुष्ट विष उत्क्लेद दाह रक्त इनरोगोंको नाश करताहै ॥ २६६ ॥ रुचिके हित आप अरुचि करनेवाला और कंठ दुग्ध इन का शोधन है ॥ वातको करनेवाला अग्निकोकरनेवाला नासिकाका शोषण करनेवाला रूक्ष और हलका होताहै ॥ २६७॥

रुच्यः अन्येषु वस्तुषु रुचिमुत्पादयति। स्वयमरोचिष्णुः यथा निम्बः स्वयन्न रोचते ॥ अन्येषु वस्तुषु रुचिं करोति। [अतियुक्तस्य तिक्तस्य गुणाः।] सोऽतियुक्तः शिरःशूल मन्या स्तम्भ श्रमार्त्ति कृत् ॥ कम्प मूर्च्छा तृषा कारी बल शुक्र क्षय प्रदः ॥ २६८ ॥ [अथ कषाय गुणाः।] कषायो रोपणो ग्राही स्तम्भनः शोधनस्तथा ॥ लेखनः पीड़नः सौम्यः शोषणो वातकोपनः ॥ २६९ ॥ कफ शोणित पित्तघ्नो रूक्षः शीतो लघुर्मनः ॥ त्वक

प्रसाधन मामस्य स्तम्भनो विशदो मतः ॥ २०० ॥ जि
ह्वाया जाड्यकृत् कण्ठस्रोतसाञ्च विबन्धकृत् ॥
(क) रोपणः व्रणस्य स्तम्भनो गात्राणां शोधनो व्रणस्य ले
खनो व्रणाद्युत सन्नमांसस्य शोषणो व्रणमज्जादीनाम्
पीडनो हृदयस्य वातकारित्वात् सौम्यः सोमादुत्पन्नः ॥

भा० अति सेवन कियेहुवे तिक्तरसका गुण कहते हैं।] वोह अति सेवन कियाहुवा सिर पीड़ा मन्या स्तंभ श्रमपीड़ा इनको करता है ॥ कम्प मूर्छा तृषा का करनेवाला। बल शुक्र धनका क्षयकरनेवाला होता है ॥ २९८ ॥
अनन्तर कषाय के गुण कहते हैं।] कषाय भरलानेवाला ग्रही स्तंभन तथा शोधन होता है। और लेखन पीड़ाको करनेवाला सौम्य आमको कफनेवाला वातको कुपितकरने वाला होता है ॥ २९९ ॥ कफ रक्त पित्तका नाशक रूक्ष। शीत लघु कहा है ॥ त्वचा का स्वच्छकरनेवाला आँवका रोकनेवाला और विशद कहा है ॥ २०० ॥ जिह्वा कीजड़ता को करनेवाला कण्ठके सोतों कारोकनेवाला होता है ॥ (क) रोपण शरीरका स्तम्भन घावोंको शोधन व्रण का लेखन व्रणादिसे ऊपर उठेहुवे मांसका शोषण व्रण मज्जादिकों का पीड़न हृदय का वातकारी होनेसे सौम्य अर्थात् सोमसे उत्पन्न ॥

[अतियुक्तस्य कषायस्य गुणाः।] सोऽतियुक्तो गृहाध्मा
न हृत्पीड़ाक्षेपणादिकृत् ॥ मधुरादीनामपरे विशे
षाः ॥ मधुरं श्लेष्मलं प्रायो जीर्णं शालिं यवादृते ॥
मुद्गाद्गोधूमतः क्षौद्रात् सिताया जाङ्गला मिषात् ॥
२०१ ॥ अम्लं पित्तकरं प्रायो विना धात्रीञ्च दाड़िमीम् ॥

भा० अतिसेवन किये कषाय का गुण कहते हैं।] वोह अतियोजना किया हुवा शूल अध्मान हृद पीड़ा और आक्षेपणादि करता है। मधुरादियों का दूसरा विशेष गुण हैं ॥ मधुर कफको करनेवाला है प्राय: पुराने चावल और जवों के सिवा ॥ मूंग गेहूं शहत चीनी और जांगल मांस इनके सिवाभी ॥ २०१ ॥

अम्ल प्रायः पित्तको करनेवाला होता है सिवा आँवले और अनारके ॥

लवणं प्रायशो द्वेषि नेत्रयोः सैन्धवं विना ॥ २०२ ॥
प्रायः कटु तथा तिक्तमवृष्यं वातकोपनम् ॥ शुण्ठी
कृष्णारसोनानि पटोलममृतं विना ॥ २०३ ॥
[चरकेऽपि ।] पिप्पली नागरं वृष्यं कटु चावृष्यमुच्यते ॥
प्रायशः स्तम्भनं प्रोक्तं कषायमभयां विना ॥ २०४ ॥
सामान्येनात्र निर्दिष्टा गुणाः षड्रससम्भवाः ॥ रसा
नां योगतस्तु स्यादन्य एव गुणोदयः ॥ २०५ ॥

भा० लवण प्रायः नेत्रके अहित है सैन्धवके बिना ॥ २०२ ॥ कटुरस और तिक्तरस प्रायः अवृष्य तथा वातको कुपित करनेवाला होता है ॥ सोंठ पीपल लहसन परवल और गिलोय इनके बिना ॥ २०३ ॥ चरकमेंभी कहा है ॥ पीपल सोंठ वृष्य और कटुरस अवृष्य होता है ॥ कषाय रस प्रायः स्तंभन होता है परंतु हरीतकीके बिना ॥ २०४ ॥ यहांपर सामान्य करके षट्रसों से उत्पन्न हुवे गुण कहेगये हैं ॥ रसोंके संयोगसे और गुणोंका उदय होता है ॥ २०५ ॥

संयोगाद् विषतां याति सममाज्यं न माक्षिकम् ॥ अ
मृतत्वं विषं याति सर्पदष्टस्य वै यथा ॥ २०६ ॥
[अथ गुणाः ।] लघुर्गुरु स्तथा स्निग्धो रूक्षस्तीक्ष्ण इति क्र
मात् ॥ नभोभूवारिवातानां वन्हे रेते गुणाः स्मृताः ॥
२०७ ॥ [अथ लघ्वादि गुणवतां गुणाः ।]
लघु पथ्यं परं प्रोक्तं कफघ्नं शीघ्रपाकि च ॥ लघु द्रव्यम्

भा० संयोगसे विष होता है । घृत और मधुकी समतासे ॥ और विष अमृतत्वको प्राप्त होता है जैसे सांपके काटेको ॥ २०६ ॥ अनन्तर गुण कहते हैं ॥ हलका भारी चिकना रूखा तीखा ये क्रमसे । आकाश पृथ्वी जल वायु और अग्नि इनके ये गुण कहे गये हैं ॥ २०७ ॥ अनन्तर लघु आदि गुणोंके गुण

कहते हैं। लघु परम पथ्य कहा गयाहै और कफका नाशक तथा शीघ्र पाक होनेवालाभी कहा गयाहै ॥ लघु अर्थात् हल्का ॥

एवं गुर्वादि तथा चोक्तम् ॥ गुर्वादयो गुणा द्रव्ये पृथिव्यादौ रसाश्रये ॥ रसेषु व्यपदिश्यन्ते साहचर्य्योपचारतः ॥ २०८ ॥ गुरु वातहरं पुष्टिश्लेष्मकृच्चिरपाकि च ॥ स्निग्धं वातहरं श्लेष्मकारि वृष्यं बलावहम् ॥ २०९ ॥ रूक्षं समीरणकरं परं कफहरं मतम् ॥ तीक्ष्णं पित्तकरं प्रायो लेखनं कफवातहृत् ॥ २१० ॥ सुश्रुते तु गुणा एते विंशतिस्तान् ब्रुवे शृणु ॥ गुरुर्लघुः स्निग्ध रूक्षौ तीक्ष्णः श्लक्ष्णः स्थिरः सरः ॥ २११ ॥

भा० इसीप्रकार गुरु आदि। उसप्रकार कहाहै ॥ पृथ्वी आदि रसके आश्रय द्रव्यमें गुरुत्वादि गुण। और रसमें साहचर्यके उपचार से जानेजाते हैं ॥ २०८ ॥ गुरु वातका नाशक पुष्टि कफ को करनेवाला चिरपाकवाला भी कहाहै ॥ और चिकना वात नाशक कफकारी वृष्य बलको देनेवाला है ॥ २०९ ॥ रूक्ष वायुको करनेवाला और अत्यन्त कफका नाशक होताहै ॥ तीखा पित्तका करनेवाला और प्रायः लेखन तथा कफवात नाशक भी है ॥ २१० ॥ सुश्रुत में ये गुणा बीस कहेहैं उनको कहताहूं सुनों ॥ भारी हलका स्निग्ध रूखा तीखा चिकणा स्थिर रेचन ॥ चेपदार विशद शीतल उष्ण मृदु और कर्कश ॥ २११ ॥

पिच्छिलो विशदः शीत उष्णश्च मृदु कर्कशौ ॥ स्थूलः सूक्ष्मो द्रव: शुष्क: आशुर्मन्दः स्मृता गुणाः ॥ तत्र गुरु लघु स्निग्ध रूक्ष तीक्ष्णा गुणा उक्ता एव २१२ ॥ श्लक्ष्णः स्नेहं विनापि स्यात् कठिनोऽपि हि चिक्कणः । स्थिरो वातमलस्तम्भी सरस्तेषां प्रवर्त्तकः ॥ पिच्छि-

लस्तन्तुलो वल्यः सन्धानः श्लेष्मलो गुरुः ॥२१४॥ सन्धानो भग्नस्य। क्लेद च्छेदकरः ख्यातो विशदो व्रण रोपणः ॥ शीतस्तु ल्हादनः स्तम्भी मूर्च्छा तृट् स्वेद दाहजुत् ॥ २१५॥ उष्णो भवति शीतस्य विपरीतश्च पाचनः ॥ (क) ल्हादनः सुखजनकः स्तम्भीरक्तातिप्रवृत्त्यादीनाम् उष्णः शीतस्य विपरीतस्तेन असुखजनकः रक्तातिप्रवृत्त्यादीनामस्तम्भनः। मूर्च्छा तृट् स्वेद दाहहृत् पाचनो व्रणादीनाम्। मृदु कर्कशौ प्रसिद्धौ।

भा० तथा स्थूल सूक्ष्म द्रव्यशुष्क आशुकारी और मंद येवीस गुणकहेगयेहैं ॥ २१२॥ श्लक्ष्ण स्निग्ध के विनाभी होता है ॥ और कठिनभी चिक्कण होता है ॥ स्थिर वात मलका स्तम्भन करनेवाला और सर उनका प्रवर्त्तक होता है ॥ पिच्छल तारको देनेवाला बलका हितु जु डानेवाला। कफकारी और भारी होताहै ॥ २१४ ॥ सन्धान अर्थात् टूटेहुवे का जोड़नेवाला। क्लेद छेदन करनेवाला कहागया है। और विशद घावको भरनेवाला होताहै ॥ शीतल खुशीको देनेवाला स्तंभनकरनेवाला और मूर्छा तृषा पसीना दाह इनका नाशक होता है ॥ २१५॥ उष्ण शीत के विपरीत और पाचन होता है ॥ (क) ल्हादन अर्थात् सुखको उत्पन्नकरनेवाला स्तंभी अर्थात् रक्तादिककी अतिप्रवृत्तिका स्तम्भन। मूर्छा तथा स्वेद दाह का करनेवाला पाचन व्रणादिकोंका। मृदु और कर्कश प्रसिद्ध है ॥

स्थूलः स्थौल्यकरो देहे स्रोतसामवरोधकृत् ॥ देहस्य सूक्ष्म च्छिद्रेषु विशेत् यत् सूक्ष्ममुच्यते ॥२१६ द्रवः क्लेदकरो व्यापी शुष्क स्तद विपरीतकः ॥ आशुराशुकरो देहे धावत्यम्भसि तैलवत् ॥ २१७ ॥

मन्दः सकल कार्य्येषु शिथिलोऽल्पोऽपि कथ्यते ॥
[अथ गुण प्रस्तावे दीपनादयो गुणाः। स लक्षणा लिख्यंते]
पचेन्नामं वन्हिकृच्च दीपनं तद्यथामिसिः॥
(क) वन्हिकृद्वन्हि दीप्ति कृत्। ननु यद्वन्हिं प्रदीपयति न दामङ्कथं नपचेदित्या शङ्कया मुच्यते। दीपनद्रव्यन्ताव न्तं वन्हिं प्रदीपयति। तथा अन्ने भोक्तु मिच्छामुत्पादय ति नत्वामं पक्तुं क्षमः यथा सूक्ष्म दीपाग्नि रुथातं करोति नतु दहन् स्थालीस्थान् तण्डुला नोदनं कर्त्तुं क्षमः।

भा० स्थूल स्थूलता को करनेवाला और देहमें सोतों का अवरोध करनेवाला है। शरीर के सूक्ष्म छिद्रोंमें जो जावे उसको सूक्ष्म कहते हैं ॥ २९६ ॥ द्रव क्लेदके करनेवाला और व्यापि होताहै। तथा शुष्क उस्के विपरीत करनेवाला होताहै ॥ आशु शीघ्र करनेवाला शरीर में होताहै ॥ जैसे पानी में तेल दौड़ने के मानिंन्द ॥ २९७ ॥ मन्द सब कामोंमें शिथिल और अल्पभी कहा गयाहै ॥
[अनन्तर गुणप्रस्ताव में दीपनादिक गुण लक्षण के सहित लिखे हैं ॥
आमको न पचावे और अग्निको करे उस्को दीपन कहते हैं जैसे सोंफ ॥
(क) वन्हिकृत् अर्थात् अग्निको दीपन करने वाला। (ननु शंका जो वन्ही को दीपन करता है वोह आमको क्यों नहीं पचाता इस शंकाको कहते हैं। दीपन द्रव्य उतनी वन्हि की दीपन करताहै। जैसे अन्नमें भोजन करने की इच्छा उत्पादन करता है न कि आमको पका सक्ता है जैसे सूक्ष्म दीपेकी अग्नि प्रकाश को करती है न कि बड़े बरतन में के चावलों को पका सकती है ॥

पचत्यामन्न वन्हिञ्च कुर्य्याद्यत्तद्धि पाचनम् ॥ नाग केशरवद्विद्या च्चित्रो दीपन पाचनः ॥ २९८ ॥
(क) ननु यद्वन्हिं नदीपयति नदामं कथं पचतीत्या शङ्कया माह। पाचन वन्हिदीप्तिम कुर्वाण मप्याम्पचति। यथा न्याधानीस्थोऽङ्गार समूहोऽचम्पचति॥ ननुदीपवत्सर्व्वं

नः प्रदीपयति ॥ न शोधयति यत् दोषान् समान्नोदी रयत्यपि ॥ समीकरोति विषमान् शमनन्तद् यथामृता ॥२२९॥ (क) यत् द्रव्यन्दोषत्रयं न शोधयति नोर्द्ध्वाधो मार्गाभ्यामानयति ॥ समान् दोषान्नो दीरयति न वर्द्धयति । शमनं तत् ॥ कृत्वा पाकम्मलानाञ्च भित्वा बन्धमधो नयेत ॥ तच्चानुलोमनं ज्ञेयं यथा प्रोक्ता हरीतकी ॥२३०॥

भा० जो आमको पचाताहै और अग्निको नहिं करता वो पाचन है। जैसे नागकेसर और चित्रक दीपन पाचन है ॥ २२९ ॥ (क) ननुःशंका) जो अग्निको दीपन नहीं करता वोह आमको कैसे पचाता है। इस आशंका में कहतेहैं। पाचन अग्निदीपन न करता तबभी आमको पचाताहै। जैसे जलमें का अंगार समूह अन्नको पचाताहै। न किं दीप की मानिंद सबतरफ प्रकाश करताहै ॥ जोदोषोंको नहीं शोधन करता और समदोषोंको नहीं बढ़ाता। तथा विषम दोषोंको सम करता है वोह शमन है। जैसे गिलोय ॥ २२९ ॥ (क) जो द्रव्य तीनों दोषोंको नहीं शोधन करता अर्थात् ऊपर नीचेसे नहीं ले जाता। और सम दोषों को नहीं बढ़ाता वोह शमन है ॥
जो मलोंका पाक करके और जुड़ोंको फोड़के नीचे लेजाता है ॥ उसको अनुलोमन जानना चाहिये जैसे हरीतकी कहीहै ॥ २३० ॥

(क) मलानाम्। अपक्वानां वातपित्त श्लेष्मणां बन्धं वा युवन्धं भित्वा ऽधो नयेत। मलानधः पातयति। पक्तव्यं यद पक्त्वैव श्लिष्टं कोष्ठ मलादिकम् ॥ नयत्यधः स्रं सनन्तद् यथा स्यात् कृतमालकम् ॥ २३१॥ मलादिकम् आदि शब्दात्कफ पित्ते। कृतमालः धन बहेरा इति लोके ॥ मलादिक मबद्धं यद्बद्धं वा पिण्डितं

मलै:॥ भित्त्वाध: पातयतिय द्भेदनं कटुकीयथा ॥२२२॥

(क) अवद्धं पिथिलम्बद्धङ्गाढं मलै:दोषै: तत्रापि वातै:।

बद्धत्व माधिक्य बोधनार्थन्तै: पिरिडतम्। गुटिकी कृतम्॥

विपक्वं यदपक्वं वा मलादि द्रवतां नयेत्।रेचयत्य

पि तज्ज्ञेयं रेचनन्त्रिवृता यथा ॥ २२३॥

रेचयत्यपि। अध: पातयति च। त्रिवृताप निलरा।

भा॰ (क) मलोंका अर्थात् अपक्व वात पित्त कफोंका वंध अर्थात् वायुके. वंधकों फोड़कर नीचे लेजाताहै। अर्थात मलोंको नीचे गिराताहै। कोठे में लगके ठहरे ळवे पकनेके योग्य मलादि कोंको बिनापकायेही॥ नीचे लेजाताहै उसको स्रंसकते है जैसे अमलतास ॥ २२१॥ मलादिक। आदि पाब्द् से कफ पित्त जानने चाहिये ॥ दीलामल अथवा वंधाळवा या सु है इनको जो। फोड़कर नीचे गिराताहै वोह भेदन है जैसे कुटकी। २२२ (क) अवद्ध अर्थात् ढीला वद्ध अर्थात् सख्त मल अर्थात् दोषोंसे उसमें वातसे। पिरिडत अर्थात् गुठली के समान। बहुत पकेळवे अथवा कच्चे मलादिकोंको ढीलाकरके निकाले ॥ उसकोरेचन कहते हैं जैसेनिसोत ॥ २२३॥ विन पके ळवे पित्तकफ अपको बलात्कार से ऊपर जो लेजावे॥

अपक्वं पित्त श्लेष्माणं बला दूर्द्ध नयेत्तु यत ॥ वम

नन्तद्धि विज्ञेयं मदनस्य फलं यथा ॥ २२४॥

(ख) ऊर्द्ध नयेन् मुख मार्गेण वहिष्कुर्य्यात्। मदनस्य

फलं मयन फल मिति लोके,

स्थानाद्वहि र्नयेदूर्द्ध मधोवा मल सञ्चयम्॥ देह

संशोधनन्तत् स्या देवदाली फलं यथा ॥ २२५॥

(ग) देवदाली सोनैय्या इति लोके ॥

भा० उसको वमन जानना चाहिये जैसे मैनफल ॥२२४॥
(ख) ऊपर लेजावे अर्थात् मुंहसे बाहर निकाले। शरीरमें संचयहुवे मलको स्थान से बाहर नीचे या ऊपर लेजावे। उसे संशोधन कहते हैं। जैसे देवदाली फल ॥ २२५॥ (ग) देवदाली को लोक में सोनईया कहते हैं॥

दीपनम्पाचनं यत्स्या दुष्णत्वा द्रवशोषकम्॥ ग्राही तच्च यथा शुण्ठी जीरकङ्गज पिप्पली ॥ २२६॥
रौक्ष्याच्छै त्यात्कषायत्वा लघुपाकाच्च यद्भवेत्॥ वातकृत् स्तम्भनन्तत् स्याद् यथा वत्सक टुण्टुकौ॥ ॥२२७॥ वातकृत् प्रतिलोम वातकृत्। स्तम्भनं अधोगामि मलादीनाम्। वत्सक कुरै आ टुण्टक सोना पाठा। श्लिष्टान् कफादिकान् दोषानुन्मूलयति यद्बलात्॥ छेदनन्तत् यथा क्षार मरिचानि शिलाजतु ॥ २२८॥

भा० जो दीपन पाचन उष्णत्व से स्नूखत को सुकानेवाला है। वोह ग्राही है जैसे सोंठ जीरा और गजपीपल ॥ २२६॥ रूक्षता से शीतलता से कषायसे और लघु पाक से जो वायुकोकरनेवाला होता है॥ वोह स्तंभन है जैसे कुरैया और सोनापाठा ॥ २२७॥ जो श्लिष्ट कफादि दोषों को बलात्कार से उखेड़ता है॥ उस्को छेदन कहते हैं जैसे जवाखार काली मिर्च और शिलाजीत ॥ २२८॥ [क्षारा यवक्षारादयः।

धातून्मलान् वा देहस्य विशोष्योल्लेखयेच्च यत्॥ लेखनन्तद् यथा क्षौद्रं नीर मुष्णं वचा यवा ॥ २२९॥
[उल्लेखयेत् कृशी कुर्य्यात्। लेखनं कृशीकारकं क्षौद्रं मधु। यवा इन्द्र यवाः। यस्माद्द्रव्याद्भवेत् स्त्रीषु हर्षोवाजी

हितत ॥ यथाश्व गन्धा मुशली शर्करा च शतावरी ॥
॥२३०॥ हर्षात्नुं समुत्साहः।

भा० शरीर के धातु अथवा मलोंको सुकाके कश करे उस्को लेखन कहते हैं। जैसे शहत गरम पानी वच और इन्द्रजी ॥ २२९ ॥ जिस द्रव्यसे स्त्री में हर्ष होताहे उसको वाजी करण कहते हैं ॥ जैसे असगन्ध मूसली शर्करा और शतावर ॥ २३० ॥

यस्माच्छुक्रस्य वृद्धिः स्याच्छुक्रलं हि तदुच्यते ॥ यथा नाग बलाद्याः स्यु र्वीजञ्च कपिकच्छुजम् ॥२३१॥ नागबला गुलसकरी।) दुग्धंमाषाश्च भल्लातक फलमज्जा मलानि च ॥ एतानि जनकानि स्युः रेचकानि च रेतसः॥ ॥२३२॥ (क) जनकानि प्रभावाच्छीघ्रमेव रसाद्युत्पादन पूर्व्वकं शुक्रञ्जनयन्ति । (ख) रेचकाणि आधिक्यात् प्रवर्त्तयन्ति च ।

भा० जिस्से शुक्रकीवृद्धि होती है उस्को शुक्रल कहते हैं ॥ जैसे गुलसकरी आदिक और किवांचका बीज ॥ ३३१ ॥ दूध उड़द भिलावे के फलकी गिरी आंवले। ये शुक्र के उत्पन्न करने वाले और शुक्रके रेचक भी हैं ॥ ३३२॥ (क) प्रभाव से शीघ्रही रसादियोंको उत्पन्न करके ·कको उत्पन्न करते हैं। (ख) अधिकता से निकालते हैं। स्

प्रवर्त्तनी स्त्रीशुक्रस्य रेचनं बृहती फलम् ॥ जातीफलं स्तम्भकं स्यात् कालिङ्गं क्षयकारि च ॥ २३३ ॥

(क) स्त्री स्मरण कीर्त्तन दर्शन सम्भाषण स्पर्शन चुम्बनालिङ्गननिधुवनैः समस्तै र्व्यस्तै श्च शुक्रस्य प्रवर्त्तिनी ।

प्रवर्त्तिनी प्रवृत्तिकारिणी रेचनी। वृहती फलम्।
वृहत् कण्टकारी फलमपि शुक्रस्य रेचकम् प्रवर्त्तकम्।
कालिङ्गं कलिन्द फलम्।

रसायनन्तु तज्ज्ञेयं यत् जराव्याधिनाशनम्॥ यथा।
हरीतकी रुदन्तीच गुग्गुलुश्च शिलाजतु॥ २३४॥
पूर्व्वं व्याप्याखिलं कायं ततः पाकञ्च गच्छति॥ व्यवा
यि तद यथा भङ्गा फेनञ्चाहि समुद्भवम्॥ २३५॥

(क) अन्यद्द्रव्यं पक्कन्तद्गुणं करोति व्यवायित्तु अपक्कमेव स्वगुणैः सकल शरीरं व्याप्य पाकं याति। अहि समुद्भव फेनम् अफीम्। सन्धिबन्धांस्तु शिथिलान् यत् करोति विकाशि तत्॥

भा० स्त्री सुक्रका निकालनेवाला कटेलीका फलहै। और जायफल स्तंभक है। तथा क्षयकरनेवाला मतीरे का फलहै॥ २३३॥ (क) स्त्रीका स्मरण या कीर्त्तन दर्शन सम्भाषण स्पर्श चुम्बन आलिंगन और मैथुन इन सबोंसे या एक २ से शुक्रकी प्रवृत्ति होती है। प्रवर्त्तिनी अर्थात् प्रवृत्ति करानेवाली रेचनी कटेलीका फल। बड़ी कटेली का फलभी रेचक है और शुक्रको क्षयकरनेवाला तरबूज॥ जो जराव्याधिका नाशकरनेवाला है उसको रसायन जानना चाहिये। जैसे। हरीतकी रुद्रवंती गुग्गल और शिलाजीत॥ २३४॥ जो पहले संपूर्ण शरीर मेंव्याप्त होकर पश्चात् पाक होताहै उसको व्यवायी कहतेहैं जैसे भांग और अफीम॥ २३५॥ (क) और द्रव्य पक उस गुणकोकरताहै और व्यवायीतो विनपकेही अपनेगुणोंसे संपूर्ण शरीर में फैलकर पाकको प्राप्त होता है। जो जोड़ोंके बन्धनोंको शिथिल करताहै वोह विकाशीहै॥

विश्लेष्यौजश्च धातुभ्यो यथाक्रमुककोद्रवौ॥ २३६॥

धातुभ्यः सकल शरीरस्थेभ्यो दोषेभ्यः। ओजः उष्मा तु विशेषयम् विशोष्य। क्रमुकम् पूगफलम्।

बुद्धिं लुम्पति यत् द्रव्यं मदकारि तदुच्यते ॥ तमो गुण प्रधानञ्च यथा मद्यं सुरादिकम् ॥ २३७ ॥

मदकारि मादकम्। व्यवायि च विकाशि स्यात् श्लेष्म छेदि मदावहम् ॥ आग्नेयं जीवितहरं योगवाहि स्मृतं विषम् ॥ २३८ ॥

भा॰ और ओज धातुवों को शोषण करता है जैसे कोदों और सुपारी ॥ २३६ ॥ जो द्रव्य बुद्धिको संभ्रम करे और तमोगुण प्रधान हो उसको मदकारी कहते हैं जैसे मद्य और सुरादिक ॥ २३७ ॥ व्यवायी और विकाशी कफके नाशक औ र नशा करनेवाले होते हैं ॥ उष्ण और योगवाही प्राणके नाशक कहेगये हैं। जैसे विष ॥ २३८ ॥

(क) व्यवायि सकलकाय गुण व्यापन पूर्वक पाकगमन शीलम्। विकाशि ओजः शोषण पूर्वक सन्धिबन्ध शिथिली करण शीलम्। मदावहम्। तमो गुणाधिक्येन बुद्धि विध्वंसकम्। आग्नेयं अधिकाग्निगुणम् योगवाहि संसर्गि गुण ग्राहकम् विषं लक्ष्यं दृष्टान्तो वत्सनाभ शृङ्गकादिभिः। निजवीर्य्येण यद् द्रव्यं स्रोतेभ्यो दोष सञ्चयम् ॥ निरस्यति प्रमाथि स्यात्तद्यथा मरिचं वचा ॥ २३९ ॥

भा॰ (क) व्यवायी अर्थात् सम्पूर्ण शरीर में गुणको फैलाकर पाक होनेवाला। मद करनेवाला अर्थात् तमोगुणकी अधिकतासे बुद्धिका नाशक। आग्नेय अर्थात् अधिक अग्निगुण। योगवाही अर्थात् संसर्गी के गुणको ग्रहणकरने वाला यहाँपर विषलक्ष है। दृष्टान्त वत्सनाभ शृङ्गकादि। जो द्रव्य अपने वीर्यसे दोषोंके संचयको स्रोतोंसे निकालता है उसको प्रमाथी कहते हैं, जैसे मरिच, वच ॥ २३९ ॥

(दोषा वातादयः।)

पैच्छिल्याद्गौरवा द्द्रव्य रुद्धा रसवहाः शिरा। धत्ते यद्

गौरवं नत स्यादभिष्यन्दि यथादधि ॥२५०॥ (गौरवं शरीरे)

विदाहि द्रव्यमुद्गार मम्लं कुर्य्यात् तथा तृषाम् ॥ हृदि दा हञ्च जनयेत्पाकं गच्छति तच्चिरात् ॥ २५१॥

(क) गृह्णाति योगवाहि द्रव्यं संसर्गिवस्तु गुणान् । पच्यमानं तथैतन्मधु जलतैलाज्यसूतलोहादि अथ वीर्य्यम् । तत्र वाग्भट:। उष्ण शीत गुणोत्कर्षात् बुधैः वीर्य्यम् द्विधा स्मृतम् ॥ यत्सर्वमग्निसोमीयं दृश्यते भुवन त्रयम् ॥ २५२॥

(अथ तद्गुणाः) उष्णं वातकफौ हन्याच्छीतन्तु ननुते जराम्। शीतं वातकफातङ्कान् कुरुते पित्तहृत्परम् ॥२५३॥ अन्यच्च)

भा० पिच्छिलतासे और गौरवसे जो द्रव्य रसको लेजानेवाली शिराओंको रोक कर गुरुता को धारण करता है वोह अभिष्यंदि है जैसे दही ॥ २५०॥ विदाही द्रव्य खट्टी डकार और तृषाको करता है । और हृदयमें दाहकोभी उत्पन्न करता है तथा देरमें वोह पकाता है ॥२५१॥ (क) योगवाही द्रव्य संसर्गी वस्तु के गुणों को ग्रहण करता है । पकाहुआ जैसे यह मधु जल तैल घृत सूत लोह आदि । अनन्तर वीर्य्यको कहते हैं । उसेवाग्भट ने कहाहै । ऊष्ण और शीतकी अधिकता से पंडितोंने दो प्रकार का वीर्य्य कहाहै ॥ वोह सब तीनों भुवनोंमें गरम शीत दिखाई देताहै ॥ २५२॥ अनन्तर उस्के गुण कहतेहैं ॥ उष्ण वात कफ को नाश करताहै । और शीत जराको बढ़ाता है । शीतवातकफ के रोगों को करता है और अत्यन्त पित्तकानाशक है ॥ २५३॥

तत्रोष्णं भ्रम तृड्ग्लानि स्वेददाहाशु पाकताम् ॥ शमञ्च वातकफयोः करोति शिशिरं पुनः ॥२५४॥ ह्लादनं जीवनं स्तम्भं प्रसादं रक्तपित्तयोः ॥ [अथ विपाकः] जाठरेणाग्निना योगाद्यदुदेति रसान्तरम् ॥ रसानां

परिणामान्ते स विपाक इति स्मृतः ॥ २४५ ॥ मिष्टः पटु श्च मधुरमम्लोऽम्लं पच्यते रसः ॥ कटुतिक्तकषाया णां पाकः स्यात् प्रायशः कटुः ॥ २४६ ॥ (तथा च वा- ग्भटः।) त्रिधा रसानां पाकः स्यात् स्वाद्वम्लकटुकात्म कः ॥ प्रायः पदेन व्रीहिः स्यात् स्वाद्वम्ल रवि पाकतः ॥ २४७ ॥ (क) शिवा कषाया मधुरा पाके सुण्ठी कटुका मधुर पाकेत्यादि । [अथ विपाकानां गुणाः।]

भा० उसमें उष्म भ्रम तृषा ग्लानि पसीना दाह और शीघ्र पाक । तथा वायु और कफका शमन करता है पुनः शीतल ॥ २४४ ॥ हृदय जीवन स्तंभ और रक्त पित्तकी स्वच्छता इनको करता है ॥ अनन्तर विपाक को कहते हैं ॥ उदर अग्नि के योगसे रसोंके परिणाम के अन्तमें जो रसान्तर उत्पन्न होता है उसको विपा क कहते हैं ॥ २४५ ॥ मधुर और लवण रसका मधुर पाक होता है । तथा अम्ल का अम्ल पाक होता है । और कटु तिक्त कषाय इनका प्रायः कटु पाक होता है । ॥ २४६ ॥ इस प्रकार वाग्भटने कहा है ॥ तीन प्रकार रसोंका पाक होता है ॥ मधुर अम्ल कटु ॥ प्रायः पदकरके धान्य अविपाक से स्वादु और अम्ल होता है ॥ २४७ ॥ (क) हड़ कसैली है परंतु पाकमें मधुर होती है ॥ उसी प्र कार सोंठ कटु है और पाकमें मधुर होती है इत्यादि ॥

श्लेष्मकृन्मधुरः पाको वातपित्तहरो मतः ॥ अम्लस्तु कुरुते पित्तं वातश्लेष्मगदापहः ॥ २४८ ॥ कटुःकरो ति पवनं कफं पित्तञ्च नाशयेत् ॥ विशेष एवरसतो विपाकानां निदर्शितः ॥ २४९ ॥ [अथ प्रभावः।]

रसादिसाम्ये यत्कर्म विशिष्टं तत्प्रभावजम् ।

दन्तीरसाद्यैः तुल्यापि चित्रकस्य विरेचनी ॥ मधु कस्य च मृद्वीका घृतं क्षीरस्य दीपनम् ॥ २५० ॥

भा० अनन्तर विपाकों के गुण कहते हैं ॥ मधुर पाक कफको करता हैं । औ वात पित्त का नाशक है । अम्ल पाक पित्तको करता है । और वात कफके रोगो का नाशक है ॥ २४७ ॥ कटु पाक वायुको करताहै । और कफ पित्तको नाश करता है ॥ रससेही विपाकोंका विशेष कहा गया है ॥ २४८ ॥ अनन्तर प्रभावको कहते हैं ॥ रसादियोंकी समता में जो अधिक कर्म है उस्को प्रभावज कहते हैं ॥ जैसे चित्रक के रसादि करके समान भी जई जमालगोटे की जड़ विरेचन करनेवाली है ॥ २४६ ॥ और महुवेके समान रससे मुनक्का तथा दूधके समान घृत दीपन है ॥ २५० ॥

प्रभावस्तु यथा धात्री लकुचस्य रसादिभिः ॥ समापि कुरुते दोष त्रितयस्य विनाशनम् ॥ २५१ ॥ कचित्तु केवलं द्रव्यं कर्म्मकुर्य्यात् प्रभावतः ॥ ज्वरं हन्ति शिरो बद्धा सह देवी जटा यथा ॥ २५२ ॥

तथा नानौषधियोगेषु फलं प्रति स्वभाव एवा श्रयणीयो न तु तत्र रसादिरूपहेतु विचारः कर्त्तव्यः ।

ह [यत आह सुश्रुत :।]

भा० जैसे प्रभाव बड़हल के रसादि से तुल्यभी आंवले तीनों दोषों के नाशको करतेहैं ॥ २५१ ॥ कहीं पर केवल द्रव्य प्रभाव सेकर्मको करता है ॥ जैसे सहदेवी की जटा सिरमें बांधनेसे ज्वरको नाश करती है ॥ २५२ ॥

(क) जिस्से नाना औषधीके योगके फलमें स्वभावहीको आश्रयण करना चाहिये । न कि उसमें रसादि रूप कारण का विचार करना चाहिये । जैसा कि सुश्रुत ने कहा है ॥

अमी सामान्य चिन्त्यानि प्रसिद्धानि स्वभावतः ॥ आगमेनोपयोज्यानि भेषजानि विचक्षणैः ॥ २५३ ॥ प्रत्यक्षलक्षणफलाः प्रसिद्धाश्च स्वभावतः ॥ नौषधीर्हेतुभिर्विद्वान् परीक्षेत कदाचन ॥ २५४ ॥ विरुद्धगुण

संयोगे भूयसाल्पं हि जायते ॥ रसं विपाकस्तौ वीर्य्यं प्रभावस्तान् व्यपोहति ॥ २५५ ॥ (क) इति रसगुण वीर्य्य विपाक प्रभावाणां स्वरूपाण्यभिधाय कुत्र द्रव्ये के रसगुण वीर्य्यविपाकप्रभावाः सन्तीति बोधयितुं द्रव्य गतान् रस गुण वीर्य्यविपाकप्रभावानाह । तत्र प्रथमं हरीतक्या उत्पत्तिनाम लक्षणगुणानाह ।

भा० चतुरवैद्यों के द्वारा शास्त्र में उपयोग करने योग्य प्रसिद्ध येह औषधस्वभावसे सामान्य करके विचार करनेके योग्य होतेहैं ॥ २५३ ॥ स्वभावसे प्रत्यक्ष लक्षण फलकोकरनेवाली प्रसिद्ध । औषधियोंकोभी विद्वान कभीभी तर्कके द्वारा परिक्षा करें ॥ २५४ ॥ विरुद्ध गुणके संयोगमें बहुत भी थोड़ा होजाता है ॥ जैसे विपाक रसको और उनदोनोंकोवीर्य्य तथा उनको प्रभाव नाश करताहै ॥ २५५ ॥ (क) इस प्रकार रसगुणवीर्य्य विपाक और प्रभावोंके स्वरूपको कहकर किस द्रव्यमें कौन से रसगुणवीर्य्यविपाक और प्रभावहैं उनकोजाननेके वास्ते द्रव्य में के रसगुण वीर्य्य विपाकप्रभावोंको कहतेहैं ॥ उसमें प्रथम हरीतकीकी उत्पत्तिनाम लक्षण और गुण इनको कहतेहैं ॥

दक्षं प्रजापतिं स्वस्थ मश्विनौ वाक्य मूचतुः ॥ कुतो हरीतकी जाता तस्यास्तु कति जातयः ॥ २५६ ॥ रसाः कति समाख्याताः कति चोपरसाः स्मृताः ॥ नामानि कति चोक्तानि किंवा तासाञ्च लक्षणम् ॥ २५७ ॥ के च वर्णा गुणाः के च का च कुत्र प्रयुज्यते ॥ केन द्रव्येण संयुक्ता कांश्च रोगान् व्यपोहति ॥ २५८ ॥

भा० स्वस्थ दक्षप्रजापतिसे अश्वनीकुमारोंने पूछा । कहांसे हरीतकी उत्पन्न हुई और उसकी कितनी किस्में हैं ॥ २५६ ॥ तथा रस कितने और उपरस कितने कहे गयेहैं ॥ नाम कितने कहेगये और उनका लक्षण क्या है ॥ २५७ ॥ कितने वरण और कितने गुणहैं और किसको कहांपर देनी चाहिये ॥ कौन से द्रव्यके

साथ देनेसे कौनसे रोगों को नाश करती है ॥२५८॥

प्रश्नमनद् यथा पृष्टं भगवन् वक्तुमर्हसि ॥ अश्विनो
र्वचनं श्रुत्वा दक्षो वचन मब्रवीत् ॥ २५९ ॥ पपात वि
न्दुर्मेदिन्यां शक्रस्य पिवतोऽमृतम् ॥ ततो दिव्यात् स
मुत्पन्ना सप्तजातिर्हरीतकी ॥ २६० ॥ हरीतक्य भया प
थ्या कायस्था पूतना मृता ॥ हेमवत्य व्यथा चापि चेत
की श्रेयसी शिवा ॥ २६१ ॥

भा० जैसे यह प्रश्न मैंने पूछाहै इसको आप कहसक्ते हो ॥ अश्विनी कुमारोंका यह वचन सुनकर दक्ष प्रजापति बोले ॥ २५९ ॥ इन्द्र के अमृत पीतेहुवे में एक विन्दु पृथ्वीपर गिरा ॥ उस अमृत से सात जातकी हरीतकी पैदाहुई ॥ २६० ॥ हरीत की, अभया, कायस्था, पूतना, अमृता ॥ हेमवती, अव्यथा, चेतकी, श्रेयसी, शिवा ॥ २६१ ॥

वयस्था विजया चापि जीवन्ती रोहिणीति च ॥ विजया
रोहिणी चैव पूतना चामृता भया ॥ २६२ ॥ जीवन्ती चे
तकी चेति विज्ञेयाः सप्तजातयः ॥ अलाबुवृत्ता विज
या वृत्तासा रोहिणी स्मृता ॥ २६३ ॥ पूतनास्थिमती
सूक्ष्मा कथिता मांसलामृता ॥ पञ्चरेखा भया प्रो
क्ता जीवन्ती स्वर्णवर्णिनी ॥ २६४ ॥ त्रिरेखा चेतकी
ज्ञेया सप्तानामियमाकृतिः ॥ विजया सर्व रोगेषु रो
हिणी व्रणरोहिणी ॥ २६५ ॥

भा० वयस्था, विजया, जीवन्ती, और रोहणी; ये नाम हड़के हैं ॥ विजया रोहिणी, पूतना, अमृता, अभया ॥ २६२ ॥ जीवन्ती, चेतकी, ये सात जा ... ॥ तूम्बी के समान गोल विजया होतीहै ॥ और वोह गोल रोहि ... ॥२६३॥ छोटी गुठलीवाली पूतना और गूदेदार अमृता

कहीगई है ॥ पांच लकीरोंवाली अभया और सोनेके रंगकी सदृश जीवन्ती होती है ॥ २६५ ॥ तीन लकीरोंवाली चेतकी सातों हर्डोंका ये स्वरूप है ॥ सब रोगोंमें विजया । घावोंके भरनेमें रोहिणी देनी चाहिये ॥ २६५ ॥

प्रलेपे पूतना योज्या शोधनार्थेऽमृता हिता ॥ अक्षिरोगेऽभया शस्ता जीवन्ती सर्वरोग हृत् ॥ २६६ ॥ चूर्णार्थे चेतकी शस्ता यथा युक्तं प्रयोजयेत् ॥ चेतकी द्विविधा प्रोक्ता श्वेता कृष्णा च वर्णतः ॥ २६७ ॥ षडङ्गुलायता शुक्ला कृष्णा त्वेकाङ्गुला स्मृता ॥ काचिदा स्वादमात्रेण काचिद् गन्धेन भेदयेत् ॥ २६८ ॥

भा॰ लेपमें पूतना और शोधनके अर्थ अमृता अच्छीहै । नेत्रके रोगमें अभया और जीवन्ती सर्वरोगोंकी नाशक है ॥ २६६ ॥ चूर्णमें चेतकी अच्छी होतीहै । योगके अनुसार योजना करे ॥ चेतकी रंगमें दो प्रकारकी कहीहै सफ़ेद और काली ॥ २६७ ॥ सुपेद छः अंगुल लम्बी और काली एक अङ्गुल की कही गई है ॥ कोई खाने मात्रसेही दस्तोंको करती है । और कोई सूंघने से दस्त लातीहै ॥ २६८ ॥

काचित् स्पर्शेन दृष्ट्यान्या चतुर्द्धा भेदयच्छिवा ॥ चेतकी पादपच्छायामुपसर्पन्ति ये नराः ॥ २६९ ॥ भिद्यन्ते तत्क्षणादेव पशु पक्षि मृगादयः ॥ चेतकी तु धृता हस्ते यावत्तिष्ठति देहिनः ॥ २७० ॥ तावद्भिद्येत वेगैस्तु प्रभावान्नात्र संशयः ॥ न धार्या सुकुमाराणां कृशानां भेषज द्विषाम् ॥ २७१ ॥

भा॰ कोई छूनेसे और कोई देखनेसे दस्त लातीहै ऐसे चार प्रकार की हर्डें होती हैं ॥ जो मनुष्य चेतकीके वृक्षकी सायामें जातेहैं ॥ २६९ ॥ उनको उसी क्षणमें दस्त लगतेहैं । और पशू पक्षी मृगादिकों को भी दस्त लगतेहैं ॥ मनुष्य चेतकी को जब

तक धारण करते हैं ॥ २७० ॥ तब तक उसके प्रभावसे दस्त लगते हैं इसमें कुछ संदेह नहीं है ॥ सुकमार कृश और औषध के शत्रु इनके धारण करने योग्य नहीं होती ॥ २७१ ॥

चेतकी परमा शस्ता हिता सुख विरेचनी ॥ सप्तानाम पि जातीनां प्रधानं विजया स्मृता ॥ २७२ ॥ सुखप्रयो गा सुलभा सर्वरोगेषु शस्यते ॥ हरीतकी पञ्चरसा लवणा तु वरा परम् ॥ २७३ ॥ रूक्षोष्णा दीपनी मे ध्या स्वादुपाका रसायनी ॥ चक्षुष्या लघुरायुष्या बृंहणी चानुलोमिनी ॥ २७४ ॥ श्वासकास प्रमेहा र्शोकुष्ठ शोथोदर क्रमीन् ॥ वैस्वर्य्य ग्रहणी रोग वि बन्ध विषम ज्वरान् ॥ २७५ ॥

भा० चेतकी बहुत अच्छी सुख विरेचन में होती है ॥ सात जातों में विजया प्रधान कही गई है सुख पूर्वक प्रयोगमें देने योग्य होती है और सुलभ सब रोगों में प्रशस्त होती है ॥ हरीतकी पांच रसोंसे युक्त और लवण से रहित तथा बहुत कसैली होती है ॥ २७३ ॥ रूखी गरम अग्नि को दीपन करनेवाली पवित्र मधुर पाक वाली रसायनी होती है ॥ नेत्रके हित हलकी आयुके हित बृंहणी तथा वायु और मलको नीचे करने वाली होती है ॥ २७४ ॥ श्वास कास प्रमेह बवासीर कोढ़ सूजन उदर रोग क्रमी ॥ स्वरभंग ग्रहणीरोग विबंध अर्थात् क़ब्ज़ और विषमज्वर ॥ २७५ ॥

गुल्माध्मान तृषाच्छर्दि हिक्का कण्डू हृदामयान् ॥
कामलां शूलमानाहं प्लीहानञ्च यकृत्तथा ॥ २७६ ॥
अश्मरी मूत्र कृच्छ्रञ्च मूत्रा घातञ्च नाशयेत् ॥
स्वादुतिक्त कषायत्वात्पित्तहृत्कफहृत्तु सा ॥ २७७ ॥

कटुतिक्तकषायत्वा दम्लत्वाद्वातहृच्छिवा ॥ पित्तकृ
त्कटुकाम्लत्वा द्वातकृन्न कथं शिवा ॥ २७८ ॥ प्रभा
वाद्दोषहन्तृत्वं सिद्धं यत्तत् प्रकाश्यते ॥ हेतुभिः शि
ष्यबोधार्थं न पूर्व्वं कथ्यतेऽधुना ॥ २७९ ॥ कर्म्मान्य
त्वं गुणैः साम्यं दृष्टमाश्रयभेदतः ॥ यत स्ततो नेति चि
न्त्यं धात्रीलकुचयोर्यथा ॥ २८० ॥

भा० वायुगोला आध्मान तृषा वमन रुचकी खुजली हृद्रोग ॥ कामला शूल अफारा पिलही तिल्ली ॥ २७६ ॥ पथरी मूत्रकृच्छ्र और मूत्राघात इनको नाश करतीहै ॥ मीठा तीखा और कसैले पनसेवोह पित्तनाशक और कफनाशक होतीहै ॥ २७७ ॥ कटु तिक्त कषाय इनसे और खट्टे पनसे हरीत की वातकी नाशक है ॥ कडुवे और खट्टेपन से पित्तको करनेवाली हड़ है तब वातको करनेवालीक्यों नहींहै ॥ २७८ ॥ प्रभाव से जो दोषकी नाशकता सिद्ध है उस्को कहतेहै ॥ शिष्य बोधके अर्थ प्रथम हेतुओं से नहींकहा अब ॥ २७९ ॥ आश्रयके भेदसे गुणोंकी समता और कर्माण्यता देखी ॥ जिस्से तिस्से चिंतन करनेके योग्य नहीं है जैसे आंवले बढ़ेलों की ॥ २८० ॥ ४ह

पथ्यायां मज्जनि स्वादुः स्नाय्वावम्लो व्यवस्थितः ॥ वृ
न्ते तिक्तस्त्वचि कटु रस्थिस्थस्तुवरो रसः ॥ २८१ ॥ नवा
स्निग्धा घनावृत्ता गुर्वी क्षिप्ता च याम्भसि ॥ निमज्जेत्
साप्रशस्ता च कथितातिगुणप्रदा ॥ २८२ ॥ नवादि
गुणयुक्तत्वं तथैकत्र द्विकर्षता ॥ हरीतक्याः फले यत्र
द्वयं तच्छ्रेष्ठमुच्यते ॥ २८३ ॥

भा० हड़की मज्जामें मधुर स्नायुमें अम्ल रहताहै ॥ पड़दे में तिक्तता छिलकेमें कटु और अस्थिमें कसैलारस होताहै ॥ २८१ ॥ नवीन स्निग्ध घन गोल भारी और पानीमें डालनेसे डुबे वोह अच्छी और गुणको देनेवाली कही गई है । २८२

नवादि गुणकरके युक्त और वैसेही एक जगह रोगोले की श्रेष्ठहै ॥ और जहां हरीतकी के दो फल जुड़े हुवे हों वोह श्रेष्ठ है ॥ २८३ ॥

चर्विता वर्द्धयत्यग्निं पेषिता मल शोधिनी ॥ स्विन्ना संग्राहिणी पथ्या भृष्टा मोक्ता त्रिदोषनुत् ॥ २८४ ॥ उन्मीलिनी बुद्धिबलेन्द्रियाणां निर्मूलिनी पित्त कफानिलानाम् ॥ विस्रंसिनी मूत्र शकृन्मलानां हरीतकी स्यात् सह भोजनेन ॥ २८५ ॥ अन्न पान कृतान् दोषान् वातपित्त कफोद्भवान् ॥ हरीतकी हरत्याशु भुक्तस्योपरि योजिता ॥ २८६ ॥

भा० चर्वण कीहुई अग्निको बढ़ाती है पीसीहुई मलको शोधन करने वाली है ॥ और नलीहुई संग्रहणी नथा भुनीहुई त्रिदोष नाशक कही गई है ॥ २८४ ॥ बुद्धि बल इन्द्रियों को प्रकाश करनेवाली और पित्त कफ वायु को नाश करनेवाली ॥ तथा मूत्र मल दोषों को निकालनेवाली हरीतकी होती है भोजनके साथ ॥ २८५ ॥ वात पित्त कफ से उत्पन्न हुवे दोष और अन्न पानसे हुवे दोषोंको ॥ भोजन के उपरांत योजना कीहुई हरीतकी शीघ्र नाश करतीहै ॥ २८६

लवणेन कफं हन्ति पित्तं हन्ति सशर्करा ॥ घृतेन वातजान् रोगान् सर्वरोगान् गुडान्विता ॥ २८७ ॥ सिन्धूत्थ शर्करा शुण्ठीकणा मधुगुडैः क्रमात् ॥ वर्षादिष्वभया प्राश्या रसायन गुणैषिणा ॥ २८८ ॥ अध्वातिखिन्नो बलवर्जितश्च रूक्षः कृशो लंघनकर्षितश्च ॥ पित्ताधिको गर्भवती च नारी विमुक्त रक्तस्त्वभयान्नखादेत् ॥ २८९ ॥

भा० लवण के साथ कफको नाश करती है और शर्कराकेसहित पित्तको

घनके सहित वातके रोगोंको और गुड़के साथ हरीतकी सब रोगोंको नाश करती है ॥ २८७ ॥ सैन्धव लवण शर्करा सुंठी पीपल मधु और गुड़ क्रमसे इनके साथ हरीतकी। वर्षादि ऋतुओंमें रसायन के गुण चाहनेवालोंने भाशन अर्थात् खानी चाहिये ॥ २८८ ॥ मार्ग से अति खिन्न हुवा बल से रहित रूखा कृश लंघनसे दुर्बल हुवा ॥ पित्ताधिकवाला गर्भवती स्त्री और प्रसूत लिया हुवा ये सब हरीतकी को न खावें ॥ २८९ ॥

[अथ विभीतकस्य नामानि गुणाश्च।]

विभीतक स्त्री लिङ्गःस्यादक्षः कर्षफलस्तु सः ॥
कलिद्रुमो भूतवासस्तथा कलियुगालयः ॥ २९० ॥
विभीतकं स्वादु पाकं कषायं कफपित्तनुत् ॥ उष्णवी
र्यं हिमस्पर्शं भेदनं कासनाशनम् ॥ २९१ ॥ रूक्षं नेत्र
हितं केश्यं क्रमिवैस्वर्यनाशनम् ॥ विभीतमज्जा तृट्
च्छर्दि कफवातहरो लघुः ॥ २९२॥ कषायो मदकृ
च्चाथ धात्रीमज्जापि तद्गुणः ॥

भा० अनन्तर बहेड़े के नाम और गुण कहते हैं ॥ विभीतक त्रिलिङ्ग अक्ष कर्षफल ॥ कलिद्रुम भूतावास कलियुगालय। येह बहेड़े के नाम हैं ॥ २९० ॥ बहेड़ा पाकमें मधुर कसेला कफ पित्तका नाशक ॥ उष्ण वीर्यवाला स्पर्श में शीतल भेदन कासका नाशक ॥ २९१ ॥ रूखा नेत्रके हित केश के हित कृमी स्वरभंगका नाशक होता है ॥ बहड़े की गिरी तृषा वमन कफ वात इनको नाश करनेवाली और हलकी ॥ २९२ ॥ तथा कसेली नशा करनेवाली गिरी होती है। और आंवले की गिरीभी इसीके समान गुणकोकरती है ॥

[अथामलक्या नामानि गुणाश्च।

त्रिष्वामलक्यमाख्यातं धात्री तिष्यफला मृता ॥ ह
रीतकी सदृशं धात्री फलं किन्तु विशेषतः ॥ २९३॥

रक्तपित्तप्रमेहघ्नं परं वृष्यं रसायनम् ॥ हन्तिवातं तद म्लत्वात् पित्तं माधुर्य्यशैत्यतः ॥ २६४ ॥ कफं रूक्ष कषायत्वात् फलं धात्र्यास्त्रिदोषजित् ॥ यस्य य स्य फलस्येह वीर्य्यं भवति यादृशम् ॥ २६५ ॥ त स्य तस्यैव वीर्येण मज्जानमपि निर्दिशेत् ॥

भा० अनन्तर आंवलेके नाम और गुण कहतेहैं ॥ तीनों आंवलों में धात्री आम लक प्रसिद्ध है और तीनों में वे फलवाली अमृता प्रसिद्ध है ॥ हरीत के समान गुण धात्रीफलका है किन्तु विशेषकरके ॥ २६३ ॥ रक्त पित्त और प्रमेह की ना शक और अत्यन्त वृष्य तथा रसायन होतीहै ॥ वोह खट्टेपनसे वायुको नाश करताहै ॥ और मधुरता और शीततासे पित्तको नाश करताहै ॥ २६४ ॥ रूखे और कसेले पनसे कफके करताहै ॥ ऐसे आंवला त्रिदोष के जीतने वाला है ॥ यहां पर जिस २ के फलका वीर्य्य जैसे होताहै ॥ २६५ ॥ उस २ के वीर्य से मज्जा को भी जान लेवे ॥

[अथ त्रिफलाया लक्षणनाम गुणाः।] पथ्याविभी तधात्रीनां फलैःस्यात् त्रिफलासमैः ॥ फलत्रिक ञ्च त्रिफला सा वरा च प्रकीर्त्तिता ॥ २६६ ॥ त्रिफला कफ पित्तघ्नी मेह कुष्ठहरा सरा ॥ चक्षुष्या दीपनी रुच्या विषमज्वर नाशिनी ॥ २६७ ॥

भा० अनन्तर त्रिफला के लक्षण और नाम तथा गुण कहतेहैं ॥ हड़ बहे ड़ा और आंवला इनके सम फलों से त्रिफला होतीहै। फलत्रिक त्रिफला औ र वोह वरा भी कही गई है ॥ २६६ ॥ त्रिफला कफ पित्तकी नाशक प्रमेह कु ष्ठकी नाशक और दस्तावर नेत्रके हित अग्निके दीपन करनेवाली रुचि के क रने वाली और विषमज्वर नाशक है ॥ २६७ ॥

[अथ शुण्ठ्या नामानि गुणाश्च।]

शुण्ठी विश्वा च विश्वञ्च नागरं विश्वभेषजम् ॥ ऊष

शांकटु भद्रञ्च शृङ्गवेरं महौषधम् ॥ २९८ ॥ शुण्ठीरु
च्यामवातघ्नी पाचनी कटुका लघुः ॥ स्निग्धोष्णा म
धुरा पाके कफवात विबन्धनुत् ॥ २९९ ॥ वृष्या सर्व्या
वमिश्वास शूलकास हृदामयान् ॥ हन्ति श्लीपद शो
थार्शो आनाहोदर मारुतान् ॥ ३०० ॥ आग्नेय गुणा भूयिं
ष्टं तोयांशम्परिशोषि यत् ॥ संगृह्णाति मलं तत्तु ग्राहि
शुण्ठ्यादयो यथा ॥ ३०१ ॥ विबन्धभेदनी यातु सा कथं
ग्राहिणी भवेत् ॥ शक्ति विबन्धभेदे स्यात् यतो न मल
पातने ॥ ३०२ ॥

भा० अनन्तर सोंठके नाम गुण कहतेहैं ॥ शुंठी विश्वा विश्व नागर विश्व
भेषज ॥ ऊषण कटुभद्र शृंगवेर महौषध येह सोंठके नामहै ॥ २९८ ॥ सोंठ
रुचिको करनेवाली आमवात की नाशक पाचन कड़वी हलकी ॥ चिकना ग
रम पाक में मधुर कफवात और क़बज़ियत को नाश करने वाली है ॥ २९९ ॥
वृष्य मलको अनुलोमन करनेवाली वामन श्वास शूल खांसी हृदय के
रोग ॥ श्लीपद सूजन बवासीर अफारा उदर रोग और वात इनको नाश करती
है ॥ ३०० ॥ बहुत गरम जलके अंशको शोषण करनेवाली जो ॥ वोह मलको
बांधती है । जैसे ग्राही शुण्ठ्यादिक ॥ ३०१ ॥ विबंधको भेदन करनेवाली जो
है वोह कैसे ग्राहणी होतीहै ॥ विबंध भेदमें शक्ति है क्यों कि मल पातनमें
नहीं ॥ ३०२ ॥

[अथार्द्रकस्य नामानि गुणाश्च ।]

आर्द्रकं शृङ्गवेरं स्यात् कटुभद्रं तथार्द्रिका ॥ आर्द्रि
का भेदिनी गुर्व्वी तीक्ष्णोष्णा दीपनी मता ॥ ३०३ ॥
कटुका मधुरा पाके रूक्षा वात कफापहा ॥ येगुणाः
कथिताः शुंठ्यास्तेऽपि संत्यार्द्रके ऽखिलाः ॥ ३०४ ॥
भोजनाग्रे सदा पथ्यं लवणार्द्रक भक्षणम् ॥ अग्नि

सन्दीपनं रुच्यं जिह्वाकण्ठ विशोधनम् ॥ कुष्ठ पा-
ण्डुामये कृच्छ्रे रक्त पित्ते व्रणे ज्वरे ॥

भा० अनन्तर अदरक के नाम और गुण कहते हैं ॥ आर्द्रक शृंगवेर कटुभद्र आर्द्रिका येह नाम हैं ॥ अदरक भेदन करनेवाला भारी तीखा गरम दीपन कहा गया है ॥ ३०३ ॥ कडुवा पाकमें मधुर रूखा वातकफ का नाशकर्ता है ॥ जो गुण सोंठमें कहे गये हैं वोह सब अदरक में है ॥ ३०४ ॥ भोजनके पहले नमक और अदरक का खाना सदा पथ्य है ॥ अग्निका दीपन रुचि करनेवाला जीभ कण्ठ इनका विशोधन है ॥ ३०५ ॥ कुष्ट पंडुरोग और मूत्र कृच्छ्र रक्त पित्त ज़खम और ज्वर इनमें भी पथ्य है ॥

दाहे निदाघ शरदो नैव पूजित मार्द्रकम् ॥ ३०६ ॥

[अथ पिप्पल्या नामानि गुणा श्च ।

पिप्पली मागधी कृष्णा वैदेही चपला कणा ॥
उपकुल्योषणा शौण्डी कोला स्यात् तीक्ष्ण तण्डु
ला ॥ पिप्पली दीपनी वृष्या स्वादु पाका रसायनी
॥ अनुष्णा कटुका स्निग्धा वातश्लेष्म हरी लघुः ॥
३०७ ॥ पिप्पली रेचनी हन्ति श्वास कासोदर ज्वरान् ॥
कुष्ठ प्रमेह गुल्मार्शः प्लीह शूलाम मारुतान् ॥ ३०८ ॥
आर्द्रा कफ प्रदा स्निग्धा शीतला मधुरा गुरुः ॥ पित्त
प्रशमनी सा तु शुष्का पित्त प्रकोपिणी ॥ ३१० ॥

भा० दाहमें ग्रीष्म और शरद में अदरक अच्छा नहीं होता ॥ ३०६ ॥ [अनन्तर पिप्पलीनाम और गुण कहते हैं ॥ पिप्पली, मागधी, कृष्णा, वैदेही, चपला, कणा, उपकुल्या: उषणा, शौण्डि, कोला, तीक्ष्ण तण्डुला, येह पीपल के नाम हैं ॥ ३०७ ॥ पीपल दीपन और वृष्य पाकमें मधुर रसायन ॥ इसके गरम कटु चिकना ॥ और वातकफ को दूर करने

वाली तथा हलकी होती है ॥ ३०८ ॥ पीपल दस्तावर होती है और श्वासकास उदर रोग तथा ज्वर इनको नाश करती है ॥ कोढ़ प्रमेह वायगोला ववासीर सिही शूल आमवात ॥ ३०९ ॥ इनको नाश करती है गीली पीपल कफको करनेवाली चिकनी शीतल मधुर भारी ॥ पित्तको शमन होती है। और वोह बहुत सूखी हुई पित्तको प्रकोपकरने वाली होती है ॥ ३१० ॥

पिप्पली मधुसंयुक्ता मेद कफ विनाशिनी ॥
श्वास कास ज्वरहरा वृष्या मेध्याग्नि वर्द्धिनी ॥ ३११ ॥
जीर्णज्वरेऽग्नि मान्द्ये च शस्यते गुड़ पिप्पली ॥ कासा
जीर्णारुचिश्वास हृत्पाण्डु कृमिरोगनुत् ॥ ३१२ ॥ द्विगु
णः पिप्पली चूर्णाद् गुड़ोऽत्र भिषजां मतः ॥

[अथ मरिचस्य नामानि गुणाश्च।

मरिचं वेल्लजं कृष्णं मूषणं धर्मपत्तनम् ॥ मरिचं कटु
कं तीक्ष्णं दीपनं कफ वात जित् ॥ ३१३ ॥ उष्णं पित्त
करं रूक्षं श्वास शूल कृमीन् हरेत् ॥ तदार्द्रं मधुरं पा
के नात्युष्णं कटुकं गुरु: ॥ ३१४ ॥ किञ्चित्तीक्ष्ण गु
णं श्लेष्मप्रसेकि स्यात् पित्तलम् ॥

भा॰ मधुके सहित पीपल मेद कफ इनको विनाश करनेवाली ॥ श्वास कास ज्वर इनकी नाशक पुष्ट बुद्धि को बढानेवाली अग्नि बढानेवाली होती है ॥ ११ जीर्णज्वरमें और मन्दाग्नि में गुड़ पीपल अच्छी होती है ॥ कास अजीर्ण अरुची श्वास इनको नाशकरनेवाली और पांडु रोग और कृमीरोग इनको नाश करने वाली होती है ॥ ३१२ ॥ पीपलके चूर्णसे गुड दुगना वैद्योंके सम्मत है ॥ अनन्तर मरिच केनाम और गुणकहतेहैं ॥ मरिच, वेल्लज, कृष्ण, ऊषण, धर्मपत्तन, येह मरिचके नामहैं ॥ मिरच कडुवी तीखी दीपन कफवातकी नाशक होती है ॥ ३१३ ॥ उष्ण पित्तको करनेवाली रूखी श्वास शूल कृमि इनको नाश करती है ॥ वोह गीली पाकमें मधुर होती है। और न बहुत गर्म कडवी भारी होती

है ॥ ३९४ ॥ कुछ तीखी गुणवाली कफको निकालनेवाली पित्तको करनेवाली होतीहै ॥

[अथ त्रिकटुक नाम लक्षणगुणाः।]

विश्वोपकुल्या मरिचं त्रयं त्रिकटु कथ्यते ॥ कटु त्रिक न्तु त्रिकटुं त्र्यूषणं व्योष उच्यते ॥ ३९५ ॥ त्र्यूषणं दीपनं हन्ति श्वास कास त्वगामयान् ॥ गुल्म मेह कफ स्थौल्य मेद श्लीपद पीनसान् ॥ ३९६ ॥

भा० अनन्तर त्रिकटु के नाम और लक्षण तथा गुण कहतेहैं ॥ सोंठ, पीपल, मिर्च, इन तीनोंको त्रिकटु कहतेहैं ॥ कटुत्रिक, त्रिकटु, त्र्यूषण, व्योष, यह त्रिकटु के नामहैं ॥ ३९५ ॥ त्रिकटु दीपन है श्वासकास त्वचाके रोग इनको नाश करताहै । गुल्म प्रमेह कफ स्थूलता मेद श्लीपद पीनस इनको भी नाशकरताहै ॥ ३९६ ॥

[अथ पिप्पली मूलस्य नामानि गुणाश्च।

ग्रन्थिकं पिप्पलीमूल मूषणं चटकाशिरः ॥ दीपनं पिप्पली मूलं कटूष्णं पाचनं लघु ॥ ३९७ ॥ रूक्षं पित्तकरं भेदि कफ वातोदरा पहम् ॥ आनाह प्लीह गुल्मघ्नं कृमि श्वासक्षया पहम् ॥ ३९८ ॥

भा० अनन्तर पीपलामूल के नाम और गुण कहतेहैं ॥ ग्रन्थिक, पीपलामूल, ऊषण चटकशिर येह पीपलामूलके नामहैं । पीपलामूल दीपन कडुवा उष्ण पाचन हलका होताहै ॥ ३९७ ॥ रूखा पित्तको करनेवाला भेदन करनेवाला कफ वात उदर रोग इनका नाशक ॥ अफारा प्लीही वायगोला इनका नाशक तथा कृमि श्वास क्षय इनका नाशक है ॥ ३९८ ॥

अथ चतुरूषणस्य लक्षण गुणाः।] त्र्यूषणं सकणा मूलं कथितं चतुरूषणम् ॥ व्योषस्यैव गुणाः प्रोक्ता अधिकाश्चतुरूषणे ॥ [चव्यगुणाः] भवेच्चव्यन्तु च

त्रिका कथिता सा तथोषणा ॥ करणीमूलगुणं चव्यं विशेषान् गुदजापहम् ॥ ३२० ॥

[अथ गजपिप्पल्या नामानि गुणाः।] चविकायाः फलं प्राज्ञैः कथिता पिप्पली ॥ कपिवल्ली कोलवल्ली श्रेयसी च शिरश्च सा ॥ ३२१ ॥ गजकृष्णा कटु र्वात श्लेष्महृद्वन्हि वर्द्धिनी ॥ उष्णा निहन्त्यतीसारं श्वासकण्ठामयकृमीन् ॥ ३२२ ॥

भा० अनन्तर चतुरूषण के लक्षण और गुण कहते हैं ॥ त्र्यूषण अर्थात् त्रिकटु पीपलामूल के सहित चतुरूषण कहा गयाहै ॥ त्रिकटु केही अधिक गुण चतुरूषण में कहे गयेहैं ॥ ३१९ ॥ अनन्तर चाव्यके गुण कहते हैं ॥ चव्य, चविक, तथा उपण, कही गई है ॥ पीपल का गुण चव्य में है विशेष करके ववासीर का नाशक होता है ॥३२० ॥ अनन्तर गज पीपल के नाम और गुण कहते हैं ॥ चाव के फलको बुद्धि वालोंने गज पीपल कहा है ॥ कपिवल्ली, कोलवल्ली, श्रेयसी, वशिर ॥ ३२१ ॥ यह गज पीपल के नाम हैं ॥ गजपीपल कड़वी वात कफ की नाशक अग्निकी बढ़ानेवाली ॥ उष्ण है और अतीसार श्वास कंठरोग कृमि इनको नाश करती है ॥ ३२२॥

[अथ चित्रकस्य नामानि गुणाश्च।] चित्रकोऽनलनामा च पीठो व्यालस्तथोषणः ॥ चित्रकः कटुकः पाके वन्हिकृत्पाचनो लघुः ॥ ३२३ ॥ रूक्षोष्णो ग्रहणी कुष्ठ शोथार्शः कृमिकासनुत् ॥ वातश्लेष्महृत्ग्राही वातार्शः श्लेष्मपित्तहृत् ॥ ३२४ ॥

भा० अनन्तर चित्रकके नाम और गुण कहते हैं ॥ चित्रक, अग्नि के नाम नाला, पीठ व्याल, उपण, ये चित्रकके नाम हैं ॥ चित्रक पाक में कड़वा अग्निको करनेवाला पाचन और हलका होता है ॥ ३२३ ॥ रूखा उष्ण है ग्रहणी।

कोष्ठ सूजन बवासीर कृमि और कास इनका नाशक भी है ॥ चाव कफका नाश क ग्राही वायकी बवासीर को और कफ पित्त को नाश करना है ॥ ३२४ ॥

अथ पञ्चकोलस्य लक्षणगुणाः। पिप्पली पिप्पली मूलं चव्य चित्रक नागरैः ॥ पञ्चभिः कोलमात्रं य त्पञ्चकोलं तदुच्यते ॥ ३२५ ॥ पञ्चकोलं रसे पाके कटुकं रुचिकृत् मतम् ॥ तीक्ष्णोष्णं पाचनं श्रेष्ठं दीपनं कफवातनुत् ॥ ३२६ ॥ गुल्मप्लीहोदरा नाह शूलघ्नं पित्तकोपनम् ॥

भा० अनन्तर पंचकोल के लक्षण और गुण कहते हैं ॥ पीपल, पीपला मूल, चाव, चित्रक, सोंठ ॥ इन पांचोंके ८ मासेको पञ्चकोल कहतेहैं ३२५ ॥ पंचकोल रसमें और पाकमें कड़वा और रुचिकरने वाला है ॥ ती क्ष्ण उष्ण पाचन बहुत अच्छा दीपन और कफ वात के नाश करनेवाला है ॥ ३२६ ॥ गुल्म वाय गोला प्लिही उदररोग अफारा और शूल इन का नाशक पित्त कुपित करने वाला है ॥

अथ षड्षणस्य लक्षणगुणाः। पञ्चकोलं स मरिचं षड्षणं मुदा हृतम् ॥ पञ्चकोल गुणास्तत्तु रूक्षमुष्णं विषापहम् ॥ ३२७ ॥

अथ यवान्या नामानि गुणाः। यवानिको ग्रगंधा च ब्रह्मदर्भाऽजमोदिका ॥ सैवोक्ता दीप्यका दीप्या तथा स्याद्यवसाह्वया ॥ ३२८ ॥ यवानी पाचनी रुच्या तीक्ष्णोष्णा कटुका लघुः ॥ दीपनी च तथा तिक्ता पित्तला शुक्र शूलहृत् ॥ ३२९ ॥

भा० अनन्तर पंचकोलके लक्षण और गुण कहतेहैं ॥ और वोह पंच कोलके समान गुणवालाहै ॥ तथा रूखा उष्ण विषका नाशक भीहै ॥ ३२७ ॥ अथ अजवायन के नाम और गुण कहतेहैं ॥ यवानिका, उग्रगन्धा, ब्रह्म दर्भा, अजमोदिका, और वोही कहीगई है दीपिका, दीप्या तथा यवसाह्वया येह अजवायन के नामहैं ॥ ३२८ ॥ अजवायन पाचन करनेवाली रुचि के हित तीखी उष्ण कडवी हलकी ॥ अग्निको दीपन करने वाली तथा तिक्त पित्तको करने वाली शुक्र और शूलकी नाशक होतीहै ॥ ३२९ ॥

वातश्लेष्मोदरानाह गुल्म प्लीह कृमि प्रणुत् ॥ अथाजमोदायाःनामानि गुणाश्च ।] अजमोदा खराश्वा च मयूरो दीप्यकस्तथा ॥ तथा ब्रह्मकुशा प्रोक्ता कारवी ली च समस्तका ॥ ३३० ॥ अजमोदा कटुस्तीक्ष्णा दीपनी कफवातनुत् ॥ उष्णा विदाहिनी हृद्या वृष्या बलकरी लघुः ॥ ३३१ ॥ नेत्रामयकफच्छर्दि हिक्का वस्ति रुजो हरेत् ॥

भा० वात कफ अफारा वायगोला प्लीहा कृमि इनकीनाशकभीहै ॥ अनन्तर अजमोदा के नाम और गुण कहतेहैं ॥ अजमोदा, खराश्वा, मयूर, दीप्यक ॥ तथा ब्रह्मकुशा, कारवी, समस्तका, यह अजमोद के नामहैं ॥ ३३० ॥ अजमोद कड़वी तीखी दीपन कफवात की नाशक ॥ उष्ण विदाह को करने वाली हृद्य वृष्य बलकरनेवाली और हलकी होतीहै ॥ ३३१ ॥ नेत्ररोगकफ को वमन हिचकी पेड़ूकी पीड़ा इनको दूर करतीहै ॥

अथ खुरासानी यवानी गुणाः ।] पारसीक यवानी तु यवानी सदृशी गुणैः ॥ विशेषात् पाचनी रुच्या ग्राहिणी मादिनी गुरुः ॥ ३३२ ॥ अथ सुलजीरा कृष्ण जीरा कलौंजी एषां नामानि गुणाश्च ।]

जीरको जरणो जाजी कणाख्यो दीर्घजीरकः ॥ कृष्णाजीरः सुगन्धश्च तथैवोद्गारशोधनः ॥ ३३३ ॥ कालाजाजी तु सुषवी कालिका चोपकालिका ॥ पृथ्वीका कारवी पृथ्वी पृथुः कृष्णोपकुञ्चिका ॥ ३३४ ॥ उपकुञ्ची च कुञ्ची च बृहज्जीरक इत्यपि ॥ जीरकत्रितयं रूक्षं कटूष्णं दीपनं लघु ॥ ३३५ ॥ संग्राहि पित्तलं मेध्यं गर्भाशयविशुद्धिकृत् ॥ ज्वरघ्नं पाचनं वृष्यं बल्यं रुच्यं कफापहम् ॥ ३३६ ॥ चक्षुष्यं पवनाध्मानगुल्मच्छर्द्यतिसारहृत् ॥

भा० अनन्तर खुरसानी अजवायनके नाम और गुण कहते हैं । खुरासानी अजवायन गुणोंमें अजवायनके सदृश होती है ॥ विशेषकरके पाचन रुचिको करनेवाली ग्राहणी नशकरनेवाली भारी होती है ॥ ३३२ ॥ अनन्तर सफेद और कालाजीरा तथा कलौंजी इनके नाम और गुण कहते हैं ॥ जीरक, जरण, अजाजी, कण, दीर्घजीरक, यह सफेद जीरेके नाम हैं ॥ कालजीरक, सुगंध तथा उद्गार शोधन ॥ ३३३ ॥ कालाजाजी, सुषवी, कालिका, उपकालिका पृथ्वीका कारवी पृथ्वी, पृथु, कृष्णा, उपकुंचिका, येह स्याह जीरेके नाम हैं ॥ ३३४ ॥ उपकुंची, कुंची, बृहज्जीरक, येहभी जीरेके नाम हैं ॥ तीनों जीरे रूखे कडुवे, उष्ण दीपन हलके ॥ ३३५ ॥ संग्राही पित्तको करनेवाले बुद्धिको बढानेवाले गर्भाशयकी शुद्धिको करनेवाले हैं ॥ ज्वरके नाशक पाचक ध्रतीको करनेवाले बलको देनेवाले रुचिको करनेवाले और कफके नाशक हैं ॥ ३३६ ॥ नेत्रके हित वायु पेटका फूलना वायगोला वमन अतीसार इनके नाशक हैं ॥

[अथ धान्यकस्य नामानि गुणाश्च ।

धान्यकं धानकं धान्यं धाना धानेयकं तथा ॥ कुनटी धेनुका छत्रा कुस्तुम्बुरु वितुन्नकम् ॥ ३३७ ॥ धान्यकं तुवरं स्निग्धमवृष्यं मूत्रलं लघु ॥ तिक्तं कटूष्ण

वीर्यञ्च दीपनं पाचनं स्मृतम् ॥ ३३८॥ ज्वरघ्नं रोचकं ग्राही स्वादु पाकि त्रिदोषनुत् ॥ तृष्णा दाह वमि श्वास कास कार्श्य क्रिमिप्रणुत् ॥ ३३९ ॥ आर्द्रन्तु तद्गुणं स्वादु विशेषात् पित्तनाशि तत् ॥

भा० अनन्तर धनियें के नाम और गुण कहते हैं ॥ धान्यक, धानक, धान्य, धाना, धानेयक, ॥ कुनटी, धेनुका, छत्रा, कुस्तुम्बरु, वितुन्नक, येह धनिये के नामहैं ॥ ३३७ ॥ धनियां कसेली चिकनी पुरुषत्व को नाशकरने वाली मूत्र को लाने वाली हलकी ॥ तिक्त कडुवी उष्ण वीर्यवाली दीपन पाचन कहीगईहै ॥ ३३८ ॥ ज्वरकी नाशक रुचिकी करनेवाली दस्तकोबंद करनेवाली ॥ पाक में मधुर त्रिदोषकी नाशक ॥ तृषा दाह वमन कास श्वास दुर्बलता और कृमी इन की नाशक है ॥ ३३९ ॥ गीली उसीके समान गुणवाली मधुर विशेष करके पित्तको नाश करने वाली होतीहै ॥

अथ सौंफिसो आतयो नामानि गुणाश्च ॥ शतपुष्पा शताह्वा च मधुरा कारवी मिसिः। अतिलम्बी सितच्छत्रा संहिता छत्रिकापि च ॥ ३४०॥ च्छत्रा शालेय शालीनौ मिश्रेया मधुरा मिसिः ॥ शतपुष्पा लघुस्तीक्ष्णा पित्तकृत् दीपनी कटु ः॥ ३४१॥ उष्णा ज्वरानिल श्लेष्म व्रण शूलाक्षि रोगहृत् ॥ मिश्रेया तद्गुणा प्रोक्ता विशेषाद्योनि शूलनुत् ॥ ३४२

भा० अनन्तर सौंफ और सोवा उनके नाम और गुण कहते हैं ॥ शतपुष्पा, शताह्वा, मधुरा-कारवी, मिसि, ॥ अतिलम्बी, सितछत्रा, संहिता, छत्रिका, यह सौंफ के नाम हैं ॥ ३४० ॥ छत्रा, शालेय, शालीन, मिश्रेया, मधुरा, मिसि, यह सोवा के नामहैं ॥ सौंफ हलकी तीखी पित्तको करनेवाली दीपन कडवीहै ॥ ३४१ ॥ उष्ण ज्वर वात कफ व्रण शूल और नेत्ररोग इनकी नाशक है ॥ सोवा उसीसमान गुण वाला कहा गया है विशेष करके योनि शूलका नाशक है ॥ ३४२॥

अग्निमान्द्य हरी हृद्या बद्ध विट् कृमि शुक्र हृत् ॥ रू
क्षोष्णा पाचनी कास वमि श्लेष्मा निलान् हरेत् ॥३४३॥

[अथ मेथी वनमेथी नामगुणाः।]

मेथिका मिथिनि मेथि दीपनी बहुपत्रिका ॥ बोधि
नी बहु बीजा च जाति गन्ध फला तथा ॥ ३४४॥
बल्लरी चाऽकामन्था मिश्र पुष्पा च कैरवी ॥ कुञ्चि
का बहुपर्णी च पित्तजित् वायुनुत् द्विधा ॥ ३४५॥
मेथिका वात शमनी श्लेष्मघ्नी ज्वर नाशिनी ॥ ततः
स्वल्पगुणाः बल्या वाजिनां सातु पूजिता ॥ ३४६॥

अथ चन्द्रशूर गुणाः।]

भा० अग्नि मांद्य को नाश करनेवाली हृद्य काब्जियत कृमि शुक्र इनको नाश करने वाली ॥ रूखी उष्ण पाचन कास वमन कफ वात इनको नाश करती है ॥ ३४३॥ अनन्तर मेथी वनमेथी के नाम गुण कहतेहैं ॥ मेथिक, मिथनी, मेथी, दीपनी, बहुपत्रिका ॥ बोधिनी, बहु बीजा, जातिगन्ध, फला, ॥३४४॥ विल्लरी, कामंथा, येह मेथी के नाम हैं। मिश्रपुष्पा, कैरवी, कुंचिका, बहुपर्णी, पित्तजित, वायुनुप, येह दो प्रकार की वन मेथी होती हैं ॥ ३४५॥ मेथी वात को शमन करनेवाली कफकी नाशक और ज्वरको दूर करनेवाली होती है ॥ उससे स्वल्प गुण वाली बलको देनेवाली और घोड़ोंकोवोह अच्छीहोती है ॥ ३४६॥ अनन्तर चन्द्र शूर के नाम और गुण कहते हैं ॥

चन्द्रिका चर्म हन्त्री च पशुमेहन कारिका ॥ नन्दिनी
कारवी भद्रा वासपुष्पा सुवासरा ॥ ३४७॥ चन्द्रशूरं
हितं हिक्का वात श्लेष्मातिसारिणाम् ॥ असृग्वात ग
दद्वेषि दलपुष्टि विवर्द्धनम् ॥ ३४८॥

भा० चन्द्रिका चर्महंत्री पशुमेहन कारिका ॥ नन्दनी कारवी भद्रा वास पुष्पा

सुवासग, येह चन्द्रसूरके नामहैं ॥ ३४७॥-चन्द्रसूर हिचकी वातकफ अतीसार में हित करताहै ॥रक्तवातरोगको दूर करनेवाला बलपुष्टिको बढ़ानेवाला होताहै ॥ ३४८ ॥ [अथ चारदाना।]

मेथिका चन्द्रशूरश्च काला जाजीयवानिका ॥ एतच्च
तुष्टयं युक्तं चतुर्बीजमिति स्मृतम् ॥ ३४९॥ तच्चूर्णं भ
क्षितं नित्यं निहन्ति पवनामयम् ॥ अजीर्णं शूलमाध्मा
नं पार्श्वशूलं कटिव्यथाम् ॥ ३५०॥

[अथ हिङ्गुः।] सहस्रवेधि जतुकं बाल्हीकं हिङ्गु रामठम् ॥
हिङ्गूष्णं पाचनं रुच्यं तीक्ष्णं वातबलासहृत् ॥ ३५१॥
शूल गुल्मोदरानाह कृमिघ्नः पित्तवर्द्धनः ॥

भा० अनन्तर चार दाना मेथी-चन्द्रसूर स्याहजीरा अजवायन ॥यह चारों मिलाकर चतुर बीज कहागया है ॥ ३४९॥ उसके चूर्ण को नित्य भक्षण करनेसे वातकेरोगनाश होते हैं ॥ और अजीर्ण शूल पेटका फूलना पसलीका शूल कमरकी पीड़ा इनकोदूर करताहै ॥ ३५०॥ अनन्तर हींग के नाम और गुण कहते हैं ॥ सहस्रवेधि, जतुक, बाल्हीक, हिंगु, रामठ ॥ येह हींग के नाम हैं ॥ हींग गरम पाचन रुचिको करनेवाला तीखा वात कफका नाशक है ॥ ३५१॥ शूल गुल्म वायगोला उदर रोग अफारा और कृमीइनका नाशक । पित्त का बढ़ानेवाला है ॥ [अथ वचनामानि गुणाश्च।]

वचोग्रगन्धा षड्ग्रन्था गोलोमी शतपर्विका ॥ क्षुद्र
पत्री च मङ्गल्या जटिलोग्रा च लोमशा ॥ ३५२॥ वचो
ग्रगन्धा कटुका तिक्तोष्णा वान्ति वन्हिकृत् ॥ विबन्धा
ध्मान शूलघ्नी शकृन्मूत्र विशोधिनी ॥ ३५३॥ अप-
स्मार कफोन्माद भूतजन्तु निलान् हरेत् ॥

भा० अनन्तर वचके नाम और गुण कहतेहैं ॥ वच, उग्रगन्धा, षड्ग्रन्था, गोलोमि, शतपर्विका ॥ क्षुद्रपत्री, मंगल्या, जटिला, उग्रा, यह वचके नामहैं ॥ ३५२ ॥ वच कडुवी तिक्त उष्णहैं ॥ और वमन अग्निको करनेवाली ॥ क्रुज पेटका फूलना और शूल इनको नाश करनेवाली तथा मल मूत्रको विशोधन करनेवालीहै ॥ ३५३ ॥ [अथ खुरासानी वचा ।]

पारसीक वचा शुक्ला प्रोक्ता हैमवतीति सा ॥ हैमवत्युदिता तद्वद्वातं हन्ति विशेषतः ॥ ३५४ ॥

अथ महाभरी वचा ।] यस्या लोके कुलिञ्जन इति नामान्तरम् ॥ सुगन्धा प्युग्रगन्धाच विशेषात्कफकासनुत् ॥ सुस्वरत्वकरी रुच्या हृत्कण्ठमुखशोधिनी ॥ ३५५ ॥ अपरा सुगन्धा ।] स्थूलग्रन्थिः यस्या लोके महाभरी इति नाम ॥

भा० मिरगी, कफ, उन्माद, मूत्र, कृमी, वात इनको नाश करतीहै ॥ अनन्तर खुरासानी वचके नाम और गुण कहतेहैं ॥ पारसीकवचा, शुक्ला, हैमवती, ॥ हैमवत्योदिता, यह खुरासानी वचके नाम है । वोह विशेषकर के वातको नाश करती है ॥ ३५४ ॥ अनन्तर कुलिंजन के नाम और गुण कहतेहैं ॥ सुगन्धा और उग्रगंधा यह दोनो विशेषकरके कफकासके नाशक है ॥ और अच्छा स्वर तथा अच्छी त्वचाकरनेवाली रुचिको करनेवाली हृदय कण्ठ मुख इनके शोधन करनेवालीहै ॥ ३५५ ॥ दूसरी सुगन्धा मोटीगांठ की जिसको लोकमे महाभरी कहतेहैं ॥

स्थूलग्रन्थिः सुगन्धास्यात्ततो हीनगुणा स्मृता ॥

अथ चोवचीनीति लोकेतु प्रसिद्धा तस्यागुणाः ॥

द्वीपान्तर वचा किञ्चित्तिक्तोष्णा वन्हिदीप्ति कृत ॥ विबन्धाध्मान शूलघ्नी शकृन्मूत्र विशोधिनी ॥ ३५६ ॥

वातव्याधी नपस्मार मुन्मादं तनुवेदनाम् ॥ व्यपो
हति विशेषेण फिरङ्ग मयनाशिनी ॥ ३५७ ॥

अथ ह्रीबेर द्वयम् ।] तन्मध्ये प्रथमं फलं मत्स्य
सदृशं विस्त्रगन्धं द्वितीय मश्वत्थफल सदृशं मत्स्य
गन्धं तयोर्नामानि गुणाश्च ॥

भा० मोटी गांठ की वच सुगंध होती है और उस्से कमगुणवाली कहीगई है ॥ अनन्तर चोबचीनी के नाम और गुण कहते हैं ॥ अन्य दीपकों वच कुछ तिक्त और उष्ण होती है तथा अग्निको दीपन करने वाली है ॥ कब्ज पेटका फूलना और शूल इनको नाश करनेवाली और मल मूत्रको शोधन करनेवाली है ॥ ३५६ ॥ वातरोग मृगी उन्माद शरीरकी पीड़ा ॥ इनको नाश करती है ॥ और विशेष करके फिरंग रोग का नाशकरने वालीहै ॥ ३५७ ॥ अनन्तर दोनों हीवेर के नाम और गुण कहते हैं ॥ उसमें पहलेका फल मछलीके सदृश कच्चे मांस के गंधवाला होता है ॥ दूसरे पीपलके फल सदृश मछली के गंध सदृश होता है ॥

ह्रवुषा पुष्पवस्ता च पराश्वत्थ फला मता ॥ मत्स्य
गन्धा प्लीह हन्त्री विषघ्नी श्वांसनाशिनी ॥ ३५८ ॥
ह्रवुषा दीपनी तिक्ता मृदूष्णा तुवरा गुरुः ॥ पित्तो
दर समीरघ्नी ग्रहणी गुल्म शूलहृत ॥ ३५९ ॥
पराप्येतद्गुणा प्रोक्ता रूप भेदो द्वयोरपि ॥

भा० हुवुषा पुष्पवस्ता और दूसरा अश्वत्थ फला कही गई है ॥ मत्स्य गंधा, प्लीहहंत्री, विषघ्नी, श्वांसनाशनी, येह हीवेर के नाम हैं ॥ ३५८ ॥ हीवेर दीपन तिक्त मृदु उष्ण कसैली भारी होती है ॥ पित्तोदर वायु को बवासीर संग्रहणी वायगोला और शूल इनकी नाशक है ॥ दूसरीभी इसी प्रकार की गुणवाली कही गई है ॥ और दोनों के लक्षण के भेदभी कहे गयेहैं ॥ ३५९ ॥

[अथवायुभङ्ग इति लोके।]

पुंसि क्लीवे विडङ्गः स्यात् कृमिघ्नो जन्तुनाशनः॥त
एडुलश्च तथा वेल्लममोघा चित्रतण्डुला ॥ ३६०॥वि
डङ्गं कटु तीक्ष्णोष्णं रूक्षं वन्हिकरं लघु॥ शूलाध्मा
नोदर श्लेष्म कृमिवात विबन्धनुत् ॥ ३६१॥

[अथ तुम्बुरु फलम्।] तुम्बुरुः सौरभः सौरो वनजः सा
नुजोऽन्धकः॥ तुम्बुरु प्रथितं तिक्तं कटु पाकेऽपि तत्क
टु ॥ ३६२॥ रूक्षोष्णं दीपनं तीक्ष्णं रुच्यं लघु विदाहि च।
वात श्लेष्माक्षि कर्णोष्ठ शिरोरुक् गुरुता कृमीन् ॥
३६३॥कुष्ठ शूलारुचि श्वास प्लीह कृच्छ्राणि नाशयेत् ॥

भा० अनन्तर वायविडंग को कहतेहैं ॥ पुल्लिंग और नपुंसक लिंगमें वायविड़ंग होताहै ॥ कृमिघ्न जन्तुनाशक। तण्डुल वेल्ल अमोघ चित्रतण्डुल ॥ ३६०॥ ये वायबिड़ंग के नामहैं। वायविड़ंग कडवा तीखा उष्ण रूखा अग्निको करने वाला हलका। शूल आध्मान उदररोग कफ कृमिवात कब्ज इनका नाश करने वाला है ॥ ३६१॥ [अनन्तर तुम्बरु फलके नाम कहतेहैं ॥ तुम्बरू सौरभ सौर वनज। सानुज अंधक। ये तुम्बरू फलके नामहैं ॥ तुम्बरू तिक्त कहा गयाहै। और कटु तथा पाकमेंभी कटु कहाहै ॥ ३६२॥ रूखा उष्ण दीपन तीखा रुचिको करनेवाला हलका विदाही ॥ वात कफ के रोग और नेत्र कर्ण शिर होंठ इनमें की पीड़ा और गुरुता कृमी ॥ ३६३॥ कुष्ठ शूल अरुचि श्वास पिलही तथा मूत्र कृच्छ्र इनको नाश करता है ॥

[अथ वंशलोचन नामगुणाः।] स्याद्वंशरोचना वांशी तुगा
क्षीरा तुगाशुभा ॥ त्वकक्षीरी वंशजा शुभ्रा वंशक्षीरी
च वैणुवी ॥ ३६४॥ वंशजा बृंहणी वृष्या बल्या स्वाद्वी
च शीतला॥ तृष्णा कास ज्वर श्वास क्षय पित्तास्र का
मलाः॥ ३६५॥ हरेत कुष्ठं व्रणं पाण्डुं कषायं वात कृच्छ्रजित्

भा॰ अनन्तर वंशलोचन के नाम और गुण कहते हैं ॥ वंशरोचन वंशी तुगाक्षीरी॰ तुगा शुभा ॥ त्वक्क्षीरी॰ शुभ्रा॰ वंशक्षीरी॰ वैणवी॰ येह वंशलोचन के नामहैं ॥ ३६४ ॥ वंशलोचन शुक्रको बढ़ानेवाला पुष्ट मलको देनेवाला मधुर शीतल तृषा॰ कास॰ ज्वर॰ श्वास॰ क्षय॰ रक्तपित्त॰ कामला॰ इनको नाश करनेवाला है ॥ ३६५ कुष्ट॰ व्रण॰ पांडुरोग॰ और वातके मूत्रकृच्छ्रको कषाय को जीतता है ॥

[अथ समुद्रफेनः]

समुद्रफेनः फेनश्च डिण्डीरोऽब्धिकफस्तथा ॥ समुद्रफेन चक्षुष्यो लेखनः शीतलश्च सः ॥ ३६६ ॥ कषायो विषपित्तघ्नः कर्णरुक्कफहल्लघुः ॥

[अथाष्टकवर्गस्य लक्षणं गुणाः।] जीवकर्षभकौ मेदे काकोल्यौ ऋद्धिवृद्धिके ॥ अष्टवर्गोऽष्टभिर्द्रव्यैः कथितश्चरकादिभिः ॥ ३६७ ॥ अष्टवर्गो हिमः स्वादुः बृंहणः शुक्रलोगुरुः ॥ भग्नसन्धानकृत्कामबलासबलवर्द्धनः ॥ ३६८ ॥ वातपित्तास्रतृट्दाहज्वरमेहक्षयापहः ॥

भा॰ अनन्तर समुद्रफेनके नाम और गुण कहतेहैं ॥ समुद्रफेन-फेन-डिण्डीर-अब्धिकफ। येह समुद्रफेन के नामहैं ॥ समुद्रफेन नेत्रको हित लेखन शीतल होताहै ॥ ३६६ ॥ और कसैला विष पित्तका नाशक और हलका होताहै ॥

[अनन्तर अष्टवर्गका लक्षण और गुण कहतेहैं]

जीवक ऋषभक मेदा महामेदा काकोली क्षीरकाकोली। ऋद्धि वृद्धि। येह अष्टवर्गके नामहैं आठद्रव्योंसे चरकादि मुनियोंने कहाहै ॥ ३६७ ॥ अष्टवर्ग शीतल मधुर धातुयोंकी वृद्धि करनेवाला शुक्रको उत्पन्नकरनेवाला भारीहै ॥ टूटे हाड़को जोड़नेवाला कामदेव कफ और बल इनको बढ़ानेवालाहै ॥ ३६८ ॥ वात पित्त रक्त तृषा दाह ज्वर प्रमेह क्षय इनका नाशकहै ॥

[तत्र जीवकर्षभकयोरुत्पत्ति लक्षण नामगुणाः]

जीवकर्षभकौ ज्ञेयौ हिमाद्रिशिखरोद्भवौ ॥ रसोनक-

न्द्वत् कन्दी निःसारौ सूक्ष्मपत्रकौ ॥ ३६९॥ जीवकः कूर्चकाकार ऋषभो वृषशृंगवत् ॥ जीवकोःमधुरः शृङ्गो ह्रस्वाङ्गः कूर्चशीर्षकः ॥ ३७०॥ ऋषभो वृषभो धीरो विषाणी द्राक्ष इत्यपि ॥ जीवकर्षभकौ बल्यौ शीतौ शुक्रकफप्रदौ ॥ ३७१ ॥

भा० इसमें जीवक, ऋषभक, इनदोनोंकी उत्पत्ति लक्षण नाम और गुण इन को कहते हैं ॥ जीवक, ऋषभक, ये दोनों हिमाचल पर्वत पर होते हैं ॥ लहसुन के कन्द सदृश कन्दवाले होते हैं ॥ और सार रहित छोटे पत्तेवाले होतेहैं ॥ ३६९ ॥ कूंचीके आकार जीवक होताहै। और ऋषभक बैल के सींग के सदृश होताहै ॥ जीवक, मधुर, शृंग, ह्रस्वांग, कूर्च, शीर्षक, येह जीवक के नाम हैं ॥ ३७०॥ ऋषभ वृषभ, धीर, विषाणी, द्राक्ष, येह ऋषभक के नाम हैं ॥ जीवक, ऋषभक, बलको देनेवाले शीत शुक्र कफ को करनेवाले होते हैं ॥ ३७१॥

मधुरौ पित्त दाहास्र कार्श्य वात क्षया पहौ ॥

[अथ मेदा महामेद योरुत्पत्ति लक्षण नाम गुणाः।]

महामेदाभिधः कन्दो मोरङ्गदे प्रजायते ॥ महामेदा स्थानो मेदा स्यादित्युक्तं मुनीश्वरैः ॥ ३७२॥ शुक्लार्द्रकनिभः कन्दो लताजातः सुपाण्डुरः ॥ महामेदाभिदो ज्ञेयो मेदा लक्षणमुच्यते ॥ ३७३॥

भा० और मधुर पित्त दाह रक्त कृशता वात क्षय इनके नाशक हैं ॥ अनन्तर मेदा महामेदा इनदोनों की उत्पत्ति लक्षण नाम गुण कहते हैं ॥ महामेदा नामक, कन्दमोरंगमें उत्पन्न होता है ॥ महामेदा और मेदा स्थानमें होती है। ऐसा मुनीश्वरों ने कहाहै ॥ ३७२॥ श्वेत और गीलासा कन्द लतासे होताहै। और बहुतशुभ्रभी होताहै। ऐसेकन्दको महामेदा जानना चाहिये ॥ और मेदाका लक्षण कहतेहैं ॥ ३७३॥

शुक्लकन्दो नखच्छेद्यो मेदो धातु मिव स्रवेत् ॥ यः
स मेदेति विज्ञेयोजि ज्ञासा तत्परे र्जने ॥ ३७४ ॥
शल्यपर्णी मणिच्छिद्रा मेदा मेदोभवा ध्वरा ॥ महा
मेदा वसुच्छिद्रा त्रिदन्ती देवतामणिः ॥ ३७५ ॥
मेदायुगं गुरु स्वादु वृष्यं स्तन्य कफावहम् ॥ वृंह
णं शीतलं पित्त रक्त वातज्वर प्रणुत् ॥ ३७६ ॥

भा० स्वेतकन्द नखसे छेदमें से जो धातु के सदृश जिसमें श्राव होताहै। उसको मेदा कहते हैं। जानने की इच्छामें तत्पर ज्ञेवे मनुष्य ॥ ३७४॥ शाल्य पर्णी मणिछिद्रा मेदा मेदोभवा अध्वरा येह मेदाके नाम हैं ॥ महामेदा वसु छिद्रा त्रिद न्तीदेवतामणि येह महा मेदाके नाम है ॥ ३७५॥ दोनों मेदा भारी मधुर पुष्ट दूधको उत्पन्न करनेवाले कफको उत्पन्न करनेवाले वृंहण शीतल पित्तरक्त वातज्वर इनके नाशक होते हैं ॥ ३७६ ॥

[अथ काकोली क्षीरकाकोल्यो रुत्पत्ति लक्षणनाम गुणाः।]

जायेते क्षीरकाकोली महामेदोद्भव स्थले ॥ यत्र
स्यात् क्षीरकाकोली काकोली तत्र जायते ॥ ३७७ ॥
पीवरी सदृशः कन्दः क्षीरं स्रवति गन्धवान् ॥ स
प्रोक्तः क्षीर काकोली काकोली लिङ्ग मुच्यते ॥ ३७८ ॥
यथा स्यात् क्षीरकाकोली काकोल्यपि तथा भवेत् ॥
एषा किञ्चिद्भवेत् कृष्णा भेदोऽय मुभयोरपि ॥ ३७९॥

भा० अनन्तर काकोली क्षीर काकोली के उत्पत्ति लक्षण नाम गुण कहते हैं ॥ महामेदा के उत्पत्र होने की जगह में क्षीर काकोली उत्पन्न होती है ॥ और जहां पर क्षीर काकोली उत्पन्न होती है वहांपर काकोलीभी उत्पन्न होती है ॥ ३७७ ॥ सतावर के सदृश कन्द होता है और उसमेसे सुगंधयुक्त दूध निक

लता है ॥ उसको क्षीर काकोली कहाहै ॥ काकोली कालक्षण कहते हैं ॥ ३७८॥ जैसे क्षीर काकोली होतीहै उसीप्रकार काकोली भी होतीहै। येह कुछेक काली होती है दोनों में यही भेदहै ॥ ३७९॥

काकोली वायसोली च वीरा कायस्थिका तथा ॥ साशु क्ला क्षीर काकोली वयस्था क्षीर वल्लिका ॥ ३८०॥ कथिता क्षीरिणी धारा क्षीर शुक्ला पयस्विनी ॥ काकोली युगलं शीतं शुक्रलं मधुरं गुरु ॥ ३८१॥ बृंहणं वातदाहास्र पित्त शोषज्वरापहम् ॥

भा० काकोली वायसोली वीरा कायस्थिका। येह काकोली के नाम हैं और वो श्वेत होती है ॥ वयस्था क्षीरवल्लिका क्षीरकाकोली ॥ ३८०॥ क्षीरणी धारा क्षीर शुक्ला पयस्विनी येह क्षीर काकोली के नाम हैं ॥ दोनों काकोली शीतल शुक्रको बढ़ानेवाली मधुर भारी होती है ॥ ३८१॥ धातुवों को बढ़ानेवाली वात दाह रक्तपित्त शोषज्वर इनको नाश करनेवाली है ॥

[अथर्द्धि वृद्ध्योरुत्पत्ति लक्षण नाम गुणाः।] ऋद्धिर्वृद्धिश्च कन्दौ द्वौ भवतः कोशयामले ॥ शीतलो माल्वितः कन्दो लताज्जातः सुरन्ध्रकः ॥ ३८२॥ स एव ऋद्धि वृद्धिश्च भेद मप्येनयो ब्रुवे ॥ स्थूल ग्रन्थिसमा ऋद्धि र्वामा वर्त्त फलाच सा ॥ ३८३॥ वृद्धिस्तु दक्षिणा वर्त्त फला प्रोक्ता महर्षिभिः ॥ ऋद्धिर्युग्मं सिद्धि लक्ष्म्यौ वृद्धे रप्याह्वयाइमे। ३८४। ऋद्धिर्मत्स्या त्रिदोषघ्नी शुक्रला मधुरा गुरुः ॥ प्राणैश्वर्य्यकरी मूर्च्छा रक्त पित्त विनाशिनी। ३८५

भा० [अनन्तर ऋद्धि और वृद्धि इनकी उत्पत्ति लक्षण नाम गुण कहते हैं।] ऋद्धि और वृद्धि येह दो कंद यामलदेशमें होते हैं। श्वेत लो। मकारके सुक्ष्म कन्द। ३८८

के सहित स्तनोंमें उत्पन्न होताहै ॥ ३८२॥ उसीको ऋद्धि और वृद्धि कहतेहैं ॥ उनके भेदोंको भी कहता हूं ॥ सेमर कीगांठके समान वामावर्त्त फलवाली वर ऋद्धिहोतीहै ॥ ३८३॥ महर्षियों ने दक्षिणावर्त्त फलवाली वृद्धि कहीहै ॥ दोनों ऋद्धि, सिद्धि, लक्ष्मी, येह नाम । ऋद्धिके भीहै ॥ ३८४॥ ऋद्धि त्रिदोषकी नाशक शुक्रको उत्पन्न करनेवाली । मधुर भारी होतीहै । और प्राण ऐश्वर्य्य इनको करने वाली तथा मूर्च्छा रक्त पित्त इनकी नाशक है ॥ ३८५॥

वृद्धि गर्भप्रदा शीता बृंहणी मधुरा स्मृता ॥ वृष्या पित्तास्त्र शमनी क्षतकास क्षया पहा ॥ ३८६ ॥ राजामप्यष्ट वर्गोस्तु यतोऽयमति दुर्लभः ॥ तस्मादस्य प्रति निधिर्गृह्णीयात्तद् गुणं भिषक् ॥ ३८७ ॥

(मुख्यःसदृशःप्रतिनिधिः) [एतस्य प्रति निधिमाह ।]

मेदा जीवक काकोली ऋद्धि वृद्धे ऽपि चासति ॥ वरी विदार्य्यश्वगन्धा वाराही श्च क्रमात् क्षिपेत ॥ ३८८॥

भा॰ (क) मेदा महामेदा स्थाने शतावरी मूलम् जीवकर्षभक स्थाने विदारीमूलम् ॥ काकोली क्षीर काकोली स्थाने अश्वगन्धा मूलम् । ऋद्धिवृद्धि स्थानेवाराहीकंद गुणैस्तत्तुल्यं

भा॰ वृद्धि गरभको करनेवाली शीतल पुष्ट मधुर कहीगई है ॥ पुरुषत्व को बढाने वाली रक्त पित्तकीनाशक क्षतकास क्षय इनकी नाशक है ॥ ३८६ ॥ जिस कारणयह अष्टवर्ग राजाओं को भी अति दुर्लभहै ॥ तिस कारण इसकी प्रतिनिधी उसी गुणवाली को वैद्य ग्रहणकरे ॥ ३८७॥ इसके प्रतिनिधी को कहतेहैं ॥ मेदा॰ जीवक॰ काकोली॰ ऋद्धि॰ इनके न मिलनेमें सतावर॰ विदारीकन्द॰ असगन्ध॰ वाराहीकन्द॰ इनकोक्रम के साथ डाले ॥ ३८८॥ (क) मेदा महामेदा की जगह में सतावर की जड़ ॥ जीवक ऋषभक की जगहमें विधारा की जड़ । काकोली क्षीरकाकोली की जगह में असगन्ध की जड़ । ऋद्धि वृद्धि की जगह में वाराही कन्दको डाले । येह गुण में उन

के समानहै ॥ [अथ जेठी मधु।] यष्टीमधु तथा यष्टी मधुकं क्लीतकं तथा ॥ अन्यत् क्लीतनकन्तत्तु भवेत्तोये मधूलिका ॥ ३८९॥ यष्टी हिमा गुरुः स्वाद्वी चक्षुष्या बलवर्णकृत् ॥ सुस्निग्धा शुक्रला केश्या स्वर्य्या पित्तानिलास्रजित् ॥ ३९०॥ व्रण शोथ विषच्छर्दि तृषणा ग्लानि क्षयापहा ॥ [अथ कम्बीला।] काम्पिल्लः कर्कशश्चन्द्रो रक्ताङ्गो रोचनोऽपि च ॥ काम्पिल्लः कफ पित्तास्र कृमि गुल्मोदर व्रणान् ॥ ३९१॥ हन्ति रेची कटूष्णाश्च मेहानाह विषाश्मनुत् ॥

भा० अनन्तर मुलहठीको कहतेहैं ॥ यष्टी, मधुक, क्लीतक ॥ और दूसरा क्लीतनक, जलमें होताहै उस्को मधूलिका कहतेहैं ॥ ३८९॥ मुलहठी शीतल भारी मधुर नेत्रोंको हित करने वाली और बल वर्णको करनेवाली होतीहै ॥ अच्छी स्निग्ध शुक्रकोकरनेवाली केशकेहित स्वरकेहित पित्त वातरक्त इनकोजीतनेवाली होतीहै ॥ ३९०॥ ज़ख़्म सूजन विष वमन तृषा ग्लानी क्षय इनकी भी नाशक होतीहै ॥ अनन्तर कम्बीला के नाम और गुण कहतेहैं। काम्पिल्ल कर्कश चन्द्र रक्तांग रोचन येह ख़ूबकला के नामहैं ॥ ख़ूबकला कफ रक्तपित्त कृमी वायगोला उदर रोग ज़ख़्म इनको नाश करतीहै ॥ ३९१॥ दस्तावर कड़वी गरम होतीहै। और प्रमेह अफारा विष पथरी इनकी नाशक है ॥

[अथ धन वहेरा।]

आरग्वधो राजवृक्षः शम्याकश्च तुरङ्गुलः ॥ आरवेतो व्याधिघातः कृतमालः सुवर्णकः ॥ ३९२॥ कर्णिकारो दीर्घफलः स्वर्णाङ्गः स्वर्णभूषणः ॥ आरग्वधो गुरुः स्वादुः शीतलः स्रंसनो मृदुः ॥ ३९३॥ ज्वर हृद्रोग

पित्तास्र वातोदावर्त्त शूलनुत ॥ तत् फलं स्रंसनं रुच्यं कुष्ठ पित्त कफापहम् ॥ ३६४ ॥ ज्वरेतु सततं पथ्यं कोष्ठशुद्धि करं परम् ॥ [अथ कटुकी।]

कटी तु कटुका तिक्ता कृष्णाभेदा कटुम्भरा ॥ अशोका मत्स्य शकला चक्राङ्गी शकुलादनी ॥३६५॥ मत्स्यपित्ता काण्डरुहा रोहिणी कटु रोहिणी ॥ कट्वी तु कटुका पाके तिक्ता रूक्षा हिमा लघुः ॥३६६॥ भेदिनी दीपनी हृद्या कफ पित्त ज्वरापहा ॥ प्रमेह श्वास कासास्र दाह कुष्ठ कृमि प्रणुत ॥ ३६७॥

भा० अनन्तर अमलतासके नाम और गुण कहतेहैं ॥ आरग्वध राजवृक्ष शंपाक चतुरंगुल ॥ आरवेत् व्याधिघात कृतमाल सुवर्णक ॥ ३६२॥ कर्णिकार दीर्घफल सुवर्णाग वर्णभूषण। येह अमलतासके नाम हैं ॥ अमलतास भारी मधुर शीतल दस्तावर मुलायम ॥ ३६३॥ होताहै। ज्वर हृद्रोग रक्तपित्त वातको उदावर्त्त शूल इनका नाशकर्त्ताहै ॥ उसका फल दस्तावर रुचिको करनेवाला कुष्ठ पित्त कफ इनका नाशक होताहै ॥ ३६४॥ ज्वर में सदा पथ्य होताहै। और अत्यन्त कोष्ठको शुद्ध करताहै ॥ अनन्तर कुटकी के नाम और गुण कहते हैं।] कटी, कटुका तिक्ता कृष्ण भेदा कटुंभरा ॥ अशोका मत्स्य शकला चक्राङ्गी, शकुलादनी ॥ ३६५॥ मत्स्यपित्ता, कांडरुहा, रोहणी, येह कुटकी के नाम हैं ॥ कुटकी कडवी और पाकमें तिक्त रूखी शीतल हलकी ॥ ३६६॥ भेदन करनेवाली दीपन हृद्य कफ पित्त ज्वरकी नाशक ॥ प्रमेह श्वास कास रक्त पित्त दाह कुष्ट कृमि इनकीनाशक है ॥ ३६७॥

[अथ चिरायता।] किरात तिक्तः कैरातः कटुतिक्तः किरातकः ॥ काण्डतिक्तो नार्य्यतिक्तो भूनिम्बो रामसेनकः ॥ ३६८॥

किरातकोऽन्यो नैपालः सोऽर्द्धतिक्तो ज्वरान्तकः ॥ किरातः सारकोरूक्षः शीतल स्तिक्तको लघुः ॥ ३९९ ॥

सन्निपात ज्वरश्वास कफ पित्तास्रदाह नुत् ॥ कास शोथ तृषा कुष्ठ ज्वर व्रण कृमिप्रणुत् ॥ ४०० ॥

भा० अनन्तर चिरायतेके नाम और गुण कहतेहैं ॥ किरात, तिक्त, कैरात, कटुतिक्त, किरातक, ॥ काण्डतिक्त नारीतिक्त भूनिम्ब रामसेनक ॥ ३९८ ॥ दूसराचिरायता नैपाली वोह कुछ कडुवा होताहै ज्वरांतक येह चिरायतेके नाम हैं ॥ चिरायता सारक रूक्ष शीतल तिक्त लघु होताहै ॥ ३९९ ॥ और सन्निपात ज्वर स्वास कफ पित्त दाह इनका नाशक होताहै॥कास सूजन तृषा कुष्ठ ज्वर व्रण कृमी इनका नाशक है ॥ ४०० ॥

[अथ इन्द्रयवः ।]

उक्तं कुटजबीजन्तु यव मिन्द्रयवं तथा ॥ कालिङ्गञ्चापि कालिङ्गं तथा भद्रयवा अपि ॥ ४०१ ॥

[इतिधन्वन्तरिः प्राह अमरे प्राह ।]

कचिदिन्द्रस्य नामैव भवेत्तद भिधायकम् ॥ फलानीन्द्रयवास्तस्य तथा भद्रयवा अपि ॥ ४०२ ॥ इन्द्रयवं त्रिदोषघ्नं संग्राहि कटु शीतलम् ॥ ज्वरातीसार रक्तार्शः वमि वीसर्प कुष्ठनुत् ॥ ४०३ ॥ दीपनं गुद कीलास्र वातास्र श्लेष्म शूलजित् ॥

भा० अनन्तर इन्द्रयवके नाम और गुण कहतेहैं ॥ कुटजबीज यव इन्द्रयव । कलिंग कालिंग भद्रयव यह इन्द्रजवके नामहैं ॥ ४०१ ॥ –
इसप्रकार धन्वन्तरीने कहाहै. और अमरमें कहाहै तथा इन्द्रके नाम पर उसके नाम कहे गयेहैं ॥ इन्द्रजव त्रिदोषनाशक संग्राही कटु शीतल ॥ होताहै और ज्वर अतीसार खुनीगवासीर वमन विसर्प कुष्ठ इनका नाशकभीहै ॥ ४०२ ॥ दीपन

गुदकील रक्तवात कफ शूल इनको जीतनेवाला है ॥

[मयन फलम्] मदनश्छर्दनः पिण्डीनटः पिण्डीतकस्तथा ॥ करहाटो मरुवकः शल्यको विषपुष्पकः॥ ४०५ ॥ मदनो मधुरस्तिक्तो वीर्य्योष्णो लेखनो लघुः॥ वान्तिकृद् विद्रधिहरःप्रतिश्याय व्रणान्तकः ॥ ४०५॥ रूक्षः कुष्ठ कफा नाह शोथ गुल्म व्रणापहः ॥

[अथ रासना ।] रास्ना युक्तरसा रस्या सुवहा रसना रसा ॥ एलापर्णी च सुरसा सुगन्धा श्रेयसी तथा ॥ ४०६ ॥ रास्नामपाचिनी तिक्ता गुरूष्णा कफवातजित् ॥ शोथश्वाससमीरास्र वात शूलोदरापहा ॥ ४०७ ॥ कासज्वर विषाशीति वातिकामय हिध्महृत् ॥

भा॰ अनन्तर मैनफल के नाम और गुण कहते हैं ॥ मदन छर्दन पिंडी नट पिन्डीतक ॥ करहाट मरुवक शाल्यक विषपुष्पक। येह मेनफल के नाम हैं ॥ ४०५ ॥ मैनफल मधुर तिक्त वीर्यमें उष्ण लेखन हलका होताहै ॥ और वमन को करनेवाला विद्रधिका नाशक तथा जुकाम और ज़ख्म का भी नाशकहोता है ॥ ४०५ ॥ रूक्ष कुष्ठ कफ अफारा गुल्म शोथ व्रण इनकाभी नाशकहै ॥ अनन्तर रास्नाके नाम और गुण कहते हैं ॥ रास्ना युक्तरसा रस्या सुवहा रसना रसा ॥ एलापर्णी सुरसा सुगंधा श्रेयसी ॥ ४०६॥ यह रास्नाके नामहैं ॥ रास्ना आमपाचन करनेवाली तिक्त भारी उष्ण कफवातको जीतनेवाली। शोथ श्वास वातरक्त वातशूल उदररोग इनकोनाशकरनेवालीहै ॥ ४०७॥ और कास ज्वर विष अस्सी वात के रोग हिध्म इनकोनाशकरनेवाली है ॥ ८भी

अथ रास्नाभेदनाकुलीति लोके ॥ नाकुली सरसा नागसुगन्धा गन्धनाकुली ॥ नकुलेष्टा भुजङ्गाक्षी सर्प्पाङ्गी विष

नाशिनी ॥ ०८॥ नाकुली तुवरा तिक्ता कटुकोष्णा विना शयेत् ॥ भोगी लूता वृश्चिकाखु विषज्वर कृमि व्रणान् ॥४०९॥ [अथ माचिका।] (पश्चिम देशे मोइआ इति लोके प्रसिद्धो वृक्ष विशेषः।)

माचिका प्रस्थिकाम्बष्ठा तथा वा म्बालिकाम्बिका ॥ मयूर विदला केशी सहस्रा बाल मूलिका ॥ ४१० ॥ माचिकाम्ला रसे पाके कषाया शीतला लघुः ॥ पक्का तीसार पित्तास्त्र कफ कण्ठा मया पहा ॥ ४११ ॥

भा० अनन्तर रास्ना का भेद जिस्को लोकमें नाई कहनेहैं ॥ नाकुली सरसा नागसुगंधा गंधनाकुली ॥ नकुलेष्टा भुजंगाक्षी सर्पाक्षी विषनाशनी येह नाकुली के नाम हैं ॥ ४०८ ॥ नाकुली कसेली तिक्त कटु उष्ण होती है ॥ और सर्प बिच्छू मकड़ी मूसा इनके विषको और ज्वर कृमि व्रण इन को नाश करतीहै ॥ ४०९ ॥ अनन्तर किमाच के नाम और गुण कहतेहैं ॥ पश्चिम देश में मोइआ इस प्रकार लोकमें प्रसिद्ध वृक्ष विशेष है ॥ माचिका अस्थिका अम्बष्ठा अम्बालिका ॥ मयूर विदला केशी सहस्रा बालमूलिका येह किमांचके नाम हैं ॥ ४१० ॥ किमाच रसमें अम्ल पाकमें कसेला शीतल हलका होनाहै ॥ पक्कातीसार रक्तपित्त कफ कण्ठरोग इनको नाश करने वालाहै ॥ ४११॥

अथ तेजवती।] तेज वल्कल इति च । तेजस्विनी तेजवती तेजो ह्वा तेजनी तथा ॥ तेजस्विनी कफ श्वास कासास्यामय वातहृत् ॥ ४१२॥ पाचन्युष्णा कटुस्तिक्ता रुचि वन्हि प्रदीपिनी ॥

भा० अनन्तर तेजवती के नाम और गुण कहतेहैं ॥ तेजस्विनी तेजवती तेजोह्वा तेजनी येह तेजवती के नाम हैं ॥ तेजवती कफ श्वास कास मुख रोग इनकोनाश करतीहै ॥ ४१२॥ पाचन उष्ण कड़वी तिक्त रुचिको वन्हीको दीपन करने वाली है ॥

[अथ अभिजिनी मालकाङ्गनी इति वा।]
ज्योतिष्मती स्यात् कटभी ज्योतिष्का कङ्गनीति च॥
पारावत पदी पण्या लता प्रोक्ता ककुन्दनी ॥४९३॥
ज्योतिष्मती कटुस्तिक्ता सरा कफ समीर जित्॥

भा० अनन्तर मालकंगनी के नाम और गुण कहते हैं ॥ ज्योतिष्मती कट भी ज्योतिष्का कंगनी ॥ पारावत,पदी,पण्या । येह मालकंगनी के नाम हैं ॥ उस्की लता को ककुन्दनी कहते हैं ॥ ४९३॥ मालकंगनी कड़वी तिक्त सर कफ वातको जीतने वाली है ॥

अत्युष्णा वामनी तीक्ष्णा वन्हि बुद्धिस्मृति प्रदा ॥४९४॥
अथ कूट :।] कुष्ठ रोगा ह्वयंम्वाप्यं पारिभव्यन्तथोत्पलम्॥
कुष्ठ मुष्णङ्कटु स्वादु शुक्रलन्तिक्तकं लघु ॥ ४९५॥
हन्ति वातास्त्रवीसर्प कास कुष्ठ मरुत्कफान्॥
अथ कुष्ठभेद पुष्कर मूलम्।] उक्तं पुष्कर मूलन्तु पौष्क रं पुष्करञ्च तत्॥ पद्मपत्रञ्च काश्मीरं कुष्ठ भेद मिमं जगु :॥४९६॥ पौष्करं कटु कन्तिक्त मुष्णं वात कफज्वरान्॥ हन्ति शोथारुचि श्वासा न्विशेषात्पा र्श्वशूलनुत् ॥ ४९७॥

भा० बहुत गरम वमन करानेवाली तीखी और अग्नि बुद्धि स्मृति इनको दे नेवालीहै ॥ ४९४॥ अनन्तर कूट के नाम और गुण कहतेहैं।] कुष्ठ रोगा ह्वयवाप्य पारिभव्य उत्पल येह कूटके नामहैं ॥ कूट गर्म कड़वा मधुर शुक्र को बढ़ानेवाली तिक्त और हलका होताहै ॥ ४९५॥ तथावात रक्त वीद सर्व कास कुष्ठ वातकफ इनको नाश करताहै ॥

अनन्तर कूटका भेद उस्का गुण और नाम कहतेहैं ॥ पुष्करमूल पौष्कर पुष्कर। पद्मपत्र काश्मीर येह कुष्ठ के नाम कहेहैं ॥ इस्को कूटका भेद कहेहैं

॥ ४२६ ॥ पुष्कर मूल कडवा तिक्त कहाहै और वात कफ ज्वरको। नाश करताहै ॥ तथा शोथ अरुचि श्वास विशेष करके पार्श्व शूलको नाश करताहै ॥ ४२७ ॥

अथ चोक।] कटुपर्णी हैमवती हेमक्षीरी हिमावती ॥ हेमाह्वा पीतदुग्धा च तन्मूलञ्चोक मुच्यते ॥ ४२८ ॥ हेमाह्वा रेचनी तिक्ता भेदिन्युत्क्लेश कारिणी ॥ कृमिकण्डू विषानाह कफ पित्तास्त्रकुष्ठनुत् ॥ ४२९ ॥

अथ काकरा शृङ्गी।] शृङ्गी कर्कट शृङ्गी च स्यात् कुलीर विषाणिका ॥ अज शृङ्गी च वक्रा च कर्कटाख्या च कीर्त्तिता ॥ ४३० ॥ शृङ्गी कषाया तिक्तोष्णा कफवात क्षय ज्वरान् ॥ श्वासोर्द्ध्व वात तृट्कास हिक्कारुचि वमीन् हरेत्। ४३१ ॥

भा० अनन्तर चोकके नाम और गुण कहतेहैं ॥ कटुपर्णी हैमवती हेमक्षीरी हिमावती हेमाह्वा पीतदुग्धा येह चोकवृक्षके नामहैं ॥ और उस्के मूलको चोक कहतेहैं ॥ ४२८ ॥ चोक दस्तावर तिक्त भेदन करनेवाली और मतलीको करनेवाली होतीहै ॥ तथा कृमि खुजली विष अफारा कफ मूत्रकृच्छ्र रक्तपित्त कुष्ठ इनको भी नाशक है ॥ ४२९ ॥ अनन्तर काकडासींगी के नाम और गुण कहतेहैं ॥ शृंगी कर्कट शृंगी कुलीर विषाणिका ॥ अजशृंगी वक्रा कर्कटाख्या येह काकडासींगी के नामहैं ॥ ४३० ॥ काकडासींगी कसेली तिक्त कफ वात क्षय ज्वरोंको ॥ और श्वास उर्द्ध्ववात तथा कास हिचकी अरुचि वमन इनको दूर करतीहै ॥ ४३१ ॥

अथ कायफरस्य नाम गुणाः ॥] कट्फलः सोमवल्कश्च कैटर्य्यः कुम्भिका पि च ॥ श्रीपर्णिका कुमुदिका भद्रा भद्रवतीति च ॥ ४३२ ॥ कट्फलस्तुवरस्तिक्तः कटुर्वात कफज्वरान् ॥ हन्ति श्वास प्रमेहार्शः कास कण्ठामयारुचीः ॥ ४३३ ॥ [अथ भार्गीव भनेटी इति च।]

भा० अनन्तर कायफलके नाम और गुण कहतेहैं ॥ कट्फल सोमवल्क कैटर्य्य कुंभिका ॥ श्रीपर्णीक कुमुदिका भद्रा भद्रवती। येह कायफलके नामहैं ॥ ॥४२२॥ कायफल कसैला तिक्त कडुवा होता है। और वात कफ ज्वरोंको नाश करताहै ॥ तथा श्वास प्रमेह ववासीर कास कंठके रोग अरुचि इनकोभी नाश करताहै ॥ ४२३॥ अनन्तर भारंगी के नाम और गुण कहतेहैं ॥

भार्ङ्गी भृगुभवा पद्मा फञ्जी ब्राह्मण यष्टिका ॥ भार्गी रूक्षा कटुस्तिक्ता रुच्योष्णा पाचनी लघुः ॥ ४२४ ॥ दीपनी तुवरा गुल्म रक्तजन्नाशयेद् ध्रुवम् ॥ शोथ कास कफ श्वास पीनस ज्वर मारुतान् ॥ ४२५ ॥

अथ पाषाणभेदः। पाषाणभेदकोऽश्मघ्नी गिरिभिद्भिन्नयाजनी ॥ अश्मभेदो हिमस्तिक्तः कषायो वस्ति शोधनः ॥ ४२६ ॥ भेदनो हन्ति दोषार्शो गुल्म कृच्छ्राश्म हृद्रुजः ॥ योनिरोगान् प्रमेहांश्च प्लीह शूलव्रणानि च ॥ ४२७ ॥

भा० भारंगी भृगुभवा पद्मा फंजी ब्राह्मणयष्टिका ॥ येह भारंगी के नामहैं ॥ भारंगी रूखी कडुवी तिक्त रुचिको करनेवाली उष्ण पाचन हलकी होतीहै ॥४२४॥ और दीपन कसैली होतीहै ॥ तथा रक्तका वायगोला इसको निश्चय नाश करतीहै ॥ और शोथ कास कफ श्वास पीनस ज्वर वायु इनकोभी नाश करतीहै ॥ ४२५॥ अनन्तर पाषाण भेदके नाम और गुण कहतेहैं ॥ पाषाण भेदक अश्मघ्न गिरभिन्न भिन्नयाजनी। येह पाषाण भेदकेनामहैं ॥ पाषाणभेद शीतल तिक्त कसैला वस्तिशोधन होताहै ॥ ४२६॥ और भेदनहै। तथा दोष ववासीर गुल्म मूत्रकृच्छ्र पथरी हृदयकी पीड़ा ॥ योनिरोग प्रमेहतिलही शूल व्रण इनको भी नाश करता हैं ॥ ४२७ ॥

अथ धावई। धातकी धातुपुष्पी च ताम्रपुष्पी च कुञ्जरा ॥ सुभिक्षा बहुपुष्पी च वन्हिज्वाला च सास्मृता ॥४२८

धातकी कटुका शीता मृदु कृत्तुवरा लघुः॥ तृष्णाती सार पित्तास्र विष क्रमि विसर्प जित्॥ ४२६॥

अथ मञ्जिष्ठा।] मञ्जिष्ठा विकसा जिङ्गी समङ्गा कालमेषिका॥ मराडूकपर्णी भराडीरी भराडी योजन वल्ल्यपि॥ ॥४३०॥ रसायन्यरुणा काला रक्ताङ्गी रक्तयष्टिका॥ भराडीतकी च गराडीरी मञ्जूषा वस्त्ररञ्जिनी॥४३१॥ मञ्जिष्ठा मधुरा तिक्ता कषाया स्वर वर्णकृत्॥ गुरुरुष्णा विष श्लेष्म शोथ योन्यक्षि कर्णरुक्॥ ४३२॥ रक्तातीसार कुष्ठास्र वीसर्प व्रण मेहनुत्॥

भा० अनन्तर धवके नाम और गुण कहतेहैं॥ धातकी धातुपुष्पी ताम्रपुष्पी कुंजरा॥ सुभिक्षा बहुपुष्पी वन्हिज्वाला। येह धवके नाम कहेगयेहैं॥ ४२८॥ धव कडुवी शीतल मुलायम करनेवाली। कसैली और हलकी होतीहै॥ तथा तृषा अतीसार रक्तपित्त विष कृमि विसर्प। इनको जीतनेवाली है॥ ४२९॥ अनन्तर मजीठके नाम और गुण कहतेहैं॥ मजिष्ठ विकसा जिंगी समंगा कालमेषिका॥ मंडूकपर्णी भंडीरी भंडीयोजनवल्ली॥ ४३०॥ रसायनी अरुणा काला रक्तांगी रक्तयष्टिका॥ भराडीतकी गंडीरी मञ्जूषावस्त्र रंजनी। येह मजीठके नाम हैं॥ ४३१॥ मंजीठ मधुर तिक्त कसैली होतीहै॥ और स्वर वर्णको करनेवाली। तथा भारी उष्ण होतीहै और विष कफ शोथ योनि पीड़ा नेत्रपीड़ा कर्णपीडा॥ ४३२॥ रक्तातीसार कुष्ठ रक्तपित्त विसर्प व्रण प्रमेह। इनको नाश करनेवालीहै॥

[अथ कसुम्भ।]

स्यात् कुसुम्भम्बन्हि शिखं वस्त्ररञ्जक मित्यपि॥ कुसुमम्बातलं कृच्छ्रं रक्तपित्त कफापहम्॥ ४३३॥

अथ लाही।] लाक्षापलं कषालक्ता यावो दुत्तामयो जतुः॥

लाक्षा वर्ण्या हिमा बल्या स्निग्धा च तुवरा लघुः॥

॥४३४॥ ब्राह्मणयष्टिर् वल्ली च खरशाका च हञ्जिका ॥ अनुष्णा कफ पित्तास्र हिक्का कासज्वर प्रणुत्॥

॥४३५॥ क्षतोर: क्षतवीसर्प्प कृमि कुष्ठ गदापहा ॥

अलक्तको गुणैस् तद्वद्विशेषाद् व्यङ्ग नाशनः॥४३६॥

भा० अनन्तर कुसुंभ के नाम और गुण कहते हैं ॥ कुसुंभ वन्हि शिख, वस्त्ररंजक, येह कुसुंभके नाम हैं ॥ कुसुंभ वातज है और मूत्रकृच्छ्र रक्तपित्त कफ इनका भी नाशक है ॥ ४३३॥ ३

अनन्तर लाहीके नाम और गुण कहते हैं ॥ लाक्षा, पलंकषा, लक्षा यावदक्षामय जतु। येह लाहीके नाम हैं ॥ लाही वर्णको करनेवाली शीतल बलको देनेवाली चिकनी कसैली और हलकी होती है ॥ ४३४॥ ब्राह्मणी भंगार वल्लीखरशाका हञ्जिका ॥ येह भारंगीके नाम हैं ॥ भारंगी शीतल कफ रक्तपित्त उचकी कास ज्वर इनकी नाशक है ॥ ४३५॥ और उरक्षत उरक्षत विसर्प कृमि कुष्ट इन रोगोंकी भी नाशक है। लाही गुण करके इसीके समान है। लेकिन् विशेष करके व्यङ्गकी नाशक है ॥ ४३६॥

[अथ हरिद्रा।]

हरिद्रा काञ्चनी पीता निशाख्या वरवर्णिनी ॥ कृमिघ्ना हलदी योषित् प्रिया हट्ट विलासिनी ॥ ४३७॥

हरिद्रा कटुका तिक्ता रूक्षोष्णा कफपित्त नुत् ॥ वर्ण्या त्वग्दोष मेहास्र शोथ पाण्डु व्रणापहा ॥४३८॥

[कर्पूर हरिद्रे।] दार्वी भेदास्रगन्धा च सुरभी दारु दारु च। कर्पूरा पद्म पत्रा स्यात् सुरीमत् सुरतारका ॥ ४३९॥

भा० अनन्तर हरिद्राके नाम और गुण कहते हैं ॥ हरिद्रा, कांचन, पीता, निशाख्या, वरवर्णिनी, ॥ कृमिघ्ना, हलदी, योषितप्रिया, हट्ट, विलासि

नी ॥ ४३७ ॥ येह हलदी के नामहैं । हलदी कडुवी तिक्त रूक्ष उष्ण कफ पित्तकी नाशक होतीहै । वर्णको करनेवाली त्वचाके दोष प्रमेह रक्त शोथ पांडुरोग और व्रण इनको नाशक है ॥ ४३८॥ कपूर हलदी के नाम और गुण कहतेहैं ॥ दारवी भेदा आम्र गंधा सुरभि दारु दारू ॥ कर्पूरा पद्मपत्रा सुरी भद्र सुरनारिका । येह कपूर हलदी के नाम हैं ॥ ४३९ ॥

अथ वनहरदी ।] अरण्यहलदी कन्दः कुष्ठ वातास्त्र नाशनः। आम्र गन्धि हरिद्रा या सा शीता वातला मता ॥ ४४० ॥ पित्तहन्मधुरा तिक्ता सर्व्वकण्डु विनाशिनी ॥

दारुहरिद्रा ।] दार्वी दारु हरिद्रा च पर्ज्जन्या पर्ज्जनीति च ॥ कटं कटेरी पीता च भवेत्सैव पचम्पचा ॥ ४४१॥ सैव कालीयकः प्रोक्तस्तथा कालेयकोऽपि च ॥ पीतद्रुश्च हरिद्रुश्च पीतदारु कपीतकम् ॥ ४४२॥ दार्वी निशागुणा किन्तु नेत्रकर्णास्य रोगनुत् ॥

भा० अनन्तर वनहलदी के नाम और गुणकहतेहैं ॥ अरण्यहलदी कन्द ये कुष्ठ वात रक्त को नाश करनेवालीहै ॥ और कपूर हलदी शीतल वातको करनेवाली कहीगई है ॥ ४४० ॥ और पित्तको नाश करनेवाली मधुर तिक्त सम्पूर्ण खुजलियों को नाश करनेवाली है ॥ दारु हलदी के नाम और गुण कहतेहैं ॥ दारवी दारुहरिद्रा पर्जन्या पर्जनी ॥ कटं कटेरी, पीता, पचंपचा ॥ ४४१ ॥ कालीयक कालेयक पीतद्रुम हरिद्रु पीतदारु कपीतक येह दारु हरदी के नाम हैं ॥ ४४२॥ दारु हरदी हरदी के गुणके सदृश होतीहै । इनको विशेष करके नेत्र कर्ण मुख इनके रोगों को नाशकरनेवालीहै ॥

[रसाञ्जनम् ।]

दार्वी क्वाथसमं क्षीरं पादम्पक्वा यथा घनम् ॥ तदा रसाञ्जनाख्यन्तत् नेत्रयोः परमं हितम् ॥ ४४३॥ रसाञ्जनन्तार्क्ष्य शैलं रसगर्भञ्च तार्क्ष्यजम् ॥ रसाञ्जनञ्च

टु श्लेष्म विषनेत्र विकारनुत् ॥ ४४४ ॥ उष्णं रसायनं तिक्तं छेदनं व्रणदोषहृत् ॥ [अथ वकुची।] अवल्गुजी वाकुची स्यात् सोमराजी सुपर्णिका ॥ शशिलेखा कृष्णफला सोमा पूतफलीति च ॥ ४४५ ॥ सोमवल्ली कालमेषी कुष्ठघ्नी च प्रकीर्त्तिता ॥ वाकुची मधुरा तिक्ता कटुपाका रसायनी ॥ ४४६ ॥ विष्टम्भहृद्धिमा रुच्या सरा श्लेष्मास्त्रपित्तनुत् ॥ रूक्षा हृद्या श्वासकुष्ठमेहज्वरकृमिप्रणुत् ॥ ४४७ ॥ तत्फलं पित्तलं कुष्ठकफानिलहरं कटु ॥ केश्यन्त्वच्यं वमिश्वासकासशोथामयापाण्डुनुत् ॥ ४४८ ॥ [अथ चक्रमर्द्दः।]

है ॥ ४४४ ॥ और उष्ण रसायन तिक्त छेदन व्रणदोष का नाशक है ॥ अनन्तर वकुची के नाम और गुण कहतेहैं ॥ अवलगज वाकुची सोमराजी सुपर्णिका शशिलेखा कृष्णफला सोमा पूतिफली ॥ ४४५ ॥ सोमवल्ली कालमेषी कुष्टघ्नी। ये वकुची के नाम कहेहैं ॥ वकुची मधुर तिक्त पाकमें कटु रसायनी ॥ ४४६ ॥ विष्टम्भ को नाशकरनेवाली शीतल रुचिको करनेवाली। दस्तावर कफ और पित्तको नाशकरनेवाली है ॥ रूक्ष हृदय के प्रिय श्वास कुष्ठ प्रमेह ज्वर कृमि। इनको नाश करने वालीहै ॥ ४४७ ॥ इसका फल पित्त को करनेवाला। कुष्ठ कफ वात इनका नाशक कडुवा ॥ केशों के हित त्वचाको अच्छा करनेवाला वमन श्वास कास सूजन पांडुरोग इनका नाशकरै ॥ ४८

चक्रमर्द्दः प्रपुन्नाटो दद्रुघ्नो मेघलोचनः ॥ पद्माटः स्या

देड गजश्चक्री पुंचाट इत्यपि ॥ ४४९॥ चक्रमर्दो लघुः स्वादु रूक्षः पित्तानिलापहः ॥ हृद्यो हिमः कफश्वास कुष्ठदद्रु कृमीन् हरेत् ॥ ४५०॥ हन्त्युष्णन्तत् फलंकुष्ठ कण्डू दद्रु विषानिलान् ॥ गुल्मकास कृमि श्वास नाशनं कटुकं स्मृतम् ॥ ४५१॥ [अथ अतीसः।]

विषा त्वतिविषा विश्वा शृङ्गी प्रति विषारुणा ॥ शुक्ल कन्दा चोपविषा भङ्गुरा घुणवल्लभा ॥ ४५२॥ विषासोष्णा कटु स्तिक्ता पाचनी दीपनी हरेत् ॥ कफ पित्ता तिसाराम विषकासवमि कृमीन् ॥ ४५३॥

भा० अनन्तर चकोड़ के नाम और गुण कहते हैं ॥ चक्रमर्द प्रपुन्नाट दद्रुघ्न मेषलोचन पद्माट । ड़गज चक्रीपुंचाट । येह चकोड़के नाम हैं। ४४९॥ चकोड़ हलका मधुर रूखा पित्त वायुका नाशक ॥ हृदय का प्रिय शीतल कफ श्वास कुष्ठ दाद कृमी इनको नाश करता है ॥ ४५०॥ इसका फल चक्र नगरम होता है और कुष्ठ कंडु दाद विष वात ॥ वायगोला कास कृमि श्वास इनका नाशक है। और कड़ुवा कहा गया है ॥ ४५१॥

अनन्तर अतीस के नाम और गुण कहते हैं ॥ विषात्वतिविषा विश्वा शृंगी प्रतिविषा अरुणा ॥ शुक्ल कंदा उपविषा भंगुरा घुणवल्लभा। येह अतीसके नाम हैं ॥ ४५२॥ अतीस कुछ गरम कड़वी तिक्त पाचन दीपन होती है ॥ और कफ पित्त अतिसार आम विष कास वमन कृमी इनको नाश करनी है ॥ ४५३॥

[अथ सावरलोध: पटिआ लोध इति लोके।] लोध्रस्तिरीटक श्चैव शावरी माल्वकस्तथा ॥ द्वितीयः पट्टिका लोध: क्रमुकः स्थूल वल्कल: ॥ ४५४॥ जीर्णपत्रो बृहत्पत्र: पट्टी लाक्षा प्रसादन: ॥ लोध्रो ग्राही लघु:

शीत श्चक्षुष्य: कफपित्तनुत् ॥ ४५५॥ कषायो रक्त पित्तास्रग् ज्वरातीसार शोथहृत् ॥ [अथ लशुनः।]

भा० लशुनस्तु रसोनः स्यादुग्रगन्धो महौषधम्॥ अरिष्टो म्लेच्छकन्दश्च यवनेष्टो रसोनकः ॥ ४५६॥

भा० अनन्तर लोध और पठानी लोधके नाम और गुण कहते हैं ॥ लोध्र किरीटक श्यावर मालव। यह लोधके नाम हैं ॥ और दूसरी पट्टिका लोध्र क्रमिक स्थूल वल्कल ॥ ४५४॥ जीर्णपत्र बृहत्पत्र पट्टी लाक्षा प्रसादन येह पठानी लोधके नामहैं ॥ लोध ग्राही अल्प शीतल चक्षुकेहीत कफ पित्तकी नाशक है ॥ ४५५॥ और कसैली रक्त पित्त ज्वर अतीसार शोथ इनकी नाशक है ॥ अनन्तर लहसुन के नाम और गुण कहतेहैं ॥ लहसुन रसोन उग्रगंध महौषध ॥ अरिष्ट म्लेच्छकन्द यवनेष्ट रसोनक येह लहसन के नामहैं ॥ ४५६॥

यदा ततोऽपतद्बिन्दुः सरसोनोऽभवद्भुवि ॥ पञ्चभिश्च रसैर्युक्तो रसेनाम्लेन वर्जितः ॥ ४५७॥ तस्माद्रसोन इत्युक्तो द्रव्याणां गुणवेदिभिः ॥ कटुकश्चापिमूलेषु तिक्तपत्रेषु संस्थितः ॥ ४५८॥ नाले कषाय उद्दिष्टो नालाग्रे लवणः स्मृतः ॥ वीजे तु मधुरः प्रोक्तो रसस्तद्गुणवेदिभिः ॥ ४५९॥ रसोनो बृंहणो वृष्यः स्निग्धोष्णः पाचनः सरः ॥ रसे पाके च कटुकस्तीक्ष्णो मधुरको मतः ॥ ४६०॥

भा० जब उससे पृथ्वी पर बूंद गिरी वो लहसुन भया ॥ पांच रसोंसे युक्त और अम्ल रस से रहित होता है ॥ ४५७॥ इसवास्ते द्रव्यों के गुण जानने वालोंने रसोन ऐसा कहाहै ॥ मूलमें कडुवा और पत्रमे तिक्त रहताहै ॥ ४५८॥ नालमें कसैला और नालके अग्रभागमें ल-

वरण ऐसा कहा गयाहै । बीजमें मधु इसप्रकार रस इसके गुण जाननेवालोंने कहेहैं ॥ ४५९ ॥ लहसुन धातुवों के बढ़ानेवाला और पुरुषत्व को बढ़ाने वाला । स्निग्ध उष्ण पाचन दस्तावर होताहै तथा रस और पाक में कडुवा तीक्ष्ण उष्ण और मधुर भी कहा गयाहै ॥ ४६० ॥ टूटे हाड़को जोड़नेवाला कंठ के हितभारी रक्त पित्त को बढ़ानेवाला ॥ बल वर्णके बढ़ानेवाला है ॥

बलवर्णकरो मेधा हितो नेत्र्यो रसायनः ॥ ४६१ ॥ हृद्रोग जीर्णज्वर कुक्षि शूल विबन्धगुल्मा रुचि कास शोफान् ॥ दुर्नाम कुष्ठा नलसाद जन्तु समीरण श्वास कफांश्च हन्ति ॥ ४६२ ॥ मद्यं मांसं तथाम्लञ्च हितं लशुनसेविनाम् ॥ व्यायाममातपं रोषमतिनीरं पयो गुडम् ॥ ४६३ ॥ रसोनमश्नन् पुरुषस्त्यजेदेतान्निरन्तरम् ॥

भा० टूटेहाड़ का जोड़नेवाला कंठकेहित भारी रक्त पित्तको बढ़ानेवाला ॥ बलवर्णको बढ़ाने वाला कांतिके हित नेत्रके हित रसायनहोताहै ॥ ४६१ ॥ और हृदरोग जीर्णज्वर कूखके शूलको विबंधवायगोला अरुचि कास शोथ दुरनाम कुष्ठ अग्निमांद्य कृमि वात श्वास और कफ इनको नाश करताहै ॥ ४६२ ॥ लहसुन के सेवन करनेवालेको मद्य मांस और खटाई येह हित है ॥ और कसरत धूपक्रोध बहुत जल दूध गुड़ ॥ ४६३ ॥ इनको लहसन खाने वाला पुरुष निरन्तर त्यागदेवे ॥

[अथ पिण्डारु ।]

पलाण्डुर्यवनेष्टश्च दुर्गन्धो मुखदूषकः ॥ पलाण्डुस्तु गुणैर्ज्ञेयो रसोनसदृशो गुणैः ॥ ४६४ ॥ स्वादुपाके रसोऽनुष्णः कफकृन्नाति पित्तलः ॥ हरते केवलं वातं बलवीर्य्यकरो गुरुः ॥ ४६५ ॥

भा० अनन्तर प्याज़के नाम और गुण कहतेहैं ॥ पलां डुमे वनेष्ट दुर्गन्ध मुखदूषक। ये प्याज़के नामहैं ॥ प्याज़ लहसुनके सदृश गुण हैं ॥४६४॥ पाकमें मधुर रस शीत कफको करनेवाला और बहुत पित्त करनेवाला नहीं ॥ केवल वातको नाश करताहै। और बल वीर्य्यको करनेवालाहै। तथा गुरुहै ॥ ४६५॥

अथ भेला। भल्लातकं त्रिषु प्रोक्तं मरुष्कोऽरुष्करोऽग्निकः॥ तथैवाग्निमुखी भल्ली वीरवृक्षश्च शोफकृत्॥ ॥४६६॥ भल्लातक फलं पक्वं स्वादु पाकरसं लघु॥ कषायं पाचनं स्निग्धं तीक्ष्णोष्णं च्छेदि भेदनम्॥४६७॥ मेध्यं वह्निकरं हन्ति कफ वात व्रणोदरम्॥ कुष्ठार्शो ग्रहणी गुल्म शोफानाह ज्वर कृमीन्॥ ४६८॥

भा० अनन्तर भिलावेके नाम और गुण कहतेहैं ॥ भल्लातक, तीनोंमें कहागयाहै। मरुष्क अरुष्कर अग्निक। येह भिलावेके नामहैं॥ इसी प्रकार अग्निमुखी भल्ली वीरवृक्ष शोफकृत्। येह भी कहेगयेहैं॥४६६॥ भिलावेका फल पकाहुवा पाकमें मधुर रस हलका॥ कसैला पाचन स्निग्ध तीखा उष्ण छेदन करनेवाला। और भेद न करनेवाला होताहै॥४६७॥ और कान्तिको करनेवाला अग्निको करनेवाला होताहै। कफ वात व्रण और उदररोग इनको नाश करताहै॥ तथा कुष्ठ ववासीर संग्रहणी वाय गोला शोथ अफारा ज्वर कृमि इनको भी नाश करताहै॥ ४६८॥

तन्मज्जा मधुरो वृष्यो बृंहणो वात पित्तहा॥ वृन्त मारुष्करं स्वादु पित्तघ्नं केश्यमग्निकृत्॥ ४६९॥ भल्लातकः कषायोष्णः शुक्रलो मधुरो लघुः॥ वातश्लेष्मोदरानाह कुष्ठार्शो ग्रहणी गदान्॥ ४७०॥ हन्ति गुल्मज्वरश्वित्र वान्हिमान्द्य क्रिमिव्रणान्॥

उसकी गिरी मधुर पुरुषत्व की बढ़ानेवाली ॥ वलकोदेनेवाली वात पित्त की नाशक होती है । गोल भिलावा मधुर पित्तका नाशक केश अग्निको करनेवाला होताहै ॥ ४६८ ॥ भिलावा कसेला है गरम शुक्रको करने वाल मधुर हलका होताहै । वात कफ उदर रोग अफारा कुष्ठ बवासीर संग्रहणी इनको नाश करताहै ॥ ४६९ ॥ ओर वायगोला ज्वर स्वेतकुष्ट अग्निमान्द्य कृमि व्रण इनको भी नाशकरताहै ॥ [अथ भङ्गा।]

भङ्गा गञ्जा मातुलानी मादिनी विजया जया ॥ भङ्गा कफ हरी तिक्ता ग्राहणीपाचनी लघुः ॥ ४७१॥ तीक्ष्णोष्णा पित्तला मोह मन्दवाग्वन्हि बर्द्धिनी ॥

[अथ पोस्ता ।] तिलभेदः खसतिलः कास श्वास हरः स्मृतः ॥ स्यात्तवा खसफलोद्भूतं वल्कलं शीतलं लघु ॥४७२॥ ग्राहि तिक्तं कषायञ्च वातकृत कफास्त्रहृत् ॥ धातूनां शोषकं रूक्षं मदकृद् वाग्विवर्द्धनम् ॥४७३॥ मुहुर्मोहकरं रुच्यं सेवनात् पुंस्त्व नाशनम् ॥

भा० अनन्तर भांगके नाम और गुण कहतेहैं ॥ भंगा गंजा मातुलानी मादिनी विजया जया । येह भांग के नामहैं ॥ भांग कफ को करनेवाली तिक्त ग्राहणी पाचन हलकी ॥ तीक्ष्ण उष्ण होती है और पित्तको करनेवाली मोह मन्दवाणी मन्दाग्नि । इनको बढ़ाने वाली होती है ॥ ४७१ ॥ अनन्तर पोस्त के नाम और गुण कहतेहैं ॥ तिल भेद खसतिल । येह पोस्तके नामहैं ॥ और कास श्वास के नाशक कहे गयेहैं ॥ पोस्त के फल में उत्पन्न हुवा वल्कल शीतल हलका ॥४७२॥ ग्राही तिक्त कसैला वातको करनेवाला कफ रक्त का नाशक ॥ धातुओं का शोषक रूखा नशा करनेवाला वाणी को बढ़ानेवाला ॥ ४७३ ॥ बार बार मोहको करने वाला रुचि को देनेवाला होताहै । और सेवन से पुरुषत्वको नाश करनेवाला है ॥ [अथ अफ़ीम।]

अनन्तर अफीमके नाम और गुण कहतेहैं ॥

उक्तं खसफलक्षीरमाफूकमहिफेनकम् ॥ आफूकं शोषणं ग्राहि श्लेष्मघ्नं वातपित्तलम् ॥ ४७४ ॥ तथा खसफलोद्भूतवल्कलप्रायमित्यपि ॥

अथ खाखसदान ।] उच्यन्ते खसबीजानि ते खाखसतिला अपि ॥ खसबीजानि बल्यानि वृष्याणि सुगुरूणि च ॥ ४७५ ॥ जनयन्ति कफम् तानि शमयन्ति समीरणम् ॥ [अथसैन्धव ।] सैन्धवोऽस्त्री शीतशिवं माणिमन्थञ्च सिन्धजम् ॥ सैन्धवं लवणं स्वादु दीपनं पाचनं लघु ॥ ४७ ॥ स्निग्धं रुच्यं हिमं वृष्यं सूक्ष्मं नेत्र्यं त्रिदोषहृत् ॥

भा० पोस्तके फलके दूधको अफूक और अहिफेनक कहाहै ॥ अफीम सुकानेवाली ग्राही कफको नाश करनेवाली वात पित्तको करनेवाली होती है ॥ ४७४ ॥ तथा पोस्तके फलसे उत्पन्न हुवे वल्कल सदृश प्राय: गुणमें होतीहै ॥ अनन्तर खसखसके नाम और गुण कहतेहैं ॥ पोस्तके बीजोंको खारवसतिलभी कहतेहैं ॥ खसखस बलको देनेवाली पुष्ट भारी होतीहै ॥ ४७५ ॥ और कफको उत्पन्न करतीहै । तथा वातको शमन करतीहै ॥

अनन्तर सैन्धवके नाम और गुण कहतेहैं ॥ सैन्धव शीत शिव माणिमंथ सिन्धुज येह सैंधवके नामहैं ॥ सैंधव लवण स्वादु दीपन पाचन हलका होताहै । चिकना रुचिको देनेवाला शीतल पुरुषत्वको करनेवाला सूक्ष्म नेत्रको हित और त्रिदोषका नाशक होताहै ॥ ४७६ ॥

[अथ शाकम्भरि ।] शाकम्भरीयं कथितं गुडाख्यं रोमकन्तथा ॥ गुडाख्यं लघु वातघ्नमत्युष्णं भेदि पित्तलम् ॥ ॥ ४७७ ॥ तीक्ष्णोष्णञ्चापि सूक्ष्मञ्चाभिष्यन्दि कटुपाकि च

[अथ पाङ्ग ।] सामुद्रं यत्तु लवणं मक्षारं वशारञ्च तत् ॥ सा मुद्रजं सागरजं लवणो दधि सम्भवम् ॥ ४७८ ॥ सामु द्रं मधुरम्पाके सतिक्तं मधुरङ्गुरु ॥ नात्युष्णं दीपनं भे दि सक्षार मविदाहि च ॥ ४७९ ॥ श्लेष्मलं वातनुत् तिक्त मरूक्षं नाति शीतलम् ॥

भा० अनन्तर सांभर नमक के नाम और गुण कहतेहैं ॥ शाकम्भरी गुडा ख्य तथा रौमक । येह सांभर नमक के नाम कहेगयेहैं ॥ सांभ र हलका वातका नाशक बहुत गरम भेदी पित्तको करनेवाला ॥ ४७७ ॥ तीखा उष्ण सू क्ष्म अभिष्यन्दि पाकमें कटु होताहै ॥ अनन्तर पाङ्ग के नाम और गुण कहतेहैं ॥ समुद्र जो लवण होताहै वोह क्षाररहित होताहै ॥ उसको वशार कहतेहैं ॥ सामुद्रज सागरज उदधिसम्भव । येह पाङ्गा लवण के नाम हैं ॥ ॥ ४७८ ॥ पाङ्गा पाकमें मधुर कुछ तिक्त मधुर भारी । अति उष्ण दीपन भेदी कुछ क्षार और अविदाही होताहै ॥ ४७९ ॥ और कफको करनेवाला वातका नाशक तिक्त स्निग्ध न अतिशीतल होता है ॥

अथ विरिआ सोचर इति ।] विडम्पाकञ्च कतकं तथा द्राविडं मासुरम् ॥ विडं सक्षार मूर्द्धाधः कफ वातानु लोमनम् ॥ ४८० ॥ (क) (ऊर्द्धं कफ मधोवातं मचारये दित्यर्थः ।) दीपनं लघु तीक्ष्णोष्णं रूक्षं रुच्यं व्यवायि च ॥ विबन्धानाह विष्टम्भ हृद्रुक् गौरव शूलनुत् ॥ ४८१ ॥

भा० अनन्तर विडके नाम और गुण कहतेहैं ॥ विड्पाक कतक तथा द्रा विड आसुर । येह नाम विड़केहैं ॥ विड़ कुछ क्षार ऊर्द्ध अध कफ वात का अनुलोमन करनेवाला है ४८० ॥ (क) ऊपर कफ और नीचे वात इनको निकालताहै ॥ दीपन हलका तीखा उष्ण रूखा रुचिको करनेवाला व्य वायि होताहै । और विबन्ध अफारा विष्टम्भ हृदयकी पीड़ा भारीपन औ र शूल । इनका नाशक होताहै ॥ ४८१ ॥

[अथ सौहार कीड़ा इति च।] सौवर्च्चलं स्याद्रुचकमन्धपाकञ्च तन्मतम् ॥ रुचकं रोचनम्भेदी दीपनम्पाचनम्परम ॥ ४८२ ॥ सुस्नेहं वातनुन्नाति पित्तलं विशदं लघु ॥ उद्गार शुद्धिदं सूक्ष्मं विबन्धानाह शूलजित् ॥ ४८३ ॥ (रेह गह गया प्रभृति।) औद्भिदम्पांशुलवणं यज्जातं भूमितः स्वयम् ॥ क्षारं गुरु कटु स्निग्धं शीतलं वातनाशनम् ॥ ४८४ ॥

भा० अनन्तर सौंचरके नाम और गुण कहतेहैं ॥ सौवर्चल रुचक ग्रन्थ पाक । ये सौंचर केनामहैं । सौंचर रुचिको करनेवाला भेदी दीपन अत्यन्त पाचन होताहै ॥ ४८२ ॥ चिकना वातका नाशक और न अतिपित्तको करनेवाला विषघ्न हलका होताहै ॥ और डकार को शुद्ध करनेवाला सूक्ष्म विबंध अफारा और शूल इनका जीतनेवालाहै ॥ ४८३ ॥ अनन्तर कचलोन के नाम और गुण कहतेहैं ॥ औद्भिद पांसु लवण येह कचलोन के नामहैं ॥ जो भूमिसे स्वयं उत्पन्न होता है ॥ क्षार भारी कड़वा स्निग्ध शीतल वातकानाशक है ॥ ४८४ ॥

अथ चणकलोनी।] चणकाम्लक मत्युष्णं दीपनं दन्तहर्षणम् ॥ लवणानुरसं रुच्यं शूलाजीर्ण विबन्धनुत् ॥ ४८५ ॥ [अथ यवक्षारः सानी सोरा।] पाक्यः क्षारो यवक्षारो यावशूको यवाग्रजः ॥ स्वर्जिकापि स्मृतः क्षारः कापोतः सुखवर्चकः ॥ ४८६ कथितः स्वर्जिका भेदो विशेषज्ञो सुवर्चिकः ॥ यवक्षारो लघुः स्निग्धः सुसूक्ष्मो वन्हि दीपनः ॥ ४८७ ॥

भा० अनन्तर चनेके खारको कहतेहैं ॥ चनेका खार बहुत गरम दीपन। दांतों को ऐंठनेवाला होता है। और लवणके अनुरस रुचिको करनेवाला। तथा शूल अजीर्ण विबंध। इनका नाशक है ॥ ४८५ ॥

अनन्तर जवाखार, सज्जी, शोग, इनके नाम और गुण कहतेहैं ॥ पाकाखार, यवाक्षार यवशूकयवाग्रज येह यवाखार के नामहैं ॥ सज्जी भी क्षार कही गई है कापोत सुखवर्चक ॥ ४८६ ॥ येह सज्जीका भेद बुद्धिवानोंने सुवर्चिक कहाहै। जवाखार हलका स्निग्ध बहुत सूक्ष्म अग्निकोदीपन करनेवालाहै ॥ ४८७ ॥

निहन्ति शूलवातामश्लेष्मश्वासगलामयान् ॥ पाण्डुर्शो ग्रहणी गुल्मानाह प्लीह हृदामयान् ॥ ४८८ ॥
स्वर्जिकाल्पगुणा तस्माद्विशेषाद्गुल्म शूलहृत् ॥
सुवर्चिका स्वर्जिकावद्बोद्धव्या गुणतो जनैः ॥ ४८९ ॥
[अथ सोहागा।] सौभाग्यं टङ्कणं क्षारो धातुद्रावक मुच्यते ॥
टङ्कणं वन्हिकृद्रूक्षं कफहृद्वात पित्तकृत् ॥ ४९० ॥

भा० और शूल वात आम कफ श्वास गलेके रोग इनको नाश करता है ॥ तथा पांडुरोग बवासीर संग्रहणी वायगोला अफारा प्लीह हृदय के रोग इन कोभी नाश करताहै ॥ ४८८ ॥ सज्जी उससे अल्प गुणवाली है। और विशेष करके वायगोला को नाश करती है। और शोरा सज्जीके समान गुण से लोग कहतेहैं ॥ ४८९ ॥ अनन्तर सुहागे के नाम और गुण कहतेहैं ॥ सौभाग्य टंकण क्षार धातुद्रावक कहतेहैं ॥ सुहागा अग्निको करनेवाला और रूखा कफका नाशक वात पित्तको करनेवाला होता है ॥ ४९० ॥

अथ क्षारद्वयं क्षार यवम् ॥ स्वर्जिका यावशूकश्च क्षारद्वयमुदाहृतम् ॥ टङ्कणेन युतं तत्तु क्षारत्रय मुदीरितम् ॥
॥ ४९१ ॥ मिलितस्त्वेते गुणवद्विशेषाद्गुल्महृत्परम् ॥
[क्षाराष्टकं] पलाशवज्रीशिखरिचिञ्चार्क तिलनालजाः ॥
यवजः स्वर्जिका चेति क्षाराष्टक मुदाहृतम् ॥ ४९२ ॥ क्षारा एतेऽग्निना तुल्या गुल्म शूलहरा भृशम् ॥

भा० अनन्तर क्षारद्वय और क्षारत्रय को कहते हैं ॥ सज्जीखार जवाखार इन को क्षार द्वय कहाहै ॥ सुहागेसे युक्त वोह क्षार त्रय कहागयाहै ॥ ४८१ ॥ वोह मिलेहुऐ उक्तगुणको करनेवाले हैं। विशेष करके अत्यंत वायगोला के नाशक हैं ॥ अनन्तर क्षाराष्टक को कहते हैं ॥ पलास थूहर चिचेरा इमली आक तिल ॥ जव और सज्जी इन आठ खारोंको क्षाराष्ट कहाहै ॥ ४८२ ॥ येह क्षार आग के समान हैं और वायगोला और शूल इनके अत्यन्त नाशक हैं ॥

[अथ चूक्रम्।] चुक्रं सहस्रवेधि स्याद्रसाम्लं शुक्त मित्यपि ॥
चुक्र मत्यम्ल मुष्णञ्च दीपनं पाचनं परम् ॥ ४८३ ॥
शूल गुल्म विबन्धाम वात श्लेष्महरं सरम् ॥ कृमि
तृष्णास्यवैरस्य हृत्पीडा वन्हिमान्द्यहृत् ॥ ४८४ ॥

भा० अनन्तर चोक के नाम और गुण कहते हैं ॥ चुक्र सहस्रवेधि रसाम्ल, शुक्त येह चोक के नाम हैं ॥ चोक बहुत खट्टा गर्म दीपन पाचन होता है। शूल वाय गोला विबंध आमवात कफ इनका नाशक और दस्तावर होता है ॥ कृमि तृषा मुखकी विरसता हृदयपीडा अग्निमान्द्य इनका नाशक है ॥ ४८४ ॥

इतिश्री मिश्र लटकन तनय श्री मिश्रभाव विर
चिते भावप्रकाशे हरीतक्यादि वर्गः ॥

अथ कर्पूरादि वर्गः। [तत्रादौ कर्पूरस्य नाम गुणाश्च]
पुंसि क्लीवे च कर्पूरः सिताभ्रो हिमवालुकः ॥ घ
नसारश्चन्द्र संज्ञः हिमनामापि सस्मृतः ॥ १ ॥
कर्पूरः शीतलो वृष्य श्चक्षुष्यो लेखनो लघुः ॥ सु
रभिर्म्मधुरस्तिक्तः कफ पित्त विषापहः ॥ २ ॥

भा० इतिश्री मिश्र लटकनके पुत्र श्रीभाव मिश्रका विरचित भाव प्रकाश में हरीतक्यादि वर्ग समाप्त ॥
अनन्तर कर्पूरादि वर्गः] इसमें प्रथम कर्पूर के नाम और गुण कहते

नेहैं ॥ पुल्लिङ्ग और नपुंसक लिंगमें भी कर्पूर सिताभ्र हिमवालुका ॥ घनसार चन्द्र संज्ञ हिम नामवालाभी वोह कहा गयाहै ॥१॥ कर्पूर शीतलहै वृष्य चक्षुके हित लेखन हलका ॥ सुगन्धयुक्त मधुर तिक्त होताहै । और कफपित्त विष इनका नाशक है ॥२॥

दाह तृष्णास्य वैरस्य मेदो दौर्गन्ध्य नाशनः ॥ कर्पूरो द्विविधः प्रोक्तः पक्वापक्व प्रभेदतः ॥३॥ पक्वात्कर्पूरतः प्राहुरपक्वं गुणवत्तरम् ॥ [अथ चिनीआ कर्पूरः] चीनाक संज्ञः कर्पूरः कफक्षय करः स्मृतः ॥ कुष्ठ कण्डू वमिहर स्तथा तिक्तरस श्च सः ॥४॥

अथ कस्तूरी।] मृगनाभिर्मृगमदः कथितस्तु सहस्रभिन् ॥ कस्तूरिका च कस्तूरी वेधमुख्या च सा स्मृता ॥५॥ काश्मरी कपिलच्छाया कस्तूरी त्रिविधा स्मृता ॥ कामरूपोद्भवा श्रेष्ठा नैपाली मध्यमा भवेत् ॥६॥

भा० दाह तृषा मुखकी विरसता मेद दुर्गंधता इनका भी नाशक है ॥ कर्पूर दो प्रकारका कहा गयाहै कच्चा और पक्का इस भेदसे ॥३॥ पक्के कर्पूरसे कच्चा कर्पूर गुणमें अधिक तर कहाहै ॥ अनन्तर चिनियां कर्पूर । चिनाक संज्ञा चिनियां कर्पूरकोहै वोह कफ क्षय करनेवाला कहा गयाहै । कुष्ठ खुजली वमन इनका नाशक तथा तिक्त रसवाला वोह होताहै ॥४॥ अनन्तर कस्तूरीके नाम और कहतेहैं ॥ मृगनाभि मृगमद सहस्रभिन् येह कस्तूरी के नाम कहेहैं ॥ और कस्तूरिका कस्तूरी वेदमुख्या वोह कही गई है ॥५॥ काश्मरी कपिलच्छाया कस्तूरी । ऐसे तीन प्रकारकी कही गईहै ॥ कामरूमें उत्पन्न होनेवाली श्रेष्ठ और नैपालमें होने वाली मध्यम होतीहै ॥६॥

कामरूपोद्भवा कृष्णा नैपाली नीलवर्ण युक् ॥ काश्मीरदेश सम्भूता कस्तूरी ह्यधमा मता ॥७॥ कस्तूरिका

कटुस्तिक्ता क्षारोष्णा शुक्रला गुरुः॥ कफवात वि
षच्छर्दि शीत दौर्गन्ध्य शोषहृत् ॥८॥

अथ मुसुकदाना।] लता कस्तूरिका तिक्ता स्वाद्वी वृष्या हि
मा लघुः॥ चक्षुष्या छेदिनी श्लेष्म तृष्णावस्त्यास्य
रोगहृत् ॥९॥

भा० कामरु में होनेवाली काली और नैपालकी नीली होती है। काश्मीर दे
श में उत्पन्न होनेवाली कस्तूरी अधम कही गई है ॥७॥ कस्तूरी कडुवी ति-
क्त क्षार उष्ण शुक्रको करनेवाली भारी होती है ॥ और कफ वात विष वम
न शीत दुर्गंधिता शोष इनकी नाशक भी है ॥८॥ [अनन्तर मुस्कदाना।]
कस्तूरिका लता तिक्त मधुर पुष्ट शीतल हलकी होती है ॥ चक्षुको हित छे
दन करनेवाली कफ तृषा और पेडू मुखके रोग की नाशक है ॥९॥ -

अथ गौरासारवभेद आंडी इति लोके।] गन्धमार्ज्जार
वीर्य्यन्तु वीर्य्यकृत् कफवात हृत्॥ कण्डू कुष्ठ हरं
नेत्र्यं सुगन्धं स्वेद गन्ध नुत् ॥१०॥ [अथ चन्दनः।]
श्रीखण्डं चन्दनं नस्त्री भद्रः श्रीस्तेल पर्णिकः॥ ग
न्धसारो मलयज स्तथा चन्द्र द्युति श्च सः॥११॥

भा० अनन्तर गौरासारवभेद आंडी इस प्रकार लोकमें कहते हैं ॥ गन्धमा-
र्जार वीर्य तो वीर्य बल करने वाला कफ वातका नाशक है॥ और कण्डू कु
ष्ठ इनका नाशक नेत्रका हित सुगंध पसीना की गन्धको नाश करनेवाला है
॥१०॥ इसको बिल्लीलोटन भी कहते हैं ॥ अनन्तर चंदन श्रीखण्ड च
न्दन भद्र श्रीतेलपर्णिक। गंधसार मलयज तथा चंद्रद्युति ये सब चंदन
के नाम हैं ॥११॥

स्वादे तिक्तं कषे पीतं छेदे रक्तं तनौ सितम्॥ ग्रन्थि
कोटरसंयुक्तं चन्दनं श्रेष्ठ मुच्यते ॥१२॥ चन्दनं शीत-

लं रूक्षं तिक्त माह्लादनं लघु ॥ श्रम शोष विषश्लेष्म तृष्णा
पित्तास्र दाह नुत् ॥ २३ ॥

भा० स्वादु में तिक्त घिसनेमें पीत और काटने में लाल और शरीरके लगाने में श्वेत होताहै ॥ तथा गांठ और खोड़ से युक्त चंदन श्रेष्ठहै ॥ २३॥ चन्दन शीतल रूक्ष तिक्त हर्षको देने वालाहोताहै और हलकाहै ॥ और श्रम शोष विषकफ तृषा रक्त पित्त दाह इनका नाशक है ॥ २३ ॥

अथ पीत चन्दनम् ।] (कलम्बक इति लोके ।)
कालीयकन्तु कालीयं पीताभं हरिचन्दनम् ॥ हरि
प्रियं कालसारं तथा कालानु सार्य्यकम् ॥ २४ ॥ काली
यकं रक्त गुणं विशेषा द्व्यङ्ग नाशनम् ॥

अथ रक्तचन्दनम् ॥ रक्त चन्दन माख्यातं रक्ताङ्गं क्षुद्र
चन्दनम् ॥ तिलपर्णं रक्तसारं तत् प्रवालफलं स्मृत
म् ॥ २५ ॥ रक्तं शीतं गुरु स्वादु छर्दि तृष्णा पित्त हृत् ॥
तिक्तं नेत्र हितं वृष्यं ज्वर व्रण विषापहम् ॥ २६ ॥

भा० अनन्तर पीतचन्दन । कलम्बक इसप्रकार लोकमें कहतेहैं ॥ कालीयक कालीय पीताभ हरिचन्दन ॥ हरिप्रिय काल सार तथा कालानुसार्य्यक । येह पीत चन्दनके नामहैं ॥ २४ ॥ पीत चन्दन रक्तचन्दन के समान गुण मेंहै विशेष करके मुखपर कीझांईको नाश करताहै ॥ अनन्तर रक्त चंदन । रक्त चन्दन रक्तांग क्षुद्रचंदन कहा गयाहै ॥ और तिलपर्ण रक्तसार प्रवालफल कहागयाहै ॥ २५ ॥ रक्त चंदन लाल शीतल भारी मधुर वमन तृषा रक्त पित्त इनका नाशक है ॥ और तिक्त नेत्रकाहित वृष्य होताहै ॥ तथा ज्वर व्रण विष इनका नाशक भीहै ॥ २६ ॥

[अथ बकम् ।] पतङ्गं रक्त सारञ्च सुरङ्गं रञ्जनं तथा ॥ प
ट्टरञ्जक माख्यातं पत्तूरञ्च कुचन्दनम् ॥ २७ ॥

अनन्तर पतंग के नाम और गुण कहतेहैं ॥ रक्तसार पतंग सुरंग रञ्जन ॥ पट्टरंजक कहागयाहैं। और पत्तूर कुचन्दन। येह भी पतंग के नामहैं ॥ येह चन्दन की क़िस्म से होता है ॥ १७॥

पतङ्गं मधुरं शीतं पित्तश्लेष्म व्रणास्रनुत् ॥ हरिचंदनवद्वेद्यं विशेषाद्दाह नाशनम् ॥ १८॥ चन्दनानि तु सर्वाणि सदृशानि रसादिभिः ॥ गन्धेन तु विशेषोऽस्ति पूर्वः श्रेष्ठ तमो गुणैः ॥ १९॥

भा० पतंग मधुर शीतल पित्त कफ व्रण रक्त इनका नाशक ॥ और हरीचन्दन के सदृश जाननां चाहिये और विशेषकरके दाह का नाशक है ॥ १८॥ सब चंदन रसादिकरके समानहोतेहैं ॥ और गंधसे विशेषहै उनमें पहले गुणों से श्रेष्ठहोतेहैं ॥ १९॥ [अथ अगर।]

(कृष्णागुरु अगुरु सन।) अगुरु प्रवरं लोहं राजार्हं योगजं तथा ॥ वंशिकं कृमिजं चापि कृमिजग्ध मनार्यकम् ॥ २०॥ अगुरूष्णं कटु त्वच्यं तिक्तं तीक्ष्णञ्च पित्तलम् ॥ लघु कर्णाक्षिरोगघ्नं शीत वात कफ प्रणुत् ॥ ॥ २१॥ कृष्णं गुणाधिकं तत्तु लोहवद्वारि मज्जति ॥ अगुरु प्रभवः स्नेहः कृष्णागुरु समस्मृतः ॥ २२॥

मल्लदारु द्रुकिलिमं कृत्रिमं सुरभूरुहः ॥ २३ ॥ देवदारु लघु स्निग्धं तिक्तोष्णं कटु पाकि च ॥ विबन्धाध्मानशोथाम तन्द्राहिक्का ज्वरास्रजित् ॥ २४ ॥ प्रमेह पीनस श्लेष्म कास कण्डू समीरनुत् ॥

[अथ धूप सरलः।] सरलः पीतवृक्षः स्यात्तथा सुरभिदारुकः ॥ सरसो मधुरस्तिक्तो कटु पाकरसो लघुः ॥ २५ ॥ स्निग्धोष्णः कर्णकण्ठाक्षिरोगरक्षोहरः स्मृतः ॥ कफानिल स्वेददाह कास मूर्च्छा व्रणापहः ॥ २६ ॥

भा० अनन्तर देवदारु के नाम और गुण कहतेहैं ॥ देवदारु, दारुभद्र, दारवी, इन्द्रदारु ॥ मल्लदारु, द्रुकिलिम कृत्रिम सुरभूरुह, येह देवदारु के नामहैं ॥ २३ ॥ देवदारु हलका चिकना तिक्त उष्ण पाक में कटु होताहै । विबंध अफ्फ़ान सूजन तंद्रा हिचकी ज्वर रक्त इनको जीतनेवालाहै ॥ २४ ॥ और प्रमेह पीनस कफ कास खुजली वात इनका भी नाशकहै ॥ दूसरी क़िसम के देवदारु के नाम और गुण ॥ सरल पीतवृक्ष सुरभि दारुक येह दूसरी क़िस्म के देवदारु के नामहैं ॥ देवदारु मधुर तिक्त पाकमें कड़ रस होताहै ॥ २५ ॥ और स्निग्ध उष्ण तथा कर्ण कंठ नेत्ररोग और राक्षस इनका नाशक कहागयाहै ॥ और कफ पसीना दाह कास मूर्च्छा व्रण इनका भी नाशक है ॥ २६ ॥

[अथ तगर।]

कालानुसार्य्यं तगरं कुटिलं नघुषं नतम् ॥ अपरं पिण्डतगरं दण्ड हस्ती च वर्हिणम् ॥ २७ ॥ तगर द्वय मुष्णं स्यात् स्वादु स्निग्धं लघु स्मृतम् ॥ विषापस्मार शूलाक्षि रोगदोष त्रयापहम् ॥ २८ ॥

भा० अनन्तर तगरको कहतेहैं ॥ कालानुसार्य नगर कुटिल नघुष नत । येह तगर के नामहैं ॥ और दूसरे तगर को पिण्डतगर दण्ड हस्तिवर्हिण कहतेहैं ॥ २७ ॥ दोनों तगर गर्महैं और मधुर चिकने हलके कहे

गयेहैं ॥ तथा विष मिरगी मूल नेत्ररोग और त्रिदोष इनकानाशकहैं ॥२८॥

अथ पद्माक।] पद्मकं पद्मगन्धि स्यात्तथा पद्माह्वयं स्मृतम् ॥ पद्मकन्तु कषायं तिक्तं शीतलं वातलं लघु ॥२९॥ वीसर्प दाह विस्फोट कुष्ठ श्लेष्मास्र पित्तनुत् ॥ गर्भ संस्थापनं रुच्यं वमिव्रण तृषा भ्रमान् ॥३०॥

अथ गुग्गुलुः।] गुग्गुलुर्देव धूपश्च जटायुः कौशिकःपुरः ॥कुलाल्लूखलकं क्लीवे महीषाक्षः पलङ्कषः ॥ ३१॥ महीषाक्षो महानीलः कुमुदः पद्म इत्यपि ॥ हिरण्यः पञ्चमो ज्ञेयो गुग्गुलोः पञ्च जातयः ॥ ३२॥ भृङ्गाञ्जन सवर्णस्तु महिषाक्ष इति स्मृतः ॥ महानीलस्तु विज्ञेयः स्वनाम सम लक्षणः ॥ ३३॥

भा० अनन्तर पद्मकाष्ठ को कहते हैं ॥ पद्मक पद्मगन्धि तथा पद्माह्वय ये पद्मकाष्ठ के नाम कहे हैं ॥ पद्मकाष्ठ कसैला तिक्त शीतल वातकोक रनेवाला हलका है ॥ २९ ॥ और विसर्प दाह विस्फोट कुष्ठ कफ रक्तपित्त इनका नाशक भी है ॥ तथा गर्भको करनेवाला रुचिके हित तथा वमन व्रण तृषा इनका भी नाशक होताहै ॥ ३०॥

अनन्तर गूगलके नाम और गुण कहते हैं ॥ गुग्गुलु देवधूप जटायु कौशिक पुर । कुलालु खलक येह गूगलके नाम नपुंसक लिंगमें कहेहैं ॥ और महिषाक्ष पलंकष येहभी गूगलके नामहैं ॥३१॥ महिषाक्ष महानील कुमुद पद्म ॥ और पांचवा हिरण्य भी येह गूगल पांचजातहैं ॥ ३२॥ भौंरे के सदृश स्याह रंग वाला महिषाक्ष कहागया है ॥ औरमहानील अपने नाम के समान लक्षण वाला जानना चाहिये ॥ ३३॥

कुमुदः कुमुदाभः स्यात् पद्मो माणिक्य सन्निभः ॥ हिरण्याक्षस्तु हेमाभः पञ्चानां लिङ्गमीरितम् ॥ ३४॥

महिषाक्षो महानीलो गजेन्द्राणां हितो शुभौ॥ हया
नां कुमुदः पद्मः स्वस्त्यारोग्य करौ परौ ॥ ३५॥ वि
शेषेण मनुष्याणां कनकः परिकीर्त्तितः ॥ कदाचि
न्महिषात्तश्च यतःकैश्चिन्नृणामपि ॥ ३६॥ गुग्गुलु
र्विशदस्तिक्तो वीर्य्योष्णः पित्तलः सरः॥ कषायः
कटुकः पाके कटू रूक्षो लघुः परः॥ ३७॥ भग्न स
न्धान कृद् वृष्यः सूक्ष्मः स्वर्यो रसायनः॥ दीपनः
पिच्छिलो बल्यः कफवात व्रणापची॥ ३८॥

भा० और कुमुद स्वेत कमल के समान तथा पद्म माणिक के सदृश होता है॥ हिरण्याक्ष सुवर्ण के सदृश होताहै। इस प्रकार पांचों का लक्षण कहाहै॥ ३४॥ महिषाक्ष और महानील येह दोनों गजेन्द्रों के हित होते हैं। और घोड़ों को कुमुद तथा पद्म येह दोनों अत्यन्त अरोग्य करने वाले हैं॥ ३५॥ विशेष करके मनुष्यों को कनक हितहै ऐसा कहा गयाहै। कदाचित् मनुष्यों को भी महिषाक्ष हित होता है॥ ३६॥ गूगल विषद तिक्त वीर्य्य में उष्ण पित्तको करनेवाला सर॥ कसैला कडुवा और पाक में कटु रूखा और बहुत हलका होता है॥ ३७॥ टूटे हाड़ को जोड़ने वाला पुष्ट सूक्ष्म स्वरको अच्छा करनेवाला रसायन॥ दीपन चेपदार बलको करनेवाला होताहै और कफवात व्रण अपची॥ ३८॥

मेदो मेहाश्म वातांश्च क्लेद कुष्ठाममारुतान्॥ पिड़ि
का ग्रन्थि शोफार्शः गण्डमाला कृमीन् जयेत्॥ ३९॥
माधुर्य्याच्छमयेद्वातं कषायत्वाच्च पित्तहा॥ ति
क्तत्वात् कफजित्तेन गुग्गुलुः सर्व्वदोषहा ॥४०॥
स नवो बृंहणो वृष्यः पुराणस्त्वति लेखनः॥ स्नि
ग्धः काञ्चन सङ्काशः पक्व जम्बू फलोपमः॥४१॥

भा० मेद प्रमेह पथरी वात क्लेद कुष्ट आमवात इनको तथापिंडिका ग्रन्थि सूजन ववासीर गंडमाल कृमि इनको जीतताहै ॥ ३९ ॥ मधुरता से वातको शमन करताहै । कषैले पनसे पित्त नाशक है । और तिक्त पनेसे कफको जीतनेवालाहै ॥ उसकारके गूगल सर्व्वदोषनाशक कहा गयाहै ॥ ४० ॥ वह गूगल नया धातुको बढानेवाला पुष्ट होताहै । और पुराना बहुत लेखन होताहै । चिकना सुवर्ण के सदृश अथवा पके जामन के सदृश होताहै ॥ ४१ ॥

नूतनो गुग्गुलुः प्रोक्तः सुगन्धिर्य्यस्तु पिच्छिलः ॥ शुष्को दुर्गन्धकश्चैव त्यक्त प्रकृति वर्णकः ॥ ४२ ॥ पुराणः स तु विज्ञेयः गुग्गुलु वीर्य्य वर्जितः ॥ अम्लं तीक्ष्णमजीर्णञ्च व्यवायं श्रम मातपम् ॥ ४३ ॥ मद्यं रोषन्त्यजेत् सम्यग्गुणार्थी पुर सेवकः ॥

भा० नया गूगल सुगन्ध चेपदार कहागयाहै । शुष्क दुर्गंधके करनेवाला तथा स्वभाविक वर्णसे रहित ॥ ४२ ॥ पुराना वोह जानना चाहिये जो गूगल वीर्य्य से रहितहै ॥ खटाई मिर्च अजीर्ण मैथुन श्रम धूप ॥ ४३ ॥ मद्य क्रोध इनको गूगलका सेवन करने वाला गुणार्थी त्याग देवे ॥

[अथ सरलनिर्य्यास गुग्गुलुः ।]

श्रीवासः सरलस्रावः श्रीवेष्टो वृक्षधूपकः ॥ श्रीवासो मधुरस्तिक्तः स्निग्धोष्णस्तुवरः सरः ॥ ४४ ॥ पित्तलो वात मूर्द्धाक्षि स्वर रोग कफापहः ॥ रक्षोघ्नः स्वेद दौर्गन्ध्यः यूकाकण्डू व्रण प्रणुत् ॥ ४५ ॥

भा० अनन्तर अर्थात देवदारुका किसम उसके गोंदको गूगल कहते हैं ॥ श्रीवास सरल स्राव श्रीवेष्ट वृक्षधूपक । येह सरलके नाम है ॥ सरल मधुर तिक्त स्निग्ध उष्ण कसैला सर होता है ॥ ४४ ॥ और पित्तको करनेवाला तथा वात सिर नेत्र स्वर इनके रोग और कफ इनका नाशक

है। और रालसों का नाशक. तथा पसीना दुर्गन्धता जूआं खुजली घाव इन का भी नाशक है ॥ ५५॥

[अथ राल।]

रालस्तु शालनिर्य्यास स्तथा सर्ज्जरसः स्मृतः ॥ देव धूपो यक्षधूप स्तथा सर्व रसश्च सः ॥ ५६ ॥ रालो हिमो गुरु स्तिक्तः कषायो ग्राहको हरेत् ॥ दोषा स्त्र स्वेद वीसर्प ज्वर व्रण विपादिकाः ॥ ५७ ॥ ग्रह भग्नाग्निदग्धाश्च शूलातीसार नाशनः ॥

(अथ कुन्दुरु सुगन्ध द्रव्य एक वृक्षकी निर्य्यासः) कुन्दुरुस्तु मुकुन्दः स्यात् सुगन्धः कुन्द इत्यपि ॥ कुन्दुरु र्मधुर स्तिक्त स्तीक्ष्ण स्त्वच्यः कटु र्हरेत् ॥ ५८ ॥ ज्वर स्वेद ग्रहालक्ष्मी मुखरोग कफाऽनिलान् ॥

भा० अनन्तर रालको कहते हैं ॥ राल साल निर्यास तथा सर्ज्जरस । कहा गया है । और देवधूप यक्षधूप तथा सर्जरस येह रालके नाम हैं ॥ ५६ ॥ राल शीतल भारी तिक्त कसेली ग्राहक है ॥ और दोष रक्त पसीना विसर्प ज्वर घाव विपादिक इनको नाश करती है। और शूल अतीसार यह भी नाश करती है। ग्रह और टूटे हाड़ को तथा आगसे जले हुवेको नाश करती है ॥ अनन्तर कुन्दरु नाम सुगन्धद्रव्य सोना दरख्त का गोंद है उसके नाम और गुण कहते हैं ॥ कुन्दुरु मुकुंद सुगंध कुंद । येह कुन्दुरु के नाम हैं ॥ कुन्दुरु मधुर तिक्त तीक्ष्ण त्वचाके हित और कटु होता है ॥ ५८ ॥ और ज्वर स्वेद ग्रह अलक्ष्मी मुखरोग कफ वायु इनको नाश करता है ॥

[अथ शिलारसः।] सिह्लकस्तु तुरुष्कः स्याद्यतो यवन देशजः कपितैलञ्च संख्यातो स्तथा च कपिनामकः ॥ ५९ ॥ सिल्हकः कटुकः स्वादुः स्निग्धोष्णः शुक्रका-

निकृत् ॥ वृष्यः कराठ्यः स्वेद कुष्ठ ज्वर दाह ग्रहा पहः ॥५०

अथ जायफल ।] जातीफलं जातिकोशं मालतीफलमित्य पि ॥ जातीफलं रसे तिक्तं तीक्ष्णोष्णं रोचनं लघु ॥५१॥ कटुकं दीपनं ग्राहि स्वर्य्यं श्लेष्मानिलापहम् ॥ निहन्ति मुखवैरस्यं मद्य दौर्गन्ध्य कृष्णताः ॥५२॥ क्रिमि कास वमि श्वास शोष पीनस हृद्रुजः ॥

भा॰ अनन्तर शिलारसको कहते हैं ॥ सिल्हक तुरुष्क यवनदेशज ॥ कपिल तथा कपिनामक येह शिलारस के नाम हैं ॥४९॥ शिलारस कडुवा मधुर चिकना शुक्र कान्ति कोकरनेवाला पुष्ट ॥ कंठ के हित और पसीना कुष्ठ ज्वर दाह ग्रह इनका नाशक है ॥५०॥

अनन्तर जायफल के नाम गुण कहते हैं ॥ जातिफल जातिकोश मालती फल । येह जायफल के नाम हैं ॥ जायफल रसमें तिक्त तीक्ष्ण उष्ण रुचिको करने वाला हलका ॥५१॥ कडुवा दीपन ग्राही स्वरको अच्छाकरनेवाला ॥ कफ वात का नाशक है । और मुखकी विरसता मद्यकी दुर्गन्धता और कृष्णता इन का भीनाशक है ॥५२॥ तथा क्रिमि कास वमन श्वास शोष पीनस और हृद की पीडा । इनको भी नाश करता है ॥

अथ जावत्री ।] जातीफलस्य त्वक् प्रोक्ता जातीपत्री भिषग्वरैः ॥ जातिपत्री लघुः स्वादुः कटूष्णा रुचि वर्णकृत् ॥ ५३॥ कफ कास वमि श्वास तृष्णा क्रिमि विषापहा ॥

अथ लवङ्गः ।] लवङ्गं देवकुसुमं श्रीसंज्ञं श्रीप्रसूनकम् ॥ लवङ्गं कटुकं तिक्तं लघु नेत्र हितं हिमम् ॥५४॥ दीपनं पाचनं रुच्यं कफ पित्तास्र नाशकृत् ॥ तृष्णां छर्दिं तथाध्मानं शूलमाशु विनाशयेत् ॥५५॥ कासं श्वासञ्च हिक्काञ्च क्षयं क्षपयति ध्रुवम् ॥

भा० अनन्तर जावित्री के नाम और गुण कहते हैं ॥ वैद्य वरोंने जायफल की छाल को जावित्री कहा है ॥ जावित्री हलकी मधुर कडुवी उष्ण रुचि वर्ण इन को करनेवाली है ॥ ५३ ॥ कफ कास वमन श्वास तृषा कृमि विष इनकी नाश कही ॥ [अनन्तर लवङ्ग के नाम और गुण कहते हैं ॥ लवंग देवकुसुम श्री संज्ञा श्रीप्रसूनक येह लौंग के नाम हैं ॥ लौंग कडुवी तिक्त हलकी नेत्र के हित शीतल है ॥ ५४ ॥ दीपन पाचन रुचि के देनेवाली कफ रक्त पित्त इनके नाश करनेवाली है ॥ और तृषा वमन पेट फूलना शूल इनको शीघ्र नाश करती है ॥५५॥ और कास श्वास हिचकी क्षय इनको भी नाश करती है ॥

[अथ इलायची पूरवी ।]

एला स्थूला च बहुला पृथ्वीका त्रिपुटापि च ॥ भद्रैला बृहदेला च चन्द्रबाला च निष्कुटिः ॥ ५६ ॥ स्थूलैला कटुका पाके रसे चानलकृल्लघुः ॥ रूक्षोष्णा श्लेष्मपित्तास्र कण्डू श्वास तृषा पहा ॥ ५७ ॥ हृल्लास विष बस्त्यास्य शिरो रुग् वमि कास नुत् ॥ ५८ ॥

अथ एला गुजराती ।] सूक्ष्मोपकुञ्चिका तुच्छा कोरङ्गी द्राविडी त्रुटिः ॥ एला सूक्ष्मा कफ श्वास कासार्शो मूत्र कृच्छ्र हृत् ॥ ५९ ॥ रसे तु कटुका शीता लघ्वी वात हरी मता ॥

छोटी इलायची कफ श्वास कास ववासीर मूत्रकृच्छ्र इनको नाश करती है ॥ ५९॥ रसमें कड़वी शीतल हलकी वातकी नाशक कही गई है ॥

अथ त्वच।] त्वक् पत्रञ्च वराङ्गं स्याद् भृङ्गं चोदन्तथोत्कटम् ॥ त्वचं लघूष्णं कटुकं स्वादु तिक्तञ्च रूक्षकम् ॥ ६०॥ पित्तलं कफवातघ्नं कण्ड्वामारुचिनाशनम् ॥ हृद्बस्तिरोगवातार्शः कृमिपीनसशुक्रहृत् ॥ ६१ ॥

दालचीनी।] त्वक् स्वादीतु तनुत्वक् स्यात्तथा दारुसिता मता ॥

अनन्तर दारचीनी के नाम और गुण कहतेहैं ॥ त्वक् पत्र, वरान्द भृङ्ग उदन्त उत्कट येह दारचीनीके नामहैं ॥ दारचीनी हलकी गर्म कड़वी मधुर तिक्त रूखी ॥ ६०॥ पित्तको उत्पन्न करनेवाली कफवात की नाशक और खुजली आम अरुचि इनकी नाशकहै ॥ और हृदय पेड़ू इनका रोग और वात ववासीर कृमि पीनस शुक्र इनकी नाशक है ॥ ६१॥ अनन्तर कलमी दाल चीनी को कहते हैं ॥ त्वक् तनुत्वक् तथा दारुसीता येह कलमी दारचीनी के नाम हैं ॥

उक्ता दारुसिता स्वाद्वी तिक्ता चानिलपित्तहृत् ॥ सुरभिः शुक्रला वर्ण्या मुखशोषतृषापहा ॥ ६२॥

अथ पत्रकम्।] पत्रन्तमालपत्रञ्च तथा स्यात्पत्रनामकम् ॥ पत्रकं मधुरं किञ्चित्तीक्ष्णोष्णं पिच्छिलं लघु ॥ ६३॥ निहन्ति कफवातार्शो हृल्लासारुचिपीनसान् ॥

भा० दारचीनी मधुर और तिक्त तथा वात पित्तको नाश करनेवाली कही गई है ॥ ६२॥ सुगन्धयुक्त शुक्रको बढ़ानेवाली रंगको अच्छा करनेवाली है ॥ और मुख शोष तृषा इनकी नाशकहै ॥

अनन्तर पत्रक ॥ पत्र तमालपत्र तथा पत्रनामक येह तेजपात के नाम हैं ॥ तेजपात मधुर कुछ तीक्ष्ण उष्ण चेपदार हलका होता है ॥ ६३॥ और कफ वात

ववासीर मनली अरुचि पीनस रोग इनको नाश करता है ॥

अथ नागकेशर :।] नागपुष्पः स्मृतो नागः केशरो नाग केशरः ॥ चाम्पेयो नागकिञ्जल्कः कथितः काञ्च नाह्वयः ॥ ६४ ॥ अयं पुष्पेनु क्लीवे ।] नागपुष्पं कषायोष्णं रूक्षं लघ्वाम पाचनम् ॥ ज्वर कण्डू तृषा स्वेद च्छर्दि हृल्लास नाशनम् ॥ ६५ ॥ दौर्गन्ध्य कुष्ठ वीसर्प कफ पित्त विषापहम् ॥

भा० अनन्तर नाग केसर ॥ नागपुष्प नाग केशर नागकेशर चाम्पेय नाग किंजल्क काञ्चनाह्वय येह नागकेशर के नाम हैं ॥ ६४ ॥ येह पुष्प मे नपुंसक है ॥ नागकेशर कसैला गर्म रूखा हलका आमका पाचन है ॥ और खुजली तृषा पसीना वमन मनली इनको नाश करता है ॥ ६५ ॥ और दुर्गन्धता कुष्ट विसर्प कफ पित्त विष इनका नाशक है ॥

अथ त्रिजात चातुर्जातके ।] त्वगेला पत्रकैस्तुल्यैः स्त्रिसुगन्धि त्रिजातकम् ॥ नागकेशर संयुक्तं चातुर्जातक मुच्यते ॥ ६६ ॥ तद् द्वयं रेचनं रूक्षं तीक्ष्णोष्णं मुख गन्धहृत् ॥ लघु पित्ताग्नि कृद्वर्ण्यं कफ वात विषाप हम् ॥ ६७ ॥

भा० अनन्तर त्रिजात चतुर्जातक ॥ दारचीनी इलायची पत्रक इनके समान भागको त्रिसुगन्धि त्रिजातक कहते हैं ॥ तथा नागकेशर से संयुक्त हुवा चतुर्जातक कहाहै ॥ ६६ ॥ वोह दोनों रेचन रूक्ष तीक्ष्ण उष्ण और मुखकी दुर्गन्धता के नाशक हैं ॥ और लघु पित्त अग्निको करनेवाला वर्णको अच्छा करने वाला कफ वात विषका नाशक है ॥ ६७ ॥

अथ कुङ्कुमम् ।] कुङ्कुमं घसृणं रक्तं काश्मीरं पीतकं वरम् ॥ सङ्कोचं पिशुनन्धीरं वाह्लीकं शोणिताभिधम् ॥ ६८ ॥ काश्मीर देशजे क्षेत्रे कुङ्कुमं यद्भवद्धि तत् ॥

सूक्ष्म केशर मारक्तं पद्मगन्धि तदुत्तमम् ॥६९॥ वाह्लीक देश सञ्जातं कुङ्कुमं पाण्डु रम्मतम् ॥ केतकी गन्ध युक्तन्तन्मध्यमं सूक्ष्मकेशरम् ॥७०॥ कुङ्कुमस्पारसीकेयत् मधुगन्धि तदीरितम् ॥ ईषत् पाण्डुर वर्णं तद धमं स्थूल केशरम् ॥७१॥ कुङ्कुमं कटुकं स्निग्धं शिरोरुग् व्रण जन्तु जित् ॥ तिक्तं वमिहरं वर्ण्यं व्यङ्गदोष त्रयापहम् ॥७२॥

भा॰ अनन्तर केसर । कुंकुम घसृण रक्त काश्मीर पीतक वर ॥ संकोच, पिशुन धीर वाल्हीक शोणिताभिध । येह केसर के नाम हैं ॥ ६८॥ काश्मीर देशमें जो केशर होता है वोह । सूक्ष्म केशर रक्तवर्ण पद्मके सदृश गन्धवाला होताहै ॥ वोह उत्तम है ॥ ६९ ॥ वाल्हीक देश अर्थात् वलख देशमें उत्पन्न हुआ केशर श्वेत होता है । वोह केवडे के गन्धके समान गन्धवाला सूक्ष्म केशर होताहै वोह मध्यम है ॥७०॥ जो केशर पारसमें होता है उसको मधुगन्धि कहा गयाहै । कुछ श्वेत वर्ण और स्थूल केशर होता है । वोह मध्यम है ॥७१ केशर कडुवा चिकना सिरके रोग जखम कृमि इनको जीतने वालाहै ॥ और तिक्त वमनका नाशक रंगको अच्छा करनेवाला और झांई तीनोंदोष इनका नाशक है ॥७२॥

[अथ गोरोचना।]

गोरोचना तु मङ्गल्या वन्द्या गौरी च रोचना ॥ गोरोचना हिमा तिक्ता वश्या मङ्गल कान्तिदा ॥७३॥ विषालक्ष्मी ग्रहोन्माद गर्भस्राव क्षतास्र हृत् ॥

अथ नख नखी गन्धद्रव्यम् ।] नखं व्याघ्रनखं व्याघ्रा । युधन्त चक्रकारकम् ॥ नखं स्वल्पं नखी प्रोक्ता हनु र्हट्ट विलासिनी ॥ ७४ ॥ नख द्रव्य ग्रह श्लेष्म वात

स्र ज्वर कुष्ठ हृत् ॥ लघूष्णं शुक्रलं वर्ण्यं स्वादु व्रण विषापहम् ॥ ७५॥ अलक्ष्मी मुख दौर्गन्ध्य हृत्या कर सयो: कटु: ॥

भा० अनन्तर गोरोचन।] गोरोचना मंगल्या वन्द्या गौरी रोचना येह गोरोचन के नामहैं ॥ गोरोचन शीतल तिक्त वशकरनेवाला और मंगल और कांति इनको देने वालाहै ॥७३॥ तथा विष अलक्ष्मी ग्रह उन्माद गर्भश्राव क्षत रक्त इनकों दूर करनेवाला है ॥ [अनन्तर नख नखी सुगन्ध द्रव्य। नख व्याघ्रनख व्याघ्रायुध चक्रकारक ॥ छोटे नखकोनखी और हनु हट्ट विलासिनी कहाहै ॥ ७४॥ नख द्रव्य यस कफ वात रक्त ज्वर कुष्ठ इनका नाशक है ॥ हलका शुक्रको उत्पन्न करनेवाला वर्णको अच्छा करनेवाला मधुर जखम तथा विष इनका नाशकहै ॥७५॥ और अलक्ष्मी मुखकी दुर्गन्धि इनकी नाशकाहै तथा पाक और रसमें कटु होता है ॥

अथ सुगन्धवाला।] वालं ह्रीवेर बर्हिष्ठो दीच्यं केशाम्बु नाम च ॥ वालकं शीतलं रूक्षं लघु दीपन पाचनम् ॥ ७६ ॥ हृल्लासा रुचि वीसर्प हृद्रोगा मातिसारजित् ॥

अथ वीरणम्।] स्याद् वीरणं वीर तरु वीरञ्च बहु मूलकम् ॥ वीरणम्पाचनं शीतं वान्ति हृल्लघु तिक्तकम् ॥ ७७ ॥ स्तम्भनं ज्वर नुद् वान्ति मदजित् कफ पित्तहृत्। ॥ तृष्णा स्रविष वीसर्प कृच्छ्र दाह व्रणापहम् ॥७८॥

भा० अनन्तर सुगन्धवाला ॥ वाल ह्रीवेर बर्हिष्ठ उदीच्य केश अम्बुनाम येह सुगन्धवाला के नाम हैं ॥ सुगन्ध वाला शीतल रूखा दीपन हलका पाचन ॥७६॥ और मतली अरुचि विसर्प हृदरोग आमातिसार इनकोदूर करनेवालाहै ॥ [अनन्तर वीरण अर्थात् जिसकी जड़ खसहै ॥ वीरण वीरतरु वीर बहुमूलक येह वीरणके नामहैं ॥ वीरण पाचन शीतल वमन इनका नाशक हलका तिक्त है ॥७७॥ और स्तंभन ज्वरका नाशक भ्रान्ति मद

इनका दूर करनेवाला। कफ पित का नाशक। और तृषा रक्त विष विसर्प मूत्र कृच्छ्र दाह व्रण इनका नाशक है ॥७८॥

[अथ उशीर।]

वीरणास्यतु मूलंस्या दुशीरं नलदञ्च तत् ॥ अमृणालञ्च सेव्यञ्च समगन्धिक मित्यपि ॥७९॥ उशीरम्पाचनं शीतं स्तम्भनं लघु तिक्तकम् ॥ मधुरं ज्वर हृद्वान्ति मदनुत् कफ पित्त हृत् ॥८०॥ तृष्णास्र विष वीसर्प दाह कृच्छ्र व्रणापहम् ॥

भा० अनन्तर खस वीरणा की जड़ खसहै उसको नलद उशीर ॥ अमृणाल सेव्य समगन्धिक भी कहतेहैं ॥७९॥ खस पाचन शीतल स्तम्भन हलका तिक्त मधुर ज्वर का नाशक वमन मदका नाशक और कफ पितका नाशक है ॥८०॥ और तृषा रक्त विष विसर्प दाह मूत्र कृच्छ्र व्रण इनका नाशक हैं ॥

अथ जटामांसी।] जटामांसी भूतजटा जटिला च तपस्विनी ॥ मांसी तिक्ता कषाया च मेध्या कान्तिबलप्रदा ॥८१॥ स्वाद्वी हिमा त्रिदोषास्र दाह वीसर्प कुष्ठ नुत् ॥ अथ भूरछरील इति लोके ॥] शैलेयन्तु शिलापुष्पं वृद्धकालानु सार्य्यकम् ॥ शैलेयं शीतलं हृद्यं कफ पित्त हरं लघु ॥८२॥ कण्डू कुष्ठाश्मरीदाह विषहृद्रुद रक्तहृत् ॥

भा० अनन्तर जटामांसी। जटामांसी भूतजटा जटिला तपस्विनी। ये जटामांसी के नामहैं ॥ जटामांसी तिक्त कसैली पवित्र कान्ति औरबल को देनेवाली ॥८१॥ मधुर शीतल त्रिदोष रक्त दाह विसर्प कुष्ट इन को नाशकहै ॥ [अनन्तर भूरछरील इस प्रकार लोकमें प्रसिद्ध है ॥ शैलेय शिलापुष्प वृद्धकालानुसार्य्यक येपालछड़ के

नामहैं ॥ बालछड़ शीतल हृदय का प्रिय कफ पित्तका नाशक हलका होता है ॥ ८२ ॥ तथा खुजली कुष्ठ पथरी दाह विष इनका नाशक और गुदाके रक्तका नाशक है ॥

मोथा नागर मोथा ।] मुस्तकं न स्त्रियां मुस्तं त्रिषु वारिद नामकम् ॥ कुरु विन्द अलंख्यातोऽपरः क्रोड़ कसेरु कः ॥ ८३ ॥ भद्र मुस्तञ्च गुन्द्राच तथा नागर मुस्तकः ॥ मुस्तं कटु हिमं ग्राहि तिक्तं दीपन पाचनम् ॥ ८४ ॥ कषायं कफ पित्तास्त्र तृट्ज्वरा रुचिजन्तुहृत ॥ अनूप देशे यज्जातं मुस्तकं तत् प्रशस्यते ॥ ८५ ॥ तत्रापि मुनिभिः प्रोक्तं वरं नागर मुस्तकम् ॥

भा० मोथा और नागर मोथा ।] मुस्तक मुस्त वारिद नामक कुरुविंद सख्यात दूसरा क्रोड कसेरुक ॥ ८३ ॥ भद्रमुस्त गुन्द्रा तथा नागर मुस्तक ये नागर मोथाके नामहैं ॥ मोथा कडुवा शीतल दस्तको रोकनेवाला तिक्त दीपन पाचन ॥ ८४ ॥ कसैला कफ रक्त पित्त तृषाज्वर अरुचि कृमि इनका नाशकहै ॥ अनुपदेशमें जो नागर मोथा उत्पन्न होताहै वोह अच्छाहै ॥ ८५ ॥ उसमें भी मुनियोंने नागर मोथा श्रेष्ठ कहाहै ॥ [अथ कर्चूर ।]

कर्चूरो वेधमुख्यश्च द्राविड़ः कल्पकः शटी ॥ कर्चूरो दीपनो रुच्यः कटुकस्तिक्त एव च ॥ ८६ ॥ सुगन्धिः कटुपाकः स्यात् कुष्ठार्शो व्रण कासनुत् ॥ उष्णो लघुः हरेच्छ्वासं गुल्म वात कफ कृमीन् ॥ ८७ ॥

भा० अनन्तर कचूर ॥ कचूर वेधमुख्य द्राविड़ कल्पक शटी येह कचूर के नामहैं ॥ कचूर दीपन रुचिको करनेवाला कडुवा और तिक्तभी होताहै ॥ ॥ ८६ ॥ सुगन्धि युक्त और पाकमें कटु होताहै । तथा कुष्ठ ववासीर घाव कास इनका नाशक ॥ और गरम हलका होताहै ॥ और श्वास वाय गोला वात कफ कृमि इनको नाश करता है ॥ ८७ ॥

अथ स्पृक्का।] मुरागन्ध कुटी दैत्या सुरभिः मालपर्णिका ॥
मुरानिका द्विया स्वाद्वी लध्वी पित्ता निलापहा ॥ ८८ ॥
ज्वरा सृग्भूत रक्षोघ्नी कुष्ठकास विनाशिनी ॥

अथ गन्ध पलाशी।] (सुगन्ध द्रव्यं कार्श्मीरे प्रसिद्धा।)
शठी पलाशी षड् ग्रन्था सुव्रता गन्ध मूलिका॥ गन्धा
रिका गन्ध वधू र्वधूः पृथु पलाशिका ॥ ८९ ॥ भवेद्गन्ध
पलाशी तु कषाया ग्राहिणी लघुः ॥ तिक्ता तीक्ष्णा च
कटुका उष्णास्य मलनाशिनी ॥ ९० ॥ शोथ कास व्रणा
श्वास शूल हिध्म ग्रहापहा ॥

भा० अनन्तर स्पृक्का ॥ मुरा गन्धकुटी दैत्या सुरभि मालपर्णीका। ह्येद्र
मरोड फलीके नामहैं। मरोड फली तिक्त शीतल मधुर हलकी और पि
त्त वातको नाश करनेवालीहै ॥ ८८ ॥ और ज्वर रक्त भूत राक्षस इनकी
नाशक तथा कुष्ठ कास इनकीभी नाशकहै ॥ [अनन्तर गन्ध पलाशी
॥ यह सुगन्ध द्रव्य काश्मीरमें प्रसिद्धहै। शठी कचूर के किस्मसे होताहै।
शठी पलाशी षड्ग्रन्था सुव्रता ॥ गन्धमूलिका गन्धारिका गन्धवधू
वधू पृथु पलाशिका। यह गन्धपलाशी के नाम हैं ॥ ८९ ॥ गन्धपलाशी
कसैली दस्तके रोकनेवाली हलकी होतीहै ॥ और तीखी कडवी उष्ण मु
खके मलके नाश करनेवाली ॥ ९० ॥ और सूजन कास घाव श्वास शूल
हिध्म ग्रह इनको नाशकहै ॥

[अथ प्रियङ्गु गन्ध प्रियङ्गु।
प्रियङ्गुः फलिनी कान्ता लता च महिलाह्वया ॥ गुन्द्रा
गुन्द्र फला श्यामा विष्वक्सेनाङ्गना प्रिया ॥ ९१ ॥
प्रियङ्गुः शीतला तिक्ता तुवरा निल पित्तहृत् ॥ रक्ता
तियोग दौर्गन्ध्य स्वेद दाह ज्वरापहा ॥ ९२ ॥ गुल्म
तृट् विषमोहघ्नी तद्वद् गन्ध प्रियङ्गुकाः ॥ तत्फलं

मधुरं रूक्षं कषायं शीतलं गुरु ॥ ९३ ॥ विबन्धाध्मा
न बलकृत् संग्राहि कफ पित्तजित् ॥

भा० अनन्तर प्रियङ्गु गन्ध प्रियङ्गु ॥ प्रियङ्गु फलनी कान्ता लता महिला ह्वया ॥ गुन्द्रा गुन्द्रफला श्यामा विष्वक्सेना अंगनाप्रिया ये प्रियंगु के नाम हैं ॥ ९१ ॥ प्रियंगु शीतल तिक्त कसेला वात पित्तका नाशक ॥ और रक्तका अतियोग दुर्गन्धता पसीना दाहज्वर इनका नाशक है ॥ ९२ ॥ और वायगोला तृषा विष मोह इनका नाशक है ॥ उसीके समान गन्ध प्रियङ्गु भी है ॥ उस्का फल मधुर रूक्ष कसेला शीतल भारी ॥ ९३ ॥ विबंध पेटका फूलना और बल इनको करनेवाला तथा मलका अवरोध करनेवाला तथा कफ पित्तका दूर करने वाला है ॥ [अथ रेणुका मरिच सदृशा ।]

रेणुका राजपुत्री च नन्दिनी कपिला द्विजा ॥ भस्म
गन्धा पाण्डु पुत्री स्मृता कौन्ती हरेणुका ॥ ९४ ॥ रेणुका
कटुका पाके तिक्तानुष्णा कटुर्लघुः ॥ पित्तला दीपनी
मेध्या पाचिनी गर्भ पातिनी ॥ ९५ ॥ बलास वात हृच्चै
व तृट् कण्डू विष दाह नुत् ॥

भा० अनन्तर रेणुका येह मिरच के सदृश सुगन्ध द्रव्य होता है ॥ रेणुका, राजपुत्री नन्दिनी कपिला द्विजा। भस्मगन्धा पाण्डुपुत्री कौन्तीय हरेणुका येह रेणुका के नाम हैं ॥ ९४ ॥ रेणुका पाक में कडुवी तिक्त उष्णा कटु हलकी होती है और पित्तको करनेवाली दीपन बुद्धि के बढ़ानेवाली पाचन गर्भ को गिरानेवाली है ॥ ९५ ॥ और कफ वात को करनेवाली तथा तृषा खुजली विषदाह इनकी नाशक है ॥ [अथ ठिवन ।]

ग्रन्थिपर्णं ग्रन्थिकञ्च काकपुच्छञ्च गुच्छकम् ॥
नीलपुष्पं सुगन्धञ्च कथितन्नील पर्णकम् ॥ ९६ ॥
ग्रन्थि पर्णन्तिक्त नीक्ष्णं कटूष्णन्दीपनं लघुः ॥ कफ
वात विष श्वास कण्डू दौर्गन्ध्य नाशनम् ॥ ९७ ॥

अनन्तर ठीवन। ग्रन्थिपर्णी ग्रन्थिक काकपुच्छ गुच्छक नीलपुष्प, सुगन्ध नैलपर्णक येह भठौरा के नामहैं ॥९६॥ भटौरा तिक्त तीक्ष्ण, कटु उष्ण दीपन लघुहै। और कफ वात विष श्वास कण्डु दुर्गन्धता इनका नाशकहै ॥९७॥

(अथ ग्रन्थिपर्णस्यैव भेद ईषत्सुगन्धः स्थौणेयं थनेर इतिलोके प्रसिद्धम्।)

स्थौणेयकं बर्हिबर्ह शुक्र बर्हञ्च कुकुरम्॥ शीर्षरोम शुकञ्चापि शुष्क पुष्पं शुकच्छदम्॥९८॥

स्थौणेयकंकटु स्वादु तिक्तं स्निग्धन्त्रिदोषनुत्॥ मेधा शुक्र करं रुच्यं रक्षोघ्नं ज्वरजन्तु जित्॥९९॥

हन्तिकुष्ठास्र तृड् दाह दौर्गन्ध्य तिलकालकान्॥

भा० अनन्तर भठौराही भेद कुछ सुगंधवाला स्थौणेय अर्थात् थनेर इस प्रकार लोकमें प्रसिद्ध है। स्थौणेयक बर्हिष शुक्र बर्ह कुक्कुर शीर्षरोम शुक शुकपुष्प शुकच्छद येह ककरौंदा के नाम हैं ॥९८॥ थनेर कडुवा मधुर तिक्त स्निग्ध त्रिदोषका नाशक ॥ औरबुद्धि शुक्र इनके करनेवाला रुचिकेहित राक्षसोंका नाशक और ज्वरतथा कृमि इनको भी दूर करनेवालाहै ॥९९॥ और कुष्ठ रक्त तृषा दाह दुर्गंधता तथा तिल कालक इनको नाश करता है ॥

[अथ ग्रन्थिपर्णस्यैव भेदः भटेउर इति नेपालदेशे भवति।] निशाचरो धनहरो कितवो गणहासकः॥

रोचको मधुरस्तिक्तः कटु पाके कटु लघुः॥२००॥

तीक्ष्णो हृद्यो हिमो हन्ति कुष्ठ कण्डु कफानिलान्॥

रक्षोश्री स्वेद मेदोऽस्त्रज्वरगन्ध विषव्रणान्॥२०१॥

भा० अनन्तर कुकुरौंदे के किसमें भठउर इस नामसे नैपाल देश में

होनाहै ॥ निशाचर धनहर कितव गणनाशक यह भटेउर के नाम हैं ॥ भटेउर रुचिकेकरनेवाला मधुर तिक्त पाकमें कटु और कटु तथा हलका होना है ॥२००॥ और तीक्ष्ण हृदय के प्रिय शीतल होना है ॥ तथा कुष्ट कण्डु कफ वात इनको नाश करताहै ॥ और राक्षस कान्ति पसीना मेद रक्तज्वर गंध विषव्रण इनको भी नाश करता है ॥२०१॥

[अथ भूम्यामलकी सदृश। तालीसः।] तालीस

मुक्तम्पत्राढ्यं धात्रीपत्रञ्च तत् स्मृतम् ॥ तालीसं

लघु तीक्ष्णोष्णं श्वासकासकफानिलान् ॥२०२॥

निहन्त्यरुचि गुल्मामवन्हिमान्द्यक्षयामयान् ॥

अथ कङ्कोलं सुगन्धद्रव्यम्।] सीतल चीनीति लोके।

कङ्कोलं कोलकम्प्रोक्तं तथा कोशफलं स्मृतम् ॥

कङ्कोलं लघु तीक्ष्णोष्णं तिक्तं हृद्यं रुचिप्रदम्।२०३।

आस्यदौर्गन्ध्यहृद्रोगकफवातामयान्ध्यहृत् ॥

भा० अनन्तर भूमि आंवले के सदृश तालीसपत्र होता है ॥ तालीस पत्राढ्य धात्रीपत्र उसको कहाहै ॥ तालीसपत्र हलका तीखा उष्ण श्वास कास कफ वात इनको नाश करता है ॥२०२॥ और अरुचि गुल्म अग्निमान्द्य क्षयरोग इनको भी दूर करताहै ॥ अनन्तर कङ्कोल सुगंध द्रव्य। जिसको लोकमें सीतल चीनी कहतेहैं ॥ कंकोल तथा कोशफल येह कंकोलके नाम हैं। कंकोल हलका तीखा उष्ण तिक्त हृदयकाप्रिय और रुचि इनको देनेवाला है ॥२०३॥ और मुखकी दुर्गन्धता हृद्रोग कफ वातरोग अन्धापन इनको नाशकरता है ॥

[अथ गन्धकोकिला।] गन्धमालती। स्निग्धोष्णा

कफहृत्तिक्ता सुगन्धा गन्धकोकिला ॥ गन्धको

किलया तुल्या विज्ञेया गन्धमालती ॥ २०४ ॥
[अथ लामज्जकमुशीरवत् पीतच्छवि तृण विशेषः।]
लामज्जकं सुनालं स्याद मृणालं लयं लघुः॥ इष्ट
का पथकं सेव्यं नलदञ्चा वदानकम् ॥ २०५ ॥ ला
मज्जकं हिमंतिक्तं लघुदोष त्रयास्त्रजित् ॥ त्वगा
मय स्वेद कृच्छ्र दाह पित्तास्त्र रोगनुत् ॥ २०६ ॥

भा० अनन्तर गन्धकोकिला और गन्धमालती को कहते हैं ॥ येह च मेली की क़िस्मसे सुगन्ध युक्त होती है ॥ स्निग्ध उष्ण कफको दूर करने वाली तिक्त सुगन्ध इस प्रकार गंधकोकिला होती है। और कोकिला के सदृश गन्धमालती को जानना चाहिये ॥ २०४ ॥ लघु
अनन्तर लामज्जक खसके सदृश पीली घास होती है ॥ लामज्जक सुनाल अमृणाल लय, येह लामज्जक के नाम हैं ॥ और इष्टिका पथक सेव्य नलद अवदानक येह भी लामज्जक के नाम हैं ॥ २०५ ॥ लामज्जक शीतल तिक्त हलकी त्रिदोष नाशक है ॥ और त्वचाके रोग पसीना मूत्रकृच्छ्र दाह रक्तपित्त इनकाभी नाशक है ॥ २०६ ॥

[अथ एलवालुकं कङ्कोल सदृशं कुष्ठगन्धि।] एलवा
लुकमैलेयं सुगन्धि हरिवालुकम्। एलवालुक
मेलालु कपित्थं पत्रमीरितम् ॥ २०७ ॥ एल्वालु क-
टुकं पाके कषायं शीतलं लघु ॥ हन्ति कण्डू व्र-
णच्छर्दि तृट् कासारुचि हृद्रुजः॥ २०८ ॥ बलास
विष पित्तास्त्र कुष्ठ मूत्र गद कृमीन् ॥

भा० अनन्तर एलवालुक येह सीतलचीनी के सदृश कूटके गन्धयुक्त होता है। इसको वालुकवाड़ी भी कहते हैं। एलवालुक, ऐलेय, सुगन्धि हरिवालुक एलवालुक एलालु कपित्थ पत्र येह एलवालुक के नाम हैं ॥ २०७ ॥ एलवालुक कडुवा पाकमें कसैला शीतल हलका

होताहै ॥ और खुजली घाव वमन तृषा कास अरुचि इनका नाशक ॥ २०८ ॥ और पीड़ा कफ विष पित्त रक्त कुष्ठ मूत्ररोग कृमि । इनको नाश करता है ॥ [कौसची मोथा]

गुड़ तजी इतिच इयन्तु वितुन्नक नाम्नो वृक्षस्य त्वक् मुस्तकानिः। कुटन्नटं दासपुरं बालेयं परिपेलवम् ॥ प्लवं गोपुरगोनर्द कैवर्त्ती मुस्तकानि च ॥ २०९ ॥ मुस्तावत्पेलवं पुटं शुक्राभं स्याद्वितुन्नकम् ॥ वितुन्नकं हिमं तिक्तं कषायं कटु कान्तिदम् ॥ २१०॥ कफ पित्तास्र वीसर्प कुष्ठ कण्डू विषप्रणुत् ॥

भा० अनन्तर जलमोथा के नाम ॥ कुटन्नट, दासपुर, बालेय, परिपेलव प्लव, गोपुर, गोनर्द, कैवर्त्तिमुस्तक, ॥ २०९ ॥ मोथाके सदृश पेलव, पुट शुक्राभ वितुन्नक येह जलमोथा के नाम हैं ॥ जलमोथा शीतल तिक्त कसैला कड़ुवा कान्ति के देनेवाला होता है ॥ २१० ॥ और कफ रक्त विसर्प कुष्ठ खुजली विष इनका नाशक है ॥

[अथस्पृक्का सुगन्धिद्रव्यं शाक विशेषः। लङ्का इक पुरीनि लोके च।] स्पृक्का स्पृक् ब्राह्मणी देवी मरुन्माला लता लघुः ॥ समुद्रान्ता वधूः कोटि वर्षा लङ्कोपिकेत्यपि ॥ २११॥ स्पृक्का स्वाद्वी हिमा वृष्या तिक्ता निखिलदोषनुत् ॥ कुष्ठ कण्डू विषस्वेद दाहास्र ज्वर रक्त हृत् ॥ २१२ ॥

भा० अनन्तर स्पृक्का यह एक सुगंध द्रव्य शाक विशेष है ॥ इसको पिंडित शाक कहते हैं ॥ स्पृक्का स्पृक् ब्राह्मणी देवी मरुन्माला लता। समुद्रान्ता वधूः कोटि वर्षा लङ्कोपिका येह स्पृक्का के नाम हैं ॥ २११॥

रसकी मधुर शीतल धातुवोंको बढ़ानेवाली तिक्त सम्पूर्ण दोषोंकी नाश करै है ॥ और कुष्ठ खुजली विष पसीना दाह रक्तज्वर और रक्त इनकी नाशक है ॥ ११२॥

अथ पर्पटी इति प्रसिद्ध पद्मावती इति च। उत्तरदेशे सुगन्धिद्रव्य ॥ पर्पटी रञ्जना कृष्णा जतुका जननी जनी ॥ जतु कृष्णाग्निसंस्पर्शा जतु कृत चक्रवर्तिनी ॥ ११३ ॥ पर्पटी तुवरा तिक्ता शिशिरा वर्णकृल्लघु ॥ विषव्रणहरी कण्डू कफपित्तास्रकुष्ठनुत् ॥ ११४ ॥

भा०-- अनन्तर पर्पटी इस प्रकार प्रसिद्ध है और पद्मावती इस नाम से उत्तर देशमें प्रसिद्ध है। और मालवेमें चकवत् कहते हैं। परपटी रंजना कृष्णा जतुका जननी जनी जतुकृष्णा अग्निसंस्पर्शा जतुकृत् चक्रवर्तिनी ॥ ११३॥ पापड़ी कसैली तिक्त शीतल रंगको अच्छा करनेवाली हलकी होती है ॥ और विष नरखमको दूर करनेवाली तथा खुजली कफ रक्तपित्त कुष्ठ इनकी नाश करनेवाली है ॥ ११४ ॥

अथ नलिका उत्तरापथे प्रसिद्धा। सुगन्धा वला कृतिथवारी इति च क्वचित् प्रसिद्धा ॥

नलिका विद्रुमलता कपोतचरणा नटी॥ धमन्यञ्जनकेशी च निर्मथ्या सुषिरा नली ॥ ११५॥ नलिका शीतला लघ्वी चक्षुष्या कफपित्तहृत्॥ कृच्छ्राश्मवाततृष्णास्रकुष्ठकण्डूज्वरापहा ॥ ११६

भा० अनन्तर नलिकाको कहते हैं। उत्तर देशमें प्रसिद्ध है। सुगन्ध वरियारेके क़िसिम से है ॥ और पवारी इस नामसे प्रसिद्ध है ॥ नलिका विद्रुमलता कपोतचरणा नटी ॥ धमनी अञ्जनकेशी

निर्मध्या सुषिरा नली यह नड़के नाम हैं ॥ २२५ ॥ नड़ शीतल हलका नेत्रके हित और कफ पित्तका नाशक है तथा मूत्रकृच्छ्र पथरी दाह तृषा रक्तकुष्ठ खुजली ज्वर इनका नाशक है ॥ २२६ ॥

अथ प्रपौण्डरीकं सुगन्धद्रव्यं पुण्डेरी इति लोके प्रसिद्धम् ॥ प्रपौण्डरी पौण्डर्य्यं चक्षुष्यं पौण्डरीयकम् ॥ पौण्डर्य्यं मधुरं तिक्तं कषायं शुक्रलं हिमम् ॥ ॥२२७॥ चक्षुष्यं मधुरं पाके वर्ण्यं पित्तकफ प्रणुत् ॥ ॥ इति भावप्रकाशे कर्पूरादि वर्गः ॥ ॥

भा० पुंडेरीके नाम । यह सुगन्धद्रव्य है । प्रपौंडरीक- पौण्डर्य्य- चक्षुष्य -पौंडरीयक- यह पुंडेरीके नामहैं ॥ अनन्तर प्रपौंडरीक यह सुगन्ध द्रव्य और पुंडेरी इस नामसे लोक में प्रसिद्ध है । पुंडरी मधुर तिक्त कसैली शुक्रको उत्पन्न करनेवाली शीतल ॥ २२७ ॥ चक्षुके हित पाक में मधुर वर्णको अच्छा करनेवाली पित्त कफकी नाशक है ॥

॥ ॥ इति भावप्रकाशे कर्पूरादि वर्ग समाप्त ॥ ॥

[अथ गुडूच्यादि वर्गः।

[तत्रादौ गुडूच्या उत्पत्तिर्नामानि गुणाश्च ।]

अथ लङ्केश्वरो मानी रावणो राक्षसाधिपः ॥ रामपत्नीं बलात् सीतां जहार मदनातुरः ॥ २२८ ॥ ततस्तं बलवान् रामो रिपुं जाय पहारिणम् ॥ ततो वानरसैन्येन जघान रणमूर्द्धनि ॥ २२९ ॥

भा० अनन्तर गुडूच्यादि वर्गः ॥ इसमें पहले गुडूची अर्थात् गिलोय की उत्पत्ति और नाम और गुण कहते हैं ॥ अभिमान वाला राक्षसोंका राजा लंकेश्वर रावण मदनातुर हुवा रामपत्नी सीता को बलात्कारसे चुरा लेगया ॥ २२८ ॥ उसके अनन्तर बलवान रामने पत्नी के चुरानेवाले

शत्रू को वांनरों की सैनासे रण में मारा ॥२१९॥

हते तस्मिन् सुरारातौ रावणे बल गर्विते ॥ देवराजः सहस्राक्षः परि तुष्टोऽति राघवे ॥ २२०॥ तत्र ये वानराः केचिद्राक्षसै र्निहिता रणे ॥ तानिन्द्रो जीवयामास संसिच्यामृतवृष्टिभिः ॥ २२१॥ ततो येषु प्रदेशेषु कपिगात्रात् परिच्युताः ॥ पीयूष विन्दवः पेतु स्तेभ्यो जाता गुडूचिका ॥२२२॥

भा० बल करके गर्भित देवताओं का शत्रू उस रावण के मरने में ॥ देवताओं का राजा इन्द्र राम पर बहुत प्रसन्न हुवा ॥ २२०॥ उस रणमें राक्षस के द्वारा जो मारे गये ॥ उन्को इन्द्रने अमृत की वर्षा से सींचकर जिवाया ॥ ॥ २२१॥ जिस देशमें वानरों के शरीर से जो अमृत की बूंद गिरी उनसे गिलोय उत्पत्ति हुई ॥ २२२ ॥

गुडूची मधुपर्णी स्यादमृताऽमृतवल्लरी ॥ छिन्ना छिन्नरुहा छिन्नोद्भवा वत्सादनीति च ॥ २२३ ॥ जीवन्ती तन्त्रिका सोमा सोमवल्ली च कुण्डली ॥ चक्रलक्षणिका धीरा विशल्या च रसायनी ॥ २२४ ॥ चन्द्रहासी वयस्था च मण्डली देव निर्मिता ॥ गुडूची कटुका तिक्ता स्वादुपाका रसायनी ॥ २२५ ॥ संग्राहिणी कषायोष्णा लघ्वी बल्याग्नि दीपनी ॥ दोषत्रयामतृड्दाह मेहकासांश्च पाण्डुताम् ॥ २२६ ॥ कामला कुष्ठवातास्र ज्वर कृमि वमीन् हरेत् ॥ प्रमेह श्वास कासार्शः कृच्छ्र हृद्रोग वातनुत् ॥ २२७ ॥

भा० गुडूचीमधुपर्णी अमृता अमृतवल्लरी छिन्ना छिन्नरुहा छिन्नोद्भवा मत्स्यादनी ॥२२३॥ जीवन्ती तन्त्रिका सोमा सोमवल्ली कुंडली ॥ चक्रलक्षणिका धीरा विशल्या रसायनी ॥२२४॥ चन्द्रहासी वयस्था मंडली देवनिर्मिता॥ यह गिलोयके नामहैं ॥ गिलोय कडुवी तिक्त पाकमेंमधुर रसायनी ॥२२५॥ संग्राहणी कसैली उष्ण हलकी बलको करनेवाली अग्निकेदीपन करनेवाली ॥ तीन दोष आम तथा दाह प्रमेह कास पाण्डुरोग ॥१२६॥ कामला कुष्ठ वातरक्त ज्वर कृमि वमन इनको नाश करती है॥ और प्रमेह श्वास कास बवासीर मूत्रकृच्छ्र हृद्रोग वात इनकी नाशक है ॥२२७॥ [अथ पान।]

ताम्बूल वल्ली ताम्बूली नागिनी नागवल्लरी ॥ ताम्बूलं विशदं रुच्यं तीक्ष्णोष्णं तुवरं सरम् ॥२२८॥ वश्यं तिक्तं कटु क्षारं रक्तपित्तकरं लघुः ॥ बल्यं श्लेष्मास्य दौर्गन्ध्य मलवातश्रमापहम् ॥२२९॥

[अथ बेल।] विल्वः शाण्डिल्य शैलूषौ मालूर श्रीफलावपि ॥ श्रीफल स्तुवरस्तिक्तो ग्राही रूक्षोऽग्नि पित्तकृत् ॥२३०॥ वातश्लेष्महरो बल्यो लघुरुष्णश्च पाचनः

भा० अनन्तर पान । ताम्बूल वल्ली ताम्बूली नागिनी नागवल्ली । येह पान के नाम हैं ॥ पान विशद रुचिको करनेवाला तीक्ष्ण उष्ण कसैला सरहोता है ॥२२८॥ और वशीकरण तिक्त कटु क्षार तथा रक्तपित्तकी करनेवाला हलका ॥ बलको करनेवाला तथा काफ मुखकी दुर्गंधता मल वात श्रम इनका नाशक है ॥२२९॥ अनन्तर बेल विल्व शाण्डिल्य शैलूष मालूर श्रीफल येह बेलके नामहैं ।बेल कसैला तिक्त ग्राही रूखा अग्नि पित्तको करनेवाला है। और वात कफ का नाशक बलको करनेवाला हलका उष्ण पाचन है ॥

[अथ गम्भारी।]

गम्भारी भद्रपर्णी च श्रीपर्णी मधुपर्णिका ॥

काश्मीरी काश्मरी हीरा काश्मर्यः पीतरोहिणी ॥
२३१ ॥ कृष्णावृन्ता मधुरसा महा कुसुमिकापि च ॥
काश्मरी तुवरा तिक्ता वीर्य्योष्णा मधुरा गुरुः ॥ २३२॥
दीपनी पाचनी मेध्या भेदिनी भ्रमशोषजित् ॥ दो
ष तृषामशूलार्शो विषदाह ज्वरापहा ॥ २३३ ॥
तत् फलं बृहणं वृष्यं गुरु केश्यं रसायनम् ॥ वा
तपित्त तृषा रक्त क्षय मूत्र विबन्धनुत् ॥ २३४ ॥
स्वादु पाके हिमं स्निग्धं तुवराम्ल विशुद्धिकृत् ॥ ह-
न्याद्दाह तृषा वात रक्तपित्त क्षतक्षयान् ॥ २३५ ॥

भा० अनन्तर गम्भारी ॥ गम्भारी भद्रपर्णी श्रीपर्णी मधुपर्णिका काश्मीरी काश्मरी हीर काश्मर्य पीतरोहणी ॥ २३१॥ कृष्णवृन्ता मधुरसा महाकुसुमिका येह गम्भारी के नाम हैं । कुम्भेर कसैली तिक्त वीर्यमें उष्ण मधुर भारी होती है ॥ २३२॥ और दीपन पाचन कांतिको बढ़ानेवाली भेदनकरनेवाली भ्रम शोषको जीतनेवाली दोष तृषा आम शूल बवासीर विष दाह ज्वर इनको नाशक है ॥ ३३॥ उस्का फल उष्ण शुक्रको उत्पन्नकरनेवाला रसायन है ॥ वात पित्त तृषा रक्त क्षय मूत्रका बंद होना इनको नाश करताहै ॥ ३४॥ पाक में मधुर शीतल चिकना कसैला खट्टा शुद्धी को करनेवालाहै ॥ और दाह तृषा वातरक्त पित्त क्षत क्षयइनको भी नाश करता है ॥ १३५॥

[अथ पाराडरि काठपाराडरि।]

पाटलिः पाटला मेघा मधुदूती फलेरुहा ॥ कृष्णावृ
न्ता कुवेराक्षी कालस्थाल्यलि वल्लभा ॥ २३६ ॥ ताम्र
पुष्पी च कथिता परास्यात् पाटला सिता ॥ मुष्कको
मोक्षको घण्टा पाटलिः काष्ठपाटला ॥ २३७ ॥

(कालस्थालीत्यत्र काचस्थाली त्येके।)

पाटला तुवरा तिक्तानुष्णा दोषत्रया पहा ॥ अरुचि श्वासशोथास्र छर्दि हिक्का तृषाहरी ॥२३८॥ पुष्पं कषायं मधुरं हिमं हृद्यं कफास्रनुत् ॥ पित्तातिसार हृत्कण्ठ्यं फलं हिक्कास्र पित्तहृत् ॥ २३९॥

भा० अनन्तर पाढ़ला काष्ठपाटला ॥ पाटलि पाटला मोघा मधुदूती फलेरुहा कृष्णवृन्ता कुबेराक्षी कालस्थाली अलि वल्लभा ॥२३६॥ ताम्रपुष्पी येह पाटलाके नाम कहेहैं ॥ और दूसरी पाटला सिता। मुष्कक मोक्षक घराटा पाटली काष्टपाटला येह कटपाढ़लके नामहैं ॥ २३७॥ कालस्थाली यहांपर कोई काचस्थाली भीकहतेहैं॥ पाटला कसैली तिक्त शीतल तीनों दोषोंका नाशकरनेवाली अरुचि श्वास शोथ रक्त वमन हुचकी तृषा इनकी नाशक है ॥ २३८॥ उस्का पुष्प कसैला मधुर शीतल हृदयको हितकरनेवाला कफ रक्तका नाशक ॥ पित्तातिसारकानाशक कण्ठको अच्छाकरनेवाला है और उस्का फल हुचकी रक्तपित्त कफ इनका नाशक है ॥ २३९॥

[अथ अगेथु गनिआरि इति च।] अग्निमन्थो जयः स स्याच्छ्रीपर्णी गणिकारिका ॥ जया जयन्ती तर्कारी नादेयी वैजयन्तिका ॥२४०॥ अग्निमन्थः श्वयथुनुद्वीर्य्योष्णः कफवातहृत् ॥ पाण्डुनुत् कटुक स्तिक्त स्तुवरो मधुरोऽग्निदः ॥ २४१॥

भा० अनन्तर अगेथ जिस्को गनियारी भी कहतेहैं ॥ अग्निमन्थ जयः श्रीपर्णी गणिकारिका जया जयन्ती तर्कारी नादेई वैजयन्तिका। येह अरनीके नामहैं ॥२४०॥ अरनी शोथकी नाशक वीर्यमें उष्ण कफवातको दूर करनेवाली पाण्डुरोगकी नाशक कड़वी तिक्त कसैली मधुर अग्निको करनेवालीहै ॥२४१॥ [अथ सोनापाठा।]

स्योनाकः शोषणश्च स्या न्नटकट्वङ्ग टुण्टुकः॥

मण्डूकपर्णपत्रोर्णौ शुकनाशा कुटन्नटा ॥ २५२ ॥ दीर्घवृन्तो रलुश्चापि पृथुशिम्बः कटम्भरः ॥ स्योनाको दीपनः पाके कटुक स्तुवरो हिमः ॥ २५३ ॥ ग्राही तिक्तोऽनिलः श्लेष्म पित्त कास प्रणाशनः ॥ टुण्टुकस्य फलं बालं रूक्षं वात कफापहम् ॥ २५४ ॥ हृद्यं कषायं मधुरं रोचनं लघुदीपनम् ॥ गुल्मार्शः कृमिहृत्प्रौढं गुरुवात प्रकोपणम् ॥ २५५ ॥

भा० अनन्तर सोनापाठा ॥ स्योनाक शोषण नट कट्वङ्ग टुन्टुक ॥ मण्डूकपर्ण पत्रोर्ण शुकनाश कुटन्नट ॥ २५२ ॥ दीर्घवृन्त अरलू पृथुशिम्ब: कटम्भर । येह सोनापाठाके नाम हैं ॥ सोना पाठा दीपन पाकमें कटु कसैला शीतल है ॥ २५३ ॥ और दस्तकोबंद करनेवाला तिक्त वात कफ पित्त कास इनका नाशक है ॥ और सोना पाठे का कच्चा फल रूखा वात कफ का नाशक होता है ॥ २५४ ॥ तथा हृदयका हित कसैला मधुर रुचिको करनेवाला हलका दीपन होता है । वायगोला बवासीर कृमि इनका नाशक है ॥ तथा पक्का फल भारी वातका प्रकोपकरनेवाला है ॥ २५५ ॥

[अथ बृहत्पञ्चमूलस्य लक्षणं गुणाः ।]

श्रीफलः सर्वतो भद्रा पाटला गणिकारिका ॥ स्योनाकः पञ्चभिश्चैतैः पञ्चमूलं महन्मतम् ॥ २५६ ॥ पञ्चमूलं महत्तिक्तं कषायं कफ वातनुत् ॥ मधुरं श्वास कासघ्न मुष्णं लघ्वग्निदीपनम् ॥ २५७ ॥

भा० अनन्तर बृहत्पंच मूलका लक्षण और गुण कहते हैं ॥ कुम्भ पाटला अरणी सोनापाढ़ा । इन पांचों से बृहत्पंच मूल होता है ॥ २५६ ॥ पंचमूल तिक्त कसैला कफ वातका नाशक है ॥ और मधुर श्वास कास का नाशक । उष्ण हलका अग्निका दीपन होता है ॥ २५७ ॥

अथ सरिवन] शालिपर्णी स्थिरा सौम्या त्रिपर्णी पीवरी गुहा ॥ विदारि गन्धा दीर्घाङ्गी दीर्घपात्रां शुमत्यपि ॥ २४८ ॥ शालिपर्णी गुरुच्छर्दी ज्वर श्वासातिसार जित् ॥ शोष दोषत्रय हरी वृहण्यु क्ता रसायनी ॥ २४९ ॥ तिक्ता विष हरी स्वादुः क्षत-न कास कृमि प्रणुत् ॥

भा० अनन्तर सरिवन । शालिपर्णी स्थिरा सौम्या त्रिपर्णी पीवरी । विदारीगंधा दीर्घाङ्गी दीर्घपत्रा अंशुमती येह सरवन के नामहैं ॥ २४८ ॥ सरिवन भारी होता है और वमन ज्वर श्वास अतीसार इनको दूर करता है । शोष त्रिदोष इनका नाशक धातुओं कापुष्ट करनेवाला रसायन है ॥ और तिक्त विषका नाशक मधुर क्षत कास कृमी इनका भी नाशक है ॥

[अथ पिठवन ।]

पृश्निपर्णी पृथकपर्णी चित्रपर्ण्य हि पर्ण्य पि ॥ क्रोष्टु विन्ना सिंह पुच्छी कलशीद्धावनिर्गुहा ॥२५० पृष्टिपर्णी त्रिदोषघ्नी वृष्योष्णा मधुरा सरा ॥हन्ति दाह ज्वर श्वास रक्तातीसार तृड् वमीः ॥ २५१ ॥

भा० अनन्तर पिठवन ॥ प्रश्निपर्णी प्रथक पर्णी चित्रपर्णीःहि पर्णी क्रोष्टविन्ना सिंहपुच्छी कलशी धावनी गुहा ॥ २५०॥ येह पिठवन के नामहैं । पिठवन त्रिदोषकी नाशक धातुको पुष्ट करनेवाली उष्ण मधुर सर होतीहै ॥ और दाह ज्वर श्वास रक्तातिसार तृषा वमन इनको नाशकर तीहै ॥ २५१॥

[अथ वरहण्टा ।]

वार्त्ताकी क्षुद्र भण्टाकी महती वृहती कुली ॥ हिङ्गु-ली राष्ट्रिका सिंही महोट्टी दुः प्रधर्षिणी ॥ २५२ ॥ वृहती ग्राहिणी हृद्या पाचनी कफ वात हृत् ॥

कटु तिक्तास्य वैरस्य मलारोचकनाशिनी ॥१५३॥
उष्णा कुष्ठं ज्वर श्वास शूल कासाग्निमान्द्य जित् ॥

[अथ भटकटैय्या रोगिणी इति च।]

कण्टकारी तु दुःस्पर्शा क्षुद्रा व्याघ्री निदिग्धिका ॥ क
ण्ठालिका कण्टकीनि धावनी दृहती तथा ॥१५४॥
उभे च वृहत्यौ । यत आह सुश्रुत:।

भा० अनन्तर बड़ी कटेली ॥ वार्त्ताकी क्षुद्रभण्टाकी महती वृहती कुली। हिंगुली राष्ट्रिका सिंही महोष्ट्री दुष्प्रधर्षिणी॥१५२॥ येह बड़ी कटेली के नाम हैं ॥ बड़ी कटेली ग्राहिणी हृदय के हित पाचन कफ वातकी नाशक है ॥ और कड़वी तिक्त मुखकी विरसता मल अरुचि इनकी नाशक है ॥ १५३॥ और उष्ण होतीहै तथा कुष्ठ ज्वर श्वास शूल कास अग्निमान्द्य इन को जीतने वाली है ॥ ॥ अनन्तर छोटी कटेली कण्टकारी दुःस्पर्शा क्षुद्रा व्याघ्री निदग्धिका। कण्ठालिका कन्टकिनी धावनी वृहती येह छोटी कटेली के नाम हैं ॥१५४॥ दोनो कटेली। जैसेकि कहा है सुश्रुतने॥

क्षुद्रायां क्षुद्र भद्राख्या दृहतीति निगद्यते ॥ श्वेता
क्षुद्रा चन्द्र हासा लक्ष्मणा क्षेत्र दूतिका ॥ १५५ ॥
गर्भदा चन्द्रभा चन्द्री चन्द्रपुष्पा प्रियङ्करी ॥ कण्ट-
कारी सरा तिक्ता कटुका दीपनी लघुः ॥ १५६ ॥ रूक्षो
ष्णा पाचनी कास श्वास ज्वर कफा निलान् ॥
निहन्ति पीनसं श्वास पार्श्व पीड़ा हृदामयान् ॥१५७

भा० छोटी कटेली और बड़ी कटेली इनको दृहती ऐसा कहते हैं ॥ और सुफ़ेद कटेली को चन्द्रहासा लक्ष्मणा क्षेत्रदूतिका ॥ १५५॥ गर्भदा, चन्द्रप्रभा चन्द्री चन्द्रपुष्पा प्रियङ्करी ऐसा कहते हैं ॥ कटेली सर तिक्त कड़वी दीपन हलकी ॥ १५६ ॥ रूखी गर्म पाचन कास श्वास ज्वर कफ

वात इनको नाश करती है ॥ और का स श्वास पसली की पीड़ा हृद्रोग । इनको भी नाश करती है ॥ २५७ ॥

नया फलं कटुरसे पाके च कटुकं भवेत् ॥ शुक्रस्य रेचनं भेदि तिक्तं पित्ता ग्नि कृल्लघु ॥ २५८ ॥ हन्यात् कफ मरुत् कराडू का- स मेद कृमिज्वरान् ॥ तद्वच्छ्वेता सिता ज्ञेया विशे षात् गर्भ कारिणी ॥ २५९ ॥

भा० इनका फल रसमें कड़वा और पाकमें भी कड़वा होता है ॥ शुक्र का रेचक भेदन करनेवाला तिक्त पित्त अग्निको करनेवाला हलका होताहै २५८ ॥ और कफ वायु खुजली कास मेद कृमिज्वर इनको नाश करताहै ॥ उसी प्रकार सुफ़ेद कदेलीके भी गुणहैं विशेष करकेगर्भ कोकरने वा- लीहै ॥ २५९ ॥

[अथ गोक्षुर ।]

गोक्षुरः क्षुरकोऽपिस्यात् त्रिकराटः स्वादुकराटकः । गोकराटको गोक्षुरको वन शृङ्गाट इत्यपि ॥ २६० ॥ पलं कषाश्वा दंष्ट्रा च तथा स्या दिक्षु गन्धिका ॥ गोक्षुरः शीतलः स्वादु र्बलकृद् वस्ति शोधनः ॥ ॥ २६१ ॥ मधुरो दीपनो वृष्यः पुष्टिदश्चाश्मरी हरः ॥ प्रमेह श्वास कासार्शो कृच्छ्र हृद्रोग वातनुत् २६२ ॥

भा० अनन्तर गोखरू ॥ गोक्षुर क्षुरक त्रिकटु स्वादुकंटक ॥ गोकंटक गो क्षुरक वनशृंगाट ॥ २६० ॥ पलङ्कष श्वदंष्ट्रा इक्षुगंधिका । येह गोखरू के नामहैं ॥ गोखरू शीतल मधुर बलको करनेवाला वस्ति शोधक ॥ २६१ ॥ मधुर दीपन शुक्रको बढ़ानेवाला पुष्टिको देनेवाला अश्मरीकानाश कहै ॥ और प्रमेह श्वास कास ववासीर मूत्रकच्छ्र हृदरोग वात का नाशक है ॥ २६२ ॥

[अथ लघु पञ्च मूलस्य लक्षणं गुणाश्च

शालिपर्णी पृष्ठपर्णी वार्त्ताकी कराटकारिका ॥
गोक्षुरः पञ्चभिश्चैतैः कनिष्ठं पञ्चमूलकम् ॥२६३
पञ्च मूलं लघु स्वादु वल्यम्पित्तानिलापहम् ॥
नात्युष्णं वृंहणं ग्राहि ज्वर श्वासा श्मरी प्रणुत् ॥२६४

[अथ दश मूलस्य लक्षणं गुणाश्च।

उभाभ्यां पञ्च मूलाभ्यां दशमूल मुदाहृतम् ॥ द-
शमूलं त्रिदोषघ्नं श्वास कास शिरोरुजः ॥२६५॥
तन्द्रा शोथ ज्वरानाह पार्श्वपीड़ा रुचिर्हरेत् ॥

भा० अनन्तर लघु पंच मूल के लक्षण और गुण ॥ सरिवन पिठवन दोनोंकटेली ॥ गोखरु इन पांचोंसे लघु पंच मूल होताहै ॥२६३॥ पंच मूल हलका मधुर बलको देनेवाला पित्त वातका नाशकहै । और न बहुत गरम धातु को बढ़ानेवाला काबिजहै और ज्वर श्वास पथरी इन का नाशक है ॥२६४॥ ॥ अनन्तर दश मूलका लक्षण और गुण। दोनों पंचमूलोंसे दशमूल कहा गया है ॥ त्रिदोषकानाशक और श्वास कास सिरकी पीडा ॥२६५॥ तन्द्रा शोथ ज्वर अफारा पसलीकी पीड़ा अरुचि इनको नाश करताहै ॥

[जीव इति शाक विशेषः । शर्करा वन्मधुर पुष्पा ब्रततिः]

जीवन्ती जीवनी जीवा जीवनीया मधुस्रवा ॥ मङ्गल्या
नामधेया च शाकश्रेष्ठा पयस्विनी ॥ २६६ ॥ जीव-
न्ती शीतला स्वादुः स्निग्धा दोष त्रयापहा ॥ रसाय-
नी बलकरी चक्षुष्या ग्राहिणी लघुः ॥ २६७ ॥

भा० जीवन्ती शाक विशेष है । शर्कराके सदृश मधुर पुष्पवाली बन लिंहै । जीवन्ती जीवनी जीवा जीवनिया मधुस्रवा । मङ्गल्य नामधेया शाकश्रेष्ठा पयस्विनी येह जीवन्तीके नामहैं ॥ २६६ ॥ जीवन्ती

शीतल मधुर चिकनी त्रिदोषनाशक ॥ रसायन बलको करनेवाली चक्षुके हित कॉविज़ हलकी होती है ॥ २६७॥ [अनन्तर वन मूंग।]

[अथ मुद्गपर्णी।] मुद्गपर्णी काकपर्णी सूर्य्यपर्ण्यल्पिकासहा ॥ काकमुद्गा च सा प्रोक्ता तथा मार्ज्जारगंधिका ॥ मुद्गपर्णी हिमा रूक्षा तिक्ता स्वादुश्च शुक्रला ॥ चक्षुष्या क्षतशोथघ्नी ग्राहिणी ज्वरदाहनुत् ॥ २६८॥ दोषत्रयहरी लघ्वी ग्रहण्यर्शोऽतिसारजित् ॥

[अथ माषपर्णी।] माषपर्णी सूर्य्यपर्णी काम्बोजी हयपुच्छिका ॥ पाण्डूलोमशपर्णी च कृष्णवृन्ता महासहा ॥ २७०॥ माषपर्णी हिमा तिक्ता रूक्षा शुक्रबलासकृत् ॥ मधुरा ग्राहिणी शोथवातपित्तज्वरास्रजित् ॥ २७१॥

भा० अनन्तर वन मूंग ॥ मुद्गपर्णी काकपर्णी सूर्यपर्णी अल्पिका सहा काकमुद्गा मार्जारगन्धिका। येह वन मूंगके नामहैं ॥ २६७॥ वन मूंग शीतल रूक्ष तिक्त मधुर शुक्रको उत्पन्न करनेवाला ॥ चक्षुके हित क्षत शोथ कानाशक कॉविज़ ज्वर दाह कानाशक ॥ २६९॥ तीनों दोषोंको दूर करनेवाला हलकाहै और संग्रहणी ववासीर अतीसार इनकोजीतनेवालाहै ॥ अनन्तर वन उड़द ॥ माषपर्णी सूर्यपर्णी काम्बोजी हयपुच्छिका पाण्डु लोमशपर्णी कृष्णवृन्ता महासह ॥ २७०॥ येह वन उड़दके नामहैं ॥ वन उड़द शीतल तिक्त रूक्ष शुक्र और बलको करनेवाला मधुर कॉविज़ है ॥ और शोथ वात पित्त ज्वर रक्त इनकोजीतनेवालाहै ॥ २७१॥

[अथ जीवनीय गणस्य लक्षणं गुणाश्च।]

अष्टवर्गः सयष्टीको जीवन्ती मुद्गपर्णिका ॥ माषपर्णी गणोऽयन्तु जीवनीयगणः स्मृतः ॥ ७२ ॥ जीवनो मधुरश्चापि नाम्ना स परिकीर्त्तितः ॥ जीवनीयगणः प्रोक्तः शुक्रकृद् बृंहणो हिमः ॥ ७३ ॥ गुरुर्गर्भप्रद स्तन्य कफकृत् पित्तरक्तहृत् ॥ तृषां शोषं ज्वरं दाहं रक्तपित्तं व्यपोहति ॥ ७४ ॥

भा० अनन्तर जीवनीय गणका लक्षण और गुण ॥ अष्टवर्ग । मुलहटीके साथ और जीवन्ती वनमूंग । वनउड़द ये जीवनीय गण कहा है ॥ ७२ ॥ जीवन और मधुर भी नामसे योह कहा गया है ॥ जीवनीयगण शुक्रको करनेवाला धातुको बढ़ानेवाला शीतल ॥ ७३ ॥ भारी गर्भको देनेवाला दूध और कफको करनेवाला पित्तरक्तका नाशक है ॥ तृषा शोष ज्वर दाह रक्तपित्त इनको नाश करता है ॥ ७४ ॥

[अथ शुक्लैरण्डः ।]

शुक्ल एरण्ड आमण्डु श्चित्रो गन्धर्व्वहस्तकः ॥ पञ्चाङ्गुलो वर्द्धमानो दीर्घदण्डोऽप्यदण्डकः ॥ ७५ ॥ वातारि स्तरुणश्चापि रुवूकश्च निगद्यते ॥ रक्तोऽपरो रुवूकः स्याद् रुवूको रुवूस्तथा ॥ ७६ ॥ व्याघ्रपुच्छश्च वातारि श्चञ्चु रुत्तानपत्रकः ॥ एरण्डयुग्मं मधुर मुष्णं गुरु विनाशयेत ॥ ७७ ॥

भा० अनन्तर स्वेत अरंड ॥ अरंड ॥ आमण्ड चित्र गंधर्वहस्तक । पंचांगुल वर्द्धमान दीर्घदण्ड अदण्डक ॥ ७५ ॥ वातारि तरुण रुवूक ये ह एरण्डके नाम हैं ॥ दूसरा लाल अरण्ड ॥ उरुवूक रुवू ॥ ७६ ॥ व्याघ्रपुच्छ वातारि चंचु उत्तानपत्रक येह लाल । एरण्डके नाम हैं येह दोनों एरंड मधुर उष्ण भारी होते हैं ॥ ७७ ॥

शूल शोथ कटीवस्ति शिरःपीड़ोदर ज्वरान ॥ ब्रध्न

श्वास कफा नाह कास कुष्ठा ममारुतान् ॥ २७८॥
एरण्ड पत्रं वातघ्नं कफ कृमि विनाशनम् ॥ मूत्र
कृच्छ्र हरञ्चापि पित्तरक्त प्रकोपणम् ॥ २७९॥
वातार्य्य ग्रदलं गुल्मं वस्तिशूल हरं परम् ॥ कफ
वात कृमीन् हन्ति वृद्धिं सप्त विधामपि ॥ २८०॥
एरण्ड फल मत्युष्णं गुल्म शूला निलापहम् ॥
यकृत् प्लीहोदरार्शोघ्नं कटुकं दीपनं परम् ॥ २८१॥
तद्वन्मज्जा च विड् भेदी वात श्लेष्मोदरा पह: ॥

भा० शूल शोथ तथा कमर पेडू सिर इनकी पीड़ा उदररोग ज्वर बद श्वास कफ अफारा कास कुष्ट आमवात इनको नाश करता है ॥ २७८॥ अंडीका पत्ता वात नाशक कफ कृमि को दूर करनेवाला ॥ और मूत्र कृच्छ्रका नाशक तथा पित्त रक्त को प्रकोप करनेवाला है ॥ २७९॥ अंडी का अग्रदल वायगोला पेडू का शूल इनका अत्यन्त नाशक है। कफ वात कृमि और सात प्रकार की अंडवृद्धि इनकोभी नाश करता है ॥ २८०॥ अंडीका फल बहुत गरम होता है और वायगोला शूल वात इनका नाशक तथा यकृत प्लीह उदर ववासीर इनका नाशक कटु अत्यन्त दीपन ॥ २८१॥ होताहै उसी प्रकार उसकीगिरी मलको भेदन करनेवाली वात कफ उदरकी नाशक होती है ॥

[अथ शुक्ल रक्तार्क इति लोके।]

अलर्क्को गुणरूप: स्यान्मन्दारो वसुकोऽपि च ॥ श्वेत
पुष्प: सदापुष्प: सबालार्क: प्रतीपस: ॥ २८२॥ र
क्तोऽपरोऽर्क नामा स्या दर्क पर्णो विकीरणः ॥ रक्त पु
ष्प: शुक्ल फल स्तथा स्फोट: प्रकीर्त्तित: ॥ २८३॥

अर्कद्वयं सरं वात कुष्ठ कण्डू विष व्रणान् ॥ निहन्ति प्लीह गुल्मार्शो श्लेष्मोदर शकृत् कृमीन् ॥ २९४ ॥ अलर्क कुसुमं वृष्यं लघु दीपन पाचनम् ॥ अरोचक प्रसेकार्शः कास श्वास निवारणम् ॥ २९५ ॥ रक्तार्क पुष्पं मधुरं सतिक्तं कुष्ठ कृमिघ्नं कफनाशनञ्च । अर्शो विषं हन्ति च रक्त पित्तं संग्राहि गुल्मे श्वयथौ हितं तत् ॥ २९६ ॥ क्षीर मर्कस्य तिक्तोष्णं स्निग्धं सलवणं लघु ॥ कुष्ठ गुल्मोदर हरं श्रेष्ठ मेतद् विरेचनम् ॥ २९७ ॥

भा॰ अनन्तर सफेद और लाल आक को कहते हैं ॥ अलर्क गुणरूप मंदार वसुक ॥ श्वेत पुष्प सदापुष्प सबालार्क प्रतापस । येह सफेद आक के नामहैं ॥ २९२ ॥ दूसरा लाल सूर्यके नामवाला होताहै । और अर्कपल विक्षीरी । रक्तपुष्प शुक्लफल तथा स्फोट येह नाम कहेहैं ॥ ॥ २९३ ॥ दोनों आक सर वात कुष्ठ कण्डु घाव विष । इनको नाश कर ताहै । औरप्लही वायगोला बवासीर कफ उदर मल कृमि इनको भी नाश करताहै ॥ २९४ ॥ आक का फूल धातु कोबढ़ानेवाला हलका दीपन पाचन होता है । और अरुचि प्रसेक बवासीर कास श्वास । इनका दूर करनेवाला है ॥ २९५ ॥ लाल आकका फूल मधुर तिक्त होता है । और कुष्ट कृमि इनका नाशक और कफका भी नाशकहै ॥ बवासीर विष इनको नाश करता है और रक्त पित्तका भी नाशकहै । और काबिज़ तथा वायगोला सूजनमें भी वोह हितहै ॥ २९६ ॥ आकका दूध तिक्त उष्ण चिकना लवण के सहित होता है हलका ॥ तथा कुष्ठ गुल्म उदर इनका नाशक और यह श्रेष्ठ रेचन है ॥ २९७ ॥

[अथ सेहुण्ड ।] सेहुण्डः सिंहतुण्डः स्याद्वज्री वज्रद्रुमोऽपि च । सुधासमन्त दुग्धा च स्नुक् स्त्रियां स्यात् स्नुही गुडा ॥ २९७ ॥ सेहुण्डो रेचन स्तीक्ष्णो दीपनः

कटकोगुरुः॥ शूलमष्ठीलिकाध्मानः कफगुल्मो दरानिलान्॥ २८९॥ उन्माद मोह कुष्ठार्शः शोथ मेदोऽश्म पाण्डुताः॥ व्रण शोथ ज्वर प्लीह विष दूषी विषं हरेत्॥ २९०॥ उष्णवीर्य्यं स्नुही क्षीरं स्निग्धञ्च कटुकं लघु॥ गुल्मिनां कुष्ठिनाञ्चापि तथैवोदर रोगिणाम्॥ २९१॥ हितमेतद्विरेकार्थे येचान्ये दीर्घ रोगिणः॥

भा० अनन्तर थूहर॥ सेहुण्ड सिंहतुण्ड वज्री वज्रद्रुम। सुधा समंत दुग्धा स्नुक स्नुही गुडा येह थूहर के नामहैं॥ २८८॥ थोहर रेचन तीक्ष्ण दीपन कटु भारी होता है और शूल अष्ठिलिका आध्मान कफ वाय गोला उदरवात॥ २८९॥ उन्माद मोह कुष्ठ बवासीर शोथ मेद पथरी पांडुरोग व्रण शोथ ज्वर प्लीही विष दूषिविष इनको नाश करता है॥ २९०॥ थूहर का दूध उष्ण वीर्य्य स्निग्ध कटु लघु होता है। और गुल्म वाले और कुष्ठ रोगवाले तथा उदर रोगवाले इनको॥ २९१॥ यह विरेचन के अर्थ हितहै तथा और दीर्घ रोगियों को हितहै॥

[अथ सेहुण्ड भेदः।] सातला अनेनैव नाम्ना प्रसिद्धा।]

सातला सप्तला सारा विमला विदुला च सा॥ तथा निगदिता भूरि फेना चर्म कषेत्यपि॥ २९२॥ सातला कटुका पाके वातला शीतला लघुः॥ तिक्ता शोथ कफानाह पित्तोदावर्त्त रक्तजित्॥ २९३॥

भा० अनन्तर थोहर भेद। सातला इस नामसे प्रसिद्ध है। सातला सप्तला सारा विमला विदला तथा भूरिफेना चर्मकषा येह सीकाकाईके नाम हैं॥ २९२॥ सीकाकाई पाक में कटु वायुको करनेवाली शीतल हलकी होतीहै॥ और तिक्त होती है। तथा शोथ कफ अफारा पित्त उदावर्त्त रक्त इनको जीतनेवालीहै॥ २९३॥

अथ करिहारी।] कलिहरी तु हलिनी लाङ्गली शक्र पु-
ष्पिका॥ विशल्याग्नि शिखानन्ता वह्नि वक्रा च ग-
र्भनुत् ॥ २६४॥ कालिहारी सरा कुष्ठ शोफार्शो व्रण
शूलजित् ॥ सक्षारा श्लेष्म जित्तिक्ता कटुका तुवरापि
च ॥ २६५॥ तीक्ष्णोष्णा कृमिहल्लघ्वी पित्तला गर्भ
पातिनी ॥

भा० करिहारी कलिहारी हलनी लाङ्गली शक्रपुष्पी विशल्या अग्निशि
खा अनन्ता वन्हिवक्रा गर्भनुत् येह कलिहारी के नामहैं। २६४॥
कालिहारी सर कुष्ठ शोफ बवासीर व्रण शूल इनको जीतने वाली है।
कुछेक क्षारवाली कफको जीतनेवाली तिक्त कड़वी कसैली भी होती
है ॥ २६५॥ तीक्ष्ण उष्ण कृमिको नाश करनेवाली हलकी पित्तको उ-
त्पन्न करने वाली गर्भको गिरानेवाली होती है ॥

अथ श्वेत रक्त करवीरः।] करवीरः श्वेत पुष्पः शत
कुम्भो ऽश्व मारकः॥ द्वितीयो रक्त पुष्पश्च चण्डा
तोलगुडस्तथा ॥२६६॥ करवीर द्वयं तिक्तं कषायं कटुक
ञ्च तत् ॥ व्रणलाघव कृन्नेत्र कोप कुष्ठ व्रणाप-
हम् ॥ २६७॥ वीर्य्योष्णं कृमि कण्डूघ्नं भक्षितं वि
षवन्मतम् ॥

भा० अनन्तर सुफेद और लाल कनेरको कहते हैं ॥ सफ़ेद फूलके कनेरको।
शतकुम्भ अश्वमारक कहते हैं ॥ और दूसरे लालफूल के कनेर को चंडात
लगुड कहते हैं ॥ २६६॥ दोनों कनेर तिक्त कसैले कड़वे होते हैं और व्रणम
हलका करनेवाले और नेत्र को कुष्ठ व्रण इनके नाशक होते हैं ॥ २६७॥
तथा वीर्य्यमें उष्ण कृमि खुजली इनकी नाशक है ॥ और खानेसे विषके
समान होते हैं ॥

अथ धत्तूरः।] धत्तूर धूर्त्त धत्तूरा उन्मत्तः कनकाह्वयः॥ देवता कितवस्तूरी महामोही शिवप्रियः॥ १९८॥ मातुलो मदनश्चास्य फले मातुलपुत्रकः॥ धत्तूरो मदवर्णाग्नि वातकृज्ज्वर कुष्ठनुत्॥ १९९॥ कषायो मधुरस्तिक्तो यूकालिक्षा विनाशकः॥ उष्णो गुरुर्व्रण श्लेष्म कण्डू क्रिमि विषा पहः॥ २००॥

भा० अनन्तर धतूर ॥ धतूर धतूरा उन्मत्त स्वर्णके नामवाला देवता कितवस्तूरि महामोही शिवप्रिया ॥ १९८॥ मातुल मदन येह धतूरे के नाम हैं। और इसके फलको मातुलपुत्रक कहते हैं ॥ धतूरा मद अग्निवात इनको करनेवाला ज्वर कुष्ठ का नाशक॥ १९९॥ कसैला, मधुर, तिक्त, होता है जूवां लीक इनका नाशक। गरम भारी होता है। व्रण कफ खुजली क्रिमि विष इनका नाशक है॥ २००॥

अथ अरूसा।] वासको वाशिका वासा भिषङ्माता च सिंहिका॥ सिंहास्यो वाजिदन्ता स्यादाटरूषोऽटरूषकः॥ २०१॥ आटरूषो वृषस्ताम्रः सिंहपर्णश्च स स्मृतः॥ वासको वातकृत् स्वर्य्यः कफ पित्तास्र नाशनः॥ २०२॥ तिक्तस्तुवरको हृद्यो लघुः शीतस्तृड्र्त्तिहृत्॥ श्वास कासज्वर च्छर्द्दि मेह कुष्ठ क्षयापहः॥ २०३॥ [अथ दवनपापरा।]

अनन्तर वांसा।] वासक वांशिका वासा भिषङ्माता सिंहिका॥ सिंहास्य वाजिदन्ता आटरूष अटरूषक ये वांसेके नाम हैं। और वृष ताम्र सिंहपर्णी वांसा वातको करनेवाला स्वरको अच्छा करनेवाला कफ रक्त पित्त इनका नाशक ॥ २०१॥ तिक्त कसैला हृदयको अच्छाकरनेवाला हलका शीत तृषा पीड़ा इनको नाश करनेवाला। श्वास कास ज्वर वमन प्रमेह

कुष्ठ और क्षय इनका नाशक होता है ॥२०३॥ [पित्त पापड़ा]

पर्पटोवर तिक्तश्च स्मृतः पर्पटकश्च सः ॥ कथितः पांशु पर्य्याय स्तथा कवच नामकः ॥ २०४ ॥ पर्पटो हन्ति पित्तास्र भ्रम तृष्णा कफ ज्वरान् ॥ संग्राही शीतल स्तिक्तो दाह नुद्वातलो लघुः ॥ २०५ ॥

अथ निम्बः।] निम्बः स्यात पिचुमर्दश्च पिचुमन्दश्च तिक्तकः ॥ अरिष्टः पारिभद्रश्च हिङ्गु निर्य्यास इत्यपि ॥ २०६ ॥ निम्बः शीतो लघुर्ग्राही कटु पाकोऽग्नि वात नुत ॥ अहृद्यः श्रम तृट् कास ज्वरा रुचि कृमि प्रणुत् ॥ २०७ ॥ व्रण पित्त कफ छर्द्दि कुष्ठ हृल्लास मेह नुत् ॥ निम्बपत्रं स्मृतं नेत्र्यं कृमि पित्त विषप्रणुत् ॥ २०८ ॥ वातलं कटु पाकञ्च सर्व्वारोचक कुष्ठ नुत् ॥ निम्ब फलं रसे तिक्तं पाके तु कटु भेदनम् ॥ २०९ ॥ स्निग्धं लघूष्णं कुष्टघ्नं गुल्मार्शः कृमि मेह नुत् ॥

भा० अनन्तर पित्त पापड़ा ॥ पर्पट वरतिक्त पर्पटक पांशुपर्याय कवच नामक । येह पित्त पापड़ेके नामहैं ॥ २०४॥ पित्तपापड़ा पित्त भ्रम तृषा कफ ज्वर इनको नाश करताहै । और क़ाबिज शीतल तिक्त दाह इनको नाश करने वाला वातको करनेवाला हलका ॥ २०५॥

[अनन्तर नींब के नाम और गुण।] नीम्ब पिचुमर्द पिचुमन्द तिक्तक अरिष्ट पारिभद्र हिंगुनिर्यास । येह नींब के नामहैं ॥ २०६॥ नीव शीतल हलका क़ाबिज पाकमेकटु अग्नि वायु कोकरनेवाला हृदय का अप्रिय श्रम तृषा कासज्वर अरुचि कृमि इनका नाशक है ॥ २०७ ॥ और व्रण पित्त कफ वमन कुष्ठ हृल्लास प्रमेह इनका नाशकहै ॥ नीम का

पत्ता आंखों को हित कृमि पित्त विष इनका नाशक ॥ २०८॥ और वायुको करने वाला पाकमें कटु सम्पूर्ण अरुचि कुष्ठ इनका नाशक है ॥ और निम्बोली रसमेंतिक्त और पाकमें तिक्त तथा कड़वी भेदन होती है ॥ २०९ ॥ चिकनी हलकी गरम तथा कुष्ठकी नाशक वायगोला ववासीर कृमि प्रमेह इनका नाशक है ॥

अथ वकाइन ।] महानिम्बः स्मृतो द्रेका रम्यको विषमुष्टिका: ॥ केशमुष्टि निम्बकश्च कार्मुको जीव इत्यपि ॥ २१० ॥ महानिम्बो हिमो रूक्ष स्तिक्तो ग्राही कषायक: ॥ कफ पित्त भ्रम च्छर्दि कुष्ठ हृल्लास रक्त जित् ॥२११॥ प्रमेह श्वास गुल्मार्शो मूषिका विष नाशनः ॥ [अथ फरहद ।] पारि भद्रो निम्बतरुर्मन्दारः पारिजातक: ॥ पारि भद्रो ऽनिल श्लेष्म शोथ मेद: कृमिप्रणुत् ॥ २१२ ॥ पत्रं पित्तरोगघ्नं कर्णव्याधि विनाशनम् ॥

भा॰ अनन्तर वकाइन । महानिम्ब उद्रेक अरम्यक विष मुष्टिक । केशमुष्टि निम्बक कार्मुक जीव येह वकाइन के नामहैं॥ २१० ॥ वकाइन शीतल रूक्ष तिक्त काबिज़ कसैला ॥ कफ पित्त भ्रम वमन कुष्ट हल्लास रक्त इनको जीतने वाला है ॥ २११ ॥ प्रमेह श्वास वायगोला ववासीर मूषेके विषका नाशक है ॥ ॥ अनन्तर फरहद ।] पारिभद्र निम्बतरु मंदार पारिजातक । येह जलनीम के नाम हैं ॥ जलनीम वात कफ शोथ मेद कृमि इनका नाशक है ॥ २१२ ॥ और इसका पत्र पित्तरोगका नाशक और कर्णरोगका भी नाशक है ॥

अथ कचनारः ।] काञ्चनार: काञ्चनको गण्डारि: शोणपुष्पक: ॥ [अथ कचनार भेद: ।] कोविदारश्च मरिक: कुद्दालो युगपत्रक: ॥ कुण्डली ताम्रपुष्पश्च

स्मन्तक: स्वल्पकेशरी ॥ २१३ ॥ काञ्चनारो हिमो ग्राही तुवरः श्लेष्म पित्तनुत् ॥ कृमि कुष्ठ गुद भ्रंश गण्डमाला व्रणा पहः ॥ २१४ ॥ कोविदारोऽपि तद्वत्स्यात्तयोः पुष्पं लघुस्मृतम् ॥ रूक्षं संग्राहि पित्तास्र प्रदर क्षय कासनुत् ॥ २१५ ॥

भा॰ अनन्तर कचनार ॥ काञ्चनार काञ्चनक गंडारी शोणपुष्पक । येह कचनार के नामहैं ॥ [अनन्तर दूसरी कचनार के नाम ।] कोविदार मरिक कुद्दाल युगपत्रक ॥ कुंडली ताम्रपुष्प असमन्तक स्वल्पकेशरी ॥ २१३ ॥ यह दूसरी क़िस्मकी कचनार के नामहैं ॥ कचनार शीतल क़ाबिज़ कसैला कफ पित्तका नाशक ॥ कृमि कुष्ठ गुदभ्रंश गंडमाला व्रण इनका नाशक हैं ॥ २१४ ॥ दूसरे क़िस्मका कचनार भी उसीके समान होताहै ॥ और उनका फूल हलका होता है ॥ रूखा क़ाबिज़ रक्तपित्त प्रदर क्षय कास इनका नाशक है ॥ २१५ ॥

अथ सहिञ्जन श्यामः श्वेत रक्तश्च ।] शोभाञ्जनः शिग्रु तीक्ष्णा गन्धका क्षीवमोचकः ॥ तद्बीजं श्वेत मरिचं मधु शिग्रुःसलोहितः ॥ २१६ ॥ शिग्रुः कटुः कटुः पाके तीक्ष्णोष्णो मधुरो लघुः ॥ दीपनो रोचनो रूक्षः क्षारस्तिक्तो विदाहकृत् ॥ २१७ ॥ संग्राही शुक्लो हृद्यो पित्त रक्त प्रकोपनः ॥ चक्षुष्यः कफ वातघ्नो विद्रधि श्वयथु कृमीन् ॥ २१८ ॥

भा॰ अनन्तर सहजना काला सुफैद लाल ॥ शोभांजन शिग्रु तीक्ष्णा गंधक आक्षीव मोचक । उसकाबीज सफ़ेद मिरचके समान है । मधुर सेहजना कुछलाल होता है ॥ २१६ ॥ सेंजना कड़ुवा पाकमें कटु तीक्ष्ण उष्ण मधुर हलका दीपन रोचन रूक्ष क्षार तिक्त विदाहको करनेवाला । ॥ २१७ ॥ क़ाबिज़ शुक्रको उत्पन्नकरनेवाला हृदयको अच्छा करनेवाला पित्तरक्तका कोपकरनेवाला चक्षुके हित कफ वातका नाशक विद्रधी

सज्जन कृमि । इनको नाश करता है ॥ २१८॥

मेदो प ची विष स्रीह गुल्म गराड व्रणान् हरेत् ॥ श्वे-
नः प्रोक्त गुणो ज्ञेयो विशेषाद्दाह कृद्भवेत् ॥ २१९ ॥
स्रीहाने विद्रधिं हन्ति व्रणघ्नः पित्त रक्त हत् ॥ मधु
शिग्रुः प्रोक्त गुणो विशेषाद्दीपनः सरः ॥ २२० ॥
शिग्रु वल्कल पत्राणां स्वरसः परमार्त्तिहृत् ॥ चक्षु-
ष्यं शिग्रुजं बीजं तीक्ष्णोष्णं विषनाशनम् ॥ २२१ ॥
अवृष्यं कफ वातघ्नं तन्नस्येन शिरोर्त्तिनुत् ॥

भा० मेद अपचि विष पिलही बायगोला गराड व्रण इनको नाश करता है । सुफेद कहे हुवे गुण के समान जान लेना । विशेष करके दाह को करता है ॥ २१९ पिलही विद्रधी को नाश करता है व्रणका नाशक है पित्त रक्तको दूर करता है ॥ सहेजन का बीज कहे हुवे गुणवाला विशेष करके दीपन ॥ २२० ॥ सहेजन की छाल पत्र इनका स्वरस अत्यन्त पीड़ाको नाश करनेवाला है और चक्षुको हित सहजने का बीज तीखा उष्ण विषका नाशक है ॥ २२१ ॥ धातुको वक्षीण करनेवाला कफ वातका नाशक और येह नास लेनेसे सिरकी पीडाको नाश करता है ॥

[अथ श्वेतपुष्पा नीलपुष्पा अपराजिता ।] आस्फोता
गिरिकर्णी स्या द्विष्णुक्रान्ता पराजिता ॥ अपराजि
ते कटु मेध्ये शीते कण्ठे सुदृष्टि दे ॥ २२२ ॥ कुष्ठ
मूत्र त्रिदोषाम शोथ व्रण विषापहे ॥ कषाये कटु
के पाके तिक्ते च स्मृति बुद्धि दे ॥ २२३ ॥

भा० अनन्तर सुफेद फूल और नीले फूलकी विष्णुक्रान्ता ॥ आस्फोता गिरिकर्णी विष्णुक्रान्ता अपराजिता येह विष्णुक्रान्ताके नाम हैं ॥ विष्णुक्रान्ता कड़वी और बुद्धीको उत्पन्न करनेवाली शीतल कंठको अच्छा कर

ने वाली ॥ २२२ ॥ अच्छी दृष्टिको देनेवाली कुष्ठ मूत्रदोष आम शोथ व्रण विष इनको नाशक ॥ कसेली कड़वी पाकमें तिक्तभी । और स्मृति बुद्धी- को देनेवाली है ॥ २२३ ॥

अथ मेउडी सम्भालू । सिन्दुवार इति च ।] सिन्दुवा- रः श्वेतपुष्पः सिंदुकः सिन्दुवारकः ॥ नीलपु- ष्पी तु निर्गुण्डी शेफाली सुवहा च सा ॥ २२४ ॥ सिन्दुकः स्मृतिदस्तिक्तः कषायः कटुको लघुः ॥ केश्या नेत्र हितो हन्ति शूल शोथा ममारुतान् ॥ २२५ ॥ क्रमि कुष्ठा रुचि श्लेष्म ज्वरान्नीलापि तद्विधा । सिन्दुवारदलं जन्तु वातश्लेष्म हरं लघु ॥ २२६ ॥

भा० अनन्तर मेउडी संभालू ॥ सिंदुवार इस प्रकार भी कहतेहैं ॥ सिंदुवार श्वेतपुष्प सिंदुक सिंदुवारक नीलपुष्पी निर्गुंडी शिफाली सुवाहा येह मेउडी के नामहैं ॥ २२४ ॥ मेउडी स्मृति को देने वाली तिक्त कसे- ली कड़वी हलकी ॥ केशको अच्छा करनेवाली । नेत्रके हित होती है ॥ और शूल शोथ आम वायु इनको नाश करती है ॥ २२५ ॥ क्रमि कुष्ठ अ रुचि कफ ज्वर इनको नाश करती है ॥ वोह नीलीभी दो प्रकारकी होती है । मेउडी का पत्र क्रमि वात कफ इनका नाशक हलका होता है ॥२६

अथ कौरैय्या ।] कुटजः कूटजः कोटी वत्सको गिरिम ल्लिका ॥ कालिङ्गः शक्रशाखी च मल्लिका पुष्प इत्यपि ॥ २२७ ॥ इन्द्रो यवफलः प्रोक्तो वृक्षकः पा- डु रद्रुमः ॥ कुटजः कटुको रूक्षो दीपनः स्तुवरो हिमः ॥ २२८ ॥ अर्शोऽतिसार पित्तास्त्र कफतृष्णा मकुष्ठनुत् ॥

भा० अनन्तर कुरैय्या कुब्ज कुब्ज कोठी वत्सक गिरि मल्लिका कालिंग शक्र शाक मल्लिका पुष्प । येह कुरैया के नाम हैं ॥ २२७ ॥ और इन्द्रयव फल वृक्षक पांडुर द्रुम यहभी कुरैया के नामहैं । कुरैया कडवी रूखी दीपन कसैली ठंढी ॥ २२८ ॥ होतीहै । और बवासीर अतीसार रक्त पित्ततथा आम कुष्ठ इनकी नाशक है ॥

अथ कण्टकरेजा करञ्ज घोरा करञ्ज ॥ करञ्जो नक्तमालश्च करञ्जश्चिर बिल्वकः ॥ घृतपूर्णकरञ्जोऽन्यः प्रकीर्य्यः पूतिकोऽपि च ॥२२९॥ स चोक्तः पूतिकरञ्जः सोमवल्कश्च स स्मृतः ॥ करञ्जः कटुकस्तीक्ष्णो वीर्य्योष्णो योनि दोषहृत् ॥ २३० ॥ कुष्ठोदावर्त्त गुल्मार्शो व्रण कृमि कफापहः ॥ तत्पत्रं कफ वातार्शः कृमि शोथ हरं परम् ॥२३१॥ भेदनं कटुकं पाके वीर्य्योष्णं पित्तलं लघु ॥ तत्फलं कफ वातघ्नं मेहार्शः कृमि कुष्ठजित् ॥ २३२ ॥ घृतपूर्णकरञ्जोऽपि करञ्ज सदृशो गुणैः ॥

भा० अनन्तर कण्टकरेजा करंज घोरा करंज को कहतेहैं ॥ करंज नक्तमाल चिरबिल्वक घृतपूर्ण और दूसरा करंज प्रकीर्य पूतिकभी कहतेहैं ॥ २२९ ॥ वोह पूतिकरंज कहा गया है ॥ और वही सोमवल्क भी कहा गया है ॥ करंजवा कडुवा तीखा उष्णवीर्य में उष्णयोनि दोषका नाशक है। और कुष्ठ उदावर्त्त गुल्म बवासीर व्रण कृमिकफ इनका नाशक है ॥ उस्का पत्र कफवात बवासीर कृमि सूजन इन का नाशक है ॥ २३१ ॥ भेदन कडुवा पाकमें वीर्य्यमें उष्ण पित्तकोकर नेवाला ॥ हलका होताहै ॥ उस्का फल कफ वातका नाशक प्रमेह बवासीर कृमि कुष्ठ इनका जीतनेवाला ॥ २३२ ॥ घृतपूर्ण नाम दूसरा करंजवा

भी करञ्जवे के सदृश गुणमें है ॥ [अथ अगारि।]

उदकीर्य्य स्तृतीयो ऽन्यः षड्ग्रन्था हस्तिवारुणी ॥
मर्कटी वायसी चापि करञ्जी करभञ्जिका ॥२३३॥
करञ्जी स्तम्भनी तिक्ता तुवरा कटु पाकिनी ॥ वी-
र्य्योष्णा वमि पित्तार्शः कृमि कुष्ठ प्रमेह जित् ॥२३४
अथ श्वेत रक्त गुञ्जा।] श्वेता रक्तोच्चटा प्रोक्ता कृष्णला-
चापि सा स्मृता ॥ रक्ता सा काक चिञ्ची स्यात् का-
कानन्ता च रक्तिकः ॥ २३५॥ काकादनी काकपी
लुः सा स्मृता काकवल्लरी ॥ गुञ्जाद्वयन्तु केश्यं
स्यात् वात पित्त ज्वरा पहम् ॥ २३६ ॥ मुख शोष
भ्रम श्वास तृष्णा मद विनाशनम् ॥ नेत्रामय हरं
वृष्यं वल्यं कण्डू व्रणं हरेत् ॥ २३७ ॥ कृमीन्द्रलु-
प्त कुष्ठानि रक्ता च धवला पि च ॥

भा० अनन्तर डार करञ्ज। उदकीर्य्य और तीसरा करंजवा हस्ति वारुणी षड्ग्रन्था ॥ मर्कटी वायसी करंजी करभंजिका येह डार करंज के नाम हैं ॥२३३॥ डार करंज स्तंभन करनेवाली तिक्त कसैली कटु पाक वाली ॥वी र्य्य में उष्णहोती है ॥ और वमन पित्तकी बवासीर कृमि कुष्ठ प्रमेह इ-नको जीतनेवाली होती है ॥ २३३॥

अनन्तर सुफेद और लाल चिरमिठी को कहते हैं ॥ सफेद और लाल को उच्चय और कृष्णला भी कहाहैं ॥ और लालको काकचिञ्ची का कानन्ता रक्तिक ॥ २३५॥ काकादनी काक पीलू काकवल्लरी। येह लाल चिरमिठीके नाम हैं ॥ दोनों चिरमिठियां केशको हित कारती हैं और वात पित्त ज्वरको नाशक हैं ॥ २३६ ॥ तथा मुख शोष भ्रम श्वास तृषा मद इनकी नाशक है ॥ और नेत्र रोग को दूर करनेवाली पुष्ट बलकोकर

ने वाली तथा कण्डू व्रण इनको भी नाशकरती है ॥ २३७॥ और कृमि लुप्त कुष्ट लाल सुफेद भी इनको नाशकरती है ॥

कपिकच्छुरात्मगुप्ता वृष्या प्रोक्ता च मर्कटी ॥ अजरा कण्डूराव्यङ्गा दुःस्पर्शा प्रावृषायणी ॥ २३८॥ लाङ्गली शूकसिम्बी च सैव प्रोक्ता महर्षिभिः ॥ कपिकच्छू र्भृशं वृष्या मधुरा बृंहणी गुरुः ॥ २३९ ॥ तिक्ता वातहरी वल्या कफ पित्तास्त्र नाशिनी ॥ तद्बीजं वात शमनं स्मृतं वाजीकरं परम् ॥ २४० ॥

भा० अनन्तर किमांच ॥ कपिकच्छू आत्मगुप्ता वृष्या मरकटी ॥ अजरा कण्डुरा,व्यंगा दुस्पर्शा प्रावृषायणि ॥ २३८ ॥ लांगली सूक शिम्बी येह किमांच के नाम महर्षियों ने कहे हैं ॥ किमांच अत्यन्त धातुको बढ़ाने वाली मधुर पुष्ट भारी होती है ॥ २३९ ॥ और तिक्त वातकी नाशक बलकरनेवाली कफ रक पित्तकी नाशक होती है । और उसका बीज वात का नाशक होता है अत्यन्त वाजीकरण कहा गया है ॥ २४०॥

अथ रोहिणी ।] मांसरोहिण्य निरुहा वृत्ता चर्मकरी कृशा ॥ प्रहारवल्ली विकशा वीरवत्यपि काथ्यते ॥ ॥२४१॥ स्यान्मांसरोहिणी वृष्या सरा दोषत्रया पहा ॥ [अथ चिलह ।] चिह्लको वात निहारी श्लेष्मघ्नो धातुपुष्टिकृत् ॥ आग्नेयो विषवद्यस्य फलमस्य निषूदनम् ॥ २४२ ॥

भा० अनन्तर रोहिणी ॥ मांसरोहिणी अतिरुहा वृत्ता चर्मकारी कृश प्रहारवल्ली विकषा वीरवती येह रोहणी के नाम हैं ॥ २४१ ॥ मांसरोहणी पुष्ट सर दोषत्रयको नाशक होती है ॥ [अनन्तर चिलह ।

चिल्हक वातनिरहार श्लेष्मघ्न। येह चील्हके के नामहैं ॥ चील्ह श्लेष्म का नाशक धातू का पुष्ट करनेवाला ॥ और इसका जिस्का फल विषके स मान मञ्जरीका नाशक होताहै ॥२५२॥ [अथटङ्कारि।]

टङ्कारि वातजिज्जिह्वा श्लेष्मघ्नी दीपनी लघुः ॥
शोथोदर व्यथा हन्त्री हिता पीठ विसर्प्पिणाम् ॥
॥२५३॥ [अथवेतसः। वेतसो नम्रकः प्रोक्तो
वानीरो वञ्जुलस्तथा॥ अभ्रपुष्पश्च विदुलो र-
थ शनिश्च कीर्तितः ॥२५४॥ वेतसः शीतलो दाह
शोथार्शो योनिरुक् प्रणुत् ॥ हन्ति विसर्प कच्छा-
स्र पित्ताश्मार कफानिलान् ॥२५५॥

भा॰ अनन्तर टंकारी ॥ टंकारी वातको जीतनेवाली कफ नाशक दीपन हलकी ॥ शोथ उदर व्यथा इनको नाशकरनेवाली और पीठ विसर्परोगवा लोंको हित होतीहै ॥ २५३ ॥ अनन्तर बेतस । बेतस नम्रकः वानीर वञ्जु ल अभ्रपुष्प विदुल रथशीत येह बेतके नाम हैं ॥ २५५ ॥ शीतल दाह शोथ बवासीर योनिपीड़ा इनको नाशकरनेवालीहै ॥ और विसर्प मूत्र कच्छ्र रक्तपित्त अश्मरी कफ वायु इनको नाशकरताहै ॥ २५५ ॥

अथ जलवेतसः।] निकुञ्चकः परिव्याधो नादेयो ज-
लवेतसः ॥ जलजो वेतसः शीत कुष्ठहृद्वातकोप-
नः ॥२५६॥ [अथ इज्जल समुद्रफल इति लोके]
इज्जलो हिज्जलश्चापि निचुलश्चाम्बुजस्तथा ॥
जल वेतसवद्वेद्यो हिज्जलोऽयं विषापहः ॥२५७॥

भा॰ अनन्तर जलवेतस ॥ निकुञ्चक परिव्याध नादेय जलवेतस येहनाम जलवेतके ॥ जलवेत शीतल कुष्टकानाशक वातका प्रकोप करनेवाला है ॥ २५६॥ अनन्तर इज्जल समुद्रफल ऐसा लोकमें । इज्जल हिज्ज

ल निचुल अम्बुज। येह समद्र फल के नामहैं॥जलवेत के समान इसको जनना चाहिये। येह विषका नाशक है॥ २४७॥

अथदेरा। अङ्कोटो दीर्घकील: स्यादङ्कोलश्च निकोचक:॥ अङ्कोटक: कटुस्तीक्ष्ण: स्निग्धोष्णस्तुवरो लघु:॥ २४८॥ रेचन: कृमि शूलाम शोफ ग्रह विषापह:॥ विसर्प कफ पित्तास्र मूषकाहि विषापह:॥२४९॥ तत् फलं शीतलं स्वादु श्लेष्मघ्नं वृंहणं गुरु॥ वल्यं विरेचनं वात पित्तदाह क्षयास्र जित्॥२५०॥

भा०अनन्तर अंरवोठ॥अंकोट दीर्घकी अंकोल निकोचक येह हिंगोट के नाम है॥ हिंगोट कड़वा तीक्ष्ण चिकना उष्ण कसैला हलका॥२४८॥ रेचन कृमि शूल आंव शोथ ग्रह विष इनकानाशहै॥ विसर्प कफ रक्त पित्त चूहा सर्प इनके विषकानाशक है॥२४९॥ उसफल शीतल मधुर कफका नाशक धातकोबढ़ानेवाला भारी॥ बलको करनेवाला रेचक वात पित्त दाह क्षय रक्त इनका जीतनेवाला है॥२५०॥

(अथ वरि आर सहदेवी ककहिआ गुलसकरी। इति वलाचतुष्टयम्।)

वाट्या वाट्यालिका वाट्या सैवचाट्यालका ऽपि च॥ महाबला पीतपुष्पा सहदेवी च सा स्मृता॥२५१॥ ततोऽन्यातिबला ऋष्य प्रोक्ता कङ्कतिका च सा। गाङ्गेरुकी नागबला ह्येषा ह्रस्वा गवेधुका॥२५२॥ बला चतुष्टयं शीतं मधुरं बलकान्ति कृत्॥ स्निग्धं ग्राहि समीरास्र पित्तास्र क्षत नाशनम्॥२५३॥

वला मूलत्वच श्चूर्णं पीतं स क्षीरशर्करम् ॥ मूत्रा
तिसारं हरति दृष्टमेतन्न संशयः ॥ २५४ ॥ हन्ति म-
हाबला कृच्छ्रं भवेद्वातानुलोमनी ॥ हन्यादति ब-
ला मेहं पयसा सितया सकम् ॥ २५५ ॥

भा० अनन्तर वरिया सहदेई वीट् या गुलशकरी येह वला चतुष्टय है ॥ वाद्या वाद्यालिक । येह वरियारि के, महाबला शीतपुष्पा सहदेवी येह सहदेई के नाम हैं ॥ २५१ ॥ और उसे दूसरी ककनिका अतिबला येह ककरैया के नाम ऋषियोंने कहेहैं ॥ गाङ्गेरुकी नागबला ह्रस्वागवेधुका येह गुलशकरी के नाम हैं ॥ २५२ ॥ येह चारों शीत मधुर बलकान्ति को करनेवाली ॥ चिकनी काबिज़ वात रक्त पित्त रक्त क्षत इनको नाश करने वाली है ॥ २५३ ॥ वरियारे की जड़के छालके चूरण को दूध और शकर के साथ पीनेसे मूत्रातीसार को नाशकरता है । यह देखा है इसमें संशय नहीं ॥ और महाबला मूत्र कृच्छ्र को नाश करती है ॥ और वातको अनुलोमन करनेवाली है ॥ और गुलशकरी दूध और चीनी के साथ पीने से प्रमेह को नाश करती है ॥ २५५ ॥

और ✱ और इसीको बाला नामसे भी कहते हैं ।

अथ लक्ष्मणा ।] पुत्रकाकार रक्ताल्प बिन्दुभिर्ला-
ञ्छिता सदा ॥ लक्ष्मणा पुत्रजननी वस्तगन्धा
कृतिर्भवेत् ॥ २५६ ॥ कथिता पुत्रदावश्यं लक्ष्म-
णा मुनिपुङ्गवैः ॥ [स्वर्णवल्ली ।]
स्वर्णवल्ली रक्तफला काकायुः काकवल्लरी ॥ स्व
र्णवल्ली शिरःपीडां त्रिदोषान् हन्ति दुग्धदा ॥ ५७

भा० अनन्तर लक्ष्मणा ॥ पुत्रकाकार रक्तअल्प बिंदुओंसे लांछित होती है लक्ष्मणा पुत्रजननी वस्तगन्धा ॥ २५६ ॥ पुत्रदा येह लक्ष्मणा के नाम हैं ॥ मुनि श्रेष्ठोंने लक्ष्मणा अवश्य पुत्रको देनेवाली है ऐसा

कहाहै ॥ [अनन्तर स्वर्णवल्ली] स्वर्णवल्ली रक्तफला कंकायु काकवल्लरी ॥ स्वर्णवल्ली सिरकीपीड़ाको और त्रिदोषको नाशकरती है ।और दुग्धको करनेवाली है ॥२५७॥

अथ कपास] कार्पासी तुण्डकेरी च समुद्रान्ता च कथ्यते ॥ कर्पासकी लघुः कोष्णा मधुरा वातनाशनी ॥२५८॥ तत्पत्रं समीरघ्नं रक्तकन्मूत्रवर्द्धनम् ॥ तत्कर्णपीड़का नाद पूयास्राव विनाशनम् ॥२५९॥ तद्बीजं स्तन्यदं वृष्यं स्निग्धं कफकरं गुरु ॥

भा० अनन्तर कपास। कार्पासी तुण्डकेरी समुद्रान्ता ।येह कपासके नाम हैं-कपास हलका कुछ गरम मधुर वातनाशक है ॥ २५८॥ उसका पत्ता वातकानाशक रक्तको करनेवाला और मूत्रका बढ़ानेवाला है। और कर्णपीड़ा नाद पूयकास्राव इनका भी नाशक है ॥ २५९॥ उसका बीज दूधको बढ़ानेवाला शुक्रको उत्पन्न करनेवाला कफ करनेवाला भारी होता है ॥

अथ वंश।] वंशस्त्वक् सारकर्मार त्वचिसारः तृणध्वजः ॥ शतपर्वा शतफली वेणुमस्कर तेजनाः ॥ ॥२६०॥ वंशः सरो हिमः स्वादुः कषायो वस्तिशोधनः ॥ छेदनः कफपित्तघ्नः कुष्ठास्रव्रणशोथजित् ॥२६१॥ तत करीरः कटुःपाके रसे रूक्षो गुरुः सरः ॥ कषायः कफकृत् स्वादु विदाही वातपित्तलः ॥२६२॥ तद्यवास्तु सरा रूक्षाः कषायाः कटुपाकिनः ॥ वातपित्तकरा उष्णा बद्धमूत्राः

कफापहा: ॥ २६३॥ [अथ नलः।]

नलः पोटगलः शून्यमध्यश्च धमनस्तथा ॥
नलस्तु मधुरस्तिक्तः कषायः कफरक्तजित् ॥ २६४॥
उष्णो हृद्वस्ति योन्यर्त्तिदाह पित्त विसर्प हृत् ॥

भा० अनन्तर वांस। वंश त्वक्सार कर्मार त्वचिसार तृणध्वज ॥ शतपर्वा, शतफली वेणु मस्कर तेजन, येह वांस के नाम हैं ॥ २६०॥ वांस वायु को अनुलोम करनेवाला शीतल मधुर कसेला वस्तिका शोधन ॥ छेदन कफ पित्तका नाशक कुष्ठ रक्त घाव शोथ इनको जीतनेवाला है ॥ २६१॥ उसका अङ्कुर पाकमें कडुवा रसमें कडुवा रूखा भारी दस्तावर ॥ कसेला कफको करनेवाला मधुर विदाही वातपित्तको करनेवाला होता है ॥ २६२॥ उसके जौ वायुको अनुलोम करनेवाले रूखे कसैले कटुपाकवाले ॥ वात पित्तको करनेवाले उष्ण मूत्रको रोकनेवाले कफके नाशक होते हैं ॥ २६३॥

अनन्तर नड ।] नल पोटगल शून्यमध्य धमन येह नरकट के नाम हैं ॥ नरकट मधुर तिक्त कसेला कफ रक्तको जीतनेवाला होता है ॥ २६४॥ उष्ण हृदय वस्ति योनि इनकी पीडा दाह पित्त विसर्प इनका नाशक है ॥ [अथ रामशर।](शरपत इति वा।

भद्र मुञ्जः शरो वाणः तेजनश्चक्षु वेष्टनः ॥
[अथ मुञ्जः।] मुञ्जो मुञ्जातको बाणः स्थूलदर्भः सुमेखलः ॥ २६५॥ मुञ्जद्वयन्तु मधुरं तुवरं शिशिरं तथा ॥ दाह तृष्णा विसर्पास्र मूत्र कृच्छ्राक्षि रोग जित् ॥ २६६॥ दोषत्रय हरं वृष्यं मेखलासूपयुज्यते ॥

भा० अनन्तर रामशर या सरपत।] भद्रमुञ्ज शर वाण तेजन चक्षु वेष्टन येह सरपत के नाम हैं। [अनन्तर मुञ्ज।] मुंज मुंजातक वाण स्थूलदर्भ सुमेखल येह मूंजके नाम हैं ॥ २६५॥ दोनो मूंज मधुर कसे

ले शीतल होतेहैं ॥ और दाह तृषा विसर्प मूत्र कृच्छ्र नेत्र रोग इनकोजी तने वालेहैं ॥ २६६॥ तथा तीनोंदोषोंके नाशक धातुके पुष्ट करनेवाले होतेहैं ॥ और मेखला में उस्का उपयोग किया जाताहै ॥

अथ काशः।] काशः काशेक्षुरुद्दिष्टः स स्यादिक्षुसरस्तथा ॥ इक्ष्वालिके क्षुगन्धा च तथा पोटगलस्मृतः ॥२६७॥ काशः स्यान्मधुरस्तिक्तः स्वादुपाको हिमः सरः ॥ मूत्रकृच्छ्राश्मदाहास्र क्षय-पित्तजरोगजित् ॥ २६८॥

भा० अनन्तर कांस।] कांस कसेक्षु इक्षुसर इक्ष्वालिक इक्षुगन्धा पोटगल येह कांसके नामहैं ॥ २६७॥ कांस मधुर तिक्त पाकमें मधुर शीतल दस्तावर ॥मूत्र कृच्छ्र पथरी दाह रक्तक्षय पित्तके रोगोंको जीतनेवाला होताहै ॥ २६८॥ [गन्दपटेर इति च।]

गुन्द्रः पटेरकोरुच्छः शृङ्गवेराभ मूलकः॥ गुन्द्रः कषायो मधुरः शिशिरः पित्तरक्तजित् ॥ २६९॥ स्तन्यः शुक्ररजोमूत्र शोधनो मूत्रकृच्छ्रहृत् ॥

मोथीलक्षण विशेषः।] एरका गुन्द्रमूला च शिविर्गुन्द्रा शरीति च ॥ एरका शिशिरा वृष्या चक्षुष्या वात कोपिनी ॥ २७०॥ मूत्रकृच्छ्राश्मरी दाह पित्त शोणित नाशिनी ॥

भा० अनन्तर गन्धपटेर ॥गुन्द्र पटेर कोरुच्छ शृंगवेराभ मूलक येह गंध पटेरके नाम हैं ॥ गन्धपटेर कसैला मधुर शीतल पित्तरक्तको जीतनेवाला ॥ २६९॥ दूधको उत्पन्न करनेवाला शुक्र रज मूत्र इनका शोधक और मूत्र कृच्छ्र का नाशक होताहै ॥

अनन्तर मोथी तृण विशेष है ॥ शरका गुन्द्रमूला थिवीगुन्द्रा यारी येह मोथी के नामहैं ॥ मोथी शीतल धातुको पुष्ट करनेवाली नेत्रके वातको प्रकोप करनेवाली ॥ २७०॥ मूत्रकृच्छ्र अश्मरी दाह रक्तपित्त इनको नाश करनेवाली है ॥

[अथ कुशा।]

कुशो दर्भस्तथा बर्हिः सूच्यग्रो यज्ञभूषणः॥ [अथ डाभ।] ततोऽन्यो दीर्घपत्रः स्यात् क्षुरपत्रस्तथैव च ॥ दर्भद्वयं त्रिदोषघ्नं मधुरं तुवरं हिमम् ॥ ॥ २७१ ॥ मूत्रकृच्छ्राश्मरी तृष्णा वस्तिरुक् प्रदरास्रजित् ॥ [अथ कर्तृणम्।] (रोहिस सोधिया इति च।) कत्तृणं रौहिषं देवजग्धं सौगन्धिकं तथा। भूतीकं ध्यामपौरञ्च श्यामकं धूमगन्धिकम् ॥ २७२ रौहिषं तुवरं तिक्तं कटुपाकं व्यपोहति ॥ हृत्कण्ठव्याधिपित्तास्रशूलकासकफज्वरान् ॥ २७३॥

भा० अनन्तर कुशा ॥ कुश दर्भ बर्हि सूच्यग्र यज्ञभूषण येह कुशा के नाम हैं ॥ अनन्तर डाभ।] उससे दूसरे क़िस्म का कुशा॥ दीर्घपत्र क्षुरपत्र येह डाभके नामहैं ॥ येह दोनों कुशा त्रिदोष नाशक मधुर कसैली शीतल ॥ २७१॥ मूत्रकृच्छ्र अश्मरी तृषा पेडू कीपीड़ा प्रदर रक्त इनकी नाशक है ॥ [अनन्तर कर्तृण। रोहिश सोध्या इस प्रकार लोक में कहते हैं ॥ कत्तृण रौहिश देवजग्ध सौगन्धिक ॥ भूतीक, ध्याम, पौर, श्यामक, श्यामक, धूमगन्धिक। येह पीले किस्मकी खसके नाम हैं ॥ २७२॥ कत्तृण कसैला तिक्त कटु पाक में होताहै ॥ और हृदय कंठके रोग रक्तपित्त शूल कास कफ ज्वर इनको नाश करता है ॥ २७३॥

[अथ भूस्तृणम्।

गुह्यबीजन्तु भूतीकं सुगन्धं जम्बुक प्रियम् ॥

भूतृणं तु भवेच्छत्रा माला तृणकमित्यपि ॥ २७४॥ भूतृणं कटुकं तिक्तं तीक्ष्णोष्णं रेचनं लघु ॥ विदाहि दीपनं रूक्षं मनेत्र्यं मुख शोधनम् ॥ २७५॥ अवृष्यं बहु विट्कञ्च पित्तरक्त प्रदूषणम् ॥

भा० अनन्तर भूतृण ॥ गुह्यबीज भूतीक सुगंध जम्बुकप्रिय येभूतृणके नामहैं ॥ येहभी एक घाससुगंधकी क़िस्म सेहै ॥ भूतृण छत्रा माला तृणक। येहभी उसीकेनाम हैं ॥ २७४ ॥ भूतृण कडुवा तिक्त तीक्ष्ण उष्ण रेचन हलका ॥ विदाही दीपन रूक्ष ।नेत्रके अहित मुखका शोधन ॥ २७५॥ नपुंसकता को करनेवाला बहुत मलको उत्पन्न करने वाला पित्त रक्तको बिगाड़नेवाला होताहै ॥

[अथ नीलदूर्वा ।] नीलदूर्वा रुहानन्ता भार्गवी शतपर्विका ॥ शाष्पं सहस्रवीर्य्या च शतवल्ली च कीर्त्तिता ॥ २७६ ॥ नीलदूर्वा हिमा तिक्ता मधुरा तुवरा हरा ॥ कफ पित्तास्र वीसर्प तृष्णा दाहत्वगामयान् ॥२७७॥ [अथ श्वेत दूर्व्वा ।]

दूर्व्वा शुक्ला तु गोलोमी शत वीर्य्या च कथ्यते श्वेता दूर्व्वा कषाया स्यात् स्वाद्वी व्रण्या च जीवनी ॥ २७८॥ तिक्ता हिमा विसर्पास्र तृट् पित्त कफदाहहृत्

भा० अनन्तर नील दूर्वा ॥ नील दूर्वा रुहा अनन्ता भार्गवी शत पर्विका । येह नील दूर्वा के नामहैं ॥ शाष्प सहस्रवीर्या शतवल्ली, येह काली दूबकेनाम हैं ॥ २७६ ॥ कालीदूब शीतल तिक्त मधुर कसेली होतीहै ॥ और कफ रक्तपित्त विसर्प तृषा दाह त्वचाके रोग इनको नाश करनेवाली है ॥ २७७॥ अनन्तर सफ़ेद दूब । श्वेतदूर्वा गोलोमी शतवीर्या यह सफ़ेद दूबके नामहैं ॥ सफ़ेद दूब कसैली मधुर घाव को अच्छा करनेवाली जीवन ॥ २७८॥ तिक्त शीतल कसैली विसर्परक्त

तृषा पित्त कफ दाह इनकी नाशक है ॥

[अथ गाण्डरि दूर्विषाच इति च।]

गण्ड दूर्व्वातु गण्डाली मत्स्याक्षी शकुलादकः॥ गण्ड दूर्व्वा हिमा लोह द्राविणी ग्राहिणी लघुः॥ ॥२७९॥ तिक्ता कषाया मधुरा वातकृत्कटु पाकि- नी॥ दाह तृष्णा बलासास्र कुष्ठ पित्त ज्वरापहा॥८० २८०॥ [अथ विदारीकन्दः क्षीर विदारी गेंठि इति लो- के।] वाराही कन्द एवान्ये चर्मकारालुकोमतः॥ अनूप सम्भव देशे वाराह इव लोमवान्॥२८१॥ विदारी स्वादुकन्दा च सातु क्रोष्ट्री सिता स्मृता॥

भा० अनन्तर गाण्डर॥ गंडदूर्वा- कंडाली- मत्स्याक्षि- शकुला- अ क्षक येह गांडर के नाम हैं॥ गांडर शीतल लोहे को गलाने वाली का विज्ञ हलकी होती है॥२७९॥ और तिक्त कसैली मधुर वातको करने वाली पाकमें कटु॥ दाह तृषा कफ रक्त कुष्ठ पित्तज्वर इनकी नाशक है ॥२८०॥ [अनन्तर विदारीकन्द को कहते हैं। क्षीर विदारी गेंठी ऐसा भी लोकमें कहते हैं।] वाराहीकन्द ही को कोई आचार्य्य चर्मका रालुक कहते हैं॥ अनूप देश में वाराह के समान रोमवाला होता है। ॥२८१॥ विदारी स्वादुकन्दा क्रोष्ट्री सिता॥ इक्षुगंधा- क्षीरवल्ली- क्षी र शुक्ला- पयस्वनी॥

इक्षुगन्धा क्षीर वल्ली क्षीरशुक्ला पयस्विनी॥२८२॥ वाराह वदना गृष्टि र्वदरे त्यपि कथ्यते॥ विदारी मधुरा स्निग्धा बृंहणी स्तन्य शुक्रदा॥२८३॥ शीता- स्वर्य्या मूत्रला च जीवनी बल वर्णदा॥ गुरुः पित्तास्र

पवन दाहान् हन्ति रसायनी ॥ २८४ ॥

अथ मुशलीकन्दम् ॥] ताल मूली तु विद्वद्भि र्मुशली यरि कीर्त्तिता ॥ मुशली मधुरा वृष्या वीर्य्योष्णा वृंहणी गुरुः ॥ २८५ ॥ तिक्ता रसायनी हन्ति गुद जान्यनिलन्तथा ॥

भा० वराह वदना ग्रष्टी वदरा येह नाम विदारीकन्द के हैं ॥ विदारीकंद मधुर स्निग्ध पुष्ट दुग्ध शुक्र को उत्पन्न करनेवाला ॥ २८३ ॥ शीत स्वर को अच्छा करनेवाला मूत्रको उत्पन्न करनेवाला जीवन बल वर्णको देनेवाला ॥ भारी है और रक्तपित्त वात दाह इनका नाश करता है और रसायन है ॥ २८४ ॥ [अनन्तर मूसली । तालमूली को विद्वानों ने मूसली ऐसा कहा है । मूसली मधुर पुरुषत्व को उत्पन्न करनेवाली वीर्य में उष्णा और पुष्ट भारी होती है ॥ २८५ ॥ और तिक्त रसायन है तथा ब वासीर वात इनको नाश करती है ॥

[अथ शतावरी महाशतावरी ।] शतावरी बहु सुता भीरु रिन्दीवरी वरी ॥ नारायणी शत पदी शत्त-वीर्य्या च पीवरी ॥ २८६ ॥ महा शतावरी चान्या श-तमूल्यर्द्ध कण्टिका ॥ सहस्रवीर्य्या हेतु श्च ऋष्या प्रोक्ता महोदरी ॥ २८७ ॥ शतावरी गुरुः शीता तिक्ता स्वाद्वी रसायनी ॥ मेधाग्नि पुष्टिदा स्निग्धा नेत्र्या गुल्मातिसार जित् ॥ २८८ ॥ शुक्र स्तन्य करी बल्या वात पित्तास्र शोथ जित् ॥ महा शतावरी मेध्या हृद्या वृष्या रसायनी ॥ २८९ ॥ शीत वीर्य्या निह-न्त्यर्शो ग्रहणी नयना मयान् ॥

भा० अनन्तर शतावर और महाशतावर ।] शतावरी·बहुसुता·भीरु·इन्दीवरी·वरी·नारायणी·शतपदी·शतवीर्य्या·पीवरी ॥ २८६ ॥ येह शतावर के नाम हैं ॥ दूसरी महाशतावरी ॥ शतमूली·अर्धकुण्टिका·सहस्रवीर्य्या·हेतु चरिष्या·महोदरी·येह बड़ी शतावर के नाम हैं ॥ २८७ ॥ भारी शीत तिक्त मधुर रसायन होती है और कान्ति अग्नि पुष्टि इनको देनेवाली स्निग्ध होती है ॥ और नेत्र को हित करने वाली । वायुगोला अतिसार को जीतनेवाली ॥ २८८ ॥ और शुक्र दुग्ध को करनेवाली बलके हित वात पित्त रक्त शोथ इनको जीतने वाली है ॥ बड़ी शतावर कान्तिको करनेवाली । दिलको ताकत देनेवाली पुरुषत्व को बढ़ानेवाली रसायनी होती है ॥ २८९ ॥ बड़ी शतावर बवासीर संग्रहणी नेत्ररोग इनको नाश करती है ॥

अथ असगन्धः।] गन्धान्ता वाजि नामादि रश्वगन्धा हयाह्वया ॥ वराह कर्णी वरदा वरदा कुष्ठ गन्धिनी ॥ २९० ॥ अश्वगन्धा निल श्लेष्म श्वित्र शोथ क्षयापहा ॥ वल्या रसायनी तिक्ता कषायो ष्णाति शुक्रला ॥ २९१ ॥

भा० अनन्तर असगन्ध ॥ गन्धान्ता घोड़े के नाम आदिवाला । अश्वगंधा·हयाह्वया·वराह कर्णी·वरदा·कुष्ठगन्धनी·येह असगंध के नाम हैं ॥ २९० ॥ असगंध वातकफ श्वित्र शोथ क्षय इनका नाशक बलको देनेवाला रसायन तिक्त कसैला और खानेसे शुक्रको उत्पन्न करनेवाला है ॥ २९१ ॥

अथ पाठा।] पाठांवष्ठा वष्टकीच प्राचीना पापचेलिका ॥ एकष्ठीला रसा प्रोक्ता पाठिका वरतिक्तिका ॥ पाठोष्णा कटुका तीक्ष्णा वात श्लेष्म हरी लघुः ॥ हन्ति शूल ज्वर छर्दि कुष्ठा तीसार हृद्रुजः ॥ २९३ ॥ दाह कण्डु विषश्वास क्रमि-

गुल्म गर ब्रणान् ॥ [अथ श्वेतपनिलर।]
श्वेता त्रिवृता भण्डी स्यात् त्रिवृता त्रिपुटापि च ॥
सर्व्वानुभूतिः सरला निशोत्रा रेचनी तिच ॥२६४॥
श्वेता त्रिवृद्रेचिनी स्यात् स्वादु रुष्णा समीर हृत् ॥
रूक्षा पित्तज्वर श्लेष्म पित्त शोथोदरा पहा ॥२६५॥

भा॰ अनन्तर पाठा ॥ पाठा अम्बष्ठा अम्बष्ठकी प्राचीना पापचेलिका ॥ एकष्ठीला रसा पाटिक वरतिक्तिका ॥ २६२॥ येह पाठा के नामहैं ॥ पाठा उष्ण कड़वी तीखी बात कफ को नाश करनेवाली हलकी होतीहै ॥ और शूलज्वर वमन कुष्ठ अतीसार हृदय की पीड़ा ॥२६३ दाह खुजली विष स्वास कृमि वायगोला व्रण इनको नाशकरतीहै ॥ [अनन्तर सफ़ेद निसोत ॥ श्वेता त्रिवृता भण्डी त्रिपुटा सर्वानुभूति सरला निशोत्रा रेचनी · येह सुफ़ेद निसोत के नामहैं ॥२६४ ॥ सुफेद निसोत दस्तावर होतीहै । मधुर उष्ण वातकी नाशक ॥ रूक्ष पित्तज्वर श्लेष्मपित शोथ उदर इनकी नाशक है ॥२६५॥

अथ श्यामपनिलर।] त्रिवृत श्यामार्द्ध चन्द्रा च पालिन्दी च सुषेणिका ॥ मसूर विदला कोल केषिका कालमेषिका ॥ २६६॥ श्यामा त्रिवृत ततो हीन गुणा तीव्र विरेचनी ॥ मूर्च्छादाह मद भ्रान्ति कण्ठोत् कर्षण कारिणी ॥ २६७ ॥

भा॰ अनन्तर काला निसोत ॥ त्रिवृत श्यामा अर्द्धचन्द्रा पालिन्दी सुषेणिका, मसूर विदला, कोल केषिका काल मेषिका येह कालीनिसोत के नामहैं ॥ २६६ ॥ कालीनिसोत उससे हीन गुण वाली और अधिक दस्तावर होती है ॥ तथा मूर्च्छा दाह मद भ्रान्ति कण्ठका उत्कर्षण करनेवाली होती है ॥ २६७॥

अथ लघुदन्ती।] लघुदन्ती विशल्या च स्यादुदुम्बर पर्य्यपि ॥ तथैरण्ड फला शीघ्रा श्येन घण्टा धुणा प्रिया ॥ २९८ ॥ वाराहाङ्गी च कथिता निकुम्भश्च मकूलक: ॥ [अथ वृहद्दन्ती।] एरण्ड पत्र विरुपा।] द्रवन्ती सा वरी चित्रा प्रत्यक पर्ण्याखु पर्ण्यपि ॥ चित्रोप चित्रान्यग्रोधी प्रत्यक् श्रेण्या खुकर्ण्यपि ॥ दन्ता द्वयं सरम्पाके रसे च कटु दीपनम् ॥ गुदाङ्कुराश्म शूला र्श कण्डू कुष्ठ विदाहनुत् ॥ ३०० ॥ तीक्ष्णोष्णं हन्ति पित्तास्र कफ शोथोदर क्रमीन् ॥

भा० अनन्तर छोटी दन्ती।] लघुदन्ति, विशल्या, उदुम्बरपर्णी, ॥ एरण्डफला, शीघ्रा श्येन घंटा गुणप्रिया वराहांगी ॥ २९८ ॥ निकुम्भ मकूलक येह छोटी दन्तीके नामहैं जिस्का फल जमालगोटा है ॥ अनन्तर बड़ीदन्ती इस्के पत्ते अरण्डीके पत्तोंके समान होतेहैं ॥ द्रवन्ती, वरी, चित्रा प्रत्यकपर्णी आखुपर्णी ॥ चित्रोपचित्रान्योग्रोधि प्रत्यग्श्रेणिं आखुकर्णी येहदन्तिके नामहैं ॥ २९९ ॥ दोनों दन्ति दस्तावर पाक और रसमें कडवी दीपन ॥ बवासीर पथरी शूल बवासीर खाज कुष्ट विदाह रोगकी नाशकहै ॥ ३० ॥ तीखी और उष्णहै तथा रक्तपित्त कफ शोथ उदर रोग कृमि इनकी नाशक है ॥

अथ लघुदन्ती फलम्।] क्षुद्र दन्ती फलन्तु स्यात् मधुरं रस पाकयो: ॥ शीतलं स्पृष्ट विन्मूत्रं गर शोथ कफापहम् ॥ ३०१ ॥ जय पालो दन्ति बीजं विर्य्येत स्तन्निलो फलम् ॥ जय पालो गुरु:

स्निग्धो रेचि पित्त कफापहः ॥ ३०२ ॥

इन्द्रारुण बड़ी इन्द्रकला।] ऐन्द्रीन्द्र वारुणी चित्रा गवाक्षी च गवादिनी ॥ वारुणी च पराप्युक्ता सा विशाला-महाफला ॥ ३०३ ॥ श्वेत पुष्पा मृगाक्षी च मृगेर्वारु मृगादनी ॥ गवादिनी द्वयं तिक्तं पाके कटु सरं लघु ॥ ३०४ ॥ वीर्य्योष्णं कामला पित्त कफप्लीहो दरापहम् ॥ श्वास कासा पहङ्कुष्ठ गुल्म ग्रन्थि व्रण प्रणुत् ॥ ३०५ ॥ प्रमेह मूढ गर्भा म गण्डामय विषापहम् ॥

भा० अनन्तर छोटे जमालगोटेका फल रस और पाकमें मधुर होता है ॥ और शीतलहोता है। तथा मिलेहुवे मल मूत्र को निकालनेवाला विष के शोथको कफको इनको नाश करताहे ॥ ३०१ ॥ जयपाल, दन्तिवीज, तिन्तिली फल येह जमालगोठे के नामहैं ॥ जमालगोठा भारी चिकना रेचन पित्त कफका नाशकहै ॥ ३०२ ॥ [अनन्तर इन्द्रायन।] एन्द्री इन्द्रवारुणी चित्रा गवाक्षि गवादिनी ॥ वारुणी येह इन्द्रायन के नामहैं ॥ दूसरी इन्द्रायणके नाम] विशाला महाफला ॥ ३०३ ॥ श्वेतपुष्पा मृगाक्षि मृगेर्वारु मृगादनी येह बड़ी इन्द्रायनके नामहैं ॥ दोनों इन्द्रायन तिक्त पाकमें कड़वे दस्तावर हलके ॥ ३०४ ॥ वीर्य्य में उष्ण हैं तथा कामला पित्त कफ पिलही उदररोग इनके नाशक हैं ॥ और श्वास कास के नाशक तथा कुष्ठ वायगोला गांठ व्रण इनके भी नाशक है ॥ और प्रमेह मूढगर्भ श्राव गण्डरोग गण्डमाला विष इनकी नाशक है।

अथ नील।] नीलीतु नीलिनी तूली काल दोला च नीलिका ॥ रञ्जनी श्रीफली तुच्छ ग्रामीणा मधु पर्णिका ॥ क्लीतका कालकेशी च नील पुष्पा च

सा स्मृता ॥ नीलिनी रेचिनी तिक्ता केश्या मोह भ्र
मा पहा ॥ ३०७ ॥ उष्णा हन्त्यु दर स्लीह वात रक्त क-
फानिलान् ॥ आमवात मुदावर्त्तं मन्दं च विष मु-
द्धृतम् ॥ ३०८ ॥

भा० अनन्तर नील ॥ नीली निलनी तूली कालदोला नीलिका ॥ रंज-
नी श्रीफली तुच्छ ग्रामिणा मधुपर्णिका ॥ ३०६ ॥ क्लीतका कालकेशी
नीलपुष्पा ।येह नीलके नामहैं ॥ नील रेचन तिक्त केशके हित मोह
भ्रमको नाशक है ॥ ३०७ ॥ उष्ण तथा उदर रोग पिलही वातरक्त कफवा-
त आमवात उदावर्त्त मन्दाग्नि इनको नाशकरती है ।विष निकालीहुई
॥ ३०८

अथ सरफोका ।] शरपुङ्खः स्लीह शत्रु र्नीली वृक्षा
कृति श्च सः ॥ शर पुङ्खो यकृत स्लीह गुल्म व्रण वि-
षापहा: ॥ ३०९ ॥ तिक्तः कषाय: कासास्र श्वासः
ज्वर हरो लघुः ॥

भा० अनन्तर सरफोका ॥शरपुंखा स्लीह शत्रु येह सरफोका के नामहैं
येह नीलके वृक्षके आकार होतीहै ॥ सरफोंखा तिल्ली पिलही वायगोला
व्रण विष इनकीनाशकहै ॥ ३०९ ॥ और तिक्तकसैला कासरक्त श्वासज्व-
र इनकी नाशक और हलकाहै ॥ [अथ जवासा दुराला ।

यासोप वासो दुःस्पर्शो धन्वयास :कुनाशकः ॥
दुरालभा दुरालम्भा समुद्रान्ता च रोदिनी ॥ ३१० ॥
गान्धारी कच्छुरा नन्ता कषाया हर विग्रहा ॥ या
सः स्वादुः सरस्तिक्तः स्तुवरः शीतलो लघुः ॥ ३११
कफ मेदो मदभ्रान्ति पित्तास्र कुष्ठ कास जित् ॥
तृष्णा विसर्प वातास्र वमि ज्वर हरः स्मृतः ॥ ३१२ ॥

यवासस्य गुणैस्तुल्या बुधै रुक्ता दुरालभा ॥

भा० अनन्तर जवासा ॥ यास उपवास दुस्पर्श धन्वयास दुरालभा दुरालभा, समुद्रान्ता रोदनी ॥ ३१० ॥ गान्धारी कच्छुरा नन्ता कषाय हर विग्रह ॥ येह जवासे के नाम हैं ॥ जवासा मधुर दस्तावर तिक्त कसैला शीतल हलका है ॥ ३११ ॥ और कफ मेद मद भ्रान्ति रक्तपित्त कुष्ठ कास इनको जीतने वाला है ॥ और तृषा विसर्प वातरक्त वमन ज्वर इनका नाशक कहा गया है ॥ ३१२ ॥ पंडितों ने जवासे के गुण के समान दुरालभा के गुण कहे हैं ॥

अथ मुण्डी ।] मुण्डी भिक्षुरपि प्रोक्ता श्रावणी च तपोधना ॥ श्रवणाह्वा मुण्डतिका तथा श्रवणशीर्षका ॥ ३१३ ॥ महाश्रावणिका न्यातु सा स्मृता भूकदम्बिका ॥ कदम्बपुष्पिका च स्यादव्यथातितपस्विनी ॥ ३१४ ॥ मुण्डितिका कटुःपाके वीर्य्योष्णा मधुरा लघुः ॥ मेध्या गण्डापची कृच्छ्र कृमियोन्यर्त्ति पाण्डु नुत् ॥ ३१५ ॥ श्लीपदारुच्यपस्मार प्लीह मेदो गुदार्त्तिहृत् ॥ महामुण्डी च तत्तुल्या गुणै रुक्ता महर्षिभिः ॥ ३१६ ॥

भा० अनन्तर मुन्डी । मुण्डी भिक्षु श्रावणी तपोधना । श्रवणाह्व मुंडतिका । श्रवण शीर्षका येह मुण्डी के नाम हैं ॥ बड़ी मुण्डी महाश्रावणिका भूकदम्बिका । कदम्बपुष्पिका अव्यथा अतितपस्विनी ॥ ३१४ ॥ मुन्डी पाक में कड़वी वीर्य्य में उष्ण मधुर हलकी होती है ॥ कान्ती को देनेवाली गण्डमाला अपची मूत्रकृच्छ्र कृमि योनिपीड़ा पाण्डुरोग इनको नाश करनेवाली ॥ ३१५ ॥ और फ़ीलपाव अरुचि मिरगी पिलही मेद गुदाकीपीड़ा इनको नाश करनेवाली है ॥ बड़ीमुण्डी गुणों में इसीके समान महर्षियों ने कही है ॥ ३१६ ॥

अथ चिरचिरि ।] अपामार्गस्तु शिखरी खधः

शल्यो मयूरकः ॥ मर्कटी दुर्ग्रहा चापि किणही खरमञ्जरी ॥ ३१७॥ अपामार्गः सरस्तीक्ष्णःदीपनः स्तिक्तकः कटुः ॥ पाचनो रोचनं छर्दि कफमेदोऽनिलापहः ॥ ३१८ ॥ निहन्ति हृद्रुजा ध्मार्शः कण्डू शूलोदरापची ॥ [अथ रक्त चिरचिरा। रक्तोन्योवशिरो वृत्तफलोधामार्गवोऽपि च ॥ प्रत्यकपर्णी केशपर्णी कथिता कपिपिप्पली ॥३१९ अपामार्गोऽरुणो वातविष्टम्भी कफकृत् हिमः॥ रूक्षः पूर्वगुणैर्न्यूनः कथितो गुणवेदिभिः ॥ ३२०॥ अपामार्गफलं स्वादु रसे पाके च दुर्ज्जरम् ॥ विष्टम्भि वातलं रूक्षं रक्तपित्त प्रसादनम् ॥ ३२१॥

भा० अनन्तर चिर्चेंडा ॥ अपामार्ग शीरवरी अधशल्य मयूरक ॥ मर्कटी दुर्ग्रहा किणही खरमंजरी ये ह चिर्चंडे के नाम हैं ॥ ३१७ ॥ चिर्चेंड़ा दस्तावर तीक्ष्ण उष्ण दीपन तिक्त कटु ॥ पाचन रोचन कफमेद वमन वात इन का नाशक है ॥ ३१८ ॥ हृदय की पीड़ा आध्मान बवासीर खुजली शूल उदर रोग अपची इनको नाश करता है ॥ [अनन्तर रक्त चिर्चेंड़ा । दूसरा लाल। वशिर वृत्तफल अपामार्गव ॥ प्रत्यकपर्णी केशपर्णी कपिपिप्पली येह लाल चिर्चेरे के नाम हैं ॥ ३१९ ॥ लाल चिचेरा अरुण वातको विष्टंभ करने वाला कफको करनेवाला शीतल ॥ रूक्ष और पहलेके गुणों से हीन गुणके जाननेवालोंने ऐसा कहा है ॥ ३२० ॥ चिचेरेका फल रसमें मधुर और पाकमें भी मधुर विरुध ॥ विष्टंभ को करने वाला वात को करनेवाला रूखा रक्त पित्तको अच्छा करने वाला होता है ॥ ३२१॥

अथ तालमखाना।] कोकिलाक्षस्तु काकेक्षुरिक्षुरः क्षुरकः क्षुरः ॥ भिक्षुः काण्डेक्षुरप्युक्तःइक्षु

गन्धेक्षु बालिका ॥३२२॥ क्षुरकः शीतलो वृष्यः स्वाद्वम्ल पित्तलस्तथा ॥ तिक्तो वाताम शोथाश्म तृष्णादृष्ट्य निलास्त्र जित् ॥३२३॥

अथ हड़ सङ्गारि ।] ग्रन्थिमानस्थि संहारी वज्राङ्गी वास्थिशृङ्खला ॥ अस्थिसंहारकः प्रोक्तो वातश्लेष्म हरोऽस्थियुक ॥ ३२४॥ उष्णः सरः कृमिघ्नश्च दुर्नामघ्नोऽक्षि रोगजित् ॥ रूक्षः स्वादु लघुर्वृष्यः पाचनः पित्तलः स्मृतः ॥३२५॥ काण्डत्वग्विरहितमस्थिशृङ्खलाया माषार्द्धं द्विदलमकं चुकं तदर्द्धम् ॥ सम्पिष्टं तदनु तत स्तिलस्य तैले सम्पक्कं वटकमतीव वातहारि ॥ ३२६॥

भा० अनन्तर तालमखाना ।] कोकिलाक्ष, काकेक्षुः, इक्षुर, क्षुरक, क्षुर ॥ इक्षु कांडेक्षु इक्षुगन्धा इक्षुवालिका येह तालमखाने के नाम हैं ॥ तालमखाना शीतल शुक्रको उत्पन्न करनेवाला मधुर अम्ल पित्तको उत्पन्न करनेवाला तिक्त आम वात पथरी शोथ तृषा दृष्टिरोग वातरक्त इनकोजीतने वाला है ॥३२३॥ [अनन्तर हर सिंगार । ग्रन्थिमान अस्थिसंहार वज्रांगी अस्थिश्रंखला । अस्थिसंहारक, येह हर सिंगार केनाम हैं ॥ हर सिंगार वात कफ का नाशक और हड्डियों को जोड़नेवाला उष्ण दस्तावर कृमिका नाशक बवासीर का नाशक नेत्ररोगकोजीतनेवाला रूखा मधुर हलका शुक्रको उत्पन्न करनेवाला पाचन पित्तको करनेवाला कहा गया है ।३२५ ताल मखाना त्वचासे रहित हार सिंगार का भी गीला उड़द चुक उस्से आधा ॥ इनको पीसके उस्के पश्चात् उस्को तिलके तेलमें पकायावड़ा अति वातका नाशक है ॥ ३२६॥

अथ घीगकुआरि ।] कुमारी गृहकन्या च कन्या

घृतकुमारिका ॥ कुमारी भेदिनी शीता तिक्ता नेत्र्या रसायनी ॥ ३२७ ॥ मधुरा बृंहणी बल्या वृष्या वात विषप्रणुत ॥ गुल्म प्लीह यकृद् वृद्धि कफ ज्वर हरी हरेत ॥ ३२८ ॥ ग्रन्थ्यग्नि दग्ध विस्फोट पित्तरक्त त्वगामयान् ॥

भा० अनन्तर घीकुवार ॥ कुमारी ग्रहकन्या कन्या घृतकुमारी । येह घीकुवार के नामहै ॥ घीकुवार भेदन शीत तिक्त नेत्रका हित रसायन ॥ ३२७ ॥ मधुर पुष्ट बलको बढ़ानेवाला शुक्रको उत्पन्न करनेवाला वात विषका नाशक । गुल्म वायगोला पिलही तिल्ली अंडवृद्धि कफ ज्वर इनका नाशक है ॥ ३२८ ॥ और ग्रन्थि अग्निदग्ध विस्फोट पित्तरक्त त्वचाकेरोग इनको नाश करताहै ॥

[अथ श्वेत पुनर्नवा ।]

पुनर्नवा श्वेतमूला शोथघ्नी दीर्घपत्रिका ॥ कटुः कषायानुरसा पाण्डुघ्नी दीपनी सरा ॥ ३२९ ॥ शोफानिलगर श्लेष्महरी व्रणोदर प्रणुत ॥

[अथ रक्तपुष्पा पुनर्नवा ।] पुनर्नवा परा रक्ता रक्तपुष्पा शिलाटिका ॥ शोथघ्नः क्षुद्रवर्षाभू वृषकेतुः कपिल्लकः ॥ ३३० ॥ पुनर्नवारुणा तिक्ता कटुपाका हिमालघुः ॥ वातला ग्राहिणी श्लेष्म पित्तरक्त विनाशिनी ॥ ३३१ ॥

भा० अनन्तर सफेद गदहपूरन ॥ पुनर्नवा श्वेतमूला शोथघ्नि दीर्घपत्रिका । येह सफेद गदहपूना के नामहैं ॥ सफेद पुनर्नवा कसैला पाण्डुरोगका नाशक दीपन है और वात विष कफ इनकी नाशक है तथा व्रण उदररोगका भीनाशक है ॥ [अनन्तर गदापूरना । पुनर्नवा दूसरी रक्तपुष्पा शिलाटिका । येह लाल पुनर्नवाके नामहैं ॥

शोथघ्न· क्षुद्र· वर्षाभू· वृषकेतु· कपिल्लक· येह पुनर्नवा के नामहैं ॥ ३३०॥
पुनर्नवा लाल तिक्त पाक में कटु शीतल हलका ॥ वात को उत्पन्न करने वाला अग्नि कफ पित्त रक्त का नाशकहै ॥ ३३१॥

अथ गन्धप्रसारणी ।] प्रसारणी राजबला भद्रपर्णी प्रतापनी ॥ सरणी सारणी भद्रा बलाचापि कटम्भरा ॥ ३३२॥ प्रसारिणी गुरुर्वृष्या बलसन्धानकृत्सरा ॥ वीर्य्योष्णा वातहृत् तिक्ता वातरक्त कफापहा ॥ ३३३॥

भा० अनन्तर गन्धप्रसारणी ।] प्रसारणी राजबला भद्रपर्णी प्रतापनी ॥ सरणी सारणी भद्रा बला कटुम्भ । यह गन्धप्रसारणी के नामहैं ॥ ३३२॥ गन्धप्रसारणी भारी शुक्र को उत्पन्नकरनेवाली बलकोदेनेवाली हड्डियों को जोड़नेवाली दस्तावर ॥ वीर्य्य में उष्ण वातकोनाशक तिक्त वातरक्त कफ इनको नाशकरनेवाली है ॥ ३३३॥

अथ कारिआवांसा ।] इन्द्रजम्बूक वत्पत्रा सुगन्धा कलघण्टिका ॥ कृष्णातु शारिवा श्यामा गोपी गोपवधूश्च सा ॥ ३३४॥ [गोरिआसांउ ।] इयमपि जम्बूवत्पत्रा दुग्धगर्भा व्रततिर्भवति । धवला शारिवा गोपी गोपकन्या कृशोदरी ॥ स्फोटा श्यामा गोपवल्ली लतास्फोता च चन्दना ॥ ३३५॥

भा० अनन्तर काला सारिवा । बड़े जामन के पत्तों के समान पत्ते होते हैं ॥ और सुगन्ध भी होता है । कलघंटिका, सुगन्धा, इन्द्रजम्बूकावत्, पत्रा ॥ कृष्णा· सारिवा·श्यामा·गोपी·गोपवधू· येह काले सारिवा के नामहैं ॥ उसको पूर्व में सांऊ कहतेहैं ॥ ३३४॥ अनन्तर श्वेत सारिवा । इसके भी जामन केसे पत्ते होते हैं ॥ भीतर दूध होताहै । और लतावाला होता है । धवला, सारिवा, गोपी, गोपकन्या, कृशोदरी, स्फोटा, श्यामा, गोपवल्ली, लता -

ग्रास्फोता चन्दना ॥ ३३५ ॥

(क) गोपी । गोपस्य स्त्री । पुंयोगादीप् । गोपा । गोपा तीति गोपा गोपकन्या । श्यामा पदेन कृष्णा श्वेतापि सारिवा कथ्यते । सारिवे न सारिवा पदस्य प्रयुक्तत्वात ।

तद्यथा] सारिवायां निशि श्यामा श्यामोच हरिता सितावित्ति ॥ सारिवा युगलं स्वादु स्निग्धं शुक्रकरं गुरु ॥ अग्निमान्द्या रुचिश्वास कासामविष नाशनम् ॥ ३३६ ॥ दोषत्रयास्त्र प्रदर ज्वरातीसार नाशनम्

भा० यह स्वेत सारिवा के नामहैं । (क) (गोपी) गोपकी स्त्री । पुंयोग से ईप् प्रत्यय है । (गोपा) गायको जोरक्षण करताहै वोह गोप है ॥ (गोपकन्या) श्यामा पदसे काली और सुफेद सारिवा कहीहै । वोह स्वेत सारिवा पदके प्रयोग होनेसे । वोह जैसे—

सारिवा में निशि, श्यामा, श्यामो, हरिता, सिता- इस प्रकार कहाहै ॥ दोनों सारिवा मधुर चिकने शुक्र को उत्पन्न करनेवाले भारी हैं ॥ और अग्निमान्द्य अरुचि श्वास कास आम विष इनके नाशक हैं ॥ ३३६ ॥ तथा त्रिदोष रक्त प्रदर ज्वरातिसार इनको नाश करते हैं ॥

अथ भृङ्गरा । भृङ्गराजो भृङ्गरजो मार्कवो भृङ्गराजश्च ॥ अङ्गारकः केशराजो भृङ्गारः केशरञ्जनः ॥ ३३७ ॥ भृङ्गारः कटुकस्तीक्ष्णो रूक्षोष्णः कफवातनुत् ॥ केश्यस्त्वच्यः कृमिश्वास कास शोथामपाण्डुनुत ॥ ३३८ ॥ दन्त्यो रसायनो बल्यः कुष्ठनेत्र शिरोर्त्तिनुत ॥

भा० अनन्तर भंगरा ॥ भृगराज- भृगरज- मार्कव- भृंग- अंगारक- केशराज-

भृंगारो केशरंजन. येह भंगरेके नामहैं ॥ भंगरा कड़वा तीखा रूखा गरम कफ वातका नाशक है ॥ और केशके हित त्वचाको अच्छा करने वाला और कृमि श्वास कास शोथ पांडुरोग का नाशक है ॥३३८॥ और दांतों को अच्छा करनेवाला रसायन बलको देने वाला कुष्ठ मेदरोग शिरकी पीड़ा इनका नाश करनेवाला है ॥

[शणपुष्पा इति च झुली । शण इवपुष्पा ।)
शणपुष्पी स्मृता घराटा शणपुष्प समाकृतिः ॥
शणपुष्पी कटुस्तिक्ता वामिनी कफ पित्तजित् ॥
॥३३९॥ [अथ त्रायमाना] बलभद्रा त्रायमाना त्रायन्ती गिरिसानुजा । त्रायन्ती तु वरा तिक्ता सरा पित्तकफापहा ॥३४०॥ ज्वर हृद्रोग गुल्मार्श भ्रमशूल विषप्रणुत् ॥

भा० अनन्तर शणपुष्पा । इसको झुली भी कहते हैं । इसके फूल सनके फूलके सदृश होतेहैं ॥ शणपुष्पी घंटा शणपुष्प समाकृति । यह झुली के नाम हैं । झुली कड़वी तिक्त वमन को करानेवाली कफ पित्तको जीतनेवाली है ॥ ३३९॥ [अनन्तर त्रायमाणा । बलभद्रा- त्रायमाणा, त्रायंति, गिरिसानुजा ॥ येह त्रायमाणाके नामहैं ॥ त्रायमाणा कसैली तिक्त दस्तावर पित्त कफ की नाशक है ॥३४०॥ और ज्वर हृद्रोग वायगोला बवासीर भ्रम शूल विष इनकी नाशक है ॥

[अथ चूर्णहार]

मूर्व्वा मधुरसा देवी मोरटा तेजनी स्रुवा ॥ मधूलिका मधुश्रेणी गोकर्णी पीलु पर्ण्यपि ॥ ३४१ ॥ मूर्व्वा सरा गुरुः स्वादुस्तिक्ता पित्तास्र मेहनुत ॥ त्रिदोष तृष्णा हृद्रोग कण्डु कुष्ठ ज्वरापहा ॥ ३४२॥

भा० अनन्तर मरोड़फली । मूर्व्वा मधुरसा देवी मोरटा तेजनी स्रुवा ॥

मधूलिका.मधुश्रेणी.गोकर्णी. पीलुपर्णी. येह मरोड़ फली के नाम हैं ॥ ३५१॥ मरोड़ फली मलवात को नीचे करने वाली भारी मधुर तिक्त रक्त पित्त प्रमेह इनकी नाशक है ॥ और त्रिदोष तृषा हृदरोग खुजली कुष्ट ज्वर इन की भी नाशक है ॥ ३५२॥

[अथ कवैया।]

काकमाची ध्वाङ्क्षमाची काकाह्वा चैव वायसी ॥ काकमाची त्रिदोषघ्नी स्निग्धोष्णा स्वर शुक्रदा ॥ ३५३॥ तिक्ता रसायनी शोथ कुष्ठार्शो ज्वर मेहजि त् ॥ कटु नेत्र हिता हिक्का च्छर्दि हृद्रोग नाशिनी ॥ ३५४॥ [कौआठोढी।] काकनासा तु काका ङ्गी काकतुण्ड फला च सा ॥ काकनासा कषायो ष्णा कटुका रस पाकयोः ॥ ३५५॥ कफघ्नी वाम नी तिक्ता शोथार्शः श्वित्र कुष्ठ हृत ॥

भा० अनन्तर किमांच। काकमाची ध्वांक्षमाची काकाह्वा वायसी। येह किमांच के नाम हैं ॥ किमांच त्रिदोषनाशक चिकनी उष्ण स्वर शुक्र को करनेवाली ॥ ३५३॥ तिक्त रसायन शोथ कुष्ठ बवासीर ज्वर प्रमेह इनको दूर करनेवाली है ॥ कड़वी नेत्र के हित कुचकी वमन हृद्रोग इनको नाशकर नेवाली है ॥ ३५४॥ अनन्तर कौआठोढी।] काकनासा काकाङ्गी काकतुंड फला। येह कौवा ठोढ़ी के नाम हैं ॥ कौवाठोढ़ी कसैली गरम रस पाक में कड़वी होती है ॥ ३५५॥ और कफकी नाशक वमनकरनेवाली तिक्त सूजन बवासीर श्वित्रकुष्ट इनका नाशक है ॥ [अथ काकजंघा मसीति लोके।] काकजङ्घा नदीकान्ता काकतिक्ता सुलोमशा ॥ पारावतपदी दासी काका चापि प्रकीर्तिता ॥ ३५६॥ काकजङ्घा हिमा तिक्ता कषाया कफ पित्त जित् ॥

निहन्ति ज्वर पित्तास्त्र ज्वरकण्डु विषक्रमीन् ४७

[अथ नागपुष्पी] नागपुष्पी श्वेतपुष्पा नागिनी रामदूतिका ॥ नागिनी रोचनी तिक्ता तीक्ष्णोष्णा कफपित्तनुत् ॥ ३४८ ॥ विनिहन्ति विषं शूलं योनिदोषवमि क्रमीन् ॥

भा० अनन्तर काकजंघा इसको लोकमें मसी ऐसा कहते हैं ॥ काकजंघा नदीकांता काकतिक्ता सुलोमशा ॥ पारावतपदी दासी काका । येह मसी के नामहैं ॥ ३४६ ॥ काकजंघा शीतल तिक्त कसैली कफ पित्त को नाश करैहै ॥ और ज्वर पित्त रक्त क्रमि कण्ड विष इनको नाश करतीहै ॥ ४७ ॥ अनन्तर नागपुष्पी । नागपुष्पी श्वेतपुष्पा नागनी रामदूतिका येह नागनीके नामहैं ॥ नागनी रुचिको करनेवाली तिक्त तीखी उष्ण कफ पित्त की नाशक है ॥ ३४८ ॥ और विष शूल योनिदोष वमन क्रमि इनको दूर करती है ॥

[अथ मेढ़ासिङ्गी]

मेषशृङ्गी विषाणी स्यान्मेषवल्ल्यजशृङ्गिका ॥ मेषशृङ्गी रसे तिक्ता वातला श्वासकासहृत् ॥ ३४९ ॥ रूक्षा पाके कटुस्तिक्ता व्रणश्लेष्माक्षिशूलनुत् ॥ मेषशृङ्गी फलं तिक्तं कुष्ठमेहकफप्रणुत् ॥ ३५० ॥ दीपनं स्रंसनं कासक्रमिव्रणविषापहम् ॥

भा० अनन्तर मेढ़ासींगी ॥ मेषशृंगी विषाणी मेषवल्ली अजशृंगिका । येह मेढ़ासींगी के नामहैं ॥ मेढ़ासींगी रसमें तिक्त वातको उत्पन्न करनेवाली । श्वास कास कीनाशक है ॥ ३४९ ॥ और रूखी पाकमें कटु तिक्त व्रण कफ नेत्र शूल इनको नाश करनेवाली है ॥ मेढासींगी का फल तिक्त कुष्ठ प्रमेह कफ इनका नाशक ॥ ३५० ॥ दीपन दस्तावर कास क्रमि व्रण विष इनका नाशक है ॥

[अथ हंसपदी।]

हंसपादी हंसपदी कीटमाता त्रिपादिका ॥ हंस-

पादी गुरुः शीता हन्ति रक्त विष व्रणान् ॥ ३५१॥
विसर्प दाहातीसार लूता भूताग्नि रोहिणी ॥
अथ सोमलता।] सोमवल्ली सोमलता सोमक्षीरी द्विजप्रिया ॥ सोमवल्ली त्रिदोषघ्नी कटुस्तिक्ता रसायनी ॥ ३५२॥

[अथ आकाशवल्ली।] (अमरवेलि इति च।)
आकाशवल्ली तु बुधैः कथितामरवल्लरी ॥ खबल्ली ग्राहिणी तिक्ता पिच्छिला क्ष्मामयापहा ॥
तुवराग्निकरी हृद्या पित्तश्लेष्मामनाशिनी ॥ ३५३॥

भा० अनन्तर हंसपदी। हंसपादी· हंसपदी· कीटमाता· त्रिपादका· येह हंसपदी के नामहैं ॥ हंसपदी· भारी.शीत.रक्त.विष.व्रण· को नाश करतीहै ॥ ३५१ ॥ और विसर्प· दाह· अतीसार· लूता· भूत· अग्नि· रोहणी· इनकोभीनाशकरतीहै ॥ [अनन्तर सोमलता। सोमवल्ली· सोमलता· सोमक्षीरी· द्विजप्रिया। येह सोमलताके नामहैं। सोमलता· त्रिदोषनाशक· कड़वी· तिक्त· रसायनी है ॥ ३५२॥ [अनन्तर अमरवेल। आकाशवल्ली को पंडित अमरबल्ली कहतेहैं। आकाशवल्ली.काबिज तिक्त.चेपदार· राजयक्ष्मा रोगकोनाशक ॥ कसैली अग्निको करनेवाली। हृद्य पित्त कफ आम इनकीनाशक है॥ ३५३॥

अथ पाताल गरुड़ी।] छिलिहिण्टो महामूलः पातालगरुडाह्वयः ॥ छिलिहिण्टः परं वृष्यः कफघ्नः पवनापहः ॥ ३५४॥ [अथ वन्दा।]
वन्दा वृन्दा दनी वृक्ष भक्ष्या वृक्ष रुहापि च ॥
वन्दाकः स्याद्धिमस्तिक्तः कषायो मधुरो रसे ॥ ३५५॥
माङ्गल्यः कफवातास्त्र रक्षो व्रण विषापहः ॥

भा० अनन्तर पातालगरुड़ी।] छिलिहिराठ·महामूल·पातालगरुड़ नाम वाली ॥ येह पाताल गरुड़ीके नामहैं॥ पातालगरुड़ी· अत्यन्त शुक्रको उ-त्पन्न करनेवाली कफ नाशक और वातनाशक हे ॥ ३५४॥
अनन्तर वन्दा] वृक्षादनी· वन्दा· वृक्षभक्षा· वृक्षरुहा· येह वन्दाकके नामहैं ॥ वन्दाक शीतल तिक्त कसैला रसमें मधुरहै ॥ ३५५॥ और मंगल-कारक कफ वात रक्त राक्षस व्रण विष इनका नाशक है ॥

अथ वटपत्री।] वटपत्री तु कथिता मोहिनी रेचनी बुधैः॥ वटपत्री कषायोष्णा योनिमूत्र गदापहा॥ ३५६॥ अथ हिङ्गुपत्री तु कवरी पृथ्विका पृथुका पृथुः॥ हिङ्गुपत्री भवेद्रुच्या तीक्ष्णोष्णा पाचनी कटुः॥ ३५७॥ हृद्बस्ति रुग्विबन्धार्शः श्लेष्म गुल्मा निलापहा ॥

भा० अनन्तर वटपत्री।] वटपत्री· मोहनी· रेचनी· येह वटपत्री के नाम पंडितों ने कहेहैं ॥ वटपत्री कसैली गरमहै। और योनिरोग मूत्ररोग इनकी नाशक है ॥ ३५६॥ - अनन्तर हिंगुपत्री, हिंगु पत्री· कवरी· पृथ्वीका· पृथुका· पृथु। येह हिंगु पत्रीके नामहैं। हिंगुपत्री रुचिको करनेवाली तीखी उष्ण पाचन कड़वीहै ॥ ३५७॥ और हृदय पेड़ूकी पीड़ा विबन्ध बवासीर कफ बाय गोला वात इनकी नाशक है ॥

अथ वंशपत्री।] वंशपत्री·वेणुपत्री· पिङ्गा· हिङ्गु शिवाटिका॥ हिङ्गुपत्री गुणा विज्ञे वंशपत्री च कीर्त्तिता॥ ३५८॥ [अथ मत्स्याक्षी।] मछेछी इतिलोके। छछ मछरि आइनि च। मत्स्याक्षी वाह्लिका मत्स्यगन्धा मत्स्यादनीति च। च॥ मत्स्याक्षी ग्राहिणी शीता कुष्ठ पित्त कफा

स्रजित् ॥ ३५९ ॥ लघुस्तिक्ता कषाया च स्वादी क-
टु विपाकिनी ॥

भा० अनन्तर वंशपत्री ॥ वंशपत्री वेणुपत्री पिण्डा हिंगुशिवाटिका । येह वंशपत्री के नाम हैं ॥ वंशपत्री हिंगुपत्री के समान गुण में कही है ॥
अनन्तर मत्स्याक्षी इस्को मच्छेछी और मछरिया ऐसा कहते हैं ॥ मत्स्याक्षी वाल्हिका मत्स्यगन्धा मत्स्यादनी- येह मत्स्याक्षिके नामहैं ॥ मत्स्याक्षी काविज़। शीतलहै। और पित्त कुष्ठ कफ रक्त इनको जीतनेवाली है ॥ ३५९ ॥ और हल-की तिक्त कसैली मधुर पाक सें कटु होती है ॥

[अथ सरहटी गरिडनीति च ।] सर्पाक्षी स्यात्तु गण्डा-
ली तथा नाड़ी कपालकः ॥ सर्पाक्षी कटुका तिक्ता सो-
ष्णा क्रमि विकन्तनी ॥ ३६० ॥ वृश्चिकोन्दु रसर्पाणां
विषघ्नी व्रणरोपिणी ॥ [अथ शङ्खपुष्पी ।]
शङ्खपुष्पी तु शङ्खाह्वा माङ्गल्य कुसुमापि च ॥ श-
ङ्खपुष्पी सरा मेध्या वृष्या मानस रोगहृत् ॥ ३६१ ॥
रसायनी कषायोष्णा स्मृति कान्ति बलाग्नि
दा ॥ दोषापस्मार भूतादि कुष्ठ क्रमि विष प्रणुत् ॥ ३६२

भा० अनन्तर सरहटी गंडनी ऐसाभी कहतेहैं ॥ सर्पाक्षी गण्डाली तथा नाड़ी कपालक येह सर्पाक्षीके नामहैं ॥ सर्पाक्षी कड़वी तिक्त कुछ गरमहोती है और क्रमिकी नाशक है ॥ ३६० ॥ और बिच्छू चूहा सांप इनके विष की नाशक और घावको भरनेवाली है ॥
अनन्तर शंखपुष्पी । शंखपुष्पी शंखाह्वा मांगल्य कुसुमा येह शंखपुष्पी के नामहैं ॥ शंखपुष्पी मल वात को अनुलोम करनेवाली कान्तीको बढ़ानेवाली शुक्रको उत्पन्न करनेवाली मानस रोगकी नाशक ॥ ३६१ ॥ और रसायन कसैली गरम स्मृति कान्ति बल अग्निको देनेवाली और मिरगी भूत कुष्ठ क्रमि विष इनकी नाशक है ॥ ३६२ ॥

अथ अर्कपुष्पी।] अर्कपुष्पी क्रूरकर्मा पयस्या जलकामुका॥ अर्कपुष्पी कृमिश्लेष्ममेह पित्तविकारजित्॥ ३६३॥ [अथ लज्जालुः। लज्जालुः स्यात् शमीपत्रा समङ्गा जलकारिका॥ रक्तपादी नमस्कारी नाम्ना खदिरकेत्यपि॥ ३६४॥ लज्जालुः शीतला तिक्ता कषाया कफपित्तजित्॥

भा० अनन्तर अर्कपुष्पी॥ अर्कपुष्पी क्रूरकर्मा पयस्या जलकामुका॥ येह अर्कपुष्पी के नामहैं॥ अर्कपुष्पी कृमि कफ प्रमेह पित्तरोग इनकी नाशकहै॥ ३६३॥ [अनन्तर लजालुः। लजालू शमीपत्री समंगा जलकारिका रक्तपादी नमस्कारी खदिरका। येह लजालू के नामहैं॥ ३६४॥ लजालू शीतल तिक्त कसैली होतीहै। और कफ पित्त को जीतनेवाली तथा रक्त पित्त अतीसार योनिरोग इनको नाशकरतीहै॥ ३६५॥

रक्तपित्तमतीसारं योनिरोगान् विनाशयेत्॥ ३६५॥ लज्जालूभेदः।] अलम्बुषा।] अलम्बुषा खरत्वक् च तथा मेदोगला स्मृता॥ अलम्बुषा लघुः स्वादुः कृमिपित्तकफापहा॥ ३६६॥ अथ दूधी।] दुग्धिका स्वादुपर्णी स्यात् क्षीरा विक्षीरणी तथा॥ दुग्धिकोष्णा गुरू रूक्षा वातला गर्भकारिणी॥ ३६७ स्वादु क्षीरा कटुस्तिक्ता सृष्टमूत्रमलापहाः॥ स्वादुर्विष्टम्भिनी वृष्या कफकुष्ठकृमिप्रणुत्॥ ३६८॥

भा० अनन्तर लज्जालूका भेद॥] अलम्बुषा। अलम्बुषा खरत्वक मेदोगला येह होवेर केनामहैं॥ हाऊबेर हलका मधुर, कृमि, पित्त, कफका नाशकहै॥ ३६६॥ अनन्तर दूधी। दुग्धका स्वादुपर्णी क्षीरा,

क्षीरणी, येह दुद्धी के नामहैं ॥ दुद्धी गरम भारी रूखी वात को करने वाली और गरभको करनेवाली ॥ ३६७॥ और मधुर दुग्धवाली कड़वी तिक्त मूत्र को करनेवाली मुलनाशक मधुर विष्टम्भको करनेवाली शुक्र को उत्पन्न करनेवाली और कफ कुष्ठ कृमी इनकी नाशक है ॥ ३६८॥

[अथ भुइंआम्बरा

भूम्यामलकिका प्रोक्ता शिवातामलकीति च ॥
बहुपत्रा बहुफला बहुवीर्य्या जटापि च ॥ ३६९
भूधात्री वातकृत तिक्ता कषाया मधुरा हिमा ॥
पिपासा कास पित्तास्र कफ कण्डू क्षतापहा ॥ ३७०

अथ ब्रम्भी।] ब्राह्मी कपोनवङ्का च सोमवल्ली सरस्वती ॥ [ब्रह्ममाण्डूकी। मण्डक पर्णी माण्डूकी त्वाष्ट्री दिव्या महोषधी ॥ ३७१॥ ब्राह्मी हिमा सरा तिक्ता लघु मेध्या च शीतला ॥ कषाया मधुरा स्वादु पाका युष्मा रसायनी ॥ ३७२॥ स्वर्य्या स्मृतिप्रदा कुष्ठ पाण्डु मेहास्र कासजित् ॥ विषशोथ ज्वरहरी तद्वन्मण्डूक पर्णिनी ॥ ३७३॥

भा० अनन्तर भुइं आंवला ॥ भूम्या मलिक शिवा तामलकी ॥ बहु पत्रा बहुफला बहुवीर्य्या जटा। येह भुईं आंवले के नाम हैं ॥ ३६९॥ भुईं आवला वातको करनेवाला तिक्त कसैला मधुर शीतल है ॥ और प्यास कास रक्त पित्त कफ खुजली क्षत इनका नाशक ॥ ३७०॥

अनन्तर ब्रह्मी ॥ ब्राह्मी कपोतवंका, सोमवल्ली सरस्वती ॥ मण्डूक पर्णी माण्डूकी त्वाष्ट्री दिव्या महोषधी ॥ येह ब्राह्मी और मण्डूकपर्णी के नामहैं ॥ ३७१॥ ब्राह्मी शीतल सर तिक्त इलकी बुद्धी को बढानेवाली है। शीतल कसैली मधुर पाकमें मधुर आयुकोदेनेवाली रसायनी है ॥ ३७२॥

और स्वरको अच्छा करनेवाली स्मृतिको देनेवाली तथा कुष्ठ पाण्डु रोग प्रमेह रक्त कास इनकोजीतने वालाहै ॥ और विष शोथज्वर इनकी नाशक है मण्डूक पर्णिभी ब्राह्मीके समान गुण में है ॥ ३७३॥

[अथ गूमा।] द्रोणा च द्रोणपुष्पी च फलेपुष्पा च कीर्त्तिता ॥ द्रोणपुष्पी गुरुः स्वादु रूक्षोष्णा वातपित्तकृत् ॥ ३७४॥ स तीक्ष्णा लवणा स्वादु पाका कट्वीच भेदिनी ॥ कफाम कामला शोथ तमक श्वास जन्तुजित् ॥ ३७५॥

भा० अनन्तर गूमा।] द्रोणा द्रोणपुष्पी फलेपुष्पा येह गोमाके नाम कहे गयेहैं ॥ गोमा भारी मधुर रूखी गरम वात पित्तको करनेवालीहै ॥ ३७४॥ तीखी नमकीन पाकमें मधुर और कडुभीतथा भेदनहै ॥ और कफ आम कामला शोथ तमक श्वास कृमि इनको जीतने वाली है ॥ ३७५॥

[अथ हुर हुर। द्वितीय हुर हुर।]

सुवर्चला सूर्य्यभक्ता वरदा वदरापि च ॥ सूर्य्यावर्त्ता रविप्रीता परा ब्रह्म सुवर्चला ॥ ३७६॥ सुवर्चला हिमा रूक्षा स्वादु पाका सरा गुरुः ॥ अपित्तला कटुः क्षारा विष्टम्भ कफ वात जित् ॥३७७॥ अन्या तिक्ता कषायोष्णा सरा रूक्षा लघुः कटुः ॥ निहन्ति कफ पित्तास्र श्वास कासारुचि ज्वरान् ॥ ३७८॥ विस्फोट कुष्ठमेहास्र योनिरुक्कृमि पाण्डुताः॥

भा० अनन्तर हुरहुर और दूसराहुर हुर ॥ सुवर्चला सूर्यभक्ता वरदा वदरा॥ सूर्यवर्त्ता रविप्रीता और दूसरी ब्रह्म सुवर्चला येह दूसरे हुर हुरके नाम

हैं ॥ ३७६ ॥ दूसरा शीतल रूखी पाकमें मधुर सर भारी ॥ पित्तको नष्ट करनेवाली कड़वी क्षार है । और विषंभ कफ वातको जीतनेवाली है ॥ ३७७ ॥ और दूसरी तिक्त कसैली गरम सर रूखी हलकी कड़वी ॥ और कफ रक्त पित्त श्वास कास अरुचि ज्वर इनको नाश करती है ॥ ३७८ ॥ तथा किलैहर कुष्ठ प्रमेह रक्त योनिपीड़ा कृमि पाण्डुता इनको भी नाश करती है ॥

[अथ वाझखकसा ।] बन्ध्या कर्कोटकी देवी कन्या योगीश्वरीति च ॥ नागारि नक्रदमनी विषकण्टकिनी तथा ॥ ३७९ ॥ बन्ध्या कर्कोटकी लघ्वी कफनुद् व्रण शोधिनी ॥ सर्पदर्प हरी तीक्ष्णा विसर्प विषहारिणी ॥ ३८० ॥

भा० अथ बांझ खकसा ॥ बन्ध्या कर्कोटकी देवी कन्या योगीश्वरी ॥ नागारी, नक्रदमनी, विषकंटकिनी येह बांझ खकसा के नाम हैं ॥ ३७९ ॥ बांझ खकसा हलका कफ नाशक व्रण शोधन सर्पके दर्पको दूर करनेवाला तीखा विसर्प विष नाशक है ॥ ३८० ॥

[अथ भूइखखसा । वल्ली भूमि प्रसरणशीला ।] मार्कण्डिका भूमि वल्ली मार्कण्डी मृदुरेचनी ॥ मार्कण्डिका कुष्ठ हरी ऊर्द्धाधः काय शोधिनी ॥ ३८१ ॥ विषदुर्गन्ध कासघ्नी गुल्मोदर विनाशिनी ॥

भा० अनन्तर भुई खकसा ॥ येह लता भूमिपर फैलनेवाली होती है ॥ मार्कंडिका भूमिवल्ली मार्कंडी मृदुरेचनी येह भी खकसा के नाम हैं ॥ खकसा कुष्ठनाशक ऊपर और नीचेसे शरीरको शोधन करनेवाली है ॥ ३८१ ॥ और विष दुर्गंध कास इनकी नाशक और वायगोला उदररोग इनकी भी नाशक है ॥

अथ देवदाली सोनैया । खखसा वत् फलव्रततिः ।] देवदालीतु वेणीस्यात् कर्कटीच

[अथ वरवेलं ।] वेलन्तरोजगति वीरतरुः प्रसिद्धः श्वेता सितारुणविलोहित नीलपुष्पः ॥ स्याज्जातितुल्यकुसुमः शमिसूक्ष्मपत्रः ॥ स्यात् कण्टकी विजल देशज एष वृक्षः ॥ ३६२ ॥

वेलन्तरो रसे पाके तिक्तः तृष्णा कफापहः ॥ मूत्राघाताश्मजित् ग्राही योनिमूत्रानिलार्त्तिजित् ६३

भा० अनन्तर वरवेल । वेलन्तर जगतमें वीरतरु नामप्रसिद्धहै ॥ वोह सुफ़ेद काला अरुण लाल नीला ऐसे फूलवालाहोताहै ॥ अपनीजाति के सदृश फूल होतेहैं ॥ और शमी वृक्षके समान सूक्ष्म पत्र होतेहैं । तथा कांटोंके सहित निर्जल देशमें यह होताहै ॥ ३६२ ॥ वरवेल रस और पाक में तिक्त होताहै और तृषा कफका नाशक । मूत्राघात पथरी इनकोजीतने वाला क़ाबिज़ तथा योनिरोग मूत्रवातकी पीड़ा इनको जीतने वालाहै ॥ ६३

[छिक्कनी ।] छिक्कनी क्षवकृत्तीक्ष्णा छिक्किका घ्राण दुःखदा ॥ छिक्कनी कटुका रुच्या तीक्ष्णोष्णा वन्हिपित्तकृत् ॥ ३६४ ॥ वातरक्तहरी कुष्ठ कृमि वात कफापहा ॥ [अथ कुकुन्दर ।]

कुकुन्दर स्ताम्रचूड़ः सूक्ष्मपत्रो मृदुच्छदः ॥ कुकुन्दरः कटुस्तिक्तो ज्वर रक्त कफापहः ॥ ३६५ ॥

तन्मूलमार्द्रं निःक्षिप्तं वदने मुखशोषहृत् ॥

भा० अनन्तर नकछिक्कनी ॥ छिक्कनी क्षवकृत तीक्ष्णा छिक्किका घ्राण दुःखदा येह नकछिकनी के नामहैं ॥ नकछिकनी कड़वी रुचिको करने वाली तीखी और गरम अग्नि पित्तकोकरनेवालीहै ॥ ३६४ ॥ और वात रक्तकी नाशक तथा कोष्ठ कृमि वात कफकी नाशकहै ॥

अनन्तर कुकरौन्दा। कुकुन्दर, ताम्रचूड़, सूक्ष्मपत्र, मृदुच्छद, येह ककरौंदाके नामहैं ॥ ककरौंदा कडुवा तिक्त ज्वर रक्त कफका नाशक है ॥ ३६५॥ उस्की गीलीजड़ मुंहमें डालेसे मुखशोषको नाशकरती है ॥

[अथ सुदर्शनः] सुदर्शना सोमवल्ली चक्राह्वा मधुपर्णिका ॥ सुदर्शना स्वादु रुष्णा कफ शोफास्त्रवातजित् ॥ ३६६ ॥ [अथ मूसाकर्णी] आखुकर्णी त्वाखुकर्णी पर्णिका भूदरी भवा ॥ आखुकर्णी कटुस्तिक्ता कषाया शीतला लघुः ॥ ३६७ ॥ विपाके कटुका मूत्र कफामय कृमिप्रणुत् ॥

भा० अनन्तर सुदर्शन। सुदर्शना सोमवल्ली चक्राह्वा मधुपर्णिका ॥ येह सुदर्शनके नामहैं ॥ सुदर्शन मधुर उष्ण कफ शोथ रक्तवातको जीतनेवाली है ॥ ३६६ ॥ [अनन्तर मूसाकर्णी। आखुकर्णी आखुकर्णी पर्णिका, भूदरी भवा येह मूसाकर्णी के नामहैं ॥ मूसाकर्णी कड़वी तिक्त कसैली शीतल, हलकी होती है ॥ ३६७॥ और पाकमें कड़वी तथा मूत्र कफ रोग कृमि इनकी नाशक है ॥

[अथ मयूरशिखा।

मयूराह्व शिखा प्रोक्ता सहस्राहिर्म्मधुच्छदा ॥
नीलकण्ठशिखा लघ्वी पित्तश्लेष्मातिसारजित् ॥

इति भावप्रकाशे गुडूच्यादिवर्गः।

[अथ पुष्पवर्गः।]

[तत्रादौ कमलस्य नामानि गुणाश्च।] वा पुंसि पद्मं नलिन मरविन्दं महोत्पलम् ॥ १॥ सहस्रपत्रं कमलं शतपत्रं कुशेशयम् ॥ २॥ पङ्केरुह

गराङ्गरी ॥ देवताडी वृत्तकोश स्तथा जीमूत इत्यपि ॥ ३८२ ॥ पीता परा खरस्पर्शा विषघ्नी गर नाशिनी ॥ देवदालीरसे तिक्ता कफार्शः शोफ पाण्डुता ॥ ३८३ ॥ नाशयेत् वामनी तिक्ता क्षय हिक्का कृमिज्वरान् ॥ देवदाली फलं तिक्तं कृमि श्लेष्म विनाशनम् ॥ ३८४ स्रंसनं गुल्म शूलघ्न मर्शोघ्नं वात जित्परम् ॥

भा० अनन्तर देवदाली । जिसको सोनया भी कहतेहैं ॥ येह खाकसके समान फल और लतावाली है ॥ देवदाली वेणी कर्कोटी गराङ्गरी ॥ देवताडी वृत्तकोश तथा जीमूत येह सोनयाके नाम हैं ॥ ३८२ ॥ और दूसरी पीली खरस्पर्शा विषघ्नी गरनाशिनी ॥ येह पीली सोनैयाके नाम हैं ॥ सोनैया रसमें तिक्त कफ ववासीर पाण्डुरोग इनको नाश करती है ॥ ३८३ और कैलाने वाली तिक्त है तथा क्षय हिचकी कृमिज्वर इनको नाश करतीहै ॥ सोनैयाका फल तिक्त कृमिकफका नाशक है ॥ ३८४ ॥ और दस्तावर वायगोला शूल इनका नाशक ववासीर का नाशक वात पित्त को जीतनेवाला है ॥

[अथ जल पिप्पली पनिसगा इति लोक ।]

जलपिप्पल्य भिहिता शारदी शाकुलादनी ॥ मत्स्यादनी मत्स्यगन्धा लाङ्गलीत्यपि कीर्त्तिता ॥ ३८५ ॥ जलपिप्पलिका हृद्या चक्षुष्या शुक्रला लघुः ॥ संग्राहिणी हिमा रूक्षा रक्तदाह व्रणा पहा ॥ ३८६ ॥ कटु पाक रसा रुच्या कषाया वन्हि वर्द्धिनी ॥

भा० अनन्तर जलपिप्पली इसको पनीसगा ऐसा लोकमें कहतेहैं ॥ जलपिप्पली शारदी शाकुलादनी ॥ मत्स्यादनी मत्स्यगन्धा लाङ्गली यह जलपिप्पलीके नाम हैं ॥ ३८५ ॥ जलपिप्पली हृद्य नेत्रके हित शुक्रको उत्पन्न करने वाली हलकी काबिज शीतल रूखी रक्तदाह व्रणकी नाशक ॥ ३८६

और पाक रसमें कटु रुचिको करनेवाली कसेली अग्निको बढ़ानेवालीहै ॥

[अथ गोभी।] गोजिह्वा गोजिका गोभी दार्विका खरपर्णिनी ॥ गोजिह्वा वातला शीता ग्राहिणी कफपित्तनुत् ॥ २८७ ॥ हृद्या प्रमेह कासास्त्र व्रणज्वरहरी लघुः ॥ कोमला तुवरा तिक्ता स्वादुपाक रसा स्मृता ॥ ३८८ ॥

भा० अनन्तर गावजुवां ॥ गोजिह्वा गोजिका गोभी दार्विका खरपर्णिनी। येह गावजुवां के नामहैं ॥ गावजुवां बातको करनेवाली शीतल काबिज कफ पित्तकी नाशक है ॥ २८७ ॥ और हृद्य प्रमेह कास रक्त व्रणज्वर इन की नाशक है ॥ और हलकी होती है तथा कोमल कसेली तिक्त पाक और रसमें मधुर कही गई है ॥ २८८ ॥

[अथ नागदमनी।]

विज्ञेया नागदमनी बला मोटा विषापहा ॥ नागपुष्पी नागपत्रा महायोगेश्वरीति च ॥ ३८९ ॥ बला मोटा कटुस्तिक्ता लघुः पित्त कफापहा ॥ मूत्रकृच्छ्र व्रणान् रक्षो नाशयेज्जालगर्द्दभम् ॥ ३९० ॥ सर्वग्रह प्रशमनी निःशेष विषनाशिनी ॥ जयं सर्वत्र कुरुते धनदा सुमतिप्रदा ॥ ३९१ ॥

भा० अनन्तर नागदमन। नागदौन। नागदमनी बला मोटा विषापहा ॥ नागपुष्पी नागपत्रा महायोगेश्वरी ॥ ३८९ ॥ नागदमन कड़वी तीखी हलकी पित्तकफकी नाशक है और मूत्रकृच्छ्र घाव राक्षस इनको नाश करती है। और जाल गर्दभ नाम फुनसीको नाश करती है ॥ ३९० ॥ और संपूर्ण ग्रहों को नाश करती है ॥ तथा अशेष विषकी नाशक है ॥ और सर्वत्र जय को करतीहै तथा धनको देनेवाली है। तथा अच्छी मतिको देनेवालीहै ॥ ३९१

न्तामरसं सारसी सरसीरुहम् ॥ विश प्रसून राजी-
व पुष्करामम्भोरुहाणि च ॥ २॥ कमलं शीतलं
वर्ण्यं मधुरं कफपित्तजित् ॥ तृष्णा दाहास्र वि-
स्फोट विषवीसर्पनाशनम् ॥ ३॥ विशेषतः सि-
तं पद्मं पुण्डरीक मिति स्मृतम् ॥ रक्तं कोकनदं ज्ञे-
यं नील मिन्दीवरं स्मृतम् ॥ ४॥ धवलं कमलं शी-
तं मधुरं कफपित्त जित् ॥ तस्मादल्पगुणं किञ्चि-
दन्यद् रक्तोत्पलादिकम् ॥ ५॥

भा॰ अनन्तर मोरशिखा ॥ मयूराह्व शिखा सहस्रा आहि मधुच्छदा नीलकंठ शिखा ॥ येह मोर शिखा के नाम हैं। मोरशिखा इसको पित्त अतीसार को जीतने वालीहै ॥ ३९९॥

इति भावप्रकाशे गुडूच्यादि वर्ग समाप्त ॥ ॥

अनन्तर पुष्पवर्ग ॥ [उसमे पहले कमलके नाम और गुण कहतेहैं।] पद्म नलिन अरविंद महोत्पल ॥ सहस्रपत्र कमल शतपत्र कुशेशय ॥ ॥१॥ पंकेरुह तामरस सारस सरसिरुह ॥ विषप्रसून राजीव पुष्कर अम्भोरुह॥ २॥ येह कमलके नामहैं। कमल शीत व्रणको अच्छाक रनेवाला मधुर कफ पित्त को जीतनेवाला ॥ और तृषा दाह रक्त विस्फोट विष विसर्प इनका नाशक है ॥ ३॥ विशेषकरके स्वेत पद्म को पुण्डरीक, ऐसा कहाहै ॥ लालको कोकनद जानना चाहिये और नीलको इन्दीवर ऐसा कहाहै ॥ ४ ॥ स्वेत कमल शीतल मधुर कफको जीतनेवालाहै उससे कुछ अल्पगुणवाले दूसरे लाल कमलादिक हैं ॥ ५ ॥

अथ पद्मिनी।] मूलनाल दलोत्फुल्लैः फलैः
समुदिता पुनः ॥ पद्मिनी प्रोच्यते प्राज्ञै र्बिसिन्या
दि(क) सा स्मृता ॥ ६॥

(क) आदि शब्दान्नलिनी कमलिनी त्यादि।

पद्मिनी शीतला गुर्व्वी मधुरा लवणा च सा ॥ पित्ता
सृक्कफनुद्रूक्षा वात विष्टम्भकारिणी ॥ ७ ॥

भा० अनन्तर पद्मिनी ॥ मूलनाल पत्रपुष्प फल इन करके युक्तको पद्मिनी घास कहतेहैं ॥ और मूल बिसनी आदि कही गईहै ॥ ६ ॥
(क) आदि शब्द से नलिनी कमलिनी इत्यादिक । पद्मिनी शीतल भारी मधुर लवणरसोंकरके युक्त होती है । और वोह रक्त पित्त कफ इन को नाश करनेवाली तथा वातको विष्टम्भ करनेवाली है ॥ ७ ॥

अथ नव पत्रादि ।] सम्वर्त्तिका नवदलं वीजको शस्तु कर्णिका ॥ किञ्जलकः केसरः प्रोक्तो मकरन्दो रसः स्मृतः ॥ ८ ॥ पद्मनालं मृणालं स्यात्तथा विश मिति स्मृतम् ॥ सम्वर्त्तिका हिमा तिक्ता कषाया दाह तृट् प्रणुत् ॥ ९ ॥ मूत्र कृच्छ्र गुद व्याधि रक्तपित्त विनाशिनी ॥ पद्मस्य कर्णिका तिक्ता कषाया मधुरा हिमा ॥ १० ॥ मुख वैशद्य कृल्लघ्वी तृषास्त्र कफ पित्त नुत् ॥ किञ्जलकः शीतलो वृष्यः कषायो ग्राहकोऽपि सः ॥ ११ ॥ कफपित्त तृष्णादाह रक्तार्शो विषशोथ जित् ॥ मृणालं शीतलं वृष्यं पित्तदाहास्त्र जिद्गुरु ॥ १२ ॥ दुर्ज्जरं स्वादु पाकञ्च स्तन्यानिल कफ प्रदम् ॥ संग्राहि मधुरं रूक्षं शालूक मपि तद्गुणम् ॥ १३ ॥

भा० अनन्तर नौ पत्रादि ।] कवलके नये पत्तोंको संवर्त्तिका कहतेहैं,

और बीजको कोश तथा कर्णिका कहतेहैं ॥ और तिरियों को किंजल्क केसर कहतेहैं ॥ तथा रसको मकरन्द ऐसा कहतेहैं ॥ ८ ॥ और उस्के नाल की मृणा मृणाल पद्मनाल विष ऐसा कहतेहैं ॥ नवीन पत्त शीतल कसैल दाह तथा केनाशकहैं ॥ ९ ॥ और मूल कृच्छ्र गुदारोग रक्तपित्त इनकी नाशक है ॥ और उस्के बीज तिक्त कसैले शीतल होते हैं ॥ १० ॥ और मुखको स्वच्छ कर ने वाले हलके तथा तृषा रक्त कफ पित्त इनकी नाशक है ॥ तिरियां शीतल शु क्रकी उत्पन्न करनेवाली कसैली क़ाबिज़ होतीहैं ॥ ११ ॥ कफ पित्त तृषा दाह रक्त की बवासीर विष सूजन इनको जीतने वाला ॥ कमलकी नाल शीतल शुक्र को उत्पन्न करनेवाली और पित्त दाह रक्त इनको जीतनेवाली भारीहै। ॥ १२ ॥ दुर्जर पाकमें मधुर दुग्ध वात कफ इनको उत्पन्न करने वाली है॥ तथा क़ाबिज़ मधुर रूखी होतीहै और शालूक अर्थात् उस्की जड़ भी उसीके समा न गुणमें हैं ॥ १३ ॥

[अथ स्थल कमल] पद्मचारिण्यतिचराव्यथा पद्मा च शारदा ॥ पद्मानुष्णा कटुस्तिक्ता कषाया कफ-वात जित् ॥ १४ ॥ मूत्रकृच्छ्राश्म शूलघ्नी श्वास का स विषापहा ॥

२ अथ कुमुदिनी कोई इति लोके।

श्वेतं कुवलयं प्रोक्तं कुमुदं कैरवं तथा ॥ कुमुदं पि च्छिलं स्निग्धं मधुरं ह्लादं शीतलम् ॥ १५ ॥

१ अथ कुमुद। कुमुद्वती कैरविका तथा कुमुदिनीति च ॥ सा तु मूलादि सर्वाङ्गैः रुक्ता समुदिता बुधैः ॥ ॥ १६ ॥ पद्मिन्या ये गुणाः प्रोक्ता कुमुदिन्याश्च ते स्मृताः।

भा० अनन्तर स्थलकमल ॥ पद्मचारिणी। अतिचराव्यथा। पद्मा। शार दा। यह स्थल कमल के नामहैं। थलकमल शीतल कड़वा तिक्त कसैला कफ वात को जीतने वाला है ॥ १४ ॥ और मूत्रकृच्छ्र पथरी शूल। इनका

नाशक तथा श्वास कास विष इनका भीनाशक ॥
अनन्तर कुमुद कहतेहैं ॥ स्वेत कमलको कुमुद तथा कैरव कहतेहैं ॥ स्वेत कमल चिकना चेपदार मधुर हृद्य शीतल होता है ॥ २५॥
अनन्तर कुमुदिनी ॥ कुमुदवती कैरविका कुमुदिनी येह कुमुदिनीके नामहैं ॥ वोह मूल आदि सब अंगोंसे खिलीहुई होतीहै ॥ ऐसा पण्डितोंने कहाहै ॥ २६ ॥ जो पद्मिनी के गुण कहे गयेहैं वोही कुमुदनी के भी कहे हैं ॥

अथ जलकुम्भी सेवार ।] वारिपर्णी कुम्भिका स्याच्छैवालं शैवलञ्च तत ॥ वारिपर्णी हिमा तिक्ता लघ्वी स्वाद्वी सरा कटुः ॥ २७ ॥ दोषत्रय हरी रूक्षा शोणित ज्वर शोष कृत ॥ शैवालं तुवरं तिक्तं मधुरं शीतलं लघु ॥ २८ ॥ स्निग्धं दाह तृषा पित्त रक्त ज्वर हरं परम् ॥

भा० अनन्तर जलकुंभी और सिवार ॥ वारिपर्णी कुंभिका । येह जलकुंभीके नामहैं ॥ शैवाल शैवल येह सैवारके नामहैं । जलकुम्भी शीतल तिक्त हलकी मधुर सर कटु होता है ॥ २७ ॥ और त्रिदोष को नाश करनेवाली रूखी रक्त ज्वर शोष इनको करनेवालीहै ॥ और सिवार कसैला तिक्त मधुर हलका चिकना और दाह तृषा पित्त रक्तज्वर इनको दूर करनेवाला है ॥

अथ सेवती । गुलाव इति च । शतपत्री तरुण्युक्ता कर्णिका चारु केशरा ॥ महाकुमारी गन्धाढ्या लाक्षा कृष्णाति मुञ्जला ॥ २९ ॥ शतपत्री हिमा हृद्या ग्राहिणी शुक्रला लघुः ॥ दोषत्रयास्त्र जिद्वर्ण्या तिक्ता कट्वी च पाचनी ॥ ३० ॥

भा० अनन्तर सेवती ।] शतपत्री तरुणी कर्णिका चारु केशरा ॥ महा

महाकुमारी, गन्धाढ्या, लाक्षा कृष्णा अतिमञ्जुला। येह सेवतीके नाम हैं ॥१९॥ सेवती शीतल हृदयको प्रिय कान्ति शुक्रको उत्पन्न करने वाली। हलकी। और त्रिदोष रक्त इनको जीतने वाली और व्रणको अच्छा करने वाली तिक्त कड़वी पाचन है ॥२०॥

अथ वसंती। नेवारि इति लोके।] नेपाली कथिता तज्ज्ञैः सप्तला नवमालिका॥ वासन्ती शीतला लघ्वी तिक्ता दोषत्रयास्रजित्॥२१॥

[अथवा वार्षिकी। वेल इति लोके। श्रीपदी षट्पदानन्दा वार्षिकी मुक्तबन्धना॥ वार्षिकी शीतला लघ्वी तिक्ता दोषत्रयापहा॥ २२॥ कर्णाक्षिमुखरोगस्या तत्तैलं तद्गुणं स्मृतम्॥

भा० अनन्तर निवारी। नेपाली, सप्तला, नवमालिका, येह निवारीके नाम हैं। निवारी शीतल हलकी तिक्त त्रिदोषको जीतनेवाली है ॥२१॥ अनन्तर वार्षिकी वेल, अर्थात् वर्षानी वेल ॥ श्रीपदी षट्पदा नंदा वार्षिकी मुक्तबन्धना। येह वर्षानी वेलके नाम हैं। वर्षाती शीतल तिक्त हलकी त्रिदोषकी नाशक है ॥२२॥ और कान आंख मुख इनके रोगोंकी नाशक है उसका तेल उसीके समान गुणमें कहा गयाहै ॥

अथ चम्बेली। स्वर्णजाती।] जातिर्जाती च सुमना मालती राजपुत्रिका॥ चेतिका हृद्यगन्धा च सा पीता स्वर्णजातिका॥२३॥ जातीयुगं तिक्त मुष्णं तुवरं लघु दोषजित्॥ शिरोक्षि मुख दन्तार्ति विषकुष्ठानिलास्रजित्॥२४॥

भा० अनन्तर चमेली। [पीली चमेली] जाति जाती सुमना मालती राज

पुत्रिका- येह चमेली के नाम हैं ॥ और चेतिका हृद्यगन्धा स्वर्णजातिका, येह पीली चमेली के नाम हैं ॥२३॥ दोनों चमेली तिक्त उष्ण कसैली हलकी दोषको जीतने वाली हैं ॥ और सिर नेत्र मुख दांत इनकी पीड़ा और विष कुष्ठ वातरक्त। इनको जीतने वाली हैं ॥ २४॥

अथ जुही सुवर्णजुही।] यूथिका गणिकाम्बष्ठा सा पीता हेमपुष्पिका ॥ यूथी युगं हिमं तिक्तं कटुपाकरसं लघु ॥ २५॥ मधुरं तुवरं हृद्यं पित्तघ्नं कफवातलम् ॥ व्रणास्त्र मुखदन्ताक्षि शिरोरोग विषापहम् ॥ २६ ॥ अथ चम्पा।] चाम्पेयश्चम्पकः प्रोक्तो हेमपुष्पश्च सस्मृतः ॥ एतस्य कलिका गन्धफलीति कथिता बुधैः ॥ २७ ॥ चम्पकः कटुकस्तिक्तः कषायो मधुरो हिमः ॥ विषक्रिमि हर कृच्छ्र कफ वातास्त्र पित्त जित् ॥ २८ ॥

भा० अनन्तर जुही। और पीली जुही।] यूथिका- गणिका- अम्बष्ठा। येह जुही के नाम हैं ॥ और हेमपुष्पिका- येह पीली जुही के नाम हैं ॥ दोनों जुही शीतल तिक्त पाकमें कडवी हलकी होती है ॥ २५॥ और मधुर कसैली हृद्य पित्तनाशक। कफ वातको करनेवाली है ॥ और घाव रक्त मुख दन्त नेत्र शिर इनके रोग तथा विष इनकी नाशक है ॥ २६

अनन्तर चम्पा।] चाम्पेय चम्पक हेमपुष्प येह चम्पे के नाम कहे हैं ॥ इसकी फली को गन्धफली ऐसा पंडितों ने कहा है ॥ २७॥ चम्पा- कडवा,

[illegible]

पाक रसो गुरुः ॥ २९ ॥ कफ पित्त विष श्वित्र कृमि दन्त गदापहः ॥ [अथ वकुल वृहद् बोल सरीति च] शिवमल्ली पाशुपत एकाष्ठीलोबुको वसुः ॥ बुको ऽनुष्णः कटुस्तिक्तः कफ पित्त विषापहः ॥ ३० ॥ योनिशूल तृषादाह कुष्ठ शोथास्त्र नाशनः ॥

भा० अनन्तर मोरसरी ॥ वकुल मधुगन्ध सिंह केसरक येह मोलसिरी के नामहैं ॥ मोलसरी कसेली शीतल पाक रसमें कटु हलकी भारीहै कफ पित्त विष स्वित्र क्रमि दन्तरोग इनका नाशक है ॥
अनन्तर बड़ी मोलसरी ॥ शिवमल्ली पाशुपत एकाष्ठील बुक वसु येह बड़ी मोलसरी के नाम हैं ॥ मोलसिरी शीतल कड़वी तिक्त है और कफ पित्त विषकी नाशक है ॥ ३० ॥ योनिश्र्ल तृषा दाह कुष्ठ रक्तशोथ इनका नाशक है ॥

[अथ कदम्बः।] कदम्बः प्रियको नीपो वृत्तपुष्पो हलिप्रियः ॥ कदम्बो मधुरः शीतो कषायो लवणो गुरुः ॥ ३१ ॥ सरो विष्टम्भ कृद्रूक्षः कफस्तन्यानिलप्रदः ॥ [अथ कूजा।] कुब्जको भद्र तरणि वृहत्पुष्पोऽति केसरः ॥ महा सहा कण्टकाद्या नीला लिकुल सङ्कुला ॥ ३२ ॥ कुब्जकः सुरभिः स्वादुः कषायानुरसः सरः ॥ त्रिदोष शमनो वृष्यः शीत दृर्ता च स स्मृतः ॥ ३३ ॥

भा० अनन्तर कदम्ब। कदम्ब, प्रियक, नीप, वृत्तपुष्प, हरिप्रिय येह कदम्बके नामहैं ॥ कदम मधुर शीतल कसेला नमकीन भारी ॥ ३१ ॥ सर विष्टम्भ करनेवाला रूखाहै। और कफ दुग्ध वात इनको करनेवालाहै ॥ [अथ कूजा। कुब्जक भद्रतरणी वृहत्पुष्प अतिकेसर।

महासहा, कण्टकाढ्य, नीलालिकुल संकुल, येह कूजाके नामहैं ॥ येह फूल सेवती की क़िस्मसे होताहै ॥ ३२॥ कूजा सुगन्धयुक्त मधुर पीछेसे कसैला सर ॥ त्रिदोष शमन शुक्र कोउत्पन्न करनेवाला शीत कहा गया है ॥ ३३॥

अथ मल्लिका।] मल्लिका मदयन्ती च शीतभीरुश्च भूपदी ॥ मल्लिकोष्णा लघुर्वृष्या तिक्ता च कटुका हरेत् ॥ ३४॥ वात पित्तास्य दृग्व्याधि कुष्ठा रुचि विषव्रणान् ॥ [अथ माधवी। माधवीस्यात्तु वासन्ती पुण्ड्रको मण्डकोऽपि च ॥ अतिमुक्तो विमुक्तश्च कामुको भ्रमरोत्सवः ॥ ३५॥ माधवी मधुरा शीता लघ्वी दोषत्रयापहा ॥

भा० अनन्तर मालती ॥ मल्लिका मदयन्ति शीत भीरु भूपदी ॥ येह मालतीके नामहैं ॥ मालती गरम हलकी शुक्रको उत्पन्न करनेवाली तिक्त कड़वी होती है ॥ ३४॥ और वात पित्त मुख दृष्टि रोग कुष्ठ अरुचि विषव्रण इनको नाशकरतीहै ॥ [अनन्तर माधवी। माधवी वासन्ती पुन्डरक मन्डक अतिमुक्त विमुक्त कामुक भ्रमरोत्सव ॥ ३५॥ येह मोतियाके नाम हैं। मोतिया शीतल मधुर हलका दोषत्रय का नाशक होता है ॥

[केवरा सुवर्णकेतकी।] केतकः सूचिकापुष्पो जम्बुकः क्रकचच्छदः ॥ सुवर्णकेतकी त्वन्या लघु पुष्पा सुगन्धिनी ॥ ३६॥ केतकः कटुकः स्वादु लघुस्तिक्तः कफापहः ॥ उष्णा तिक्त रसा ज्ञेया चक्षुष्या हेमकेतकी ॥ ३७॥

भा० अनन्तर केवड़ा।] और सुनहरी केवड़ा।] केतक सूचिकापुष्प जंबुक क्रकचच्छद येह केवडेके नामहैं ॥ और दूसरा सुनहरी केवडा छोटे फूल वाला सुगन्धयुक्त होता है ॥ ३६॥ केवड़ा मधुर हलका तिक्त कफ

नाशक होता है ॥ और सुनहरी केवड़ा उष्ण रसमें तिक्त नेत्रके हितहोताहै ३७

[अथ किङ्किरात इति गौड़ादौ प्रसिद्धः।]

किङ्किरातो हेम गौरः पीतकः पीत भद्रकः ॥

किङ्किरातो हिमस्तिक्तः कषायश्च हरेद्सौ॥ ३८॥

कफ पित्त पिपासास्त्र दाह शोष वमि कृमीन् ॥

[अथ कर्णिकारः।] कर्णिकारः परिव्याधः पाद

पोत्पल इत्यपि ॥ कर्णिकारः कटु स्तिक्त स्तुवरः

शोधनो लघुः ॥ ३९ ॥ रञ्जनः सुखदः शोथ श्ले-

ष्मास्त्र व्रण कुष्ठ जित् ॥

भा० अनन्तर किङ्किरात इस प्रकार प्रसिद्ध है ॥ किंकिरात हेमगौर पीतक पीतभद्रक येह किंकिरात के नामहैं ॥ किंकिरात शीतल तिक्त कसैला है ॥ ३८ ॥ और कफ पित्त तृषा रक्त दाह शोथ वमन कृमिइन कोजीतताहै ॥ अनन्तर कर्णिकारः॥ कर्णिकार परिव्याध पाद-पोत्पल ॥ येह कर्णिकार के नामहैं ॥ कर्णिकार कड़वी तिक्त कसे-ली शोधन हलकी ॥ ३९॥ रञ्जन सुखदेनेवाली शोथ कफ रक्त व्रण कुष्ठ इनको जीतनेवाली है ॥

[अथ अशोक असोगि।]

अशोको हेम पुष्पश्च वञ्जुल स्ताम्र पल्लवः ॥

कङ्केलिः पिण्ड पुष्पश्च गन्ध पुष्पो नटस्तथा ॥ ४०॥

अशोकः शीतल स्तिक्तो ग्राही वर्ण्यः कषायकः

॥ दोषापची तृषा दाह कृमि शोथ विषास्त्र जित् ४१

भा० अनन्तर आसोक । अशोक हेमपुष्प वंजुल ताम्र पल्लव अंकेली पिंड पुष्प गंधपुष्प नट येह अशोक के नामहैं ॥ ४०॥ अशोक शीतल तिक्त काबिज़ वर्ण को अच्छाकरनेवाला कसैलाहै ॥ दोष अपचि तृषा

दाह कृमि शोथ विष रक्त इनका जीतने वाला है ॥ ५१॥

[अथ वाणपुष्प इति गौड़ादौ प्रसिद्धः।] अम्ला
तोऽम्लाटनः प्रोक्तस्तथा म्लानक इत्यपि ॥ कु
रण्टको वर्णपुष्पः स एवोक्तो महासहः ॥ ५२॥
अम्लाटनः कषायोष्णः स्निग्धः स्वादुश्च तिक्त-
कः ॥ [अथ कटशैरेआ। सैरेयकः श्वेतपु-
ष्पः सैरेयः कटसारिका ॥ सहाचरः सहचरः।
स च भिन्द्यपि कथ्यते ॥ ५३॥ कुरण्टकोऽत्र पीते
स्याद्रक्ते कुरवकः स्मृतः॥ नाले बाणाह्वयो रु-
क्तो दासे आर्त्तगलश्च सः॥ ५४॥ सैरेयः कुष्ठ
वातास्त्र कफकण्डू विषापहः ॥ तिक्तोष्णो म
धुरोऽनम्लः सुस्निग्धः केशरञ्जनः ॥ ५५॥

भा० अनन्तर वाणपुष्प ॥ अम्लात अम्लाटन तथा अम्लानक कुरं-
टक वर्णपुष्प महासह येह वाणपुष्प के नाम हैं ॥ ५२॥ वाणपुष्प कसे-
ला गरम चिकना मधुर तिक्त होता है ॥ [अनन्तर कटसैरेआ।]
सैरेक स्वेतपुष्प सैरेय कटसारिका ॥ सहाचर सहचर भिंदि येह क-
टसैरेया के नाम हैं ॥ ५३॥ कटसैरेया पीली फूलवाली को कुरंटक कह
ते हैं ॥ और लाल फूल वाली को कुरबक कहा है ॥ और नीले फूल वा-
ली को वाण कहा है। और हरे फूलवाली को दास आर्त्तगल कहा है ॥
५४॥ कटसैरेया कुष्ठ वात रक्त कफ खुजली विष इनकी नाशक है ॥
और तिक्त गरम मधुर वे खट्टी चिकनी केशको रंजन होती है ॥ ५५॥

[अथ कुन्दः।] कुन्दन्तु कथितं माध्यं सदापुष्प
ञ्च तत्स्मृतम् ॥ कुन्दं शीतं लघु श्लेष्म शिरो
रुग् विष पित्तहृत् ॥ ५६॥

अथ मुचकुन्द नाम्नैव प्रसिद्धः ॥ मुचुकुन्दः क्षत्र वृक्ष श्चित्रकः प्रति विष्णुकः ॥ मुचुकुन्दः शिरः पीड़ा पित्तास्त्र विष नाशनः ॥ ४७ ॥

अथ तिलाभपुष्प स्तिलक नाम्नैव प्रसिद्धः ॥ तिलकः क्षुरकः श्रीमान् पुरुष श्छिन्न पुष्पकः ॥ तिलकः कटुकः पाके रसे चोष्णो रसायनः ॥ ४८ ॥ कफ कुष्ठ क्रमीन् वस्ति मुख दन्त गदान् हरेत् ॥

भा० अनन्तर कुन्द ॥ कुन्द मांस सदापुष्प येह कुन्द के नामहैं ॥ कुन्द शीतल हलका कफ शिरकी पीड़ा विष पित्त इनकानाश करताहै । ४६॥ अनन्तर मुचकुन्द ॥ मुचुकुन्द क्षत्रवृक्ष चित्रक प्रतिविष्णुक येह मुचुकुन्दके नामहैं ॥ मुचकुन्द शिरकी पीड़ा रक्तपित्त विष इनकानाशक है ॥ ॥ ४७ ॥ अनन्तर तिलक इनका फूल तिलकेफूल समान होताहै और इसीनामसेप्रसिद्ध है ॥ तिलक क्षुरक श्रीमान् पुरुष छिन्नपुष्पक । येह तिलक के नाम हैं । तिलक पाक रसमें कडुवा उष्ण रसायन होताहै ॥ ४८ और कफ कुष्ठ क्रमि वस्ति मुखदन्त इनके रोगोंकोनाश करताहै ॥

[अथ गेजुनिआ ।] बन्धूको बन्धूजीवश्च रक्तोमाध्यान्हिकोऽपि च ॥ बन्धूकः कफ कृत् ग्राही वातपित्त हरो लघुः ॥ ४९ ॥ [अथ गोड़हुल ।] तथा साम्फी। ऊर्द्ध पुष्पज्जपा चाथ त्रिसन्ध्या सारुणा सिता ॥ जपा संग्राहिणी केश्या त्रिसन्ध्या कफ वात जित् ॥ ५० ॥

भा० अनन्तर दुपहरिया ॥ बन्धूक बन्धु जीव रक्त मध्यान्हिक । येह दुपहरिया के नामहैं । दुपहरिया कफको करने वाला क़ाबिज़ वातपित्त का नाशक हलका होताहै ॥ ४९ ॥ [अनन्तर जवा वृक्ष ।] ऊर्द्ध पुष्प जयापुष्प त्रिसन्ध्या, सारुण, सिता, येह जवापुष्पके नामहैं ॥ जवापुष्प क़ाबिज़ केश

को अच्छा करनेवाला। कफ वातको जीतनेवाला है ॥ ५०॥

अथ सिन्दूरिआ। सिन्दूरी रक्तबीजा च रक्तपुष्पा सुकोमला ॥ सिन्दूरी विष पित्तास्र तृष्णा वान्ति हरी-हिमा ॥ ५१॥ [अथागस्तिः। अथागस्त्यो वङ्गसेनो मुनिपुष्पो मुनिद्रुमः ॥ अगस्तिः पित्तकफजित् चातुर्थक हरो हिमः ॥ ५२॥ रूक्षो वातकर स्तिक्तः प्रतिश्याय निवारणः ॥

भा० अनन्तर सिन्दूरिया। सिन्दूरी रक्तबीजा रक्तपुष्पा सुकोमला येह सिन्दुरियाके नाम हैं ॥ सिन्दूरी विषरक्त पित्त तृषा वमन इनको दूर करनेवाली शीतल होती है ॥ ५१॥[अनन्तर अगस्त] अगस्त्य वंगसेन मुनिपुष्प मुनिद्रुम येह अगस्त्यके नाम हैं ॥ अगस्त्य पित्तकफ कोजीतनेवाला और चातुर्थकज्वरका नाशकरनेवाला। शीतल है ॥ ५२॥ और रूखा वातको करनेवाला। तिक्त जुकाम को दूर करनेवाला है ॥

[अनन्तर तुलसी शुक्ला कृष्णा च]

तुलसी सुरसा ग्राम्या सुलभा बहुमञ्जरी ॥ अपेतराक्षसी गौरी शूलघ्नी देव दुन्दुभिः ॥ ५३॥ तुलसी कटुका तिक्ता हृद्योष्णा दाह पित्त कृत् ॥ दीपनी कुष्ट कृच्छ्रास्र पार्श्वरुक्कफवातजित् ॥ ५४॥ शुक्ला कृष्णा च तुलसी गुणै स्तुल्या प्रकीर्त्तिता ॥

श्वेत

भा० अनन्तर काली और तुलसी ॥ तुलसी सुरसा ग्राम्या सुलभा बहुमञ्जरी। अपेतराक्षसी गौरी शूलघ्नी देव दुन्दुभी। येह तुलसीके नाम हैं। ॥ ५३॥ तुलसी कड़वी तिक्त हृद्य उष्ण दाह पित्तकोकरनेवाली है ॥ और दीपन है ॥ तथा कुष्ठ मूत्रकृच्छ्र रक्तपसली की पीड़ा कफ वात इनको जीतनेवाली है ॥ ५४॥ काली और सेत तुलसी गुणमें समानकही गई है ॥

[अथ मरुआ।] मारुतोऽसौ मरुवको मरुन्मरुरपि स्मृतः ॥ फणी फणिज्झकश्चापि प्रस्थपुष्पः समीरणः ॥ ५५ ॥ मरुदग्निप्रदो हृद्यस्तीक्ष्णोष्णः पित्तलो लघुः ॥ वृश्चिकादि विषश्लेष्म वातकुष्ठ कृमिप्रणुत् ॥ ५६ ॥ कटुपाक रसो रुच्यस्तिक्तो रूक्षः सुगन्धिकः ॥

भा० अनन्तर मरुआ ॥ मारुत मरुवक मरुण मरु । येह मरुआके नाम कहे हैं ॥ ५५ ॥ मरुआ अग्निको करनेवाला हृद्य तीक्ष्ण उष्ण पित्तको करनेवाला हलकाहोताहै । और विच्छू आदियों के विषक फ वात कुष्ठ कृमि इनका नाशक है ॥ ५६ ॥ और पाक रसमें कडुवा रुचिको करनेवाला तिक्त रूखा सुगन्धिक होता है ॥

[अथ दवना।] उक्तो दमनको दान्तो मुनिपुत्रस्तपोधनः ॥ गन्धोत्कटो ब्रह्मजटो विनीतः कलपत्रकः ॥ ५७ ॥ दमनस्तुवरस्तिक्तो हृद्यो वृष्यः सुगन्धिकः ॥ ग्रहणी विषकुष्ठास्त्र क्लेद कण्डू त्रिदोष जित् ॥ ५८

भा० अनन्तर दमना ॥ दमनक दान्त मुनिपुत्र तपोधना ॥ गन्धोत्कट ब्रह्मजट विनीत कल्पत्रक येह दमनाके नामहैं ॥ ५७ ॥ दमना कसैला तिक्त हृद्य शुक्रको उत्पन्न करनेवाला सुगंधिक होताहै ॥ और मीनें विष कुष्ठ रक्त क्लेद खुजली त्रिदोष इनको जीतताहै ॥ ५८ ॥ ःसे

[अथ वर्वरी।] वर्वरी तुवरी तुङ्गी खरपुष्पाज गंधिका ॥ पर्णासस्तत्र कृष्णे तु कठिञ्जक कुठेरकौ ॥ ५९ तत्र शुक्लेऽर्जकः प्रोक्तो वटपत्रस्तथा परः ॥ वर्वरी त्रितयं रूक्षं शीतं कटु विदाहि च ॥ ६० ॥

तीक्ष्णा रुचिकरं हृद्यं दीपनं लघुपाकि च ॥ पित्त-
लं कफवातास्र कण्डू क्रिमि विषापहम् ॥ ६१ ॥

इति श्री भावप्रकाशे पुष्पादिवर्गः ॥

[अथ वटादिवर्गः तत्रादौ वटस्य नामानि गुणाश्च।]

वटोरक्तफलः शृङ्गी न्यग्रोधः स्कन्धजो ध्रुवः ॥ क्षी-
री वैश्रवणो वासो बहुपादो वनस्पतिः ॥ ६२ ॥ वटः
शीतो गुरुर्ग्राही कफपित्त व्रणापहः ॥ वर्ण्यो वि-
सर्पदाहघ्नः कषायो योनिदोष हृत् ॥ ६३ ॥

भा० अनन्तर बर्बरी ॥ बरबरी सुबरी तुंगी खरपुष्पा अजगन्धिका ॥ पर्णी
श ये बर्बरीके नाम है ॥ उसमे काला कठिलक और कुठेरक होताहै ॥ ५९
॥ उन्मेंसुफ़ेद अरजक वटपत्र कहा गयाहै ॥ तीनो बर्बरी रूखी शीतल
कड़वी विदाह को करनेवाली होतीहै ॥ ६० ॥ तथा तीखी रुचिको करनेवाली
हृद्य दीपन और पाकमें हलकी होतीहै ॥ और पित्तको करनेवाली कफ
बातरक्त खुजली क्रिमि विष इनकी नाशक ॥ ६१ ॥
इतिश्री भावप्रकाशे पुष्पादि वर्गः॥ ॐ ॥ अनन्तर वटादि वर्गः ॥
उनमें पहले वटके नाम और गुण ॥ वट, रक्तफल, शृंगी, न्यग्रोध, स्कंधज,
ध्रुव ॥ क्षीरी वैश्रवण वास बहुपाद वनस्पति ॥ ६२ ॥ येह बड़ के नामहैं ॥
बड़ शीतल भारी क़ाबिज़ कफ पित्त व्रणका नाशक है ॥ और वर्णको
अच्छा करनेवाला तथा विसर्पदाहका नाशक कसैला और योनि दोष
का नाशक है ॥ ६३ ॥

[अथ पीपर। बोधिद्रुः पिप्पलोऽश्वत्थश्चलपत्रो
गजाशनः ॥ पिप्पलो दुर्जरः शीतः पित्तश्लेष्म
व्रणास्रजित् ॥ ६४ ॥ गुरुस्तुवरको रूक्षो वर्ण्यो यो
नि विशोधनः ॥ [अथ पिप्पलभेदः।]

गजदण्ड सहोरा इति लोके ।] पारीषोऽन्यः पलाश श्च कपिचूतः कमण्डलः ॥ गर्द भाण्डष्कन्दशलः कपीतन सुपार्श्वकः ॥ ६५ ॥ पारीषो दुर्ज्जरः स्निग्धः क्रमि शुक्र कफप्रदः ॥ फलेऽम्लो मधुरो मूले कषायः स्वादु मज्जकः ॥ ६६ ॥

भा० अनन्तर पीपल ॥ बोधिद्रु पीपल अश्वत्थ चलपत्र गजाशन । येह पीपल के नाम हैं ॥ पीपल दुर्ज्जर अग्निवत पित्त कफ व्रण रक्तको जीतने वाला है ॥ ६४ ॥ और भारी कसैला रूखा वर्णो को अच्छा करनेवाला योनि का शोधक है ॥ अनन्तर पीपलका भेद ॥ गजदण्ड सोहरा इस प्रकार लोकमें कहते हैं ॥ पारीष अन्यपलाश कपिचूत कमण्डल गर्दभाण्ड कंदशल कपीतन सुपार्श्वक । येह रसपीपलके नाम हैं ॥ ६५ ॥ [पा पारसपीपल ।] दुर्जर चिकना क्रमि शुक्रको कफको करनेवाला है ॥ फलमें खट्टा मूलमें मधुर गिरी कसैली और मधुर होती है ॥ ६६ ॥

[अथ बेलिया पीपर ।] नन्दीवृक्षोऽश्वत्थ भेदः प्ररोही गजपादपः ॥ स्थालीवृक्षः क्षयतरुः क्षीरी च स्याद्वनस्पतिः ॥ ६७ ॥ नन्दीवृक्षो लघुः स्वादुःतिक्तस्तुवर उष्णकः ॥ कटु पाक रसो ग्राही विषपित्तकफास्त्र जित् ॥ ६८ ॥

भा० अनन्तर बेलिया पीपर ॥ नन्दीवृक्ष अश्वत्थबेल प्ररोही गजपादप- ॥ स्थालीवृक्ष क्षयतरु क्षीरी वनस्पति येह बेलिया पीपर के नाम हैं ॥ ६७ ॥ बेलिया पीपर हलका मधुर तिक्त कसैला गरम होता है ॥ और पाक रसमें कटु क्राविज़ विष पित्त कफ रक्त का नाशक है ॥ ६८ ॥

अथ उदुम्बर ॥ उदुम्बरो जन्तुफलो यज्ञाङ्गो हेम-

दुग्धकः॥ उदुम्बरो हिमो रूक्षो गुरुः पित्तकफास्रजित्॥ ६९॥ मधुरस्तुवरो वर्ण्यो व्रणशोधनरोपणः॥

[अथ कठुम्बरी।] काकोदुम्बरिका फल्गु र्मलयू र्जघनेफला॥ मलयूस्तम्भनी तिक्ता शीतला तुवरा जयेत्॥ ७०॥ कफपित्त व्रणश्वित्र कुष्ठ पाण्ड्वर्श कामलाः॥

भा० अनन्तर गूलर।] उदुम्बर जंतुफल यज्ञांग हेमदुग्धक। येह गूलर के नामहैं। गूलर शीतल रूखा भारी पित्त कफ रक्तको जीतने वाला है॥ ६९॥ और मधुर कसैला वर्णको अच्छा करनेवाला व्रणका शोधन रोपण है॥ [अनन्तर कठिया गूलर। काकोदुम्बरिका फलगू मलयू जघनेफला। येह कठियागूलर के नाम हैं॥ कठिया गूलर स्तंभनकरनेवाला तिक्त शीतल कसैला है॥ ७०॥ और कफ पित्त व्रण श्वित्र कुष्ठ पांडुरोग बवासीर कामला इनको जीतना है॥ [अथ पाकरि।]

प्लक्षो जटीपर्करी च पर्कटी च स्त्रियामपि॥ प्लक्षः कषायः शिशिरो व्रणयोनि गदापहः॥ ७१॥ दाह पित्त कफास्रघ्नः शोथहा रक्तपित्तहृत्॥

[अथ शिरीषः।] शिरीषो भण्डिलो भण्डी भण्डीरश्च कपीतनः॥ शुकपुष्पः शुकतरु मृदुपुष्पः शुकप्रियः॥ ७२॥ शिरीषो मधुरोऽनुष्ण स्तिक्तश्च तुवरो लघुः॥ दोषशोथ विसर्पघ्नः कासव्रण विषापहः॥ ७३

भा० अनन्तर पाकर।] प्लक्ष जटी परकरी परकटी। येह पाकर के नाम हैं॥ पाकर कसैला शीतल व्रण योनिरोग इनका नाशकहै॥ ७१॥ और दाह पित्त कफ रक्त इनका नाशक शोथ नाशक रक्त पित्तको दूर करने वालाहै॥ [अनन्तर सिरीष। शिरीष भण्डिल भन्डि भण्डीर कांपतन

शुकपुष्प शुकतरु मृदुपुष्प शुकप्रिय । येह शिरीष के नाम हैं ॥ ७२॥ सिरस मधुर शीतल तिक्त कसैला हलका होताहै ॥ और दोष शोथ विसर्प इनका नाशक तथा कास व्रण इनका नाशक हैं विषका नाशक है ॥ ७३॥

[अथ क्षीरवृक्षः पञ्चवल्कलयोर्लक्षणं गुणाश्च ।]

न्यग्रोधो दुम्बराश्वत्थ पारीषप्लक्ष पादपाः ॥ पञ्चै ते क्षीरिणो वृक्षास्तेषां त्वक् पञ्चवल्कलम् ॥ ७४॥ केचित्तु पारीषस्थाने शिरीषं वेतसं परे वदन्तीति शेषः । क्षीरवृक्षा हिमा वर्ण्या योनिरोग व्रणापहाः ॥ रूक्षाः कषाया मेदोघ्ना विसर्पामय नाशनः ॥ ७५॥ शोथ पित्त कफास्रघ्नाः स्तन्या भग्नास्थि योजका । त्वक् पञ्चकं हिमं ग्राहि व्रण शोथ विसर्प जित् ॥ ७६ ॥ तेषां पत्रं हिमं ग्राह कफवातास्र नुल्लघु ॥ विष्टम्भाध्मान जित् तिक्तं कषायं लघुलेखनम् ॥ ७७॥

भा० अनन्तर क्षीर वृक्ष ॥ पच वल्कलोंका लक्षण और गुण कहतेहैं ॥ बड़ गूलर पीपल पार्श्वपीपल पाकर ॥ पांच येह क्षीर वृक्ष हैं ॥ उनकी छाल पंचवल्कल हैं ॥ ७४॥ कोई पार्श्व पीपल को सिरी और कोई वेतस कोकहतेहैं येह शेषहैं । क्षीर शीतल वर्णको अच्छा करनेवाले योनिरोग व्रण इनकें नाशक हैं ॥ रूखे कसैले मेदके नाशक विसर्प रोगके नाशकहैं ॥ ७५॥ तथा शोथ पित्त कफ रक्त इनके नाशक दूधकरनेवाले टूटे हाड़ को जोड़नेवालेहैं ॥ और पांचोंकी छाल शीतल काबिज़ व्रण शोथ विसर्प इनको जीतनेवाली हैं ॥ ७६॥ इनके पत्ते शीतल काबिज़ कफ वात रक्त के नाशक हलके होतेहैं ॥ और विष्टंभ आध्मान इनको जीतनेवाले तिक्त कसैले लेखन हैं ॥ ७७ ॥

[अथ शालः ।]

शालस्तु सर्जकार्याश्वकर्णकाः शस्य सम्बरः ॥

अश्वकर्णः कषायः स्याद् व्रणस्वेद कफ कृमीन् ॥७८॥ ब्रध्न विद्रधि बाधिर्य्य योनिकर्ण गदान् हरेत् ॥ [अथ शालभेदः।] सर्ज्जकोऽजक कर्णः स्याच्छालो मरिचपत्रकः ॥ अजकर्णः कटुस्तिक्तः कषायोष्णो व्यपोहति ॥७९॥ कफ पाण्डु श्रुति गदान् मेह कुष्ठ विषव्रणान् ॥

भा० अनन्तर शाल ॥ शाल सर्जकार्य्य अश्वकर्णिका शस्य शम्बर येह सालके नामहैं ॥ साल कसैला होता है और व्रण स्वेद कफ कृमि ॥७८॥ वद विद्रधी बहरापन योनिरोग कर्णरोग इनको नाश करताहै ॥ [दूसरा शालभेद। सर्जक अजकर्ण शालमरिच पत्रक येह शाल भेदके नामहैं ॥ दूसरा शाल कड़वा तिक्त कसैला उष्ण होता है और ॥७९॥ कफ खुजली कर्णरोग प्रमेह कुष्ठ विष व्रण इनको नाश करता है ॥

अथ शालई।] शल्लकी गज भक्ष्या च सुवहा सुरभी रसा ॥ महेरुणा कुन्दुरुकी वल्लकी च बहुस्रवा ॥८०॥ शल्लकी तुवरा शीता पित्त श्लेष्मातिसार जित् ॥ रक्तपित्त व्रणहरी पुष्टिकृत् समुदीरिता ॥८१॥

भा० अनन्तर सलेई ॥ शल्लकी गजभक्षा सुवहा सुरभिरसा ॥ महेरुणा कुन्दुरुकी वल्लकी बहुश्रुवा ॥८०॥ येह सलई के नाम हैं ॥ सरई कसैली शीतल पित्त कफ अतिसारको जीतनेवाली रक्त पित्त व्रण इनको नाश करनेवाली पुष्टिको करनेवाली कहीगईहै ॥८१॥

[अथ शीसव।] कपिलवर्णा शीसव।]

शिंशिपा पिच्छिला श्यामा कृष्णसारा च सा गुरुः। कपिला सैव मुनिभिर्भस्मगर्भेति कीर्त्तिता ॥८२॥ शिंशिपा कटुका तिक्ता कषाया शोष हारिणी ॥

अरि मेदक । येह दुर्गन्ध खैर के नामहैं ॥ दुर्गन्ध खदिर कसैला गरम मुखदंत के रोग रक्त इनको जीतनेवाला है ॥ ६१॥ और खुजली विष कफ क्रमि कुष्ठ विष व्रण इनको नाश करता है ॥

अथ रोहितकः ।] रोहीतको रोहितको रोही दाडिमपुष्पकः ॥ रोहीतकः प्लीह घाती रुच्यो रक्त प्रसाधनः ॥ ६२॥ अथ बबूल ।] बबूलः किङ्किरातः स्यात् किङ्किराटः सपीतकः ॥ सरवकथित स्तज्ज्ञै राभाषपद मोदिनी ॥ ६३॥ बब्बूलः कफनुद् ग्राही कुष्ठ क्रमि विषापहः ॥

[अथ रीठा ।] अरिष्टकस्तु माङ्गल्यः कृष्णा वर्णोऽर्थ साधनः ॥ रक्तबीजः पीतफेनः फेनिलो गर्भपातनः ॥ ६४ ॥

भा० अनन्तर रोहितक इस्से अनारकेसे फूल होते हैं ॥ रोहितक रोहीतक रोही दाडिमपुष्पक । येह रोहिके नामहैं ॥ रोही पिलहीको नाश करनेवाली रुचिको करनेवाली रक्तको स्वच्छ करनेवालीहै ॥ ६२॥
अनन्तर कीकर ॥ बबूल किंकरात किंकराट सपीतक ॥ येह बबूल के नामहैं ॥ वसोको उसके जाननेवालोंने आभाषपद मोदनी । ऐसाकहाहै ॥ ६३॥ कीकर कफनाशक काबिज कुष्ठ क्रमि इनका नाशकहै ॥
अनन्तर रीठा ॥ अरिष्टक मांगल्य कृष्णवर्ण अर्थसाधन ॥ रक्तबीज पीतफेन फेणिल गर्भपातन । येह रीठेके नामहैं ॥ ६४॥

अथ पितौजिआ ।] पुत्रजीवो गर्भकरो यष्टीपुष्पोऽर्थसाधकः ॥ पुत्रजीवो गुरुर्वृष्यो गर्भदः श्लेष्मवातहृत् ॥ ६५॥ सृष्ट मूत्रमलो रूक्षो हिमः स्वादुः

पटु : कटु :॥ [अथ इङ्गुदी।] इङ्गुदोऽङ्गार वृक्ष
श्च तिक्तकस्तापस द्रुमः ॥ इङ्गुद : कुष्ठ भूतादि
ग्रह व्रण विष क्रमीन् ॥ ९६ ॥ हन्त्युष्णः श्वित्र
शूलघ्नः स्तिक्तक : कटु पाकवान् ॥

भा० अनन्तर पुत्रजीवा के नाम ॥ पुत्रजीव गर्भकर यष्टीपुष्प अर्थसाधक। येह पुत्रजीवाके नामहैं ॥ पुत्रजीवा भारी शुकको उत्पन्न करनेवाली। गर्भकेकरनेवाली रूखी शीतल मधुर नमकीन कड़वी होतीहै ॥ गर्भको करनेवाली कफ की नाशक है ॥ ९५॥ [अनन्तर हिंगोट।] इंगुद अंगारवृक्ष तिक्तक तपसद्रुम येह हिंगोटके नामहैं ॥ हिंगोट कुष्ठ भूतादि ग्रह व्रण विष क्रमि इनको नाशकरता है ॥ ९६॥ और उष्णहै तथा श्वित्र शूलका नाशक तिक्त कटु पाकवाला है ॥

[अथ जिङ्गिनी।] जिङ्गिनी झिङ्गिनी झिङ्गी सु-
निर्य्यासा प्रमोदिनी ॥ जिङ्गिनी मधुरा सोष्णा क
षाया व्रण शोधिनी ॥ ९७ ॥ कटुका व्रण हृद्रोग
वातातीसार हृत्पटु : ॥ तमालः शाल वद्वेद्यो दा-
ह विस्फोट हृत पुनः ॥ ९८ ॥

भा० अनन्तर जिंगनीके नाम ॥ जिंगनी झिंगिनी झिंगी सुनिर्य्यासा प्रमोदनी येह जिंगनीके नामहैं ॥ जिंगनी मधुर कुछ गरम कसैली व्रण शोधकहै ॥ ९७ ॥ और कड़वीहै तथा व्रण हृदयरोग वातातिसार इनकी नाशक नमकीन होतीहै ॥ तमाल और सालके सदृश द्रव्य को जानना चाहिये और दाह विस्फोट के नाशक होती है ॥ ९८ ॥

[अथ तूणी।]

तूणी स्तुन्नक आपीनस्तुणिकः कच्छकस्तथा ॥
कठिक : कान्तलको नन्दि वृक्षश्च नन्दक : ॥ ९९ ॥

उष्णावीर्य्यो हरेन्मेदः कुष्ठश्वित्र वमि क्रिमीन् ॥
॥ ८३ ॥ बस्तिरुग्व्रणदाहास्त्र बलासान् गर्भपातिनी

भा० अनन्तर शीशम ॥ और कपिलवर्ण शीशम । शिंशिपा पिच्छिला श्यामा कृष्णसारा । येह शीसमके नामहैं । और वोह भारीहोताहै ॥ कपिला भस्मगर्भा ऐसा मुनियोंने उसीकोकहाहै ॥ ८२ ॥ शीशम कड़वा तिक्त कसैला शोषनाशक ॥ उष्ण वीर्य्य होताहै और मेद कुष्ठ श्वित्र वमन कृमि इनको नाश करताहै ॥ ८३ ॥ और पेड़ूकी पीड़ा व्रण दाह रक्त कफ इनको भीनाश करता है ॥ और गर्भका गिरानेवालाहै ॥

[अथ कोह ।] ककुभोऽर्जुन नामाख्योनदीसर्ज्जश्च कीर्त्तितः ॥ इन्द्रद्रुर्वीर वृक्षश्च वीरश्च धवलःस्मृतः ।
॥ ८४ ॥ ककुभः शीतलो हृद्यः क्षतक्षय विषास्त्रजित् ॥ मेदो मेह व्रणान् हन्ति तुवरः कफ पित्त हृत् ॥ ८५ ॥

भा० अनन्तर अर्जुन वृक्ष ॥ ककुभ अर्जुननामाख्य नदीसर्ज ॥ इन्द्रद्रु वीरवृक्ष, वीर, धवल, येह अर्जुन वृक्षके नाम कहेहैं ॥ ८४ ॥ अर्जुन शीतल हृद्य क्षत क्षय विष रक्त इनको जीतनेवालाहै ॥ और मेद प्रमेह व्रण इनको नाश करताहै और कसैलाहै तथा कफ पित्तका नाशक है ॥ ८५ ॥

[अथासन विजयसार इति च ।] बीजकः पीतसारश्च पीतशालक इत्यपि ॥ बन्धूक पुष्पः प्रियकः सर्ज्जक श्चासनः स्मृतः ॥ ८६ ॥ बीजकः कुष्ठ वीसर्प श्वित्र मेह गुद क्रमीन् ॥ हन्ति श्लेष्मास्त्र पित्तञ्च त्वच्यः केश्यो रसायनः ॥ ८७ ॥

भा० अनन्तर आसन और विजयसार भी कहतेहैं ॥ बीजक, पीतसार पीतशालक, बन्धूकपुष्प, प्रियकसरजक आसन येह विजयसारके नामहैं ॥ ८६ ॥ विजयसार कुष्ठ विसर्प श्वित्र प्रमेह गुद कृमि इनको नाश

करताहै ॥ और कफ रक्त पित्तको भी नाशकरताहै ॥ तथा त्वचाको हित केश को हित रसायनहै ॥ ८७ ॥

[अथ खदिर।]

खदिरो रक्त सारश्च गायत्री दन्तधावनः ॥ कण्टकी बाल पत्रश्च बहुशल्यश्च यज्ञियः॥ ८८॥ खदिरः शीतलो दन्त्यः कण्डु कासा रुचिप्रणुत् ॥ तिक्त कषायो मेदोघ्नः क्रिमिमेह ज्वर व्रणान् ॥ ८९॥ श्वित्र शोथामपित्तास्र पाण्डु कुष्ठ कफान् हरेत् ॥

भा० अनन्तर खैर। खदिर रक्तसार गायत्री दन्तधावन ॥ कन्टकी बालपत्र बहुशल्य यज्ञीय येह खैरके नामहैं ॥ ८८॥ खैर शीतल दान्तको अच्छा करनेवाला कन्डु कास अरुचि इनको नाशक ॥ तिक्त कसैला मेदका नाशक क्रिमि प्रमेह ज्वर व्रण ॥ ८९॥ शोथ आम रक्त पित्त पांडुरोग कुष्ट कफ इनको नाश करता है ॥

[अथ श्वेत खदिर पपरी खयर इति च।] खदिरः श्वेत सारोऽन्यः कदरः सोम वल्कलः ॥ कदरो विशदो वर्ण्यो मुखरोग कफास्र जित् ॥ ९० ॥

[अथ इरिमेद दुर्गन्ध खदिर इति च।] इरिमेदो विट् खदिरः कालस्कन्धोऽरिमेदकः ॥ इरिमेदः कषायोष्णो मुखदन्त गदास्र जित् ॥ ९१॥ हन्ति कण्डू विषश्लेष्म क्रिमि कुष्ठ विष व्रणान् ॥

भा० अनन्तर सुफेद कत्था जिस्को पपड़ी खैर कहतेहैं ॥ खदिर स्वेतसार कद सोमवल्कल। येह पपड़ी खैरके नामहैं ॥ पपड़ीखैर विशद वर्णको अच्छा करनेवाला मुखरोग कफरक्त इनको जीतनेवाला ॥ ९०॥

अनन्तर इरिमेद अर्थात् दुर्गन्धखैर ॥ इरिमेद, विट्खदिर कालस्कन्ध,

तुणिरक्तः कटुःपाके कषायो मधुरो लघुः॥ तिक्तो ग्राही हिमो वृष्यो व्रणकुष्ठास्त्र पित्तजित्॥२००॥

अथ भूर्जपत्र।] भूर्जपत्रःस्मृतो भूर्ज चर्म्मी बहुल बल्कलः॥ भूर्ज्जो भूतग्रह श्लेष्म कर्णरुक् पित्तरक्तजित्॥२०१॥ कषायो राक्षसघ्नश्च मेदोविष हरःपरः॥

भा० अनन्तर तुन॥ तुणि तुन्नक आपील तुणिक कच्छक॥ कुठेरक कान्तलक नन्दीवृक्ष नन्दक येह तुनके नामहैं॥१९९॥ तुन पाकमें कड़वा कसैला मधुर हलका होताहै॥ और तिक्तादिक शीतल शुक्रको उत्पन्न करनेवाला व्रण कुष्ठ रक्त इनकोजीतने वालाहै॥२००॥
अनन्तर भोजपत्र।] भूर्जपत्र भूर्ज चर्म्मी बहुलवल्कल। येह भोजपत्र के नामहैं॥ भोजपत्र भूत ग्रह कफ कर्णपीड़ा पित्तरक्त इनकोजीतने वाला है॥ २०१॥ और कसैला राक्षस का नाशक मेद विषका नाशक है॥

अथ पलाश।] पलाशः किंशुकः पर्णो यज्ञियो रक्तपुष्पकः॥ क्षार श्रेष्ठो वात हरो ब्रह्म वृक्षःसमिद्वरः॥२०२॥ पलाशो दीपनो वृष्यः सरोष्णो व्रणगुल्मजित्॥ कषायःकटुक स्तिक्तः स्निग्धो गुदजरोग जित्॥२०३॥

भा० अनन्तर पलाश॥ पलाश किंशुक पर्ण यज्ञी रक्तपुष्प क्षारश्रेष्ठ वातहर ब्रह्मवृक्ष समिद्वर॥ येह पलाशके नामहैं॥ पलाशदीपन शुक्रकोउत्पन्न करनेवाला सर॥२०२॥ उष्णहै। और व्रण वायगोला इनको जीतने वालाहै॥ तथा कसैला कड़वा तिक्त चिकना गुदाके रोगोंको जीतनेवाला।३।

भग्न सन्धान कृद्दोष ग्रहण्यर्श कृमीन् हरेत्॥
तत्पुष्पं स्वादु पाके तु कटु तिक्तं कषायकम्।२०४

वानलङ्कफ पित्तास्र कृच्छ्र जिद् ग्राहि शीतलम् ॥ तृड् दाह शमकं वात रक्त कुष्ठ हरम्परम् ॥ २०५॥ फलं लघूष्णं मेहार्श कृमि वात कफापहम् ॥ विपाके कटुकं रूक्षं कुष्ठ गुल्मोदर प्रणुत ॥२०६॥ [अथ शाल्मलिः।] शाल्मलिस्तु भवेन्मोचा पिच्छिला पूरणीति च ॥ रक्तपुष्पा स्थिरायुश्च कण्टकाढ्या च तूलिनी ॥२०७॥ शाल्मली शीतला स्वाद्वी रसे पाके रसायनी ॥ श्लेष्मला पित्त वातास्र हारिणी रक्त पित्त जित् २०८

भा० टूटेहुवे हाड़को जोड़नेवाला और संग्रहणी बवासीर कृमि इनको नाश करता है। उस्का पुष्प पाकमें मधुर कड़वा तिक्त कसैला होता है। ॥ २०४॥ तथा वातको करनेवाला कफ रक्त पित्त मूत्र कृच्छ्र इनकोजीतने वाला क़ाबिज़ शीतल होताहै। और तृषा दाह का शमन करने वाला अत्यन्त वातरक्त और कुष्ठ इनका नाशक है ॥२०५॥ उस्का फल हलका उष्ण होता है और प्रमेह बवासीर कृमि वात कफ इनका नाशक है ॥ विपाक में कडु रूखा होताहै ॥तथा कुष्ठ वायगोला उदर रोग इनका नाशक हैं ॥ २०६॥ अनन्तर सेमल। शाल्मली मोचा पिच्छिला पूरणी ॥ रक्तपुष्पा स्थिरायु कण्टकाढ्या तूलिनी येह सेमलके नाम हैं ॥ २०७ ॥ सेमल शीतल रसमें और पाकमें मधुर रसायनी कफको करनेवाली पित्तवातरक्त की नाशक रक्तपित्त कोजीतने वालीहै ॥ २०८

अथ मोचरसः।] निर्य्यासः शाल्मलेः पिच्छा शाल्मली वेष्टकोऽपि च ॥ मोचास्रावो मोचरसो मोचनिर्य्यास इत्यपि ॥२०९॥ मोचास्रा-

हिमो ग्राही स्निग्धो वृष्यः कषायकः ॥ प्रवाहि
कातिसाराम कफपित्तास्त्र दाहनुत् ॥ २२० ॥
[अथ कूठ शाल्मलिः।] कुतसितः शाल्मलिः प्रो
क्तो रोचनः कूटशाल्मलिः ॥ कूठ शाल्मलिक
स्तिक्तः कटुकः कफवातनुत् ॥ २२१ ॥ भेद्युष्णः
प्लीह जठरः यकृद् गुल्म विषापहः ॥ भूलाना-
ह विबन्धास्त्र मेदः शूल कफापहः ॥ २२२ ॥

भा० मोचरस येह सेमल का गोंदहै ॥ पिच्छा शाल्मली वेष्टक । मोचा
स्राव मोचरस मोच निर्यास येह मोचरस के नाम हैं ॥ २०९ ॥ मोचरस,
शीतल क़ाबिज़ चिकना शुक्रको उत्पन्न करनेवाला कसैला होताहै ॥ औ
र प्रवाहिका अतिसार आम कफ रक्त पित्त इनको नाश करनेवालाहै ॥
२२० ॥ अनन्तर कूठ शाल्मलि ॥ कुतसिता शाल्मली रोचन कूट
शाल्मली । येह कूठ शाल्मली के नामहैं । कूट सेमल तिक्त कटु कफ वा-
तनाशक ॥ २२१ ॥ भेदन करनेवाली उष्ण होती है और पिलही उदर रोग य-
कृत वायगोला विष इनकी नाशक है । और भूत अफारा विबन्ध रक्त
मेद शूल कफ इनकी नाशक है ॥ २२२ ॥

[अथ धवः।]

धवो धटो नन्दि तरुः स्थिरो गौरो धुरन्धरः ॥ धवः
शीत प्रमेहर्शः पाण्डु तिक्त कफापहः ॥ २२३ ॥
मधुरस्तुवर स्तस्य फलञ्च मधुरं मनाक् ॥
[अथ धामिन।] धन्वङ्गस्तु धनुर्वृक्षो गोत्रवृक्षः
सुतेजनः ॥ धन्वङ्गः कफ पित्तास्त्र कासहृत्तुव
रो लघुः ॥ २२४ ॥ वृंहणो बलकृद्रूक्षः सन्धि

कृत् व्रणरोपणः ॥ [अथ करीर।]

करीरः क्रकरो पत्रो ग्रन्थिलो मरुभूरुहः ॥

करीरः कटुकस्तिक्तः स्वेद्युष्णो भेदनः स्मृतः ॥२१५

दुर्न्नाम कफवातामगरशोथव्रणप्रणुत् ॥

भा० अनन्तर धव ॥ धटन्विनरु स्थिर गौर धुरंधर ॥ येह धवके नाम हैं ॥ धव शीतल प्रमेह बवासीर पाण्डु पित्तकफ इनका नाशक है ॥२१३ ॥ मधुर कसैला होता है उस्का फल कुछ मधुर होता है ॥

अनन्तर धामिन ॥ धन्वंग धनुर्वृक्ष गोत्रवृक्ष सुतेजन ॥ येह धामिन के नामहैं ॥ धामिन कफ रक्त पित्त कास इनको नाश करने वाली हलकी होतीहै ॥ और पुष्ट बलको करनेवाली रूखी संधीको करनेवाली घावको भर लानेवाली है ॥ अनन्तर करील । करीर क्रकर पत्र ग्रन्थिल मरुभूरुह । येह करीर के नाम हैं । करील कडुवा तिक्त पसीना लानेवाला उष्ण भेदन कहा गया है ॥ २१५ ॥ और बवासीर कफ वात आम विष शोथ व्रण इनका नाशक है ॥

अथ सहोरा।] शाखोटः पीतफलको भूतावासः खरच्छदः ॥ शाखोटो रक्तपित्तार्शो वातश्लेष्मातिसारजित् ॥२१६॥ [अथ वरुणः।]

वरुणो वरुणः सेतुस्तिक्तशाकोऽग्निदीपनः ॥

कषायो मधुरस्तिक्तः कटुको रूक्षको लघुः ॥२१७॥

भा० अनन्तर सहोरा ॥ शाखोट पीतफलक भूतावास खरच्छद येह सहोराके नामहैं । सहोरा रक्तपित्त बवासीर वात कफ अतीसार । इनकोजीतनेवाला है ॥ २१६॥ [अनन्तर बरना । वरुण,वारुण,सेतु तिक्तशाक येह वरुणा के नाम हैं ॥ वरुणा अग्निदीपन कसैला मधुर तिक्त कडुवा रूखा हलका होताहै ॥

[अथ कदंभी।]

कदंभी स्वादुपुष्पश्च मधुरेणुः कदम्बरः ॥

कदभी तु प्रमेहार्शः नाड़ी व्रण विष कृमीन् ॥ ॥२२७॥ हन्त्युष्णा कफ कुष्ठघ्नी कटू रूक्षा च की र्त्तिता ॥ तत्फलं तुवरं ज्ञेयं विशेषात् कफ शु क्र हृत् ॥ २२८॥

भा० अनन्तर कटुभि ॥ कटुभी स्वादपुष्प मधुरेणु कटुम्भर । यह कदभी के नाम हैं ॥ येह मालकंगनी की क़िस्म से है ॥ कटुभि प्रमेह बवासीर नाड़ी व्र ण विष कृमि इनको नाश करती है ॥ २२७ ॥ और उष्ण होती है तथा कफ कुष्ठ की नाशक कड़वी रूखी कही गई है ॥ इस्का फल कसैला जानना चा हिये विशेषकरके कफ शुक्र का नाशक है ॥ २२८ ॥

[अथ मोक्ष पलाशवत् पर्वत वृक्षः।] मोक्षस्तु मोक्षकोऽपि स्याद्गोलीढ गोलि हस्तथा ॥ क्षार श्रेष्ठः क्षार वृक्षो द्विविधः श्वेत कृष्णकः ॥ २२९॥ मोक्षकः कटु कस्तिक्तो ग्राह्युष्णः कफ वात हृत् ॥ विषमेदो गुल्म कण्डू वस्ति रुक् कृमि शुक्रनुत ॥२२०

भा० अनन्तर मोक्ष अर्थात् घंटा पाटला ॥ येह लोधकी क़िस्मसे होता है । इस्के पत्ते पलासके से होते हैं और पहाड़ी दरख़्त है ॥ मोक्ष मोक्षक गोलीढ गोलिः क्षारश्रेष्ठ क्षारवृक्ष येह घंटा पाटला के नाम हैं ॥ येह दो प्रकार का होता है काला और सुफ़ेद ॥ २२९ ॥ घंटा पाटल कड़वा तिक्त क़ाबिज़ उ ष्ण कफ वात का नाशक है । और विष मेद वायगोला खुजली वस्तिकी पी ड़ा और कृमि शुक्र का नाशक है ॥ २२० ॥ [अथ जल सिरषि- टिंटिरिणि इति च।] शिरिषिका टिरिटरिणका दुर्व लाम्बु शिरीषिका ॥ त्रिदोष विष कुष्ठार्शो हरी वारि शिरीषिका ॥ २२१॥ [अथ शामी।]

शमी शक्तु फला तुङ्गा केशहन्त्री फला शिवा ॥ मङ्गल्या च तथा लक्ष्मी शमीर: सात्त्विका स्मृता ॥ २२२॥ शमी तिक्ता कटु: शीता कषाया रेचनी लघु: ॥ कफ कास भ्रम श्वास कुष्ठार्श: कृमि जित स्मृता ॥ २२३॥

भा॰ अनन्तर सिरीश ॥ इसको टिंडणी भी कहते हैं। शिरसीका टिंटिणिका दुर्बला, अंबुशिरीष का। येह जल शिरीष के नाम हैं॥ जल-सिरीष त्रिदोष विष कुष्ठ बवासीर इनको नाश करने वाली है ॥ २२१॥ अनन्तर शमी ॥ शमि शक्तफला तुङ्गा केशहन्त्री फला शिवा ॥ मंगल्या लक्ष्मी शमीर सात्त्विका येह शमि के नाम हैं ॥ २२२ ॥ शमि कडुवी तिक्त शीतल कसैली दस्तावर हलकी होती है ॥ और कफ कास भ्रम श्वास कुष्ठ बवासीर कृमि इनको जीतने वाली कही गई है ॥ २२३॥

अथ छितिवन।] सप्तपर्णो विशाल त्वक् शारदो विषमच्छद: ॥ सप्तपर्णो व्रण श्लेष्म वात कुष्ठास्र जन्तु जित् ॥ २२४॥ दीपन: श्वास गुल्मघ्न: स्निग्धोष्ण स्तुवर: सर: ॥

अथ तिनिश: तिरिच्छ इति च।] तिनिश: स्यन्दनो नेमी रथद्रुर्वञ्जुलस्तथा ॥ तिनिश: श्लेष्म पित्तास्र मेद: कुष्ठ प्रमेह जित् ॥ २२५ ॥ तुवर: श्वित्र दाहघ्नो व्रण पाण्डु कृमि प्रणुत् ॥

भा॰ अनन्तर छितवन ॥ सप्तपर्ण विशालत्वक् शारद विषमच्छद येह छितवन के नाम हैं ॥ छितवन व्रण कफ वात कुष्ठ रक्त जन्तु इनको जीतता है ॥ २२४ ॥ और दीपन वायगोला इनका नाशक चिकना उष्ण कसैला सर है ॥ अनन्तर तिनीश। इसको तिरिछ भी कहते हैं

तिनिस स्पंदन नेमी रथद्रुह वञ्जुल येह तिनीश के नाम हैं ॥ तिनीश कफ रक्त पित्त मेद कुष्ठ प्रमेह इनको जीतने वालाहै ॥ १२५॥ और कसैला श्वित्र दाह का नाशक व्रण पांडु कृमि इनकाभी नाशक है ॥

अथ भुइसहा।] भूमीसहो द्वार दारु नरिदारु: स्वरच्छद: ॥ भूमीसहस्तु शिशिरो रक्त पित्त प्रसादन: ॥१२६॥

इतिश्री भावप्रकाशे वटादिवर्ग: ॥ ॥

भा० अनन्तर भुईसहा ॥ भूमिसहो द्वारदारु नरिदारु स्वरच्छद । येह भुइसहा के नाम हैं ॥ भुइसहा शीतल रक्तपित्त को अच्छा करनेवाला है ॥ १२६ ॥ इति भावप्रकाशे वटादि वर्ग: ॥ ॥

अथाम्रादि फलवर्ग: ॥ तत्रादावाम्रस्य नामानि गुणाश्च।] आम्र: प्रोक्तो रसालश्च सहकारोऽति सौरभ: ॥ कामाङ्गो मधुदूतश्च माकन्द: पिकवल्लभ: ॥ १२७॥ आम्रपुष्पमतीसारं कफ पित्त प्रमेह नुत् ॥ असृग्दुष्टि हरं शीतं रुचि कृद् ग्राहि वातलम् ॥ १२८ ॥

भा० आम्रादि फलवर्ग: ॥ उसमें पहले आम्रके नाम और गुणको कहते हैं ॥ आम्र रसाल सहकार अतिसौरभ ॥ कामांग मधुदूत माकंद पिकवल्लभ येह आमके नामहैं ॥ १२७॥ आम्रका पुष्प अतिसार कफ पित्त प्रमेह इनका नाशक है । और दुष्टरक्त का नाशक शीतल रुचिकरनेवाला ग्राहि वात की करनेवाला है ॥ १२८ ॥

आम्रं बालं कषायाम्लं रुच्यं मारुत पित्तकृत्

तरुणन्तु तदत्यम्लं रूक्षं दोषत्रया स्रकृत् ॥२२९॥
आम्रमामं त्वचाहीन मातपेऽति विशोषितम् ॥
अम्लं स्वादु कषायं स्याद्भेदनं कफ वातजित् १३०
पक्वन्तु मधुरं वृष्यं स्निग्धं बल सुख प्रदम् ॥ गुरु
वात हरं हृद्यं वर्ण्यं शीतमपित्तलम् ॥ २३१ ॥
कषायानुरसं वन्हि श्लेष्म शुक्र विवर्द्धनम् ॥
तदेव वृक्षसम्पक्वं गुरुवात हरं परम् ॥ २३२॥
मधुराम्ल रसं किञ्चिद्भवेत् पित्त प्रकोपनम् ॥
आम्र कृत्रिम पक्वञ्च तद्भवेत पित्तनाशनम् ॥२३३
रसस्याम्लस्य हीनस्तु माधुर्य्याच्च विशेषतः ॥

भा० कैरी कसैली खट्टी रुचिको करनेवाली वात पित्तको करने वाली है ॥ और कच्चा आम अत्यन्त खट्टा रूखा होताहै तथा तीनों दोष और रक्त को करनेवाला है ॥ २२९ ॥ वेछिलके का कच्चा आम धूपमें सुखाया हुवा ॥ खट्टा मधुर कसैला होताहै ॥ और भेदन कफ वातको जीतने वाला है ॥ २३० ॥ और पका हुवा मधुर शुक्रको उत्पन्न करने वाला चिकना बल सुखको देनेवाला है ॥ और भारी वात नाशक हृद्य वर्णको अच्छा करनेवाला शीतल पित्तको करनेवाला ॥२३१॥ पीछेसे कसैला अग्नि कफ शुक्र इनको बढ़ानेवाला है ॥ और वोही वृक्षपर पकाहुवा भारी परम वातनाशक होता है ॥ २३२॥ और मधुर कुछेक खट्टा पित्तको करनेवाला है ॥ अम्ल रससे हीन और अधिक मधुरतासे वोह पालका पकाहुवा पित्तनाशक होताहै ॥ २३३॥ और रक्खाहुवा वोह परम रुचि को करनेवाला बलकोदेनेवाला शुक्र को उत्पन्न करने वाला हलका होता है ॥ २३४॥

उषितं तत्परं रुच्यं बल्यं वीर्य्य करं
लघु ॥ ३४ ॥ शीतलं शीघ्र पाकि स्या द्वातपित्त

हरं सरम् ॥ तद्रसो गालितो बल्यो गुरु र्वात हरः सरः ॥ १३५ ॥ अहृद्य स्तर्पणो ऽतीव बृंहणः कफ वर्द्धनः ॥ तस्य खण्डं गुरु परं रोचनं चिर पाकि च ॥ १३६ ॥ मधुरं बृंहणं बल्यं शीतलं वात नाशनम् ॥ वात पित्त हरं रुच्यं बृंहणं बल वर्द्ध नम् ॥ १३७ ॥ वृष्यं वर्ण करं स्वादु दुग्धाम्रं गुरु शीतलम् ॥ मन्दानलत्वं विषमज्वरञ्च रक्तामयं बद्ध गुदोदरञ्च ॥ आम्राति योगो नयनामयं वा करोतितस्मा दति तानि नाद्यात् ॥ १३८ ॥ एतदम्लाम्र विषयं मधुराम्र परं नतु ॥

भा० और शीतल शीघ्र पाक वाला वात पित्त का नाशक सर होता है ॥ उस्का निचोड़ा हुवा रस बलको देनेवाला भारी वात नाशक सर होता है ॥ १३५ ॥ और हृद्य तर्पण और बहुत पुष्टिको करनेवाला कफका बढ़ाने वाला है ॥ और उस्का टुकड़ा भारी अत्यन्त रुचि का करनेवाला बहुत काल में पाक होनेवाला है ॥ १३६ ॥ और मधुर पुष्ट बलको करनेवाला शीतल वात नाशक है ॥ दूध आम वात पित्त को करनेवाला रुचिको करनेवाला पुष्ट बलको बढ़ानेवाला ॥ १३७ ॥ शुक्रको उत्पन्न करनेवाला वर्णको करनेवाला मधुर भारी शीतल होता है ॥ बहुत आमका सेवन मन्दाग्नि विषमज्वर रक्त के रोग बद्ध गुदोदर ॥ औरनें रोग इनको करता है । इस वास्ते बहुत न सेवन करे ॥ १३८ ॥ यह खट्टे आम के विषय में कहा है न कि मधुर आमके विषय में ॥

मधुरस्य परं नेत्र हितन्त्वाद्या गुणा यतः ॥ १३९ ॥ शुण्ठ्याम्भसो ऽनुपानं स्या दाम्राणा मतिभक्ष-

णे ॥ जीरकं वा प्रयोक्तव्यं सहसौवर्च्चलेन च ॥१४९
[अथाम्रावर्त्तस्य लक्षणं गुणाश्च।] पक्वस्य सह
कारस्य पटे विस्तारितो रसः ॥ घर्म्मे शुष्को मुहु-
र्दत्त आम्रावर्त्त इति स्मृतः ॥ १५० ॥

अम्बवट इति लोके।

आम्रावर्त्तस्तृषाच्छर्दि वात पित्त हरः सरः ॥
रुच्यः सूर्य्यांशुभिः पाकाल्लघुश्च सहि कीर्त्ति
तः ॥ १५१ ॥

भा० मधुर परम नेत्रको हित होता है ॥ क्योंकि पहले कहे हुवे गुणों से ॥ ॥ आम्रके अति भक्षण में पीछे से सोंठ और पानी पीवे अथवा जीरा और सौंचल नमक मिलाके पीवे ॥ १४९ ॥ अनन्तर अम्बवट के लक्षण और गुण ॥ पके हुवे आम के रसको कपडे पर फैलाके धूपमें सुखाया हुवा और फिर से पुट दिये हुवेको आम्रावर्त्त ऐसा कहते हैं ॥ १५० ॥ और अम्बवट ऐसा लोक में कहते हैं ॥ अम्बवट तृषा वमन वात पित्त इनका नाशक सर ॥ रुचिको करने वाला है और सूर्य्य की किरणों के द्वारा पाक होने से वोह हलका कहा गया है ॥ १५१ ॥

[अथ कोइलीया।]

आम्रबीजं कषायं स्याच्छर्द्यतीसार नाशनम्।
ईषदम्लञ्च मधुरं तथा हृदय दाहनुत् ॥ १५२ ॥
[अथ नवपल्लवः।] आम्रस्य पल्लवं रुच्यं कफ पित्त
विनाशनम् ॥

भा० अनन्तर आमकी गुठली ॥ आम की गुठली कसैली और वमन अतीसार की नाशक कुछ खट्टी मधुर तथा हृदय दाह की नाशक ॥ १५२ ॥ अनन्तर आम के नवीन पत्ते ॥ आमके पत्ते रुचिको करने वाले कफ पित्त

के नाशक हैं ॥ [अथ अम्बा।]

आम्रातकः पीतनश्च मर्कटाम्रः कपीतनः ॥ आम्रातमम्लं वातघ्नं गुरूष्णं रुचि कृत्सरम् ॥ २५३॥ पक्कन्तु तुवरं स्वादु रसेपाके हिमं स्मृतम् ॥ तर्पणं श्लेष्मलं स्निग्धं वृष्यं विष्टम्भि वृंहणम् ॥ २५४॥ गुरु बल्यम्म रुत पित्त क्षतदाह क्षयास्त्र जित् ॥

भा० अनन्तर अम्बाड़ा। आम्रातक पीतन मर्कटाम्र कपीतन। यह अम्बाड़े के नामहैं ॥ अम्बाड़ा खट्टा वातनाशक भारी गरम रुचिको करनेवाला सर है ॥ २५३ ॥ पक्का कसैला पाक रसमें मधुर और शीतल कहाहै ॥ तर्पण कफको करनेवाला चिकना शुक्रको उत्पन्न करनेवाला विष्टम्भि पुष्टहै ॥ २५४ तथा भारी बलके हितहै और वात पित्त क्षत दाह क्षयरक्त इनकोजीतने वाला है ॥

[अथ राजाम्रः।] राजाम्रष्टङ्क आम्रातः कामाह्वो राजपुत्रकः ॥ राजाम्रस्तुवरं स्वादु विशदं शीतलं गुरु ॥ २५५॥ ग्राहि रूक्षं विबन्धाध्म वात कृत्कफ पित्तनुत् ॥

[अथ कोशाम्र कोशम्भ इति च।] कोशाम्र उक्तः क्षुद्राम्रः कृमि वृक्षः सुकोशकः ॥ कोशाम्रः कुष्ठ शोथास्त्र पित्त व्रण कफापहः ॥ २५६ ॥ तत् फलं ग्राहि वातघ्नमम्लोऽस्तं गुरु पित्तलम् ॥ पक्कन्तु दीपनं रुच्यं लघूष्णं कफवातनुत् ॥ २५७ ॥

भा० अनन्तर राजाम्र।] राजाम्र, टङ्क, आम्रात कामाव्ह राजपुत्रक। ये ह कसैला मधुर विशद शीतल भारी ॥ २५५॥ काविज़ रूखाहै और विव-

न्थ आध्मान वात इनको करनेवाला और कफ पित्तका नाशक है ॥
अनन्तर कोशाम्र इसको कोशम्भ भी कहतेहैं ।] कोशाम्र क्षुद्राम्र कृमिवृक्ष सुकोशक । यह कोशाम्र के नामहैं ॥ कोशम्भ रक्त पित्तकुष्ठ सूजन व्रण कफ । इनको दूर करने वालाहै ॥ १४६॥ उसका फल कावित्र वात नाशक खट्टा और पाकमें भी खट्टा होनाहै । भारी पित्तको करनेवाला है । तथापका हुवादीपन रुचिको करनेवाला हलका उष्ण कफ वात का नाशकहै ॥ १४७॥

[अथ कटहर ।] पनशः कण्टकिफलः पनसोऽतिवृहत्फलः ॥ पनसं शीतलं पक्वं स्निग्धं पित्तानिलापहम् ॥ १४८॥ तर्पणं वृंहणं स्वादु मांसलं श्लेष्मलं भृशम् ॥ बल्यं शुक्रप्रदं हन्ति रक्तपित्तक्षतव्रणान् ॥ १४९ ॥ आमन्तदेव विष्टम्भि वातलन्तुवरं गुरु ॥ दाहकृत् मधुरं बल्यं कफमेदो विवर्द्धनम् ॥ १५०॥ पनसोद्भूत बीजानि वृष्याणि मधुराणि च ॥ गुरूणि बद्ध विट्कानि सृष्ट मूत्राणि संवदेत् ॥ १५१ ॥

भा० अनन्तर कटहर ।] पनश कंटकी फल पनस अति वृहत्फल यह कटहल के नामहैं ॥ कटहल शीतल और पका हुवा चिकना पित्त बातका नाशकहै ॥ १४८ ॥ तृप्तिको करनेवाला पुष्ट मधुर मांसको करनेवाला और अत्यन्त कफको करनेवालाहै ॥ तथा बलको करनेवाला और शुक्र को करनेवाला है। रक्त पित्त क्षत व्रण इनको नाश करताहै ॥ १४९॥ वोही कच्चा विष्टम्भ करनेवाला वातल कसेला भारीहै ॥ और दाहको करने वाला मधुर बलके हित कफ मेदका बढ़ानेवाला है ॥ ५०॥ कटहल के बीज शुक्र को उत्पन्न करनेवाले मधुरहैं ॥ और भारी मलको रोकनेवाला तथा मूत्रको करनेवालेहैं ॥ १५१॥

अन्यच्च ।

मज्जा पनस जो वृष्यो वात पित्त कफापहः ॥

विष्टम्भात्पनसो वर्ज्यः गुल्मिभिर्मन्दवह्निभिः॥
२५२॥ [अथ बड़हर।]
लकुचः क्षुद्रपनसो लकुचोऽडहु इत्यपि॥ आमं लकुचमुष्णञ्च गुरु विष्टम्भकारकम्॥ २५३॥
मधुरञ्च तथाम्लञ्च दोषत्रितय रक्तकृत्॥ शुक्राग्नि नाशनं चापि नेत्रयोरहितं स्मृतम्॥ २५४॥
सुपक्वन्तु मधुरमम्लञ्चानिल पित्तहृत्॥ कफ वह्नि करं रुच्यं वृष्यं विष्टम्भकञ्च तत्॥ २५५॥

भा० कटहल की गिरी शुक्र को करनेवाली वात पित कफ की नाशक है॥ विशेष करके वायगोला वाले और मन्दाग्निवाले कटहल को न सेवन करे। ॥ २५२॥ अनन्तर बड़हर॥ लकुच क्षुद्रपनस लकुचोडुह। इतने नाम बड़हर के हैं॥ कच्चा बड़हल गरम भारी विष्टम्भ को करने वाला है॥ २५३॥ और मधुर तथा खट्टा तीनों दोषों को और रक्त को करनेवाला है॥ और शुक्र तथा अग्नि का नाशन और नेत्रों के अहित कहा है॥ २५४॥ और अच्छे प्रकार पकाहुआ खट्टा और मीठा होता है तथा वात पित को नाश करने वाला है। और कफ अग्निको करनेवाला रुचिके हित शुक्रको करने वाला और विष्टम्भक है॥ २५५॥

[अथ कदली।] कदली वारणा मोचाम्बुसारांशुमती फला॥ मोचाफलं स्वादु शीतं विष्टम्भि कफ नुद् गुरु॥ २५६॥ स्निग्धं पित्तास्त्र तृड् दाह क्षत क्षय समीरजित्॥ पक्वं स्वादु हिमं पाके स्वादु वृष्यञ्च बृंहणम्॥ २५७॥ क्षुत्तृष्णा नेत्र गद हन्मेहघ्नं रुचि मांस कृत्॥
माणिक्य मर्त्या मृतचम्पकाद्या भेदाः कदल्याः

बहवोऽपि सन्ति ॥ उक्ता गुणास्ते ह्यधिका भवन्ति निर्दोषता स्याल्लघुता च तेषाम् ॥ २५८ ॥

भा० अनन्तर केला । कदली वारणा मोचा अम्बुसरा अंशुमती फला । येह केले के नाम हैं ॥ केला मधुर शीतल विष्टंभकरनेवाला कफ नाशक भारी है ॥ २५६ ॥ और चिकना पित्त रक्त तथा दाह का नाशक और क्षत क्षय वात इनको जीतने वाला है ॥ पका हुवा शीतल मधुर और पाक में मधुर शुक्र को करने वाला और पुष्ट है ॥ २५७ ॥ क्षुधा तथा नेत्र रोग इनका नाशक प्रमेह का नाशक और रुचि मांस को करनेवाला है ॥ माणिक्य मर्त्या अमृत चंपक आदि केले के बहुत भेद हैं । उन्में येह कहे हुवे गुण अधिक हैं ॥ और उन्में निर्दोषता तथा लघुता है ॥ २५८ ॥ मे

[अथ गुरुभीहं भुकुर इति च ।] चिर्भिट धेनुदुग्धञ्च तथा गोरक्ष कर्कटी ॥ चिर्भिटं मधुरं रूक्षं गुरु पित्त कफापहम् ॥ २५९ ॥ अनुष्णं ग्राहि विष्टम्भि पक्वं तूष्णञ्च पित्तलम् ॥

भा० अनन्तर भुकुर ॥ चिरभिट धेनुदुग्ध गोरस कर्कटी ॥ येह भुकुर के नाम हैं ॥ भुकुर मधुर रूक्ष पित्त कफ का नाशक भारी है ॥ २५९ ॥ और उष्ण काविज विष्टम्भि है और पका हुवा उष्ण तथा पित्त को करने वाला है

[अथ नारिकेल ।] नारिकेरो दृढ़ फलो लाङ्गली कूर्च्च शीर्षकः ॥ तुङ्गस्कन्ध फल श्चैव तृणराजः सदाफलः ॥ २६० ॥ नारिकेर फलं शीतं दुर्ज्जरं बस्तिशोधनम् ॥ विष्टम्भि वृंहणं बल्यं वात पित्तास्र दाह नुत् ॥ २६१ ॥ विशेषतः कोमल नारिकेरं निहन्ति पित्तज्वर पित्तदोषान् ॥ सदैव जीर्णं गुरु पित्तकारि विदाहि विष्टम्भि मतं भिषग

निलापहम् ॥ तेषु यच्चाम्लमधुरं सक्षारञ्च रसा
द्भवेत् ॥ २६७ ॥ रक्तपित्तकरन्तत्तु मूत्रकृच्छ्रकर-
म्परम् ॥ [अथ लघु खीरा बालम खीरा।
त्रपुसं कण्टकि फलं सुधावासः सुशीतलम् ॥ त्र
पुसं लघु नीलञ्च नवं तृट् क्लमदाह जित् ॥ २६८ ॥
स्वादु पित्तापहं शीतं रक्तपित्तहरम्परम् ॥ तत्प
क्वमम्लमुष्णं स्यात् पित्तलं कफवातनुत् ॥ २६९ ॥
तद्बीजं मूत्रलं शीतं रूक्षं पित्तास्रकृच्छ्रजित् ॥

भा० अनन्तर खरबूजा ।] दशांगुल खरबूज । येह खरबुजे के नाम हैं।
अनन्तर उस्के गुण कहते हैं ॥ खरबूज मूत्रको करनेवाला बलको कार
नेवाल कोष्ठकी शुद्धि करनेवाला और भारी होताहै ॥ २६६ ॥ और चिक
ना बहुत मधुर शीतल शुक्रको करनेवाला पित्त वातका नाशक है ॥
उनमें जो खट्टा मधुर क्षारके सहित रस से होता है । वोह रक्त पित्त को करने
वाला और मूत्र कृच्छ्र कोकरनेवालाहै ॥ २६७ ॥
अनन्तर बालम खीरा । त्रपुस कंटकीफल सुधावास सुशीतल । येह बा-
लम खीरे के नामहैं ॥ खीरा हरा और नया खीरा हलका होताहै । वो तृषा
क्लम दाह इनकोजीतनेवाला है ॥ २६८ ॥ और मधुर पित्तनाशक ।
शीतल और रक्त पित्तका नाशकहोताहै ॥ वो पकाहुवा खट्टा ऊष्ण और
पित्तको करनेवाला कफ वातका नाशक है ॥ २६९ ॥ उस्का बीज मूत्र
को करनेवाला शीतल रूखा रक्तपित्त और मूत्रकृच्छ्र इनको जीतनेवाला है

अथ सुपारी छोटी ।] घोरराटः पूगी पूगश्च गुवा
कः क्रमुकोऽस्य तु ॥ फलम्पूगी फलम्प्रोक्तमुद्वे-
गञ्च नदीरितम् ॥ २७० ॥ पूगङ्गुरु हिमं रूक्षं क
षायङ्कफपित्तजित् ॥ मोहनं दीपनं रुच्यमा-
स्यवैरस्य नाशनम् ॥ २७१ ॥ आर्द्रं तद्गुर्व्वभिष्यन्दि

वन्हि दृष्टि हरं स्मृतम् ॥ स्विन्नं दोषत्रय च्छेदि दृढ मध्यन्तदुत्तमम् ॥ १७२॥

भा० अनन्तर छोटी सुपारी ॥ घोरंट पूगी पूग गुवाकः क्रमुक ॥ फल पूगी फल उद्वेग । येह सुपारी के नाम हैं ॥ १७०॥ सुपारी भारी शीतल रूखी कसैली कफ पित्त को जीतनेवाली है ॥ और मोहन दीपन भारी रुचिको करनेवाली मुखके विरसता को नाशक है ॥ १७१॥ वोह गीली भारी अभिष्यंदी होती है ॥ और अग्नि दृष्टि की नाशक कही गई है ॥ चिकनी तीनों दोषों को नाश करनेवाली बीच में जो दृढ़ होती वोह उत्तम है ॥ १७२॥

अथ तालः।] तालस्तु लेख पत्रः स्यात् तृणराजो महोन्नतः पक्कं तालफलं पित्त रक्त श्लेष्म विवर्द्धनम् ॥ १७३॥ दुर्ज्जरस्बहु मूत्रञ्च तन्द्राभिष्यन्दि शुक्रदम् ॥ तालमज्जा तु तरुणः किञ्चिन्मद करो लघुः ॥ १७४॥ श्लेष्मलो वात पित्तघ्नः सस्नेहो मधुरः सरः ॥

भा० अनन्तर ताड़ ॥ ताल लेखपत्र तृणराज महोन्नत । येह ताड़ के नाम हैं ॥ पकाहुवा ताड़फल रक्त पित्त कफ इनको बढ़ानेवाला ॥ १७३॥ दुर्जर बहुत मूत्रको करनेवाला तन्द्रा अभिष्यन्दी और शुक्रको देने वाला है ॥ पके हुवे तालकी गिरी कुछ नशा करनेवाली और हलकी होती है ॥ १७४ ॥ और कफको करनेवाली वात पित्तकी नाशक कुछ चिकनी मधुर सर होती है ॥

अथ ताड़ी।] तालजन्तरुणन्तोय मतीवमाद कृन्मतम् ॥ अम्ली भूतन्तदा तु स्यात पित्त कृद्वात दोषहृत ॥ १७५॥ [अथ बेल।]

विल्वः शाण्डिल्य शैलूषो मालूर श्रीफलावपि।

बालं बिल्वफलं बिल्व कर्क्कटी बिल्व पेषिका ॥७६
ग्राहिणी कफ वाताम शूलघ्नी बिल्व पेषिका ॥

भा० अनन्तर नाड़ी ।] नाड़ी बहुत नशाके करनेवाली होतीहै ॥ औरजब खट्टी होती है तब पित्तको करनेवाली और वात दोषकी नाशक है ॥ २७५॥ अनन्तर बेल ।] बिल्व कशाण्डिल्य शैल्यूष मालूर श्रीफल । येहबेल फलके नाम हैं ॥ और कच्चे बेलफल बिल्वकर्कटी और बिल्व पेशिका कहतेहैं ॥ २७६॥ कच्चाबेल क़ाबिज़ कफ वात आम शूल इनका नाश करै ॥

[अन्यच्च ।

बालं बिल्वफलं ग्राहि दीपनम्पाचनङ्कटु ॥ कषायोष्णं लघु स्निग्धं तिक्त वातकफापहम् ॥ २७७ ॥ पक्व गुरु त्रिदोषं स्यात् दुर्जरं पूतिमारुतम् ॥ विदाहि विष्टम्भकरं मधुरं वन्हिमान्द्यकृत ॥ २७८ ॥ फलेषु परिपक्वं यद्गुणवत्तदुदाहृतम् ॥ बिल्वादन्यत्र विज्ञेय मामन्त द्विगुणाधिकम् ॥ २७९ ॥ द्राक्षा बिल्व शिवादीनां फलं शुष्कं गुणाधिकम् ॥

भा० औरभी । कच्चा बेलफल क़ाबिज़ दीपन पाचन कटु कसैला उष्ण हलका चिकना तिक्त वात कफ का नाशक है ॥ २७७॥ और पका हुवा भारी त्रिदोषको करनेवाला होताहै और सड़ाहुवा दुर्गंधि और वात को करताहै तथा विदाहको करनेवाला विष्टम्भी मधुर अग्निमांद्यको करने वाला है ॥ २७८॥ फलोंमे पकाहुवा जो होता है वोह गुणयुक्त होता है ॥ परन्तु बेलसे अतिरक्तोंको जानना चाहिये येह कच्चा गुणमें अधिक होता है ॥ २७९ ॥ दाख बेल आमले इत्यादिकों के फल सूखेहुवे गुणमें अधिक होताहै ॥

[अथ कैथि ।] कपित्थस्तु दधित्थः स्यात् तथा पुष्पफलः स्मृतः ॥ कपिप्रियो दधिफल

स्तथा दन्त पाठोऽपिच ॥ २००॥ कपित्थ मामं संग्राहि कषायं लघु लेखनम् ॥ पक्वं गुरु तृषा हिक्का शमनं वात पित्तजित् ॥ २०१॥ स्यादल्पन्तु वरङ्कगठ शोधनं ग्राहि दुर्ज्जरम् ॥

भा० अनन्तर कैथ। कपित्थ दधित्थ पुष्पफलं। येह कैथके नामहैं ॥ और कपिप्रिय दधिफल तथा दन्तशठ येहभी कैथके नामहैं ॥ २००॥ कच्चा कैथ क़ाबिज़ कसैला हलका रेचन होताहै ॥ और पकाहुवा भारीहोता है और तृषा हिचकी शमन करनेवाला वात पित्त का नाशक है ॥ २०१॥

[अथ नारङ्गी।] नारङ्गो नागरङ्गः स्यात्त्वक सुगन्धो मुखप्रियः॥ नारङ्गं मधुराम्लं स्या दीपनं वात नाशनम् ॥ २०२॥ अपरन्त्वम्ल मत्युष्णं दुर्ज्जरं वात हृत सरम् ॥ [अथ तेंदु।] तिन्दुकः स्फूर्य्यकः काल स्कन्धश्चासित कारकः ॥ स्यादामन्तिंदुकं ग्राहि वातलं शीतलं लघु ॥ २०३॥ पक्वं पित्त प्रमेहास्र श्लेष्मघ्नं मधुरं गुरु ॥

भा० छोटा कसैला कंठशोधन क़ाबिज़ होताहै ॥

अथ नारंगीके नाम गुण ॥ नारङ्ग नागरङ्ग त्वक्सुगन्ध मुखप्रिय यह नारङ्गीके नामहैं ॥ नारङ्गी मिठी और खट्टी होतीहै मीठी दीपन वात नाश कहोतीहै ॥ २०२॥ और खट्टी वज़न गरम दुर्ज्जर वात नाशक सर होता है ॥ अनन्तर तेन्दु ॥ तिन्दुक स्फूर्य्यक कालस्कन्ध असित कारक । येह तेन्दु के नामहैं ॥ कच्चा तेन्दु क़ाबिज़ वात कोकरनेवाला शीतल हलका होता है ॥ २०३ ॥ और पकाहुवा पित्त प्रमेह रक्त कफ इनकानाशकरनेवाला । मधुर और भारी होता है ॥

[अथ कुपीलु ।]यस्य फलं कुचिला इति लोके

मकरतेंदुश्चा इति च।] तिन्दुकोयस्तु कथितो ज-
लदो दीर्घ पत्रकः॥ कुपीलः कुलकः काल स्ति-
न्दुकः कालपीलुकः॥ १९४॥ काकेन्दु र्विषति
न्दुश्च तथा मर्कट तिन्दुकः॥ कुपील्लुः शीतलं
तिक्तं वातलं मदकृल्लघु॥ पादव्यथा हरं ग्राहि
कफ पित्तास्र नाशनम्॥ १९५॥

भा० अनन्तर कुपीलु जिसके फलको लोकमें कुंचलाकहते हैं॥ तिन्दुक जलद दीर्घपत्रक॥ कुपीलु॰ कुलक॰ काल॰ तिन्दुकः कालपीलुक॥ ॥१९५॥ काकेन्दु विषतिन्दु तथा मर्कटतिन्दुक यह कुचिलाके वृक्षका नाम हैं॥ कुपीलु शीतल तिक्त वातको करनेवाला और नशा करनेवाला हलका है॥ और पावोंकी पीड़ाको दूरकरनेवाला क़ाबिज़ तथा कफ रक्त पित्त इनको नाश करनेवाला है॥ १९५॥

[अथ फलेन्द्रा।] फलेन्द्रा कथिता नन्दी राजजम्बू
र्महाफला॥ तथा सुरभिपत्रा च महाजम्बू रपिस्मृ
ता॥१९६॥ राजजम्बू फलं स्वादु विष्टम्भि गुरु रोचनम्॥
[अथ जामुनी नदी जामुनी।] क्षुद्रजम्बूः सूक्ष्मप
त्रा नादेयी जलजम्बुका॥ जम्बूः संग्राहिणी रू-
क्षा कफ पित्तास्र दाह जित्॥ १९७॥

भा० अनन्तर बड़े जामन॥ फलेन्द्रा नन्दीराजजम्बू महाफल॥ तथा सुरभिपत्रा महाजम्बू। येहभी नाम कहे हैं॥ १९६॥ बड़े जामनका फल मधुर विष्टम्भ करनेवाला॥ भारी रोचन है॥
अनन्तर जामुनी और नदी जामुनीभी॥ क्षुद्रजम्बू सूक्ष्मपत्रा नादेयी जलजम्बुका। अनंतर छोटी जामुनके नाम हैं॥ छोटी जामुन क़ाबिज़ कफ रक्त पित्त दाह इनको जीतनेवाला है॥ १९७॥

[अथ वेरि।] पुंसि स्त्रियाञ्च कर्कन्धुर्बदरी कोल

मित्यपि ॥ फेनिलं कुवलं घोंठा सौवीरं वदरं महत् ॥ २८८॥ अजप्रिया कुहा कोली विषमो भय कण्टका ॥ [तत्र वदर विशेषाणां लक्षणानि गुणा श्च] पच्यमान सुमधुरं सौवीरं वदरं महत् ॥ सौवीरं वदरं शीतं भेदनं गुरु शुक्रलम् ॥ २८९ ॥ बृंहणम्पित्तदाहास्र क्षय तृष्णा निवारणम् ॥ सौवीरं लघुसम्पक्कं मधुरं कोल मुच्यते ॥ २९० ॥

भा० अनन्तर बेर । पुल्लिंग और स्त्री लिंग में कर्कन्धु वदरी और कोल यहभी होता है ॥ फेनिल कुवलय घोंठा सौवीर वदर ॥ अज प्रिया कुहाकोली विषम उभयकण्टक ॥ २८८ ॥ येह बेरके नाम हैं । उनमें बेर विशेषणों के लक्षण और गुणोंको कहते हैं ॥ पकेहुवे अच्छे मीठे को सौवीर और बड़ा बेर कहते हैं ॥ सौवीर वदर शीतल भेदन भारी शुक्रको करने वाला है ॥ ॥ २८९ ॥ और बृंहण पित्त दाह रक्त क्षय तृषा इनको दूर करने वालाहै ॥ बड़ावेर पकाहुवा पकाहुवा और मधुर ऐसे को कोल कहते हैं ॥ २९० ॥

कोलन्तु वदरं ग्राहि रुच्य मुष्णञ्च वातलम् ॥ कफ पित्त करञ्चापि गुरु सारक मीरितम् ॥ २९१ ॥ कर्कन्धु क्षुद्र वदरं कथितं पूर्व्व सूरिभिः ॥ अम्लं स्यात् क्षुद्र वदरं कषायं मधुरं मनाक् ॥ २९२ ॥ स्निग्धं गुरु च तिक्तञ्च वात पित्ता पहं स्मृतम् ॥ शुष्कं भेद्यग्नि कृत्सर्व्वं लघु तृष्णा क्लमास्र जित् ९३

भा० कोल बेर का वीज रुचिको करने वाला गरम वात को करनेवालाहै ॥ और कफ पितको करनेवाला भारी सारक कहाहै ॥ २९१ ॥ पहिले विद्वानों ने छोटे बेर को कर्कन्धु ऐसा कहाहै ॥ छोटा बेर खट्टा कसैला और थोड़ा

मीठा होता है ॥ २६२॥ और चिकना भारी तिक्त वात पित्तका नाशक कहा है ॥ तथा सूखा भेदन करनेवाला और अग्निको करनेवाला है। और सब हल्के होते हैं। तथा तृषा कृमि रक्त इनको जीतने वाला है ॥ २६३॥

[अथ मनि अम्बरा।] प्राचीना मालकं लोके पानीया मलकं स्मृतम् ॥ प्राचीना मलकं दोष त्रय जिद् ज्वरघाति च ॥ २६५॥

[अथ लवली। हर फारी इति च।] सुगन्ध मूला लवली पाण्डुः कोमल वल्कला ॥ लवली फल म अश्मार्शः कफ पित्त हरं गुरु ॥ २६५॥ विशदं रोचनं रूक्षं स्वादस्त्लन्तु वरं रसे ॥

भा० अनन्तर पानी आंवला ॥ प्राचीना मालकं को लोकमें पानीया मलक कहा है ॥ प्राचीना मलक त्रिदोष को जीतनेवाला और ज्वर नाशक है ॥ २६५॥ [अनन्तर हरफा रेवडीय सुगन्धमूला लवली पांडु कोमल वल्कला येह हरफा रेवडी के नाम हैं ॥ हरफारी ---- का फल पथरी और बवासीर कफ पित्त इनका नाशक भारी ॥ २६५॥ विशद रोचन रूखा मधुर खट्टा और कसैला रसमें होता है ॥

[अथ करोंदा। करोंदी]

करमर्द्दः सुषेणः स्यात् कृष्णा पाक फलस्तथा ॥ तस्माल्लघु फलायास्तु सा ज्ञेया करमर्द्दिका ॥ २६६॥ करमर्द्द द्वयं त्वाममम्लं गुरु तृषा हरम् ॥ उष्णं रुचिकरं प्रोक्तं रक्तपित्त कफप्रदम् ॥ २६७॥ तत्पक्वं मधुरं रुच्यं लघु पित्त समीरजित् ॥

भा० अनन्तर करोंदा। और करोंदी।] करमर्द्द सुषेण कृष्णा पाकफल

येह करोंदा के नाम हैं ॥ और छोटे को करमर्दि का कहते हैं ॥ १९६ ॥ दोनों करोंदे खट्टे भारी तृषा नाशक है । और उष्ण रुचिको करनेवाले तथा रक्त पित्त कफ को देनेवाले कहेहैं ॥ १९७ ॥ वोह पका हुवा मधुर रुचिको करनेवाला हलका और वात पित्त कोजीतने वाला है ॥

[अथ पिश्राल चिरोञ्जी ।] पिश्रालस्तु खरस्कन्ध श्चारो बहुल वल्कल : ॥ राजादनस्तापसेष्टः सन्नकद्रु र्द्धनुष्पद : ॥ १९८ ॥ चारः पित्तकफास्रघ्न स्तत् फलंमधुरं गुरु ॥ स्निग्धं सरं मरुत्पित्त दाहज्वर तृषापहम् ॥ १९९ ॥ पिश्रालमज्जा मधुरो वृष्यः पित्ता निलापह : ॥ हृद्योऽतिदुर्ज्जर : स्निग्धो विष्टम्भी चामवर्द्धन : ॥ २०० ॥

भा० अनन्तर चिरोंजी ॥ पिश्राल खरस्कन्ध चार बहुल वल्कल । राजादन तापसेष्ट सन्नकद्रु धनुष्पद । येह चिरोंजी के नामहैं ॥ १९८ ॥ चिरोंजी पित्त कफ रक्त इनका नाशक है । और उस्का फल मधुर भारी चिकना सर होताहै और वात पित्त दाहज्वर तृषा इनका नाशक है ॥ १९९ चिरोंजी की गिरी मधुर शुक्रकोकरनेवाली पित्त वातका नाशक ॥ हृद्य अति दुर्ज्जर स्निग्ध विष्टंभी आमको बढ़ानेवाली है ॥ २०० ॥

[अथ क्षीरणी ।] राजादनः फलाध्यक्षो राजन्या क्षीरिकापि च ॥ क्षीरिकायाः फलं वृष्यं बल्यं स्निग्धं हिमं गुरु ॥ २०१ ॥ तृष्णा मूर्च्छामदभ्रान्ति क्षय दोषत्रयास्रजित् ॥

[अथ करण्टाइ ।] विकङ्कतः स्रुवावृक्षो ग्रन्थिलः स्वादुकण्टक : ॥ स एव यज्ञवृक्षश्च करण्ट-

की व्याघ्र पादपि ॥ २०२ ॥ विकङ्कत फलं प-
क्वं मधुरं सर्व दोषजित ॥

भा० अनन्तर खिरनी। राजादन फलाध्यक्ष राजन्या। यह खिरनी के नाम हैं ॥ खिरनी का फल शुक्रको करनेवाला बलकोदेनेवाला चिकना शीतल भारी होताहे ॥ २०१॥ और मूर्च्छा मद भ्रान्ति क्षय त्रिदोष रक्त इनकोजीतनेवाला है ॥ [अनन्तर कंटाई । विकङ्कत स्रुवावृक्ष ग्रन्थिल स्वादुकंटक ॥ यज्ञवृक्षकंटकी व्याघ्रपाद येह कंटाई के नाम हैं ॥ २०२॥ कंटाई का पकाफल मधुर और सब दोषोंको जीतनेवा लाहै ॥

[अथ कमलगट्टा।]

पद्मबीजन्तु पद्माक्षं गालोड्यं पद्मकर्कटी ॥ प-
द्मबीजं हिमं स्वादु कषायं तिक्तकंगुरु ॥२०३॥
विष्टम्भि वृष्यं रूक्षञ्च गर्भ संस्थापकं परम् ॥
कफ वात करं बल्यं ग्राहि पित्तास्र दाहनुत् ॥२०४
[अथ मखाना।] माखान्नं पद्म बीजाभं पानीय फ
ल मित्यपि ॥माखन्नं पद्म बीजस्य गुणै स्तुल्यं
विनिर्दिशेत ॥ २०५॥

भा० अनन्तर कमलगट्टा। पद्मबीज पद्माक्ष गालोड्य पद्मकर्कटी ॥ यह कमलगट्टा के नामहैं ॥ कमलगट्टा शीतल मधुर कसैला तिक्त भारी ॥ २०३॥ विष्टम्भी शुक्रको करनेवाला रूखा गर्भको स्थापन करने वा लाहै ॥ और कफ वात को करनेवाला बलके हित क़ाबिज़ रक्त पित्त और दाह इनका नाशक है ॥ २०४॥ [अनन्तर मखाना] माखान्न पद्मबीजाभ पानीयफल। यह मखानेके नाम हैं ॥ मखाना कमल गट्टे के समान गुणमें जानना चाहिये ॥ २०५॥

[अथ सिंघाड़ा।] शृङ्गाटकं जलफलं त्रिकोणफल

मित्यपि ॥ शृङ्गाटकं हिमं स्वादु गुरु वृष्यं कषायकम् ॥ २०६ ॥ ग्राहि शुक्रानिल श्लेष्म प्रदं पित्तास्र दाहनुत् ॥ [अथ भेंट।] उक्तं कुमुद बीजन्तु बुधैः कैरविणी फलम् ॥ भवेत् कुमुद्वती बीजं स्वादु रूक्षं हिमं गुरु ॥ २०७ ॥ [अथ महुआ वनमहुआ।] मधूको गुड़ पुष्पः स्यान् मधुपुष्पो मधुस्रवः ॥ वानप्रस्थो मधुष्ठीलो जलजेत्र मधूलकः ॥ २०८ ॥ मधूक पुष्पं मधुरं शीतलं गुरु बृंहणम् ॥ बल शुक्र करं प्रोक्तं वात पित्त विनाशनम् ॥ २०९ ॥ फलं शीतं गुरु स्वादु शुक्रलं वात पित्त नुत् ॥ अहृद्यं हन्ति तृष्णास्र दाह श्वास क्षत क्षयान् ॥ २१० ॥

भा० अनन्तर सिंघाड़ा ॥ शृंगाटक जलफल त्रिकोणफल यह सिंघाड़े के नामहैं ॥ सिंघाड़ा शीतल मधुर भारी सुक्रको करनेवाला कसैला ॥ २०६ ॥ काविज़ और सुक्र वात कफ इनको देनेवाला तथा पित्तरक्त दाह इनका नाशकहै ॥ [अनन्तर भेंट।] कुमुद के बीज को कैरविणी फल ऐसा पंडितोंने कहाहै ॥ कुमुदवती का बीज मधुर रूखा शीतल होता है ॥ २०७ ॥ [अनन्तर महुवा और वन महुवा। मधूक गुड़पुष्प मधुपुष्प मधुस्रव ॥ वानप्रस्थ मधुष्ठील जलजेत्र मधूलक ॥ २०८ ॥ यह महुवे के नामहैं ॥ महुवा मधुर शीतल भारी पुष्ट ॥ बल शुक्रको करने वाला और वात पित्तका नाशक कहाहै ॥ २०९ ॥ उसका फल शीतल भारी मधुर शुक्र का करनेवाला वात पित्तका नाशक ॥ और अहृद्य होताहै तथा तृषा रक्त दाह श्वास क्षत क्षय इनको नाश करता है ॥ २१० ॥

[अथ फरुसा।] परूषकन्तु परुषमल्पास्थिच

परापरम् ॥ परूषकं कषायाम्लं मामं पित्तकरं लघु ॥ २११ ॥ तत्पक्वं मधुरं पाके शीतं विष्टम्भि बृंहणम् ॥ हृद्यन्तु पित्त दाहास्र ज्वरक्षय समीर हृत ॥ २१२ ॥

[अथ नूत ।]

नूतः स्थूलश्च पूगश्च क्रमुको ब्रह्म दारु च ॥ नूतं पक्वं गुरु स्वादु हिमं पित्त निलापहम् ॥ २१३ ॥ तदेवामं गुरु सर मम्लोष्णं रक्त पित्त कृत् ॥

भा॰ अनन्तर फालसा ।] परूषक परुष अल्पास्थि परापर ॥ येह फ़ालसे के नाम हैं ॥ फालसा कसैला खट्टा पित्तको करनेवाला हलका होता है ॥ २११ ॥ वोह पकाहुवा पाकमें मधुर शीतल विष्टम्भी पुष्ट होता है ॥ और हृद्य पित्त दाह रक्त ज्वर क्षय वात इनका नाशक है ॥ २१२ ॥ [अनन्तर नूत ।] नूत स्थूलश्च पूग क्रमुक ब्रह्मदारु । यह नूतके नाम हैं ॥ पकाहुवा नूत भारी मधुर शीतल पित्तवातका नाशक है ॥ २१३ ॥ और वोही कच्चा भारी सर खट्टा उष्ण रक्त पित्त को करने वाला है ॥

[अथ अनार ।] दाड़िमः करको दन्त बीजो लोहित पुष्पकः ॥ तत्फलं त्रिविधं स्वादु स्वाद्वम्लं केवलाम्लकम् ॥ २१४ ॥ तत्तु स्वादु त्रिदोषघ्नं तृड् दाह ज्वर नाशनम् ॥ हृत्कण्ठ मुख गन्धघ्नं तर्पणं शुक्रलं लघु ॥ २१५ ॥ कषायानु रसं ग्राहि स्निग्धं मेधा बलापहम् ॥ स्वाद्वम्लं दीपनं रुच्यं किञ्चित्पित्त करं लघु ॥ २१६ ॥ अम्लन्तु पित्तजनक मम्लं वात कफापहम् ॥

भा॰ अनन्तर अनार । दाड़िम करको दन्तबीज लोहितपुष्पक । यह

अनार के नाम हैं ॥ उस्का फल तीन प्रकार का होता है ॥ मधुर मधुरखट्टा और केवल खट्टा ॥ २२५॥ उन्मे मधुर त्रिदोषनाशक और तृषा दाह ज्वर इन का भी नाशक है.॥ हृदय कण्ठ मुखगंध इनका नाशक तर्पण शुक्र को करनेवाला हलका होता है ॥२२५॥ पीछेसे कसैला काबिज़ चिकना होता है ॥ और मेधा बल इनका नाशक है ॥ और खट्टा मीठा दीपन रुचिको करनेवाला कुछएक पित्तका करनेवाला हलका होता है ॥२२६॥ खट्टा पित्तको करनेवाला और वात कफ का नाशक है ॥

[अथ बहुआर।] बहुवारस्तु शीतःस्यादुद्दालो बहुवारकः॥ शेलुः श्लेष्मातकश्चापि पिच्छिलो भूतवृक्षकः॥२२७॥ बहुवारो विषस्फोट व्रण वीसर्पकुष्ठनुत ॥ मधुरस्तुवरस्तिक्तःकेश्यश्च कफ पित्त हृत ॥ २२८॥ फलमामन्तु विष्टम्भि रूक्षं पित्त कफास्र जित्॥ तत पक्वं मधुरं स्निग्धं श्लेष्मलं शीतलं गुरु ॥ २२९॥

भा० अनन्तर बहुवार ॥ बहुवार शीत उद्दाल बहुवारक ॥ शेलुः श्लेष्मांतक पिच्छिल भूतवृक्षक । यह बहुवार के नामहैं ॥ २२७॥ बहुवार विष विष्फोट व्रण वीसर्प कुष्ठ इनका नाशक है ॥ और मधुर कसैला तिक्त केशके हित कफ पित्तका नाशक है ॥ २२८ ॥ कच्चा फल रूखा विष्टम्भकरनेवाला रूखा पित्त कफ रक्त कोजीतनेवाला है ॥ और वोह पका अवा मधुर चिकना कफ को करनेवाला शीतल भारी है ॥ २२९॥

[अथ कतकः।] पयःप्रसादि कतकङ्कतकं तत फलञ्च तत्॥ कतकस्य फलं नेत्र्यं जल निर्मलताकरम्॥२३०॥ वातश्लेष्म हरं शीतं मधुरं तुवरं गुरु ॥

[अथ द्राक्षा।] द्राक्षा स्वादुफला प्रोक्ता तथा मधुरसापि च ॥ मृद्वीका हारहूरा च गोस्तनी चापि कीर्त्तिता ॥ २२१ ॥ द्राक्षा पक्का सरा शीता चक्षुष्या बृंहणी गुरुः ॥ स्वादु पाक रसा स्वर्य्या तुवरा सृष्ट मूत्र विट् ॥ २२२ ॥ कोष्ठमारुत कृद् वृष्या कफपुष्टि रुचि प्रदा ॥ हन्ति तृष्णा ज्वर श्वास वात वातास्र कामलाः ॥ २२३ ॥ कृच्छ्रास्र पित्त संमोह दाह शोष मदात्ययान् ॥ आमा स्वल्प गुणा गुर्व्वी सैवाम्ला रक्त पित्तकृत् ॥ २२४ ॥ वृष्या स्यात् गोस्तनी द्राक्षा गुर्व्वी च कफ पित्तनुत्

भा० अनन्तर निर्मली ॥ पयः प्रसादि कतक । और उस्का फल भी कतक है ॥ निर्मली का फल नेत्र के हित और जलकी निर्मलता करनेवाला है ॥ २२० ॥ और वात कफ को दूर करनेवाला शीतल मधुर कसैला भारी है ॥ [अनन्तर दाख।] द्राक्षा स्वादुफला मधुरसा मृद्वीका हारहूरा गोस्तनी येह दाखके नाम हैं ॥ २२१ ॥ पकी हुई दाख सर शीतल नेत्र को हित करनेवाली पुष्ट भारी होता है ॥ और पाक रसमें मधुर स्वरको अच्छा करनेवाली कसैली मल मूत्रको करनेवाली है ॥ २२२ ॥ और कोष्ट वात को करनेवाली शुक्रको उत्पन्न करनेवाली तथा कफ पुष्टि रुचि इनको देनेवाली है ॥ और तृषा ज्वर श्वास वात वातरक्त कामला इनको नाश करती है ॥ २२३ ॥ और मूत्र कृच्छ्र रक्त पित्त मोह दाह शोष मदात्य इनको भी नाश करता है ॥ और कच्ची उस्से अल्प गुणवाली भारी होती है और वोही खट्टी रक्त पित्त को करनेवाली है ॥ २२४ ॥ गोस्तनी दाख शुक्रकी उत्पन्न करनेवाली । भारी और कफ पित्तकी नाशक होती है ॥

[गोस्तनी मुनक्का इति लोके।] अबीजान्या स्वल्पतरा गोस्तनी सदृशी गुणैः ॥ द्राक्षा पर्वतजा लघी

साम्ला श्लेष्मास्त्र पित्तकृत ॥ २२५ ॥ द्राक्षा पर्वतजायाद्दक् ताहशी करमर्दिका ॥

(क) अबीजा । ईषद्बीजा । किसमिस इति लोके । पर्वजा पहारी इति लोके । करमर्दिका करोंदी इति लोके । [अथ क्षुद्र खर्ज्जूरी । पिण्ड खर्ज्जूरी छोहारा ।] भूमिखर्ज्जूरिका स्वाद्वी दुरारोहा मृदुच्छदा ॥ तथा स्कन्धफला काक कर्कटी स्वादुमस्तका ॥ २२६ ॥ पिण्ड खर्ज्जूरिका त्वन्या सादेशे पश्चिमे भवेत ॥ खर्ज्जूरी गोस्तनाकारा परद्वीपादिहागता ॥ २२७ ॥

भा० गोस्तनी मुनका इस प्रकार लोके में कहते हैं ॥ दूसरी बीजसे रहित बहुत छोटी मुनका से समान गुणमें होती है ॥ पहाडी दाख हलकी होती है और कुछ खट्टी होती है ॥ तथा कफ अम्लपित्त को करनेवाली है ॥ २२५ ॥ जिस प्रकारकी पहाडी दाख होती है वैसेही करोंदी करोंदी होती है ॥ (क) अबीज अर्थात् थोडे बीजवाली जिसको किसमिस कहते हैं ॥ पर्वतजा पहाडी इस प्रकार लोकमें कहते हैं ॥ करमर्दिका करोंदी इस प्रकार लोकमें कहते हैं ॥ अनन्तर खजूर भूमि खजूरिका स्वाद्वी दुरारोहा मृदुच्छदा ॥ स्कंधफल काककर्कटी स्वादुमस्तका । येह खजूरके नाम हैं ॥ २२६ ॥ और दूसरी पिण्डखजूर वोह पश्चिम में होती है ॥ मुनकाके समान जो खजूर होती है वाह और दीपसे यहा आई है ॥

जायते पश्चिमे देशे साच्छोहारेति कीर्त्यते ॥ खर्ज्जूरी त्रितयं शीतं मधुरं रस पाकयोः ॥ २२८ ॥ स्निग्धं रुचिकरं हृद्यं क्षतक्षय हरंगुरुः ॥ तर्पण

रक्तपित्तघ्नं पुष्टिविष्टम्भशुक्रदम् ॥ २२९॥ कोष्ठमारुतहृद्बल्यं वान्तिवातकफापहम् ॥ ज्वरातिसारक्षुत्तृष्णा कासश्वासनिवारकम् ॥ २३०॥ मदमूर्च्छामरुत्पित्तमद्योद्भूतगदान्तकृत् ॥ महतीभ्यां गुणैरल्पा स्वल्पखर्ज्जूरिका स्मृता ॥ २३१॥ खर्ज्जूरीतरुतोयन्तु मदपित्तकरं भवेत् ॥ वातश्लेष्महरं रुच्यं दीपनं बलशुक्रकृत् २३२

भा० और पश्चिमदेश में होती है उस्को छुहारा ऐसा कहते हैं ॥ तीनो खजूर शीतल रस पाक में मधुर होती हैं ॥२२८॥ और चिकनी रुचिको करनेवाली हृद्य क्षत क्षय इनको नाश करनेवाली भारी ॥ तर्पण रक्त पित्तकी नाशक पुष्टि विष्टम्भ शुक्र इनको करनेवाली ॥२२९॥ कुष्ठवात कीनाशक बलकोदेने वाली वमन वात कफ इनकी नाशक ॥ज्वर अतिसार क्षुधा तृषा कास श्वास इनको दूर करने वाली ॥२३०॥ मद मूर्च्छा वात पित्त और मद्य के सेवन से उत्पन्नभये रोगोंको नाशकरने वाली है ॥ बड़ीखजूरोंसे छोटी खजूर गुणमें न्यून कहीगई है ॥ खजूर के वृक्षका जल मद पित्त इनकोकरनेवाला है ॥ और वातकफ नाशक रुचिको देनेवाला दीपन बल शुक्रको करनेवालाहै ॥ २३२॥

[अथ पिण्डखर्ज्जूरीभेदः सुलेमानी ।] सुलेमानी तु मृदुला दलहीनफला च सा ॥ सुलेमानी श्रमभ्रान्तिदाहमूर्च्छास्रपित्तहृत् ॥ २३३॥

[अथ बादाम ।] वातादो वातवैरी स्यान्नेत्रोपमफलस्तथा ॥ वातादउष्णः सुस्निग्धो वातघ्नः शुक्रकृद्गुरुः ॥ २३५॥ वातादमज्जा मधुरो

वृष्यः पित्तनिलापहः ॥ स्निग्धोष्णः कफकृन्नेष्टो रक्तपित्तविकारिणाम् ॥ २३५ ॥

भा० अनन्तर पिंड खजूरका भेद सुलेमानी है ॥ सुलेमानी मृदुला दलहीन फला । यह सुलेमानी खजूर के नाम हैं ॥ सुलेमानी खजूर श्रम भ्रान्ति दाह रक्त पित्त इनको नाश करनेवाला है ॥ २३३ ॥
अनन्तर बादाम ॥ वाताद वातवैरी नेत्रोपमफल ॥ येह बादामके नाम हैं ॥ बादाम उष्ण स्निग्ध वात नाशक शुक्र करनेवाला भारी होता है ॥ २३४ ॥ बादाम की गिरी मधुर शुक्रको करनेवाली पित्त वातकी नाशक ॥ स्निग्ध उष्ण कफ करनेवाली होती है ॥ और रक्त पित्तके रोगवालों को हित नहिं होती ॥ २३५ ॥

[अथ सेव ।]

मुष्टिप्रमाणं वदरं सेवं सिवितिका फलम् ॥ सेवं समीर पित्तघ्नं बृंहणं कफकृद्गुरु ॥ २३६ ॥
रसे पाके च मधुरं शिशिरं रुचि शुक्रकृत ॥
[अथामृतफलम् ।] यत् वदक सान् काबिल प्रभृति षु देशेषु नासपातीनि प्रसिद्धः ॥
अमृत फलं लघु वृष्यं सुस्वादु त्रीन् हरेत् दोषान्
देशेषु मुङ्गलानां बहुलन्त लभ्यते लोकैः ॥

भा० अनन्तर सेव । मुष्टिप्रमाण वदर सेव सिविति का फल । येह सेव के नाम हैं ॥ सेव वात पित्त का नाशक पुष्ट कफ को करनेवाला भारी होता है ॥ २३६ ॥ और रसपाक में मधुर शीतल रुचि और शुक्र को करनेवाला ।
॥ अनन्तर अमृतफल यह काबिल - आदि देशोंमें नासपाती इस नामसे प्रसिद्ध है ॥ अमृतफल हलका शुक्र को उत्पन्न करने वाला मधुर होता है और तीनों दोषों को नाश करता है ॥ मुगलों के देशोंमें यह विशेष करके मिलता है ॥

[अथ पीलु ।] पीलुगुल्फलः स्रंसी तथा शीत

फलोऽपिच ॥ पीलुः श्लेष्म समीरघ्नं पित्तलं भेदि गुल्मनुत् ॥ २३७ ॥ स्वादु तिक्तञ्च यत् पीलु तन्नात्युष्णन्त्रिदोष हृत् ॥

[अथ अखरोट पीलुः।] पीलुः शैल भवो ऽक्षोटः कर्परालश्च कीर्तितः ॥ अक्षोट कोऽपि वाताम सदृशः कफ पित्तकृत् ॥ २३८ ॥

भा० अनन्तर पीलू।] गुल्फफल शंसी तथा शीनफल । येह पीलूके नामहैं ॥ पीलू कफ वातका नाशक पित्तको करनेवाला भेदन करने वाला वाय गोलाका नाशक होताहे ॥ २३७ ॥ और जो पीलू मधुर तिक्त होताहे । वोह बहुत गरम नहीं होता और त्रिदोषको नाश करता है ॥

[अनन्तर अखरोट । पीलू शैलभव ऽक्षोट कर्पराल येह अखरोट के नाम कहेहैं ॥ अखरोट भी बादामके समान गुण में होताहै और कफ पित्तको करने वाला है ॥ २३८ ॥

अथ बिजौरा।] बीजपूरो मातुलुङ्गो रुचकः फल पूरकः ॥ बीजपूर फलं स्वादु रसेऽम्लं दीपनं लघु ॥ २३९ ॥ रक्त पित्तहरं कण्ठजिह्वा हृदय शोधनम् ॥ श्वास कासारुचिहरं हृद्यं तृष्णा हरं स्मृतम् ॥ २४० ॥

भा० अनन्तर बिजौरा । बीजपूर मातुलुङ्ग रुचक फलपूरक येह बिजौरेके नामहैं बिजौरे का फल रसमें मधुर और अम्ल होताहै । दीपन हलका होता है ॥ २३९ ॥ रक्तपित्तका नाशक होता है कण्ठ जिह्वा हृदय इनका शोधन । तथा श्वास कास अरुचि इनका नाशक हृद्य और तृषा का नाशक कहा गयाहै ॥ २४० ॥

[अथ बिजौर भेद मधुकाकड़ि ।] बीज पूरोऽपरः

प्रोक्तो मधुरो मधुकर्कटी ॥ मधुकर्कटिका स्वाद्वी रोचनी शीतला गुरुः ॥ २५१ ॥ रक्तपित्त क्षय श्वास कास हिक्का भ्रमापहा ॥

[अथ जम्बीरी द्वयम् ।] स्याज्जम्बीरो दन्त शठो जम्भजम्भीर जम्भलाः ॥ जम्बीर मुष्णं गुर्व्वम्लं वात श्लेष्म विबन्धनुत ॥ २५२ ॥ शूल कास कफोत्क्लेश छर्दि तृष्णामदोष जित ॥ आस्य वैरस्य हृत्पीड़ा वन्हि मान्द्य क्रमीन हरेत् ॥ २५३ ॥ स्वल्पजम्बीरिका तद्वत् तृष्णा छर्दि निवारणी ॥

भा० [अनन्तर बिजौरे की भेद मधुककड़ी ॥] और बिजौरे की मधुककड़ी कहते हैं ॥ मधुककड़ी मधुरुचिकी करनेवाली शीतल भारी ॥ २५१ रक्त पित्त क्षय श्वास कास हिचकी भ्रम इनकी नाशक होती है ॥ अनन्तर दोनों क़िस्मके जंभीरी नीबू ॥ जंबीर दन्तशठ जंभ जम्भीर जंभला । येह जंबीरी नीबू के नामहैं ॥ जंबीर उष्ण भारी खहा वात कफ विबन्ध इनका नाशक ॥ २५२ ॥ और शूल कास कफ मतलीवमन तृषा और आमदोष इनको जीतने वाला है ॥ और मुखकी विरसना हृदय पीड़ा अग्निमान्द्य कृमि इनका नाश करता है ॥ २५३ ॥

[नीम्बु ।]

निम्बूस्त्री निम्बुकं क्लीवे निम्बूकमपि कीर्त्तितम् ॥ निम्बूकमम्लं वातघ्नं दीपनं पाचनं लघु ॥ ॥ २५४ ॥ [अन्यच्च ।] निम्बूक कृमि समोह नाशनन्तीक्ष्णमम्ल मुदर ग्रहापहम् । वात पित्त कफ शूलिने हितं कष्ट नष्टरुचि रोचनम्

परम् ॥ २५५ ॥ त्रिदोष वन्हि क्षयवात रोग नि-
पीड़ितानां विष विव्हलानां । मन्दानले बद्ध
गुदे प्रदेयं विसूचिकायां मुनयो वदन्ति ॥ २५६
[अथ मिष्टनिम्बू ।] मिष्टनिम्बू फलं स्वादु गुरु
मारुत पित्तनुत ॥ गर रोग विषध्वंसि कफोत्क्ले
शिच रक्तहृत ॥ २५७ ॥ शोषा रुचि तृषा छर्दि
हरं बल्यञ्च बृंहणम् ॥ [अथ कर्म्मरङ्ग ।
कर्म्मरङ्गं हिमं ग्राहि स्वाद्वम्लं कफ वातहृत ॥

भा० छोटी जंभीरी उसीके समान गुणमें होतीहै और तृषा वमनको नाश करनेवाली है ॥ [अनन्तर नींबू । नींबू ये स्त्रिलिंग में और नपुंसक लिङ्गमें निंबुक और नीबुक भी कहा गया है ॥ नीबू खट्टा वात नाशक दीपन पाचन हलका होताहै ॥ २५५ ॥ नींबु कृमि मोह इनका नाशक तीखा खट्टा होता है । और तनेउवे पेटको नाशकरता है । और वात पित्त कफ इनके शूलमें हित तथा कष्ट साध्य और नष्ट ऐसी अरुचि रोगमें अत्यन्त रुचिको करनेवाला है ॥ २५५ ॥ त्रिदोष अग्निक्षय वातरोग इनसे पीडित और विषसे विह्वल इनको । और मन्दाग्नि में बद्धगुद में तथा विसूचिका में देना चाहिये ऐसा मुनियों ने कहाहै ॥ ॥ २५६ ॥ [अनन्तर मीठा नींबू ।] मधुर भारी वात पित्तका नाशक है । और गर रोग विष इनका नाशक जो उरेड़नेवाला रक्तका नाशक ॥ २५७ ॥ शोष अरुचि तृषा वमन इनका नाशक बलका हित और पुष्ट होताहै । ॥ अनन्तर कमरख ॥ कर्मरंग येह कमरखका नाम है ॥ कमरख शीतल काबिज़ मधुर खट्टा कफ वातका नाशक होताहै ॥

अथ अम्बिली ॥ अम्लिका चुक्रिकाम्लीच
चुक्रा दन्त शठापिच । अम्लाच चिञ्चकाचि

म्ला तिन्तिड़ी काचतिन्तिड़ी ॥२४८॥ अम्लिका-
म्ला गुरुर्वात हरी पित्त कफास्रकृत् ॥ पक्वातुदी
पनी रूक्षा सरोष्णा कफवातनुत् ॥ २४९ ॥
अथाम्लवेतसः।] स्यादम्ला वेतसश्चुक्रं शतवेधि
सहस्रनुत् ॥ अम्लवेत समत्यम्लं भेदनं लघु दीप
नम् ॥ २५०॥ हृद्रोग शूलगुल्मघ्नं पित्तलं लोमह-
र्षणम् ॥ रूक्षं विण्मूत्र दोषघ्नं प्लीहो दावर्त्त नाश-
नम् ॥२५१॥ हिक्कानाहारुचि श्वास कासाजीर्ण
वमिप्रणुत् ॥ कफवातामयध्वंसि छाग मांस
द्रवत्वकृत् ॥२५२॥ चणकाम्ल गुणं ज्ञेयं लोह
सूची द्रवत्वकृत् ॥

भा० अनन्तर इमली ॥ अम्लिका चुक्रिका अम्ली चुक्रा वन्तशठा ॥ अम्ला चिंचिका चिंचा तिंनड़ी काचतिंतडी येह इमली के नाम हैं ॥२४८ इमली खट्टी भारी वातकी नाशक पित्त कफ रक्त को करने वाली है ॥ और पकीहुई दीपन रूखी सर उष्ण कफ वातकी नाशक होती है ॥२४९ अनन्तर अम्लवेत ॥ अम्लवेतस चुक्र शतवेधि सहस्रनुत् येह अमलवेत के नाम हैं ॥ अमलवेत बहुत खट्टा भेदन हलका दीपन होता है ॥ २५०॥ और हृद्य रोग शूल बायगोला इनका नाशक पित्तको करनेवाला और रोमांच के करनेवाला ॥ रूखा मल मूत्र दोषका नाशक । और पिलही उदावर्त्त इनका भी नाशक है ॥ २५१॥ और हिचकी अफारा अरुचि श्वास कास अजीर्ण वमन इनका नाशक ॥ तथा कफवात के रोगोंको नाश करनेवाला और बकरीके मासको गलानेवाला है ॥ २५२॥ चणकाम्ल के समान गुणसे है। और लोहेकी सुई को गलाने वाला है ॥

अथ विषाम्बिल।] वृक्षाम्लं तिन्तिड़ीकञ्च

चुक्रं स्यादम्ल वृक्षकम् ॥ वृक्षाम्लमामं मन्जोष्णं
वातघ्नं कफ पित्तलम् ॥ २५३ ॥ पक्वन्तु गुरु संग्रा-
हि कटुकन्तुवरं लघु ॥ अम्लोष्णं रोचनं रूक्षं दी
पनं कफवातकृत् ॥ २५४ ॥ तृष्णार्शो ग्रहणी गु-
ल्म शूल हृद्रोग जन्तुजित् ॥

अथ चतुरम्ल पञ्चाम्लयोर्लक्षणम् ॥ अम्लवे-
तस वृक्षाम्ल बृहज्जम्बीर निम्बुकैः ॥ चतुरम्लं
हि पञ्चाम्लं बीज पूरयुतै र्भवेत् ॥ २५५ ॥

भा० अनन्तर वृक्षाम्ल। वृक्षाम्ल तिंतिड़ीक चुक अम्लवृक्षक ॥ ये वि
षाम्बिल के नामहैं ॥ विषाम्बिल कच्ची खट्टी उष्ण वातनाशक कफ
पित्त को करनेवाली होती है ॥ २५३॥ और पकीहुई भारी क़ाबिज़ क
ड़वी और कसेली हलकी ॥ खट्टी गरम अरुचिको करनेवाली रूखी दी
पन कफ वात को करनेवाली ॥ २५४ ॥ और तृषा ववासीर संग्रहणी
वायगोला शूल हृद्रोग कृमि इनको जीतने वाली है ॥
अनन्तर चतुरम्ल और पंचाम्ल इन दोनों का लक्षण कहते हैं ॥ अम्ल
वेत वृक्षाम्ल और बड़ाजंभीर नींबू। इनसे चतुराम्ल होता है और बिजौ
रे के मिलाने से पंचाम्ल होता है ॥ २५५ ॥

अथ परिभाषा ॥ फलेषु परिपक्वं यद्गुणवत्त
दुदाहृतम् ॥ बिल्वादन्यत्र विज्ञेय मामं तद्धि गुणा
धिकम् ॥ २५६ ॥ फलेषु सरसं यत्स्याद्गुणवत्तदुदा
हृतम् ॥ द्राक्षा बिल्व शिवादीनां फलं शुष्कं गुणा
धिकम् ॥ २५७ ॥ फल तुल्य गुणं सर्वं मज्जान
अपि निर्दिशेत् ॥ फलं हिमाग्नि दुर्वात व्या
ल कीटादि दूषितम् ॥ २५८ ॥ अकालजं कु भू

मौंजम्पाका तीतं न भक्षयेत् ॥
पाकमतीतं पाकमति क्रम्य स्थितम् ॥
इतिश्री भावप्रकाशे फलवर्गः ॥ ❋ ॥

भा० अनन्तर परिभाषा । फलोंमें जो पका हुवा है वोह गुणवाला क हा गयाहै ॥ वेलके सिवा जानना चाहिये कच्चा वेल गुणमें अधिक होताहै ॥ २५६ ॥ फलोंमें रसके सहित जो होता है वोह गुणमें अधिक कहाहै ॥ परन्तु दाखबेल आंवले इनके फल सूके हुवे गुणमें अधिक होतेहैं ॥ २५७ ॥ सबके मज्जाओंका गुण फलके समान होता है ॥ हिम अग्नि दुष्टवात सर्प कीट आदिसे दूषित ॥ २५८ ॥ और वे ऋतुका फल कुत्सित भूमिका वे पकाहुवा ऐसे फलको भक्षण न करे ॥
इति भावप्रकाशे फलवर्गः ॥ ❋ ॥

अथ धातूपधातु रसोपरस रत्नोपरत्न विषोप विष वर्गः ॥ [तत्र धातूनां लक्षणानि गुणाश्च ॥] स्वर्णं रूप्यञ्च ताम्रञ्च रङ्गं यसद मेवच ॥ सीसं लोहञ्च सप्तैते धातवो गिरि सम्भवाः ॥ १ ॥ वली पलित खालित्य का- र्श्यो बल्यजरा मयान् ॥ निवार्य्य देहं दधति नृणां तद्धातवो मताः ॥ २ ॥

भा० अनन्तर धातु उपधातु रस उपरस रत्न उपरत्न और विष उपविष इनकावर्ग ॥ ॥ उसमें धातुवोंका लक्षण और गुण कहतेहैं ॥ सोना रूपा ताम्बा रांग जस्त ॥ शीसा लोहा - येह सात पहाड़से उत्पन्न होनेवाली धातुहैं ॥ १ ॥ झुर्रियां बालोंकी सुफ़ेदी गंजापन कृशता औ र दुर्बलता बुढ़ापा । इन रोगोंको दूर करके जो मनुष्योंके शरीरको धारण करतेहैं वोह धातु कहेगयेहैं ॥ २ ॥

[तत्रादौ सुवर्णस्योत्पत्ति नाम लक्षण गुणाश्च ।

पुरा निजाश्रमस्थानां सप्तर्षीणां जितात्मनाम् ॥
पत्नीर्विलोक्य लावण्य लक्ष्मीसम्पन्न यौवनाः ॥
॥३॥ कन्दर्प्प दर्पविध्वस्त चेतसो जातवेदसः ॥
पतितं यद्धरापृष्ठे रेतस्तद्धेमतामगात् ॥ ४ ॥
वशिष्ठश्चेति सप्तैते कीर्त्तिताः परमर्षयः ॥ म-
रीचिरङ्गिरा अत्रिः पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः ॥ ५॥
कृत्रिमञ्चापि भवति तद्रसेन्द्रस्य वेधतः ॥ स्व-
र्णं सुवर्णं कनकं हिरण्यं हेमहाटकम् ॥ ६ ॥ त-
पनीयञ्च गाङ्गेयं कलधौतञ्च काञ्चनम् ॥ चा
मीकरं शातकुम्भं तथाकार्त्तस्वरञ्च तत् ॥ ७॥
जाम्बूनदं जातरूपं महारजत इत्यपि ॥ दाहे
रक्तं सितं च्छेदे निकषे कुङ्कुमप्रभम् ॥ ८ ॥

भा० इनमें पहले सुवर्णकी उत्पत्ति नाम लक्षण और गुण कहतेहैं ॥ प-हले निज आश्रम में रहनेवाले जितेन्द्रिय सप्त ऋषियों की लावण्य लक्ष्मी इन करके युक्त यौवनवाली स्त्रियों को देखकर ॥ ३॥ कंदर्पके दर्पसे ह्रस्त होगयाहै चित्त जिस्का ऐसे अग्निका जो पृथ्विपर शुक्र गिरा वोह सो-ना होगया ॥ ४॥ मरीची अंगिरा अत्री पुलस्त्य पुलः क्रतु ॥ वशिष्ठ, येह सातमहर्षि कहे गयेहैं ॥ ५॥ कृत्रिम भी सुवर्ण होताहै वोह पारेके भेदसे ॥ स्वर्ण सुवर्ण कनक हिरण्य हेम हाटक तपनीय गांगेय कलधौत कां-चन ॥ चामीकर शातकुम्भ तथा कार्त्तस्वर ॥ ७॥ जाम्बूनद जातरूप म-हारजत, येह सुवर्ण केनामहैं ॥ दाह में लाल काटनेमें सुफेद और कसौ-टीमें केसर के समान होताहै ॥ ८ ॥

तारं शुल्वोज्जितं स्निग्धं कोमलं गुरु हेमसत् ॥
(सत्तमम्।) तच्छ्वेतं कठिनं रूक्षं विवर्णं समलं

दलम् ॥ दाहे छेदे सितं श्वेतं कषेत्याज्यं लघुस्फुटम् ॥ ९ ॥ दलज्जोर इति लोके। स्फुटं यद्घनाहतं स्फुटति ।] सुवर्णं शीतलं वृष्यं बल्यं गुरु रसायनम् ॥ स्वादु तिक्तञ्च तुवरं पाके च स्वादु पिच्छिलम् ॥१०॥ पवित्रं बृंहणं नेत्र्यं मेधा स्मृति मतिप्रदम् ॥ हृद्यमायुःकरं कान्ति वाक् विशुद्धि स्थिरत्व कृत ॥ ११ ॥ विषद्वय क्षयोन्माद त्रिदोषज्वर शोष जित ॥ बलं सवीर्य्यं हरते नराणां रोगव्रजान् शोषयतीह काये ॥ असौख्य कर्त्ता च सदा सुवर्णमशुद्धमेतन्मरणञ्च कुर्य्यात् ॥ १२॥ असम्यक् मारितं स्वर्णं बलं वीर्य्यञ्च नाशयेत् ॥ करोति रोगान्मृत्युञ्च तद्धन्या द्यत्नतस्ततः ॥१३॥

भा० और चांदी ताम्बेको जीतने वाला। चिकना कोमल भारी ऐसा सुवर्ण बहुत अच्छा है ॥ और जो कठिन रूखा विवर्ण समदल दलवाला दाहमें और काटनेमें श्वेत हलका अलग होनेवाला वोह खेत है। वोह त्यागने योग्य है ॥ ९ ॥ दलजोर इस प्रकार लोकमें कहते हैं ॥ सोना शीतल शुक्रको उत्पन्न करने वाला बलकारी भारी रसायन ॥ मधुर तिक्त कसैला और पाकमें भी मधुर पिच्छिल ॥ १०॥ पवित्र पुष्ट करने वाला नेत्रके हित मेधा स्मृति बुद्धि इनको देने वाला हृद्य आयु को करने वाला कान्ति वाणीकी शुद्धि स्थिर इनको करनेवाला ॥ ११ ॥ संसर्ग विषको नाश करने वाला उन्माद त्रिदोषज्वर शोष इनको जीतनेवाला है ॥
अशुद्ध स्वर्ण मनुष्यों का बल वीर्य्य के सहित हरता है। और बहुत से रोगों को करता है और काया को सुकाता है ॥ तथा क्लेश को करने वाला होता है ॥ तथा मरण को भी करता है ॥ १२॥ अच्छी तरह न फूका हुवा सोना बल वीर्य को नाश करता है ॥ और रोगों को तथा मृत्यु को भी करता है इसवास्ते यत्न

से फूंके ॥२३॥

[अथ रूप्यस्योत्पत्तिनामलक्षणगुणाश्च।

त्रिपुरस्य वधार्थाय निर्न्निमिषे विलोचने :॥ निरीक्षयामास शिवः क्रोधेन परिपूरितः॥ २४॥ अग्निस्तत्कालमपतत्तस्यैकस्माद्विलोचनात् ॥ ततो रुद्रः समभवद्वैश्वानर इव ज्वलन् ॥ २५॥ द्वितीयादपतच्चेत्रादश्रुविन्दुस्तु वामकात् ॥ तस्माद्रजतमुत्पन्नमुक्तकर्म्मसु योजयेत् ॥२६॥ कृत्रिमञ्च भवेतद्धि वङ्गादि रसयोगतः॥ रूप्यन्तु रजतं तारञ्चन्द्रकान्ति सितप्रभम् ॥ २७॥ गुरु स्निग्धं मृदु श्वेतं दाहे छेदे घनक्षमम् ॥ वर्णाढ्यं चन्द्रवत्स्वच्छं रूप्यं नव गुणं शुभम् ॥२८॥ कठिनं कृत्रिमं रूक्षं रक्तं पीतदलं लघु ॥ दाहच्छेद घनैर्नष्टं रूप्यं दुष्टं प्रकीर्त्तितम् ॥ २९॥

भा० अनन्तर चाँदीकी उत्पत्ति नाम और लक्षण गुण ॥ त्रिपुरासुर के मारनेके अर्थ क्रोधसे भरे हुवे शिवजीने निमेष रहित नेत्रों से देखा ॥२४॥ उसी काल उनके एक नेत्र से अग्नि निकला ॥ अग्नि के समान जाज्वल्यमान उससे रुद्र हुवा ॥२५॥ दूसरी बांई आंख सेजो आंसू गिरा ॥ उससे चांदी उत्पन्न हुई उसको कहे हुवे काममें योजना करे ॥ २६॥ और वोह रांग और पारा आदिकी योजना से कृत्रिम भी होती है ॥ रूप्य रजत तार चन्द्रकान्ति सितप्रभ ॥२७॥ येह चाँदी के नाम हैं। चाँदी भारी चिकनी मुलायम दाहमें और काटने में श्वेत और चोट सहनेवाली ॥ और चांद के समान श्वेत स्वच्छ येह चाँदी के नौ गुण शुभहैं ॥२८॥ और कृत्रिम कठिन रूखी लाल पीले परतों से युक्त हलकी दाहमें काटने में और चोट में नष्ट

होनेवाली इसप्रकार की चाँदी खराव होतीहै ॥ १९ ॥

रूप्यं शीतं कषायाम्लं स्वादु पाकरसम् सरम् ॥ वयसः स्थापनं स्निग्धं लेखनं वात पित्त जित् ॥ ॥ २० ॥ प्रमेहादिक रोगांश्च नाशयत्य चिराद् ध्रुवम् ॥ ॥ तारं शरीरस्य करोति तापं बिद्धं घनं यच्छति शुक्र नाशम् ॥ वीर्य्यं बलं हन्ति तनोश्च पुष्टिं महा गदान् शोषयति ह्य शुद्धम् ॥ २१ ॥

भा० चान्दी शीतल कसैली खट्टी और रस पाक में मधुर सर ॥ वयको स्थापन करने वाली चिकनी लेखन वात पित्तको जीतने वाली है ॥ २० ॥ और प्रमेह आदि रोगों को निश्चय नाश करती है ॥ विन सोधि चांदी शरीर में जलन करती है ॥ और वन्धे हुए तथा गाढे शुक्र को नाश करती है ॥ और वीर्य्य बल तथा शरीर की पुष्टि को नाश करती है और बड़े रोगों को सुकाती है ॥ २१ ॥

अथ ताम्रस्योत्पत्तिर्नाम लक्षण गुणाश्च ॥ शुक्रं यत् कार्त्तिकेयस्य पतितं धरणीतले ॥ तस्मात्ताम्रं समुत्पन्न मिदमाहुः पुराविदः ॥ २२ ॥ ताम्र मौदुम्बरं शुल्व मुदुम्बर मपि स्मृतम् ॥ रविप्रियं म्लेच्छमुखं सूर्य्यपर्य्याय नामकम् ॥ २३ ॥ जपा कुसुम सङ्काशं स्निग्धं मृदु घनं क्षमम् ॥ लोहनागोज्झितं ताम्रं मारणाय प्रशस्यते ॥ २४ ॥ कृष्णं रूक्षमति स्तब्धं श्वेतञ्चापि घनासहम् ॥ लोहनाग युतञ्चेति

शुल्वं दुष्टं प्रकीर्त्तितम् ॥ २५ ॥ ताम्रं कषायं म-
२ धुरञ्च तिक्तं मम्लञ्च पाके कटुसारकञ्च ॥ पि-
त्तापहं श्लेष्महरञ्च शीतं तद्रोपणं स्याल्लघुले
खनञ्च ॥ २६ ॥ पाण्डूदराशौ ज्वर कुष्ठ कास
श्वास क्षयान् पीनसमम्ल पित्तम् ॥ शोथं कृ-
मिं शूलमपाकरोति प्राहुः परे बृंहणमल्पमेत
त् ॥ २७ ॥ एको दोषो विषे ताम्रे त्वसम्यग् मारि
तेऽष्टते ॥ दाहः स्वेदो रुचिर्मूर्च्छा क्लेदो रेको वमि
र्भ्रमः ॥ २८ ॥ (रेकः विरेकः)

भा० अनन्तर ताम्बेकी उत्पत्ति नाम लक्षण और गुणको कहते हैं ॥ कार्तिके यका जो शुक्र पृथ्वीपर गिरा ॥ उससे ताम्बा उत्पन्न हुवा ऐसा पहिले लोग कहते हैं ॥ २२॥ ताम्र औदुम्बर शुल्व उदुंबर। रविप्रिय म्लेच्छ मुख और सूर्य्य के पर्य्याय नाम येह ताम्बे के नाम हैं ॥ २३॥ जवाफूल के सदृश वर्ण चिकना मुलायम चोटको सहनेवाला ॥ लोह शीशा इनसे रहित ताम्बा फूकने के वास्ते अच्छा होता है ॥ २४॥ काला रूखा अति श्वेत और चोट को न सहनेवाला ॥ लोह शीशे से युक्त ऐसा ताम्बा खराब कहाहै ॥ २५॥ ताम्बा कसैला मधुर तिक्त अम्ल पाक में कटु और सारक ॥ तथा पित्त का नाशक कफनाशक शीतल होता है और रोपण और हलका लेखन भी होता है ॥ २६॥ और पांडु रोग उदर रोग ज्वर कुष्ठ कास श्वास क्षय पीनस अम्ल पित्त ॥ शोथ कृमि शूल इनको नाश करता है और आचार्य्य उसको अल्प बृंहण भी कहते हैं ॥ २७॥ विष में एक दोष और अच्छी तरह न फुके हुवे में आठ दोष होते हैं ॥ दाह स्वेद अरुचि मूर्छा क्लेद वमन विरेचन भ्रम। येह आठ दोष हैं ॥ २८ ॥ वोह:

(अथ रङ्गस्य नाम लक्षण गुणाः।

रङ्गं वङ्गं त्रपु प्रोक्तं तथा पिच्चट मित्यपि ॥ खुर
कं मिश्रकञ्चापि द्विविधं वङ्ग मुच्यते ॥ २९ ॥

उत्तमं खुरकं तत्र मिश्रकं त्ववरं मतम् ॥ रङ्गं ल-
घुसरं रूक्षमुष्णं मेह कफ क्रमीन् ॥ ३०॥ निह
न्ति पाण्डुं सश्वासं चक्षुष्यं पित्तलं मनाक् ॥
सिंहो यथा हस्ति गणं निहन्ति तथैव वङ्गोऽखि
लमेह वर्गम् ॥ देहस्य सौख्यं प्रबलेन्द्रियत्वं न
रस्य पुष्टिं विदधाति नूनम् ॥ ३१॥

भा॰ अनन्तर रांगके नाम और लक्षण और गुण कहते हैं ॥ लाल रांगेको त्रपु तथा पिच्चटभी कहते हैं ॥ खुरक और मिश्रक ऐसे दो प्रकारका रांगा होताहै ॥ २९॥ उसमें उत्तम खुरक और मिश्रक खराब होताहै ॥ रांग हलका सर रूखा गरम होताहै और प्रमेह कफ कृमि इनको ॥ ३०॥ नाश करता है और पांडुरोग श्वास इनकोभी नाश करता है ॥ तथा नेत्र के हित और अल्प पित्त करनेवाला होताहै ॥ जैसे सिंह गज गणोंको नाश करताहै वैसे रांगा सम्पूर्ण प्रमेह वर्गको नाश करता है ॥ और देहका सौख्य इन्द्रियकी प्रबलता और पुष्टिकोभी निश्चय करता है ॥ ३१॥

[अथ यसद । यसदं रङ्गसदृशं रीति हेतुश्च त-
न्मतम् ॥ यसदं तुवरं तिक्तं शीतलं कफ पित्तह-
त् ॥ ३२॥ चक्षुष्यं परमं मेहान् पाण्डुं श्वासञ्च
नाशयेत् ॥ [अथ सीसस्योत्पत्ति नाम गुणाश्च ।
दृष्ट्वा भोगि सुतां रम्यां वासुकिस्तु मुमोचयत् ॥ वी
र्य्यं जातस्ततो नागः सर्व रोगापहो नृणाम् ॥ ३३॥
सीसं ब्रध्नञ्च वप्रञ्च योगेष्टं नागनामकम् ॥
[नागनामकम् । नागः भुजङ्गः इत्यादि ।)

सीसं रङ्गगुणं ज्ञेयं विशेषान् मेह नाशनम् ॥ ३४॥ नागस्तु नाग शत तुल्य बलं ददाति व्याधिं विनाशयति जीवन मातनोति। वन्हिं प्रदीपयति काम बलं करोति मृत्युञ्च नाशयति सन्तत सेवितः सः ॥ ३५ ॥ पाकेन हीनौ किल वङ्गनागौ कुष्ठानि गुल्मांश्च तथाति कष्टान् ॥ कण्डूं प्रमेहानल सादं शोथ भगन्दरादीन् कुरुतः प्रभुक्तौ ॥ ३६॥

भा० अनन्तर जस्त। यसद् रंगसदृश रीति हेतु अर्थात् पीतलका कारण उसको कहाहै ॥ जस्त कसैला तिक्त शीतल कफ पित्तका नाशक ॥ ॥ ३२॥ परम नेत्रका हित प्रमेह पाण्डुरोग श्वास इनकोभी नाशकरताहै

अनन्तर सीसेकी उत्पत्ति नाम और गुण कहतेहैं ॥ वासुकी ने सुंदर नाग कन्याओं को देखकर वीर्यको छोड़ा उससे मनुष्यों के सब रोगों का नाशक सीसा उत्पन्नहुआ ॥ ३३॥ सीस वध्र वप्र योगेष्ट नाग नामक अर्थात् सांपके नामवाला येह सीसेके नामहैं ॥ सीसा गुण में रांगेके समान होताहै ॥ और विशेषकर के प्रमेह का नाशक है ॥ ३४ ॥ सीसा सौ हाथी के समान बलको देताहै और रोगों के नाश करता है तथा जीवन को देताहै और अग्निको दीपन करता तथा काम बलको देताहै ॥ निरन्तर सेवन करनेसे वोह मृत्युको नाश करताहै ॥ ३५॥ अच्छीतरह न फुंके हुवे नाग और वंगों को खानेसे वोह कुष्ठ वाय गोला तथा अतिकष्ट खुजली ॥ प्रमेह अग्निमान्द्य सूजन भगन्दर आदियों को करते हैं ॥ ३६॥

[अथ लोहस्योत्पत्ति नाम लक्षण गुणाश्च।]

पुरा लोमिन दैत्यानां निहतानां सुरैर्युधि ॥ उत्पन्नानि शरीरेभ्यो लोहानि विविधानि च ॥ ३७॥ लोहोऽस्त्री शस्त्रकं तीक्ष्णं पिण्डं कालायसायसी ॥ गुरुता दृढ तोन्मेदः कफमलं दाह कारि

ता ॥ ३८ ॥ अश्मदोषः मृदुर्गन्धो दोषाः खनाय-
सस्य तु ॥ लोहं तिक्तसरं शीतं मधुरं तुवरं गुरु॥
॥ ३९ ॥ रूक्षं वयस्यं चक्षुष्यं लेखनं वातलं जयेत् ॥
कफं पित्त गरं शूलं शोथार्शः प्लीह पाण्डुताः ॥ ४०॥
मेदो मेह क्रमीन् कुष्ठं तत्त किट्टं तद्वदेव हि ॥
पाण्डुत्व कुष्ठामय मृत्युदं भवेत् हृद्रोगशूलौ कुरु
ते ऽश्मरीञ्च ॥ नाना रुजानाञ्च तथा प्रकोपं
करोति हृल्लासमशुद्ध लोहम् ॥ ४१॥ जीवहारी म
दकारी चायसं देह शुद्धि मद संस्कृतं ध्रुवम् ॥
पाटवं न तनुते शरीरके दारुणां हृदि रुजाञ्च य
च्छति ॥ ४२ ॥ कूष्माण्डं तिलतैलञ्च माषान्नं
राजिकां तथा ॥ मद्य मम्ल रसञ्चापि त्यजेल्लो
हस्य सेवकः ॥ ४३॥

भा० अनन्तर लोहकी उत्पत्ति नाम लक्षण और गुण कहते हैं ॥ देवता
ओं की लड़ाई में मारे हुवे लोमिन दैत्यों के ॥ शरीरों में से नाना प्रकार
के लोह उत्पन्न हुवे ॥ ३७॥ लोह शस्त्रक तीक्ष्ण पिण्ड काल आयस ।
यह लोहके नाम हैं ॥ भारीपन दृढ़ता मतलीकरना कस दाह करना ॥
॥ ३८ ॥ अश्मरीदोष मृदु दुर्गन्धता यह खानदोष लोहे के हैं ॥ लोह ति
क्त सर शीतल मधुर कसैला भारी ॥ ३९ ॥ रूखा रसायन नेत्र के हित ।
लेखन और वातल है ॥ और कफ पित्त विष शूल सूजन बवासीर पिल
ही पांडुरोग ॥ ४० ॥ मेद प्रमेह कृमि कुष्ठ इनको जीतता है । और उसका
कीट भी उसीके समान होता है ॥
अशुद्ध लोहा पांडुत्व कुष्ठ रोग और मृत्यु इनको करने वाला है और हृद
रोग शूल अश्मरी इनको भी करता है। तथा अनेक प्रकार की पीड़ाओं का

प्रकोप और हृल्लास इनको भी करताहै ॥ ५१ ॥ बिन शुधा लोहा जीवन का नाशक मद करनेवाला और वमन विरेचन करने वाला निश्चय है ॥ और शरीर में चैतन्य ना नहीं करता तथा हृदय में दारुण पीड़ा भी करताहै ॥५२॥ पेठा तिल तैल उड़द राई ॥ मदिरा खटाई इनको लोह का सेवन करने वाला त्याग देवे ॥ ५३ ॥

[तत्र सार लोहस्य लक्षणं गुणाश्च ॥

क्षमा भृच्छिखराकारा न्यङ्गान्यम्लेन लेपयेत् ॥
लोहे स्युर्य्यत्र सूक्ष्माणि तत्सारमभिधीयते ॥५४
लोहं सारा ह्वयं हन्यात् ग्रहणी मति सारकम् ॥
अर्द्धं सर्वाङ्गजं वातं शूलञ्च परिणामजम् ॥५५।
छर्दिञ्च पीनसं पित्तं श्वासं कासं च्यपोहति ॥

भा० उसमें सार लोह के लक्षण और गुण कहतेहैं ॥ पहाड़ वा शिखराकार अंगों को खटाई से लेपकरे ॥ उस लोहे में से जो सूक्ष्म अंश होतेहैं ॥ उस को सार कहतेहैं ॥ ५४ ॥ सार नामक लोह संग्रहणी अतीसार ॥ और अर्धाङ्ग तथा सर्वाङ्ग वात तथा परिणाम शूल इनको नाश करता है ॥ ५५ ॥ और वमन पीनस पित्त श्वास कास इनको भी नाश करता है ॥

[अथ कान्तलोहस्य लक्षणं गुणाश्च ।] यत्पा
त्रेन प्रसरति जले तैलबिन्दुः प्रतप्ते हिङ्गुर्गन्ध
न्त्यजति च निजं तिक्ततां निम्बवल्कः ॥ ५६ ॥
तप्तं दुग्धं भवति शिखराकारकं नैति भूमिं कृ-
ष्णाङ्गः स्यात् सजलचणकः कान्तलोहं तदुक्त
म ॥ ५७ ॥ गुल्मोदरार्शः शूलाममामवातं भग
न्दरम् ॥ कामला शोथ कुष्ठानि क्षयं कान्तमयो

हरेत् ॥ ५८॥ सीहानमम्ल पित्तञ्च यकृच्चापि शिरो रुजम् ॥ सर्वान्रोगान् विजयते कान्तलोहं न संशयः ॥ ५९॥ बलं वीर्य्यं वपुः पुष्टिं कुरुतेऽग्निं विवर्द्धयेत् ॥

भा० कान्त लोहका लक्षण और गुण कहते हैं ॥ जिस जलके भरे पात्र में तेलकी बून्द नहीं फैलती और तपाने में हींग सी गन्ध निकलती है ॥ तथा नीमकी क्वाथ सा कडुवा होता है ॥ ५६॥ और जिसमें गरम दूध शिखर के आकार ऊंचा होता है परन्तु जमीन पर नहीं गिरता ॥ और जलके सहित चने काले हो जाते हैं उस्को कान्तलोह कहा है ॥ ५७॥ कान्तलोह वायगोला उदररोग बवासीर शूल आम और आमवात भगंदर ॥ कामला सूजन कुष्ठ और क्षय इनको नाश करता है ॥ ५८॥ और पिलही अम्लपित यकृत शिरकी पीड़ा ॥ तथा सबरोग इनको कान्तलोह जीतता है इसमें कोई संशय नहीं ॥ ५९॥ और बलवीर्य्य शरीरकी पुष्टि करता है तथा अग्निको बढ़ाता है ॥

[अथ कीटी।]

ध्मायमानस्य लोहस्य मलं मण्डूरमुच्यते ॥ लोह सिंहानिका किट्टी सिंहानञ्च निगद्यते ॥५०॥ यल्लोहं यद्गुणं प्रोक्तं तत् किट्टमपि तद्गुणम् ॥

भा० अनन्तर कीटी। तपाये हुये लोहेका जो कीट है उस्को मंडूर कहते हैं ॥ लोह सिंहानिका किट्टी सिंहान भी कहते हैं ॥ ५०॥ जो लोहा जिस गुणवाला कहा गया है उस्का कीट भी उसी गुणवाला है ॥

अथोपधातवः।] तत्रोपधातूनां लक्षणं गुणाश्च।]

सप्तोपधातवः स्वर्णमाक्षिकं तारमाक्षिकम्। तुत्थं कांस्यं च रीतिश्च सिन्दूरश्च शिलाजतु ॥ ५१॥

[उपधातवः गौणधातवः।] उपधातुषु सर्वेषु तत्तद्धातु गुणा अपि ॥ सन्ति किं तेषु तेऽन्ना तरं

शाल्य भावतः ॥५२॥ [तत्र सुवर्णमाक्षिकस्य नामानि गुणाश्च । स्वर्णमाक्षिक माख्यातं ताापीजं मधुमाक्षिकम् ॥ ताप्यं माक्षिक धातुश्च मधु धातुश्च सम्मतः ॥ ५३॥ किञ्चित् सुवर्ण साहित्यात् स्वर्णमाक्षिक मीरितम् ॥ उपधातुः सुवर्णस्य किञ्चित् स्वर्ण गुणान्वितम् ॥५४

भा० अनन्तर उपधातुको कहतेहैं ॥ उसमें उपधातुवों का लक्षण और गुण कहतेहैं ॥ सोनामाखी रूपामाखी लीला थोथा कांसा पीतल सिंदूर शिलाजीत । येह सात उपधातु हैं ॥ ५१॥ सब उपधातुवों में उन २ धातुवों के गुण भीहैं ॥ तो क्या उनमेंवो घट के हैं क्यों कि उन उन के अंश अल्प होने से ॥५२॥ उनमें सोना माखी के नाम और गुण कहते हैं ॥ सुवर्णमाक्षिक तापीज मधुमाक्षिक ॥ ताप्य माक्षिक धातु मधुधातु । येह उस्के नामहैं ॥ ५३॥ कुछएक सोनेके मिलेहोने से सोनामाखी कही गई है ॥ सोने की उपधातु कुछएक सोनेके गुण से युक्त होती है ॥५४॥

तथाच काञ्चना भावे दीयते स्वर्णमाक्षिकम् किन्तु तस्यानुकं पत्वात् किञ्चिदून गुणास्ततः ॥ ५५॥ न केवलं स्वर्ण गुणाः वर्तन्ते स्वर्ण माक्षिकें ॥ द्रव्यान्तरस्य संसर्गात् सन्त्यन्येऽपि गुणा यतः ॥ ५६ ॥ सुवर्णमाक्षिकं स्वादु तिक्तं वृष्यं रसायनम् ॥ चक्षुष्यं वस्तिरुक् कुष्ठ पाण्डु मेह विषोदरान् ॥ ५७॥ अर्शः शोथं विषक्कण्डुं त्रिदोष मपि नाशयेत् ॥

मन्दानलत्वं बलहानि मुग्रां विष्टम्भतां नेत्र गदान् सकुष्ठान् तथैव मालां व्रण पूर्व्विकाञ्च करोति तारं बीज मशुद्ध मेतद् ॥ ५८ ॥

भा० वैसेही स्वर्ण के अभाव में सोनामाखी दीजातीहे । क्योंकि उस्सेपीछे कहनेसेउसे कुछ एक गुणमें न्यूनहै ॥ ५५ ॥ केवल सुवर्ण केही गुण सोनामाखी में नहीं हैं । किन्तु द्रव्यान्तर के संयोग से और भी गुण हैं ॥ ५६ ॥ सोना माखी मधुर तिक्त शुक्रको उत्पन्न करनेवाली रसायन । नेत्रके हितहै । और वस्तिकी पीड़ा कुष्ट पाण्डुरोग प्रमेह विष उदर रोग ॥ ५७ ॥ ववासीर शोथ विष कंडू त्रिदोष इनको भी नाश करती है ॥ बिना सोधी सोना मन्दाग्नि बलकी हानि अत्यन्त विष्टम्भ का होना नेत्ररोग कुष्ठ ॥ वैसेही गंडमाला इनको करती है ॥ ५८ ॥

अथ तारमाक्षिकस्य नाम गुणाः । तार माक्षिक मन्यत्तु तद्भवे द्रजतोपमम् । किंचिद्रजत्र साहित्यात् तार माक्षिक मीरितम् ॥ ५९ ॥ अनुकल्प तया तस्य ततो हीन गुणाः स्मृताः ॥ नकेवलं रूप्य गुणाः यतः स्यात्तार माक्षिकम् ॥ ६० ॥ स्वादु पाकं रसे किञ्चित् तिक्तं वृष्यं रसायनम् ॥ चक्षुष्यं वस्तिरुक कुष्ठ पाण्डु मेह विषोदरम् ॥ ६१ ॥ अर्शः शोथं त्वयङ्कराड् त्रिदोष मपि नाशयेत ॥

भा० अब तार रूपा माखीके नाम और गुण ॥ और दूसरी रूपा माखी चांदीके समान होतीहै ॥ कुछेक चांदीके मिलनेसे रूपामाखी कहीहै ॥ ५९ ॥ उस्के पीछे कहनेसे उससे हीन गुण कहीगई है ॥ केवल चादीके गुण रूपा माखीमें नहीं हैं ॥ ६० ॥ जैसे पाकमे मधु रसमें कुछ तिक्त शुक्रको उत्पन्नकरने वाली रसायन नेत्रके हितहै और पेड़ की पीडा और कुष्ठ पाडुरोग

प्रमेह विषउदररोग ॥ ६१॥ववासीर सूजन क्षय कंडू विपदोष इनकोना श करतीहै ॥

मन्दानलत्वं बलहानि मुग्रां विष्टम्भितान्नेत्रग-
दान्सकुष्ठान् । तथैव मालां व्रण पूर्व्विं काञ्च
करोति तापीज मिदञ्च तद्वत् ॥ ६२॥

अथ तूतीआ।] तुत्थं वितुन्नकञ्चापि शिखि
ग्रीवं मयूरकम् ॥ तुत्थ न्तामोपधातु र्हि किञ्चि
त्ताम्रेण तद्भवेत् ॥ ६३॥ किञ्चित्ताम्र गुणा न्तस्मा
द्वक्ष्यमाणा गुणाश्च तत ॥ तुत्थकं कटुकं क्षारं क-
षायं वामकं लघु ॥ ६४॥ लेखनम्भेदनं
शीतं चक्षुष्यं कफपित्तहृत ॥ विषाश्म कुष्ठ
कण्डूघ्नं खर्परञ्चापि तद्गुणम् ॥ ६५॥

भा० बिनसोधी ऊई रूपामाखी मन्दाग्नि बलहानी विष्टम्भता नेत्ररोग कुष्ठ गंडमाला इनको करतीहै ॥ ६२॥

अनन्तर तूतिया ।] तुत्थ वितुन्नक शिखीग्रीव मयूरक । येह नीलेथोथे के नामहैं ॥ नीलाथोथा तांबेकी उपधातु और थोड़े ताम्बेसे होताहै इसवा से थोड़ेसे तांबेके गुण और कहेङ्गे गुणहोतेहैं ॥ नीला थोथा कड़वा क्षार कसेला वमनकरनेवाला हलका ॥ ६४॥ लेखन भेदन शीतल नेत्रकोहि तकफ पित्तका नाशक है । और विष अश्मरी कुष्ट कन्डू इनका नाशक होताहै ॥ और खपरिया भी उसीसमानगुणमें है ॥ ६५॥

अथ कांसी ।] ताम्रत्रपुज माख्यातं कांस्यं घोष
ञ्च कंसकम् ॥ उपधातु र्भवेत् कांस्यं द्वयोस्तरणि
रङ्गयोः ॥ ६६॥ कांसस्य तु गुणा ज्ञेयाः स्वयोनि

सदृशा जनैः॥ संयोगज प्रभावेण तस्यान्येऽपि गुणाः स्मृताः॥ ६७॥ कांस्य कषाय न्तिक्तोष्णं लेखनं विशदं सरम्॥ गुरु नेत्र हितं रूक्षं कफ पित्त हरम्परम्॥ ६८॥

भा० अनन्तर कांसा।] ताम्बे और रांगा से उत्पन्न हुवा प्रसिद्ध है॥ कांस्य घोष कंसक। येह कांसे के नाम हैं॥ कांसा ताम्बा और रांगेंका उपधातु है॥ ६६॥ कांसे के गुण अपने कारण के समान जानने चाहिये॥ संयोगज प्रभाव से उस्के औरभी गुण कहेहैं॥ कांसा कसेला तिक्त उष्ण लेखन सर विषद॥ भारी नेत्रकेहित रूखा कफ पित्तकानाशक है॥ ६८॥

[तथा पीतरि। कांची पीतरि।] पित्तलं त्वार कूटं स्यादारो रीतिश्च कथ्यते॥ राजरीतिः ब्रह्मरीतिः कपिला पिङ्गलापि च॥ ६९॥ रीतिरप्युपधातुः स्यात्ताम्रस्य यसदस्य च॥ पित्तलस्य गुणा ज्ञेयाः स्वयोनि सदृशा जनैः॥ ७०॥ संयोगज प्रभावेण तस्याप्यन्ये गुणाः स्मृताः॥ रीतिका युगलं रूक्षं तिक्तञ्च लवणं रसे॥ ७१॥ शोधनं पाण्डु रोगघ्नं कृमिघ्नं नाति लेखनम्॥

भा० अनन्तर पीतल और कचा पीतल। पित्तल आरकूट आर रीति। येह पीतल के नामहैं॥ और राजरीति ब्रह्मरीतकपिला पिंगला। येह कच्चे पीतल के नाम गुणहैं॥ ६९॥ पीतल भी ताम्बा और जस्तका उ
८१ पधातु है पीतलके गुण अपने कारणके सदृश जानने चाहिये॥ ७०॥ संयोगज के प्रभावसे उस्के और गुण कहते हैं॥ दोनों पीतल रूखे तिक्त लवण रस में हैं॥ ७१॥ और शोधन पाण्डुरोग के नाशक कृमि नाशक

न बहुत लेखन है ॥

अथ सिन्दूर ।] सिन्दूरं रक्तरेणुश्च नागगर्भश्च सीसजम् ॥ सीसोपधातुः सिन्दूरं गुणैस्तत् सीसवन्मतम् ॥ संयोगजप्रभावेण तस्याप्यन्ये गुणाः स्मृताः ॥७३॥ सिन्दूरमुष्णं वीसर्पकुष्ठकण्डु विषापहम् ॥ भग्नसन्धानजननं व्रणशोधनरोपणम् ॥७४॥

भा० अनन्तर सिन्दूर ।] सिन्दूर रक्तरेणु नागगर्भ सीसज । येह सिन्दूर के नामहैं ॥ ७२ ॥ सिन्दूर सीसेका उपधातुहै और गुण शीसेके समान हैं ॥ तथा संयोगजप्रभावसे उस्केभी और गुण कहेहैं ॥ ७३ ॥ सिन्दूर गर्म विसर्प कुष्ठ खुजली इनकानाशक ॥ और टूटहुवे को जोडनेवाला । व्रण शोधन और रोपण है ॥७४॥

अथ शिलाजत ।] तदुत्पत्तिर्नामलक्षणगुणाश्च ।] निदाघे धर्म्मसन्तप्ता धातुसारन्धरा धराः ॥ निर्य्यासवत् प्रमुञ्चन्ति तच्छिलाजतु कीर्त्तितम् ॥७५॥ सौवर्णं राजतन्ताम्रमायसन्तच्चतुर्विधम् ॥

भा० अनन्तर शिलाजीत ।] उस्की उत्पत्ति नाम लक्षण गुण ॥ ग्रीष्म में संतप्तहुवे पर्वत धातुके सार को गोंदके समान छोडतेहैं उस्को शिलाजीत कहतेहैं ॥ ७५ ॥ सोनेका चान्दीका ताम्बेका और लोहेका ऐसे चारप्रकारका वोह होता है ॥

शिलाजत्वद्रिजतु च शैलनिर्य्यास इत्यपि ॥ ॥७६॥ गैरेयमश्मजञ्चापि गिरिजं शैलधातुजम् ॥ शिलाजं कटु तिक्तोष्णं कटुपाकं रसा-

यनम् ॥ ७७ ॥ छेदियोगवहं हन्ति कफमेदाश्म शर्करा: ॥ मूत्रकृच्छ्रं क्षयं श्वासं वाताशींसि च पाण्डुताम् ॥ ७८ ॥ अपस्मारन्तथोन्मादं शोथ कुष्ठोदर कृमीन् ॥ ७९ ॥ सौवर्णन्तु जवा पुष्प वर्णं भवति तद्रसात् ॥ मधुरं कटु तिक्त ञ्च शीतलं कटु पाकि च ॥ ८० ॥ राजतम्पाण्डु रं शीतं कटुकं स्वादु पाकि च ॥ ताम्रं मयूर क ण्ठाभं तीक्ष्णमुष्णञ्च जायते ॥ ८१ ॥ लौहं जटायु पत्राभं तत्तिक्तं लवणम्भवेत् ॥ विपा के कटुकं शीतं सर्व श्रेष्ठमुदाहृतम् ॥ ८२ ॥

भा० शिलाजतु अद्रिजतु शैल निर्य्यास ॥ ७६ ॥ गैरेय अश्मज गिरिज शैलधातुज येह शिलाजीत के नाम हैं ॥ शिलाजीत कडुवा तीता उष्ण पाकमें कटु रसायन है ॥ ७७ ॥ और छेदन करनेवाला तथा योग वाही है। और कफ मेद अश्मरी शर्करा इनको नाश करता है ॥ तथा मूत्र कृच्छ्र क्षय श्वास वातकी ववासीर पाण्डुता ॥ ७८ ॥ मिरगी उन्माद शो थ कुष्ठ रोग उदररोग कृमि इनको नाश करता है ॥ ७९ ॥ सौवर्ण शिलाजी त वर्णमें जवाफूल के समान होताहै ॥ और रसमें मधुर कटु तिक्त शीतल पाकमें कटु होताहै ॥ ८० ॥ चांदीके मेलका शिलाजीत वर्ण में श्वेत शीतल कटु पाकमें मधुर होता है ॥ तांबेका वर्णमें मोरके कंठ के समान तीखा उष्ण होता है ॥ ८१ ॥ लोहे का रंगत में गिद्धके पंख समान होताहै और वोह तिक्त लवण होताहै ॥ तथा पाकमें कटु शीतल और सबमें श्रेष्ठ कहाहै ॥ ८२ ॥

[अथ रस: ।] तत्र रसस्य निरुक्ति: ।]

रसायनार्थिभिर्लोके: पारदो रस्यते यत: ॥

ततो रस इति प्रोक्तः स च धातुरपि स्मृतः ॥८३॥
[अथ पारदस्योत्पत्तिर्लक्षणं नाम गुणाः।]
शिवाङ्गात् प्रच्युतं रेतः पतितं धरणीतले ॥ तद्देहसारजातत्वाच्छुक्लमच्छमभूच्च तत् ॥८४॥
क्षेत्रभेदेन विज्ञेयं शिववीर्य्यं चतुर्विधम् ॥
श्वेतं रक्तं तथा पीतं कृष्णं तत्तु भवेत् क्रमात् ॥
८५॥ ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रश्च खलु जातितः ॥ श्वेतं शस्तं रुजां नाशे रक्तं किल रसायनम् ॥ ८६ ॥ धातुवेधे तथा पीतं खेगतौ कृष्णमेव च ॥ पारदो रसधातुश्च रसेन्द्रश्च महारसः ॥ ८७॥

भा० अनन्तर पारा।] और उसकी निरुक्ति । जिस कारण रसायन चाहनेवाले लोग पारा खाते हैं उसकारण रस इसप्रकार से कहा है और वोह धातुभी कहा गया है ॥ ८३॥ अनन्तर पारेकी उत्पत्ति लक्षण नाम गुण कहते हैं ॥ शिवजी के अंगसे निकला हुवा वीर्य्य पृथ्वीपर गिरा ॥ उन के देह सारसे उत्पन्न होनेसे वोह श्वेत और स्वच्छ हुवा ॥ ८४॥ पारा क्षेत्र भेदसे चारप्रकार काजानना चाहिये ॥ सफेद लाल पीला काला क्रमसे ॥ ८५॥ ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र इनजाति सेहोता है ॥ श्वेत रोगोंके नाशमें प्रशस्तहै । और लाल रसायन ॥ ८६ ॥ धातु वेधमें पीला और और आकाशगमन में काला प्रशस्तहै ॥ पारद रसधातु रसेन्द्र महारस ॥ ८७॥

चपलः शिववीर्य्यञ्च रसः सूतः शिवाह्वयः ॥
पारदः षड्रसः स्निग्धः त्रिदोषघ्नो रसायनः ॥
॥८८ ॥ योगवाही महावृष्यः सदा दृष्टिबलप्रदः॥

सर्वामय हरः प्रोक्तो विशेषात्सर्व्व कुष्ठनुत्॥ ॥ ८९ ॥ स्वस्थोरसो भवेद् ब्रह्मा बद्धो ज्ञेयो जनार्द्दनः ॥ रञ्जितः क्रामितश्चापि साक्षाद्देवो महेश्वरः ॥ ९० ॥ मूर्च्छितो हरति रुजं बन्धनमनुभूयखे गतिं कुरुते ॥ अजरी करोति हि मृतः कोऽन्य करुणा करः सूतात् ॥ ९१ ॥

भा० चपल शिववीर्य्य रससूत शिवनाम येह पारेके नामहैं ॥ पारा छ रससे युक्त चिकना त्रिदोषनाशक रसायन ॥ ८८ ॥ योगवाही अत्यन्त पुत्रको करनेवाला, और दृष्टिवलको देनेवाला है ॥ तथा सब रोगोंका नाशक और विशेषकरके कुष्ट नाशक कहाहै ॥ ८९ ॥ स्वस्थ रस ब्रह्मा होताहै और बन्धाहुवा पारा विष्णु होताहै ॥ रंजित तथा क्रामित साक्षात् महादेव है ॥ ९० ॥ मूर्छित पारा रोगोंको नाश करताहै और बन्धनको जानकर आकाशमें गतिको करताहै ॥ तथा मराहुवा अजर करताहै । इसवास्ते पारेसे सिवाय और कौन करुणाकर है ॥ ९१

असाध्यो यो भवेद्रोगो यस्य नास्ति चिकित्सितम् ॥ रसेन्द्रो हन्ति तं रोगं नर कुञ्जर वाजिनाम् ॥ ९२ ॥ मलं विषं वन्हि गिरित्व चापलं नैसर्गिकं दोष मुशन्ति पारदे ॥ उपाधिजौ द्वौ त्रपु नागयोगजौ दोषौ रसेन्द्रे कथितौ मुनिश्वरैः ॥ ॥ ९३ ॥ मलेन मूर्च्छा मरणं वि षेण दाहोऽग्निना कष्टतरः शरीरे ॥ देहस्य जाड्यं गिरिणा सदास्यात् चाञ्चल्यतो वीर्य्य हतिश्च पुंसाम् ॥ ॥ ९४ ॥ वङ्गेन कुष्ठस्भुजगेन षण्डो भवेद् नो-

ऽसौ परिशोधनीयः॥वन्हिर्विष मलञ्चेति मुख्या दोषा स्त्रयो रसे॥ ९५॥ एते कुर्वन्ति सन्तापं मृतिं मूर्च्छां नृणां क्रमात्॥ अन्येऽपि कथिता दोषा भिषग्भिः पारदे यदि॥ ९६॥ तथाप्येते त्रयो दोषा हरणीया विशेषतः॥ संस्कारहीनं खलु सूतराजं यः सेवते तस्य करोति बाधाम्॥ देहस्य नाशं विदधाति नूनं कष्टांश्च रोगाञ्जनयेन्नराणाम्॥ ९७॥

भा॰ जो रोग असाध्य होजाता है और जिसकी दवा नहीं है॥ उस रोगको और मनुष्य घोड़ा हाथी इनके रोगोंको पारा नाश करता है॥ ९२॥ मल विष वन्हि गिरि त्वचपलता ये पारेमें नैसर्गिक दोष कहे हैं॥ दो उपाधि सीसा और रांगा इनके योगसे उत्पन्न हुवे दोष पारेमें मुनिश्वरोंने कहाहै॥ ॥ ९३॥ मलसे मूर्च्छा विषसे मरण अग्निसे शरीर में अत्यन्त कठिन दाह गिरिसे देहमें सदा जड़ता होती है और चंचलता से मनुष्यों के वीर्य्य का नाश होताहै॥ ९४॥ रांगेसे कोढ़ सीसे से नपुंसकता होती है। इसवास्ते येह पारा शोधने योग्यहै॥ पारेमें तीन दोष मुख्य हैं वन्हि विष और मल॥ ९५॥ येह दोष मनुष्यों को क्रमसे सन्ताप मृत्यु मूर्च्छा करते हैं॥ यदि औरभी दोषवैद्यों ने पारेमें कहेहैं॥ ९६॥ परंतु तथापि येह तीन दोष विशेष कर के दूर करने चाहियें॥ संस्कार हीन पारेको जो सेवन करताहै उस्कोबाधा करताहै॥ और मनुष्यों की देहका नाश करताहै तथा अत्यन्त कष्ट साध्य रोगोंको भी करताहै॥ ९७॥

अथोपरसानां लक्षणम्।] गन्धो हिङ्गुलमभ्र तालकं शिलाः स्रोतोऽञ्जनटङ्कणम्॥ राजावर्त्तकचुम्बको स्फटिकया शङ्खः खटी गैरिकम्

कासीसं रसकर्पूर सिकता बोलाश्च कङ्कुष्ठकम् ॥ सौराष्ट्री च मता अमी उपरसाः सूतस्य किञ्चिद्गुणैः ॥ ६२ ॥ (उपरसा गौणा रसाः।)

[हिङ्गुलस्य नामानि लक्षणं गुणाश्च।

हिङ्गुलन्दरदं म्लेच्छ मिङ्गुलम्पूर्णपारदम् ॥ दरद स्त्रिविधः प्रोक्त श्चर्म्मारः शुकतुण्डकः ॥ ६३ ॥ हंसपादस्तृतीयः स्याद्गुणवानुत्तरोत्तरम् ॥ चर्म्मारः शुक्लवर्णः स्यात् सपीतः शुकतुण्डकः ॥ ६४ ॥ जवाकुसुम सङ्काशो हंसपादो महोत्तमः ॥ तिक्तं कषायं कटु हिङ्गुलं स्यान्नेत्रामयघ्नङ्कफ पित्तहारि ॥ हृल्लासकुष्ठज्वर कामलांश्च प्लीहामवातौ च गरन्निहन्ति ॥ ६५ ऊर्द्ध्वपातन युक्त्या तु डमरु यन्त्रपाचितम् ॥ हिङ्गुलन्तस्य सूतन्तु शुद्धमेवं न शोधयेत् ॥ ६६

भा० अनन्तर उपरसोंका लक्षण ॥ गन्धक सिंगरफ अभ्रक हरताल मनसिल सुरमा सुहागा ॥ रेह चुम्बक पत्थर बिल्लोर पारव खड़िया माटी गेरू ॥ ६० ॥ हीरा कसीस रसकपूर कौड़ी रेत बो ल इसको फूल सत्वभी कहतेहैं पहाड़ीमट्टी ॥ सोरठीमाटी येह उपरस कहेगयेहैं ॥ पारेका कुछ एक गुण इनमें होता है ॥ ६२ ॥

उपरस अर्थात् गौण रस।] सिंगरफ के नाम और गुण ॥ हिंगुल दरद म्लेच्छ इंगुल पूर्णपारद । येह सिंगरफके नाम हैं ॥ सिंगरफ तीन प्रकारका होताहै ॥ चर्म्मार शुक तुंडक ॥ ६३॥ और तीसरा हंसपाद । येह उत्तरोत्तर गुणमें अधिक ॥ चर्म्मार सफ़ेद होताहै । और पीलाई के सहित शुकतुंडक होताहै ॥ ६४॥ हंसपाद जवा फूल के समान

होताहै। वोह बहुत उत्तम है ॥ तिक्त कसैला कडुवा हिंगुल होता है ॥ और नेत्र रोगका नाशक तथा कफ पित्तका नाशक होता है ॥ और हृल्लास कुष्ठ ज्वर कामला इनको तथा पित्तही आमवात और विष इनको भी नाश करता है ॥ ९५॥ ऊर्ध्व पातनकी युक्ति से अथवा डमरुयंत्र से पकाया हुवा ॥ हिंगुल उस्का पारा इसप्रकार सिद्ध होताहै इसको नशोधन करें ॥ ९६॥

[अथगन्धकस्योत्पत्ति नाम लक्षण गुणाश्च]

श्वेत द्वीपे पुरा देव्याः क्रीडन्त्या रजसा प्लुतम् ॥ दुकूलन्ते न वस्त्रेण स्नातायाः क्षीर नीरधौ ॥ ९७॥ प्रसृतं यद्रज स्तस्मात् गन्धकः समभूत्ततः ॥ गन्धको गन्धकश्चापि गन्धपाषाण इत्यपि ॥ ९८॥ सौगन्धिकश्च कथितो बलिर्बलरसापिच ॥ चतुर्द्धा गन्धकः प्रोक्तो रक्तः पितः सितोऽसितः ॥ ९९॥ रक्तं हेमक्रियासु चारकः पीत श्वेतो रसायने ॥ व्रणादि लेपने श्वेतः कृष्णः श्रेष्ठः सुदुर्लभः ॥ १००॥

भा॰ अनन्तर गन्धक की उत्पत्ति और नाम लक्षण गुणों को कहतेहैं ॥ श्वेत द्वीपमें पहिले क्रीडा करती हुई पार्वतीजीका कपड़ा रजसे सन गया था उस कपड़े से ॥ क्षीर सागर में स्नान करती हुई का उस साढ़ी से जो रज फैला उससे गन्धक हुवा। गन्धक गान्धिक गन्धपाषाण ॥ ९८॥ सौगन्धिक बलि बलरस येह गन्धक के नामहैं ॥ गन्धक चार प्रकार का होता है लाल पीला सुफेद काला ॥ ९९॥ लाल सुवर्ण क्रियामें काम आताहै ॥ और पीला सुफ़ेद रसायन में कहाहै ॥ और घाव आदि के लेपमें सुफ़ेद तथा काला श्रेष्ठ होताहै वोह दुर्लभ है ॥ १००॥

(श्रेष्ठः हेमक्रिया दिषु सर्वत्र प्रशस्त नरः,)

गन्धकः कटुक स्तिक्तो वीर्य्योष्ण स्तुवरः सरः ॥

पित्तलः कटुकः पाके कण्डू वीसर्प जन्तुजित् ॥ २०१॥
हन्ति कुष्ठ क्षय प्लीह कफ वातान् रसायनः ॥ अ-
शोधितो गन्धक एष कुष्ठं करोति तापं विषमं शरी-
रे ॥ २०२ ॥ शोषञ्च रूपञ्च बलं तथौजः शुक्रं
निहन्त्येव करोति चास्रम् ॥

भा० (श्रेष्ठसुवर्ण क्रियादि में सब जगह में सुप्रोक्त तरहै)
गन्धक कटु तिक्त वीर्य्य में उष्ण कसेला सर होताहै ॥
पित्त को करनेवाला पाक में कटु और खुजली वीसर्प कृमि इनकोजीतनेवा
ला है ॥ २०१ ॥ और कुष्ठ क्षय पिलही कफ वात इनको नाश करता है तथा
रसायन है ॥ बिन सुधा हुवा यह गन्धक कुष्ठको और विषम सन्तापको
शरीरमें करताहै ॥ २०२ ॥ शोष रूप बल तथा ओज शुक्र इनको नाश
करताहै और रक्तको करता है ॥

[अथाभ्रकस्योत्पत्तिर्नाम लक्षण गुणा श्च ।]

पुरा वधाय वृत्रस्य वज्रिणा वज्रमुद्धृतम् ॥ वि
स्फुलिङ्गास्ततस्तस्य गगने परिसर्पिताः॥ २०३॥
ते निपेतुर्घनध्वानाच्छिखरेषु महीभृताम् ॥ ते
भ्य एव समुत्पन्नं तत्तद्गिरिषु चाभ्रकम् ॥ २०४
तद्वज्रं वज्रपातत्वाद भ्रमभ्र रवोद्भवात् ॥ गग
नात् स्खलितं यस्माद गगनञ्च ततो मतम् ॥ २०५
विप्र क्षत्रिय विट् शूद्र भेदात्तत् स्याच्चतुर्विधः ॥

भा० अनन्तर अभ्रक की उत्पत्ति नाम लक्षण और गुणकोकहते हैं ॥
पहिले इन्द्रने वृत्तासुर को मारने केवास्ते वज्र उठाया ॥ उससे उसके चिं
गारे आकाशमें फैलगये ॥ २०३ ॥ बबादलके गरज से पहाड़ों कीचोटी
पर गिरे ॥ उसी सेउन २ पहाड़ोंमें अभ्रक उत्पन्नहुवा ॥ २०४ ॥ सोह

वज्र सेउत्पन्न होनेसे और अभ्र बादलों के गर्ज सेउत्पन्न होनेसे तथा आकाश से गिरनेसे गगन माना है ॥ २०५॥ ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र इन भेदोंसे वोह चार प्रकार का होताहै ॥

क्रमेणैवा सितं रक्तं पीतं कृष्णञ्च वर्णतः॥ २०६

प्रशस्यते सितन्तारं रक्तं तत्तु रसायने॥ पीतं हेमनि कृष्णन्तु गदेषु द्रुतये ऽपि च ॥ २०७॥ पिनाकं दर्दुरं नागं वज्रञ्चेति चतुर्विधम्॥ मुञ्चत्यग्नौ विनिक्षिप्तं पिनाकन्दल सञ्चयम् ॥ २०८॥ अज्ञानाद्भक्षणं तस्य महाकुष्ठ प्रदायकम्॥ दर्दुरं त्वग्निनिःक्षिप्तं कुरुते दर्दुर ध्वनिम् ॥ २०९॥ गोलकान्बहुशः कृत्वा सस्यान मृत्यु प्रदायकः॥

भा० क्रमसे सफेद लाल पीला काला इन चार वर्णों से चार जातिका है ॥ २०६॥ सफेद चांदीमें प्रशस्त है और रक्त रसायन में प्रशस्त है ॥ तथा पीला सोनेमें और काला रोगमें तथा गलानेमें भी प्रशस्त है ॥ २०७ पिनाक दर्दुर नाग वज्र ऐसे चार प्रकारका अभ्रक होताहै ॥ पिनाक आगमें डालने से पत्र २ अलग होजाताहैं ॥ २०८॥ विनजाने उसको खाने से महाकुष्ठ उत्पन्न होता है ॥ दर्दुर आगमें डालने से दर्दुर शब्दको करताहै ॥ २०९॥ बहुत से गोलकों को करके वोह मृत्युदायक होताहै ॥ नाग अभ्रक सर्पके समान अग्निमें फूतकार शब्दोंको करताहै ॥ उसको खाने से अवश्य भगंदर होताहै ॥ २१०॥

नागन्तु नागवद्वन्हौ फुत्कारं परिमुञ्चति॥
स तद्भक्षितं वश्यन्तु विदधाति भगन्दरम् ॥२१०॥
वज्रन्तु वज्रवत्तिष्ठेत्तन्नाग्नौ विकृतिं व्रजेत्॥ सर्वाभ्रेषु वरं वज्रं व्याधि वार्द्धक्य मृत्यु हृत् ॥२११॥

अभ्र मुत्तर शैलोत्थं बहुसत्वं गुणाधिकम् ॥ दक्षिणाद्रि भवं स्वल्प सत्व मल्प गुण प्रदम् ॥ २२२॥ अभ्र कषायं मधुरं सुशीत मायुष्करं धातु विवर्द्धनञ्च ॥ हन्यात् त्रिदोषं व्रण मेह कुष्ठ प्लीहोदरं ग्रन्थि विष कृमींश्च ॥ २२३॥ रोगान् हन्ति दृढ़यति वपु वीर्य्य वृद्धिं विधत्ते ॥ तारुण्याढ्यं रमयति शतं योषितां नित्यमेव ॥ २२४॥ दीर्घायुष्कान् जनयति सुतान् विक्रमैः सिंह तुल्यान् ॥ मृत्योर्भीतिं हरति सततं सेव्यमानं मृताभ्रम् ॥ २२५॥ पीड़ां विधत्ते विविधां नराणां कुष्ठं क्षयं पाण्डु गदञ्च शोथम् ॥ हृत्पार्श्व पीड़ाञ्च करोत्य शुद्ध मभ्रञ्च सिद्धं गुरुता प्रदं स्यात् ॥ २२६॥

भा० वज्र अग्निमें वज्रके समान ठहरता है वोह अग्निमें विकारको नहीं प्राप्त होता। सब अभ्रकों में वज्र श्रेष्ठहै वोह रोग बुढ़ापा और मृत्यु इनका नाशक है ॥ २२१॥ उत्तर दिशाके पहाड़ों में उत्पन्न हुवा अभ्रक अधिक सत्वसे युक्त गुणमें अधिक होता है ॥ दक्षिण के पहाड़ोंमें उत्पन्न हुवा थोड़े सत्व वाला और अल्पगुणको देनेवाला है ॥ २२२॥ अभ्रक कसैला मधुर शीतल आयुको करनेवाला धातुको बढ़ानेवाला होताहै ॥ और त्रिदोष व्रण प्रमेह कुष्ठ प्लीहोदर ग्रन्थि विष कृमि इनको नाश करता है ॥ २२३॥ सेवन किया हुवा अभ्रक का भस्म रोगों को नाश करता है ॥ शरीर को दृढ़ करताहै और शुक्र की वृद्धि को करता है ॥

तारुण्य से भरी हुई सौ स्त्रियों को भोग करता है इसके सेवन करनेवाला मनुष्य वृद्धभी तारुण्यता को प्राप्त होता है ॥ २२४॥

सिंहके समान पराक्रम वाले और दीर्घ आयुवाले पुत्रों को उत्पन्न करता है

और मृत्यु के भय को दूर करता है ॥ ११५॥ विन सुधा हुवा और असिद्ध अभ्रक मनुष्यों को नाना प्रकारकी पीड़ा को करता है और कुष्ठ वाय पाण्डु रोग सूजन । हृदय पसली की पीड़ा इनकोकरता है तथा भारीपन और सन्ताप इनको भी करने वाला है ॥ ११६॥

[अथ हरितालस्य नामानि लक्षणं गुणाश्च। हरितालं तु तालंस्या दालं तालक मित्यपि ॥ हरितालं द्विधा प्रोक्तं पत्राख्यं पिण्ड संज्ञकम् ॥ ११७॥ तयो राद्यं गुणैः श्रेष्ठं ततो हीन गुणं परम् ॥ स्वर्णे वर्णं गुरु स्निग्धं सपत्रं चाभ्रपत्रवत् ॥ ११८॥ पत्राख्यं तालकं विद्या द्गुणाढ्यं तद्रसायनम् ॥ निष्पत्रं पिण्ड सदृशं स्वल्प सत्वं तथा गुरु ॥ ११९॥ स्त्री पुष्प हारकं स्वल्प गुणं तत पिण्ड तालकम् ॥ हरितालं कटु स्निग्धं कषायोष्णं हरेद्विषम् ॥ १२०॥ कण्डु कुष्ठास्य रोगास्त्र कफ पित्त कच व्रणान् ॥ हरति च हरिताल ञ्चारुतां देहजानाम् । सृजति च बहु तापा मङ्ग सङ्कोच पीड़ाम् ॥ वितरति कफ वातौ कुष्ठ रोगं विदध्या । दिद मपि न मशुद्धम् मारितञ्चाप्य सम्यक् ॥ १२१॥

भा० अनन्तर हरिताल के नाम और लक्षणों को कहते हैं ॥ हरिताल ताल आल तालक येह हरिताल के नाम हैं ॥ हरिताल दो प्रकार का होता है एक वरकी दूसरा गोवरिया ॥ ११७ ॥ उनमें पहिला गुण में—

श्रेष्ठहै और दूसरा हीन गुणहै ॥ रंगमें सोनेके समान भारी चिकना और व रक के सहित अभ्रक के वरके के समान जो होताहै ॥ २१८ ॥ उसको वर-की हरिताल जानना चाहिये वोह गुणमें अधिक और रसायन है ॥ वे वरक पिंड के समान थोड़े सत्ववाला तथा भारी ॥ २१९ ॥ स्त्रीके रजका नाशक वोह पिंड हरिताल गुणमें न्यून होतीहै ॥ हरिताल कड़वी चिकनी कसैली गरम होतीहै और विष ॥ २२० ॥ खुजली कुष्ठ मुखरोग रक्त कफ पित्त कच व्रण इनको नाश करतीहै ॥ अशुद्ध और अच्छीतरह वफुकीहुई हरताल खाईहुई देहकी सुन्दरता को नाश करतीहै और अधिक सन्ताप शरीर का संकोच पीड़ा इनको करती है कफ वात बढ़ के कुष्ठ रोगको करते हैं ॥ २२ ॥

[अथ मनःशिलानामानि गुणाश्च]

मनःशिला मनोगुप्ता मनोह्वा नागजिह्विका ॥
नैपाली कुनटी गोला शिला दिव्यौषधिः स्मृता ॥
॥ २२३ ॥ मनःशिला गुरुर्वर्ण्या सरोष्णा लेखनी
कटुः ॥ तिक्ता स्निग्धा विषश्वास कासभूत कफा
स्रनुत् ॥ २२४ ॥ मनःशिला मन्द बलं करोति ज-
न्तुं ध्रुवं शोधनमन्तरेण ॥ मलानुबन्धं किल मू
त्ररोधं सशर्करं कृच्छ्रगदञ्च कुर्य्यात् ॥ २२५ ॥

भा० अनन्तर मैनशिल के नाम और गुण कहतेहैं ॥ मनःशिला मनोगु प्ता मनोह्वा नागजिह्विका ॥ नैपाली कुनटी गोला शिलादिव्यौषधि यह मैनसिल के नाम कहेहैं ॥ २२३ ॥ मैनसिल भारी वर्णको अच्छा करनेवाली सर उष्ण लेखनी कड़वी ॥ तिक्त चिकनी होतीहै और विष श्वास कास भूत कफ रक्त इनको नाश करनेवाली है ॥ २२४ ॥ शोधन के विना मैनसिल बलको कम करतीहै और निश्चय कृमिकोकर तीहै ॥ तथा क़बज़ियत मलका नहोना शर्कराके सहित मूत्र कृच्छ्र को करतीहै ॥ २२५ ॥

[अथ सुरमा। सौवीर।]

अञ्जनं यामुनञ्चापि कापोताञ्जन मित्यपि॥
तत्तु स्रोतोऽञ्जनं कृष्णं सौवीरं श्वेतमीरितम्॥२२६॥
वल्मीकशिखराकारं भिन्नमञ्जन सन्निभम्॥
घृष्टन्तु गैरिकाकार मेतत् स्रोतोऽञ्जनस्मृतम्॥
२२७॥ स्रोतोऽञ्जन समं ज्ञेयं सौवीरन्तत्तु पाण्डुर
म्॥ स्रोतोऽञ्जनं स्मृतं स्वादु चक्षुष्यं कफ पित्त
नुत्॥ २२८॥ कषायं लेखनं स्निग्धं ग्राहि छर्दि
विषापहम्॥ सिध्मक्षयास्र हृच्छीतं सेवनीयं
सदाबुधैः॥२२९॥ स्रोतोञ्जन गुणाः सर्वे सौवी
रे पि मता बुधैः॥ किन्तु द्वयोरञ्जनयोः श्रे-
ष्ठं स्रोतोऽञ्जनं स्मृतम्॥ २३०॥

भा० अनन्तर सुरमा॥ अंजन यामुन कापोतअंजन येहभी सुरमें के नाम हैं॥ उस्में कालेसुरमे को स्रोतोंजन और सफ़ेद को सौवीर कहाहै॥ ॥२२६॥ बमई से शिखराकार भिन्नकाजल के समान होता है और घिसनेसे गेरूके आकार होताहै इसको स्रोतोंजन कहाहै॥२२७॥ स्रोतोंजन के समान सौवीर कोजानना चाहिये येह सफ़ेद होताहै॥ काला सुरमा मधुर नेत्रके हित कफ पित्तका नाशक॥ २२८॥ कसैला लेखन चिकना क़ाबिज़ वमन विषका नाशक होताहै॥ और सिध्म क्षय रक्तका दूर करनेवाला शीतल होता है और विद्वानों के द्वारा सदा सेवन करने के योग्यहै॥२२९॥ कालेसुरमें के सब गुण सफ़ेद सुरमें में भी पंडितोंने मानेहैं॥ परन्तु दोनों अंजनों में काला अंजन श्रेष्ठ कहाहै॥ २३०॥

[अथ सोहागा।] टङ्कणोऽग्नि करो रूक्षः कफ
घ्नो वात पित्तकृत्॥ अस्य मुपरसत्वात पुनरुक्तः।
अथ फिटकरी। स्फटी च स्फटिका प्रोक्ता श्वेता

शुभ्राच रङ्गदा ॥ दृढरङ्गा रङ्गदा च दृढारङ्गापि कथ्यते ॥ २३१ ॥ स्फटिका तु कषायोष्णा वातपित्तकफव्रणान् ॥ निहन्ति श्वित्रवीसर्पान् योनि सङ्कोचकारिणी ॥ २३२ ॥

भा० अनन्तर सोहागा । सोहागा अग्निको करनेवाला रूखा कफका नाशक वात पित्तको करने वाला है । इसकी उपरस होनेसे फिरसे कहा ॥ अनन्तर फिटकरी । स्फटि स्फटिका श्वेता शुभ्रा रंगदा ॥ दृढरङ्गा रङ्गदा भी और दृढा तथा रंगा भी येह करी फिटकरी के नाम कहे हैं ॥ २३१॥ फिट कसैली गरम होतीहै और वात पित्त कफ व्रण इनको नाश करती है ॥ तथा श्वित्र वीसर्पको भी नाश करती हैं और योनिको सङ्कोच करने वाली है ॥२३२

[अथ रेवटी ।] राजावर्त्तः कटुस्तिक्तः शिशिरः पित्तनाशनः ॥ राजावर्त्तः प्रमेहघ्नः छर्दि हिक्का निवारणः ॥ २३३ ॥ अथ चुम्बकः। चुम्बकः कान्तपाषाणो यः कान्तो लोहकर्षकः ॥ चुम्बको लेखनः शीतो मेदो विषगरापहः ॥ २३४॥

[गेरु सुवर्णगेरू।] गैरिकं रक्तं धातुश्च गैरेयं गिरिजं तथा ॥ सुवर्णगैरिकन्त्वन्यत्ततो रक्ततरं हितम् ॥२३५॥ गैरिकं द्वितयं स्निग्धं मधुरं तुवरं हिमम् ॥ चक्षुष्यं दाहपित्तास्त्र कफहिक्का विषापहम् ॥ २३६ ॥

भा० अनन्तर रेवटी ॥ राजावर्त्त कडवी तिक्त शीतल पित्त नाशक है ॥ राजावर्त्त प्रमेह नाशक और वमन हिचकी इनको दूर करने वाली है ॥ २३३ ॥ [अनन्तर लोह चुम्बक ।] चुम्बक कान्त पाषाण अयः कान्त लोह हर्षक । येह लोहचुम्बक के नाम हैं ॥ । चुम्बक

लेखन शीतल और पीतभेद विषगर इनका नाशकहै ॥ २३४ ॥
अनन्तर गेरू और सोना गेरू ॥ गैरिक रक्तधातु गैरेय गिरिज येह गेरू के नामहैं ॥ सोनागेरू उससे दूसरा होताहै । और वोह बहुत लाल होता है ॥ २३५ ॥ दोनों गेरू चिकने मधुर कसैले शीतल ॥ नेत्रके हित और दाह रक्त पित्त कफ हिचकी विष इनके नाशक हैं ॥ २३६ ॥

[अथ खरी गोरखरी।]

खटिका कठिनी चापि लेखनी च निगद्यते ॥ खटिका दाह जिच्छीता मधुरा विष शोथ जित् २३७ लेपादे तद्गुणा प्रोक्ता भक्षिता मृत्तिकासमा ॥ खटी गौरखटी द्वे च गुणैस्तुल्ये प्रकीर्तिते ॥ २३८ ॥

[अथ वालू।] वालुका सिकता प्रोक्ता शर्करा रेतजापिच ॥ वालुका लेखनी शीता व्रणोरःक्षत नाशिनी ॥ २३९ ॥

भा० अनन्तर खड़िया और सफ़ेद खड़िया। खटिका खट नीलेखनी येह खड़िया के नामहैं ॥ खड़िया दाह को जीतनेवाली शीतल मधुर। और विष शोथको जीतने वाली है ॥ २३७ ॥ लेपसे येह कहे हुवे गुण होतेहैं। और खानेसे मट्टीके समान होती है ॥ खड़िया और सफेद खड़िया दोनों गुणमें समान कहेहैं ॥ २३८ ॥
अनन्तर रेत। वालुका सिकता शर्करा रेतजा। येह वालूके नामहैं ॥ वालू लेखन शीतल है और व्रण उर क्षत। इनको नाश करने वाली है ॥ २३९ ॥

खपरीश्चातुत्थभेदः। खर्प्परी तुत्थकं तुत्थादन्यत्तु रसकं स्मृतम् ॥ ये गुणाः तुत्थके प्रोक्तास्ते गुणाः रसके स्मृताः ॥ २४० ॥

[काशीस माङ्गफूल। काशीशं धातुकाशीशं

पांशुकाशीश मित्यपि ॥ तदेव किञ्चित्पीतन्तु पुष्पकाशीश मुच्यते ॥ २४१ ॥ काशीश मम्ल मुष्णञ्च तिक्तञ्च तुवरं तथा ॥ वातश्लेष्महरं केश्यं नेत्रकण्डू विषप्रणुत् ॥ २४२ ॥ मूत्रकृच्छ्राश्मरी श्वित्र नाशनं परि कीर्त्तितम् ॥ [अथ सौराष्ट्री माटी ।] सौराष्ट्री तुवरी कांक्षी मृतालक सुराष्ट्रजे ॥ २४३ ॥ आढकी चापि सा ख्याता मृत्स्ना च सुरमृत्तिका ॥ स्फटिकाया गुणाः सर्वे सौराष्ट्या अपि कीर्त्तिताः ॥ २४४ ॥

भा० अनन्तर खपरिया यह लीला थोथे का भेद है ॥ खर्परी तुत्थक है इस्से दूसरी को रसक कहा है ॥ जो गुण लीले थोथे में कहे हैं वो ही गुण खपरीया में कहे हैं ॥ २४० ॥ [कसीस माङ्ग फूल ।] काशीश धातुकाशीश पांशुकाशीश । येह कसीस के नाम हैं ॥ वोही कुछ एक पीली को पुष्य कासीस कहते हैं ॥ २४१ ॥ कसीस खट्टी गरम तिक्त तथा कसैली ॥ और वात पित्त कफ की नाशक केश के हित तथा नेत्र, खुजली विष इनकी नाशक है ॥ २४२ ॥ और मूत्र पथरी श्वित्र कुष्ठ इनकी नाशक कही गई है ॥ ॥ [अनन्तर सोरठी माटी । सौराष्ट्री तुवरी कांक्षी मृत्तालक सुराष्ट्रजा ॥ २४३ ॥ आढ़की भी वोह कही गई है और मृत्स्ना तथा सुरमृत्तिका ॥ येह भी उस्के नाम हैं । स्फटिक के सब गुण सोरठी में कहे हैं ॥ २४४ ॥ [अथ कर्दमः ।]

कर्दमो दाह पित्तार्त्ति शोथघ्नः शीतलः सरः ॥ २४५ ॥ [अथ बोल । बोल इन्ध रसं प्राणः पिण्ड गोप रसाः समाः ॥ बोलं रक्तहरं शीतं मेध्यन्दीपन पाचनम् ॥ मधुरङ्कटु तिक्तञ्च

दाह स्वेद त्रिदोषजित् ॥ २५६॥ ज्वरापस्मार कुष्ठ
घ्नं गर्भाशय विशुद्धिकृत् ॥

भा० अनन्तर कालीमाटी । काली माटी दात दाह प्रदर कफ पित्त इन को नाशक है ॥ [अनन्तर कीचड़ । कीचड़ दाह पित्त पीड़ा सूजन इनकी नाशक शीतल सरहै ॥ २५५॥ अनन्तर बोल । बोल गन्ध रस प्राण । पिंड गोप रस सम यह बोलके नामहैं ॥ बोल रक्त नाशक शीतल मेधा को करनेवाला दीपन पाचन ॥ मधुर कटु तिक्त और दाह पसीना तथा त्रिदोष इनको जीतनेवाला है ॥ २५६॥ औरज्वर मिरगी कुष्ठ इनका नाशक और गर्भाशय को शुद्ध करनेवाला होता है ॥

[अथ कङ्कुष्ठोत्पत्ति लक्षण नाम गुणाः।
हिमवत् पाद शिखरे कङ्कुष्ठ मुपजायते ॥ तत्रै
कं रक्तकालंस्या त्तदन्य दण्डकं स्मृतम् ॥२५८॥
पीत प्रभं गुरु स्निग्धं श्रेष्ठ कुङ्कुष्ठ मादिशेत् ॥
श्यामं पीतं लघु त्यक्तं सत्वन्नेष्टन्तथाण्डकम् ॥
२५९ ॥ कङ्कुष्ठं काक कुष्ठञ्च वराङ्गं कोलका
कुलम् ॥ कङ्कुष्ठं रेचनन्तिक्तं कटूष्णं वर्णकार
कम् ॥ २६०॥ कृमि शोथोदराध्मान गुल्मानाह
कफापहम् ॥

भा० अनन्तर कंकुष्ठ यह एक क़िसमकी पहाड़ीमट्टी है उस्की उत्पत्ति लक्षण नाम गुण कहतेहैं ॥ हिमाचल पर कंकुष्ठ होताहै ॥ उस में एक रक्त काला होता है । और उससे दूसरा अंडक कहा गया है २५८ पीला भारी चिकना ऐसेको श्रेष्ठ कंकुष्ठ कहतेहैं ॥ और काला पीला हलका और वे सत्त यह अच्छा नहीं इसको अंडक कहते हैं ॥२५९॥ कंकुष्ठ काककुष्ठ वराङ्ग कोलकाकुल । यह कंकुष्ठ के नाम हैं ॥

कंकुष्ठ रेचन तिक्त कटु उष्णवर्णीको करनेवाला ॥ २५० ॥ और कामिस्रूजन उदर आध्मान वायगोला अफारा कफ इनका नाशक है ॥

[अथ रत्नस्य निरुक्तिः।]

धनार्थिनो जनाः सर्वे रमन्तेऽस्मिन् अतीव यत्
ततो रत्नमिति प्रोक्तं शब्द शास्त्र विशारदैः॥
२५१॥ ॥ अथ रत्नस्य नामानि स्वरूपगाञ्च।
रत्नं क्लीवे मणिः पुंसि स्त्रियामपि निगद्यते॥
तत्तु पाषाण भेदोऽस्ति मुक्तादि च तदुच्यते।२५२॥
तथा– [चामर सिंहः।] रत्नं मणिर्द्वयोरश्म जा-
तो मुक्तादि केऽपिच॥

भा० अनन्तर रत्नकी निरुक्ति ॥ धनार्थि सबलोग जिस्से अधिक करके रमतेहैं ॥ इसवास्ते व्याकरण के पंडितों ने रत्न ऐसा कहाहै २५१ अनन्तर रत्नके नाम और लक्षण निरूपण ॥ रत्न नपुंसक में और मणि पुलिंगमें तथा स्त्रीलिंग में भी होताहै ॥ २५२ ॥ वोह पाषाण का भेद है और मुक्तादिक को कहताहूं ॥ उस प्रकार अमरसिंहने कहाहै ॥ रत्न मणि यह दोनों पथ्थर की जातिहैं ॥ और मुक्तादिक में भी होताहै ॥

अथ रत्नानां निरूपणम्।] रत्नं गारुत्मतं पुष्पं
रागो माणिक्य मेवच ॥ इन्द्र नीलश्च गोमेद स्त-
था वैडूर्य्य मित्यपि ॥२५३॥ मौक्तिकं विद्रुमश्चे
ति रत्नान्युक्तानि वै नव ॥

(क) रत्नं हीरा। गारुत्मतं पन्ना। माणिक्यं पद्मरा
गः। इन्द्रनीलः लीला।

[विष्णु धर्म्मोत्तरेऽपि नव रत्न निरूपणम्।]

मुक्ताफलं हीरकञ्च वैडूर्य्यं पद्मरागकम् ॥ पुष्प
रागञ्च गोमेदं नीलङ्गारुत्म नन्तथा ॥ २५४ ॥
प्रवाल युक्ता न्येतानि महा रत्नानि वै नव ॥
तत्र हीरकं हीरा इति लोके। तस्य नाम लक्षणं गुणांश्च।
हीरकः पुंसि वज्रो ऽस्त्री चन्द्रोमणि वरश्च सः।
सतु श्वेतः स्मृतो विप्रो लोहितः क्षत्रियः स्मृतः॥
२५५॥ पीतो वैश्यो ऽसितः शूद्रश्चतुर्वर्णात्मक
श्च सः॥ रसायने मतो विप्रः सर्व सिद्धि प्रदायकः
॥ २५६॥ क्षत्रियो व्याधि विध्वंसी जरा मृत्यु हरः
स्मृतः॥ वैश्यो धन प्रदः प्रोक्तः तथा देहस्य दा-
र्ढ्य कृत् ॥ २५७॥ शूद्रो नाशयति व्याधीन् वय
स्तम्भं करोति च ॥ पुंस्त्री नपुंसकानीह लक्षणी
यानि लक्षणैः॥ २५८॥ सुवृत्ताः फल सम्पूर्णास्ते
जो युक्ता बृहत्तराः॥ पुरुषास्ते समाख्याता रेखा
विन्दु विवर्ज्जिताः॥ २५९॥ रेखाविन्दु समायु-
क्ताः षड्स्रास्ते स्त्रियः स्मृताः॥

भा० अनन्तर रत्नादिकों का निरूपण ॥ रत्न, गारुत्मत पुष्पराग
और माणिक्य भी। नीलम गोमेद तथा वैडूर्य्य यह ॥ २५३॥ और
मोती मूंगा। इस प्रकार यह नव रत्न कहेहैं ॥
(क०) रत्न हीरा। गारुत्मत पन्ना। मांनीक नीलम॥ विष्णुधर्म्मो
त्तरमें भी नवरत्न कहेहैं ॥ मोती हीरा वैडूर्य्य मानीक। पुखराज गोमे
द नीलम पन्ना ॥ २५४॥ और मूंगा यह नव महारत्न हैं ॥ उसमें हीरक
हीरा इस प्रकार लोकमें प्रसिद्ध है ॥ उसके नाम लक्षण और गुण कहतेहैं

हीरक पुल्लिंगमें और वज्र नपुंसकमें होनाहै चन्द्रमणि वर यह हीरे के नामहैं ॥ वोह श्वेत ब्राह्मण कहा गयाहै और लाल क्षत्रिय कहा गया है ॥ २५५ ॥ पीला वैश्य और काला शूद्र ऐसे हीरा चार वर्ण का होता है ॥ रसायन में ब्राह्मण और सब सिद्धियों को देनेवाला है ॥ २५६ ॥ क्षत्रिय रोग नाशक और बुढ़ापा तथा मृत्युका नाशक ॥ वैश्य धन देनेवाला कहाहै तथा शरीर की दृढ़ता करनेवालाहै ॥ २५७ ॥ शूद्र रोगोंको नाशकरताहै और वयको स्थापन करता है ॥ इसमें स्त्री पुरुष और नपुंसक इन के लक्षण होतेहैं ॥ २५८ ॥ अच्छे गोल सब फल वाले तेजो युक्त बहुत बड़े । और रेखा विन्दु से रहित ऐसे हीरे पुरुष कहे गयेहैं ॥ २५९ ॥ और रेखा विन्दुसे युक्त छ कौनवाले वे स्त्री कहे गयेहैं ॥

त्रिकोणाश्च सुदीर्घास्ते विज्ञेयाश्च नपुंसकाः॥ तेषु स्युः पुरुषाः श्रेष्ठा रसबन्धन कारिणः॥२६०॥ स्त्रियः कुर्वन्ति कायस्य कान्तिं स्त्रीणां सुखप्रदाः। नपुंसकास्त्ववीर्य्याः स्यु रकामाः सत्व वर्जिताः॥ २६१॥ स्त्रियः स्त्रीभ्यः प्रदातव्याः क्लीवं क्लीवे प्रयोजयेत ॥ सर्वेभ्यः सर्वदा देयाः पुरुषाः वीर्य्यवर्द्धनाः॥ २६२॥ अशुद्धं कुरुते वज्रं कुष्ठं पार्श्वव्यथान्तथा ॥ पाण्डुताम्पङ्गुरत्वञ्च तस्मात् संशोध्य मारयेत ॥ २६३॥

भा० त्रिकोण और अच्छे लम्बे वे नपुंसक जानने चाहियें ॥ उनमें पुरुष श्रेष्ठहैं और वे पारेको बान्धनेवाले हैं ॥ २६० ॥ स्त्री जातिके हीरे शरीर की कान्तिको करतेहैं ॥ और स्त्रियोंको सुख देनेवालेहैं ॥ नपुंसक अवीर्य्य होते हैं ॥ और अकाम सत्वसे रहित होतेहैं ॥ २६१ ॥ स्त्री जातिके हीरे स्त्रियोंको देनेचाहिये ॥ और नपुंसकको नपुंसक देवे । और सबको सर्वदा वीर्य को बढ़ानेवाले पुरुषजाति के देने चाहियें ॥ २६२ ॥

विन क्षुधा कुवा कोढ़ तथा पसलीकी पीड़ा॥ पांडुता और लूलापन इनको करताहै इसवास्ते शोधकर फूंके॥ २६३॥

[मारितस्य वज्रस्य गुणाः।]

आयुःपुष्टिं वलं वीर्य्यं वर्णं सौख्यं करोति च॥
सेवितं सर्वरोगघ्नं मृतं वज्रन्न संशयः॥ २६४॥

[अथ हरितमणिः। पन्ना इतिलोके। तस्य नामानि।]

गारुत्मतं मरकत मश्मगर्भो हरिन्मणिः॥

[अथ माणिक्य इति लोके तस्य नामानि। माणिक्यं पद्मरागः स्याच्छोणरत्नञ्च लोहितम्॥

अथ पुष्पराग नामानि। पुष्परागो मञ्जुमणिः स्याद्वाचस्पति वल्लभः॥ अथ इन्द्रनील गोमेदयो र्नामानि। नीलन्तथेन्द्र नीलञ्च गोमेदः पीतरत्नकम्

भा० हीरेकी भस्मका गुण। आयु पुष्टि वल वीर्य्य वर्ण सौख्य इनको करताहै॥ और हीरेका भस्म सेवन करने से सव रोगोंका नाशकहै इसमें कोई संशय नहीं है॥ २६४॥ अनन्तर पन्ना उसके नाम॥ गारुत्मत मरकत अश्मगर्भ हरिन्मणि। येह पन्नेके नामहैं॥

अनन्तर माणिक के नाम।] माणिक्य पद्मराग शोणरत्न लोहित। यह माणिक के नामहैं। [अनन्तर पुखराज केनाम। पुष्पराग मंजुमणि वाचस्पति वल्लभ। येह पुखराजके नामहैं॥ [अनन्तर नीलम और गोमेद केनाम॥ नील तथा इन्द्रनील। येह नीलम के नामहैं॥ और गोमेद तथा पीतरत्नक येह गोमेदके नामहैं॥

अथ वैदूर्य्यं।] वैदूर्य्यं दूरजंरत्नं स्यात्केतु ग्रह वल्लभम्॥ [अथ मौक्तिकस्य नामानि।]

मौक्तिकं शौक्तिकं मुक्ता तथा मुक्ताफलञ्च तत्॥

मुक्तिः शङ्खो गज क्रोडः फणी मत्स्यश्च दर्दुरः॥ २६५॥ वेणुरेते समाख्याता स्तज्ज्ञैर्मौक्तिक योनयः॥ मौक्तिकं शीतलं वृष्यं चक्षुष्यं बल पुष्टिदम्

[अथ प्रवालस्य नामानि। पुंसि क्लीवे प्रबालः स्यात् पुमानेव तु विद्रुमः॥ [अथ रत्नानां गुणाः।] रत्नानि भक्षितानि स्युर्मधुराणि सराणि च॥ चक्षुष्याणि च शीतानि विषघ्नानि धृतानि च॥ २६६॥ मङ्गल्यानि मनोज्ञानि ग्रहदोष हराणि च॥

भा० अनन्तर वैडूर्य्य दूरज रत्नकेतु ग्रहवल्लभ। येह वैडूर्य्य के नामहैं॥ ॥ अनन्तर मोतीके नाम॥ मौक्तिक शौक्तिक मुक्ता तथा मुक्ताफलं। येह मोतीके नामहैं॥ सीप शंख हाथी शूकर सर्प मछली मेंडक॥ २६४॥ और वांस यह उसके जाननेवालों ने मोतीके उत्पत्ति स्थान कहेहैं॥ मोती शीतल शुक्र को उत्पन्न करनेवाला नेत्रके हित और बल पुष्टिको देनेवालाहै॥ २६५॥ अनन्तर मूंगे के नाम। पुल्लिंग और नपुंसकमे प्रवाल होताहै और विद्रुम पुल्लिंगमेंही होताहै॥ अनन्तर रत्नोंके गुण॥ रत्न भक्षण कियेहुवे मधुर और सर होतेहैं॥ तथा नेत्रके हित शीत विष नाशक होतेहैं। और धारण कियेहुवे॥ ६६॥ मङ्गल के करनेवाले मनोज्ञ तथा ग्रह दोषके नाशक होतेहैं॥

(क) किं रत्नं कस्य ग्रहस्य प्रीति कारित्वेन दोष हरं भवतीति प्रश्ने तदुत्तरमाह रत्नमालायां

माणिक्यन्तरणेः सुजात ममलं मुक्ताफलं शीतगो र्माहेयस्य तु विद्रुमो निगदितः सौम्यस्य गारुत्मतम्॥ २६७॥ देवेज्यस्य च पुष्पराग मसुरा-

चार्यस्य वज्रं शनेः। नीलं निर्म्मल मन्यस्य निगदिते गोमेद वैडूर्य्यके ॥ २६८॥

[अथोपरत्नानां निरूपणम्।] उपरत्नानि काचश्च कर्पूराश्मा तथैवच ॥ मुक्ता शुक्ति स्तथा शङ्ख इत्यादीनि बहून्यपि ॥ २६९ ॥

(क) उपरत्नानि गौणरत्नानि। कर्पूराश्मा कपनीया कपुनीआ। मुक्ता शुक्तिः सीप।

गुणा यथैव रत्नाना मुपरत्नेषु ते यथा॥ किन्तु किञ्चित्ततो हीना विशेषोऽय मुदाहृतः॥ २७०॥

[अथ विषस्य नाम लक्षण गुणाः]

भा॰ (क) कौनसा रत्न किस ग्रह के प्रीतिकार होनेसे दोषनाशक होताहै। इस प्रश्नमें उस्का उत्तर कहतेहैं॥ रत्नमालामें। सूर्य्य का माणिक चन्द्रका मोती मंगल का मूङ्गा बुध का पन्ना कहा है ॥ २६७ ॥ वृहस्पति का पुखराज शुक्र का हीरा शनी का निर्मल नीलम और राहु का गोमेद केतू का वैडुर्य्य। यह कहाहै ॥ २६८॥ [अनन्तर उपरत्नों का निरूपण ॥ कांच कापूरी पत्थर। और मोती की सीप तथा इत्यादि शंख बहुत से उपरत्न हैं॥२६९॥ उपरत्न अर्थात् गौणरत्न। कपूरी पत्थर मोतीकी सीप रत्नों के जैसे गुण हैं वैसेही उपरत्नों में भी गुण कहे। परन्तु कुछ उनसे कम हैं॥ विशेष यह कहा है ॥ २७०॥ [अनन्तर विषके नाम लक्षण और गुण कहेहैं॥

विषंतु गरलः क्ष्वेड स्तस्य भेदानुदाहरे ॥ वत्सनाभः सहारिद्रः सक्तुकश्च प्रदीपनः ॥ २७१ ॥ सौराष्ट्रिकः शृङ्गिकश्च कालकूट स्तथैवच ॥ हालाहलो ब्रह्म पुत्रो विषभेदा अमीनव ॥ २७२॥

[तत्र वत्सनाभस्य स्वरूप निरूपणम्]

मिन्दुवार सदृश पत्रो वत्सनाभ्या कृति स्तथा ॥
यत्पार्श्वेन तरो र्वृद्धि र्वत्सनाभः स भाषितः॥२७३॥
[अथ हारिद्रस्य स्वरूप निरूपणम्]
हरिद्रा तुल्य मूलोयो हारिद्रः स उदाहृतः॥
अथ शक्तुकस्य स्वरूपम् ॥ यद् ग्रन्थिः सक्तुकेनैव पूर्णोमध्यः स सक्तुकः॥ अथ प्रदीपनस्य स्वरूपम् ॥ वर्णतो लोहितो यः स्या द्दीप्तिमान् दहन प्रभः। महादाह करः पूर्वैः कथित :सप्रदीपनः॥२७४

भा॰ विष गरल क्ष्वेड येह विषके नामहैं ॥ उनके भेदोंको कहते हैं। वत्सनाभ हारिद्र सक्तुक प्रदीपन ॥ २७१॥ सौराष्ट्रिक श्रृंगिक तथा कालकूट। हालाहल ब्रह्मपुत्र। यह नौ विषके नामहैं ॥ २७२॥ उसमें वचनाकका निरूपण ॥ लाल कचनार के समान पत्ते तथा बछड़ेके नाभिके आकार ॥ औरजो एक तर्फ़से दरख्तकी वृद्धि होतीहैं उसको वचनाक कहते हैं ॥ २७३॥ अनन्तर हारिद्रका स्वरूप निरूपण ॥ जो हरदीकी जड़के समान होताहै उसे हारिद्र कहाहै ॥ अनन्तर सक्तुक का स्वरूप ॥ जो गांठ बीचमें सक्तूसे भरीहुई के समान होती है वोह सक्तुक है ॥ अनन्तर प्रदीपन का स्वरूप ॥ जो रंगतमें लालहोताहै और अङ्गारे के समान दीप्तिमान् होताहै। तथा बहुत दाह करनेवाला। ऐसेको प्राचीन लोगोंने प्रदीपन कहा है ॥ २७४॥

अथ सौराष्ट्रिकस्य-स्वरूपम् ॥ सुराष्ट्र विषये यः स्यात्स सौराष्ट्रिक उच्यते ॥ [अथ शृङ्गिकस्य स्वरूपम्।
यस्मिन् गोशृङ्गके बद्धे दुग्धम्भवति लोहितम् ॥
स शृङ्गिक इति प्रोक्तो द्रव्य तत्त्व विशारदैः॥२७५॥

[अथ कालकूटस्य स्वरूपम् ॥ देवासुररणे देवै र्हतस्य पृथुमालिनः ॥ दैत्यस्य रुधिराज्जातस्तरुरश्वत्थसन्निभः ॥ २७६ ॥ निर्यासः कालकूटोऽस्य मुनिभिः परिकीर्त्तितः ॥ सो हि क्षेत्रे शृङ्गवेरे कोङ्कणे मलये भवेत् ॥ २७७ ॥

[अथ हालाहलस्य स्वरूपम् ॥ गोस्तनाभ फलो गुच्छस्तालपत्रच्छदस्तथा ॥ तेजसा यस्य दह्यन्ते समीपस्था द्रुमादयः ॥ २७८ ॥ असौ हालाहलो ज्ञेयः किष्किन्धायां हिमालये ॥ दक्षिणाब्धितटे देशे कोङ्कणेऽपि च जायते ॥ २७९ ॥

भा० अनन्तर सौराष्ट्रिक का स्वरूप ॥ सुराष्ट्र देशमें जो होताहै वोह सौराष्ट्रिक कहाहै ॥ [अनन्तर सिंगिया का स्वरूप ॥ जिसको गाय के सींगमें बांधनेसे दुग्ध लाल होता है ॥ उसको द्रव्यके तत्त्वोंके जानने वालोंने शृङ्गिक कहाहै ॥ ५७५ ॥
अनन्तर कालकूट का स्वरूप ॥ देवता और दानवके युद्ध में देवताओं से मारेगये पृथुमाली नाम दैत्य के रुधिरसे पीपल के समान वृक्ष उत्पन्न हुवा ॥ २७६ ॥ इसके गोन्दको कालकूट ऐसा मुनियों ने कहाहै ॥ वोह शृङ्गवेर क्षेत्रमें और कोङ्कणदेश तथा मलयाचल में होताहै ॥ ॥२७७ ॥ ॥
अनन्तर हालाहलका स्वरूप ॥ गाय के स्तनके से फलोंके गुच्छे तथा तालपत्र के समान पत्र होतेहैं ॥ और जिसके तेजसे पासके वृक्षादिक जलजातेहैं ॥ २७८ ॥ इसको हालाहल जानना चाहिये और यह किष्किन्धा में हिमालमें दक्षिण समुद्र के किनारे परके देशों में और कोङ्कण देश में भी उत्पन्न होताहै ॥ २७९ ॥

[अथ ब्रह्मपुत्रस्य स्वरूपम् ॥] वर्णतः कपिलो

यः स्यात्तथा भवति सारतः ॥ ब्रह्मपुत्रः स विज्ञेयो जायते मलयाचले ॥ १८० ॥ ब्राह्मणः पाण्डुरस्तेषु क्षत्रियो लोहितः प्रभः ॥ वैश्यः पीतः सितः शूद्रो विष उक्तश्चतुर्विधः ॥ १८१ ॥ रसायने विषं विप्रं क्षत्रियन्देहपुष्टये ॥ वैश्यं कुष्ठ विनाशाय शूद्रन्दद्याद् वधाय हि ॥ १८२ ॥ विषं प्राणहरं प्रोक्तं व्यवायि च विकाशि च ॥ आग्नेयं वातकफ हृद्योग वाहि मदावहम् ॥ १८३ ॥

भा॰ अनन्तर ब्रह्मपुत्र का स्वरूप ॥ जो रंगत से कपिल तथा सार से कपिल होताहै ॥ उस्को ब्रह्मपुत्र जानना चाहिये वोह मलयाचल में होताहै ॥ १८० ॥ उसमें ब्राह्मणजात का श्वेत लाल क्षत्रिय ॥ पीला वैश्य और काला शूद्र । ऐसे विष चार प्रकार का कहाहै ॥ १८१ ॥ रसायन में सफ़ेद शरीर की पुष्टि के अर्थ लाल पीला कुष्ठ नाशके अर्थ और काला मरण के अर्थ देवे ॥ १८२ ॥ विष प्राणहर कहाहै और व्यवायि तथा विकाशि ॥ और अग्नि गुणवाला वात कफ का नाशक योगवाही तथा नशा करने वाला है ॥ १८३ ॥

(क) व्यवायि सकलकाय गुणव्यापन पूर्वकं पाक गमनशीलं ॥ विकाशि । ओजः शोषण पूर्वकं सन्धिबन्ध शिथिली करण शीलम् ॥ आग्नेयम् । अधिकाग्न्यं योगवाहि सङ्गि गुणग्राहकं । मदावहम् । तमो गुणाधिक्येन बुद्धि विध्वंसकम् ॥ तदेव युक्ति युक्तन्तु प्राणदायि रसायनम् ॥ योगवाहि त्रिदोषघ्नं बृंहणं वीर्य्य वर्द्धनम् ॥ ॥ १८३ ॥ ये दुर्गुणा विषे ऽशुद्धे तेस्युर्हीना-

विशोधनात् ॥ तस्माद्विषं प्रयोगेषु शोधयित्वा प्रयोजयेत् ॥ २८४ ॥

भा० (क) सम्पूर्ण शरीर गुण व्यापन पूर्वपाक होनेवाला व्यवायिहै। ओज का शोषण पूर्वक जोड़ोंके बन्धन को शिथिल करनेवाला। आग्नेय अर्थात् बहुत गरम। योगवाही अर्थात् संगवाले के गुणको ग्रहण करनेवाला। तमो गुणकी अधिकता से बुद्धिका नाशक ॥ वोही युक्ति पूर्वक योजना कियाहुवा प्राण देने वाला रसायन ॥ योगवाही त्रिदोष नाशक बृंहण वीर्य्यको बढ़ाने वाला है ॥ ॥२८३॥ जो दुर्गुण अशुद्ध विषमें है वोह शोधन से हीन हो जाता है ॥ इसवास्ते शोधकर विषका प्रयोग योजना करे ॥ २८४॥

[अथोप विषाणां निरूपणम्]

अर्कक्षीरं स्नुहीक्षीरं लाङ्गली करवीरकः ॥ गुञ्जा हि फेनो धत्तूरः सप्तोप विष जातयः ॥ २८५ ॥ उपविषाः गौणविषाः। एषाङ्गुणा स्तत्र तत्र द्रष्टव्याः।

इतिश्री भावप्रकाशे धातूपधातु रसोप रसरत्नोपरत्न विषोपविष वर्गः ॥ ॥

भा० अनन्तर उपविषका निरूपण ॥ आक का दूध थूहर का दूध करिहारी कनेर चिरमिठी अफीम धतूरा यह सात जाति उपविष की हैं ॥ २८५॥ उपविष अर्थात् गौणविष। इनका गुण वहाँ २ पर देख लेना ॥

इति भावप्रकाशे धातु उपधातु रस उपरस रत्न उपरत्न विष उपविष वर्ग समाप्त ॥ ॥ ॥ ॥ अथधान्यवर्गः। तत्र धान्यानां भेदाः

शालिधान्यं व्रीहि धान्यं शूकधान्यं तृतीयकम् ॥ शिम्बीधान्यं क्षुद्रधान्य मित्युक्तं धान्य पञ्चकम् ॥ १ ॥ शालयो रक्त शाल्याद्या व्रीहयः षष्टिकादयः ॥ यवादिकं शूकधान्यं मुद्गाद्यं शिम्बि धान्यकम् ।२।

कङ्ग्वादिकं क्षुद्रधान्यं तृणधान्यञ्च तत्स्मृतम् ॥
[तत्र शालिधान्यस्य लक्षणं गुणाश्च ।
कण्डनेन विना शुक्ला हैमन्ताः शालयः स्मृताः ॥
[अथ शालीनां नामानि । रक्तशालिः सकलमः पाण्डुकः शकुनाहृतः ॥ सुगन्धकः कर्दमको महाशालिश्च दूषकः ॥ ३ ॥ पुष्पाण्डकः पुण्डरीकस्तथा महिषमस्तकः ॥ दीर्घशूकः काञ्चनको हायनो लोध्रपुष्पकः ॥ ४ ॥ इत्याद्याः शालयः सन्ति वहवो बहुदेशजाः ॥ ग्रन्थविस्तरभीतेस्ते समस्ता नात्र भाषिताः ॥ ५ ॥

भा० अनन्तर धान्यवर्गः ॥ उसमें धान्योंके भेद । शालिधान्य व्रीहिधान्य तीसरा शूकधान्य । शिम्बीधान्य क्षुद्रधान्य इस प्रकार सात धान्य कहेहैं ॥ १ ॥ लालधान्य शालिधान्य और साठी आदि व्रीहिधान्य ॥ जव आदिक शूकधान्य मूंग आदि शिम्बिधान्य ॥ २ ॥ और कंगुनी आदि क्षुद्रधान्य तथा उसे तृणधान्य भी कहतेहैं ॥ उसमें शालिधान्य का लक्षण और गुण ॥ विना कूटे सुफेद और हेमन्त में होनेवाले शालिधान्य कहे गयेहैं ॥ अनन्तर धानोंके नाम ॥ लालधान कलमीधान पांडुक शकुनाहृत । सुगन्धक कर्दमक महाशाली दूषक ॥ ३ ॥ पुष्पांडक पुण्डरीक तथा महिष मस्तक । दीर्घशूक कांचनक हायन लोध्रपुष्पक ॥ ४ ॥ इतने प्रकारके धानहैं । और बहुत प्रकारके बहुतसे देशोंमें होतेहैं ॥ ग्रन्थ बढजानेके भयसे सब यहांपर नहीं कहे ॥ ५ ॥

अथ तेषां गुणाः ॥ शालयो मधुराः स्निग्धा बल्या बद्धाल्पवर्चसः ॥ कषाया लघवो रुच्याः स्वर्या वृष्याश्च बृंहणाः ॥ ६ ॥ अल्पानिलकफाः शीताः ।

पित्तला मूत्रला स्तथा ॥ आलयो दग्ध भूम्जाता: कषाया लघुपाकिन: ॥ ७ ॥ सृष्टमूत्र पुरीषाश्च रूक्षा: श्लेष्मापकर्षणा: ॥ कैदारा वात पित्तघ्ना: गुरव: कफ शुक्रला: ॥ ८ ॥ कषाया अल्प वर्च्चस्का मध्याश्चैव बलावहा: ॥

भा० अनन्तर उनके गुण ॥ धान मधुर चिकने बलको करनेवाले मलको बांधनेवाले और थोड़ा करनेवाले कसैले हलके रुचिको करनेवाले स्वरको अच्छा करनेवाले शुक्र को अच्छा करनेवाले पुष्ट ॥ ६ ॥ अल्प वात कफको करनेवाले शीतल पित्तनाशक तथा मूत्रको करनेवाले होतेहैं ॥ दग्ध भूमिमें उत्पन्न हुवे धान कसैले लघुपाकवाले होतेहैं ॥ ७ ॥ मल मूत्र को करनेवाले रूखे कफको घटानेवालेहैं ॥ खेतके वात पित्तके नाशक भारी कफ शुक्रको करनेवाले हैं ॥ ८ ॥ कसैले अल्पमलको करने वाले मेध्य बलको करनेवालेहैं ॥-

कैदारा: कृष्टक्षेत्रजा: उप्ता:।

स्थलजा: स्वादव: पित्तकफघ्ना वात पित्तदा: ॥ किञ्चित्तिक्ता: कषायाश्च विपाके कटुका अपि ॥ ९ ॥

स्थलजा: अकृष्ट भूमिजाता: ॥ स्वयंजाता।

वापिता मधुरा वृष्या बल्या: पित्तप्रणाशना: ॥ श्लेष्मलाश्चाल्पवर्च्चस्का: कषाया गुरवो हिमा: ॥ १० ॥

भा० कैदार अर्थात् जोतेहुवे खेत में बोयेहुवे। स्थलमें उत्पन्नहुवे मधुर पित्तकफके नाशक वात पित्तको करनेवाले। कुछ एक तिक्त और कसैले विपाकमें भी कटु होतेहैं ॥ ९ ॥ स्थलज अर्थात् विना जोतेहुवे जमीन मेंहुवे ॥ स्वयं उत्पन्न हुवे। बोयेहुवे मधुर शुक्रको करनेवाले बलको देनेवाले पित्त नाशक हैं ॥ कफको करनेवाले थोडे मलको करनेवाले कसैले भारी शीतल होतेहैं ॥ १० ॥

(क) वापिता: कृष्टक्षेत्रे अकृष्टक्षेत्रे च।

वापितेभ्यो गुणैः किञ्चित्‌हीनाः प्रोक्ता अवापिताः। कृष्टक्षेत्रे अकृष्टक्षेत्रे वा।
रोपितास्तु नवा वृष्याः पुराणा लघवः स्मृताः॥
तेभ्यस्तु रोपिता भूयः शीघ्रपाका गुणाधिकाः॥
॥२१॥ छिन्नरूढाः हिमा रूक्षा बल्याः पित्तकफापहाः॥ बद्धविट्काः कषायाश्च लघवश्चाल्पतिक्तकाः॥२२॥

[अथ रक्तशालेर्गुणाः]

रक्तशालि वरस्तेषु बल्यो वर्णस्त्रिदोषजित्॥ चक्षुष्यो मूत्रलः स्वर्य्यः शुक्रलस्तृट्‌ज्वरापहः॥
॥२३॥ विषव्रणश्वासकासदाहनुद्वह्निपुष्टदः॥
तस्माद्‌ल्पान्तरगुणाः शालयो महदादयः॥२४॥
रक्तशालिः दाउदखानी इति लोके। मगधदेशे प्रसिद्धः।

(क) बोयेहुवे जोते खेतमें और बेजोते खेतमें) बोयेहु वों से कुछ गुणमें हीन बे बोयेहुवे कहे हैं॥ जोतेहुवे खेतमें अथवा बेजोतेहुवे खेतमें। बोयेहुवे नये शुक्रको करनेवाले हैं। और पुराने हलके कहेहैं। उनसे वे बोयेहुवे शीघ्र पाकवाले और गुणमें अधिक कहेहैं॥ २१॥ कोमल कटाहुवे शीतल रूखे बलको करनेवाले पित्त कफके नाशक। मलको बांधनेवाले कसैले हलके थोड़े तिक्त होतेहैं॥२२॥

[अनन्तर लाल धानके गुण।] उनमें लाल धान श्रेष्ठहैं बलको वर्णको करनेवाले शुक्रको करनेवाले तृषा ज्वरके नाशकहैं॥१३॥ और विष व्रण श्वास कास दाह इनके नाशक अग्नि और पुष्टिको देनेवाले हैं॥
उससे अल्पान्तर गुण महाशालि आदिहैं॥ २४॥ लाल धान इसको लोकमें दाउदखानी इस प्रकार कहतेहैं॥ यह मगध देशमें प्रसिद्ध है

[अथ व्रीहि धान्यस्य लक्षणं गुणाश्च । वार्षिकाः कण्डिताः शुक्ला व्रीहयश्चिरपाकिनः ॥ कृष्णव्रीहिः पाटलश्च कुक्कुटाण्डक इत्यपि ॥ शालामुखो जतुमुख इत्याद्याः व्रीहयः स्मृताः ॥ १५ ॥ कृष्णव्रीहिः स विज्ञेयो यत् कृष्णतुष तण्डुलः ॥ पाटलः पाटलापुष्प वर्णको व्रीहि रुच्यते ॥ १६ ॥ कुक्कुटाण्डा कृतिर्व्रीहिः कुक्कुटाण्डक उच्यते ॥ शालामुखः कृष्ण शूकः कृष्ण तण्डुल उच्यते ॥ १७ ॥ लाक्षावर्णं मुखं यस्य ज्ञेयो जतुमुखस्तु सः ॥ व्रीहयः कथिताः पाके मधुरा वीर्य्यतो हिताः ॥ १८ अल्पाभिष्यन्दिनी बद्ध वर्च्चस्काः षष्ठिकैः समाः ॥ कृष्णव्रीहिवरस्तेषां तस्मादल्पगुणाः परे ॥ १९ ॥

भा० अनन्तर व्रीही धानका लक्षण और गुण कहतेहैं ॥ वरसाती कुटे हुवे शुक्ल और देरमें पकनेवाले व्रीहि धान कहे गयेहैं ॥ १५ ॥ काला धान उसे जानना चाहिये जो काले छिलके के चावल हैं ॥ पाटलाके फूल समान वर्णवाली को पाटलव्रीहि कहतेहैं ॥ १६ ॥ मुर्गेके अण्डेके आकार वाली व्रीहिको कुकटाण्डक कहतेहैं ॥ शालामुख कृष्ण शूक कृष्णतण्डुल येभी उसके नामहैं ॥ १७ ॥ लाखके समान वर्ण जिसके मुख काहो उसे जतुमुख कहतेहैं ॥ धान पाकमें मधुर वीर्य्य से हित कहेगयेहैं ॥ १८ ॥ और अभिष्यन्दन करनेवाले मलको बान्धनेवाले साठीके समान होतेहैं ॥ उनमें काला धान श्रेष्ठहै और बाकी सब उससे गुणमें थोड़ेहैं ॥ १९

अथ षष्टिकानां लक्षणं गुणाश्च ॥ गर्भस्था एवये पाकं यान्ति ते षष्टिका मताः ॥

[अथ षष्ठिकानां नामानि । षष्ठिकः शतपुष्पश्च प्रमोदक मुकुन्दकौ ॥ महाषष्ठिक इत्याद्याः षष्ठिकाः समुदाहृताः ॥ २०॥ एतेऽपि व्रीहयः प्रोक्ता व्रीहिलक्षणदर्शनात् ॥ षष्ठिकाः मधुराः शीता लघवो बद्धवर्चसः ॥ २१॥ वात पित्त प्रशमनाः शालिभिः सदृशाः गुणैः ॥

भा० अनन्तर साठीका लक्षण और गुणको कहतेहैं ॥ जो गरभ में रहते हुवेही पाकको प्राप्तहोतेहैं वो साठी हैं ॥ अनन्तर साठीके नाम ॥ षष्ठिक शतपुष्प प्रमोदक मुकुन्दक ॥ महाषष्ठिक इत्यादिक षष्ठिक कहेगयेहैं ॥ २०॥ धानके लक्षण देखनेसे यह धान कहे हैं ॥ साठी मधुर शीतल हलके मलको बान्धनेवाले ॥ २१॥ वातपित्तको शमनकरनेवाले और धानोंके समान गुणमे होतेहैं ॥

[तत्र षष्ठिकाया गुणाः।]

षष्ठिका प्रवरा तेषां लघ्वी स्निग्धा त्रिदोषजित् ॥
स्वाद्वी मृद्वी ग्राहिणी च बलदा ज्वरहारिणी ॥ २२॥
रक्तशालि गुणैस्तुल्या ततः स्वल्पगुणापरे ॥
षष्ठिकः साठी इतिलोके । [अथ शूकधान्यानि ।
तेषु यवः प्रसिद्धः ।

भा० उसमें साठीका गुण कहतेहैं ॥ उन्में साठी बहुत श्रेष्ठ हलकी चिकनी त्रिदोषको जीतनेवाली ॥ मधुर मृदु काविज़ बलको देनेवाली । ज्वर नाशक होतीहै ॥ २२॥ लाल धानके समान गुणमें होतीहै उस्से और गुणमें स्वल्प होतीहैं ॥ उसको लोकमें साठी ऐसा कहतेहैं ॥ अनन्तर शूक धान्य उन्में जव प्रसिद्ध हैं ॥

अतियवो अति शूकः कृष्णारुणो वर्णो यवः ॥

तोक्यो हरितो निःशूकः स्वल्पो यवः यवेति प्रसिद्धः।
[तेषां नामानि गुणाश्च। यवस्तु शितशूकः स्या
न्निःशूकोऽति यवः स्मृतः॥ तोक्यस्तद्वत्स हरि
तस्ततः स्वल्पश्च कीर्तितः॥२३॥ यवः कषा
यो मधुरः शीतलो लेखनो मृदुः॥ व्रणेषु तिल
वत् पथ्यो रूक्षो मेधाग्नि वर्द्धनः॥२४॥

भा० अतियव अनिशूक कृष्ण। और अकृष्णवर्ण यव। तोक्य हरित निःशूकस्वल्पयं येह यव इस नामसे प्रसिद्ध हैं॥ उनके नाम और व गुण कहते हैं॥ जव तेजनोंक वाले होनेहैं और वे नोंकवाले अतियव कहेगयेहैं॥ तथा तोक्य उसीके समान और हरित उससे अल्पगुण कहा गयाहै॥२३॥ जव कसैला मधुर शीतल लेखन मुलायम॥ और व्रण में तिलके समान पथ्य रूक्ष मेधा और अग्निको बढानेवाला है॥२४॥

कटुपाकोऽनभिष्यन्दी स्वर्य्यो बलकरो गुरुः॥
बहुवातमलो वर्णस्थैर्य्यकारी च पिच्छिलः
॥२५॥ कण्ठत्वगामय श्लेष्म पित्तमेद प्रणाश-
नः॥ पीनस श्वासकासोरुस्तम्भ लोहित तृट्
प्रणुत्॥२६॥ अस्मादति यवो न्यूनस्तोक्यो न्यू
नतरस्ततः॥

भा० पाकमें कटु अभिष्यन्दन करनेवाला स्वरको अच्छाकरनेवाला बलकारक भारी॥ बहुतवात मलको करनेवाला और वर्ण स्थिरता को करनेवाला पिच्छिलहै॥२५॥ और कंठरोग त्वचाके रोग कफ पित्त मेद इनका नाशक है॥ तथा पीनस श्वास कास उरुस्तम्भ रक्त तृषा इनका नाशक है॥२६॥ इससे अतियव गुणमें न्यूनहै और तोक्य उससेभी गुणमें न्यूनहै॥

[अथ गोधूमस्य नामानि लक्षणं गुणाश्च।

गोधूमः सुमनोऽपि स्यात् त्रिविधः स च कीर्त्तितः॥
महागोधूम इत्याख्यः पश्चाद्देशात् समागतः॥२७॥
[महागोधूम।] बड़ गोधूमा इति लोके। मधूली तु
ततः किञ्चिदल्पा सा मध्य देशजा॥ निःशूको-
दीर्घगोधूमः क्वचिन्नन्दी मुखाभिधः॥२८॥ गो-
धूमो मधुरः शीतो वात पित्त हरो गुरुः॥ कफ शु-
क्र प्रदो बल्यः स्निग्धः सन्धान कृत् सरः॥२९॥
जीवनो बृंहणो वर्ण्यो व्रण्यो रुच्यः स्थिरत्वकृत्
कफप्रदो नवीनो न तु पुराणः।
पुराण यव गोधूम क्षौद्र जाङ्गल शूल भागिति॥

भा० अनन्तर गेहूं के नाम लक्षण और गुण कहते हैं॥ गोधूम सुमन भी गेहूके नाम हैं॥ वह तीन प्रकार का कहा है॥ बड़ा गेहू इस नाम से पश्चिम देशमें जाता है॥२७॥ महागोधूम॥ बड़े गोधूमा इस नामसे लोक में प्रसिद्ध है॥ मधूली भी उस्से कुछ अल्प गुणमें होती है॥ वह मध्यदेशमें होनेवाली है॥ नुनोक लंबा गेहुं कहींपर नन्दी मुख नाम सेहै॥२८॥ गेहूं मधुर शीतल वात पित्तका नाशक भारी॥ कफ शुक्रको करनेवाला बलको करनेवाला चिकना सन्धानकरनेवाला सर॥ जीवन पुष्ट वर्णको अच्छाकरनेवाला व्रणके हित रुचिको करनेवाला और स्थिरताको करनेवाला है॥
कफको करनेवाला नवीन नकि पुराना॥ पुराना जव गेहूं मधु हरिण आदियोंके मांस का कवाव इनका सेवन करनेवाला होता है॥

[वाग्भटेन वसन्ते गृहीतत्वात्॥ मधूली शीतला
स्निग्धा पित्तघ्नी मधुरा लघुः॥ शुक्रला बृंहणी प-
थ्या तद्वन्नन्दीमुखः स्मृतः॥३०॥

[अथ शिम्बीधान्यम्। तत्पर्य्यायानाह।]

शमीजाः शिम्बिजाः शिम्बीभवाः सूप्योश्च वैदलाः।
[तेषांगुणाः।] वैदलाः मधुरा रूक्षाः कषायाः कटुपा-
किनः ॥ ३१॥ वातलाः कफपित्तघ्नाः बद्धमूत्रम
लाहिमाः ॥ ऋते मुद्गमसूराभ्यामन्ये त्वाध्मान
कारिणः ॥ ३२॥

भा० वाग्भटने वसन्तमें लियाहै। इसवाले मधूली अर्थात् नवक्षत बड़ा नको ए ऐसे गेहूं शीतल पित्तनाशक मधुर होतेहैं ॥ शुक्रको करनेवाले पुष्ट पथ्य अर्थात् हितहोतेहैं और उसीके समान नन्दीमुख कहेगयेहैं ॥ ३०॥ अनन्तर शिम्बीधान्य अर्थात जो सेममें होताहै॥ उसके पर्य्यायोंको कहतेहैं॥ शमीज शिम्बिज शिम्बीभवा सूप्या वैदला येह शिम्बीधानके नामहैं॥ उनकेगुण। शिम्बीधान्य मधुर रूखे कसेले पाकमें कटु ॥ ३१॥ वातके करने वाले कफ पित्तके नाशक मल मूत्रको रोकने वाले शीतल॥ होतेहैं॥ मूंग मसूरको छोड़के बाक़ी सब पेटको फुलाते हैं ॥ ३२॥

मुद्गमसूरयोराध्मानकारित्वमन्यवैदलापेक्षया
नतु सर्व्वथा एतयोरपि किञ्चिदाध्मानकारित्वा
त्। [तत्र मुद्गस्य गुणाः।

रूक्षो लघुर्ग्राही कफपित्तहरो हिमः॥ स्वादुरल्पा
निलो नेत्र्यो ज्वरघ्नो वनजस्तथा॥ मुद्गो बहुविधः
श्यामो हरितः पीतकस्तथा॥ ३३॥ श्वेतो रक्तश्च
तेषान्तु पूर्व्वः पूर्व्वो लघुः स्मृतः॥ सुश्रुतेन पुन
प्रोक्तो हरितः प्रवरो गुणैः ॥ ३४॥

चरकादिभिरप्युक्तः एष एव गुणाधिकः ॥

भा० मूंग मसूरोंको आध्मान कारित्व और दालोंकी अपेक्षासे है न किस र्वथा इनमें भी कुछ आध्मान कारित्व होनेसे । उसमें मूंगके गुण । रूखा हलका कबिज़ कफ पित्तका नाशक शीतल ॥ मधुर अल्पवातकोक रनेवाला नेत्रके हित ज्वर नाशक होताहै । वैसेही बन मूंग होता है ॥ मूंग अनेक प्रकारके होतहैं । काले हरे पीले ॥ ३३ ॥ सुफ़ेद लाल उनमें पहिले २ हलके कहेहैं ॥ जो सुश्रुतने कहाहै कि हरामूंग गुणमें अधि क होताहै ॥ ३४ ॥ और चरकादि मुनियों ने भी कहाहै कि येही गुणमें अधिक होता है ॥

[अथ उड़द ।]

माषो गुरुः स्वादु पाकः स्निग्धो रुच्योऽनिलापहः।

स्रंसनस्तर्पणो बल्यः शुक्रलो बृंहणः परः ।३५।

भिन्न मूत्रमलस्तन्यो मेदः पित्तकफप्रदः ॥ गुद

कीलार्दितः श्वास पंक्ति शूलानि नाशयेत् ॥३६॥

कफ पित्तकरा माषाः कफपित्तकरं दधि ॥

कफ पित्तकरा मत्स्या वृन्ताकं कफ पित्तकृत् ।३७॥

भा० माष अर्थात् उड़द भारी पाकमें मधुर चिकना रुचिको करनेवाला वात नाशक ॥ स्रंसन तर्पण बलके हित शुक्रको करनेवाला पुष्ट होता है ॥ और मल मूत्र का करनेवाला दूधको करनेवाला मेद पित्त और कफको करनेवालाहै ॥ और गुद अर्दित श्वास पंक्ति शूल इनको ना श करताहै ॥ ३६ ॥ उड़द कफ पित्तको करनेवाला है । और दही क फ पित्तको करनेवाली है । और मछलियां कफ पित्तको करनेवालीहैं तथा वेङ्गन कफ पित्त को करने वाला है ॥ ३७॥

[अथ बोड़ा यस्य च वेशतरा लोबिआ इत्यादयो भेदाः]

राजमाषो महामाष श्चपल श्चवलः स्मृतः ॥

राजमाषो गुरुः स्वादु स्तुवर स्तर्पणो सरः ॥३८॥

रूक्षो वातकरो रुच्यः स्तन्यभूरि बलप्रदः ॥

श्वेतो रक्तस्तथा कृष्ण स्त्रिविधः स प्रकीर्त्तितः ३९॥
यो महांस्तेषु भवति स एवोक्तो गुणाधिकः ॥

भा० अनन्तर वोडायह नाम बनारस में प्रसिद्ध है ॥ और वेरानरा लोबिया इन नामोंसे भी कई शहरोंमें प्रसिद्ध है ॥ राजमाष महामाष चपल चवल येह लोवियाके नाम कहेहैं ॥ लोविया भारी मधुर कसैला तृप्तिको करनेवाला सर ॥ ३८ ॥ रूखा वातकारी रुचिको करनेवाला दुग्ध औरवरुत बलको देनेवाला है ॥ सुफ़ेद लाल तथा काला ऐसे वोह तीन प्रकार का कहाहै ॥ ३९॥ उनमें जो बड़ाहै वोह गुणमें अधिक होताहै ॥

[अथ निष्पाव ।सतु राज सिम्बीबीजं भटवासु इति लोके ॥ ॥ निःष्पावो राजशिम्बिः स्याद् वल्लकः श्वेतशिम्बिकः॥ निष्पावो मधुरो रूक्षो विपाके ऽम्लो गुरुः सरः ॥ ५०॥ कषायस्तन्य पित्तास्र मूत्रवात विबन्धकृत् ॥ विदाह्युष्णो विष श्लेष्म शोथ हृत् च्छुक्र नाशनः ॥ ५१॥

भा० निष्पाव । इस्को दखन में पावय कहतेहैं ॥ और पूरब में भटवांस भीकहतेहैं ॥ यह बड़ीसेमका बीजहै । निष्पाव राजशिम्बी वल्लक श्वेत शिम्बिक यह सेमके बीजोके नाम हैं ॥ सेमका बीज मधुर रूखा विपाक में खट्टा भारी सर ॥ ५०॥ कसैला और दुग्ध रक्त पित्त मूत्रवात विबन्ध इनको करनेवाला है ॥ तथा विदाही गरम विष कफ सूजन इनका नाशक और शुक्रका नाशक है ॥ ५१॥

[अथ मोठ । मकुष्ठो वनमुद्गः स्यान्मकुष्ठक मुकुष्ठको ॥ मुकुष्ठो वातलो ग्राही कफ पित्त हरो लघुः ॥ ५२॥ वन्हिजिन् मधुरः पाके कृमिकृत ज्वर नाशनः ॥

[अथ मसूर] । मङ्गल्यको मसूरः स्यान् मंडल्या

च मसूरिका ॥ मसूरो मधुरः पाके संग्राहि शीत लो लघुः ॥ ५३ ॥ कफपित्तास्त्र जिद्रूक्षो वात-लोज्वरनाशनः ॥ [अथ रहरी।] आढकी तुवरी चापि सा प्रोक्ता शणपुष्पिका ॥ आढकी तुवरा रूक्षा मधुरा शीतला लघुः ॥ ५४ ॥ ग्राहिणी वात जननी वर्ण्या पित्त कफास्त्रजित् ॥

भा० अनन्तर मोठ ॥ मकुष्ठ वनमुद्ग मुकुष्ठक मकुष्ठक। यह मोठके नामहैं ॥ मोठ वातको करनेवाला काबिज़ कफ पित्तका नाशक हलका होता है ॥ ५२ ॥ अग्निको जीतने वाला पाकमें मधुर कृमिको करनेवाला ज्वर नाशक है ॥ ॥ अनन्तर मसूर ॥ मङ्गल्यक मसूर और मङ्गल्या मसूरिका। येह मसूर के नामहैं। मसूर मधुर पाकमें और काबिज़ हलका शीतल होताहै ॥ ५३ ॥ तथा कफ रक्तपित्त इनको जीतने वाला वातको करनेवाला ज्वर नाशक है ॥ [अनन्तर रहरी। आढकी तुवरी और शण पुष्पिका। यह रहर के नाम हैं ॥ रहरी कसैली रूखी मधुर शीतल हलकी ॥ ५४ ॥ काबिज़ वातको करनेवाली वर्णको अच्छा करने वाली पित्त कफ रक्तको जीतनेवाली है ॥ [अथ छोला]

चणको हरिमन्थः स्यात् सकल प्रिय इत्यपि ॥ चणकः शीतलो रूक्षः पित्तरक्त कफापहः ॥ ५५ ॥ लघुः कषायो विष्टम्भी वातलो ज्वरनाशनः ॥ स चाङ्गारेण सम्भृष्टस्तैलभृष्टश्च तत् गुणः ॥ ५६ ॥ आर्द्रे भृष्टो बलकरो रोचनश्च प्रकीर्त्तितः ॥ शुष्क भृष्टोऽति रूक्षश्च वात कुष्ठ प्रकोपणः ॥ ५७ ॥ स्विन्नः पित्त कफं हन्यात् रूढ: क्षोभकरो मतः ॥ आर्द्रोऽ

नि कोमलो रुच्यः पित्त शुक्र हरो हिमः ॥ ४८ ॥ क
षायो वातलो ग्राही कफ पित्त हरो लघुः ॥

भा॰ अनन्तर छोला ॥ चणक हरिमन्थ और सकल प्रिय। येह चने के नाम हैं ॥ चना शीतल रूखा पित्त कफ रक्त इनका नाशक है ॥ ४५ ॥ और हलका कसैला विष्टम्भी वातको करने वाला। ज्वर नाशक है। वोह अंगारे से भूना हुवा तथा तेलसे भूना हुवा वोही गुण वाला है ॥ ४६ ॥ गीला भूना हुवा बल करने वाला और रुचिको करनेवाला कहा है ॥ सूखा भुना हुवा बहुत रूखा वात कुष्ट का प्रकोप करने वाला है ॥ ४७ ॥ पकी हुई इसकी दाल पित्त कफ को नाश करती है ॥ और क्षोभको करनेवाली कही है अति गीली अति कोमल रुचिको देनेवाली पित्त शुक्रकी नाशक होती है ॥ ॥ ४८ ॥ और कसैली वातको करने वाली क़ाबिज़ कफ पित्तको नाशक हलकी है

[केराव] कलायो वर्त्तुलः प्रोक्तः सतिनश्च हरेणुकः ॥ कलायो मधुरः स्वादु पाके रूक्षश्च शीतलः ॥ ॥ ४९ ॥ [अथ खेसारी।] त्रिपुटः खण्डकोऽपिस्यात् कथ्यन्ते तद्गुणा अथ ॥ त्रिपुटी मधुर स्तिक्त स्तुवरो रूक्षणो भृशम् ॥ ५० ॥ कफ पित्त हरो रुच्यो ग्राहकः शीतल स्तथा ॥ किन्तु खञ्जत्व पङ्गुत्व कारी वातातिकोपनः ॥ ५१ ॥

भा॰ अथ केराव। कलाय वर्त्तुल सतिन हरेणुक। यह मटर के नाम हैं ॥ मटर मधुर और पाकमें मधुर रूखा शीतल है ॥ ४९ ॥

[अनन्तर खेसारी। त्रिपुट खंडिक येह खेसारी के नाम हैं ॥ अनन्तर उसके गुण कहते हैं ॥ खेसारी मधुर तिक्त कसैली अत्यन्त रूखी। ॥ ५० ॥ कफ पित्तकी नाशक रुचिको करनेवाली क़ाबिज़ तथा शीतल होती है ॥ किन्तु खञ्जा पङ्गुला करनेवाली और अधिक वात को करने वाली है ॥ ५१ ॥

[अथ कुलत्थी।] कुलत्थिका कुलत्थश्च कथ्यन्ते तद्गुणा अथ॥ कुलत्थः कटुकः पाके कषायः पित्तरक्तकृत्॥ ५२॥ लघुर्विदाहि वीर्य्योष्णः श्वासकास कफानिलान्॥ हन्ति हिक्काश्मरी शुक्र दाहानाहान् सपीनसान्॥ ५३॥ स्वेद संग्राहको मेदो ज्वर क्रिमि हरः परः॥

भा॰ अनन्तर कुरथी। कुलत्थिका कुलत्थ। येह कुरथी के नाम हैं। और अनन्तर इसके गुण कहते हैं॥ कुलथी पाकमें कड़वी कसैली पित्त रक्तको करने वालीहै॥ ५२॥ और हलकी विदाही वीर्य्यमें उष्ण श्वास कास कफ वात इनको नाश करती है॥ और हिचकी पथरी शुक्र दाह अफारा पथरी। इनको नाशकरती है॥ ५३॥ पसीनों को रोकनेवाली मेद ज्वर क्रमि इन की नाशक है॥

[अथ तिलः।] तिलः कृष्णः सितो रक्तः सवर्ण्योऽल्प तिलः स्मृतः॥ तिलोरसे कटुस्तिक्तो मधुर स्तुवरो गुरुः॥ ५४॥ विपाके कटुकः स्वादुः स्निग्धोष्णः कफ पित्तनुत्॥ बल्यः केश्यो हिमस्पर्श स्त्वच्य स्तन्यो व्रणे हितः॥ ५५॥ दन्त्योऽल्प मूत्रकृद् ग्राही वातघ्नोऽग्निमतिप्रदः॥ कृष्णः श्रेष्ठ तमस्तेषु शुक्लो मध्यमः सितः॥ ५६॥ अन्ये हीन तराः प्रोक्तास्तज्ज्ञै रक्तादय स्तिलाः॥

भा॰ अनन्तर तिल॥ तिल काला सफ़ेद लाल सवर्ण्य और अल्पतिल। ऐसा कहाहै॥ तिल रसमें कटु तिक्त मधुर कसैला भारी॥ ५४॥ विपाक में कटु मधुर चिकना गरम कफ पित्तका नाशकहै॥ और बलके हित केशको अच्छा करनेवाला शीतल स्पर्श वाला त्वचा के हित दुग्धको करने वाला

श्रणमें हित ॥ ५५॥ दांतोंके हित अल्प मूत्रको करनेवाला काबिज वातनाश् क अग्नि और मतिको देनेवाला है ॥ उनमें काला बहुत श्रेष्ठ है और शुक्रको करनेवाला मध्य श्वेत है ॥ ५६॥ और लाल आदिक तिल उनके जाननेवालों ने अत्यन्त ही गुण कहे हैं ॥

[अथातिसि।]

अनसी नीलपुष्पी च पार्वती स्यादुमा क्षमा ॥ अनसी मधुरा तिक्ता स्निग्धा पाके कटु र्गुरुः ॥ ५७॥ उष्णा दृक् शुक्र वातघ्नी कफपित्त विनाशिनी ॥

[अथ नोरी तोड़िसेति लोके।] तुवरी ग्राहिणी प्रोक्ता लघ्वी कफ विषास्रजित् ॥ तीक्ष्णोष्णा वन्हिदा कण्डू कुष्ठ कोष्ठ क्रमि प्रणुत् ॥ ५८॥

[अथ रक्त सरीसो पिअरी सरीसो।] सर्षपः कटुकः स्नेह स्तुन्तुभश्च कदम्बकः ॥ गोरस्तु सर्षपः प्राज्ञैः सिद्धार्थः इति कथ्यते ॥ ५९॥ सार्षपस्तु रसे पाके कटु स्निग्धः सतिक्तकः ॥ तीक्ष्णोष्णः कफ वातघ्नो रक्त पित्ताग्नि वर्द्धनः ॥ ६०॥

भा० अनन्तर अलसी। अनसी नीलपुष्पी पार्वती उमा क्षमा ॥ यह अलसी के नामहैं ॥ अलसी मधुर चिकनी तिक्त पाकमें कटु भारी ॥ ५७॥ गरम होती है और दृष्टि शुक्र वात इनकी नाशक और कफ पित्त इनकी नाशक है ॥

अनन्तर नोरी इसको तोडिस इस प्रकार कहते हैं ॥ नोरी काबिज हल्का कफ विष रक्त इनको जीतने वाला है ॥ तीखा उष्ण अग्निको करनेवाला है और खुजली कुष्ठ कोष्ट कृमि इनका नाशक है ॥ ५८॥

[अनन्तर लाल सरसों और पीली सरसो]

सर्षप कटुक स्नेह तुंतुभ कदंबक येह लाल सरसोंके नाम हैं ॥ पीली सरसों को बुद्धिवानों ने सिद्धार्थ ऐसा कहा है ॥ ५९॥ सरसों रस और पाक

में कटु चिकना कुछ तिक्त ॥ तीखा उष्ण कफ वातका नाशक और रक्त पित्त अ
ग्नि इनका बढ़ानेवाला है ॥

रक्षोहरो जयेत् कण्डू कुष्ठ कोष्ठ कृमिग्रहान् ॥ यथा
रक्तस्तथा गौरः किन्तु गौरो वरोमतः ॥ ६१॥

[अथ राई कृष्णा राई । राजीतु राजिका तीक्ष्ण गन्धाकु
ञ्जनिका सुरी ॥ क्षवक्षताभिजनकः कृमि कृत कृ-
ष्ण सर्षपः ॥ ६२ ॥ राजिका कफ पित्तघ्नी तीक्ष्णोष्णा
रक्त पित्त कृत ॥ किञ्चिद्रूक्षाग्निदा कण्डू कुष्ठ कोष्ठ कृ
मीन् हरेत् । ६३। अति तीक्ष्ण विशेषेण तद्वत् कृष्णा
पि राजिका ॥

भा० राक्षसों का नाशक है कंडू कोढ़ कृमि ग्रह इनको जीतता है ॥ जैसे लाल
वैसे पीला किन्तु पीला श्रेष्ठ कहा है ॥ ६१॥ [अनन्तर राई काली राई]
राजि राजिका तीक्ष्णगन्धा कुञ्जनिका सुरी ॥ येह राईके नाम हैं । छींक औ
र घावको करने वाला कृमिको करनेवाला काला सरसों होता है ॥ ६२॥ राई क
फ पित्तकी नाशक तीखी गरम रक्त पित्त को करनेवाली ।कुछेक रूखी अग्नि दी
पन खुजली कुष्ठ कोष्ठ कृमि इनको नाश करती है ॥ ६३॥ बहुत तीखी इस वि-
शेषण से उसीके सदृश काली राई होती है ॥

[अथ क्षुद्र धान्यम् ।] क्षुद्र धान्यं कुधान्यञ्च तृणधा
न्य मितिस्मृतम् ॥ क्षुद्र धान्य मनुष्णं स्यात् कषायं
लघु लेखनम् ॥ ६४ ॥ मधुरं कटुकं पाके रूक्षञ्च
क्लेद शोषकम् ॥ वात कृत् बद्ध विट्कञ्च पित्त रक्त
कफा पहम् ॥ ६५ ॥ [तत्र कङ्गुनी ।]
स्त्रियां कङ्गु प्रियङ्गु द्वे कृष्णा रक्ता सिता तथा ॥

पीता चतुर्विधा कङ्गुस्तासाम्पीता वरास्मृता ॥ ६६
कङ्गुस्तु भग्नसन्धान वातकृत् बृंहणी गुरुः ॥ रूक्षा
श्लेष्म हरातीव वाजिनां गुणकृद् भृशम् ॥ ६७॥
[अथ चीना] चीनाकः कङ्गुभेदोऽस्ति सज्ञेयः क
ङ्गुवद्गुणैः ॥ [अथ श्यामा] श्यामाकः शोषणो
रूक्षो वातलः कफपित्त हृत् ॥

भा० अनन्तर क्षुद्रधान्य । क्षुद्रधान्य कुधान्य तृणधान्य येह छोटे ना
ज के नामहैं ॥ क्षुद्रधान्य शीतल कसेला हलका लेखन ॥ ६४॥ मधुर
पाकमें कटु रूखा कफको सुखानेवाला ॥ वातको करनेवाला और मलको
वान्धनेवाला पित्त रक्त और कफका नाशक है ॥ ६५॥
उनमें कंगुनी । स्त्री लिङ्गमें कङ्गु प्रियङ्गु येदोनों होतेहैं । काली लाल सुफेद
तथा । पीली ऐसी चार प्रकार की कंगुनी होतीहै ॥ उनमें पीली श्रेष्ठ कहीहै ॥
॥ ६६॥ कंगुनी टूटे हाड़को जोड़नेवाली वातकृत पुष्ट भारी ॥ रूखी कफकी
अत्यन्त नाशक है और घोड़ोंको अत्यन्तही गुण करनेवालीहै ॥ ६७॥
अनन्तर चीना ॥ चीना कंगुनी का भेदहै उसको गुणमें कंगुनी के समान जा
नना चाहिये ॥ [अनन्तर सांवा । सांवा शोषण रूखा
वात को करने वाला कफ पित्तका नाशक है ॥

[अथ कोद्रवः]

कोद्रवः कोरदूषः स्यादुद्दालो वनकोद्रवः ॥ कोद्र
वो वातलो ग्राही हिमपित्तकफापहः ॥ ६८॥ उद्दा
लस्तु भवेदुष्णो ग्राही वातकरो भृशम् ॥
[अथ चारुकः सरबीजः । चारुकः सरबीजः स्यात्
कथ्यन्ते तद्गुणा अथ ॥ चारुको मधुरो रूक्षो रक्त
पित्तकफापहः ॥ ६९ ॥ शीतलो लघु वृष्य श्च ।

कषायो वातकोपनः ॥ [अथ वंशबीजः ।] यवा वंश भवा रूक्षा कषायाः कटु पाकिनः ॥ बद्धमूत्राः कफघ्नाश्च वातपित्त कराः सराः ॥७०॥ [अथ वरेकुसुम्भबीज ।] कुसुम्भ बीजं वरटा सैव प्रोक्ता वरट्टिका ॥ वरटा मधुरा स्निग्धा रक्त पित्त कफापहा । ।७१॥ कषाया शीतला गुर्वी स्याद्वृष्या निलापहा ॥

भा० [अनन्तर कोदों ।] कोद्रव कोरदूष यह कोदोंके नामहैं और वनकोद्रव उद्दाल येह वन कोदोंके नामहैं ॥ कोदों वातको करनेवाला काविज़ शीतल कफ का नाशक है ॥ ६८ ॥ वनकोदों उष्ण क़ाविज़ और अत्यन्त वातको करनेवाला है ॥ [अनन्तर नारुक सरवीज का नामहैं ।] अनन्तर उसका गुण कहतेहैं ॥ सरवीज मधुर रूखा रक्तपित्त कफ इनका नाशक है ॥ ६९ ॥ और शीतल हलका शुक्रको उत्पन्न करनेवाला कसैला वातको करनेवाला है ॥

[अनन्तर बांसके बीज ॥ बांसके बीज रूखे कसैले और कटु पाकवाले हैं ॥ मूत्रको रोकनेवाले कफ नाशक वात पित्त को करनेवाले सर होतेहैं ॥ ७०॥ [अनन्तर वरे कुसुंभ बीज ।] कुसुंभबीज वरटा और वही वरट्टिका भी कहाहै । वरटा मधुर चिकना और रक्त पित्त कफका नाशक है ॥७१॥ और कसैला शीतल भारी शुक्रको करनेवाला वात नाशक होता है ॥

[अथ गरहेडुआ । गवेधुका तु विद्वद्भि र्गवेधुः कथिता स्त्रियाम् ॥ गवेधुः कटुका स्वाद्वी कार्श्यकृत्त्कफ नाशिनी ॥ ७२॥ [अथ नीनी । प्रसाधिका तु नीवार स्तृणान्त भितिच स्मृतम् ॥ नीवारः शीतलोग्राही पित्तघ्नः कफवात कृत् ॥७३॥

[अथ पुनेरा ।]

पवनाः लोहितः स्वादु र्लोहितः श्लेष्म पित्तजित् ।

अहृष्य स्तुवरो रूक्षः क्लेदहृत् कथितो लघुः ॥७४॥
धान्यं सर्व्वं नवं स्वादु गुरु श्लेष्म करं स्मृतम् ॥ तत्तु
वर्षोषितं पथ्यं यतो लघुतरं हितम् ॥७५॥ वर्षोषि-
तं सर्वधान्यं गौरवं परिमुञ्चति ॥ नतु त्यजति वीर्य्यं
स्वं क्रमात् मुञ्चत्यतः परम् ॥७६॥ एतेषु यव गोधू
म तिलमाषा नवा हिताः ॥ पुराणा विरसा रूक्षा न-
तथा गुणकारिणः ॥ ७७ ॥

भा० अनन्तर गरहेडुआ । गवेधुका को जो विद्वानों ने गवेधु ऐसा स्त्री लिंग में कहा है ॥ इसको देवधान कहते हैं । देवधान कडुवा मधुर कृशता को करने वाला कफ पित्तका नाशक है ॥ ७२॥

[अनन्तर तिन्नी ॥ प्रसाधिका नीवार और तृणान्न । येह तिन्नी के नाम हैं। तिन्नी शीतल काबिज़ पित्त नाशक कफ वातकी करने वाला है ॥ ७३॥

[अनन्तर धुनेरा।] धवना लोहित येह धुनेरा के नाम हैं ॥ धुनेरा लालमधु र कफ पित्तको जीतने वाला है ॥ और शुक्र का नाशक कसैला ग्लानि को क रनेवाला हलका कहा है ॥ ७४॥

सब नया धान मधुर भारी और कफ को करनेवाला कहा है ॥ वोह ऊपर से व रसात निकला हुवा हित होता है क्यों कि वोह बहुत हलका होता है ॥ ७५॥
ऊपर से बरसात गुजर जानेपर सब धान भारीपनको छोड देते हैं ॥ परन्तु अ पने वीर्य्यको नहीं छोडते इसके उपरान्त क्रमसे छोड देते हैं ॥ ७६॥
इनमें जव गेहूं तिल उडद ये नये हितहैं ॥ पुराने वेरस रूखे और वैसे गुणका री भी नहीं हैं ॥ ७७ ॥

(क) पुराणा वर्ष द्वया दुपरि स्थिता। यवाद्यो नवाः स्वास्थ्यान् प्रतिहिताः। पथ्याशिनान्तु पुराणा हिताः। पुराण यव गोधूम क्षौद्र जाङ्गल शूल्य भुगिति चासन्ते वाग्भटे नोक्तत्वात् ॥

इति श्री भावप्रकाशे धान्यवर्गः॥ ❋॥

भा० (क) पुराने अर्थात् दो वरस से ऊपर के जव आदिक नये निरोगियों को हितहैं॥ और पथ्य भोजन करने वालों को तो पुराने हितहैं॥ पुराने जव गेहूं मधु हरिण आदियों के मांस का कवाब इनको भोजन करनेवाला॥ इस प्रकार वसन्त ऋतुमें वाग्भट ने कहा है इस्से॥

इति श्री भावप्रकाश में धान्य वर्गः॥ ❋॥

अथ शाक वर्गः। तत्र शाक निरूपणम्।]

पत्रं पुष्पं फलं नालं कन्दं संस्वेदजं तथा॥ शाकं षड्विध मुद्दिष्टं गुरु विद्या यथोत्तरम्॥७८॥

[अथ शाकानां गुणाः। प्रायः शाकानि सर्व्वाणि विष्टम्भीनि गुरूणि च॥ रूक्षाणि बहु वर्चांसि सृष्ट विण् मारुतानि च॥७९॥ शाकं भिनत्ति वपुर स्थि निहन्ति नेत्रम्॥ वर्णं विनाशयति रक्त मथापि शुक्रम्॥८०॥ प्रज्ञा क्षयश्च कुरुते पलितञ्च नूनम्॥हन्तिस्मृतिं गति मिति प्रवदन्ति तज्ज्ञाः॥८१

भा० अनन्तर शाकवर्ग उसमें शाक निरूपण॥ पत्र फूल फल नाल कन्द तथा संस्वेदज॥ इस प्रकार छः प्रकार का साग कहाहै॥ उनमें यथोत्तर भारी जाने॥७८॥ [अनन्तर शाकों के गुण] प्राय सब शाक विष्टम्भी और भारी हैं। तथा रूखे बहुत मलको करने वाले और मल वानको करने वाले हैं॥॥७९॥ साग शरीर की अस्थिको भेदन करता है और नेत्रको नाश करती है॥ तथा वर्णको नाश करता है और रक्त तथा शुक्रको भी नाश करता है॥॥८०॥ बुद्धिका क्षयभी करता है।सिरके बाल धौले भी होने हैं॥ और स्मृति तथा मतिको भी नाश करता है ऐसा उसके जानने वालों ने कहा है॥८१

शाकेषु सर्व्वेषु वसन्ति रोगास्ते हेतवो देह विनाश-

नाय ॥ तस्मात् बुधः शाक विवर्ज्जनन्तु कुर्य्यात्त
थाम्लेषु स सर्वदोषः ॥ ८२॥ एतानि शाक निन्द
कानि वचनानि सामान्यानि ॥

अथ शाकेषु विशिष्टानि वचनानि। [तत्र पत्र शाका
नि] [तत्रापि वास्तूक द्वयस्य नामानि गुणाश्च।]

वास्तुकं वास्तुकञ्च स्यात् क्षार पत्रञ्च शाकराट् ॥
तदेवतु वृहत्पत्रं रक्त स्यात्गौड़ वास्तुकम् ॥८३॥
प्रायशो यव मध्ये स्याद्यवशाकं मतः स्मृतम् ॥
वास्तू कद्वितयं स्वादु क्षारं पाके कटूदितम् ॥८४॥
दीपनं पाचनं रुच्यं लघु शुक्रवल प्रदम् ॥ सरं
प्लीहास्र पित्तार्शः कृमिदोष त्रयापहम् ॥८५॥

भा० सब सागों में रोग बसतेहैं वेही देह नाशके कारण हैं ॥ इस वास्ते बु द्धिवान् साग न सेवन करे वैसेही अम्लमें भी वोही दोषहै ॥ ८२॥ यह साग की निन्दाके सामान्य वचन हैं ॥ अनन्तर शाकमें विशेष वचन को कहते हैं ॥ [उसमें पत्र शाक। उनमें भी दोनों बथुवों के नाम और गुण कहते हैं-॥ वास्तूक और वास्तुक भी होता है ॥ क्षारपत्र शाक राट्। येह बथुवे के नाम हैं। वोही बड़े पत्तोंका लाल होता है। उस्को गौड़ वास्तुक कहते हैं ॥ ८३॥ प्राय: जवके बीचमें होता है इसवास्ते जवशाक कहा है ॥ दोनों बथुवे मधुर क्षार पाकमें कड़वे कहेहैं ॥ ८४ ॥ और दीपन पाचन रुचि को करनेवाले हलका शुक्र बल को देनेवाले हैं। सर पिल्ही रक्त पित्त बवासीर कृमी तीनों दोष इनके नाशक हैं ॥ ८५॥

[अथ पोतकी] पोतक्यु पोदिका सा तु मालवा मृत व-
ल्लरी ॥ पोतकी शीतला स्निग्धा श्लेष्मला वात-

पित्तनुत् ॥८६॥ अकराठ्या पिच्छिला निद्रा शु-
क्रदा रक्त पित्तजित् ॥ बलदा रुचिकृत् पथ्या बृं-
हणी तृप्तिकारिणी ॥८७॥

[अथ श्वेतमरुसा।] लोहितमरुसा नवडा इति च।
मारिषो वाष्पको मार्षः श्वेतो रक्तश्च स स्मृतः॥
मारिषो मधुरः शीतो विष्टम्भी पित्तनुत गुरुः॥८८
वातश्लेष्मकरो रक्त पित्तनुत विषमाग्नि जित् ॥
रक्तमार्षो गुरुर्नाति सक्षारो मधुरः सरः॥८९॥
श्लेष्मलः कटुकः पाके स्वल्पदोष उदीरितः ॥

भा० अनन्तर पोई की साग ॥ पोतकी उपोदिका मालवा अमृतवल्लरी येह पोईके नामहैं ॥ पोई शीतल चिकनी कफको करने वाली वात पित्तकी नाशक है ॥ ८६॥ कंठके अहित पिच्छिल निद्रा और शुक्र कोकनेवाली तथा रक्त पित्तको जीतने वाली है ॥ और बल कोदेनेवाली रुचिको करनेवाली पथ्य पुष्ट तथा तृप्ति को करने वालीहै ॥ ८७ ॥ अनन्तर सुफ़ेद मरसा ॥ और लाल मरसा नवडा इस प्रकार भी कहतहैं ॥ मारिष वाष्पक मार्ष येह मरसेके नामहैं ॥ वोह लाल और सुफ़ेद कहाहै ॥ मरसा मधुर शीतल विष्टंभ करनेवाला पित्तका नाशक भारीहै ॥ ८८॥ वातकफको करनेवाला रक्त पित्तका नाशक विषम अग्निको जीतने वालाहै ॥ लाल मरसा बहुत भारी नहीं होता। और क्षीरके सहित मधुर सर होता है ॥ ८९॥ और कफको करनेवाला पाकमें कटु और अल्पदोष करने वाला कहाहै ॥

[अथ चवराई। अल्पमरुसा इतिच। तराडुलीयो
मेघनादः काराडे रक्तराडुलेरकः॥ भराडीर स्त
राडुली बीजो विष घ्नश्चाल्प मारिषः॥९०॥ त-

तण्डुलीयो लघुः शीतो रूक्षः पित्तकफास्रजित् ॥
सृष्टमूत्रमलो रुच्योदीपनो विषहारकः ॥ ६१ ॥
[अथ चवराई भेदः। जलतण्डुलीयं शास्त्रे कच्चटमिति।
प्रसिद्धम् ॥ पानीयं तण्डुलीयन्तु कच्चटं समुदाहृत-
म् ॥ कच्चटं तिक्तकं रक्तपित्तानिलहरं लघु ॥ ६२॥
[अथ पलकी। पलक्या वास्तुकाकारा छुरिका चीरि
तच्छदा ॥ पलक्या वातला शीता श्लेष्मला भेदिनी
गुरुः ॥ ६३ ॥ विष्टम्भिनी मदश्वास पित्तरक्तकफापहाः।

भा० अनन्तर चवराई। छोटा मरसा इस प्रकार कहते हैं। तण्डुलीय मेघ नाद काण्डेर तंडुलेरक ॥ मंडीर तंडुली बीज विषघ्न अल्पमारिष। ये ह चवराई के नाम हैं॥ ६०॥ चवराई हलकी शीतल रूखी पित्त कफ रक्त इनको जीतने वाली है॥ और मल मूत्रको करनेवाली रुचिको करनेवाली दीपन। विषनाशक है ॥ ६१॥
अनन्तर दूसरे क़िसम की चवराई ॥ पनिया चवराई शास्त्रमें कच्चट इस नामसे प्रसिद्ध है। पानीय तंडुलीयक कच्चट। इस प्रकार कहा है ॥ पनिया चवराई तिक्त रक्तपित्त और वात इनकी नाशक हलकी होती है ॥ ६२॥ [अनन्तर पालक। पलक्या वास्तुकाकारा अर्थात् बथुवे कीसी छुरिका चीरीतच्छदा यह पालक के नाम हैं ॥ पालक वात कोकरनेवाला शीतल कफ को करनेवाला भेदन भारी है ॥ ६३॥
और विष्टम्भ को करने वाला तथा मद श्वास पित्त रक्त कफ इनका नाशक

[अथ नाड़ीचा कालशाकमिति च। नाडिकं काल
शाकञ्च श्राद्धशाकञ्च कालकम् ॥ कालशाकं
सरं रुच्यं वातकृत कफशोथहृत् ॥ ६४ ॥ बल्यं
रुचिकरं मेध्यं रक्तपित्तहरं हिमम् ॥

[अथ पटुआ। पट्टशाकस्तु नाडीको नाडीशाकश्च सः स्मृतः॥ नाडीको रक्तपित्तघ्नो विष्टम्भी वातकोपनः॥ ९५॥ [अथ कलम्बी। कलम्बी शतपर्वी च कथ्यन्ते तद्गुणा अथ॥ कलम्बी स्तन्यदा प्रोक्ता मधुरा शुक्रकारिणी॥ ९६॥

भा० अनन्तर नरेवा। इसको कालासागभी कहते हैं॥ नाडीक कालशाक श्राद्धशाक कालक। येह्र काले साग के नाम हैं। कालासाग रुचिको करने वाला सर वायुको करनेवाला और कफ शोथका नाशक है॥ ९४॥ तथा बलको करने वाला रुचिकर कान्तिको करने वाला रक्त पित्त का नाशक शीतल है॥

[अनन्तर पटुवा।]

पट्टशाक नाडीक नाडीशाक। येह पटुवा के नाम हैं॥ पटुवा रक्तपित्त का नाशक विष्टम्भ करनेवाला वातका कोपन है॥ ९५॥

अनन्तर कलंबी साग। कलंबी शतपर्व्वी। येह कलंगी सागके नाम हैं॥ अनन्तर उसके गुण कहते हैं। कलंगी दुग्धको करनेवाली कही है॥ और मधुर शुक्रको करनेवाली है॥ ९६॥

[अथ लोणि। वृहल्लोणी। लोणा लोणी च कथिता। वृहल्लोणी तु घोटिका॥ लोणी रूक्षा स्मृता गुर्व्वी वातश्लेष्म हरी पटुः॥ ९७॥ अर्शोघ्नी दीपनी चाम्ला मन्दाग्नि विषनाशिनी॥ घोटिका म्ला सरा चोष्णा वातकृत् कफ पित्त हृत्॥ ९८॥ वाग्दोष व्रणगुल्मघ्नी श्वास कास प्रमेह नुत्॥ शोथ लोचन रोगे च हिता तज्ज्ञै रुदाहृता॥ ९९॥

भा० अनन्तर नोनिया छोटी और बड़ी॥ लोणा लोणी येह नोनिया के नाम हैं॥ और बड़ी नोनिया को घोटिका कहते हैं॥ नोनिया रूखी कही है। और भारी वात कफकी नाशक नमकीन होती है॥ ९७॥

और ववासीर की नाशक दीपन खट्टी होती है ॥ तथा मन्दाग्नि विष इनकी नाश कहै ॥ बड़ी नोनिया खट्टी सर गरम वातको करने वाली कफ पित्तकी नाशक है ॥ ९८ ॥ वारुणी का दोष व्रण वायगोला इनकी नाशक है ॥ तथा श्वास कास प्रमेह इनकी नाशक ॥ तथा स्खलन और नेत्र रोगमें भी हितहै। ऐसा उस्के जानने वालोंने कहा है ॥

[अथ चाङ्गेरी अम्बिली नारति च।]

चाङ्गेरी चुक्रिका दन्त शठाम्बष्टाम्ल लोणिका ॥ अ

श्मन्तकस्तु शफरी पिसली चाम्लपत्रकः॥ २०० ॥चा

ङ्गेरी दीपनी रुच्या रूक्षोष्णा कफ वात नुत् ॥ पित्तला

म्ला ग्रहण्यर्शः कुष्ठाती सार नाशिनी ॥ २०१॥

[अथ चूक। चुक्रिका स्यात् तु पत्राम्ला रोचनी शतवेधि

नी ॥ चुक्रा त्वम्ल तरा स्वाद्वी वातघ्नी कफ पित्त कृत्

॥ २ ॥ रुच्या लघु तरा पाके वृन्ताके नाति रोचनी ॥

भा० अनन्तर चाङ्गेरी येह चूकका भेदहै ॥ चांगेरी चुक्रिका दन्तशठा अम्बष्ठा अम्ललोणिका। येह चङ्गेरी के नाम हैं ॥ और अश्मन्तक शफरी पिसली अम्लपत्रक येह भी उस्के नाम हैं ॥ २००॥ चांगेरी दीपनी रुचि को करनेवाली रूखी उष्ण कफ वातकी नाशक ॥ पित्तको करने वाली है। खट्टी होतीहै। और संग्रहणी ववासीर कुष्ठ अतीसार इनकी नाशक है ॥ २०१ ॥ [अनन्तर चूक] चुक्रिका पत्राम्ला रोचनी शतवेधिनी ॥ येह चूक के नाम हैं ॥ चूक बहुत खट्टी मधुर वात नाशक कफ पित्तको करने वाली ॥ २०२॥ रुचिको करनेवाली पाकमें बहुत हलकी वैंगनमें बहुत रुचिको करनेवाली नहीं होती ॥

[अथ चेवुना। नाडीच वन्।]

चिञ्चा चञ्चु श्च ञ्चु की च दीर्घ पत्रा सतिक्तका ॥

चुञ्चुः शीता सरा रुच्या स्वाद्वी दोषत्रया पहा ॥ २०३
धातु पुष्टि करी बल्या मेध्य पिच्छिलिका स्मृता ॥
[अथ हिलमोचिका । हुर हुर इति लोके ॥
ब्राह्मी शङ्खधरा चारी ब्राह्मी च हिल मोचिका ॥
शोथं कुष्ठं कफं पित्तं हरते हिल मोचिका ॥२०४॥
[अथ शिरी आरी । शितिवार ः शितिवर ः स्वस्तिक ः
सुनिषण्णक ः ॥ श्रीवारक ः सूचिपत्र ः परीक ः
कुक्कुट ः शिखी ॥ २०५ ॥ चाङ्गेरी सदृश ः पत्र श्च
तुर्द्दल इतीरित ः ॥ शाको जलान्विते देशे चतु ः
पत्रीति चोच्यते ॥ २०६ ॥सुनिषण्णो हिमो ग्राही ।
मोह दोष त्रयापह ः ॥ अविदाही लघु ः स्वादु ः
कषायो रूक्ष दीपन ः ॥२०७ ॥ वृष्यो रुच्यो ज्वर
श्वास मेह कुष्ठ भ्रम प्रणुत् ॥

भा० अनन्तर चेचुना । चिञ्चा चञ्चु । चंचुकी दीर्घपत्रा सतिक्तका ये ह चाचुना के नामहैं ॥ चाचुना शीतल सर रुचिको करनेवाला मधुर तीनों दोषोंका नाशक है ॥ २०३ ॥ धातु पुष्ट करने वाला बलको करने वाला कान्तिको करनेवाला पिच्छिलकहा है ॥

[अनन्तर हुरहुर । ब्रह्मी शंखधरा चारी ब्राह्मी हिलमोचिका येह हु र हुरके नामहैं ॥ हुरहुर सूजन कुष्ठ कफ पित्त इनको हरता है ॥ २०४ ॥ [अनन्तर शिरीयारी ॥ शितिवार शितिवर स्वस्तिक सुनिषण्णक ॥ श्रीवारक सूचिपत्र परीक कुक्कुट शिखी यह शिरी यारीके नामहैं ॥ १०५ ॥ येह चङ्गेरी के समान पत्र चौपत्ती कहाग याहै ॥ येह साग जलान्वितदेशमें चौपत्ती ऐसा कहतेहैं ॥ २०६ ॥ शिरीयारी शीतल काबिज़ होतीहै और मोह तथा तीनोंदोष इनकी

नाशक है ॥ और अविदाही हलकी मधुर कसैली रूखी दीपन है ॥ ॥ २०७ ॥ और शुक्रको करनेवाली और रुचिको करनेवाली है। और ज्वर श्वास प्रमेह कुष्ठ भ्रम इनकी नाशक है ॥

[अथ मुरई पत्रम् ॥ पाचनं लघु रुच्योष्णं पत्रं मूलकजं नवम् ॥ स्नेह सिद्धं त्रिदोषघ्नं मसिद्धं कफपित्तकृत् ॥ २०८ ॥ [अथ गुम्मा। द्रोणपुष्पी दलं स्वादु रूक्षं गुरु च पित्तकृत ॥ भेदनं कामला शोथ मेह ज्वर हरं कटु ॥ २०९ ॥

अनन्तर मूलीके पत्ते ॥ नये मूली के पत्ते पाचन हलके रुचिको करने वाले उष्ण होते हैं ॥ और चिकनाई में सिद्ध किये हुवे त्रिदोष नाशक और कच्चे कफ पित्तको करने वाले हैं ॥ २०८ ॥ [अनन्तर गुम्मा। गुम्माका पत्र मधुर रूखा भारी पित्तको करनेवाला है ॥ और भेदन कामला सूजन प्रमेह ज्वर इनका नाशक कटु है ॥ २०९ ॥

[अथ जवाइन।]

यवानी शाकमाग्नेयं रुच्यं वात कफ प्रणुत् ॥ उष्णं कटु च तिक्तं च पित्तलं लघु शूलहृत् ॥ २१० ॥

[अथ चकबंड। दद्रुघ्न पत्रं दोषघ्न मम्लं वात कफापहम् ॥ कण्डू कास कृमि श्वास दद्रू कुष्ठ प्रणुल्लघु ॥ २११ ॥ [अथ सेहुण्ड। सेहुण्डस्य दलं तीक्ष्णं दीपनं रेचनं हरेत् ॥ आध्मानाष्ठीलिका गुल्म शूल शोथो दराणि च ॥ २१२ ॥

भा० अनन्तर अजवाइन का साग।] अजवाइन का साग गरम रुचि को करनेवाला वात कफका नाशक है। और उष्ण कटु तिक्त पित्तको करनेवाला है ॥ हलका और शूल को हरने वाला है ॥ २१० ॥

[चकवड़। चकवड़ के पत्र दोष नाशक खट्टे और वात कफ के नाशक हैं॥ और खुजली कास कृमि श्वास दाद कोढ़ इनका नाशक है॥२११॥
[अनन्तर थूहर के पत्ते। सेहुंड के पत्ते तीखे दीपन रोचन होते हैं॥ और आध्मान अष्ठीला वायगोला शूल सूजन और उदर रोग इनका नाश करता है॥२१२॥

[अथ दवनपापरा।]

पर्प्पटो हन्ति पित्तास्र ज्वर तृष्णा कफ भ्रमान्॥सं
ग्राही शीतलस्तिक्तो दाहनुद्वातलो लघुः॥२१३॥
[अथ गोभी] गोजिह्वा कुष्ठमेहास्र कृच्छ्र ज्वरहरो ल
घुः॥ [अथ पटोलपत्र। पटोलपत्रं पित्तघ्नं दीपनं
म्पाचनं लघु॥ स्निग्धं वृष्यं तथोष्णञ्च ज्वर कास
कृमि प्रणुत्॥ २१४॥

भा० अनन्तर पित्त पापड़ा। पित्तपापड़ा रक्तपित्त ज्वर तृषा कफ भ्रम इन का नाश करता है। और ग्राविक शीतल तिक्त दाह इनको नाशक वातको करनेवाला हलका होता है॥२१३॥
अनन्तर गोभी। गोभी कोढ़ प्रमेह रक्त मूत्रकृच्छ्र ज्वर इनकी नाशक हलकी। चिकनी शुक्रको करनेवाली तथा उष्ण ज्वर कास कृमि इनकी नाशक है॥२१४॥

[अथ गुडूची। गुडूची पत्रमाग्नेयं सर्व ज्वर हरं लघु
॥ कषायं कटु तिक्तञ्च स्वादुपाकं रसायनम्॥२१५
॥ बल्य मुष्णञ्च संग्राहि हन्यात् दोष त्रयं तृषाम्॥
दाह प्रमेह वातास्रक् कामला कुष्ठ पाण्डुताम्॥
॥२१६॥ [अथ कसौदी।
काम मर्द्दोऽरि मर्दश्च कासारिः कर्कशस्तथा॥

कास मर्द दलं रुच्यं वृष्यं कास विषास्त्रनुत् ॥ २१७॥ मधुरं कफ वातघ्नं पाचनं कण्ठ शोधनम् ॥ विशेषतः कास हरं पित्तघ्नं ग्राहकं लघु ॥ २१८ ॥

भा० अनन्तर गिलोय के पत्ते ॥ गिलोय के पत्र गरम सब ज्वरके नाशक हलके ॥ कसैले कड़वे तिक्त पाकमें मधुर रसायन ॥ २१५॥ बलको करनेवाले उष्ण काबिज होतेहैं। और तीनों दोष तथा तृषा इनका नाश करतेहैं ॥ और दाह प्रमेह वातरक्त कामला कुष्ठ पाण्डुरोग इनको भी नाशकरताहै ॥ २१६॥ अनन्तर कसौंदी। कासमर्द अरिमर्द कासारि तथा कर्कश यह कसौन्दी केनामहैं ॥ कसौन्दी के पत्र रुचिकोकरनेवाले शुक्रको करनेवाले और कास विष रक्त इनके नाशक हैं ॥ २१७॥ और मधुर कफ वातके नाशक पाचन कण्ठ के शोधन है ॥ विशेषकरके कास नाशक पित्त नाशक हैं और काबिज हलके हैं ॥ २१८॥ [अथ चणाक।

रुच्यञ्चणकशाकं स्यात् दुर्ज्जरं कफवात कृत् ॥ अम्लं विष्टम्भ जनक म्पित्तनुत् दन्त शोथहृत् ॥ २१९॥

[अथ केराव। कलाय शाकम्भेदि स्याल्लघु तिक्त न्त्रिदोष जित ॥

[अथ सरिसो।] कटुकं सार्षपं शाकं बहु मूत्रमलं गुरु ॥ अम्ल पाकं विदाहि स्यादुष्णं रूक्षं त्रिदोष जित् ॥ २२०॥

भा० अनन्तर चनेका साग। चनेका साग रुचिको करनेवालाहै। और दुर्जर कफ वातको करनेवाला ॥ और खट्टा विष्टंभकरनेवाला पित्तनाशक और दांतों की सूजनको दूर करनेवालाहै ॥ २१९॥ [अनन्तर मटरकासाग। मटर की साग भेदनकरनेवाला हलका तिक्त त्रिदोषको जीतनेवालाहै ॥ [अनन्तर सरसोंकासाग। सरसोंका साग कड़वा बहुत मूत्र मलको करनेवाला भारी ॥ पाकमें अम्ल विदाही उष्ण रूखा त्रिदोषको जीतनेवालाहै। २२०

सक्षारं लवणन्तीक्ष्णं स्वादु शाकेषु निन्दितम् ॥

[अथ पुष्पशाकानि। तत्रागस्ति पुष्पस्य गुणाः ॥

अगस्ति कुसुमं शीतं चातुर्थक निवारणम् ॥ नक्तान्ध्य नाशनन्तिक्तं कषायं कटु पाकिच ॥ २२१ ॥ पीनस श्लेष्म पित्तघ्नं वातघ्नं मुनिभिर्मतम् ॥

[अथ कदली पुष्पम् ।] कदल्याः कुसुमं स्निग्धं मधुरं तुवरं गुरु ॥ वात पित्त हरं शीतं रक्तपित्त क्षयं प्रणुत् २२२

[शोभाञ्जन ।] शिग्रोः पुष्पन्तु कटुकन्तीक्ष्णोष्णं स्नायु शोथकृत ॥ कृमिहृत् कफ वातघ्नं विद्रधि प्लीह गुल्म जित् ॥ २२३ ॥ मधु शिग्रो स्त्वक्षिहितं रक्तपित्त प्रसादनं

भा० क्षार के सहित नमकीन तीखी मधुर और सागोंमे निन्दित है ॥ अनन्तर पुष्प शाकोंको कहतेहैं ॥ उनमें अगस्तिके फूलका गुण कहते हैं ॥ अगस्तिका फूल शीतल और चौथैया को दूर करने वाला है ॥ और रतौन्धीका नाशक तिक्त कसैला पाकमें कटु होताहै ॥ २२१ ॥ और पीनस कफ पित्तका नाशक वातनाशक होताहै । ऐसा मुनियोंने कहाहै ॥

[अनन्तर केलेका फूल । केलेका फूल चिकना मधुर कसैला भारी ॥ वात पित्तका नाशक शीतल और रक्त पित्त क्षय इनका नाशक है ॥ २२२ ॥ सहिंजना । सहिंजनेका फूल कड़वा तीखा उष्ण स्नायु शोथ को करने वाला ॥ कृमिका नाशक कफ वातका नाशक और विद्रधि पिलहि वायगोला इनको जीतने वालाहै ॥ २२३ ॥ लाल सहिंजना नेत्रके हित रक्त पित्तको अच्छा करनेवाला है ॥

अथ शाल्मली पुष्पम् । शाल्मली पुष्प शाकन्तु घृत सैन्धव साधितम् ॥ प्रदरं नाशयत्येव दुःसाध्यञ्च न संशयः ॥ २२५ ॥ रसे पाकेच मधुरं कषायं शीतलं गुरु ॥ कफ पित्ता स्र जिद् ग्राहि वातलञ्च प्रकीर्तितम् ॥

[अथ फल शाकानि ।] तत्र कुष्माण्डस्य नामानि गुणाश्च । कूष्माण्डं स्यात्पुष्प फलम्पीन पुष्पं बृहत् फलम् ॥

कूष्माण्डं बृंहणं वृष्यं गुरु पित्तास्रवात नुत् ॥ २२६॥
बालं पित्तापहं शीतं मध्यमं कफ कारकम् ॥ वृद्धं ना
ति हिमं स्वादु सक्षारं दीपनं लघु ॥ २२७ ॥ वस्ति शुद्धि
करं चेतो रोग हृत्सर्व्व दोष जित ॥

भा० अनन्तर सेमलका फूल ॥ सेमल के फूलका साग घृत सैन्धव सेसिद्ध किया हुवा कष्टसाध्य प्रदरको भी नाशकरता है इसमें कोई सन्देह नहीं ॥ १२४ ॥ रस और पाकमें कटु मधुर कसैला शीतल भारी होता है ॥ और कफ रक्त पित्त इनको जीतने वाला है काविज़ वातको करने वाला कहा है। ॥१२५॥ अनन्तर फूल शाक । इनमें पेठेके नाम और गुण । कूष्माण्ड पुष्प फल पीतपुष्प बृहत फल येह पेठेके नाम हैं ॥ पेठा पुष्ट शुक्रको करने वाला भारी रक्त पित्त और वात इनका नाशक है ॥ २२६ ॥ छोटा पित्त नाशक और शीतल होता है और मध्यम कफ करनेवाला ॥ तथा बड़ा बढ़त शीतल नहीं होता और मधुर क्षारके सहित दीपन हलका ॥ २२७ ॥ वस्तिको शुद्ध करनेवाला मानसिक रोगोंका नाशक और सब दोषों को जीतने वाला है ॥

[अथ कोहडी।] कूष्माण्डी तु भृशं लघ्वी कर्कारुरपि कीर्त्ति
तम् ॥ कर्कारुर्ग्राहिणी शीता रक्त पित्तहरा गुरुः ॥ २२८
पक्का तिक्ताग्नि जननी सक्षारा कफवात नुत ॥

[अथ लवलौआ । गृहलौआ ।] अलाबूः कथिता तुम्बी द्विधा
दीर्घा च वर्त्तुला ॥ मिष्टतुम्बी दलं हृद्यं पित्तश्लेष्मापहं
गुरु ॥ २२९ ॥ वृष्यं रुचिकरं प्रोक्तं धातु पुष्टि विवर्द्धनम्

भा० अनन्तर छोटा पेठा ॥ छोटा पेठा बहुत हलका होता है। और इसको कर्का रुभी कहते हैं ॥ छोटा पेठा काविज़ शीतल रक्त पित्तका नाशक और भारी होताहै ॥ २२८ ॥ पक्का तिक्त अग्निको करनेवाला क्षारके सहित कफ वात का नाशक है ॥ अनन्तर लौकी । अलाबू तुम्बी येह लौकी के नाम हैं ॥ यह दो प्रकारकी होतीहै लंबी और गोल ॥ मीठी तुम्बी के पत्र हृद्य पित्त कफके ना-

शक भारी होते हैं ॥ १२९ ॥ और शुक्र को करनेवाला रुचिकर धातु पुष्टि को ब ढ़ाने वाला है ॥ [अथ तीतलौकी।]

इक्ष्वाकुः कटु तुम्बी स्यात् सा तुम्बी च महा फला ॥ कटु तुम्बी हिमा हृद्या पित्तकास विषा पहा ॥ १३० ॥ तिक्ता कटु विंपाके च वातपित्त ज्वरान्तकृत् ॥

[अथ ककड़ी।] एर्वारुः कर्कटी प्रोक्ता कथ्यन्ते तद्गुणा अथ ॥ कर्कटी शीतला रूक्षा ग्राहिणी मधुरा गुरुः ॥ १३१ ॥ रुच्या पित्तहरा सामा पक्का तृष्णाग्नि पित्तकृत् ॥

भा० अनन्तर तीतिलौकी ॥ इक्ष्वाकु कटुतुंबी यह तीतिलौकी के नाम हैं यह बड़े फलवाली होती है ॥ कड़वीतुम्बी शीतल हृद्य पित्त कास विष इनको नाशक है ॥ १३० ॥ तिक्त विपाक में कटु होती है और वात पित्त ज्वर इनको नाश करे है ॥ अनन्तर ककड़ी। एर्वारु कर्कटी येह ककड़ी के नाम हैं ॥ अनन्तर उसके गुण कहते हैं ॥ ककड़ी शीतल रूखी क़ाबिज़ मधुर भारी ॥ १३१ ॥ रुचिको करनेवाली पित्त नाशक कच्ची होती है ॥ और पकी हुई तृषा अग्नि पित्त इनको करे

[अथ चिचिण्डा।] चिचिण्डा श्वेतराजिः स्यात्सुदीर्घो गृहकूलकः ॥ चिचिण्डो वात पित्तघ्नो बल्यः पथ्यो रुचिप्रदः ॥ शोषिणोऽति हितः किञ्चिद् गुणैर्न्यूनः पटोलतः ॥ १३२ ॥ अथ करेला करेली। कारवेल्लं कटिल्लं स्यात् कारवेल्ली ततो लघुः ॥ कारवेल्लं हिमं भेदि लघु तिक्तमवातलम् ॥ १३३ ॥ ज्वरपित्त कफास्रघ्नं पाण्डु मेह कृमीन् हरेत् ॥ तद्गुणा कारवेल्ली स्याद्विशेषाद्दीपनी लघुः ॥ १३४ ॥

भा० अनन्तर चिचेंड़ा ॥ चिचेंड़ा श्वेतराजि सुदीर्घ गृहकूलक। येह चिचें

ड़ेके नामहैं ॥ चिचिंडा वात पित्तका नाशक बलकेहित पथ्य रुचिको देनेवा-
लाहै ॥सुक नेचाले अतिहित और परवलसे कुछ एक गुणमें न्यून होताहै।
२३२॥ अनन्तर करेला और करेली ॥ कारवेल्ल कठिल्ल येह करलेके नामहैं
और करेली उससे छोटी होतीहै ॥ करेला शीतल भेदनकरनेवाला हलका ति
क्त वातको न करनेवालाहै ॥२३३॥ और ज्वर पित्त कफ रक्त इनकी नाशक
है ॥ और पांडुरोग प्रमेह कृमि इनको हरताहै । करेली उसीके समान गुणमें
होतीहै विशेषकरके दीपन हलकीहै ॥ २३४॥

[अथनेनुआ।]

महाकोशातकी प्रोक्ता हस्तिघोषा महाफला ॥धामा
र्गवो घोषकश्च हस्तिपर्णश्च सस्मृतः॥२३५॥महा-
कोशातकी स्निग्धा रक्तपित्ता निलापहा ॥
[अथ तोरई।] धामार्गवः पीतपुष्पो जालिनी कृतवेधना
।राजकोशातकी चेति तथोक्ता राजिमत्फला ॥ २३६॥
राजकोशातकी शीता मधुरा कफवातला ॥ पित्तघ्नी
दीपनी श्वासज्वरकासकृमिप्रणुत् ॥ २३७॥

भा० अनन्तर घीया तुरई ॥ महाकोशातकी हस्तिघोषा महाफला धामार्ग
व घोष हस्तिपर्ण यह घिया तुरईके नाम कहेहैं ॥ २३५॥ घिया तुरई चिक
नी रक्त पित्त वात इनकी नाशक है ॥ [अनन्तर तुरई ॥ धामार्गव
पीतपुष्प जालिनी कृतवेधना ॥राजकोशातकी येह तोरईके नामहैं तथा ल-
कीरोंसे युक्त फल होताहै ॥ २३६॥ तुरई शीतल मधुर कफ वातको करनेवाली
पित्तनाशक दीपन होतीहै और श्वासज्वरकास कृमि इनकी नाशक है ॥२३७॥

अथपटोर।पटोलः कूलकस्तिक्तः पाण्डुकः कर्कशा
च्छदः॥राजीफलः पाण्डुफलो राजेयश्चामृता फ-
लः॥ २३८॥ बीजगर्भः प्रतीकश्च कुष्ठहा कासभञ्जनः
॥पटोलं पाचनं हृद्यं वृष्यं लघ्वग्निदीपनम् ॥ २३९॥

स्निग्धोष्णा हन्ति कासास्त्र ज्वरदोषत्रयकृमीन् ॥ पटो लस्य भवेन्मूलं विरेचन करं सुखात् ॥ २४० ॥ नालं श्लेष्महरं पत्रं पित्तहारि फलं पुनः ॥ दोषत्रय हरं प्रोक्तं तद्वत्तिक्ता पटोलिका ॥ २४१ ॥

[अथ कुन्दुरी ।] बिम्बी रक्तफला तुण्डी तुण्डकेरी च बिम्बिका ॥ ओष्ठोपम फला प्रोक्ता पीलुपर्णी च कथ्यते ॥ ॥२४२ ॥ बिम्बिफलं स्वादु शीतं गुरु पित्तास्त्र वातजित् ॥ स्तम्भनं लेखनं रुच्यं विबन्धाध्मान कारकम् ॥ २४३ ॥

भा० अनन्तर परवल ॥ पटोल कूलक तिक्त पाण्डुक कर्कशच्छद ॥ राजीफल पाण्डुफल । राजेय अमृतफल ॥ २३९ ॥ बीजगर्भ भनीक कुष्ठहा कासभंजन यह परवल के नामहैं ॥ परवल पाचन हृद्य शुक्रको उत्पन्न करनेवाला हलका अग्निदीपन ॥ २३९ ॥ चिकना उष्णहै और कास श्वास ज्वर तीनोंदोष कृमि इनको नाशकरताहै ॥ परवल की जड़ सुखसे विरेचन करनेवालीहै ॥ २४० ॥ नाल कफ नाशक पत्र पित्त नाशक और फल ॥ त्रिदोषनाशक कहाहै उसी प्रकार तिक्त पटोलिका है ॥ २४१ ॥ [अनन्तर कुन्दरू ॥ बिम्बी रक्तफला तुण्डी केरी बिम्बिका ॥ ओष्ठोपम फला पीलुपर्णी येह कुन्दुरू के नाम कहेहैं ॥२४२॥ कुन्दुरू फल मधुर शीतल भारी रक्त पित्त वात इनको जीतने वाले हैं ॥ स्तंभन लेखन रुचिको करनेवाला विबन्ध और आध्मान करने वालाहै ॥२४३॥

[शिम्बिशेवा ।] शिम्बिः शिम्बी पुस्तशिम्बीस्तथा पुस्तक शिम्बिका ॥ शिम्बीद्वयञ्च मधुरं रसेपाके हिमं गुरु ॥ २४४ ॥ बल्यं दाहकरं प्रोक्तं श्लेष्मलं वात पित्तजित् ॥ [अथ सुवर्णशिम्बि । कोलशिम्बिः कृष्णफला तथा पर्येङ्क पट्टिका ॥ कोलशिम्बिः समीरघ्नी गुल्मघ्ना क-

फ पित्तकृत् ॥ २४५॥ शुक्राग्नि सादकृत् रूच्या रुचिकृत् बद्धविड् गुरुः॥ [अथ सोहिजना फल।]

सौभांजनफलं स्वादु कषायं कफ पित्तनुत्॥ शूलकुष्ठ क्षयं श्वास गुल्महृद्दीपनं परम्॥ २४६॥

भा० अनन्तर सेम सेमा। शिम्बि शिम्बी शुक्तशिम्बी तथा पुस्तक शिम्बिका यह सेमके नामहैं॥ दोनों सेम मधुर रस और पाकमें और शीतल भारी होती हैं॥ २४४॥ बलके हित दाह कर कफको करनेवाले और वात पित्तको जीतने वालेहैं। [अनन्तर सुवरासेम इसको आलकुशीभी कहतेहै। कालशिम्बी कृष्णफला तथा पर्य्यङ्कपट्टिका यह आलकुशीके नामहैं॥ आलकुशी वातनाशक भारी रुखी कफ पित्तको करनेवाली है॥ २४५॥ और शुक्र अग्निमान्द्य इनको करनेवाली शुक्रको करनेवाली रुचिको करनेवाली मलको बान्धनेवाली भारीहै॥ अथ सोहिंजना। सहिंजनका फल मधुर कसैला कफ पित्तका नाशक है॥ और शूल कुष्ठ क्षय श्वास वाय गोला इनका नाशक और अत्यन्त दीपन है॥ २४६॥

[अथ भण्टा।] वृन्ताकं स्त्री तु वार्ताकु र्भण्टाकी आरिठकापि च॥ वृन्ताकं स्वादु तीक्ष्णोष्णं कटुपाक मपित्तलम्॥ २४७॥ ज्वर वात बलासघ्नं दीपनं शुक्रलं लघु॥ तद्बालं कफ पित्तघ्नं वृद्धं पित्तकरं लघु॥ २४८॥ वृन्ताकं पित्तलं किञ्चित् अङ्गार परिपाचितम्॥ कफ मेदो निलामघ्न मत्यर्थं लघुदीपनम्॥ २४९॥ तदेवहि गुरु स्निग्धं सतैलं लवणान्वितम्॥ अपरं श्वेतवृन्ताकं कुक्कुटाण्ड सर्मं भवेत्॥ २५०॥ तदर्शः सुविशेषेण हितं हीनञ्च पूर्व्ववत्॥

भा० अनन्तर बैंगन। वृन्ताक वार्ताकु भंटाकी भाणिट्का। यह बैंगन के नामहैं॥ बैंगन मधुर तीखा उष्ण पाकमें कटु और पित्तको न करने

वालाहै ॥ २४७ ॥ और ज्वर वात कफ इनका नाशक है । दीपन शुक्रको करनेवाला हलका है ॥ वैसेही कच्चा कफ पित्तका नाशक और वड़ा पित्त करनेवाला हलका होताहै ॥ २४८ ॥ अंगारे पर पकायाहुवा कुछएक पित्तको करनेवाला है ॥ और कफ मेद वात आम इनकानाशक अत्यन्त दीपन हलकाहै ॥ २४९ ॥ वोही भारी चिकना तेल और लवणके युक्त होताहै ॥ दूसरा सफ़ेद बैंगन मुरगेके अण्डे समान होताहै ॥ ॥ २५० ॥ वोह ववासीर में विशेषकरके हितहै और पूर्ववत् हीनभी है ॥

अथ डिण्डिशः । डिण्डिशो रोमशफलो मुनिनिर्मित इत्यपि ॥ डिण्डिशो रुचिकृद्भेदी पित्तश्लेष्मापहः स्मृतः ॥ ॥२५१॥ सुशीतो वातलो रूक्षो मूत्रलश्चाश्मरी हरः ॥

अथ पिण्डारः ॥ पिण्डारं शीतलं बल्यं पित्तघ्नं रुचिकारकम् ॥ पाके लघु विशेषेण विषशान्तिकरं स्मृतम् ॥२५२॥

[अथ खेखसा ।] कर्कोटकी पीतपुष्पा महाजालीति चोच्यते ॥ कर्कोटी मलहृत्कुष्ठहृल्लासारुचिनाशनी ॥ २५३॥ श्वास कास ज्वरान् हन्ति कटु पाकाच दीपनी ॥

भा० अनन्तर टिंडा ॥ डिण्डिश रोमशफल मुनिनिर्म्मित येह टिंडेके नाम हैं ॥ टिंडा रुचिको करनेवाला भेदन पित्त कफका नाशक कहाहै ॥ २५१ ॥ और सुशीतल वातको करनेवाला रूखा मूत्रको करनेवाला अश्मरी नाशकहै ॥ अनन्तर पिंडार ॥ पिंडार शीतल बलको करनेवाला पित्तनाशक रुचिको करनेवाला ॥ पाकमें हलका और विशेषकरके विषकीशान्ती को करनेवाला कहाहै ॥ २५२ ॥ अनन्तर खेखसा ॥ कर्कोटकी पीतपुष्पा महाजाली । यह खेखसेके नामहैं ॥ खेखसा मलनाशक और कुष्ठ हृल्लास अरुचि इनका नाशकहै ॥ २५३ ॥ और श्वास कास ज्वर इनको नाश करता है तथा पाकमें कटु दीपनहै ॥

अथ करेरुआ । डोडिका विषमुष्टिश्च डोडीत्यपि सुमुष्टिका ॥ डोडिका पुष्टिदा वृष्या रुच्या वन्हिप्रदा लघुः ॥२५४

हन्ति पित्त कफार्शांसि क्रमि गुल्म विषामयान् ॥
[अथ कराटकारी फलम् । कराटकारी फलं तिक्तं कटुकं दीपनं लघुः ॥ रूक्षोष्णं श्वास कासघ्नं ज्वरानिल कफापहम् ॥ १५५ ॥ [अथ नालशाकानि ।]
तत्र सर्षप नालम् । तीक्ष्णोष्णं सार्षपं नालं वातश्लेष्म व्रणापहम् ॥ कराडू वमिहरं दद्रू कुष्ठघ्नं रुचिकारकम् ॥ १५६ ॥

भा० अनन्तर करेरुआ । डोडिका विषमुष्टि डोडि सुमुष्टिका । यह करेरुआ के नामहे ॥ करेरुआ पुष्टिकरनेवाली अग्निदीपन हलकी होती है ॥ ॥ १५४ ॥ और पित्तकफ ववासीर क्रमिवायगोला विषरोग इनको नाशकरतीहै ॥ अनन्तर कटेलीका फल ॥ कटेली का फल तिक्तकटु दीपन हलका ॥ रूखा उष्ण है और श्वास कास इनका नाशक तथा ज्वर वात कफ इनका नाशक है ॥ १५५॥ [अनन्तर नाल शाक ॥ उनमें सरसोंका नाल ॥ सरसों का नाल तीखा गरम होताहै और वात कफ व्रण इनका नाशक है और खुजली वमन इनकानाशक तथा दाद कुष्ठ खुजली इनका नाशक तथा रुचिको करनेवाला हैं ॥ १५६ ॥ [अथ कन्द शाकानि ।

[तत्र सूरणस्य नामानि गुणाश्च । सूरणः कन्द ओलश्च कन्दलोऽर्शोघ्न इत्यपि ॥ सूरणो दीपनो रूक्षः कषायः कराडूकृत् कटुः ॥ १५७ ॥ विष्टम्भी विशदो रुच्यः कफार्शः कृन्तनो लघुः ॥ विशेषादर्शसे पथ्यः प्लीहा गुल्म विनाशनः ॥ १५८ ॥ सर्वेषां कन्दशाकानां सूरणः श्रेष्ठ उच्यते ॥ दद्रुणां रक्तपित्तिनां कुष्ठिनां न हितो हि सः ॥ १६० ॥ सन्धानयोगं सम्प्राप्तः सूरणो गुणवत्तरः ॥

भा० अनन्तर कन्दशाक ॥ उनमें सूरनके नाम ॥ और गुण । सूरणकन्द ओल

कन्द अर्शोघ्न यह सूरन के नाम हैं ॥ सूरन दीपन रूखा कसैला खाज करनेवाला कटु होताहै ॥ १५७ ॥ और विष्टम्भ करनेवाला विशद रुचिको करनेवाला कफ बवासीर का नाशक हलकाहै ॥ विशेषकरके बवासीर में पथ्य है और पिलही वा गोला इनका नाशक है ॥ १५९ ॥ सब कन्द शाकोंमें सूरण श्रेष्ठ कहा है ॥ दाद वाले और रक्तपित्तवाले तथा कुष्ठवाले इनको वोह हित है ॥ १६० ॥ संधान योग में प्राप्तहुवा सूरण अधिक गुणवाला होता है ॥

[अथ आरु।] आरुकमप्यालूकं तत् कथितम् ॥
[वीर सेनश्च।] काष्टालुक शङ्खलुक हस्त्यालुकानि कथ्यन्ते ॥ पिण्डालुक समालुक रक्तालुकानि चोक्तानि। काष्ठालुकं काठिन्ययुक्तं कठारु। शङ्खलुकं श्वेतता युक्तम्। शङ्खारु। हस्त्यालुकं दीर्घता युक्तं महा शरीरम्। पिण्डालुकं वर्त्तुलम। सुथनी। समालुकं मधुरतायुक्तं रोमान्वितं दीर्घ सुथनी। रक्तालू रक्तारु तड़ा इति च। आलुकं शीतलं सर्वं विष्टम्भि मधुरं गुरु ॥ सृष्ट मूत्रमलं रूक्षं दुर्ज्जरं रक्त पित्तनुत् ॥ १६१ ॥ कफानिल करं बल्यं वृष्यं स्वल्पाग्नि वर्द्धनम् ॥

भा॰ अनन्तर आलू ॥ आरुक आलूक यह आलूके नामहैं। वीरसैननेभी। कठियाआलू संखालू हस्त्यालू कहेहैं ॥ पिंडालु समालुक रक्तालु यह कहाहै ॥ काष्ठालुक काठिन्ययुक्त कठारु। शङ्खालुक श्वेतता युक्तं। शङ्खारु। हस्त्यालुक दीर्घता के युक्त बड़ा। पिंडालु गोल। सुथनी। समालुक मधुरता संयुक्त रोमोंकरके युक्त लंवी सुथनीहोतीहै। रक्तालू अर्थात् शकरकन्द। सब आलू शीतल विष्टम्भकरनेवाले मधुर भारी ॥ मल मूत्रको करनेवाले रूखे दुर्ज्जर रक्त पित्तके नाशक हैं ॥ १६१ ॥ कफ वात को करनेवाले बलके हित शुक्रको करनेवाले अल्प अग्निको बढ़ानेवाले हैं ॥

[अथ अरुई।] रक्तालु भेदे पाटिया तन्वीच पृथितालुकी ॥

आलुकी बलकृत् स्निग्धा गुर्व्वी हृत्कफ नाशिनी ॥१६२॥ विष्टम्भकारिणी तैले ललितातिरुचिप्रदा ॥

[अथ वोची मुरई नेवाए मुरई ।] मूलकं द्विविधं प्रोक्तं तत्रैकं लघुमूलकं ॥ शालमर्कटकं विस्रं शालेयं मरुसम्भवम् ॥ १६३ ॥ चाणक्यमूलकं तीक्ष्णं तथा मूलकपोतिका ॥ नेपालमूलकं चान्यत् तद्भवेद् गजदन्तवत् ॥ ॥ १६४ ॥ लघुमूलं कटूष्णं स्याद्रुच्यं लघुञ्च पाचनम् ॥ दोषत्रय हरं स्वर्य्यं ज्वर श्वास विनाशनम् ॥ १६५ ॥ नासिका कण्ठ रोगघ्नं नयनामय नाशनम् ॥ महत्तदेव रूक्षोष्णं गुरुदोष त्रय प्रदम् ॥ १६६ ॥ स्नेह सिद्धं तदेवं स्यात् दोषत्रय विनाशनम् ॥

भा० अनन्तर अरवी ॥ रतालु का भेद छीलनेमें पतला छिलका होताहै वोह अरवीहै ॥ अरवी बलको करनेवाली चिकनी और भारी हृदय के कफकी नाशक है ॥ १६२ ॥ तेलमें भुनीहुई विष्टम्भ करने वाली और रुचिको देनेवाली है ॥

अनन्तर मूली ॥ मूली दो प्रकारकी कहीहै । उसमें एक छोटीमूली । शालमर्कटक विस्र शालेय मरुसंभव ॥ १६३ ॥ चाणक्य मूलक तीक्ष्ण तथा मूलकपोतिका ॥ येह मूलीके नाम हैं । और दूसरी नेपाली मूली तथा उसका भेद हाथीके दांतके समान होती है ॥ १६४ ॥ छोटीमूली कड़वी गरम होतीहै ॥ और रुचिको करनेवाली हलकी पाचन होतीहै ॥ और तीनों दोषोंकी नाशक स्वरको अच्छा करनेवाली और ज्वर श्वासकी नाशकहै ॥ १६५ ॥ और नासिका रोग तथा कंठरोग इनके नाशक और नेत्र रोगकी नाशक है ॥ वोही बड़ी रूखी गरम भारी तीनोंदोषोंकी छेदनेवाली है ॥ १६६ ॥ स्नेह स्निग्ध सिद्धि वोहीहै तीनों दोषोंकी नाशक है ॥ -

[अथ गाजर । गाजरं गृञ्जनं प्रोक्तं तथा नारङ्गवर्णकम् ॥ गाजरं मधुरं तीक्ष्णं तिक्तोष्णं दीपनं लघु ॥ १६७ ॥ संग्रा-

हि रक्तपित्तार्शो ग्रहणी कफ वात जित् ॥

[अथ केराकन्द। शीतलः कदली कन्दो बल्यः केश्यो ऽम्ल पित्तजित् ॥ वन्हि कृद्दाह हारीच मधुरो रुचि कारकः ॥ ॥२६८॥ [अथ मानकन्द। मानकः स्यान्महापत्रः कथ्यन्ते तद्गुणा अथ ॥ मानकः शोथहृच्छीतः पित्त रक्त हरो लघुः ॥ २६९ ॥ अथ वाराहीकन्दः। गेठि इति लोके।] वाराही पित्तला बल्या कटुतिक्ता रसायनी ॥ आयु शुक्रा ग्निकृन् मेह कफ कुष्ठा निला पहा ॥ २७० ॥

भा० अनन्तर गाजर। गाजर गृंजन नारंगवर्णक येह गाजर के नामहैं ॥ गाजर मधुर तीखा उष्ण दीपन हलका होता है ॥ २६७॥ और काबिज़ रक्त पित्त बवासीर संग्रहणी कफ बात इनको जीतने वालाहै ॥ :हित अनन्तर केलाकन्द। केलाकन्द शीतल बलको देने वाला केशके अम्लपित्तको जीतनेवालाहै ॥ अग्निदीपन दाहका नाशक मधुर रुचिको करनेवालाहै ॥ ॥ २६८ ॥ अनन्तर मानकेचू। मानक महापत्र होतेहैं। अनन्तर इसके गुण कहतेहैं ॥ मानकेचू शोथका नाशक शीतल पित्त रक्तका नाशक हलका होताहै ॥ २६९ ॥ अनन्तर वाराहीकन्द ॥ इसको गेंठी इस प्रकार लोकमें कहतेहैं ॥ वाराहीकन्द पित्तको करनेवाली बलकेहित कड़वी तिक्त रसायनी ॥ और आयु शुक्र अग्निकी करनेवाली और प्रमेह कफ कुष्ठ वात इनकी नाशक है ॥ २७० ॥

[अथ हस्तिकर्णी। गजकर्णीतु तिक्तोष्णा तथा वात कफाञ्जयेत् ॥ शीतज्वर हरी स्वादुः पाके तस्यास्तु कन्दकः ॥ २७१ ॥ पाण्डु शोथ कृमि प्लीह गुल्मानाहो दरापहः ॥ ग्रहण्यर्शो विकारघ्नो वनसूरण कन्दवत् ॥ २७२ ॥ [अथ केमुक। केमुआ इतिलोके।]

केमुकं कटुकं पाके तिक्तं ग्राहि हिमं लघुः ॥ दीपनं पाचनं हृद्यं कफ पित्त ज्वरापहम् ॥ १७३ ॥ कुष्ठ कास प्रमेहास्त्र नाशनं वातलं कटु ॥ [अथ कसेरु चिचोड़ ।] कसेरु द्विविधन्तत्तु महद्राजकसेरुकम् ॥ मुस्ताकृतिर्लघु स्याद्यत्तच्चिचोड़मिति स्मृतम् ॥ १७४ ॥ कसेरुक द्वयं शीतं मधुरं तुवरं गुरु ॥ पित्त शोणित दाहघ्नं नयनामय नाशनम् ॥ १७५ ॥ ग्राहि शुक्रानिल श्लेष्मा रुचि स्तन्य करं स्मृतम् ॥

भा० अनन्तर हस्तिकर्णी । हस्तिकर्णी तिक्त उष्ण तथा वात कफ इनकोजीतती है और शीतज्वर की नाशक पाकमें मधुर होती है उसका कन्द ॥ १७१ ॥ पांडुरोग सूजन कृमि पिलही वायगोला आनाह उदररोग इनका नाशक है ॥ और संग्रहणी बवासीर विकारका नाशक है यह वन सूरन के समान होताहै ॥ १७२ ॥ अनन्तर केमुआ । केमुक कड़वा पाकमें तिक्त काबिज शीतल हलका होताहै ॥ दीपन पाकमें हृद्य कफ पित्तज्वर इनका नाशक है ॥ १७३ ॥ और कुष्ठ कास प्रमेह रक्त इनका नाशक वातको करनेवाला कटु होता है ॥ अनन्तर कसेरु और चिचोड़ ॥ कसेरु दो प्रकारका होता है उसमें बड़ा राजकसेरुक ॥ और माथेके आकार छोटा जो होता है उसको चिचोड़ ऐसा कहाहै । ॥ १७४ ॥ दोनों कसेरू शीतल मधुर कसेले भारी ॥ पित्त रक्त दाह इनके नाशक और नेत्र रोगों का नाशक है ॥ १७५ ॥ काबिज शुक्र वात कफ अरुचि दुग्ध इनको करनेवाला कहाहै ॥

[अथ कसेरु भिसीड़ा ।] पद्मादिकन्द : शालूकङ्करहाटश्च कथ्यते ॥ मृणालं मूलम्भिस्साण्डं लज्जा शूकश्च कथ्यते ॥ १७६ ॥ शालूकं शीतलं वृष्य पित्तदाहास्त्र नुद् गुरु ॥ दुर्ज्जरं स्वादु पाकञ्च स्तन्यानिल कफप्रदम् ॥ १७७ ॥

संयादि मधुरं रूक्षम्भिसाण्ड मपि तद्गुणम् ॥ बालं ह्यना- र्तवं जीर्णं व्याधितः क्रिमिभक्षितम् ॥ १७८ ॥ कन्दं वि- वर्ज्जयेत् सर्वं यद्वाऽग्न्यादि विदूषितम् ॥ अति जीर्णम- कालोत्थं रूक्षं सिद्धमदेशजम् ॥ १७९ ॥ कर्कशं को- मलं चाति शीतव्यालादि दूषितम् ॥ संशुष्कं सक- लं शाकं नाश्नीयान्मूलकं विना ॥ १८० ॥

भा० अनन्तर कसेरु मिसींडा ॥ पदम आदियों के कन्दों को शालूक और करहाट कहतेहैं ॥ मृणाल मूल भिस्साण्ड लज्जाभूक यहभी कवल ककड़ीके नामहैं ॥ १७६ ॥ कवलककड़ी शीतल शुक्रको करनेवाली पित्तदाह रक्त दूनकी नाशक भारीहै ॥ और दुर्ज्जर पाकमें मधुर दुग्ध वात कफ इनको करनेवालीहै ॥ १७७ ॥ तथा काविज मधुर रूखी मिसाण्ड भी उसीके समान गुणमें है ॥ कच्चा वेमौसम का जीर्ण व्याधित कीड़ोंने खाया हुवा ॥ १७८ ॥ ऐसा सब कन्द त्यागदेवे अथवा जो अग्नि आदि से दूषित ॥ बहुत जीर्ण वे मौसम का रूखा सिद्धकिया अदेशज ॥ १७९ ॥ अति कर्कश अतिकोमल और शीतल सर्प आदिसे दूषित ॥ बहुत सूखा हुवा सब शाक मूली के विना नसेवन करे ॥ ८० ॥

(क) अतैलादि सिद्धं रूक्षं अदेशजम शुभस्थानजम् ॥

[अथ स्वदेशज शाकानि तेषां नामानि गुणा श्च ।]

उक्तं संस्वेदजं शाक म्भूमिछत्त्रं शिलीन्ध्रकम् ॥ क्षिति गोमय काष्ठेषु वृक्षादिषु तदुद्भवेत् ॥ १८१ ॥ सर्वे संस्वेद जाः शीताः दोषलाः पिच्छलाश्च ते ॥ गुरवश्छर्द्यती- सार ज्वरश्लेष्मा मय प्रदाः ॥ श्वेत शुभ्रस्थली काष्ठ वं- शगो व्रण सम्भवाः ॥ नातिदोष करास्ते स्युः शेषास्ते श्यो विगर्हिताः ॥ १८३ ॥ संस्वेदजा च्छाता इतिलोके ।

इति श्री भावप्रकाशे शाकवर्गः ॥ ॥

तैल आदि से नसिद्ध हुवा रूक्ष शुभस्थान में हुवा ॥ अनन्तर सं स्वेदज शाक इनके नाम और गुण ॥ सं स्वेदज शाक उसे कहते हैं जो दवीपड़ीहुई ज़मीन से होता है ॥ उसे शिलीन्ध्रक कहते हैं ॥ पृथ्वी गोवर काष्ठ वृक्ष आदि में वो उत्पन्न होता है उसे कुकुरमुत्ता कहते हैं ॥ १८१॥ सवसे स्वेदज शीतल दोषको उत्पन्न करनेवाले पिच्छिल जो होते हैं। वे भारी होते हैं। और वमन अतिसार ज्वर कफ के रोग इनको करनेवाले हैं ॥ १८२॥ श्वेत और शुभ्र वेवनीहुई ज़मीन काष्ठ वास गोव्रज इन से उत्पन्न। अतिदोष करनेवाले नहीं हैं ॥ वाकी उनसे निन्दित हैं ॥ १८३॥
सं स्वेदज इसको छाता इस प्रकार लोकमें कहते हैं ॥
इति भावप्रकाशे शाकवर्गः समाप्तः ॥ ॐ ॥

इति भावप्रकाशे शाकवर्गः समाप्तः॥

श्री गणेशाय नमः॥

भाव प्रकाशः

अथ मांसवर्गः

तत्र मांसस्य नामानि

मांसं तु पिशितं क्रव्य मामिषं पल लम्पलम् ॥ मांसं वात हरं सर्वं बृंहणं बल पुष्टि कृत् ॥१॥ प्रीणनं गुरु हृद्यञ्च मधुरं रस पाकयोः॥ अथ तद्भेदाः ॥ मांस वर्गो द्विधा ज्ञेयो जाङ्गलो ऽनुप भेदतः॥ ॥

तत्र जाङ्गलस्य लक्षणं गुणाश्च।

मांस वर्गो ऽत्र जङ्गाला विलस्थाश्च गुहाशयाः॥ तथा पर्णमृगा ज्ञेया विष्किरा प्रतुदो ऽपि च ॥ २॥ प्रसहाः। अथ ग्राम्या अष्टौ जाङ्गल जातयः।

भा० भाव प्रकाशः। अनन्तर मांस वर्गः। उसमें मांस के नाम। मांस पिशित क्रव्य आमिष पलल पल॥ येह मांसके नाम है॥ सब मांस वात नाशक बृंहण बल पुष्टि को करनें वाले हैं॥१॥ और प्रीणन भारी हृद्य मधुर रस और पाक मेंभी॥ अनन्तर उनके भेद। मांस वर्ग दो प्रकार का जानना चाहिये जाङ्गल और अनूप इन भेदोंसे॥ उनमें जांगल का लक्षण और गुण। यहां पर मांस वर्ग जंगल में रहने वाले बिलमें रहनें वाले गुहामें रहनें वाले॥ तथा पर्ण मृग विष्किर और प्रतुद भी॥ २॥ प्रसह। और ग्राम्य येह आठ मांस की जातींहे॥

जाङ्गला मधुरा रूक्षा स्तुवराः लघव स्तथा॥ बल्यास्ते बृंहणा वृष्या दीपना दोष हारिणः॥३॥

मूकतां मिन्मिनत्वं च गद्गदत्वादितिं तथा॥ वाधिर्य्य मरुचिच्छर्दि प्रमेहं मुखजान् गदान्॥ ४॥ श्लीपदं गलगण्डञ्च नाशयन्त्यनिलामयान्॥

अथानूपस्य लक्षणं गुणाश्च।

कूलेचराः प्लवाश्चापि कोशस्थाः पादिनस्तथा॥ मत्स्या एते समाख्याताः पञ्चधाऽनुपजातयः॥ ५॥ अनूपा मधुराः स्निग्धा गुरवो वन्हिसादनाः, श्लेष्मला पिच्छला श्चापि मांसपुष्टिप्रदा भृशम्॥ ६॥ तथाभिष्यन्दिनस्ते हि प्रायः पथ्यतमाः स्मृताः॥

अथ जाङ्गलानां गणनां विशिष्ट गुणाश्च॥

भा० जाङ्गल मधुर रूखे कसेले तथा हलके॥ वलको देनें वाले पुष्ट शुक्रको उत्पन्न करनें वाले दीपन दोष नाशक॥ ३॥ गूङ्गा पन मिन मिना पन गद गदता तथा अर्द्दित॥ वहिरापन अरुचिव मन प्रमेह मुखके रोग॥ ४॥ श्लीपद गलगंड और वात के रोग इनको नाश करते है॥ अनंतर आनूप मांस का लक्षण और गुण कहेते हैं॥ कूलेचर प्लव कोशस्थ पादिन तथा॥ मत्स्य येह पांच प्रकार की अनूप जाति कहीहै॥ ५॥ अनुप मधुर चिकने भारी अग्नि मान्द्य करनें वाले॥ कफकारी पिच्छिल और अत्यन्त मांस पुष्टि को करनें वाले है॥ ६॥ तथा अभिष्यन्दि और प्रायः पथ्यतम कहे हैं॥ अनन्तर जाङ्गलों की गणना और विशेष गुण॥

हरिणैणकुरङ्गर्ष्य पृषतन्यङ्कुसम्बराः॥ राजीवोऽपि च मुण्डी चेत्याद्याः जङ्गलसंज्ञकाः॥ ७॥ हरिणस्ताम्रवर्णः स्यादेनः कृष्णः प्रकीर्त्तितः॥

भा० हरिण एण कुरङ्ग ऋष्य पृषत न्यं कुसम्बर॥ राजीव मुंडी इत्यादि येह जाङ्गल नाम हरिण के भेदहे॥ ७॥ लालरंगका हरिण ...

कहाहै ॥ कुरङ्ग ईषत्ताम्रः स्यादेन तुल्या कृति र्महान् ॥८॥ चन्द्र
ष्यो नीलाङ्गको लोके सरोरुव इति कीर्त्तितः ॥ एयत
श्च न्द्र विन्दुः स्याद्धरिणान् किञ्चि दल्प कः ॥९॥
न्यङ्कु र्वंहु विषाणो ऽथ सम्बरो गवयो महान् ॥ राजी
वस्तु मृगो ज्ञेयो राजाभिः परितो वृतः ॥१०॥ यो मृगः
शृङ्ग हीनः स्यात् स मुण्डी ति निगद्यते ॥ जङ्गलाः
प्रायशः सर्वे पित्त-श्लेष्म-हराः स्मृताः ॥ ११ ॥
किञ्चि द्वात करास्चापि लघवो बल वर्द्धनाः ॥

भा० कुच्छ एक लाल कुरंग होताहै एगा के समान अकृति बडा होताहै ॥ ८॥ नीलाङ्गक इस को लोक में सरोहि इस प्रकार कहाहै ॥ एयत सफेद बुन्द की वाला हरिण से कुछ एक छोटा होता है ॥ ९॥ बहुत सीङ्ग वाला न्यङ्कु साबर महान गवय होताहै ॥ जो मृग बहुत सी लकीरों से युक्त हो इस को राजीव मृग जानना चाहिये ॥ १०॥ जो मृग बेसीङ्ग का होताहै उसको मुंडी ऐसा कहते हैं ॥ सब जाङ्गल प्रायः पित्त कफ के नाशक कहेहैं ॥११॥ अल्प वात को करनें वाले हलके और बलको बढानें वाले हैं ॥

अथ बिलेशयानां गणना गुणाश्च

गोधा-शश-भुजङ्गाखु शल्ल क्या द्या बिले शयाः॥
बिलेशया वात हरा मधुरा रस पाक योः ॥ १२॥
वृंहणा बद्ध विट मूत्रा वीर्य्यो ष्णाश्च प्रकीर्त्तिताः ॥

अथ गुहाशयानां गणना गुणाश्च

भा० अनन्तर बिलमें रहनें वालों की गणना और गुण कहते हैं ॥ गोह खरगोश सांप चूहा साहि आदि येह बिलेशय हैं ॥ बिलेशय वात नाशक और रस पाक में मधुर है ॥ १२॥ तथा पुष्ट मल मूत्र को बान्धनें वाले और वीर्य्य में

उष्ण कहेहैं ॥ अनन्तर गुहाशयों की गणना और गुण ॥

सिंह व्याघ्र वृका ऋक्षतरक्षु द्वीपिनस्तथा ॥ बभ्रू-
जम्बूक मार्ज्जारा इत्याद्याः स्युर्गुहाशयाः ॥ १३॥ तर
क्षुः हुण्डा इति लोके । द्वीपी चिता व्याघ्र इति लोके
। स्थूल पुच्छो रक्तनेत्रो बभ्रूः देहः स्तनाकुलः ॥ गु
हाशयो वातहरा गुरूष्णा मधुराश्च ते ॥ १४ ॥ स्निग्धा
बल्या हिता नित्यं नेत्र गुह्य विकारिणाम् ॥

अथ पर्णमृगानां गणना गुणाश्च ॥

भा० शेर भेड़िया रीछ तेन्दुवा बाघ चीना तथा ॥ नउला गीदड़ बिलाव इत्यादि येह गुहाशय हैं ॥ १३॥ तरक्षु हुण्डा इस प्रकार लोक में कहेते हैं ॥ चीता व्याघ्र इस प्रकार लोक में कहेते है । मोटी दुम लाल आखें पिंगल शरीर वो हनेवला है ॥ गुहाशय वात नाशक भारी उष्ण मधुर ॥१४॥ चिकने बलको करनेवाले और सदा नेत्र लिंग रोग वालों को हित है ॥ ॥अनन्तर पर्ण मृगोंकी गणना और गुण ॥ ॥

वनौको वृक्ष मार्ज्जारो वृक्ष मर्कटिकादयः ॥ राते प
र्णमृगाः प्रोक्ताः सुश्रुताद्यै महर्षिभिः ॥ १५॥ वनौका
वानरः वृक्ष मार्ज्जारो वृक्ष विड़ालः ॥
वृक्ष मर्कटिका रूषी इति लोके ।
स्मृताः पर्ण मृगाः वृष्या चक्षुष्याः शोषिरो हिताः ॥
श्वासार्शः कासशमनाः सृष्ट मूत्र पुरीषिकाः ॥ १६ ॥

अथ विष्किराणां गणना गुणाश्च ॥

भा० बन्दर वृक्ष मार्जार वृक्ष मर्कटिका आदिक ॥ येह पर्णमृग सुश्रुतादि ।

महर्षियोंनें कहेहैं ॥१५॥ वानर । वृक्ष विडाल । रूषी । इस प्रकार लोकमें कहेते हैं । पर्ण मृग शुक्र को करनें वाले नेत्रके रोग वाले को हित ॥ औरत्रास ववासीर कास इनके नाशक मलमूत्र को करनें वालेहैं ॥१६॥

अनन्तर विष्किरों की गणना और गुण ॥

वर्त्तका लाव वर्त्तीर कपिञ्जल क तित्तिराः ॥ कुलिङ्ग कुक्कुटा द्याश्च विष्किराः समुदाहृताः ॥ १७ ॥ विकीर्य भक्षयन्त्येते यस्मात्तस्माद्वि विष्किराः ॥ कपिञ्जल इति प्रात्रैः कथितो गौर तित्तिरिः॥ १८॥

कुलिङ्गः गवरे आ इति लोके ।

विष्किराः मधुराः शीताः कषायाः कटु पाकिनः ॥ वल्या वृष्यास्त्रि दोषघ्नाः पथ्यास्ते लघवः स्मृताः १९

भा० जंगली चिड़ा लवा वटेर सफ़ेद तीतर तीतर चिड़े मुरगा आदिक येह विष्किर कहे हैं ॥१७॥ जो कितरा के खाते हैं इस वास्ते वे विष्किर हैं ॥सफेद तीतर को बुद्धि वानोंनें कपिंजल ऐसा कहाहै ॥१८॥ गवरे आ इस प्रकार लोक में कहेते हैं। विष्किर मधुर शीत ल कसेले पाक में कटु ॥ वलकोकरनेंवाले शुक्र को उत्पन्न करने वाले त्रिदोष नाशक पथ्य और ये हलके हैं ॥ १९॥

अथ प्रतुदानाङ्गणानागुणाश्च ॥

हरीतो धवलः पाण्डु श्चित्र पक्षो वृहच्छुकः ॥ पारावतः खञ्जरीटः पिकाद्याः प्रतुदाः स्मृताः ॥ २० ॥

प्रतुद्य भक्षयन्त्येते तुण्डेन प्रतुदास्ततः ॥

हारीतः हारिल इति लोके ॥

भा० अनन्तर प्रतुदों की गणना और गुण ।हरील कठफोर वा जंगली तीतर पहाड़ी तोता ॥परेवा खंजन कोइल इत्यादिक येह प्रतुद कहे हैं ॥ २०॥

जो अपनी चोंचसे तोड़ कर खाते हैं इस वास्ते प्रतुद है। हरील इस प्रकार लोकमें कहेते हैं। कपोतोः धवल पाण्डुः शत पत्रो वृहच्छुकः॥ दार्वा घाट इत्यमरः। कठ फोरवा इति लोके।

प्रतुदा मधुराः पित्त कफघ्नास्तु वरा हिमाः॥ लघवो बद्ध वर्चस्का किञ्चि द्वात कराः स्मृताः॥ २१॥

अथ प्रसहा नाङ्गणना गुणाश्च॥

काको गृध्र उलूकश्च चिल्लश्च शश घातकः॥ चाषो भासश्च कुररं इत्याद्याः प्रसहाः स्मृताः॥ २२॥

भा॰ कपोत धवल पाण्डु शत पत्र वृहच्छुक॥ दार्वा घाट इस प्रकार अमरमें कहाहै॥ कठ फोरवा इस प्रकार लोक में कहेते हैं॥ प्रतुद मधुर पित्त कफ के नाशक कसेले शीतल॥ हलके मलको बान्धनें वाले और कुछ एक वात को करनें वाले कहेहै ॥२१॥ अनन्तर प्रसहों की गणना और गुण। कौवा गिद्ध उल्लू चील बाज नील कंठ भास येह गिद्ध का भेद है कुरीर इत्यादि येह पक्षी प्रसह कहेहै॥ २२॥

(क) शश घातकः। बाज इति लोके। चाषं नील कण्ठ इति लोके। "भासो गृध्र विशेष स्यात्" कुररः करा कुर इति लोके। "प्रसहाः कीर्त्तिताः रात्रे प्रसह्या च्छिद्य भक्षणात्।" प्रसहाः खलु वीर्य्योष्णा स्तन्मांसं भक्षयन्ति ये॥ २३॥ ते शोष-भस्म कोन्माद-शुक्र क्षीणा भवन्ति हि॥ अथ ग्राम्याणां गणना गुणाश्च। छाग-मेष-वृषाश्वाद्याः ग्राम्याः प्रोक्ता महर्षिभिः। ग्राम्याः वात हराः सर्वे दीपनाः कफ पित्तलाः॥ २४॥

मधुरा रस पाकाभ्यां वृंहणा बल वर्द्धनाः ॥ इत्यनूपाज न्तवः ॥ अथ कूले चराणां गणना गुणा श्च ॥

भा० (क) बाज इस प्रकार लोक में कहेते हे । येह गिद्ध के किसम मेंहे । करा कुर इस प्रकार लोकमें कहेते हे ॥ येह जबर दस्ती काटके खातेहे इस वा स्ते प्रसह हे ॥ प्रसह शीर्ष्य में उथ्या है उनके मांस को जो भक्षण करते हे ॥ २३॥ वे शोष भसक उन्माद शुक्र और शुक्र क्षीण हो जाते हैं ॥ अनन्तर ग्राम्यों की गणना और गुण । बकरी मेढ़ा बेल घोड़ा इनको महर्षि योनें ग्राम्य कहाहै ॥ सब ग्राम्य बात के नाशक दीपन कफ पित्त को करनें वाले हे ॥२४॥ और रस पाक से मधुर पुष्ट बल को बढ़ाने वाले हैं ॥ इस प्रकार अनूप जीवहैं । अनन्तर कूले चरों की गणना और गुण ।

लुलाप गएड वाराह चमरी वारणा दयः ॥ एते कूल चराः प्रोक्ताः यतः कूले चरन्त्य पाम् ॥ २५॥ (क) लुलापो, महिष गएडः, खड्गः, (चमरी चमर पुच्छि गौ) कूले चरा मरु त्पित्त हरा वृष्या बला वहाः ॥ मधुराः शीतलाः स्निग्धा मूत्रलाः श्लेष्म वर्द्धनाः ॥ २६॥ प्लवानां गणना गुणा श्च । हंस सार सका रएड वक क्रौञ्च सरा रिकाः ॥ नन्दी मुखी सका द म्बा बला काद्याः प्लवाः स्मृताः ॥ २७॥ प्लवन्ति स- लिले यस्म देते तस्मात् प्लवाः स्मृताः ॥

भा० भेंस गेएडा सूवर चवर गाय हाथी आदिक ॥ येह कूले चरहें क्योंकि येह जल के किनारे विचरते हे ॥२५॥ (क) भेंस । गेएडा । चवर पुच्छ गौ । कूले चर वात पित्त के नाशक शुक्र को करनें वाले बल कारी ॥ मधुर शी तल चिकने मूत्र को करने वाले और कफ को बढ़ाने वाले हे ॥२६॥ अनन्तर प्लवों की गणना और गुण । हंस, सारस, कुरंडु वा, बगला क्रौंच आड़ी ॥ नन्दी

मुखी येह वोह जान वर हैं जिसके चोंच पर जामन के सम गुठली होतीहै ओ र वत्तक सा होताहै करवा वगुला आदि ये प्लव कहे हैं ॥ २७॥ येहजल में रहते है इस वास्ते इनको प्लव कहाहै ॥

कारण्डः कपर्द्दि कारव्यो दृहद चकाश " क्रौञ्चः र द्र विहङ्गः स्यात् " टेङ्क इति लोके । शार रिका सिन्धु इति । स्थूला कठोरा वृत्ताच यस्याश्च ञ्चू परि स्थि ता ॥ गुटि का जम्बु स दृशी प्रोक्ता नन्दी मुखी तिसा ॥२८॥ कादम्बः करवा इति लोके । बलाका वगु ली इति लोके । प्लवाः पित्त हरा स्निग्धाः मधुरा गु रवो हिमाः ॥ वात श्लेष्म प्रदाश्चापि वल शुक्र कराः सराः ॥२९॥ अथ कोशस्थानां गणना गुणा श्च ॥ शङ्खः शङ्खनख श्चापि शुक्ति शम्बूक-कर्कटाः ॥ जीवा एवं विधा श्चान्ये कोशस्थाः परि कीर्त्तिताः ॥ ३०॥ शङ्ख नखः क्षुद्र शङ्खः ।

भा० कुरडुवा ढीक । आडी । इति । स्थूल कठोर गोल जिसके चोंच परर हेताहै॥ जामुन की गुठली के समान वो नन्दी मुखी कहाहै ॥२८॥ करवा इ-स प्रकार लोकमें कहते हैं । वगुली इस प्रकार लोक में कहते हे । प्लव पित्त नाशक चिकने मधुर भारी,शीतल ॥ वात कफ को करनें वाले और शुक्र को कर ने वाले सरहै॥२९॥ अनन्तर कोशस्थों की गणना और गुण कहते हे ॥शंखछो टा शंख सीप घोंगा केकड़ा॥ इस प्रकार केजीव और को शस्थ कहे हे ॥३०॥ छोटा शंख ।

कोशस्था मधुराः स्निग्धाः वात पित्त हरा हिमाः ॥ बृंह णा बहु वर्चस्का वृष्याश्च बल वर्द्धनाः ॥ ३१॥

अथ पादिनां गणाना गुणा श्च ॥

कुम्भीर-कूर्म-नक्राश्च गोधा-मकर-शङ्कव ः॥ घरिट

कः शिशु मारश्चे त्यादय ः पादिनः स्मृता ः ॥ ३१॥

(क) कुम्भीरो मारको जलजन्तुः। कूर्मः कच्छपः। न-

क्रः नाक इति लोके। गोधा गोहि जल जन्तुः। मकर म

गर इति लोके। शङ्कुः साकुच इति लोके। घरिट कः घ

रीं आल इति लोके। शिशु मारः सूस इति लोके।

पादिनो ऽपि च येने तु कोशस्या नाङ्गुणैः समाः।

भा० कोशस्य मधुर चिकने वात पित्त के नाशक शीतल ॥ पुष्ट बहुतमलको करनेंवाले शुक्रको करने वाले और बलको बढ़ाने वाले हे ॥ ३१॥ अनन्तर पादियोंकी गणना औरगुण। येह मगर का भेद है। कछुवा नाका गोहि मगर साकुच। घड़ियाल सूस इत्यादि येह पादिक हेहें ॥३१॥ (क) येह मारक जल जीव है। कछुवा। नाका। गोहि। मगर। साकुच। घरि आल। सूस। जो पादि हैं वेभी कोशस्थोंके समान गुण में हैं ॥

अथ मत्स्य नामानि गुणा श्च ॥

मत्स्यो मीनो विकारश्च उयो वैशारि णो ऽण्ड जः॥ श

कुलो पृथु रोमाच स सुदर्शन इत्यपि॥ ३२॥ रोहिता द्या

स्तु ये जीवास्ते मत्स्याः परि कीर्त्तिता ः॥ मत्स्या ः स्निग्धो

ष्णा मधुरा गुर वः कफ पित्त लाः॥ ३३॥

भा० मछलियों के नाम और गुण। मत्स्य मीन विदार उय वैशारिण अंडज शकुल पृथु रोमां और सुदर्शन येह मछलियों के नाम हैं ॥ ३२॥ रोहू आदिक जो जीव है वे मत्स्य कहे हैं। मत्स्य चिकने उष्ण मधुर भारी कफ़ पित्तको करनें वाले हैं ॥३३॥

वातघ्ना बृंहणा वृष्या रोचका बल वर्द्धनाः॥ मद्यव्यवाय सक्तानां दीप्ताग्नी नाञ्च पूजिताः॥३४॥ (क)

अथ जङ्गला दीनां नामानि गुणाश्च। तत्र जङ्गलेषु हरिणस्य गुणाः। हरिणः शीतलो वद्ध विराभूत्रो दीपनो लघुः॥रसे पाके च मधुरः सुगन्धिःसन्नि पातहाः॥ ३५॥ कृष्णसाइल हरिणः। एणः कषायो मधुरः पित्तासृक्कफ वात हृत॥ संग्राही रोचनो वल्यो ज्वर प्रशमनः स्मृतः॥ ३६॥

भा० और वात नाशक पुष्ट शुक्र को करने वाले रोचक कवल को वढाने वालेहैं तथा मद्य मैथुन में आसक्तों को और दीप्ताग्नि यों कोभी हितहै॥ ३४॥ (क) अनन्तर जांगल आदियों के नाम गुण। उनसें हरिण के गुण। हरिण शीतल मलमूत्र को वान्धने वाला दीपन हलका॥ रस और पाक में मधुर सुगन्धि सन्नि पात के नाशक है॥ ३५॥ अनन्तर काला हरिण। एण कसैला मधुर रक्त पित्त कफ वात इनका नाशक है॥ और काविज रोचन वलके हित ज्वर को शमन करनें वाला कहाहै॥ ३६॥

अथ कुरङ्गः। कुरङ्गो बृंहणो वल्यः शीतलः पित्तहृद् गुरुः॥ मधुरो वात हृत् ग्राही किञ्चित्कफ करः स्मृतः॥ ३७॥ अथ रोऊ। ऋष्यो नीलाण्ड कश्चापि गवयो रोऊ इत्यपि॥ गवयो मधुरो वल्यः स्निग्धो ग्या कफ पित्त लः॥ ३८॥ अथ चित्तरि। एयतस्तु भवेत् स्वादुर्ग्राहकः शीतलो लघुः॥ दीपनो रोचनः श्वासज्वर दोष त्रयास्त्र जित्॥ ३९॥

भा० अनन्तर कुरङ्गः। कुरंग बृंहण बलके हित शीतल पित्त नाशक भारी ॥ मधुर वात नाशक का विज और कुछ कफ़ करने वाला कहाहै ॥३७॥ अनन्तर रोऊ। ऋष्य नीला राडक गवय रोऊ येह नील गाय के नाम हैं ॥नील गाय मधुर बलके हित चिकनी उष्ण कफ पित्तको करनें वाली है ॥३८॥ अनन्तर चिन्नरि। चिन्नरि मधुर का विज शीतल हलका॥ दीप्तन रोचन है और श्वास ज्वर तीनों दोष रक्त इनको जीतने वालाहै ॥ ३९॥

अथ वारह सिङ्गा। न्यङ्कुः स्वादु र्लघु र्बल्यो वृष्यो दोषत्रया पहः॥ अथ सावर। सावरं पललं स्निग्धं शीतलं गुरु च स्मृतम्। रसे पाके च मधुरं कफदं रक्त पित्त हृत्॥४०॥ राजि वस्तु गुणै र्ज्ञेयः पृषतेन समो जनैः॥ अथ पीठी। मुण्डी तु ज्वर का सास्त्र क्षय श्वासां पहो हिमः॥ अथ विले शयेषु तत्र शशः स्यात्। लम्ब कर्णः शशः शूली लोम कर्णो बिलशयः॥ शशः शीतो लघु र्ग्राही रूक्ष स्वादुः सदा हितः॥ ४१॥ वन्हि कृत्कफ वातघ्नो वात साधारणः स्मृतः॥ ज्वराती सार शोषा स्र श्वासा मय हरश्च सः॥ ४२॥ अथ साही। सेधा तु शल्यकः श्वावित्त कथ्यते तद्गुणा अथ। शल्यकः श्वास कासास्र शोष दोषत्रया पहः॥४३॥ अथ पक्षिणां नामानि गुणाश्च॥

भा० अनन्तर वारह सिङ्गा। वारह सिंगा मधुर हलका बलकोंहित शुक्रको करनें वाला तीनों दोषों का नाशक है॥ अनन्तर सावर। सावर का मांस चिकना शीतल भारी कहाहै॥ रस पाक मे मधुर कफ को करने वाला रक्त पित्त का नाशक है॥४०॥ राया चिन्नरि के समान गुणमें लोग जानें॥ अनन्तर पीठी। पीठीज्वर

कास रक्त क्षय श्वास इनका नाशक शीतल होताहै ॥ अनन्तर विलेशयों में शश होताहै ॥ लम्ब कर्ण शश शूली लोम कर्ण विलें येह खर गोशके नामहै खर गोश शीतल हलका काबिज रूखा मधुर सदा शीतल ॥ ४१॥ अग्निदीपन कफ़ वात का नाशक साधारण वात को करनें वाला कहाहै ॥ और ज्वर अतीसार शोष रक्त श्वास रोग इनका नाशक वोह है ॥४२॥ अनन्तर साही। सेधा तु शल्यक श्वाविन येह साहीके नाम है। अनन्तर गुण कहते हैं। साही श्वास कास रक्त शोष और त्रिदोष इनका नाशक है ॥४३॥ अनन्तर पक्षियों के नाम और गुण॥

पक्षी खगो विहङ्गश्च विहगश्च विहङ्गमः॥ शकुनिर्विःपतत्रीच विष्किरो विकिरोऽण्डजः॥ ४४॥ धान्याःकुरचरा येऽत्र तेषां मांसं लघुत्तमम्॥ आनूपं बलकृन्मांसं स्निग्धं गुरुतरं स्मृतम् ४५ तेषु विष्किरेषु वटेरवटइ। वर्त्तिको वर्त्तकश्चित्र स्ततोऽन्या वर्त्तकाः स्मृताः॥ वर्त्तकोऽग्निकरः शीतो ज्वरदोषत्रयापहः ४६॥ सुरुच्यः शुक्रदो वल्यो वर्त्तकाल्पगुणास्ततः॥

भा० पक्षी खग हिङ्ग विहंग विहङ्गम॥ शकुनी वियत नी विष्किर विकिर अंडज येह पक्षी योंके नाम है॥ ४४॥ धान्य और कुरचरजो इसमें है उनके मांस हलके और अच्छे है॥ आनूप मांस बल कारी चिकना गुरु तर कहाहै॥४५॥ उन विष्किरोंमे वटेर वटई। वर्तिक वर्त्तक चित्र येह वटेर के नाम हैं। और इससे दूसरा वर्त्तक कहाहै॥ वटेर अग्नि दीपन शीतल ज्वर और तीनों दोष इनका नाशकहै।॥४६॥ और अच्छा रुचि को करनें वाला शुक्र को करनें वाला वलके हित होताहै और वटई इस्से गुणमें अल्प है॥

अथ लावा। लावा विष्किर वर्गेषु ते चतुर्धा मता बुधैः॥ पांशुलो गौरको ऽन्यस्तु पौण्डरीकोदरस्तथा॥ ४७॥ लावा वन्हिकराः स्निग्धा गरश्च ग्रा-

हिका हिताः ॥ पांशुलः श्लेष्म लस्तेषु वीर्य्योष्ण निल नाशनः ॥४८॥ गौरो लघुतरो रूक्षो वन्हि कारी त्रिदोष जित् ॥ पौण्ड्रकः पित्तकृत् किञ्चि ल्लघु वात कफाप हः ॥४९॥ दर्भरो रक्त पित्तघ्नो हृदामय हरो हिमः ॥

भा० अनन्तर लवा । विष्कर वर्ग में वोह चार प्रकार,पंडितोंने मानाहै ॥ पांशु ल गौरक और दूसरा पौण्डरीक उदर येह लावाके भेद हैं ४७॥ लवा अग्नि को करनें वाला चिकना विषनाशक का विज और पथ्यहै ॥ और उनमें पांशुल क फकारि शुक्र को करनें वाला वात नाशक है ॥४८॥ गौर वहुत हलका रूखा दीपन और त्रिदोष को जीतने वाला है॥ पौण्ड्रक पित्त को करनें वाला कुछ हलका वात क फका नाशक है ॥४९॥ दर्भर रक्त पित्त का नाशक और हृदय रोग का नाशक शी तलहै॥

अथ वगेरा । वालीको वर्त्ति चटको वार्त्ती कश्चे व स स्मृतः॥ वाली को मधुरः शीतो रूक्षश्च कफ पित्त नुत् ॥५०॥ अथ कृष्ण तित्ति रि गौरति त्ति री ॥ तित्तिरिः कृष्ण वर्णः स्या च्चि त्रो ऽन्यो गौरतित्तिरिः ॥ तित्तिरी वल दो ग्राही हिक्का दोष त्रया पहः ॥ ५१॥ श्वास कास ज्वर हर स्तस्माद्गौ राधिको गुणैः ॥ अथ गव रै य्या ॥ चटकः कल विङ्कः स्यात् कुलिङ्कः काल कण्ठ कः । कुलिङ्कः शीतलः स्निग्धः स्वादुः शुक्र कफ प्रदः ॥५५॥ सन्नि पात हरो वेश्म चट कश्चाति शुक्रलः ॥

भा० अनन्तर वगेरा । वालीक वर्त्ति चटक वार्तीक येह वगेरा के नामहै ॥ व गेरा मधुर शीतल रूखा कफ पित्त का नाशक है ॥ ५०॥ अनन्तर और सुफेद ती तर ॥ काला तीतर चित्र और दूसरा सफेद तीतर होताहै ॥ तीतर वलको देने वा ला काविज है और हिचकिया तीनों दोष ज्वर इनका नाशक है उस्से सफेद तीतर

गुणमें अधिक है॥ अनन्तर गवरैआ ॥ चटक कलविङ्क कुलिङ्ग कालकंठ क॥येह गवरैआ के नाम है॥ गवरैआ शीतल चिकना मधुर शुक्र और कफको करनें वाला॥५२॥ तथा सन्निपातका नाशक और घरकी गवरैआ बहुत शुक्र को करने वालाहे॥ कुक्कुटो वन कुक्कुटः। कुक्कुटः कृकवाकुः

स्यात् कलयश्चरणायुधः॥ ताम्रचूड स्तथा दक्षो पा

तर्णा दी शिखण्डकः॥ ५३॥ कुक्कुटो बृंहणः स्नि

ग्धो वीर्य्योष्णो ऽनिलहृत् गुरुः॥ चक्षुष्यः शुक्रकफ

कृत् बल्यो वृष्य कषायकः॥ ५४॥ आरण्य कुक्कुटः

स्निग्धो बृंहणः श्लेष्मलो गुरुः॥ वात पित्त क्षय वमि

विषम ज्वर नाशनः॥५५॥ प्रतुदेषु हारी तस्य॥

भा० अनन्तर मुरगा और वन मुरगा। कुक्कुट कृकवा कुकलय चरणायुध॥ ताम्र चूड तथा दक्ष पातर्णा दी त्रिखण्डिक येह मुरगेके नाम हैं॥ ५३॥ मुरगा पुष्ट चिकना वीर्य्य में उष्ण वात नाशक भारीहे॥ और नेत्रके हित शुक्र कफ को करनें वाला बलके हित शुक्र को करनें वाला कसेला है॥५४॥ वन मुरगा चिकना पुष्ट कफको करनें वाला भारी है॥ और वात पित्त क्षय वमन विषम ज्वर इनका नाशक है॥५५॥ प्रतुद में हारील का॥

हारीतो रक्तपीतःस्याद्धरितो ऽपि स कथ्यते हारीतो हा

रील इति लोके॥ हारीतो रूक्ष उष्णश्च रक्तपित्त क

फापहः॥ स्वेदस्वर करः प्रोक्तः ईष द्वात करश्च सः॥

पाण्डु धवल पाण्डू। पाण्डुस्तु द्विविधो ज्ञेय श्चित्र प

क्षः कलध्वनिः॥ द्वितीयो धवलः प्रोक्तो स कपोतः

स्फुटस्वनः॥ ५७॥ चित्रपक्षः चित्तरोया इति लोके।

भा० हारीत रक्त पीत होताहै और हरित भी येह उसका नाम है। इसको हरील

इस प्रकार लोक में कहेते हैं ॥ हारील रूखा गरम रक्त पित्त और कफका नाशक है। और स्वेद स्वर को करने वाला कहाहै ॥तथा अल्प वात को करने वालाहै ॥५६॥ पाण्डु और धवल पाण्ड। पिडुका दो प्रकार का होताहै चित्र पक्ष और कल ध्वनि ॥ दूसरा धवल कहाहै कपोत स्फुट नये पेड कीके नाम है ॥ ५७॥ चित्रे पक्ष पित्त रोधा इस प्रकार लोक में कहेते हैं ॥

चित्र पक्षः कफ हरो वातघ्नो ग्रहिणी प्रणुत् ॥ धवलः पा
ण्डु रुक्षिष्टो रक्त पित्त हरो हिमः ॥ ५८॥ अथमयूरः।
मयूर श्चन्द्र की केकी मेघरावो भुजङ्ग भुक् ॥ शिखी शि
खावलो वर्ही शिखण्डी नील कण्ठ कः ॥ ५९॥ शुक्लो पा-
ङ्गः कलापीच मेघ नादः कलाप्यपि ॥ रसे पाके च मधुरः
संग्राही वात शान्ति हृत् ॥ ६०॥ कबूतर परेवा ॥
पारा वतः कलरवः कपोतो रक्त वर्द्धनः ॥ पारावतो गु-
रुः स्निग्धो रक्त पित्तानि लापहः ॥ ६१॥ संग्राहीशीत
लस्तज्ज्ञैः कथितो वीर्य्य वर्द्धनः ॥

भा० चित्र पक्ष कफ नाशक वात नाशक और संग्रहणी का नाशक है ॥ धवल और पाण्डु रक्त पित्त का नाशक शीतल कहाहै ॥ ५८॥ अनन्तर मोर ॥ मोर चन्द्र की केकी मेघराव भुजङ्ग भुक ॥ शिखी शिखा वल वर्हि शिखण्डी। नील कण्ठ क ॥५९॥ शुक्लो पाङ्ग कलापी मेघनाद कला पियेह मोरके नामहै ॥मोर रस पाक में मधुर काविज वात शमन करने वाला है ॥ ६०॥ अनन्तर कबूतर परेवा। पारा वत कलरव कपोत रक्त वर्द्धन येह कबूतर के नाम है कबूतर भारी चिकना रक्त पित्त वात का नाशक है ॥ ६१॥ और काविज शीतल उसको जानने वालोंनें वीर्य्य का बढानें वाला कहाहै ॥

अथ पक्ष्यण्डस्य गुणाः ॥

नाति स्निग्धा नि वृष्याणि स्वादु पाकर सा निच ॥ ॥

वातघ्नान्यपि शुक्राणि गुरूण्यण्डानि पक्षिणाम् ॥ ६२॥ ग्राम्येषु छागस्य । छागलो वर्करश्छागो वस्तो जः क्षेलकः स्तुभः॥ अजा छागी स्तुभा चापि छेलिका च गलस्तनी ॥ ६३॥ छागमांसं लघु स्निग्धं स्वादु पाकं त्रिदोषनुत् ॥ नातिशीत मदाहिस्यात् स्वादु पीनसनाशनम् ॥ ६४ ॥ परं वलकरं रुच्यं वृंहणं वीर्य्य वर्द्धनम् ॥ अजाया अप्रसूताया मांसं पीनसनाशनम् ॥ ६५॥ शुष्ककासे ऽरुचौ शोषे हितमग्ने श्च दीपनम् ॥

भा० अनन्तर पक्षियोंके अंडो का गुण । न बहुत चिकनें शुक्रको करनें वाले रस और पाक में मधुर ॥ वात नाशक अति शुक्र को करनें वाले भारी ऐसे पक्षीयोंके अंडे होते है ॥ ६२॥ ग्राम्य में बकरी का ॥ छागल वर्कर छाग वस्त ओज क्षेलकस्तुभ येह बकरे के नाम है ॥ और अजा छागी स्तुभा छेलिका गलस्तनी येह बकरी के नाम है ॥६३॥ छाग मांस हलका चिकना पाकमें मधुर त्रिदोष नाशक ॥ न बहुत शीतल अविदाही मधुर होताहे और पीनस का नाशकहे ॥६४॥ अत्यन्त वलको करनें वाला रुचिको करनें वाला पुष्ट वीर्य्य को वढानें वाला है ॥ विन बच्चों को दीहुई बकरी का मांस पीनस नाशक है ॥ ६५॥ सूकी खांसी में अरुचि में शोष में हित है और अग्नि दीपन ॥

अजासुतस्य वालस्य मांसं लघुतरं स्मृतम् ॥ ६६॥ हृद्यं ज्वरहरं श्रेष्ठं सुखदं वलदं भृशम् ॥ मांसं निःकासिताण्डस्य छागस्य कफकृद्गुरु ॥ ६७॥ स्रोतः शुद्धकरं वल्यं मांसदं वातपित्तनुत् ॥ वृद्धस्य वातलं रूक्षं तथा व्याधिमृतस्य च ॥ ६८॥ वर्द्धजन्तुविकारखं छागखण्डं रुयिप्रदम् ॥

भा॰ बकरी के बच्चे का मांस लघु ज्वर कहा है ॥ ६६॥ इथ ज्वर नाशक और सुख को देनें वाला और अत्यन्त बलको देने वाला है ॥ आंड निकाले हुवे बकरे का मांस कफ को करनें वाला भारी है ॥ ६७॥ और सोतो को शुद्ध करनें वाला बलके हित मांसको करने वाला वात पित्त का नाशक होताहै ॥ वृद्ध छाग का मांस बातल रूखा तथा रोगसे मरे हुवे का मांस भी वैसेही होताहै ॥ ६८॥ बकरी का सिर जत्रु के ऊपर होने वाले रोगका नाशक और रुचिको करनें वाला है ॥

अथ मेढा । मेढ्रो मेंढो हुडो मेष उरणो ऽप्येडको ऽपि च॥ 'अवि र्वृष्णि स्तथो र्णा युस्क' कथ्यन्ते तद्गुणा अथ॥ ६९ 'मेषस्य मांसं पुष्टौ स्यात्पित्त श्लेष्म करं गुरु ।' तस्ये वाण्ड विहीनस्य मांसं किञ्चि ल्लघुस्मृतम् ॥ ७०॥

अथ एडिका दुम्बिका इति लोके ।

दुम्बा । एडकः पृथु शृङ्गः स्यान्मे दः पुच्छ स्तु दुम्ब- कः॥ एड कस्य पलं ज्ञेयंमेषा मिष समं गुणे ः॥ ७१ मेदः पुच्छो द्भवं मांसं हृद्यं वृष्यं श्रमा पहम् ॥ पित्त श्लेष्म करं किञ्चि द्वात व्याधि विना शनम् ॥ ७२॥

भा॰ अनन्तर मेढा । मेढ्र मेढ हुड मेष उरण एडकभी ॥ अवि वृष्णि तथा उर्णायुस्क येह भेडके नाम है, अनन्तर उसके गुण कहेतेहैं ॥ ६९॥ मेढे का मांस पुष्टदेताहै और पित्त कफ का करनें वाला भारी है ॥ अंड रहित उसका मांस किंचित हलका कहाहै ॥ ७०॥ अनन्तर दुम्बिका । दुम्बा । एडक पृथु शृङ्ग मेद पुच्छ दुम्ब कयेह दुम्बेकेनाम है ॥ दुम्बे का मांस मेंढके मांस के समान गुणमें जानना चाहिये ॥ ७१॥ उस्के दुम्का मांस हृद्य शुक्रको उत्पन्न कर्नेवाला श्रमनाशक है ॥ और पित्त कफको करनें वाला तथा कुछ एकवात के रोग का नाशक है॥ ७२॥

अथ वर्द गावः । बली वर्दस्तु वृषभ स्त्रय सस्व तथा वृषः॥ अनड्वन सौर भेयल्प गौरुक्षाभद्र

दुत्थापि ॥७३॥ सुरभिः सौरभेयी च माहेयी गौ रु दाहृता। गोमांसन्तु गुरु स्निग्धं पित्त श्लेष्म विवर्द्ध नम् ॥७४॥ वृंहणं वात हृद्बल्य मपथ्यं पीन सप्रणुत्॥

अथ घोड़ा। घोटके पीजि तुरगा तुरङ्गाश्च तुरङ्गमाः वाजि वाहार्व्व गन्धर्व्व-हय सैन्धव सप्तयः ॥७५॥ अश्व मांसन्तु क्षुवरं वन्हि कृत्कफ पित्तलम् ॥ वात हृद्वृंहणं वल्यं चक्षुष्यं मधुरं लघु ॥७६॥

अथ कूले चरेषु महिषस्य।

भा० अनन्तर वर्द गाव वली वर्द दृषभ ऋषभ तथा वृष ॥ अनडुन सौरभेय स्य गौ उक्षा भद्र येह वैल के नाम हैं ॥७३॥ सुरभी सौर भेयी हाइेयी गौ येह गाय के नाम कहे हैं ॥ गौ मांस भारी चिकना पित्त कफ़ का वढ़ानें वाला है ॥ ७४॥ और पुष्ट वात नाशक वल को करनें वाला अहित और पीनस का नाशक है॥ अनन्तर घोड़ा ॥ घोटक पिजि तुरंग तुरङ्गम ॥ वाजि वाहार्व्व गंध र्व हय सैन्ध सप्तय येह घोड़े के नाम हैं ॥ घोड़े का मांस कसेला दीपन कफ़ पित्त को करनें वाला है ॥ वात नाशक वृंहण वल के हित नेत्र के हित मधुर हलका है ॥७६॥ अनन्तर कूले चरों में भैंस का ॥

महिषो घोट कारिः स्यात्का सरश्च रजस्वलः ॥ पीन स्कन्धः कृष्ण कायो लुलापो यम वाहनः ॥७७॥ महिषस्यामिषं स्वादु स्निग्धोष्णं वात नाशनम् ॥ निद्रा शुक्रप्रदं वल्यं तनु दार्ढ्य करङ्गुरु ॥७८॥ दृष्य न्व स्तृष्ट विन्मूत्रं वात पित्तास्र नाशनम् ॥

भा० महिष घोट कारिका सार रज स्वल ॥ पीनस्कन्ध कृष्णकाय लुलाय यम वाहन॥७७॥ येह भैंसके नाम हैं भैंस का मांस मधुर चिकना गरम वातनाशक

है॥ और निद्रा शुक्र को करनें वाला बलके हित शरीर को दृढ करनें वालाभारी ॥ ७०॥ पाकको करनें वाला और मल मूत्र को करनें वाला वात रक्त पित्त इन का नाशक है॥

अथ मण्डूकः। मण्डूकः प्लव गो भेको वर्षाभू र्दर्दुरो हरिः॥ मण्डूकः श्लेष्मलो नाति पित्तलो बलकारकः॥७९॥ अथ पादिषु कच्छुआ। कच्छपो गूढ पात्कूर्मः कमठो दृढ पृष्ठकः। कच्छपो बल दो वातपित्तनुत्पुंस्त्व कारकः॥८०॥ अथ विशेषाः। अथ सद्योहतस्य मांसस्य गुणाः। सद्यो हतस्य मांसं स्यात् व्याधि घातियथाऽमृतम्। वयस्थं बृंहणं सात्म्य मन्यथा तद्विवर्जयेत्॥ ८१॥

भा० अनन्तर मेंडक। मंडूक प्लव गो भेक वर्षाभू दर्दुर हरि येह मेंडक के नाम हैं। मेंडक कफ करनें वाला और बहुत पित्त को करने वाला नहीहै तथा बल करने वाला है॥७९॥ अनन्तर पादियोंमें कच्छुवा। कच्छप गूढ पात कूर्म कमठ दृढ पृष्टक येह कच्छुवे के नाम है। कच्छुवा बलको देने वाला वात पित्त का नाश क पुरुषत्व को करनें वाला है। ८०। और विशेष। अनन्तर तत्त कालके मारे हुवे के मांस का गुण। तत् कालके मारे हुवे का मास रोग नाशक जैसे अमृत॥ वयके हित पुष्ट सात्म्य होताहै॥ और इस्से विरुद्ध उसको त्याग देवे॥ ८१॥

स्वयं मृतस्य मांसम्। स्वयं मृतस्य चाबल्य मती सारकरंगुरु॥ वृद्ध वाल मांसम्॥ वृद्धा नां दोषलं मांसं। वालानां बल्लहं लघु॥ सर्प दष्टस्य मांसञ्च शुष्क मांसं त्रिदोष कृत्॥ ८२॥ व्याल दष्टञ्च दुष्टञ्च शुष्कं। शूल करम्परम्॥ अथ विषादि मृतस्य मांसम्॥

भा० आपही मरे हुवे के मांस। आपही मरे हुवे का मांस बल नाशक अतीसार को करनें वाला भारी होताहै॥ वृद्ध और वाल का मांस। वृद्धों का मांस दोषका

य कारक और बच्चों का मांस बलको देनें वाला हलका होताहै ॥ सांप के काटे का मांस और सूका मांस त्रिदोष कारक है ॥ ८२॥ सांपके काटे हुवे का मांस और दुष्ट तथा सूका मांस परम शूलकारक है ॥ अनंतर विषादि से मरे हुवेका मांस॥ विषाम्बु रुङ्मृतस्यैतत् मृत्यु दोष रुजा करम् ॥ क्लिन्न सुत क्लेश जनकं कृश वात प्रकोप नम् ॥ ८३॥ तोय पूर्णं शिरा जालं मृतमप्सु त्रिदोष कृत् ॥ विहङ्गेषु पुमान् श्रेष्ठः स्त्री चतुष्पद जातिषु ॥ ८४॥ पश्चार्द्धो लघु पुंसां स्यात् स्त्रीणां पूर्वार्द्ध मादि शेत् ॥ देह मध्यं गुरु प्रायं सर्वेषां प्राणिनां स्मृतम् ॥ ८५॥ पक्ष क्षेपा द्वि हङ्गा नां तदे व लघु कथ्यते ॥

भा॰ विष जल और रोग इनसे मरे हुवे का मांस मृत्यु दोष रोग इनकी करने वाला है ॥ और सड़ा उत्क्लेश को करनें वाला कृश वात के प्रकोप को करने वाला है ॥ ८३॥ जलमें मरा हुवा जलसे भरा शिराजालवाला ऐसा मांस त्रिदोष को करने वाला है ॥ पक्षियोंमें नर श्रेष्ठ और चौपायों में स्त्री श्रेष्ठ है ॥ ८४॥ नरोंका पिच्छला हिस्सा हलका होताहै । और स्त्रियों का अगला हिस्सा हलका ॥ सब जीवों का मध्य देह प्रायः भारी कहाहै ॥ ८५॥ पक्ष क्षेपसे परिन्दों का वोही हलका कहा है ॥ गुरू ण्यण्डानि सर्वेषां गुर्वी ग्रीवा च पक्षिणाम् ॥ ८६॥ उरःस्कन्धो दरं कुक्षी पादौ पाणी कटी तथा ॥ पृष्ठ त्वग् यकृ दन्त्राणि गुरूणीह यथो त्तरम् ॥ ८७॥ लघु वात करं मांसं खगानां धान्य चारिणाम् ॥ मत्स्याशिनां पित्त करं वातघ्नं गुरु कीर्तितम् ॥ ८८॥

भा॰ सब पक्षियोंके अंडे भारी और गरदन भी भारी होतीहै ॥ ८६॥ और छातीकन्धा उदर कूख पांव हाथ तथा कमर ॥ पीठ त्वचा यकृत् आंत देह यथोत्तर भारीहै

॥८८॥ घान चरने वाले पक्षियों का मांस हलका और वात करनें वाला है ॥ और म छली खानें वालों का पित्त वात नाशक भारी कहा है ॥ ८८॥

पलाशिनां श्लेष्म करं लघु रूक्ष मुदीरितम् ॥ वृंहणं गुरु वातघ्नं तेषा मेवं पलाशिनाम् ॥ ८९॥ तुल्य जाति ष्वल्प देहा महा देहेषु पूजिताः ॥ अल्प देहेषु शस्यन्ते तथैव स्थूल देहिनः ॥ ९०॥ मत्स्येषु रोहि तस्य ॥ रक्तो दरो रक्त मुखो रक्ता क्षो रक्त पक्षतिः ॥ कृष्ण पू च्छो झय श्रेष्ठो रोहितः कथितो बुधैः ॥ ९१॥ रोहितः । सर्व मत्स्यानां वरो वृष्यो ऽर्दित निजित् ॥ कषाया नुरसः स्वादु र्वातघ्नो नाति पित्त कृत् ॥ ९२॥ ऊर्द्ध जत्रु ग- ता न्रोगान् हन्या द्रोहित मुण्ड कम् ॥

भा० मांस खाने वालों का कफ करने वाला हलका रूखा कहा है ॥ उन्हीके । मांस को खाने वालोंका मांस पुष्ट भारी वात नाशक होताहै ॥ ८९॥ समान । जाति वाले बड़े देह वालों में अल्प देह वाले श्रेष्ठहै ॥ उसी प्रकार अल्प शरीर वालों में स्थूल देह वाले प्रशस्त है ॥ ९०॥ मछलियों में रोहू का मांस ॥ लाल उदर लाल मुख लाल पर ॥ काली पूंछ मछलियों में श्रेष्ठ रोहू पंडितों नें कहाहै ॥ ९१॥ रोहू सब मछलियों में श्रेष्ठ शुक्रको करनें वाली अर्दित रोग को जीतने वाली ॥ पीछेसे कसैली मधुर वात नाशक न बहुत पित्तकोकर नेंवाली है ॥ ९२॥ रोहूका सिर गलेके ऊपर के रोगोंको नाश करता है ॥

सिलन्धा । सिलन्धः श्लेष्म लो बल्यो विपाके म- धुरो गुरुः ॥ वात पित्त हरो हृद्यं आम वात करस्त था ॥ ९३॥ अथ भाकुर । भकुरो मधुरः शीतो वृ- ष्यः श्लेष्म करो गुरुः ॥ विष्टम्भ जन कश्चा पि रक्त ।

पित्त हरः स्मृतः ॥ ८४॥ मोचिका ॥

मोचिका वात हृद्बल्या वृंहणी मधुरा गुरुः ॥ पित्त हृत कफ कृद्रुच्या वृष्या दीप्ताग्नये हिता ॥ ८५॥ मठना चूआरी इति च पोठिया वोरी इति च ॥ पाठिनः श्लेष्म लो बल्यो निद्रालुः पिशिता शनः॥ दूषये द्रुधिरं पित्त कुष्ठ रोगं करोतिच ॥ ८६॥

भा० सिलन्धा मछली। सिलन्ध कफ़ को करनें वाली वलके हित विपाक में मधुर भारी ॥ वात पित्त की नाशक हृद्य और वोह आम वात को करनें वाली है ॥ ८३॥ अनन्तर भाकुर। भकुर मधुर शीतल शुक्रको करनें वाली कफ कारकभारी होतीहै। और विष्टंभ जनक तथा रक्त पित्त की नाशक भी कही है ॥ ८४॥ अनन्तर मोचिका। मोचिका वात नाशक वलको करनें वाली पुष्ट मधुर भारी॥ पित्त नाशक कफ़ को करनें वाली और दीप्ताग्नि वाले को हित है ॥ ८५॥ मठना चूआरी ॥ पोठिया वोरी। मठना कफ़को करनें वाली वलके हित निद्रा को करनें वाली है ॥ और मांस खाने वाले के रुधिर को विगाड़ती है तथा पित्त और कुष्ठ रोग कोभी करतीहै ॥ ८६॥

अथ सीङ्गी। शृङ्गी तु वात शमनी स्निग्धा श्लेष्म प्रकोप नी ॥ रसे तिक्ता कषाया च लघ्वी रुच्या स्मृता वुधैः ॥ ८७॥ अथ हील सा ॥ इल्लिसो मधुरः स्निग्धो रोचनो वन्हि वर्द्धनः॥ पित्त हृत्कफ कृत्किञ्चि लघु र्वृष्यो ऽनिला पहः ॥ ८८॥

भा० अनन्तर सीङ्गी ॥ सीङ्गी वातको शमन करनें वाली चिकनी कफ़ प्रकोप करनें वाली ॥ रस में तिक्त कसेली रुचिको करनें वाली पंडितों ने कहीहै ॥ ८७॥ अनन्तर हील सा ॥ हील्सा मधुर चिकनी रुचि को करनें वाली दीपन ॥ पित्त नाशक कफ़ को करनें वाली कुछ हलकी शुक्र को करनें वाली वात नाशक है ॥ ८८॥

अथ सौरी । शष्कुली ग्राहिणी हृद्या मधुरा तुवरा स्मृता। अथ गर्गरा । गर्गरः पित्तलः किञ्चिद्वातजित्कफकोपनः। अथ कवइ । कविका मधुरा स्निग्धा कफघ्ना रुचिकारिणी ॥ किञ्चित्पित्तकरी वातनाशिनी वन्हिवर्द्धिनी ॥ ९९ ॥ अथ वाम्बी ॥ वर्मिमत्स्यो हरेद्वातं पित्तं रुचिकरो लघुः ॥

भा० अनन्तर सौरि । सौरी का विज हृद्य मधुर कसैली कहीहै ॥ अनन्तर गर्गरा । गर्गरा पित्त को करनें वाली कुछ एक वात को जीतने वाली कफ को कुपित करनें वाली है । अनन्तर कवइ । कवई मधुर चिकनी कफ नाशक रुचि को करने वाली ॥ कुछ एक पित्त को करनें वाली वातनाशक अग्नि को बढानें वाली है ॥९९॥ अनन्तर वाम्बी ॥ वाम्बी मछली वात पित्त को हरती है और रुचि को करनें वाली हलकी है ॥

अथ दण्डारी । दण्डमत्स्यो रसे तिक्तः पित्तरक्तं कफं हरेत् । वातसाधारणः प्रोक्तः शुक्रलो बलवर्द्धनः ॥ १०० ॥ अथ अरङ्गी । एरङ्गी मधुरः स्निग्धो विष्टम्भी शीतलो लघुः ॥ अथ पपता ॥ महासफरसंज्ञस्तु तिक्तः पित्तकफापहः ॥ शिशिरो मधुरो रुच्यो वातसाधारणः स्मृतः ॥ १०१ ॥ अथ गरई ॥ गरघ्नी मधुरा तिक्ता तुवरा वातपित्तहृत् ॥ कफघ्नी रुचिकृद्धृद्या दीपनी बलवीर्य्यकृत् ॥ १०२ ॥ अथ मद्गुरी । मद्गुरी वातहृद्बल्यो वृष्यः कफकरो लघुः ॥

भा० अनन्तर दण्डारी । दण्डारी मछली रसमें तिक्त और पित्त रक्त कफ इनको

हरती है ॥ तथा साधारण वात को करनें वाली शुक्र को करनें वाली और बल को बढानें वाली है ॥१००॥ अनन्तर अरंगी। अरङ्गी। मधुर चिकनी विष्टंभ को करनें वाली शीतल हलकी होती है ॥ अनन्तर पापता। पापता तिक्त पित्त कफ की नाशक॥ शीतल मधुर रुचि को करनें वाली साधारण वात को करनें वाली कहीहै ॥१०१॥ अनन्तर गरई। गरई मधुर तिक्त कसैली वात पित्त की नाशक॥ कफ नाशक रुचि को करनें वाली दीपन बल वीर्य्य को करनें वालीहै॥ १०२॥ अनन्तर मङ्गुरी। मङ्गुरी वात नाशक बल के हित शुक्र को करनें वाली कफकारक हलकी है॥

अथ टेङ्गरा। सपाद मत्स्यो मेधा कान्तिह क्षय करश्चसः ॥ वात पित्त करश्चा पि रुचि कृत्परमो मतः ॥१०३॥

अथ सफरी पोठी इति च।

पोठी तिक्ता कटुः स्वादुः शुक्रघ्नी कफ वात जित्॥ स्नि ग्धा स्य कण्ठ रोगघ्नी रोचनी च लघुः स्मृतः॥१०४॥

अथ क्षुद्र मत्स्याः। क्षुद्रा मत्स्याः स्वादु रसाः दोष त्रय विनाशनाः॥ लघु पाका रुचिकरा बलदा स्ते हिता मताः॥ १०५॥ अथा तिक्षुद्र मत्स्याः ॥ अति सू क्ष्माः पुंस्त्व हरा रुच्याः कासा निला पहाः॥

भा० अनन्तर टेङ्गरा। टेङ्गरा कान्ति को करनें वाली और प्रमेह नाशक वो ह है तथा वात पित्त कर और परम रुचिको करनें वाली कहीहै॥ १०३॥ अनन्त र सफरी और पोठी भी कहेते है। पोठी तिक्त कडवी मधुर शुक्रको करने वाली है और कफ वात को जीतनें वाली है ॥ चिकनी सुख कंठ इनके रोगों की नाशकरु चिको करनें वाली हलकी कहीहै॥१०४॥ अनन्तर छोटी मछलियां॥ छोटी म छलियां रसमें मधुर तीनों दोषों की नाशक॥ पाक में हलकी रुचि को करनें वाली बलको देने वाली वे हित है ॥ १०५॥ अनन्तर बहुत छोटि मछलियां। बहुत छोटी पुरुष त्व की नाशक रुचिको करनें वाली कास वात की ना शक है॥

अथ मत्स्याण्डा।

मत्स्य गर्भो भृशं वृष्यः स्निग्ध पुष्टि करो लघुः॥ कफ मे
हःप्रदो वल्यो ग्लानि कृन्मेह नाशनः॥१०६॥
अथ सूखटी। शुष्क मत्स्या नवा वल्याः दुर्जराः विड़ वि
वन्धिनः। अथ दग्ध मत्स्याः। दग्ध मत्स्यो गुणैः श्रे
ष्ठः पुष्टि कृद् ल बर्द्धनः। अथ कूप जादि मत्स्य गुणाः
॥ कौप मत्स्याः शुक्र मूत्र कृष्ठ श्लेष्म विवर्द्धनाः॥स
रो जा मधुराः स्निग्धा वल्या वात विनाशनाः॥१०७
॥ नादेया बृंहणा मत्स्या गुरवो ऽनिल नाशनाः॥ र-
क्त पित्त करा वृष्याः स्निग्धोष्णाः स्वल्प वर्चसः॥१०८
चौण्ड्याः पित्त कराः स्निग्धा मधुरा लघवो हिमाः॥

भा० अनन्तर मछलियों के अंडे। मछलिके अंडे अत्यन्त शुक्रको करनें वाले चिकनें पुष्टि को करने वाले हलके हे॥ और कफ प्रमेह को करनें वाले बलके दित ग्लानि को करनें वाले प्रमेह नाशकहे॥१०६॥ अनन्तर सूखटी। सूकी मछली नई वलको देनें वाली दुर्जर मलको वान्धनें वाली है॥ अनंतर दग्ध मत्स्य। दग्ध मछली गुणमें श्रेष्ट पुष्टि को करनें वाली बलको बढ़ानें वाली है। अनन्तर कूवें आदि में की मछलियों केगुण॥ कूवेंकी मछलियां शुक्र मूत्र कुष्ट कफ इन कोबढ़ानें वाली हे॥ सरोवर की मछलियां मधुर चिकनी बलको करनेंवाली। वातकी नाशक हें॥१०७॥नदी की मछलियां पुष्ट भारी वात नाशक हे॥ और रक्त पित्त को करनें वाली शुक्रको करने वाली चिकनी उष्ण अल्प मलको करने वाली हे॥१०८॥ गढ़ईकी मछलियां पित्त को करनें वाली चिकनीमधुर हलकी शीत ल होतीहे॥

ताडागा गुरवो वृष्याः शीतलाः बल मूत्रदाः॥१०९
॥ताडागा वक्षिप्र जाताः वला युर्मति दकराः॥
अथर्तु विशेषे मत्स्य विशेषः।

हेमन्ते कूपजा मत्स्याः शिशिरे सारसा हिताः॥ वसन्ते ते तु नादेया ग्रीष्मे चौण्ड्र समुद्भवाः॥ ११०॥ तडाग जाता वर्षासु तास्व पथ्या नदी भवाः॥ नैर्झराः शरदि श्रेष्ठा विशेषो ऽय मुदा हृतः॥ १११॥

इति श्री भाव प्रकाशे मांस वर्गः।

भा० तालाव की मछलियां भारी वुक्रको करनें वाली श्रीनल वल मूत्र को देनें वाली है॥ १०८॥ ताल्लाव और वादली की मछलियां बल आयु मति दृष्टि वृन को करनेंवाली हे॥ अनन्तर ऋतु विशेष में मत्स्य विशेष। हेमन्त में कुवें की मछली शिशिर में सरो वर की हितहे॥ वसन्त में नदीकी ग्रीष्म में गड्ढे की हितहे॥ ११०॥ तालाव की वर सात में हित होतीहे और वरसात में नदी की अहित होतीहे॥ झरनें की शरद में श्रेष्ठहोतीहे। येह विशेष कहा है॥ १११॥

इति भाव प्रकाशे मांस वर्गः।

अथ कृतान्न वर्गः॥

तत्रान्नानां साधन प्रकारः सिद्धानां गुणाश्च॥

तत्र परि भाषिता।

समवायिनि हेतौये मुनि भिर्गणिता गुणाः॥ कार्य्येऽपि तेऽखिला ज्ञेयाः परि भाषेति भाषिता॥ ११२॥ क्वचित्संस्कार भेदेन गुणा भेदो भवे द्यतः॥ भक्तं लघु पुराणस्य शालेस्त च्चिपिटो गुरुः॥ ११३॥ क्वचि द्योग प्रभावेन गुणान्तर मपेक्ष्यते॥ कदन्नं गुरु सर्पिश्च लघुक्तं सुहितं भवेत्॥ अथ भक्तस्य नामानि साधनं गुणाश्च

भा० अनन्तर कीये हुवे अन्न का वर्ग: । उसमें अन्नों के बनानें का प्रकार । और बनें हुवों का गुण । उसमें परिभाषा । समवाई कारण में जो गुण गुनियोंनें माने हैं ॥ वे सब कार्य्य मेंभी जाननें चाहिये इस प्रकार परि भाषा कहीहै ॥११२॥ कही पर संस्कार भेदसे गुण भेद होताहै ॥ जैसे पुराने चांवलों का भात हलका और उस का चिडवा भारी होताहै ॥ ११३॥ कही पर योग के अभावसे गुणान्तर होजाता है॥ कदन्न भारी घृत हलका कहाहै वोह हित होताहै ॥ अनन्तर भात के नाम साधन और गुण ॥ ॥

भक्त मन्नं तथान्धश्च क्वचित्कूरञ्च कीर्त्तितम् ॥ ओदनो ऽस्त्री स्त्रियां भित्साद्दी दिविद: पुंसि भाषित: ॥ ११४

सुधौतास्तण्डुला: स्फीता स्तोये पञ्च गुणे पचेत् ॥ न-द्भक्तं प्रस्नुतं चोष्णं विशदं गुणवन् मतम् ॥ ११५॥

भक्तं वन्हि करं पथ्यं तर्पणं रोचनं लघु: ॥ अधौतम स्नुतं शीतं गुर्व रुच्यं कफ प्रदम् ॥ ११६॥

अथ पहिति । दलितन्तुशिम्बी धान्यं दालि दाली स्त्रि या मुभे ॥ दाली तु सलिले सिद्धा लवणार्द्रक हिङ्गुभि: ॥११७॥ संयुक्ता सूप नाम्नी स्यात्कथ्यन्ते तद्गुणा अथ॥

सूपो विष्टम्भको रूक्ष: शीतस्तु स विशेषत: ॥ ११८ ॥

निस्तुषो भृष्ट संसिद्ध: लाघवं सुतरां व्रजेत् ॥

भा० भक्त अन्न अन्ध और कही पर कूर कहा है ॥ नपुंसक में ओदन स्त्री लिंगमें भित्सा दि विद पुल्लिङ्ग में कहाहै ॥ ११४॥ अच्छी तरह धोये हुवे चांवल व ढाये हुवे पांच गुने पानी में पकावे वोह पसेया हुवा गरम विशद गुण युक्त भात कहाहै ॥११५॥ भात दीपन पथ्य तर्पण रोचन हलका होताहै ॥ और विन धोया तथा विनय से या शीतल भारी अरुचि को देनें वाला और कफ कारी होताहै ॥११६॥ अनन्तर दाल । धुली हुई शिम्बी धान्य दालि: दाली येह दोनों स्त्रीलिङ्गी

लिंग में होतेहै ॥ दाल जलमें सिद्ध और लवण अद्रक हींङ्ग ॥११७॥ इनसे युक्त कासपनामहैअनन्तर उसके गुण कहेते है ॥ दाल बिष्टंभ करने वाली रूखी शीतल होती है विशेष से ॥ ११८॥ वे छिलके की भूनके सिद्ध की हुई वहुत हलकी हो जा तीहै॥

अथ खिचिरी । तण्डु ला दालि संमिश्रा लवणा र्द्रक हिङ्गु भिः॥ संयुक्ता सलिले सिद्धा कृशरा कथिता बुधैः॥ ११९॥ कृशरा शुक्रला बल्या गुरुः पित्त कफ प्रदा॥ दुर्जरा बुद्धि विष्टम्भ मल मूत्र करी स्मृता॥१२०

अथ ताप हारी ताता हरी तिलोके ।

घृते हरिद्रा संयुक्ते माष जाम्भर्ज्ज येद्व टीम् ॥ तण्डु लां श्चापि निर्धौतान् सहैव परि भर्जयेत् ॥ १२१॥ सिद्ध योग्यं जलं तत्र प्राक्षिप्य कुशलः पचेत्॥ लवणा र्द्रक हिङ्गुनि मात्राया तत्र निःक्षि पेत् ॥ १२२॥

भा० अनन्तरखिचड़ी। दाल मिले हुवे चांवल लवण अद्रक हींङ्ग से युक्त॥ जलमें सिद्ध को पंडितों नें कसरा कहाहे॥ ११९॥ खिचडी शुक्र को करनें वाली व-लके हित भारी पित्त कफ को देनें वाली॥ और दुर्जर बुद्धि विष्टंभ मल मूत्र को करनें वाली कहीहे॥१२०॥ अनन्तर तारी। हरदी के साथ घृतमें उ-डद की बडियोंको भूने विन धोये हुवे चावलों कोभी साथहीं भूने॥ १२१॥ उसमें प-कनेंके अन्दाज से जल डाल कर चतुर पकावे॥ लवण अद्रक हींङ्ग उसमें हि-सावसे डाले॥ १२२॥

एषा सिद्धिः समानज्ञा प्रोक्ता ताप हरी बुधैः॥ भवेत्ताप हरी बल्या वृष्या श्ले ष्मान मा चरेत् ॥१२३॥ वृंहणी तर्पणी रुच्या गुर्वी पित्त हरा स्मृता ॥

भा० इस सिद्धि हुई को पंडितोनें तापरी कहाहे॥ तापरी वलको देनें वाली शुक्र

को करनें वालीहै और कफ़ को करनी है ॥ १२३॥ बृंहण तर्पण रुचि कोक रनें वाली भारी पित्त नाशक कहीहै ॥

अथ खीर। पायसं परमान्नं स्यात् क्षीरि कापि त- दुच्यते ॥ शुद्धे ऽर्द्ध पक्के दुग्धे तु घृताक्तां स्तण्डु लान् प चेत् ॥१२४॥ ते सिद्धा क्षीरिका ख्याता ससिताज्य युतो त्तमा:॥ क्षीरि का दुर्जरा प्रोक्ता बृंहणी बल वर्द्धिनी॥ १२५॥ नालि के रत्तनु कृत्य च्छि न्नं पयसि गो: क्षिपेत् ॥ सितागव्याज्य संयुक्तं तत्पचेन्मृदु ना ऽग्निना ॥ १२६॥ नारी केरो द्भवा क्षीरी स्निग्धा शीताति पुष्टि दा ॥ गुर्वी सु मधुरा वृष्या रक्त पित्ता निला पहा ॥ १२७॥ अथ सेवइ ॥

भा० अनन्तर खीर। पायस पर मान्नं क्षीरि का येह खीर के नामहैं ॥ शुद्ध अध औटे दूधमें घृत युक्त चाव लोंको पकावे ॥ १२४॥ वो सिद्ध क्षीरि का चीनी घृतसे युक्त उत्तम कही है॥ दुर्जर खीर पुष्ट बलको बढानें वाली है ॥१२५ नारियल को छीलके गायके दूधमें डाले ॥चीनी गाय को घृत से युक्त उसको मन्दी आंचसे पकावे ॥१२६॥ नारि यल की खीर चिकनी शीत अति पुष्टि को करनें वाली॥ भारी मधुर शुक्र को करनें वाली और रक्त पित्त वात इनकी नाशक है ॥ १२७ ॥ ॥ अनन्तर सेवई ॥ ॥

समितां वर्त्ति कां कृत्वा सूक्ष्मां तु यव सन्निभाम् ॥ शु ष्काक्षीरेण संसाध्या भोज्या घृत सिता न्विता ॥ १२८॥ सेविका तर्पणी बल्या गुर्वी पित्ता निला पहा ॥ ग्राहि णी सन्धि कृद्रुच्या तां खादे न्नाति मात्रया ॥ १२९॥

अथ मण्डा। गोधूमा धवला धौता: कुट्टिता: शोषि तास्तत: ॥ प्रोक्षिता यन्त्र निष्पिष्टा श्चालिता: समिता:

स्मृता:॥१३०॥ वारिणा कोमलां कृत्वा समितां साधु मर्दयेत् ॥ हस्त लाल नया तस्या लोपूत्रीं सम्यक् प्रसारयेत् ॥१३१॥ अधो मुख घट स्ये तत् विस्तृंत मास्रियेद्बहिः ॥ मृदुना वन्हि ना साध्यः सिद्धो मण्डक उच्यते॥ १३२॥ लोपत्री लौइ् इति लोके ।

दुग्धेन साज्य खण्डेन मण्डकं भक्षये न्नरः ॥ अथ वा सिद्ध मांसेन सत क्रवट के नवा ॥ १३३॥ मण्ड को बृंहणो वृष्यो वल्यो रुचि करो भृशम् ॥ पाके ऽपि मधुरो ग्राही लघु दोष त्रया पहः॥१३४॥

अथ पोरी कुत्रापि दुनौरी इतिच ॥

भा० सूक्ष्म जवके समान वरावर वत्ती को करके॥ सुका कर दूधसे पकावे और घृत चीनीके साथ खावे॥ १२८॥ सेवई तपर्णी बलको देनें वाली भारी पित्त वात की नाशक॥ काविज संन्धिकरनें वाली रुचिको करने वाली होतीहै उस को बहुत नखावे॥ १२९॥ अनन्तर मंडा॥ सुफेद धोये कुटे हुवे औरसुकाये हुवे गेहूं कोप्रोक्षित चक्की से पीसे हुवे तथा चलनी से छानें हुवे को समिता अर्थात् मैदा कहाहे॥१३०॥ मैदे को पानीमें घोल करके अच्छी तरह मर्दन करे॥ हाथकी लालना से उसकी लोई अच्छी तरह करे॥ १३१॥ नीचे मुख घडेपरयेह फैलीहुई को डाले॥ मन्द अग्नि से सिद्ध हुई को मांडक हेतेहै॥ १३२॥ लोई इस प्रकार कहेते हे॥ दूध घृत खांड इनसे मनुष्य मंडे कोखावे॥ अथवा सिद्ध मांस से बादली के बडे से खावे॥ १३३॥ मंडा शुक्रको करनें वाला और बलकेहित अत्यन्त रुचिको करने वाला है॥ पाकमें भी मधुर काविज हलका दोष त्रय का नाशक हे॥ १३४॥

अनन्तर पूरी और कहीं पर दुनौरी भी कहेते हैं॥

कुर्य्या त्समित या ऽतीव तन्वीं पर्प्पटि का ततः॥स्वेद

येनप्तके तात्तु पोलिका जग दुर्बुधाः॥१३५॥ तां खा
देल्लप्सिका युक्तां तस्या मण्डक वद्गुणाः॥
तप्तकन्त वा इति लोके॥ अथ प्रसङ्गल्लप्सी॥
समितां सर्पिषा भृष्टां शर्करां पयसि क्षिपेत्॥ तस्मिन्
घनी कृते न्यस्येल्लवङ्ग मरिचादिकम्॥१३६॥ सिद्धे
या लप्सिका ख्याता गुणास्तस्या वदाम्यहम्॥ लप्सि
का वृंहणी वृष्या बल्या पित्तानिलापहा॥१३७॥ स्नि
ग्धा श्लेष्म करी गुर्वी रोचनी तर्पणी परम्॥

भा० मैंदेसे अतीव सूक्ष्म पपड़ी करे उसके अनन्तर॥ उसको तवे परसे के उस को पोलिका विद्वानों ने कहाहै॥१३५॥ उसको लप्सी के साथ खावे उसका गुण मंडे के समान है॥ तप्तकनवा इस प्रकार लोक में कहेते हैं॥ अनन्तर प्रसङ्ग से लपसी। मैंदे को घृतसे भूनके शर्करा के साथ दूधमें डाले॥ वोह गाढ़ा हो जानें पर लोङ्ग मिरच आदिक डाले॥१३६॥ येह सिद्ध हुई लप्सी कहीहै उसके गुणों को कहेते हैं॥ लपसी पुष्ट शुक्र को करनें वाली बलको करनें वाली पित्त वात की नाशक॥१३७॥ चिकनी कफ कारी भारी रोचनी तर्पणी है॥

अथ रोटी। शुष्क गोधूम चूर्णेन किञ्चित्स्थूलाञ्च पो-
लिकाम्॥ तप्तके स्वेदयेत्कृत्वा भृष्ट्यङ्गारैः पितां पचे
त्॥१३८॥ सिद्धेया रोटिका प्रोक्ता गुणांस्तस्याः प्रचक्ष्महे
रोटिका बलकृद्रुच्या वृंहणी धातु वर्द्धनी॥१३९॥ वात
घ्नी कफ कृद्गुर्वी दीप्ताग्नीनां प्रपूजिता॥

भा० अनन्तर रोटी। सूके गेहूं के आंटे से कुछ मोटी रोटी को॥ तवे परसे के और सेकके उसको वहनसे अंगारोंपर पकावे॥१३८॥ इसको सिद्ध

रोटिका कहाहै उसके गुरा कहेते हैं ॥ रोटी बल को करने वाली रुचिकोहित। पुष्ट धातु को बढानें वाली ॥१३९॥ वात नाशक कफ को करने वाली भारी दीप्ताग्नि वालों को श्रेष्ठहै ॥

अथ लीट्टी। शुष्क गोधूम चूर्णं तु साम्बु गाढं विमर्द्दयेत्॥ विधाय वटका कारं निर्धूमे ऽग्नौ शनैः पचेत् ॥१४०॥ अङ्गार कर्कटी ज्ञेया बृंहणी शुक्रला लघुः॥ दीपनी कफ कद् वल्या पीन सश्वास कास जित् ॥१४१॥

अथ यव रोटी। यवजा रोटिका रुच्या मधुरा विशदा लघुः मल शुक्रा निल करी वल्या हन्ति कफा मयान् ॥१४२॥

अथ माष रोटिका। मायानां दाल यस्तोये स्थापिता स्त्यक्त कञ्चुकाः॥ आतपे शोषिता यन्त्रे पिष्टास्ता धूमसी स्मृता ॥१४३॥ धूमसी रचिता चैव प्रोक्ता झर्झरिका बुधैः ॥ झर्झरी कफ पित घ्नी किञ्चिद्वात करी स्मृता॥१४४॥

भा० अनन्तर लीट्टी। सूके गेहूं के आंटे को जलके साथ गाढा औसने॥ वट का कार करके निर्धूम अग्नि में धीरे २ पकावे॥१४०॥ येह अंगा कड़ी पुष्ट शुक्रको करनेंवाली हलकी है॥ और दीपनी कफको करनें वाली बल के हित और पीनस श्वास कास इन कोजीतनेंवाली है॥१४१॥ अनन्तर जवकी रोटी॥ जवकी रोटी रुचि को करनें वाली मधुर विशद हलकी मल शुक्र वात को करनें वाली बल के हित होतीहे॥ और कफ के रोगों को नाश करती है॥१४२॥ अनन्तर उडदकी रोटी और॥ उड़द की दाल को पानी में भिगोय के छिलके निकाली हुई को धूप में सुकावें चक्की में पीसे उसको धूमसी कहाहे॥१४३॥ धूमसीसे बनी हुई वोही झर्झरिका कहीहे॥ झर्झरी कफ पित्त की नाशक कुछ एक वात को करनें वाली कहीहै॥१४४॥

[अथ चनक रोटिका]

चनकया रोटिका रूक्षा श्लेष्म पित्ता स्रनु गुरुः॥

विष्टम्भिनी न चक्षुष्या तद्गुणा चाति शष्कुली ॥१४५॥ अथ पिष्टिका । दालिः संस्थापिता तोये ततोऽपञ्जत कञ्चुका ॥ शिलायां साधु सम्पिष्टा पिष्टिका कथिता बुधैः ॥१४६॥ अथ वेढइ ॥ माष पिष्टि कया पूर्णा गर्भी गोधूम चूर्णतः ॥ रचिता रोटिका सैव प्रोक्ता वेढ मिका बुधैः ॥१४७॥ भवेद्वेढ मिका बल्या वृष्या रुच्याऽनिलापहा ॥ उष्ण सन्तर्पणी गुर्वी वृंहणी शुक्रला परम् ॥१४८॥ भिन्न मूत्र मला स्तन्य मेदः पित्त कफ प्रदा ॥ गुद कीलार्दित श्वासं पङ्क्ति शूलानि नाशयेत् ॥१४९॥ अथ पापर ॥

भा० अनन्तर चनें की रोटी, चनेकी रोटी रूखी और कफ रक्तपित्त इनकी नाशक भारी॥ विष्टम्भ करनें वाली नेत्रके हित और उसी के गुण अति शष्कु लीहै ॥१४५॥ अनन्तर पिट्ठी ॥ दाल को पानीमें भिजोय के और उसका छिलका निकाल कर ॥ सिल पर अच्छी तरह पीसी हुई को पिट्ठी पंडितोनें कहीहै ॥ १४६॥ अनन्तर वेढई ॥ उडद की पिट्ठी को आटे के भीतर भरके॥ बनाई हुई को वेढई पंडितोंनें कहाहै ॥१४७॥ वेढमी बलको करनें वाली शुक्र को उत्पन्न करनें वाली रुचिको करनें वाली वात नाशक ।गरम सन्तर्पणी भारी पुष्ट । शुक्र को करनें वाली है ॥ १४८॥ मल मूत्र को करनें वाली दुग्ध मेद पित्त कफ इनको देने वाली है ॥ और गुद कील अर्दित श्वास पङ्क्ति शूल इनको नाशक रती है ॥१४९॥ . अनन्तर पापड ॥

धूमसी रचिता हिङ्गु हरिद्रा लवणैर्युता ॥ जीर क स्वर्जिका म्याज्य तनू कृत्य च वेल्लिता ॥ १५० ॥ पर्प्प टास्ते सदाङ्गार भृष्टाः परम रोचकाः ॥

दीपनाः पाचना रूक्षा गुरवः किञ्चिदीरिताः ॥ १५१
मौद्गाश्च तद्गुणाः प्रोक्ता विशेषा लघवो हिताः ॥ चनकस्य गुणे युक्ताः पर्पटाश्चणकोद्भवाः ॥ १५२॥ स्नेहभृष्टास्तु ते सर्वे भवेयुर्मध्यमा गुणैः ॥

भा० पूर्वोक्त धूमसी से हीङ्ग हलदी लवण को मिलाके वनाया हुवा ॥ और जीरा सज्जी इन को मिलाके वारीक करके वेला हुवा पापड है ॥१५०॥ वे पापड अङ्गारे से भूने हुवे परम रोचक ॥ दीपन पाचन रूखे कुछ भारी कहेहे ॥ १५१॥ और मूङ्ग के उसी के समान गुण में कहे हैं विशेष करके हलके हित होते हे ॥ चनेके पापड चनेके गुण के समान होतेहैं ॥ १५२॥ वे सव तेलके भूने हुवे गुणसे मध्यम हैं ॥

अथ पूरी । माषाणां पिष्टिका पूज्या लवणाद्रकहिङ्गुभिः ॥ तया पिष्टिकया पूर्णा समिता कृतपोलिका॥ १५३॥ ततस्तैलेन पक्वासा पूरीका कथिता बुधैः ॥ रुच्या स्वाद्वी गुरुः स्निग्धा बल्या पित्तास्रदूषिका ॥ १५४॥ चक्षुस्तेजोहरी चोष्णा पाके वातविनाशिनी ॥ तथैव घृतपक्वापि चक्षुष्या रक्तपित्तहृत ॥ १५५॥

अथ वरा । माषाणां पिष्टिका युक्ता लवणाद्रकहिङ्गुभिः॥ कृत्वा विदध्याद्वटकास्तास्तैलेषु पचेच्छनैः ॥ १५६॥ विशुष्का वटका वल्या वृंहणा वीर्य्यवर्द्धनी॥ वातामयहरी रुच्या विशेषाद्दर्दितापहा ॥१५७॥

भा० अनन्तर पूरी । उडद की पिठ्ठी लवण अद्रक हीङ्ग से युक्त करके॥ उस पिठ्ठी से पूर्ण मैदा की कीहुई पोलिका ॥१५३॥ वो तेलसे पकी को पूरीका पंडितोंने कहीहै ॥ रुचि को करनेवाली मधुर भारी चिकनी वल के हित रक्त

पित्तको विगाडनें वाली कहीहै ॥१५४॥ नेत्रकी तेजी को हरने वाली गरम पाक में दांतको नाश करनें वाली ॥ वैसेही घीकी पकी हुई भी नेत्र के हित रक्त पित्त की नाशक है ॥१५५॥ अनन्तर वडा ॥ उड़दों की पिठी लवण अद्रक हींङ्ग इनसे युक्त ॥ करके वडे बनावे उनको तेलमें धीरे २ पकावे ॥१५६॥ सूके हुवे वडे बलको करनें वाले पुष्ट धातु को बढाने वाले ॥ वात रोगोंके नाशक रुचिको करनें वाले विशेष करके अर्दित रोग के नाशक है ॥१५७॥

विबन्ध भेदिना श्लेष्म कारिणो ऽत्यग्नि पूजिता ॥ संचूर्ण्य निक्षि पेत्तक्रे भृष्टं जीरक हिङ्गु भिः ॥ १५८॥ लवणं ततदक्तान् सकला नपि मज्ज येत् ॥ शुक्रलस्तत्व वक्तोवल कृद्रो चनो गुरुः ॥ १५९॥ विबन्ध हृद्दि दाही च श्लेष्म लः पवना पहः ॥ राज्यक्त पातिनो वान्यान् पाचनां स्तास्तु भक्षयेत् ॥ १६०॥

राज्यक्ता राइता इति लोके । अथ काञ्जी वटः ।

भा॰ विबन्धको भेद न करनें वाली कफ को न करनें वाली अति अग्नि में पूजित है ॥ चूरा करके जीरा हींङ्ग के साथ मठे में डाले ॥१५८॥ और लवण उसमें सब वड़ों को डुबोवे ॥ उसमें का वड़ा शुक्र को करनें वाला बलको करनें वाला रोचन भारी है ॥ १५९ ॥ विबन्ध का नाशक विदाही कफको करनें वाला वातनाशक ॥ राइता घोला हुआ वा और कुछ पाचन उनको खावे ॥ १६०॥ राइता इस प्रकार लोकमें कहेते हैं ॥ अनन्तर कांजी वड़ा ॥

मन्थनी नूतना धार्य्या कटु तैलेन लेपिता ॥ निर्मले नाम्बुना पूर्य्य तस्यां चूर्ण विनिःक्षिपेत् ॥ १६१॥ राजि काञ्जी रलवण हिङ्गु शुण्ठी निशा कृतम् ॥

भा॰ नवीन मन्थनी कटु तेलसे लेपित रक्खे ॥ उसमें निर्मल जल भरके येह चूर्ण डाले ॥ १६१॥ राई जीरा लवण हींङ्ग सोंठ हलदी इनसे किया हुवा ॥

निःक्षिपे द्वटकां स्तत्र भाण्ड स्या स्यञ्च मुद्रयेत् ॥ १६२॥
ततो दिन त्रया दूर्द्ध मम्लाः स्यु र्वटका ध्रुवम् ॥ काञ्जिको
वटको रुच्यो वातघ्नः श्लेष्म कारकः ॥१६३॥ शीतो दाहं
शूलमजीर्णं हरते दृगा मयेष्व हितः ॥

भा॰ उसमें बड़े डाले और इस बरतन का मुख ढक देवे ॥१६२॥ उससे तीन दिन के बाद बड़े निश्चय खट्टे होते हैं ॥ कांजी वड़ा रुचि को करने वाला वात का नाशक कफकारक ॥१६३॥ शीत दाह शूल अजीर्ण इनको हरता है और दृष्टि रोग में अहित है ॥

ऊरी वडारा। अम्लिकां स्वेद यित्वा तु जलेन सह मर्द ये
त् ॥ तच्चीरे कृत संस्कारे वटका न्मज्जये ज्जनः ॥१६४
अम्लि का वट कास्तेतु रुच्या वन्हि प्रदीपनाः॥ वटक
स्य गुणैः पूर्वै रेषो ऽपि च समन्विताः ॥१६५॥

अथ मूगवरा। मुद्गानां वट कास्तक्रे भर्जिता लघवो हि
माः॥ संस्कार ज प्रभावेन त्रिदोष शमना हिताः ॥१६६॥

अथ माषवटी। माषाणां पिष्टिका हिङ्गु लवणार्द्र क संस्कृ
ताः॥ तया विर चिताव स्त्रे वटिकाः साधु शोषिताः १६७
भर्जिता स्तप्त तैलेस्ता अथ वाम्बु प्रयोगतः ॥ वट कस्य
गुणै र्युक्ता ज्ञात व्या रुचि दा भृशम् ॥ १६८॥

अथ कोह्डौरी। कुष्मा ण्ड क वटी ज्ञेया पूर्वोक्त व-
टि का गुणा ॥ विशेषा त्पित्तर क्तघ्नी लघ्वीच कथिताबु
धैः॥ १६९॥ अथमुद्ग वटी ॥

भा॰ अनन्तर ऊरी वड़ा। इमली को गरम करके जलके साथ मले ॥ मसाला

१६४
डाले हुवे उस जल में वड़ोंको डाल देवे ॥ वे इमली के वड़े रुचिको करनें वाले। अग्नि दीपन हैं ॥ पहिले वड़ों के गुणके समान हैं ॥१६५॥ अनन्तर मूङ्ग वड़ा मूगकी वड़ियां भूनी हुई हलकी शीतल है ॥ और संस्कार के प्रभावसेत्रिदोष शमन तथा हित होती हैं ॥१६६॥ अनन्तर उड़द की वड़िया ॥ उड़द की पिट्ठी हींङ्ग लवण अद्रक इनसे संस्कार की हुई ॥ उसे वनी हुई कपड़े पर अच्छी तरह सूका ॥ १६७॥ के गरम तेल से भूनें अथवा जलमें पकावे। इसको वड़े के गुण के समान जान ना चाहिये। और अत्यन्त रुचि को करनें वाली है ॥१६८ अनन्तर कोहँडोरी। कोहँडोरी पूर्वोक्त वटिका के गुण के समान है ॥ विशेष कर के पित्त रक्त की नाशक हलकी पंडितोंनें कहीहै ॥ १६९॥ अनन्तर मुङ्ग की बड़ी॥

मुद्गानां वटिका तद्व द्रचि ता साधिता तथा ॥ पथ्या रुच्या तथा लघ्वी मुद्ग सूपः गुणा स्मृता ॥ २७०॥

क्षरि कवच्छ । माष पिष्ठि कया लिप्तं नाग वल्ली दलं महत् ॥ तत्तु संस्वे दयेत् युक्त्या स्थाल्या मास्तार १ को परि ॥ २७१ ॥ ततो नि ष्का श्य तं खराडश ततस्तै लेन भर्जयेत् ॥ खराडंखराडे न योग्य मिति यावत्॥ अलीक मत्स्यउक्तो ऽयं प्रकारः पाक परिग्डतैः ॥ तं हन्त्वा कभटि त्रेण वास्तूकेन च भक्षयेत् ॥ २७२॥

अथ कढी। स्थाल्यां घृतेवा तैलेवा हरिद्रा हिङ्गु भर्जयेत्॥ अवले हनसंयुक्तं तक्र न्तत्रेव निक्षिपेत् ॥२७३ राया सिद्धा समरीचा क्वथिता क्वथिता बुधैः ॥

भा० मूंग की वटिका वनाई हुई और साधित ॥ पथ्य रुचि को करनें वाली तथा हलकी मूंग की दाल के समान गुण में कहीहै ॥२७०॥ अनन्तर क्षरिक वच्छ। उड़द की पिट्ठी से लिप्त वड़ा नागवेल का पान॥ उस्को तसलेमें कपड़ेके उपर युक्ति केसाथ पकावे ॥ २७१॥ उसे निकाल कर उस के टुकड़े करके तेलके

साथ भूने ॥ टुकड़ा अर्थात् टुकडे करके युक्त ॥ अली कमत्स्य का येह प्रकार कहाहै पाक पंडितोंने ॥ उसको मरेके भरते केसाथ अथवा बथुवेके साथ खावे ॥ १७२॥ अनन्तर कढ़ी ॥ तसले में घृत अथवा तेलमें हलदी हींङ्ग को भूने॥ अवलेह नके साथ मठ को उसीमें डाले ॥ १७३॥ ये सिद्ध मरिच के साथ औटाई हुई को पंडितोंनें कढी कहीहै ॥

अव लेहन सू। अरि हन इति लोके।

क्वथिता पाचनी रुच्या लघ्वी वन्हि प्रदीपनी ॥ कफानिल विबन्धघ्नी किञ्चि त्पित्त प्रकोपिणी ॥ १७४ ॥ अली कमत्स्याः शुष्का वा किं वा क्वथितया पुनः ॥ बृंहणा रोचना वृष्या बल्या वात गदा पहाः ॥ १७५ ॥ कोष्ठ शुद्धि कराः शुक्त्या किञ्चि त्पित्त प्रकोप नाः॥

भा० हरि हन इस प्रकार लोकमें कहते हैं। कढी पाचन रुचिको करनें वाली हलकी दीपन ॥ कफ वात विबन्ध की नाशक कुछ एक पित्त के प्रकोप को करनें वाली है ॥ १७४॥ अली कमत्स्य सूके अथवा फिरसे औटाने से होतेहै। पुष्ट रोचन शुक्रको करनें वाले बलके हित वात रोग के नाशक है ॥ १७५॥ कोष्ट शुद्धि को करनेंवाले शुक्ति के साथ कुछ पित्त प्रकोप करनेंवाले है ॥

आर्द्रिते सह तुस्त म्भे विशेषेण हिताः स्मृताः ॥ १७६ ॥

अथ अद वरा। मुद्ग पिष्टा विर चितान् वटांस्ते लेनया चितान् ॥ हस्ते न चूर्ण ये त्सम्यक् तस्मिं श्चूर्णे विनिः क्षिपेत् ॥ १७७ ॥ भृष्ठं हिङ्ग्वार्द्रकं सूक्ष्मं मरीचं जीरकं तथा ॥ निम्बू रसं जवा नीं च युक्त्या सर्वं विमि श्रयेत् ॥ १७८ ॥

भा० आर्द्रित सह तुस्तंभ में विशेष करके हित कहेहै ॥ १७६॥ अनन्तर अदवरा मुद्ग की पिठी से वनी वडीको तेलसे पकावे उसको हाथसे अच्छी तरह चूर्ण करे उस चूरे में इनकोंडाले ॥ १७७॥ भूनी हींङ्ग अदरक मिरच तथा जीरा इनको

पीसके डाले ॥ और नीम्बू का रस अंज वादन इनको युक्ति से सबको मिलावे ॥१७८॥

मुद्ग पिष्टिं पचे त्सम्यक् स्थाल्या मास्तार को परि ॥ त-स्यास्तु गोलकं कुर्य्यात् तन्मध्ये पूरणं क्षिपेत् ॥१७९॥ तैले तान् गोलकान् पक्का क्वथि तायां निमज्जयेत् ॥ गोलकाः पाचकाः प्रोक्ता स्ते त्वार्द्र कवटा अपि ॥१८० मुद्गार्द्र कवटा रुच्या लघवो वल कारकाः ॥ दीपना स्त-र्पणाः पथ्या स्त्रिषु दोषेषु पूजिताः ॥१८१॥

भा० तसले में कपडे के ऊपर मूङ्ग की पिट्ठी को अच्छी तरह पकावे ॥ उसका गोलक करके उसके बीचमें पूरण भरे ॥१७९॥ इन गोल कों को तेलमें पकाके कढीमें डु वा देवे ॥ गोलक पाचक हैं और आर्द्रक वटभी उसको कहेते हैं ॥ १८०॥ मूंगके आर्द्रव टक रुचि को करने वाले हलके वल कारक हैं ॥ और दीपन तर्पण पथ्य और तीनों दोषों को अच्छे हैं ॥ १८१ ॥

अथ पकोरी । दाल यश्च न का नान्तु निस्तुषा यन्त्र पेषिताः ॥ तच्चूर्णं वेशनं प्रोक्तं पाक शास्त्र विशारदैः ॥ १८२॥ वटिका वेशनस्यापि क्वथिता यां निभर्जिताः ॥ रुच्या विष्टम्भ जननी वल्या पुष्टि करी स्मृता ॥१८३॥

(क) एव मत्ये ऽपि वेशन भवाः प्रकाराः यरडन पण्ड प्रभृतयो बोद्धव्याः। अथ मांसस्य प्रकाराः ॥

भा० अनन्तर पकोरी । चने आदि योंकी दालों को वेछिल के करके चक्कीमें पीसे ॥ उसचूर्ण को वेसन पाक शास्त्र के जानने वालोंनें कहा है ॥ १८२॥ वेसन की व-टिका भूनके कढीमें पकी हुई रुचि को करनें वाली विष्टंभ की करनें वाली वलके हित पुष्टि को करनें वाली कही है ॥ १८३॥ (क) ऐसे और भी वेसन के प्रकार रव ड आदि जानना चाहिये ॥ अनन्तर मांसका प्रकार ॥

हरिद्रा मार्द्रकं शुण्ठी लवणं मरिचानि च ॥ तण्डुलां

श्चापि गोधूमान् जम्बीराणां रसान् बहून् ॥ १९४ ॥

यथा सर्वाणि वस्तूनि सुपक्वानि भवन्ति हि ॥ तथा पचे

त् तु निपुणो बहु मांसं क्षितिर्यथा ॥ १९५ ॥ एषा हरीसा

बल कृत् वात पित्त प्रहा गुरुः ॥ शीतोष्णा: शुक्रदा:स्नि

ग्धाः सरा सन्धान कारिणी ॥ १९६ ॥ अथ तलित मांसम्

भा० पकाने के बर तन में बड़े मांस के टुकड़े डाले ॥ पानी बहुत सा घृत बहुत हीं

गु जीरा ॥१९३॥ अद्रक हलदी सोंठ लवण मिरच ॥ चांवल और गेहूं जंवीरीका

बहुत रस ॥१९४॥ जिसमें सब मांस अच्छी तरह पक जावे ॥ वैसे सब वस्तु वों

को निपुण पकावे जैसे बहुत मांस को क्षिति ॥१९५॥ येह हरी सा वलको करनें

वाला वात पित्त का नाशक भारी ॥ शीत उष्ण शुक्र को करने वाला चिकना सरस

न्धान करने वाला है ॥१९६॥ तलाहुवा मांस ॥

शुद्ध मांस विधानेन मांसं सम्यक् प्रसाधितम् ॥ पुनस्त

दाज्ये सम्भृष्टं तलितं प्रोच्यते बुधैः ॥ १९७ ॥ तलितं बल

मेधाग्नि मांसौ जः शुक्र वृद्धि कृत् ॥ तर्पणं लघु सुस्नि

ग्ध रोचनं दृढ ताकरम् ॥ १९८ ॥ अथ सीख ॥

काल खण्डा दि मांसानि ग्रन्थितानि शलाकया ॥ घृ-

तं सलवणं दत्त्वा निर्धूमे दहने पचेत् ॥ १९९ ॥ तत्तु शू-

ल्य मिदं प्रोक्तं पाक कर्म विचक्षणैः ॥ शूल्यं पलं सु

धा तुल्यं रुच्यं वन्हि करं लघुः ॥ २०० ॥ कफ वात हरं

बल्यं किञ्चि त्पित्त करं हि तत् ॥ मांस भृंगादकम् ॥

भा० शुद्धमांस की विधि से मांस को अच्छी तरह पका करके ॥ फिरसे उस को

घृतमें भूने उसको तलित मांस कहेते हैं ॥१९७॥ तला हुवा मांस वल कान्ति। मांस ओज शुक्र इनको वढानें वाला ॥ तर्पण हलका बहुत स्निग्ध रोचन दृढता। करनें वाला है ॥१९८॥ अनन्तर सीख ॥ लाल खंडादि मांसों को सीक में लगा कर ॥ नमक घी दे कर निर्धूम अग्नि में पकावे ॥१९९॥ उसको शूल्य ऐसा कहाहै पाक कर्म में चतुर पुरुषोंने ॥ शूल्य मांस अमृत के समान रुचि। को करनें वाला दीपन हलका ॥ २०० ॥ कफ वात का नाशक वलको करनें वाला कुछ पित्त को करनें वाला वोह होताहे ॥

अनन्तर मांस के सिंघाडे ।

शुद्ध मांसं तनू कृत्य कर्त्तितं स्वेदितं जले ॥ लवङ्ग हिङ्गु लवण मरि चार्द्र क संयुतम् ॥२०१॥ एला जिरक धान्याक निम्बू रस समन्वितम् ॥ घृते सुगन्धे तद्भृष्टं। मांसं शृंगाट कोच्यते ॥२०२॥ मांसं शृंगाटकं रुच्यं बृंहणं वल कृद् गुरु ॥ वात पित्त हरं वृष्यं कफघ्नं वीर्य वर्द्धनम् ॥२०३॥ अथ मांस रसा ॥

भा० शुद्ध मांस वारीक करके जलमें पकावे ॥ लौंग हीङ्ग लवण मरिच और अद्रक इनसे युक्त ॥२०१॥ तथा इलाय ची जीरा धनियां नीम्बूका रस इनके युक्त ॥ अच्छे घृत में उसको भूने उसको मांस शृंगाटक कहेते हैं ॥२०२॥ मांस शृंगाटक रुचि को करनें वाला पुष्ट वल करनें वाला भारी होताहे ॥ और वात पित्त का नाशक शुक्रको करनें वाला कफ़ नाशक वीर्य्य को वढानें वाला है ॥२०३॥ अनन्तर मांस रस ॥

सिद्ध मांस रसो रुच्यः श्रम श्वास क्षयापहः ॥ प्रीणनो वात पित्तघ्नः क्षीणा नाम ल्परेत सास् ॥ २०४॥ विश्लिष्टभग्न सन्धीनां शुद्धानां शुद्धि काङ्क्षिणाम् ॥ स्मृत्यो जो वल हीनानां ज्वर क्षीण क्षतः रसाम् ॥ २०५॥ शस्यते स्वर हीनानां दृष्यायुः श्रव णार्थि नाम् ॥

तत्र शुद्ध मांसम्। सुधवासु इति लोके।

पाक पात्रे घृतं दद्यात् तैलञ्च तद भावतः ॥ तत्र हिङ्गु हरिद्रांच भर्जयेत्तद नन्तरम् ॥ १८४॥ छागा दे रस्थिर हितं मांसं तत्स्व रिडतं ध्रुवम् ॥ धौतं निर्गालितं तस्मि न् घृते तद्भर्जयेच्छनैः ॥१८५॥ सिद्ध योग्यं जलं दत्वा लवणन्तु पचेत्ततः ॥ सिद्धे जलेन सम्पिष्य वे शवारं परिक्षिपेत् ॥ १८६ ॥

वेशवारः वेगर इति लोके।

भा० उस्से शुद्ध मांस। सुधवासु इस प्रकार लोकमें कहेते हैं। पकाने के वरतन में घृतडाले उस्के अभाव में तेल डाले ॥ उसमें हींग हलदी को भूने और वाद ॥१८४॥ वकरे आदि का वे हड्डी मांस टुकडे किया हुवा ॥ और धोके साफ किया हुवा उस घी में उसको धीरे २ भूने ॥१८५॥ उसमें पकने के योग्य जल देकर और लवण देकर पकावे उसके अनन्तर ॥ सिद्ध हुवे में पानी से गरम मसाला पीस कर उसमें डाले ॥१८६॥
इसको वे गर इस प्रकार लोकमें कहेते हैं ॥

द्रव्याणि वेशवारस्य नाग वल्ली दला निच ॥ तण्डुला श्च लवङ्गानि मरिचानी समासतः ॥१८७॥ अनेन विधिना सिद्धं शुद्धं मांस मिति स्मृतम् ॥ शुद्धमांसं परं वृष्यं बल्यं रुच्यञ्च बृंहणम् ॥१८८॥ त्रिदोषश मनं श्रेष्ठं दीपनं धातु वर्द्धनम् ॥

भा० मसाले की वस्तु पान चांवल लवंग मरिच ये संक्षेप से हैं ॥१८७॥ इस विधिसे सिद्ध किया हुवा शुद्ध मांस ऐसा कहा है ॥ शुद्ध मांस परम शुक्रको करने वाला वलकारी रुचिको करने वाला पुष्ट ॥१८८॥ त्रिदोष का शमक श्रेष्ठ ।

दीपन धातुबढ़ाने से है ॥

अथ सेहुंडक । सहवीसु इति लोके ।

छागादे र्मांस मूर्वादे कुट्टितं खण्डितं पुनः ॥ शुद्ध मांस विधानेन पचे दे तत्सह ड्रकम् ॥१८९॥ सहड्रकं गुणे ग्रंन्थे शुद्ध मांस गुणं स्मृतम् ॥ अथ अखनी ॥ पाक पात्रे घृतं दत्त्वा हरिद्रा हिङ्गु भर्जयेत् ॥ छागादे सकल स्यापि खण्डा न्यपि च भर्जयेत् ॥१९०॥ सिद्ध योग्यं जलं दत्त्वा पचेन्मृदु तरं यथा ॥ जीरका दि युते तक्रे मांस खण्डा नि तार येत् ॥१९१॥ तक्र मांसन्तु वातघ्नं लघु रुच्यं बल प्रदम् ॥ कफघ्नो पित्तलः किञ्चित्सर्वा हारस्य पाचनम् ॥१९२॥ (क)

तक्र मांसम् अखनी इति लोके ॥ अथ आस ॥

भा० अनन्तर सेहुंडक । सहवीसु ऐसा लोक में कहेते है । बकरे आदि के जांघ आदि का मांस कुटाहुवा और अलग २ टुकडे किये हुवे ॥ इसको शुद्ध मांस की विधि से पकावे येह सहड्रक है ॥१८९॥ सहड्रक निघंट में शुद्ध मांस के समान गुण में कहा है ॥ अनन्तर अखनी ॥ पकाने के पात्र में घृत डाल कर हलदी और हीङ्ग को भूने ॥ और बकरे आदि सब के मांस के टुकडों कोभी भूने ॥१९०॥ पकने के योग्य जल देकर मन्द आंच से पकावे ॥ जीरा आदिक से युक्त मठे में मांस के टुकडों को डाले ॥१९१॥ येह तक्र मांस वात नाशक हलका रुचि को करने वाला बल का देने वाला ॥ कफ नाशक पित्त को करने वाला कुछ सब अहार का पाचक है ॥१९२॥ (क)

तक्र मांस अखनी इस प्रकार लोक में कहेते है ॥ अनन्तर आस ॥

पाक पात्रे तु छहनी मांस खण्डानि निःक्षेपेत् ॥ पानीयं प्रचुरं सर्पिः प्रभूतं हिङ्गु जीरकम् ॥१९३॥

हरिद्रा मार्द्रकं शुण्ठी लवणं मरिचा न्वितं ॥ तण्डुलां

श्चापि गोधूमान् जम्बीराणां रसान् बहून् ॥ १९४ ॥

यथा सर्वाणि वस्तूनि सुपक्कानि भवन्ति हि ॥ तथा पचे

त् तु निपुणो बहु मांसं क्षितिर्यथा ॥ १९५ ॥ एषा हरीसा

बल कृत् वात पित्ता पहा गुरुः ॥ शीतोष्णाः शुक्रदाः स्नि

ग्धाः सरा सन्धान कारिणी ॥ १९६ ॥ अथ तलित मांसम्

भा० पकाने के बरतन में बड़े मांस के टुकड़े डाले ॥ पानी बहुत सा घृत बहुत हीङ्ग जीरा ॥१९३॥ अद्रक हलदी सोंठ लवण मिरच ॥ चांवल और गेहूं जंबीरीका बहुत रस ॥१९४॥ जिसमें सब मांस अच्छी तरह पक जावे ॥ वैसे सब वस्तु वों को निपुण पकावे जैसे बहुत मांस को क्षिति ॥१९५॥ येह हरीसा बलको करनें वाला वात पित्त का नाशक भारी ॥ शीत उष्ण शुक्र को करने वाला चिकना सरसन्धान करने वाला है ॥१९६॥ तला हुवा मांस ॥

शुद्ध मांस विधानेन मांसं सम्यक् प्रसाधितम् ॥ पुनस्त

दाज्ये सम्भृष्टं तलितं प्रोच्यते बुधैः ॥ १९७ ॥ तलितं बल

मेधाग्नि मांसौ जः शुक्र वृद्धि कृत् ॥ तर्पणं लघु सुस्नि

ग्ध रोचनं दृढ ताकरम् ॥ १९८ ॥ अथ सीरव ॥

काल खण्डादि मांसानि ग्रन्थितानि शलाकया ॥ घृ

तं सलवणं दत्वा निर्धूमे दहने पचेत् ॥ १९९ ॥ तत्तु शू

ल्य मिदं प्रोक्तं पाक कर्म विचक्षणैः ॥ शूल्यं पलं सु

धा तुल्यं रुच्यं वन्हि करं लघुः ॥ २०० ॥ कफ वात हरं

वल्यं किञ्चित्पित्त करं हि तत् ॥ मांस शृंगाटकम् ॥

भा० शुद्ध मांस की विधि से मांस को अच्छी तरह पका करके ॥ फिरसे उस को

घृतमें भूने उसको तलित मांस कहेते हैं ॥१९७॥ तला हुवा मांस वल कान्ति। मांस ओज शुक्र इनको वढानें वाला ॥ तर्पण हलका वहुत स्निग्ध रोचन दृढता। करनें वाला है ॥१९८॥ अनन्तर सीख ॥ लाल खंडादि मांसों को सीक में लगा कर ॥ नमक घी दे कर निर्धूम अग्नि में पकावे ॥१९९॥ उसको शूल्य ऐसा कहाहै पाक कर्म में चतुर पुरुषोंने ॥ शूल्य मांस अमृत के समान रुचि। को करनें वाला दीपन हलका ॥ २०० ॥ कफ वात का नाशक वलको करनें वाला कुछ पित्त को करनें वाला वोह होताहै ॥

अनन्तर मांस के सिंघाडे ।

शुद्ध मांसं तनू कृत्य कर्त्तितं स्वेदितं जले ॥ लवङ्ग हिङ्गु लवण मरि चार्द्र क संयुतम् ॥२०१॥ एला जिरक धान्या क निम्बू रस समन्वितम् ॥ घृते सुगन्धे तद्भृष्टं । मांसं शृंगाट कोच्यते ॥ २०२॥ मांसं शृंगाटकं रुच्यं वृंहणं वल दाद् गुरु ॥ वात पित्त हरं वृष्यं कफघ्नं वीर्य वर्द्धनम् ॥ २०३ ॥ अथ मांस रसः ॥

भा० शुद्ध मांस वारीक करके जलमें पकावे ॥ लौंग हींङ्ग लवण मरिच और अद्रक इनसे युक्त ॥२०१॥ तथा इलाय ची जीरा धनियां नीम्बूका रस इनके युक्त ॥ अच्छे घृत में उसको भूने उसको मांस शृंगाटक कहेते हैं॥२०२॥मांस शृंगाटक रुचि को करनें वाला पुष्ट वल करनें वाला भारी होताहै ॥ और वात पित्त का नाशक शुक्रको करनें वाला कफ नाशक वीर्य्य को वढानें वाला है ॥२०३॥ अनन्तर मांस रस ॥

सिद्ध मांस रसो रुच्यः श्रम श्वास क्षयापहः ॥ क्षीणानो वात पित्तघ्नः क्षीणा नाम ल्परेत सास् ॥ २०४॥ विश्लिष्टभग्न सन्धीनां शुद्धा नां शुद्धि काङ्क्षिणाम् ॥ स्मृत्यो जो वल हीनानां ज्वर क्षीण क्षते रसाम् ॥ २०५॥ शस्यते स्वर हीनानां दृष्टयायुः श्रव णार्थिनाम् ॥

प्रकाराः कथिताः सन्ति बहवो मांस सम्भवाः ॥ ग्रन्थवि स्तार भीतेस्ते मया नात्र प्रकीर्त्तिताः ॥ शाक पाक विधिः

भा० सिद्ध मांस का रसा रुचि को करनें वाला श्रम श्वास क्षय इनका नाशक है ॥ और प्रीण न वात पित्त का नाशक और क्षीण तथा अल्प शुक्र वाले इनको ॥ २०४॥ और वि श्लिष्ट भग्न संधी वाले शुद्ध और शुद्धि चाहनें वाले ॥ स्मृति ओज बल इनसे हीन ज्वर क्षीण क्षत उर वाले इनको ॥ २०५॥ हित है और हीन स्वर वाले तथा दृष्टि आयु श्रवण र्थि योंको भी हित हैं ॥ मांस की बहुत सी किस म बनाने कीहै ॥ परन्तु ग्रन्थ बढ़ जाने के डरसे उनको मैनें यहां पर नहीं कहा है ॥ अनन्तर शाक पाक विधि ॥ ॥

हिङ्गु जीर युते तैले क्षिपेच्छाकं सुखण्डितम् ॥ लवणां चाम्ल चूर्णा दि सिद्धे हिङ्गू दकं क्षिपेत् ॥ २०७ ॥ इत्ये वं सर्व शाकानां साधनोऽभिहितो विधिः ॥

तत्र मराठ कं माठ इति लोके।

समिता मर्द्दये दम्य जले नापि च सन्न येत् ॥ तस्यास्तु ऽ वटिका कृत्वा पचे त्सर्पिषि नीर सम् ॥ २०८॥ एला लवङ्ग कर्पूर मरी चाद्यै रलङ्कृते ॥ मज्ज यित्वा सिता पाके ततस्तञ्च समुद्ध रेत् ॥ २०९॥ अयं प्रकारः सं सिद्धो मठ इत्य भिधी यते ॥ सन्न येत मर्द्द येत् ॥

भा० हीङ्ग जीरा के सहित तेलमें अच्छी तर बनाई हुई शाक को डाले ॥ लव ण आम चूर आदि सिद्ध हुवे में हीङ्ग का पानी डाले ॥ २०७॥ इस प्रकार सब शाकों के बनानें की विधि इष्टहै ॥ अनन्तर मठडी ॥ मैदेको मले और पानी से साने उसकी वटि का करके घृतमें नीरस पकावे ॥ २०८॥ इलाय ची लवंग कपूर मरिच आदिसे युक्त ॥ इसको चीनी मे पागे उस के अनन्तर उसको निकाले ॥ २०९ इस तरह पर सिद्ध हुवेको मठडी ऐसा कहेते है ॥ मर्दन करे ॥

मठस्तु बृंहणो वृष्यो बल्यः सुमधुरो गुरुः ॥ पित्तानिल हरो रुच्यो दीप्ताग्नीनां सुपूजितः ॥२१०॥ समिताऽ शर्करा सर्पि र्निर्मिता अपरेऽपिये ॥ प्रकारा अमुना तुल्यास्तेऽपि चैतद्गुणाः स्मृताः ॥ २११ ॥

अथ सम्पाव पेराक ॥ पर्य्यल्पः साज्य समिता निर्मिता घृत भर्जिताः ॥ कुट्टि ताश्चालिताः शुद्ध शर्करा भिर्विमर्द्दिताः ॥ २१२ ॥ तत्र चूर्णं क्षिपेदेला लवङ्ग मरिचानिच ॥ नालिकेरं सकर्पूरं चार वीजान्यनेकधा ॥२१३॥

भा॰ मठंड़ी पुष्ट शुक्रको करने वाली बलके हित अच्छी मधुर भारी ॥ पित्त वात की नाशक रुचिको करनें वाली दीप्ताग्नि वालों को अच्छी है ॥२१०॥ और भी जो मैदा शक्कर घी इन से बना ये हुवे पदार्थ ॥ इसीके समान गुण में हैं वेभी उसीके समान गुण वाले कहेहैं ॥२११॥ अनन्तर संपाक पेराक ॥ घृत के सहित मैदे से बनाये हुवे रोट घी में भूने हुवे ॥ तथा कूटके चालनी से चाले हुवे अच्छी चीनी को मिलाके मले हुवे ॥ २१२॥ उस चूर्ण में इलायची लवंग मरिच ॥ नारियल कपूर चिरोंजी और अनेक प्रकार ॥ २१३॥

घृताक्त समिता पुष्ट रोटिका रचिता ततः ॥ तस्यान्तः पूरणं तस्य कुर्य्यान्मुद्रां दृढां सुधीः ॥ २१४॥ सर्पिष्यथ प्रचुरे तान्तु सुपचे न्निपुणो जनः ॥ प्रकार ज्ञैः प्रकारोऽयं सम्पाव इति कीर्त्तितम् ॥२१५॥ अथ कर्पूर नालि ॥

घृताढ्यया समितया लम्बं कृत्वा पुटं ततः ॥ लवङ्गेल्वण कर्पूर युतया सितयाऽन्वितम् ॥ २१६ ॥ पचेदाज्येन सिद्धे या ज्ञेया कर्पूर नालिका ॥

सम्याव सदृशी ज्ञेया गुणैः कर्पूर नालिका ॥ २१७॥

[फेनिका फेनी ॥]

भा० डाले अनन्तर मैदे में घी मिला कर मोटी रोटी बनावे उस के अनन्तर॥ उसके वीचमें उसका पूरण देवे और दृढ मुद्रा वुद्धि वान करे ॥ २१४ ॥ वुद्धि। वान उसको बहुत से घृत में पकावे ॥ तर कीबके जान नें वालों नें इसको संपाव ऐसा कहाहे ॥ २१५॥ अनन्तर कर्पूर नालि ॥ बहुत घृत डाल कर मैदे से लम्बा पुट करके अनन्तर ॥ लवंग अधिक कपूर के युक्त चीनी से युक्तको ॥२१६॥ घृतमें पकावे येह सिद्ध कर्पूर नालिका जाननी चाहिये॥ संपाव के समान गुणमें कर्पूर नालि का जाननी चाहिये ॥२१७॥ अनन्तर फेनी ॥

समिताया घृताढ्याया वर्त्तिं दीर्घां समाचरेत् ॥ तास्तु
सन्निहिता दीर्घाः पीठस्योपरि धारयेत् ॥ २१८ ॥
वेल्लयेद्वेल्लनेनैता यथैका पर्पटी भवेत् ॥ तत क्षु
रिकया तान्तु सलग्ना मेव कर्त्तयेत् ॥२१९॥ ततस्तु
वेल्लयद्रूप सट्टकेन च लेपयेत् ॥
शालि चूर्णं घृतं तोयं मिश्रितं दशकं वदेत् ॥ ततः
संहृत्य तल्लोपूर्तीं विदधीत पृथक् पृथक् ॥ २२०॥

भा० घृतके सहित मैदे से लंबी वत्ती करे ॥वोह सन्निहित दीर्घ पीढे के ऊपर रक्खे ॥ २१८॥ इनको वेलनें से वेले जिस्सें एक रोटी होजावे ॥ उसके अनन्तर उनको छुरीसे लगी हुई को ही काटे ॥ २१९॥ फिरसे वेले और सट्टक अर्थात्। चांवलका आटा उस्से लेपन करे ॥ चांवलका चूर्ण घृतजल इन सबमिले हुवे को। दशक कहते है ॥ उससे लोई गोल करके अलग२ रक्खे ॥ २२० ॥

पुनस्तां वेल्लयेल्लोपूर्तीं यथा स्यान्मण्डलाकृतिः ॥
ततस्तां सुपचेदाज्ये भवेयुश्च पुटाः स्फुटाः ॥ २२१॥

सुगन्धया शर्करया तदुद्धूलनमाचरेत् ॥ सिद्धेयं फेनिका नाम्नी मण्डकेन समा गुणैः ॥ २२२ ॥ ततः किञ्चिल्लघुरियं विशेषोऽयमुदाहृतः ॥

(क) वेल्लयेत् प्रसारयेत् वेल्लनः । वेलन इति लोके । पर्प्पटी रोटी । लोपूरी लो इति लोके ।

अथ शष्कुली सोहाली इति लोके ।

समितया घृताक्तया लोपूरीं कृत्वा च वेल्लयेत् ॥ आज्ये तां भर्जयेत्सिद्धा शष्कुली फेनिका गुणा ॥ २२३ ॥

भा० फिर उस लोई को वेले जिसमें मंडला क्रांति हो जावे ॥ उसके अनन्तर उसको घृतमें पकावे उसके पुड़त खिल जाते हैं ॥ २२१ ॥ सुगन्ध चीनी को उसके ऊपर बुरकावे ॥ सिद्ध येह फेनि नाम मंडक के समान गुण में होती है ॥ २२२ ॥ उससे कुछ हल की येह होती है येह विशेष कहा है ॥
(क) वेले । वेलन । रोटी । लोई । अनन्तर सोहारी । घृत के सहित मैदे की लोई बना कर वेले ॥ उसको घृत में पकावे येह सिद्ध हुई फेनि के समान गुण में होती है ॥ २२३ ॥

॥ अथ सेवीका मोदक सेवका लाडू ।

घृताढ्यया समितया कृत्वा सूत्राणि तानि तु ॥ निपुणो भर्जयेदाज्ये खण्ड पाकेन योजयेत् ॥ २२४ ॥ युक्तेन मोदकान् कुर्य्यात् ते गुणे मण्डका यथा ॥

अथ मुक्ता मोदका मोति लाडू ।

भा० अनन्तर सेवका लड्डु । घृत के सहित मैदासे सूत करके उनको ॥ निपुण घृत में पकावे अनन्तर खांड के पाक में उसको डाले ॥ २२४ ॥ उनके लड्डु करे वे गुण में मंडक के समान होते हैं ॥ अनन्तर मोती चूर के लड्डु ॥

मुद्गानां धूमसी सम्यक् घोलये न्निर्मलाऽम्बुना॥ कटाह
स्य तटे स्थूलं झर्झरं स्थापये त्ततः॥ २२५॥ धूमसीन्तु
द्रवी भूतां प्रक्षिपेत झर्झरो परि॥ पतन्ति विन्द व-
स्त स्मात् तान् सुपक्कान् समुद्ध रेत्॥ २२६॥
सिता पाकेन संयोज्य कुर्य्या द्धस्तेन मोद कान्॥
झर्झरं झर्झ रा इति लोके।

भा० मूङ्ग के आटे को निर्मल जलमें घोले॥कढाई के किनारे पर झारे को रक्खे॥ २२५॥ अनन्तर उस घोले हुवे मूङ्ग के आटे को झारे के ऊपर डाले॥ उससे बून्द गिरते है उन पके हुवों को निकाल लेवे॥ २२६॥ चीनी के पाक में मिलाकर हाथसे लड्डु बनावे॥ झारा) इस प्रकार लोकमें कहेते हैं॥

लघु ग्राही त्रिदोषघ्नः स्वादुः शीतो रुचि प्रदः॥ चक्षु
ष्यो ज्वर हृद्ब ल्य स्तर्पणो मुद्ग मोदकः॥२२७॥

अथ सेवन मोदकः। सेवकालड्डुआ।

एव मेव प्रकारेण कार्य्याः सेवन मोदकाः॥ ते ब-
ल्या लघवः शीता किञ्चि द्वात कराः स्तथा॥ २२८॥
विष्टम्भिनो ज्वर घ्राश्च पित्त रक्त कफा पहाः॥
[दुग्धं कूपिका॥]

भा० येह हलका काविज त्रिदोष नाशक मधुर शीतल रुचि को करनें वाला॥ नेत्रके हित ज्वर नाशक वलकारी तर्पण मूङ्ग के लड्डु होतेहै॥२२७॥
अनन्तर सेव का लड्डु। ऐसे ही सेव के भी लड्डु बनावे॥ वेवल के हित हलके शीतल कुछ एक बात को करनें वाले हैं॥ २२८॥
और विष्टंभ करनें वाले ज्वर नाशक तथा रक्त पित्त कफ इस का नाशक है॥
अनन्तर दुग्ध कूपिका॥

तण्डुल चूर्णं विमिश्रित नष्ट क्षीरेणसान्द्र पिष्टेन ॥ दृढ़ कूपिका विदध्या ताञ्च पचे त्सर्पिषा सम्यक् ॥ २२९ ॥ अथ तां कोरि तमध्यां घन पयसा पूर्णं गर्भाञ्च ॥ शालि कमुद्रित वदनां सर्पिषि सपक्व वद ताञ्च ॥ २३० ॥ अथ पाण्डुखण्ड पाके स्नापयेत् कर्पूर वासिते कुशलः ॥ अथदुग्ध कूपी सा बल्या पित्ता निला पहा ॥ २३१ ॥ वृष्या शीता गुर्वी शुक्र करी बृंहणी रुच्या ॥ विदधाति कायपुष्टिं हर्षिं दूर प्रसारिणी सुचिरम् ॥ २३२ ॥

भा० चांवल के आटेको मिलाके फटे दूधकोश्लेष्म सा करके उसे दृढ कूपी करे उसको घीमें पकावे ॥ २२९॥ अनन्तर उस्को वीचमें से खाली करके उसमें खोया भरे ॥ औरउसका मुख चावल के ओटे से बन्द करके घीमें पकावे ॥ २३० ॥ अनन्तर सुफेद खांड के पाक में डुबोवे कपूर के वास्ति में कुशल ॥ अनन्तर दुग्ध कूपी वो वलके हित पित्त वात की नाशक है ॥ २३१ ॥ शुक्रको करनें वाली शीतलभारी शुक्र को करनें वाली पुष्ट रुचिको करनें वाली है ॥ और शरीर की पुष्टिको करता है तयाव दुतकाल तक अच्छी हर्षी को करता है ॥ २३२ ॥

कुण्डलिनी जलेबी । नूतनं घट मानीय तस्यान्तः कुशलो जनः ॥ प्रस्थार्द्ध परि माणेन दध्नाऽम्लेन प्रलेपयेत् ॥ २३३ ॥ द्वि प्रस्था समितां तत्र दध्यम्लं प्रस्थसम्मितम् ॥ घृत मर्द्ध शरा वञ्च घोल यित्वा घटे क्षिपेत् ॥ २३४ ॥ आतपे स्थापये त्तावद्या वद्याति दत्म्लताम् ॥ ततस्त त्प्रक्षिपे त्पात्रे सच्छिद्रे भाजने तु तत ॥ २३५ ॥ परिभ्राम्य परिभ्राम्य तत्सन्तप्ते घृते क्षिपेत् ॥

पुनः पुनस्तदा कुर्य्या द्विदध्या न्मण्डला कृतिम् ॥२३६
तां सुपक्कां घृतान्नीत्वा सिता पाके ततु द्रवे ॥ कर्पूरादि
सुगन्धञ्च स्नाप यित्वो द्धरे त्ततः ॥२३७॥ एषा कुण्ड
लिनी नाम्ना पुष्टि कान्ति बल प्रदा ॥ धातु वृद्धिकरी
वृष्या रुच्या च क्षिप्र तर्पणी ॥ २३८ ॥

अथ पश्चा त्परि वे श्यािण । सिखरिणी ।

भा० अनन्तर जलेवी । कुशल मनुष्य नया घड़ा लाकर उसके भीतर ॥ आध सेर खट्टी दही से लेप करावे ॥२३३॥ उसमें दोसेर मैदा और एक सेर खट्टा दही ॥ पाव भर घृत इन को घोल कर घृतमें डाले ॥ २३४॥ इसको धूपमें रक्खे तब तक् जब तक् खट्टा पन इस्में न आवे ॥ अनन्तर छेक वाले बरतन में उसको डालें ॥ २३५ ॥ उसको घुमा २ कर जलते हुवे घी में डाले ॥ फिर २ उसकी फेरसे मंडला कृति करे ॥ २३६ ॥ उस पकी हुई को घृत से निकाल करची नी के पतले पाकमें ॥ कपूर आदि से युक्त में डाल कर निकाल लेवे ॥२३७ येह जलेवी पुष्टि कान्ति बल को देनें वाली है ॥ और धातु को बढ़ाने वाली शुक्रको करनें वाली रुचि को करनें वाली नेत्रकी तर्पण है ॥२३८॥

अनन्तर पश्चात् परि वेश्यनि सि ख रिणी ।

आदौ माहिष मम्ल मम्बु रहितं दध्या ढकं शर्कराम् ॥
शुभ्रां प्रस्थ युगो न्मितां शुचि पटे किञ्चि च्च किञ्चित्
क्षिपेत् ॥ २३९ ॥ दुग्धे नार्द्ध घटेन मृण्मय यनवस्थ
ल्यां दृढं स्नाव येत् ॥ एला बीज लवङ्ग चन्द्र मरिचै
र्योग्यैश्च तद्यो जयेत् ॥२४०॥ भीमेन प्रिय भोज नेन
रचि ता नाम्ना रसाला स्वयम् ॥ श्री कृष्णे न पुरा पु
नः पुन रियं प्रीत्या समा स्वादिता ॥ २४१ ॥

भा० पहिले भैंसकी जल रहित चार सेर दही को सफेद दो सेर शर्करा के सहित सुफ़ेद कपड़े पर थोड़ा २ डाले ॥ २३९॥ अर्द्ध घट दुग्ध से नई मिट्टी की स्थालीमें छन वावे ॥ इलाय ची लौंग चन्दन मरिच और उचित उसमें डाले ॥ अच्छे भोजन करने वाले भीम सेन ने रसाला नाम स्वयं बनाई है ॥ पहिले श्री कृष्ण ने बारं बार इसको प्रीति से आस्वादन किया था ॥ २४१॥

यथा येन वसन्त वर्जित दिने संसेव्यते नित्यश: ॥ तस्य स्यादति वीर्य्य वृद्धि रनिशं सर्वेन्द्रि याणां बलम्॥ २४२॥ ग्रीष्मे तथा शरदि ये रविशो षि ताङ्गा: ये च प्रसन्न वनिता सुरतातिखिन्ना:॥ ये चापि मार्ग परिसर्पण क्षीर्ण गात्रा स्तेषां मियं वपुषि पोषणमाशु कुर्य्यात् ॥ २४३॥ रसाला शुक्रला बल्या रोचिनी वात पित्त जित् ॥ दीपिनी वृंहणी स्निग्धा मधुरा शिशिरा सरा ॥ २४४॥ रक्त पित्त तृषा दाह प्रति श्याय विनाश येत् ॥　शर्क रोदक सर वत　॥

भा० इसको जो वसन्त से रहित दिनों में नित्य सेवन करते है ॥ उस के अति वीर्य्य वृद्धि और सब इन्द्रियों का बल होता है ॥२४२॥ ग्रीष्म में तथा शरद में जो सूर्य्य से शोषित अंग वाले है और जो प्रसन्न स्त्री के मैथुन से अति खिन्न ॥ तथा जो मार्ग चलनें से क्षीर्ण गात्र है उनके शरीर में येह पोषण शीघ्र करता है ॥ २४३॥ रसाला शुक्र को करनें वाली बल के हित रोचन वात पित्त को जीतनें वाली है ॥ और दीपन पुष्टिकनीमधुर शीतल सर है ॥ २४४॥ रक्त पित्त तृषा दाह प्रति श्याय इनको नाश करती है ॥

अनन्तर सर वत ।　　॥

जलेन शीतले नैव घोलिता शुभ्र शर्करा ॥ एला लवङ्ग कर्पूर मरि चैश्च सम न्विता ॥ २४५॥

शर्क रोदक नाम्ना तत् प्रसिद्धं विदुषां मुखे ॥ शर्क रो-
दक माख्यातं शुक्रलं शिशिरं सरम् ॥ २४ ६ ॥ वल्यं
रुच्यं लघु स्वादु वात पित्त प्रशा मनम् ॥ मूर्च्छा छ
र्दि तृषा दाह ज्वर शान्ति कर म्परम् ॥ २४७ ॥

भा० शीतल जल से घोली हुई सुफेद चीनी ॥ और इलाय चीलवङ्ग कपूर म रिच इनसे युक्त ॥ २४५॥ शर्क रोदक नाम से प्रसिद्ध पंडितों के मुख में है ॥ शर्क रोदक प्रसिद्ध है शुक्र को करनें वाला शीतल सर है ॥२४६॥ और वल के हित रुचि करनें वाला हलका मधुर वात पित्त का नाशक है ॥ और मूर्च्छा। वमन तृषा दाह ज्वर की शान्ति को परम करनें वाला है ॥२४७॥

अथ प्रपान कं पन्ना । तत्र आम्र फल प्रपान कम्
आम्रं मामं जले स्विन्नं मर्दितं दृढ पाणि ना ॥ सिता
शीताम्बु संयुक्तं कर्पूर म रि चा न्वितम् ॥ २४ ॥ प्रपा
न कमिदं श्रेष्ठं भीम से नेन निर्मितम् ॥ सद्यो रु चि
करं वल्यं शीघ्र मिन्द्रिय तर्पण म् ॥ २४९ ॥

भा० अनन्तर पन्ना । उसमें आम का पन्ना । कच्चे आम को पानी में उवाल के। हाथ से खूव मले ॥ चीनी और शीतल जलसे युक्त और कपूर मरिच के साथ। ॥ २४८॥ येह प्रपान क श्रेष्ट भीम सेन का बनाया हुवा है ॥ तत्काल रुचि। को करनें वाला वलके हित शीघ्र इन्द्रिय का तर्पण है ॥ २४९॥

अथा म्लि का फल पान कम् । आम्लि कायाः
फलं पक्वं मर्दितं वारिणा दृढ म् ॥ शर्करा मरि चै।
र्मिश्रं लवङ्गे न्दु सुवा सितम् ॥ २५०॥

भा० अनन्तर इमली का पन्ना ॥ पकी इमली को पानी के साथ खूव मले ॥ श कर और मरिच से युक्त और लवङ्ग कपूर से सुवासित ॥२५०॥

अम्लिका फल सम्भूतं पानकं वात नाश नम् ॥ पित्त
श्लेष्म करं किञ्चित सुरुच्यं वन्हि बोध नम् ॥ २५१
निम्बूक फल पान कम् । भागे कं निम्बुजं तोयं षड्
भागं शर्क रोद कम् ॥ लवङ्ग मरिचे र्मिश्रं पानं पानक
मुत्तमम् ॥ २५२ ॥ निम्बू फल भवं पान मत्यम्लं वात ना
शनम् ॥ वन्हि दीप्ति करं रुच्यं समस्ता हार पाच कम् ॥
२५३ ॥ धान्याक पानकं ॥ शिलायां साधु सम्पिष्टं
धान्यकं वस्त्र गालि तम् ॥ शर्करो दक संयुक्तं कर्पूरा
दि सु संस्कृतम् ॥ २५४ ॥ नूतने मृण्मये पात्रे स्थितं ।
पित्त हरं परम् ॥ अथ काञ्जी ॥

भा० येह इमली का पन्ना वात का नाशक है ॥ और पित्त कफ़ को करनें वाला किंचित् तथा रुचि कर दीपन है ॥ २५१ ॥ नीम्बूका पन्ना ॥ एक भाग नीम्बु का रस छः भाग सरवत ॥ लौङ्ग मिरच से युक्त पन्ना पन्नों में श्रेष्ठ है ॥ २५२ नीम्बूका पन्ना बहुत खट्टा वात नाशक ॥ अग्नि दीपन रुचि कर संपूर्ण आहार को पकानें वाला है ॥ २५३ ॥ धनिया का पन्ना ॥ सिल पर अच्छी तरह पीसा हुआ धनिया कपड़ छान करके ॥ सर्वत के सहित कपूर आदिसे युक्त ॥ २५४ ॥ नवीन मिट्ठी के बरतन में रक्खा हुई परम पित्त का नाशक है ॥ अनन्तर कांजी ॥

काञ्जी विधि र्वटका वसरे लिखितः । काञ्जी कं
रोचनं रुच्यं पाचनं वह्नि दीपनम् ॥ शूल जीर्ण विब
न्धघ्नं कोष्ठ शुद्धि करं परम् ॥ २५५ ॥ न भवेत् का ।
ञ्जिकं यत्र तत्र कालिः प्रदीयते ॥ अथ जारी ॥
आम मास्र फलं पिष्टं राजिका लवणा न्वितम् ॥

भा० कांजी की विधि वटक के अवसर में कहीहै ॥ कांजी रोचन रुचि को करनें वाली पाचन अग्नि दीपन है ॥ और शूलजीर्ण विबन्ध का नाशक तथा परम कोष्ठ शुद्धि को करनें वालाहै ॥ २५५॥ जहां पर कांजी नहो वहां पर कालि:दी जातीहै। अनन्तर जारी। कच्चे आम के फल को पीस कर राई और लवण से युक्त ॥-

भृष्ट हिङ्गु-युतं पूतं घोलितं जालि रुच्यते ॥ २५६ ॥
जालि हरति जिह्वायाः कुण्ठत्वं कण्ठ शोधनी ॥ म-
न्द मन्दन्तु पीतासा रोचिनी वन्हि बोधिनी ॥ २५७ ॥
अथ तक्रं। तूर्य्यां शेन जलेन संयुत मति स्थूलं सदम्लं
दधि ॥ प्रायो माहिष मस्तुकेन विमले मृद्भाजने मा
लयेत् ॥ २५८॥ भृष्टं हिङ्गु च जीर कञ्च लवणं राजीञ्च
किञ्चि न्मितम् ॥ पिष्टान्तन्न विलिप्यये द्भवति तत्त
क्रं न कस्य प्रियम् ॥ २५९ ॥ तक्रं रुचि कारं वन्हि
दीपनं पाचनं परम् ॥ उदरे ये गदा स्तेषां नाशनं।
तृप्ति कार कम् ॥ २६० ॥ अथ दुग्धम् ॥

भा० भूनी हीङ्ग के सहित घोली हुई को जालि कहेते हैं ॥ २५६॥ जीभकी कुंठताको जालि नाश करती है और कंठ की शोधन है ॥ मन्द मन्द पी हुई वोह रोचन अग्निको जगाने वाली है ॥ २५७॥ अनन्तर मठा ॥ चौथाई जलसे युक्त अति स्थूल अच्छा खट्टा दही ॥ प्रायः भैंस का जल से विमल मिट्टीके बरतन में रक्खे। ॥ २५८॥ भूना हुवा हीङ्ग जीरा लवण राई भी कुछ युक्त ॥ पीसके उसमें मिलावे। वोह मठा किसके प्रिय नही होता ॥ २५९॥ मठा रुचि कर दीपन पाचन ॥ और उदरके जो रोग हैं उनका नाशक तृप्ति कारक है ॥ २६०॥ अनन्तर दूध ॥

विदाहि न्यन्न पानानि यानि भुङ्क्ते हि मानवः ॥ तद्वि
दाह प्रशा न्त्यर्थं भोज नान्ते पयः पिबेत् ॥ २६१॥

दुग्धस्यापरे गुणा उक्ता एव दुग्ध वर्गे ॥ अथ शक्तवः
धान्यानि भ्राष्ट्र भृष्टानि यन्त्र पिष्टानि शक्त वः ॥
तत्र यव शक्तवः । यवजाः शक्तवः शीता दीपना लघ
वःसराः ॥ कफ पित्त हरा रूक्षा लेखनाश्च प्रकीर्त्ति
ताः ॥ २६२ ॥ ते पीता बलदा वृष्या बृंहणा भेदनास्तथा
॥ तर्पणा मधुरा रुच्याः परिणामे बला पहाः ॥ २६३ ॥
कफ पित्त श्रम क्षुत्तृट् छर्दि नेत्रा मया पहाः ॥ प्रशस्ता
घर्मदाहाढ्य व्याया मार्त्त शरी रि णाम् ॥ २६४ ॥

भा० मनुष्यजिन विदाहि अन्न पानों को भोजन करता है ॥ उसके विदाह प्रशा-
न्ति के अर्थ भोजन के अन्तमें दुग्ध पीवे ॥ २६१ ॥ दुग्ध वर्ग में दुग्ध के और गुण
कहेहैं । अनन्तर सत्तू । भाड में धान्य भूने चक्कीसे पीसे हुवे सत्तूहै ॥ उसमें ज
वके सत्तू ॥ जवका सत्तू शीतल दीपन हलका सर ॥ कफ पित्त का नाशक रूखा
लेखन कहाहै ॥ २६२ ॥ वे पीये हुवे बलको देने वाले शुक्र कारक पुष्ट भेदन
॥ तर्पण मधुर रुचिको करनें वाले और परिणाम में बलके नाशक हैं ॥ २६३
कफ पित्त श्रम क्षुधा तृषा छर्दि नेत्र रोग इनके नाशक है ॥ घर्म दाहाढ्य कसर
त से पीडित शरीरवालो को हित है ॥ २६४ ॥

चणाक यव शक्तवः । निस्तुषैश्चणकै र्भृष्टै स्तुर्य्यां-
शैश्च यवैः कृताः ॥ शक्तवः शर्करा सर्पि र्युक्ता ग्रीष्मे
ति पूजिता ॥ २६५ ॥ शालि शक्त वः ॥
शक्तवः शालि सम्भूता वन्हिदा लघवो हिमाः ॥ म-
धुरा ग्राहिणी रुच्या पथ्या श्च बल शुक्र दाः ॥ २६६

भा० अनन्तर चने जव का सत्तू । छिल के से रहित चनों को भून कर और
चौथाई जव से बनाया हुवा ॥ सत्तू शर्करा घृत से युक्त ग्रीष्म में अति पूजित

है॥ २६५॥ अनन्तर धानका सत्तू ॥ धानका सत्तू अग्नि दीपन हलका शीतल॥ मधुर काविज रुचि करनें वाला पथ्य बल शुक्र को देने वाला है॥ २६६

न भुक्त्वा न रदै र्छित्वा न निशायां नवा बहून्॥ न जलान्तरितान् तद्धि शक्तूनद्यान्न केवलान्॥ २६७॥ पृथक् पानं पुनर्दानं सामिषं पयसा निशि॥ दन्तच्छेदन मुष्णञ्च सप्त शक्तुषु वर्जयेत्॥ २६८ अथ बहुरी। यवास्तु निस्तुषा भृष्टाः स्मृता धाना इति स्त्रियां॥ धानाः स्यु दुर्जरा रूक्षा स्तृट्प्रदा गुरवश्च ता॥ २६९॥ तथा मेह कफ च्छर्दि नाशिन्यः सम्प्रकीर्तिताः॥ अथ लाजा॥ येषां स्यु स्तण्डु लास्तानि धान्यानि सतुषाणि च॥ भृष्टानि स्फुटिता न्याहु र्लाजा नीति मनीषिणः॥ २७०॥ लाजाः स्यु र्मधुराः शीता लघवो दीपनाश्च ते॥

भा० न भोजन करके न दातों से काट कर न रात में न बहुत॥ न जल से अन्तरित और उस सत्तू को केवल न खावे॥ २६७॥ अलग पान फिरसे देना मांस जल रात दन्तछेदन और गरम येह सात सत्तू में त्याग देवे॥ २६८॥ अनन्तर बहुरी। वे छिलके के भूने जव स्त्री लिंग में धाना इस प्रकार कहा है॥ धाना दुर्जर रूखे तृषा दाह को देने वाले भारी है॥ २६९॥ तथा प्रमेह कफ वमन इनको नाश करनें वाले कहे हैं॥ अनन्तर खीला॥ जिनके चांवल होते है॥ वोह छिलके के सहित धान॥ भुने हुवोंको विद्वानानें लाजा इस प्रकार कहा है॥ २७०॥ खीलां मधुर शीतल हलकी दीपन होत हैं॥

स्वल्प मूत्र मला रूक्षा बल्या पित्त कफ च्छिदः॥ २७१॥ छर्द्यतीसार दाहास्र मेह मेद स्तृषा पहाः॥

अथ चिडवा । शालयः सतुषा आर्द्रा भृष्टा अस्फुटिता
श्च तत् ॥ कुट्टितास्त्रि पिटाः प्रोक्तास्ते स्मृताः पृथुका
अपि ॥ २७२॥ पृथुका गुरवो वात नाशनाः श्लेष्म
ला अपि ॥ सक्षीरा बृंहणा वृष्या बल्या भिन्न म-
ला श्च ते ॥ २७३॥ अथ होरहा ॥
अर्द्ध पक्वैः शमी धान्ये स्तृणा भृष्टैश्च होलकः ॥ हो
लको ऽल्पा निलो मेदः कफ दोष त्रया पहः ॥ २७४
भवेद्यो होलको यस्य स च तत्त द्गुणो भवेत् ॥

भा० वे अल्प मल मूत्र को करने वाले रूखे बलको करनें वाले हैं और पित्त क
फ़को काटनें वाले हैं ॥ २७१ ॥ तथा वमन अतीसार दाह रक्त मेह भेद तृषा इ-
नका नाशक है ॥ अनन्तर चिड़वा ॥ छिलके वाले धान भीगे और भूने हुवे
अस्फुटित ॥ कूटे हुवे चिपिट कहे है वे पृथुक भी कहे हैं ॥ २७२॥ चिड़वा भारी
वात नाशक भी है ॥ और दूधके सहित पुष्ट शुक्रको करनें वाले बल करनें वाले ॥
मल को अलग करनें वाले हैं ॥ २७३॥ अनन्तर होरहा ॥ आधे पके हुवे
शिम्बी धान्य तृण से भूने हुवों को होलक कहा है ॥ होलक अल्प वात मेद,
कफ त्रिदोष इनके नाशक है ॥ २७४॥ जिसका जो होला होता है वोह उ-
सके गुण वाला होता है ॥

अथ ऊची । मञ्जरी त्वर्द्ध पक्वाया यव गो धूमयो
र्भवेत् ॥ तृणा नलेन संभृष्टा बुधै रूचीति सा स्मृता ॥
२७५॥ उमिया इति लोके ॥ ऊची कफ प्रदा बल्या
लघ्वी पित्ता निला पहा ॥ अथ घुघुनी ॥
अर्द्ध स्विन्नास्तु गोधूमा अन्येऽपि चणकादयः ॥ कु
ल्माषा इति कथ्यन्ते शब्द शास्त्रे षु पण्डि तैः ॥ २७६॥

कुल्माषा गुर वो रूक्षा वातला भिन्न वर्चसः॥

[अथ तिल कुट]

भा० अनन्तर ऊची। जब गेहूं की जो अध पकी बालें होतीहैं॥ तृणागिन से भूनी हुई उसको विद्वानों ने ऊची ऐसा कहाहै॥ २७५॥ लोक में उमि या कहेते हैं ॥ ऊची कफ को करनें वाली बलके हितहलकी पित्त बातकी नाशक है॥ अनन्तर घुघुनी ॥ आधे पकाये हुवे गेहूं और चने आदिक॥ व्याकरण के पंडितोंने इस को कुल्माष ऐसा कहाहै॥ २७६॥ कुलमाष भारी रूखे वात को करनें वाले मलको अलग करनें वाले हैं॥ अनंतर तिल कुट॥

पल लन्तु समाख्यातं सेक्ष वतिल पिष्टकम्॥ पललं मल कृद्वृष्यं वातघ्नं कफ पित्त कृत्॥ २७७॥ बृंहणञ्च गुरु स्निग्धं मूत्रा धिक्य निवर्त्त कम्॥ अथपीना। तिल किट्टन्तु पिन्याकं स्तथा तिल खलिः स्मृता॥ पिण्याको लेखनो रूक्षो विष्टम्भी दृष्टि दूषणः॥ २७८ अथ चाउर। तण्डु लो मेह जन्तुघ्नः स नव स्त्वति दुर्जरः॥ इति श्री भाव प्रकाशे कृतान्न वर्गः

भा० गुड़के सहित तिलकी पिट्ठीकोपलल कहाहै॥ पलल मल कारी शुक्रको करनें वाला वात नाशक कफ़ पित्त को करनें वालाहै॥२७७॥ पुष्ट भारी चिकना और मूत्राधिक्य को दूर करनें वाला है॥ अनन्तर खली॥ तिल किट्ट को पिन्याक तथा तिल खलि कही है॥ खली लेखन रूक्ष विष्टंभी दृष्टि दूषणा होतीहै॥ २७८॥ चावल प्रमेह कृमि का नाशक और नया अति दुर्जर होताहै॥

इति भाव प्रकाशे कृतान्न वर्गः॥

अथ वारिवर्गः

तत्र पानीयनामानि गुणाश्च ।

पानीयं सलिलं नीरं कीलालञ्जलमम्बु च ॥ आपो
वार्वारि कन्तोयं पयः पाथस्तथोदकम् ॥ १ ॥ जीवनं
वनमम्भोऽर्णोऽमृतं घनरसोऽपि च ॥

भा० अनन्तर जलवर्गः ॥ उसमें जल के नाम और गुण ॥ पानीय सलिल नीर कीलाल जल अम्बु ॥ आप वार वारि कं तोय पय पाथ तथा उदक ॥१॥ जीवन अंभ अर्ण अमृत घनरस येह पानी के नाम हैं ॥

पानीयं श्रमनाशनं क्लमहरं मूर्च्छापिपासापहम् ॥ तन्द्रा
छर्दिविबन्धहृद्बलकरं निद्राहरं तर्पणम् ॥२॥ हृद्यं गु
प्तरसं ह्यजीर्णशमकं नित्यं हितं शीतलम् ॥ लघ्वच्छं
रसकारणं तु निगतं पीयूषवज्जीवनम् ॥ ३ ॥ तस्य भेदाः
पानीयं मुनिभिः प्रोक्तं दिव्यं भौममिति द्विधा ॥ दिव्यं च
तुर्विधं प्रोक्तं धाराजं कारकाभवम् ॥ ४ ॥ तौषारञ्च
तथा हैमन्तेषु धारं गुणाधिकम् ॥

तत्र धारस्य लक्षणं गुणाश्च ।

भा० जल श्रम नाशक क्लम हर मूर्छा पिपासा का नाशक ॥ तन्द्रा वमन विबन्ध इनका नाशक दल कर निद्रा नाशक तर्पण ॥२॥ हृद्य गुप्तरस अजीर्ण शमक नित्य हित शीतल होताहै ॥ हलका स्वच्छ रस कारण अमृत केसमान जीवन कहाहै ॥३॥ उसके भेद । मुनियों ने जल दो प्रकारका कहाहै दिव्य भौम भौ

स ॥ दिव्य चार प्रकार का कहाहे धारका ओलों का ॥ ४ ॥ तुषार का तथा हैं मन्त में धार का गुण में अधिक होताहे ॥

उसमें धार के लक्षण और गुण ।

धाराभिः पतितं तोयं गृहीतं स्फीतवाससा ॥ शिला यां वा सुधा यां वा धौता यां पतितञ्च तत् ॥ ५ ॥ सौवर्णे राजते ताम्रे स्फाटिके काच निर्मिते ॥ भाजने मृण्मये वापि स्थापितं धार मुच्यते ॥ ६ ॥ धारं नीरं त्रिदो षघ्न मनि र्देश्य रसं लघु ॥

भा० धारा से गिरा हुवा साफ कपड़े मे लिया हुवा ॥ शिला पर सुधापर धोतर पर गिरा हुवायोह ॥ ५ ॥ सोने के चान्दी के ताम्बे के स्फटिक के काचके बने हुवे बरतन में ॥ अथवा मिट्टी के में रखवा हुवा जल धार कहाहे ॥ ६ ॥ धारजल त्रिदोष नाशक अनि र्देश्य रस हलका ॥

सौम्यं रसायनं बल्यं तर्पणं ह्लादि जीवनम् ॥ ७ ॥ पाचनं मति कृन्मूर्च्छा तन्द्रा दाह श्रम क्लमान् ॥ तृ- ष्णां हरति नात्यर्थं विशेषा त्प्रा वृषि स्थितम् ॥

अथ धारा जलस्य भेदाः

धारा जलञ्च द्विविधं गाङ्ग सामुद्र भेदतः ॥

तत्र गाङ्ग सामुद्र यो र्लक्षणं गुणा श्च ।

आकाश गङ्गा सम्बन्धि जल मादाय दिग्गजाः ॥ मेघै रन्तरिता वृष्टिं कुर्वन्तीति वचः सताम् ॥ ८ ॥ गाङ्ग माश्व युजेमासि प्रायो वर्षति वारिदः ॥ सर्व था तज्जलं न्देयं तथैव चरके वचः ॥ ९ ॥

भा०.सौम्य रसायन बलके हित तर्पणाल्हादि जीवन ॥७॥ पाचन मति को। करनें वाला मूर्च्छा तन्द्रा दाह भ्रम क्लम ॥ तृषा इनको नाश करता है न अ। त्यन्त विशेष करके प्रावृट काल में स्थित है ॥ अनन्तर धारा जलका भेद। धारा जल दो प्रकार का होताहै गंगा और समुद्र से ॥ उनमें गंगा सामुद्रों का लक्षण ॥ और गुण कहेते है ॥ दिग्गज आकाश गंगा सम्बन्धि जललेकर ॥ मेघोसे अन्तरित दृष्टिको करते हैं इस प्रकार सत पुरुषों का वचन है॥ ९ ॥ मेघ गंगा जल को प्राय: आश्विन के महीनें में वरसाते है ॥ सर्व था वोह जल देने योग्य है वैसेही चरक का वचन है ॥९॥

स्या पितं हेमजे पात्रे राजते मृण्मये । पिवा ॥ शाल्यन्नं येन संसिक्तं भवे दक्ले दि वर्णवत् ॥ १०॥ तद्गांगं सर्व दोषघ्नं ज्ञेयं सामुद्रमन्यथा ॥ तत्तु सक्षार लवणं शुक्र दृष्टि बला पहम् ॥ ११ ॥ विस्त्रञ्च दोष लत्तीक्ष्णं सर्व कर्म समाहितम् ॥ सामुद्रन्त्वा श्विने मासि गुणै र्गाङ्ग वदा दिशेत् ॥ १२ ॥ यतो ऽगस्त्य स्य दिव्ये रुद यात्सकलं जलम् ॥ निर्मलं निर्विषं स्वादु। शुक्लं स्याद दोषलम् ॥ १३ ॥ अत एवाह ॥ फूत्कार विषवा तेन नागानां व्योम चारिणाम् ॥ वर्षासु सविषं तोयं दिव्य मप्या श्विनं विना ॥ १४ ॥

अथा नादे वारि गुणाः।

भा० सोने का या चान्दी के अथवा मिट्टी के पात्र में रक्खे हुवे में ॥ धान भिजोये हुवे क्लेद रहित वर्ण वाला होवे ॥ १०॥ वोह गंगा जल सब दोषों का नाशक जानना चाहिये इससे विपरीत सामुद्र ॥ वोह क्षारके सहित शुक्र दृष्टि। बल इनका नाशक है ॥११॥ दुर्गन्धियुक्त दोषको करनें वाला तीक्ष्ण सर्व कर्म समाहितहै और सामुद्र आश्विन के महीनें में गुण में गंगाजल के समान होताहै॥१२॥

क्योंकि अगस्त ऋषि के उदय से संपूर्ण जल॥ निर्मल और निर्विष मधुर शुक्र को करनें वाला अदोष ल है ॥१३॥ इसी वास्ते कहाहै ॥ व्योम चारि सापों के फूत कार विष वातसे ॥ वर्षा में सविष जलदिव्य भी आश्विन के विना नहीं होता है॥१४॥ अनन्तर वे रुत के जल के गुण ॥

अनार्तवं प्रमुञ्चन्ति वारि वारि धरास्तु यत् ॥ तत् नि
दोषाय सर्वेषां देहिनां परि कीर्तितम् ॥ १५॥ अना
र्त्त वश्चैो षादि मास चतुष्टय विषयम् ॥

अथ करका जलस्य लक्षणं गुणाश्च।

दिव्य वाय्व ग्नि संयो गात् संहताःखात्पितन्ति याः ॥
पाषाण खण्ड वञ्चा पस्ताः कारि को ऽमृतो पमाः॥१६
करका जञ्जलं रूक्षं विशदं गुरु च स्थि रम् ॥ दारु
णं शीतलं सान्द्रं पित्त हृत्क फ वात कृत् ॥ १७॥

तौषार लक्षणं गुणा श्च।

भा० वे रुत का जल मेघ जो छोड़ते हैं॥ वोह सब देहि यों के त्रिदोष के अर्थ कहाहै ॥ १५॥ वे रुत का अर्थात् पौषादि मास चतुष्टय विषयहै ॥ अनंतर ओलों के जल का लक्षण और गुण। अन्त रिक्ष वायु अग्नि के संयोग से संहत पथ्थरके टुकडे के समान जल आकाश से जो गिरते है॥ वोह ओले अमृत के समान होतेहै ॥१६॥ ओलों का पानी रूखा विशद भारी स्थिर है ॥ दारुण शीतल सान्द्र पित्त नाशक कफ वात को करनें वाला है ॥१७॥ तौषार अर्थात् पाला का लक्षण और गुण।

अपि नद्याः समुद्रान्ते वन्हिरा पस्तु दुद्रवाः॥ धूमा व
यवार्निर्मुक्ता स्तुषा राख्या स्तु ताः स्मृताः॥१८॥

भा० नदी से लेकर समुद्र पर्य्यन्त अग्नि होती है उस्से उत्पन्न धूमांश रहित ॥वोहजल तुषार नाम कहाहै ॥१८॥

(क) अपि नद्याः समुद्रान्ते वह्निर्नदीमारभ्य समुद्रपर्य्यन्ते वह्निरस्ति तदुद्भवाः। वह्निभवा धूमाव यव निर्मुक्ताः धूमांशरहिताः। आपस्तु या राख्याः। तुष इति लोके। तुषार इति च।

अपथ्याः प्राणिनां प्रायः भूरुहाणान्तु नाहिताः॥ तुषाराम्बु हिमं रूक्षं स्याद्वातलमपित्तलम्॥ १९॥

कफोरुस्तम्भकण्ठाग्निमेहगण्डादिरोगनुत्॥

अथ हिमजलस्य लक्षणं गुणाश्च।

भा० (क) नदीसे लेकर समुद्र पर्य्यंत अग्नि होतीहै॥ उस अग्नि से उत्पन्न धूमांश रहित जल तुषार नामहै। तुष इस प्रकार लोकमें कहते हैं। और तुषार इस प्रकारभी। येह प्राय: प्राणियों को अहित है और वृक्षादियों को हित नहींहै॥ तुषारजल शीतल रूखा होता है और वात को करनें वाला तथा पित्त को नकरनें वालाहै॥ १९॥ और कफ उरुस्तंभ कंठ रोग अग्नि मान्द्य प्रमेह गण्डादि रोग का नाशक है॥ अनन्तर बरफ के पानी का लक्षण और गुण।

हिमवच्छिखरादिभ्यो द्रवीभूयाभिवर्षति॥ यत्तद्धैमं हिमं हैमं जलमाहुर्मनीषिणः॥ २०॥ हिमाम्बु शीतं पित्तघ्नं गुरु वातविवर्द्धनम्॥ (क) हैमं जलम्। कुहेस जलम्। अन्ये तु। और्वानल धूमेरितमम्बु समुद्रस्य यत् घनीभूतम्। पवनानीतमुदीच्यान्तर्हिममिति कथ्यते सद्भिः। हिमं कुहेस इति लोके।

हिमन्तु शीतलं रूक्षं दारुणं सूक्ष्ममित्यपि। न तद्धयते वातं न च पित्तं न वा कफम्॥ २१॥

भा० हिमालय के शिखरादि यों से पिघल के जो बरसता है वोह हिमहै उस्के जलको हैमजल मुनियोंने कहाहे ॥२०॥ बरफ का पानी शीतल पित्तका नाशक भारी वायु को बढानें वाला है ॥ १क। वडवानल के धूम से प्रेरित समुद्र का जल जो गाढा हुवा। वायु से लाया हुवा उत्तर में उसको हिम ऐसा विद्वानों ने कहाहे। लोकमें कुहेस ऐसा कहेतेहैं॥ बरफ़ शीतल रूखी दारुण सूक्ष्म भीहै॥ वोह न वात को न पित्त को न कफ को बिगाड़ताहै ॥२१॥

[भौमं जलं तद्भेदाश्च ॥]

भौम मम्भो निगदितं प्रथमं त्रिविधं बुधैः॥ जाङ्गलप
रमानूपन्ततः साधारणं क्रमात् ॥ २२ ॥

तेषा लक्षणानि गुणाश्च।

अल्पोदको ऽल्प वृक्षश्च पित्त रक्ता मयान्वितः॥ ज्ञा
तव्या जाङ्गलो देशस्तत्र यज्जाङ्गलं जलम् ॥ २३॥
बह्वम्बु र्बहु वृक्षश्च वात श्लेष्मा मयान्वितः॥ देशोऽ
नूप इति ख्यात आनूपं तद्भवं जलम् ॥ २४॥

भा० भूमिका जल और उसके भेद ॥ पंडितोने भूमि का जल तीन प्रकार का प्रथम कहाहै॥ क्रमसे जाङ्गल दूसरा आनूप और साधारण ॥२२॥ उनके लक्षण और गुण। थोडा जल थोडे वृक्ष पित्त रक्त रोग युक्त॥ ऐसा देश जङ्गल जानना चाहिये उसी का जाङ्गल जानना चाहिये॥ २३॥ बहुत जल बहुत वृक्ष वात कफ रोगसे युक्त॥ ऐसा अनूप देश प्रसिद्ध है वहां का जल आनूप है॥ २४॥

मिश्र चिन्हस्तु यो देशः सहि साधारणः स्मृतः॥ ज
स्मिन्देशे यदुदकं तत्तु साधारणं स्मृतम् ॥ २५॥ जा
ङ्गलं सलिलं रूक्षं लवणं लघु पित्तकृत्॥ वन्हि क
न्कफकृत्पथ्यं विकारान् हरते बहून् ॥ २६॥

भा० और मिले हुवे लक्षण वाला जो देश है वोह साधारण कहाहै ॥ उस देश में जोजल होता है वोह साधारण कहाहै ॥२५॥ जाङ्गल जल रूखा नमकीन हलका पित्त नाशक ॥ अग्नि को करनें वाला कफ को करने वाला हृद्य और बहुत से विकारों को हरता है ॥ २६ ॥

आनूपं वार्य्यभिष्यन्दि स्वादु स्निग्धं घनं गुरु ॥ वन्हिकृत्कफ कृत् हृद्यं विकारान् हरते बहून् ॥ २७ ॥ साधारणन्तु मधुरं दीपनं शीतलं लघु ॥ तर्पणं रोचनं तृष्णा दाह दोष त्रय प्रणुत् ॥ २८ ॥

अथ भौमानामेव नादे यादीनां लक्षणानि गुणाश्च ॥

भा० अनूप जल अभियन्दि होताहै और मधुर चिकना घन भारी होताहै ॥ अग्नि को करनें वाला कफ़ कारी हृद्य तथा बहुत से रोगों को हरता है ॥२७॥ साधारण जल मधुर दीपन शीतल हलका ॥ तर्पण रोचन होताहै और तृषा दाह तीनों दोष इनका नाशक है ॥ २८॥ अनन्तर भूमि के हीनदियों के जलों का लक्षण और गुण ॥

तत्र नादेयस्य लक्षणं गुणाश्च ॥

नद्या नदस्य वा नीरं नादेय मिति कीर्त्तितम् ॥ नादेयमुदकं रूक्षं वातलं लघु दीपनम् ॥ २९ ॥ अनभिष्यन्दि विशदं कटुकं कफ पित्त नुत् ॥ नद्यः शीघ्र वहाः लघ्व्यः सर्वा याश्चामलोदकाः ॥ ३० ॥ गुर्व्यः शैवल सञ्छन्ना मन्दगाः कलुषाश्च याः ॥

भा० नदका अथवा नदी का जोजल है उसको नादेय ऐसा कहाहै ॥ नादेय जल रूखा वात को करनें वाला हलका दीपन ॥ २९॥ अनभिष्यन्दि विशद कटुक कफ पित्त का नाशक होताहै ॥ शीघ्र बहनें वाली और स्वच्छ उदक वाली सब नदिया हलकी होताहैं ॥३०॥ सेवार मेंढकी मन्द चलनें वाली औरजो काली हो-

तीहै वोह भारी है ॥ हिम वत्प्रभवाः पथ्यो नद्यो ऽश्माहृ तपाथ्सः ३१

॥ गङ्गा शत द्रुसरयू यमु नाद्या गुणो त्तमाः ॥ सह्यःशैल

भवा नद्यो वेणा गोदा वरी मुखाः ॥ ३२॥ कुर्वन्ति प्रायः

शः कुष्ठ मीष द्वात कफा वहाः ॥ नदी सरस्तडा गस्थे कू

प प्रस्त्रव णा दिजे ॥ ३३॥ उदके देश भेदेन गुणान्दो

षांश्च लक्षयेत् ॥ अथौ द्भिदस्य लक्षणं गुणा श्च ॥

विदार्य्य भूमिं निम्नाय महत्या धारया स्रवेत् ॥ तत्तो ऽ

य मौद्भिदं नाम वदन्तीति महर्षयः ॥ ३४॥ औद्भि

दं वारि पित्त घ्नम विदाह्यति शीत लम् ॥ प्रीणनं म

धुरं बल्यमी ष द्वात करं लघु ॥ ३५॥

नैर्झरस्य लक्षणं गुणा श्च ।

भा० हिमालय से निकली और पाषाण से हत जल वाली नदिया हित हैं ॥ ३१

गङ्गा शत द्रुज सरयू यमुना आदि गुण में उत्तम है ॥ सह्य पहाड़ से निकली वे

णा गोदा वरी गु ख हैं ॥ ३२॥ प्रायः कुष्ट को करती है और कुछ वात क

फ को भी करती है ॥ नदी सरो वर तालाव इनका और कूंवा झरना आदि के

॥ ३३॥ जलोंमें देश भेद से गुण दोषों को जानें। अनन्तर औ द्भिद का लक्ष

ण और गुण। भूमि को ढाल वा खन के वड़ी धारसे जो जल गिरता है ॥ उस

जल को औद्भिद ऐसा महर्षि योंने कहा है ॥ ३४॥ औ द्भिद जलज पित्त नाश

क अवि दाहि अति शीतल होता है ॥ और प्रीण न मधुर वलके हित थोड़ा

वात को करनें वाला हलका होताहै ॥ ३५॥

अनन्तर झरनेंके जलका लक्षण और गुण कहेते हैं ॥

शैल सानु स्रव द्वारि प्रवाहे निर्झरो झरः ॥ स तु प्रस्र

वण श्चापि तत्रत्यं नैर्झरं जलम् ॥ ३६॥

नैर्झरं रुचि कृन्तीरं कफघ्नं दीपनं लघु॥ मधुरं कटुपा-
कञ्च वातं स्यादपि पित्त लम्॥ ३७॥

अथ सारसस्य लक्षणं गुणाश्च।

नद्याः शैलादि रुद्धाया यत्र संश्रुत्य तिष्ठति॥ तत्सरो
जल सञ्छन्नं तदम्भः सारसं स्मृतम्॥ ३८॥ सारसं
सलिलं बल्यं तृष्णाघ्नं मधुरं लघुः॥ रोचनन्तु वरं
रूक्षं वद्ध मूत्र मलं स्मृतम्॥ ३९॥

अथ ताडागस्य लक्षणं गुणाश्च।

भा० पहाडी तराई से झिरनें वाला जल प्रवाह से जो आताहै उसको निर्झर ॥ और प्रस्रवण भी कहेते है। उसमें का पानी नैर्झर है ॥ ३६॥ झरनें का पानी रुचि को करनें वाला कफ नाशक दीपन हलका॥ मधुर पाक में कटु वात तथा पित्त को करनें वालाहै॥ ३७॥ अनन्तर सारस का लक्षण और गुण। पहाड़ आदि से रुकी हुई नदी का जल जहां पर बहे कर ठहरता है॥ वोह आच्छादित सरो जल है उसका पानी सारस कहाहै॥ ३८॥ सारस जल बलदे हित तृषा नाशक मधुर हलका॥ रोचनक सेला रूखा मल मूत्र को रोकने वाला कहा है॥ ३९॥ अनन्तर तालाव के जल का लक्षण और गुण।

प्रशस्त भूमि भागस्थो वहु संवत्सरोषितः॥ जलाशय
स्तडागः स्यात्ताडागं तज्जलं स्मृतम्॥ ४०॥ ताडागमु
दकं स्वादु कषायं कटु पाकि च॥ वातलं वद्ध विरा मूत्र
मस्रुक् पित्त कफापहम्॥ ४१॥

वाप्य लक्षणं गुणाश्च॥

भा० प्रशस्त भूमि भागका वहुत वरस का पुराना जलाशय॥ तालाव होता है उसका पानी ताड़ाग कहाहै॥ ४०॥ तालावका पानी मधुर कसेला पाक में

कटु॥ वातल मल मूत्र को बान्धनें वाला॥ और रक्त पित्त कफ़ इन का नाशक है॥४१॥ अनन्तर वावडी का लक्षण और गुण॥

पाषाणे रिष्ट का भिर्वा बद्धः कूपो वृहत्तरः॥ ससो पा
ना भवे द्वापी तज्जलं वाप्य मुच्यते॥४२॥ वाप्यं वारि
यदि क्षारं पित्त कृत् कफ़ वात हृत्॥ तदेव मिष्टं क
फ कृत् वात पित्त हरं भवेत्॥४३॥

अथ कौपस्य लक्षणं गुणा श्च।

भूमौ खातो ऽल्प विस्तारो गम्भीरो मण्डलाकृतिः॥
बद्धोऽबद्धः स कूपं स्यात्त दम्भः कौप मुच्यते॥४४॥
कौपं पयो यदि स्वादु त्रिदोषघ्नं हितं लघु॥ तत् क्षारं
कफ़ वातघ्नं दीपनं पित्त कृत्परम्॥४५॥

भा० पथ्थर अथवा इटोंसे बहुत वड़ा बनाया हुवा कूवां॥ सीढियोंके सहित वोह वावडी है और उसके जलको वाप्य कहेते हैं॥४२॥ वावडी का पानी यदि खारी हो वे तो वोह पित्त करनें वाला कफ़ वात का नाशक होताहै॥ वोही मीठा कफ़ करनें वाला वात पित्त का नाशक होताहै॥४३॥ अनन्तर कुवेके जलका लक्षण और गुण। भूमि में थोड़ा चौडा गहेरा गोल खोदा हुवा॥ बन्धा वा वे बन्धा हुवा वो कूप है उस्का जल कौप कहाहै॥४४॥ कूवें का पानी यदि मधुर होतो त्रिदोष नाशक हलका हित होताहै॥ और वोह खारी कफ वात का नाशक दीपन अत्यन्त पित्त करनें वाला है॥४५॥

अथ चौञ्ज्यस्य लक्षणं गुणा श्च।

शिला कीर्णं स्वयं श्वभ्रं नीलाञ्जन समोदकम्॥ ल-
ता वितान सं छन्नं चौञ्ज्य मित्य भिधीयते॥४६॥
अश्मादि भिर बद्धं यत्तच्चौञ्ज्य मिति वा परे॥

तत्र त्य मुदकं चौञ्ज्यं मुनि भिस्त दुदा हृतम् ॥ ४७ ॥
चौञ्ज्यं वन्हि करं नीरं रूक्षं कफ हरं लघु ॥ मधुरं पित्त
नु द्रुच्यं पाचनं विशदं स्मृतम् ॥ ४८ ॥

अथ पल्वलस्य लक्षणं गुणा श्च

अल्पं सरः पल्वलं स्यादत्र चन्द्र र्क्षगे रवौ ॥ (क)
रवौ सूर्य्ये चन्द्र र्क्षगे कर्करा शिस्थे श्रावणे मासि इति
यावत् ।१। चन्द्र र्क्षे मृग शिर स्तन गे मुख्य पाठः ।
न तिष्ठन्ति जलं किञ्चि त्तत्रत्यं वारि पाल्वलम् ॥ पा
ल्वलं वार्य्यभिष्यन्दि गुरु स्वादु त्रिदोष कृत् ॥ ४९ ॥

अथ चिकिरस्य जलस्य लक्षणं गुणा श्च ।

भा० अनन्तर चौञ्ज्ञ का लक्षण और गुण । शिला ओंसे आकीर्ण खुद गहा हुवा नीला सुर में के समान उदक ॥ लताओं के फैलाव से ढका हुवा चौञ्ज्य ऐसा कहाहै ॥ ४६ ॥ और आचार्य पथ्थर आदि से वन्धे हुवे को चौञ्ज्य ऐसा कहेते है ॥ उसमें के जल को चौञ्ज्ञ ऐसा मुनि योंने कहाहै ॥ ४७ ॥ चौञ्ज्य जल अग्नि को करनें वाला रूखा कफ़ नाशक हलका ॥ मधुर पित्त नाश क रुचि को करनें वाला पाचन विशद कहाहै ॥ ४८ ॥ अनन्तर पल्वल का लक्षण और गुण ॥ श्रावण मासमें छोटी गढई ॥ जो होती है उसकी पल्वल कहतेहैं ॥ (क) कर्क राशि स्थ सूर्य्य में अर्थात् श्रावण मासमें । चन्द्रर्क्ष अर्थात् मृग शिर उसमें हुवा येह मुख्य पाठ है । नही रहेता जल कुछ भी उसमें का जल पाल्वल है ॥ गढई का जल अभि ष्यन्दि भारी मधुर त्रिदोष करनें वाला है ॥ ४९ ॥ अनन्तर चिकिर के जल का लक्षण और गुण ॥

नद्यादि निकटे भूमिर्या भवे द्वालुकामयी ॥ उद्धा र्यते
ततो यत्तु तज्जलं चिकिरं विदुः ॥ ५० ॥

चिकिरं शीतलं स्वच्छं निर्दोषं लघु च स्मृतम् ॥ तुवरं स्वादु पित्तघ्नं क्षारं नाति तलं मनाक् ॥५१॥

अथ केदारस्य लक्षणं गुणाश्च ॥

केदारं क्षेत्र मुद्दिष्टं केदारं तज्जलं स्मृतम् ॥ केदारं वार्य्यभिष्यन्दि मधुरं गुरु दोष कृत् ॥ ५२॥

अथ वृष्टि जलस्य लक्षणं गुणाश्च ॥

भा० नदी आदि के निकट जो रेत की जमीन होतीहै ॥ उस्से जो जल निकलताहै उस जलको चिकिर कहेते है ॥५०॥ चिकिर शीतल स्वच्छ निर्दोष हलका कहाहै ॥ कसेला मधुर पित्त नाशक खारी और वोह थोड़ा पित्त को करनें वाला है ॥५१॥ अनन्तर केदार का लक्षण और गुण । केदार खेत को कहते हैं औरउसं के जलको केदार कहाहै ॥ केदार जल अभिष्यन्दि मधुर भारी दोष को करनें वाला है ॥ ५२॥ अनन्तर वारिश के जल का लक्षण और गुण ॥

वार्षिकं नद हृ दृष्टं भूमिस्थ महितं जलम् ॥ त्रिरात्र मुषितं तत्तु प्रसन्न ममृ तोपमम् ॥५३॥

अथ हेमन्तादि काल विशेषे विहित जल विशेषः ॥

हेमन्ते सार सन्तोयं ताड़ागं वा हितं स्मृतम् ॥ हेमन्ते विहितं तोयं शिशिरेऽपि प्रशस्यते ॥ ५४ ॥ वसन्त ग्रीष्म योः कौपं वाप्यं वा नैर्झरं जलम् ॥ नादेयं वारि नादेयं वसन्त ग्रीष्म यो र्बुधैः ॥५५॥

भा० दिनका वरसा हुवा जमीन का जो जल है वोह वार्षिक है वोह अहित होता है ॥और तीन दिन का रक्खा हुवा वोह स्वच्छ अमृत के समान होता है ॥ ५३॥ अनन्तर हेमन्तादि काल विरोध में विहित जल विषय को कहेते हैं ॥ हेमन्त में सारस जल अथवा तालाब का हित कहाहै ॥ हेमन्त में कहा हुवा जल

शिशिर में भी प्रशस्त है ॥ ५४॥ वसन्त ग्रीष्म में कुवें का बावड़ी का झरनें का ज
ल ॥ वसन्त और ग्रीष्म काल में नदी का जल न देवे ॥ ५५॥

विषवद्वनवृक्षाणां पत्राद्यै र्दूषितं यतः॥ औद्भिदं वा
न्तरीक्षं वा कौपं वा प्रावृषि स्मृतम् ॥ ५६ ॥ प्रास्तं शरदि
नादेयं नीरमंशूदकं परम् ॥ दिवा रविकरैर्जुष्टं निशि
शीतकरांशुभिः॥ ५७॥ ज्ञेयमंशूदकन्नाम स्निग्धं
दोषत्रयापहम् ॥ अनभिष्यन्दि निर्दोषमान्तरी
क्षं जलोपमम् ॥ ५८॥ बल्यं रसायनं मेध्यं शीतं ल
घु सुधासमम् ॥ (कं)

भा॰ क्योंकि विष वाले वन वृक्षों के पत्र आदि से दूषित होताहै ॥ औद्भिद आन्तरिक्ष कौप येह जल प्रावृट काल में कहेहैं ॥५६॥ शरद में नदी का और अंशूदक जल परम प्रशस्त है ।दिन में सूर्य की किरणों से जुष्ट और रात में चन्द्र की किरणों से सेवित ॥५७॥ को अंशूदक नाम जानना चाहिये वोह चिकना दोषत्रय का नाशक है ॥ और अनभिष्यन्दि दोष रहित आन्तरिक्ष जल के समान होताहै ॥५८॥ बल के हित रसायन मेध्य शीतल हलका अमृत के समान होताहै॥ (क)

रविकरैर्जुष्टमित्युक्ते दिवापदं समस्तदिवसप्राप्त्य
र्थं शीतकरांशुभिर्जुष्टमित्युक्ते निशीथिपदं समस्तरा
त्रिप्राप्त्यर्थम् अन्यच्च शरदि, स्वच्छमुदयादग
स्त्यस्याखिलं हितम् ॥ वृद्धसुश्रुतस्तु ॥
पौषे वारि सरो जातं माघे तत्तु तडागजम् ॥ फाल्गुने
कूपसम्भूतं चैत्रे चौंड्यं हितं मतम् ॥५९॥

भा॰ सूर्य की किरणों से जुष्ट इस प्रकार के कहेनें से दिवा पद समस्त दिवस

की
प्राप्ति के अर्थ है ॥ चन्द्र किरणों से जुष्ट इस प्रकार के कहेनें से रात्रि पद समस्त रात्रि प्राप्त्यर्थ है और भी। शरद में, स्वच्छ अगस्ति के उदय से संपूर्ण जल हित है ॥ वृद्ध सुश्रुत नें कहा है। पौष में सरोवर का पानी माघ में तालाव का पानी। ॥ फाल्गुण में कुंवें का पानी चैत्र में जोहड़ का पानी हित कहा है ॥ ५९ ॥

वैशाखे नैर्झरं नीरं ज्येष्ठे शस्तन्तथोद्भिदम् ॥ आषाढे शस्यते कौपं श्रावणे दिव्य मेव च ॥ ६० ॥ भाद्रे कौप्यं पयः शस्तम् आश्विने चौड्य मेव च ॥ कार्त्तिके मार्ग शीर्षे च जल मात्रं प्रशस्यते ॥ ६१ ॥

जल ग्रहण कालः। भौमा नामम्भ सां प्रायो ग्रहणं प्रातरिष्यते ॥ शीतत्वं निर्मल त्वञ्च यतस्ते यां मतो गुणः ॥ ६२ ॥ अथ जलस्य पान विधिः ॥

भा० वैशाख में झरनें का जल और ज्येष्ट में औद्भिद प्रशस्त है ॥ आषाढ में कुंवें का और श्रावण में आन्तरिक्ष प्रशस्त है ॥ ६० ॥ भाद्र पद में कुंवें का जल। प्रशस्त होता है आश्विन में चौड्य ॥ और कार्तिक मार्ग शीर्ष में जल मात्र प्रशस्त है ॥ ६१ ॥ जल ग्रहण का काल ॥ प्रायः भूमि के जल का ग्रहण प्रातः काल प्रशस्त है ॥ क्योंकि शीतल ता और निर्मल ता उनका गुण है इस वास्ते ॥ ६२ ॥ अनन्तर जल पान की विधि ॥

अत्यम्बु पानान्न विपच्यते ऽन्नं निरम्बु पानाच्च स एव दोषः ॥ तस्मान्नरो वह्नि विवर्द्धनाय मुहुर्मुहु र्वारि पिबेद भूरि ॥ ६३ ॥ अथ शीतल जल पानस्य विषयाः ॥

मूर्च्छा पित्तोष्ण दाहेषु विषे रक्ते मदात्यये ॥ श्रमे भ्रमे विदग्धे ऽन्ने तमके वमथौ तथा ॥ ६४ ॥ ऊर्द्ध्वगे रक्त पित्ते च शीत मम्बु प्रशस्यते ॥

भा० अधिक जलके पीनें से अन्न परि पाक नहीं होता औरजलके पीनें से वो। ही दोष होताहे ॥ इस वास्ते मनुष्य अग्नि वृद्धि के अर्थ जल को वार वार पीवे॥ ६३॥ अनन्तर-शीतल जल पानका विषय। मूर्च्छा पित्त उष्णा दाह में। और विष रक्त मदात्यय ॥ श्रम भ्रम विदग्ध अन्न तमक में तथा वमन में॥ ६४॥ ऊर्द्ध्वगरक्त पित्त में भी शीतल जल प्रशस्त हे ॥

अथ तन्निषेधः। पार्श्व शूले प्रति श्याये वातरोगे ग- लग्रहे ॥ आध्माने स्तिमिते कोष्ठे सद्यः शुद्धौ नव ज्वरे ॥ ६५॥ अरुचि-ग्रहणी-गुल्म श्वास-कासेषु विद्र। धौ ॥ हिक्कायां स्नेह पाने च शीताम्बु परिवर्जयेत् ॥ ६६॥

अथाल्पजल पानस्य विषयः

भा० अनन्तर उसका निषेध। पार्श्व शूल में प्रति श्याय में वात रोग में गल्न। ग्रह में ॥ आध्मान मेंस्तिमित कोष्ठ में सद्यः शुद्धि में नव ज्वर में ॥ ६५॥ और। अरुचि संग्रहणी वाय गोला श्वास कास इनमें विद्रधि में हिचकी में स्नेह पान में, भी शीतल जल त्याग देवे ॥ ६६॥ अनन्तर अल्पजल पान का विषय ॥

अरोचके प्रति श्याये मन्दे ऽग्नौ श्वयथौ क्षये ॥ मुख प्रसेके जठरे कुष्ठे नेत्रा मये ज्वरे ॥ ६७॥ व्रणे च मधु। मेहे च पिबेत्पानी य मल्प कम् ॥

जल पानस्यावश्यकता ॥

जीवनं जीविनां जीवो जगत्सर्वन्तु तन्मयम् ॥ अतो ऽत्य न्त निषेधेन कदा चिद्वारि वार्य्यते ॥ ६८॥ हारी तम्प्र। तृष्णा गरीयसी घोरा सद्यः प्राण विनाशिनी ॥

भा० अरुचि प्रति श्याय मन्दाग्नि सूजन क्षय ॥ मुख प्रसेक उदर रोग कुष्ठ नेत्र रोग ज्वर ॥ ६७॥ व्रण में मधुप्रमेह मेंभी थोड़ा जल पीवे ॥ जल पानकी अवश्यक

ता ॥ जल प्राणियोंका प्राण है और संपूर्ण जगत तन्मय है ॥ इस वास्ते अत्य न्त निषेध में भी जल कदाचित भी विलकुल मना नहीहै ॥ ६८॥ हारीत ने कहाहै ॥ वडी तृषा घोर सद्यः प्राण को नाश करनें वाली है ॥

तस्मा द्देयं तृषा र्त्ताय पानीयं प्राण धार णम् ॥ ६९ ॥
तृषितो मोह मायाति मोहा त्प्राणान् विमुञ्चति ॥ अ
तः सर्वा स्ववस्था सुन क्वचि द्वारि वर्ज येत् ॥ ७० ॥
अथ प्रशस्तं जलम् । अगन्ध मव्यक्त रसं सुशीतं
तर्ष नाश नम् ॥ अच्छं लघु च हृद्य ञ्च तोयं गुण व
दुच्यते ॥ ७१ ॥ अथ निन्दि त जलम् ॥
पिच्छिलं कृमिलं क्लिन्नं पर्ण शैवाल कर्द्दमैः ॥ विव
र्णं विरसं सान्द्रं दुर्गन्धं निहितं जलम् ॥ ७२ ॥ कलु
षं छन्नं मम्भोज पर्ण नीली तृण दिभिः ॥

भा० इस वास्ते तृषा के पीड़ित के अर्थ जल प्राण धारण है ॥ ६९॥ प्यासा मोह को प्राप्त होताहै मोहसे प्राणों को छोड़दे ताहै ॥ इस वास्ते सब अवस्था में कही पर जल को न त्याग देवे ॥ ७०॥ अनन्तर प्रशस्त जल ॥ गन्ध रहित अव्यक्त रस अच्छा शीतल तृषाका नाशक ॥ स्वच्छ हलका और हृद्य ऐसा जल अच्छा कहा है ॥ ७१॥ अनन्तर निन्दित जल ॥ पिच्छिल कृमि युक्त और पत्ता से वालकी चड़ इनसे सड़ा हुवा ॥ विवर्ण विरस गदला दुर्गन्ध युक्त रक्खा हुआ जल ॥ ७२ काला और कमल पत्ते नील तृण आदि योंसे ढका हुवा ॥

दुः स्पर्श नम संस्पष्टं सौर चान्द्र मरी चिभिः ॥ ७३ ॥
अनार्त्तवं वार्षिकन्तु प्रथमं तच्च भूमि गम् ॥ व्यापन्नं प
रि हर्त्तव्यं सर्व दोष प्रको पणम् ॥ ७४ ॥ तत् कुर्य्यात्
स्नान पानाभ्यां तृष्णा ध्मान चिर ज्वरान् ॥

भा० दुःस्पर्श और सूर्य्य तथा चान्द की किरणो मे स्पर्श किया गया ॥७३॥ वे ऋतु का वारिश्रा का पहिला और वोह ज़मीन परका ॥ व्यापन्न जल त्यागनें योग्य सब दोषों को प्रकोप करनें वालाहे ॥७४॥ वोह स्नान और पान से तृषा आध्मान पुराना ज्वर इन को करता है ॥

कासाग्नि मान्द्या भिष्यन्दक एडु गराडा दिकं तथा ॥७५

अथ दुष्ट जलस्य निर्द्दोषी करणो पायः ॥ ॥

निन्दि तञ्चापि पानीयं क्वथितं सूर्य्यतापितम् ॥ सुव र्णं रजतं लोहं पाषाणं सिकता मपि ॥७६॥ भृशं स न्ताप्य निर्वाप्य सप्तधा साधितं तथा ॥ कर्पूर जाति पु न्नाग पाटलादि सुवा सितम् ॥७७॥ शुचि सान्द्र पट स्राविक्षुद्र जन्तु विवर्जितम् ॥

भा० और कास अग्नि मान्द्य अभि ष्यन्द कंडू तथा गंडादिक इनको करता है ॥७५॥ अनन्तर दुष्ट जल को निर्दोष करनें का उपाय ॥ निन्दित भी जल औटाया हुवा और सूर्य्य के द्वारा गरम हुवा ॥ तथा सोना चान्दि लोहा पथ्थर और सिकता भी इनको ॥७६॥ खूब गरम करके सात वार बुझा कर तथा सिद्ध किया हुवा और कपूर चमेली सुफेद कमल और पाढला आदि से सुवासित ॥७७॥ पवित्र सान्द्र छना हुवा क्षुद्र जन्तु से रहित ॥

स्वच्छं कनक मुक्ता द्यैः शुद्धं स्याद्दोष वर्जितम् ॥७८॥ पर्णीमूल विष ग्रन्थि मुक्ता कनक शैवलैः ॥ गोमेदेन च वस्त्रेण कुर्य्या दम्बु प्रसा दनम् ॥७९॥

अथ पीतस्य जलस्य पाक विधिः।

पीतं जलं जीर्य्यति याम युग्मा त्तु यामैक मात्रात्शृत शी त स्वच्छ ॥ तदर्द्ध मात्रेण शृतं कदुष्णं पयः प्रपाके त्व

ये एव कालाः ॥ ८०॥

इति श्री भावप्रकाशे वारि वर्गः।

भा० स्वच्छ सोना मोती आदिसे शुद्ध दोष वर्जित होताहे ॥ पन्ने मूल विय गांठ मोती सोना सेवाल इनसे॥ और गोमेद तथा वस्त्र से जलको स्वच्छ करे॥७९॥ अनन्तर पीये हुवे जल की पाक विधि। पीया हुवा जल दो पहर में पकताहे और औटाके शीतल किया हुवा एक पहर में पचताहे ॥ उसके ऊपर औटे मात्र से जल कडु उष्ण होताहै जल के पाक में तीन ही कालहे ॥८०॥

इति भाव प्रकाशे जल वर्गः ॥ ॥

अथ दुग्ध वर्गः।

दुग्धस्य नाम गुणाः।

दुग्धं क्षीरं पयः स्तन्यं बालजीवन मित्यपि ॥ दुग्धं सुमधुरं स्निग्धं वात पित्त हरं सरम् ॥१॥ सद्यः शुक्र करं शीतं सात्म्यं सर्व शरीरि णाम् ॥ जीवनं बृंहणं बल्यं मेध्यं वाजि करं परम् ॥२॥

भा० अनन्तर दुग्धवर्गः ॥ दुग्धके नाम और गुण ॥ दुग्ध क्षीर पयः स्तन्य बाल जीवन येह दूध के नाम हे ॥ दूध मधुर चिकना वात पित्त का नाशक सर ॥१॥ ततकाल शुक्र को करनें वाला शीतल सब शरीरोयोंको सात्म्य होताहे॥जीवन पुष्ट बलको करनें वाला परम वाजि कर ॥ २ ॥

वयः स्थापन मायुष्यं सन्धि कारि रसायनम् ॥ विरेकवान्ति वस्तीनां तुल्य मोजो विवर्द्धनम् ॥ ३॥ जीर्ण ज्वरे मनो रोगे शोष मूर्च्छा भ्रमे षुच ॥

ग्रहण्यां पाण्डु रोगे च दाहे तृषि हृदा मये ॥ ४ ॥ शूलो
दावर्त्त गुल्मे षु वस्ति रोगे गुदाङ् कुरे ॥ रक्त पित्तेऽति
सारे च योनि रोगे श्रमे क्लमे ॥ ५ ॥ गर्भ स्रावे च सततं ।
हितं मुनि वरैः स्मृतम् ॥ बाल वृद्ध क्षत क्षीणाः क्षुद्
व्यवाय कृशा श्च ये ॥ ६ ॥ तेभ्यः सदा ति शयितं हित
मेत दुदा हृतम् ॥ अथ गोदुग्ध स्य गुणाः ॥

भा० वयः स्थापन आयु को करनें वाला सन्धि कारि रसायन है ॥ और विरेक वमन व स्ति इनको तुल्य ओजको बढ़ानें वाला ॥ ३ ॥ जीर्ण ज्वर मान सिक रोग शोष मूर्च्छा भ्रम इनसें भी ॥ और ग्रहणी पांडु रोग दाह और तृषा इनसें तथा हृद रोगमें ॥ ४ ॥ शूल वदावर्त्त गुल्म इनमें वस्ति रोगमें गुदा ङ् कुरमें रक्त पित्त में अति सार में योनि रोगमें श्रममें क्लम में ॥ ५ ॥ गर्भ स्राव में भी हितहै ए सा मुनि वरों नें कहाहै ॥ बाल वृद्ध क्षत क्षीण क्षुधा मैथुन इनसें जो कृश हैं ॥ ६ ॥ उनको सदा अति शय करकेयेह हित कहाहै ॥ अनन्तर गो दुग्ध का गुण ॥

गव्यं दुग्धं विशेषेण मधुरं रस पाकयोः ॥ शीतलं स्तन्य कृ
त् स्निग्धं वात पित्ता स्रना शनम् ॥ ७ ॥ दोष धातु मल स्रो
तः किञ्चित् क्लेद करं गुरु ॥ ज्वरा समस्त रोगाणां शा
न्ति कृत् सेवि नां सदा ॥ ८ ॥ वर्ण विशेषे गुण विशेषाः ॥
कृष्णा या गोर्भवं दुग्धं वात हारि गुणा धि कम् ॥ पीता
या हरते पित्तं तथा वात हरं भवेत् ॥ ९ ॥ श्लेष्मलं गुरु ।
शुक्लाया रक्त चित्रा च वात हृत् ॥

भा० गाय का दूध विशेष करके रस पाक में मधुर कहाहै ॥ और शीतल दुग्ध को करनें वाला चिकना वात रक्त पित्त इनका नाशक है ॥ ७ ॥ दोष धातु मल स्रोत किंचित क्लेद को करनें वाला भारी ॥ सदा सेवन करनें वालों केज्वर और सम-

स्त रोगों की शान्ति करनें वाला है ॥ ८॥ अनन्तर वर्ण विशेष में गुण विशेष को कहेते है ॥ काली गाय का दूध वात नाशक गुण में अधिक हे ॥ पीली ॥ का दूध पित्त को नाश करता है तथा वात हरभी हे ॥९॥ सुफेद गायका दूध कफकारि भारी और लाल चित कबरी का भीवात नाशक होताहे ॥

अथ धेनो विवत्सा याश्च गुणाः।

बालवत्स विवत्सानां गवां दुग्धं त्रिदोष कृत् ॥

वके नीगो गुणाः । वक्क यिरया स्त्रि दो यघ्नं तर्पणं ब-

ल कृत पयः ॥ अथ देश विशेयेण गुण विशेयः ॥

जाङ्गलो नू पशैलेषु चरन्तीनां यथो त्तरम् ॥ पयो गुरु

तरं स्नेहो यथा हारं मवर्त्तते ॥ १०॥

अथा हार विशेषे गुणविशेयः ॥

भा० वेवच्चे वाली गायके दूध का गुण ॥ छोटे बच्चे वाली और वे बच्चे वाली गायों का दूध त्रिदोष को करनें वाला है ॥ वकेनी गायके दूधका गुण ॥ वकेनी ॥ का त्रिदोष नाशक तर्पण वल को करनें वाला दूध होताहे ॥ अनन्तर देश विशेष करके गुण विशेष को कहेते है ॥ जाङ्गल आनूप पहाड़ इनमें चरनें वालियों का दूध यथो त्तर ॥ बहुतभारी होता है और घृत आहार के अनुसार निकलताहे ॥ १०॥ अनन्तर आहार विशेष में गुण विशेष ॥

स्वल्पान्न भक्षणा ज्जातं क्षीरं गुरु कफ प्रदम् ॥ तत्तु ब

ल्यं परं हृद्यं स्वस्थानां गुण दाय कम् ॥ ११ ॥ पला-

ल तृण कार्पास वीज जातं गुरौ हितम् ॥

अथ माहिषी दुग्धस्य गुणाः।

माहिषं मधुरङ्ग व्यात् स्निग्धं शुक्र करं गुरु ॥ निद्रा

करम भिष्यन्दि क्षुधा धिक्य करं हिमम् ॥ १२॥

भा० स्वल्प अन्न भक्षण से हुवा क्षीण भारी कफ़ को करनें वाला होताहै ॥ वीर्य बल के हित अत्यन्त शुक्र को करनें वाला और स्वस्थों को सुख देने वाला है ॥ ११॥ खल घास कपास के बीज इनके खानें से हुवा दूध गुण करके हित होताहै ॥ अनन्तर भैंस के दूधका गुण। भैंस का दूध मधुर गायके से चिकना शुक्र को करनें वाला भारी ॥ निद्राको करनें वाला अभिष्यन्दि अधिक क्षुधाको करनें वाला शीतल ॥ १२॥

छागी दुग्धस्य गुणाः।

छागं कषायं मधुरं शीतं ग्राहि तथा लघु ॥ रक्त पित्तातिसारघ्नं क्षय कास ज्वरा पहम् ॥ १३॥ अजानामल्पकाय त्वात् कटु तिक्त निषे वणात् ॥ स्तोकाम्बु पाना व्यायामात् सर्व रोगा पहं पयः ॥१४॥

मृगादि दुग्धस्य गुणाः

मृगीनां जाङ्गलोत्थानाम् अजा क्षीर गुणं पयः ॥ भेडी दुग्ध गुणाः। आविकं लवणं स्वादु स्निग्धोष्णं त्वश्मरी प्रणुत् ॥ १५॥ अहृद्यं तर्पणं वृष्यं शुक्र पित्त कफ़ प्रदम् ॥ गुरु कासे ऽनिलोद्भूते केवले चानिले वरम् ॥ १६॥ अथ घोड़ी दुग्धं ॥

भा० अनन्तर बकरी के दूधका गुण ॥ बकरी का दूध कसेला मधुर शीतल काबिज तथा हलका होताहै ॥ और रक्त पित्त अतीसार इनका नाशक क्षय कास ज्वर इनका नाशक है ॥१३॥ बकरियों का छोटा शरीर होनें से और कटु तिक्त के सेवन से ॥ थोडा जल पीने से कसरत से उसका दूध सर्वरोग का नाशक है ॥१४॥ अनन्तर मृग आदियों के दुग्ध का गुण ॥ जंगल के मृगो का दूध बकरी के दूध के समान गुणामें होताहै ॥ अनन्तर भेडीके दूधका गुण ॥ भेडी का दूध नमकीन मधुर चिकना गरम और पथरी का नाशक है ॥१५॥ अरुद तर्पण पुष्ट शुक्र पित्त कफ इसको करनें वाला ॥ भारी होताहै और वात

और
के कास में केवल वात मे श्रेष्ठ है॥ १६॥ अनन्तर घोडी का दूध ॥

रूक्षोष्णं वडवा क्षीरं बल्यं शोषा निलापहम्॥
अम्लं पटु लघु स्वादु सर्वमेक शफं तथा॥ १७॥
अथ उष्ट्री दुग्धं। औष्ट्रं दुग्धं लघु स्वादु लवणं दीप
नं तथा॥ क्रमि कुष्ठ कफा नाह शोथो दर हरं सरम्॥
१८॥ हस्तिनी दुग्धं ॥ वंहणं हस्तिनी दुग्धं मधुरन्तुव
रं गुरु ॥ वृष्यं बल्यं हिमं स्निग्धं चक्षुष्यं स्थिरता क
रम्॥ १९॥ अथ नारी दुग्धं ॥

भा० घोड़ी का दूध रूखा गरम बलके हित शोष वात का नाशक॥ खट्टा ल
वण हलका मधुर वैसेही सब एक शफ वालों का होताहै ॥१७॥ अनन्तरऊं
टनी का दूध ॥ ऊंटनी का दूध हलका मधुर लवण तथा दीपन ॥और क्र
मि कुष्ठ कफ़ अफारा सूजन उदर रोग इनका नाशक सर होताहै ॥१८॥
अनन्तर हथनी का दूध ॥ हथनी का दूध मधुर कसैला भारी॥ शुक्र को क
रनें वाला बलके हित शीतल चिकना नेत्र के हित स्थिरता को करनें वाला हो
ताहै॥१९॥ अनन्तर स्त्री दुग्ध ॥

नार्य्या लघु पयः शीतं दीपनं वात पित्त जित्॥ चक्षुः
शूलाभि घातघ्नं नस्या श्च्योतन योर्वरम्॥ २०॥

अथ धारोष्णादि गुणाः

धारोष्णं गोपयो बल्यं लघु शीतं सुधा समम्॥ दी
पनञ्च त्रिदोषघ्नं तद्धारा शिशिरं त्यजेत्॥ २१॥

भा० स्त्री का दूध हलका शीतल दीपन वात पित्त को जीतनें वाला॥ नेत्र शूल
अभिघात इनका नाशक और नस्य आश्च्योतन में श्रेष्ठ है॥२०॥ अनन्तर
धारोष्ण आदिका गुण॥ धारोष्ण गायका दूध बलके हित हलका शीतल

अमृत के समान होताहै ॥ और दीपन त्रिदोष नाशको होताहै ॥ और दो ह धारा शिशिर न सेवन करै ॥ २१ ॥

धारोष्णं शस्यते गव्यं धारा शीतन्तु माहिषम् ॥ शृतो ष्ण माविकं पथ्यं शृत शीत मजा पयः ॥ २२॥ आ मं क्षीर मभि ष्यन्दि गुरु श्लेष्मा म वर्द्धनम् ॥ ज्ञेयं सर्व मपथ्यन्तु गव्य माहिष वर्जितम् ॥ २३॥ नारी क्षी रन्त्वा म मेव हितं न तु शृतं हितम् ॥ शृतोष्णं कफ वातघ्नं शृतं शीतन्तु पित्त नुत् ॥ २४ ॥ अर्द्धो दकं क्षीर शिष्ट मा मा ल्लघु तरं पयः ॥

भा॰ धारोष्ण गायका हित होताहै और धारा शीत भैंस का अच्छा होताहै ॥ औटाया हुवा गरम भेड़ी का और औटाया हुवा शीतल बकरी का दूध हित होताहै ॥२२॥ कच्चा दूध अभिष्यन्दि भारी कफ आम को बढानें वाला होताहै ॥ गाय और भैंस का दूध छोडके सब अहित है ॥ २३॥ स्त्री का दूध कच्चा ही हितहै नाकि औटाया हुवा हितहै ॥ औटा गरम कफ वात का नाशक और औटा शीतल पित्त नाशक है ॥ २४॥ आधा पानी मिला के बाकी बचा हुवा दूध कच्चे से बहुत हलका होताहै ॥

जले न रहितं दुग्ध मति पक्वं यथा यथा ॥ २५॥
तथातथा गुरु स्निग्धं वृष्यं बल विवर्द्धनम् ॥

अथ पीयूष किलाट क्षीर शाकः तक्र पिण्ड मोर टानां लक्षणानि गुणा श्च ॥

क्षीरं तत्काल सूताया घनपे यूष मुच्यते ॥
पे यूषं पेवस इति लोके ।
नष्ट दुग्धस्य पक्वस्य पिण्डः प्रोक्तः किलाट कः ।

किलाटकः गिजिरी इति लोके ।

अपक्व मेव यन्नष्टं क्षीर शाकं हि तत्ययः ।

क्षीर शाकं तुषि भरा इति लोके ।

दध्ना तक्रेण वा नष्टं दुग्धं बद्धं सुवा ससा ॥ द्रव भा

वेन सहितं तक्र पिण्डः स उच्यते ॥ २६ ॥ नष्ट दु-

ग्धं भवन्नीरं मोरटञ्जे ज्जटो ऽब्र वीत् ॥

भा० जलसे रहित दूध जैसे २ बहुत औंटाया हुवा ॥२५॥ वैसे २ भारी चिकना शुक्रको करनें वाला बलको बढानें वाला होताहै ॥ अनन्तर पीयूष किलाट क्षीर शाक तक्र पिण्ड मोरट इनके लक्षण और गुण ॥ तत् काल बच्चा दी हुई गाय के दूधको पीयूस कहेते हैं ॥ लोक में पेवसक होते है ॥ दूधके पिंड को किलाठ कहाहै ॥ किलाठ गिजरी इस प्रकार लोक में कहेते हैं ॥ कच्चा ही जो फटा हुवा दूध है उसको क्षीर शाक कहेते हैं ॥ इसको लोक में तुषिभरा कहेते हैं ॥ दही अथवा मठे से फटे हुवे दूधको अच्छे कपडे से वान्ध कर ॥ उस द्रव भावके सहित को तक्र पिंड कहेते हैं ॥ २६॥ फटे हुवे दूधके पानी को मोरट जेज्जठ नें कहाहै ॥

पेयूषञ्च किलाटश्च क्षीर शाकं तथैवच ॥ २७ ॥

तक्र पिण्ड इमे वृष्या बृंहणा बल वर्द्धनाः ॥ गुर वः

श्लेष्मला हृद्या वात पित्त विना शनाः ॥ २८॥ दीप्ता-

ग्नीनां विनि द्राणां विद्रधौ चाभि पूजिताः ॥ मुखशो

ष तृषा दाह रक्त पित्त ज्वर प्रणुत् ॥ २९॥

भा० पेयूस किलाट क्षीर शाक ॥२७॥ और तक्र पिण्ड येह वृष्य पुष्ट-बलको बढानें वाले ॥ भारी कफ़को करनें वाले हृद्य वात पित्त के नाशक हैं ॥ २८॥ और दीप्ताग्नि यों को वे नींन्द वालों को और विद्रधि में-श्रेष्ठहै ॥ और मुख शोष तृषा दाह रक्त पित्त ज्वर इनका नाशक है ॥ २९॥

लघु र्बलकरो रुच्यो मोरटः स्यान्सिता युतः॥ सन्ता
निका गुणाः। सन्तानिका साठी ।
सन्तानिका गुरुः शीता वृष्या पित्त स्रवात नुत्॥ तर्प
णी वृंहणी स्निग्धा बला सबल शुक्रला ॥ ३०॥

अथ खण्डादि युक्त दुग्ध गुणाः॥ ॥

खण्डेन सहितं दुग्धं कफ कृत् पवनः पहम्॥ सिता
सितो पला युक्तं शुक्रलं त्रिमला पहम् ॥ ३१॥ गु
डं मूत्र कृच्छ्र घ्नं पित्त श्लेष्म करं परम् ॥

भा० चीनी के सहित मोरट हलका बल कर रुचि को करनें वाला है ॥मला ई के गुण । मलाई भारी शीतल शुक्र को करनें वाली रक्त पित्त बात इनको नाश करनें वाली ॥ तर्पण पुष्ट चिकनी और कफ कबल शुक्र इनको करने वाली है॥ ३०॥ अनन्तर खाण्ड आदि से युक्त दुग्ध का गुण ॥ खांड के सहित दुग्ध कफ़को करनें वाला वात नाशक होताहै॥ चीनी और मिश्री के युक्त शुक्र को करनें वाला त्रिदोष का नाशक है॥ ३१॥ गुडके सहित मूत्र कृच्छ्र का नाश क और परम पित्त कफ़ को करनें वाला है ॥

अथ प्रभातादि भव दुग्ध गुणाः॥

रात्रौ चन्द्र गुणाधिक्याद् व्यायामा करणात्तथा॥
प्रभातिकं तदा प्रायः प्रादोषाद् गुरु शीतलम्॥ ३२॥
दिवाकर करा घातात् व्यायामानल सेवनात्॥ प्राभा
तिकात्तु प्रादोषं लघु वात कफा पहम् ॥ ३३॥

भा० अनन्तर प्रभातादि भव दुग्ध के गुण ॥ रात्रि में चन्द्र गुण की अधिक ता से तथा व्यायाम करनें से ॥ सवेरे का दूध प्रायः सायं काल के से भारी शीतल होताहै ॥ ३२॥ सूर्य्य की किरणों के आघात से और व्यायाम अग्नि

इनके सेवन से॥ सवेरे केस श्याम का हलका वात कफ का नाशक होताहै॥ ३३॥

अथ दुग्ध सेवन समय विशेषे गुण माह ॥

वृष्यं वृंहण मग्नि दीपन करं पूर्वाह्न काले पयो ॥ म-
ध्याह्ने तु बला वहं कफ हरं पित्ता पहं दीप नम् ॥ ३४॥
बाले वृद्धि करं क्षये क्षय करं वृद्धेषु रेतो वहम् ॥ रात्रौ
पथ्य मनेक दोष शमनं क्षीरं सदा सेव्यते ॥ ३५॥

भा० अनन्तर दुग्ध सेवन समय में गुण विशेष को कहेते है॥ पहिले पहर में पीया हुवा दूध शुक्र को करनें वाला पुष्ट अग्नि को दीपन करने वाला॥ और मध्यान्ह में बल करनें वाला कफ नाशक पित्त नाशक दीपन होताहै ॥ ३४॥ बाल अवस्था में वृद्धि करनें वाला क्षय में क्षय कर वृद्ध अवस्थामें शुक्र को करनें वाला और रातमें हित अनेक दोषों को शमन करनें वाला। दूध है इसवास्ते सदा सेवनकिया जाताहै ॥ ३५॥

वदन्ति पेयं निशि केवलं पयो भोज्यं न तेनेह सहौद ना
दिकम् ॥ भवत्य जीर्णो निशि पीत शर्करा क्षीराल्प पानस्य
तु शेष मुत्सृजे त् ॥ ३६॥ विदाही न्यन्य पानानि दिवा।
भुङ्क्ते हि यन्नरः॥ तद्विदाह प्रशान्त्यर्थं रात्रौ क्षीरं स दा
पिबेत् ॥ ३७॥ दीप्तानले कृशे पुंसि वात वृद्धे पयः प्रि
ये ॥ मतं हित तमं पथ्यं सद्यः शुक्र करं यतः ॥ ३८॥

अथ मथि तस्य दुग्धस्य गुणाः।

भा० कहेते हैं कि रातमें केवल दूध पीना चाहिये उसके साथ चावल आदिक नखाने चाहिये॥ अजीर्ण के होनें में रातमें थोड़ा दूध शक्कर पीने वाले के। बाकी सब निकल जाताहै ॥ ३६॥ जिस से मनुष्य विदाहि अन्न पानदिन में भोजन करताहै॥ उस कारण विदाह प्रशान्ति के अर्थ रातमें दूधको सदा पी

वे ॥३७॥ दीप्ताग्नि कृश वात वृद्धि और दुग्ध प्रिय ऐसे पुरुष को ॥ बहुत हित और पथ्य है क्योंकि तत्काल शुक्रको करता है ॥ ३८॥

अनन्तर मथे हुवे दूधका गुण ॥

क्षीरं गव्य मथा जम्वा कोष्णं दण्डा हतं पिबेत् ॥ लघु वृष्यं ज्वर हरं वात पित्त कफा पहम् ॥ ३९॥

अथ गोज गुण ॥

गो दुग्ध प्रभवं किंवा छागी दुग्ध समुद्भवम् ॥ भवे देतत् त्रिदो षघ्नं रोचनं बल वर्द्धनम् ॥ ४०॥

भा० गायका अथवा बकरी का कुछ गरम मथे हुवे को पीवे ॥ और हलका शुक्रको करनें वाला ज्वर नाशक वात पित्त कफ का नाशक है ॥३९॥ गो दुग्ध सेउत्पन्न हुवा अथवा बकरी के दूधसे हुवा ॥ त्रिदोष नाशक रोचन बल को बढ़ानें वाला ॥ ४०॥

वन्हि वृद्धि करं वृष्यं सद्य स्तृप्ति करं लघुः ॥ अती सारे ग्नि मान्द्ये च ज्वरे जीर्णे प्रशस्यते ॥ ४१॥ निन्दितं दुग्धं । विवर्णं विरसं चाम्लं दुर्गन्धं ग्रथितं पयः ॥ वर्ज्जये दम्ल लवण युक्तं कुष्ठा दिहृद्यतः ॥४२॥

इति श्री भाव प्रकाशे दुग्ध वर्गः ॥

भा० अग्नि को करने वाला शुक्रको करनें वाला तत्काल तृप्ति को करनेंवाला हलका होता है ॥ और अतीसार अग्नि मान्द्य तथा जीर्ण ज्वर इनमें प्रशस्त है ॥ ॥४१॥ निन्दित दुग्ध ॥ विवर्ण विरस खट्टा दुर्गंध और गठील ऐसा दूध ॥ त्याग देवे क्योंकि अम्ल लवण युक्त कुष्ठ आदि का नाशक कहाहै ॥४२॥

इति भाव प्रकाश में दुग्ध वर्गः ॥

तत्र दध्नो गुणाः

दध्युष्णं दीपनं स्निग्धं कषायानुरसं गुरु ॥ पाकेऽम्लं
श्वासरक्तपित्तशोथमेदःकफप्रदम् ॥ १॥ मूत्रकृ
च्छ्रे प्रतिश्याये शीतगे विषमज्वरे ॥ अतीसारेऽरुचौ
कार्श्ये शस्यते बलशुक्रकृत् ॥ २॥

भा० उसमें दही के गुण ॥ दही उष्ण दीपन चिकना पीछे से कसेला भारी॥ पाकमें अम्ल श्वास रक्तपित्त शोथ मेद कफ इनको करनें वाला है ॥ १ ॥ मूत्रकृच्छ्र में प्रतिश्याय में शीत वाले विषमज्वर में ॥ अतीसार में अरुचि में कृशता में प्रशस्त है बल शुक्र को करनें वाला है ॥२॥

अथ दधिभेदः। आदौ मन्दं ततः स्वादु स्वाद्वम्लञ्च
ततः परम् ॥ अम्लञ्च तुर्यमत्यम्लं पञ्चमं दधि पञ्च
धा ॥ ३॥ अथ मन्दादीनां लक्षणं गुणाश्च ॥
मन्दं दुग्धं यदव्यक्तरसं किञ्चिद्घनं भवेत् ॥ मन्दं
स्यात्सृष्टविण्मूत्रदोषत्रयविदाहकृत् ॥ ४॥ य-
त्सम्यग्घनतां यातं व्यक्तस्वादुरसं भवेत् ॥ अव्यक्ता
म्लरसं तत्तु स्वादु विज्ञैरुदाहृतम् ॥ ५॥

भा० अनन्तर दही का भेद ॥ पहिले मन्द उसके अनन्तर मधुर और उस्के बाद खट मीठा ॥ चौथा खट्टा तथा पांचवां बहुत खट्टा ऐसे दही पांच प्रकार का होताहै ॥ ३॥ अनन्तर मन्दादियों के लक्षण और गुण ॥ मन्द दुग्ध जो अव्यक्त रस और कुछ गाढ़ा होताहै ॥ मन्द मल मूत्र को करनें वाला त्रिदोष तथा विदाह इनको करनें वाला है ॥४॥ जो अच्छी तरह गाढ़ी होजाती है और व्यक्त स्वादुरस जिस्में होताहै उसको बुधिवानों ने मधुर कहाहै ॥ ५॥

स्वादु स्या दत्य भिष्यन्दि वृष्यं मेदः कफा वहम् ॥ वा
तघ्नं मधुरं पाके रक्त पित्त प्रसा द नम् ॥ ६ ॥ स्वा द्व
म्ल सान्द्रं मधुरं कषाया नु रसं भवेत् ॥ स्वाद्व म्लस्य
गुणा ज्ञेया सामान्य दधि वर्जनैः ॥ ७ ॥ यत्ति रोहि त
माधुर्य्यं व्यक्ता म्लत्वं तद म्लकम् ॥ अम्लन्तु दीपनं
पित्त रक्त श्लेष्म विवर्द्ध नम् ॥ ८ ॥

भा० मधुर अति अभिष्यन्दि होताहै शुक्र को करनें वाला और मेदकफ़ को। करनें वाला ॥ वात नाशक पाक में मधुर रक्त पित्त को अच्छा करनें वाला होताहै ॥ ६ ॥ मीठा खट्टा सान्द्र मधुर पीछेसे कसेला होताहै ॥ सामान्य दही के त्याग करके मीठे खट्टे का गुण जानना चाहिये ॥ ७ ॥ जो मधुर ता ढकी है और जिसमें अम्ल ता व्यक्त है वोह खट्टा है ॥ खट्टा दीपन रक्त पित्त कफ़ इनको वढानें वाला ॥ ८ ॥

तद त्यम्लं दन्त रोम हर्ष कण्ठा दि दाह कृत् ॥ अत्य
म्लं दीपनं रक्त वात पित्त करं परम् ॥ ९ ॥ गो दधि गु-
णाः । गव्यं दधि विशेषेण स्वा द्वम्ल ञ्च रुचि प्रदम् ॥
पवित्रं दीपनं हृद्यं पुष्टि कृत् पवना पहम् ॥ १० ॥ उक्तं
दध्ना मशे षाणां मध्ये गव्यं गुणा धिकम् ॥

भा० वोह वहुत खट्टा दांत हर्ष रोम हर्ष कंठ आदि का दाह करनें वाला है ॥ वहुत खट्टा दीपन रक्त वात पित्त इनको करनें वाला है ॥ ९ ॥ गायके दही का गुण ॥ गायका दही विशेष करके मधुर अम्ल रुचि को करनें वाला ॥ पवित्र दीपन हृद्य पुष्टि को करनें वाला वातका नाशक होताहै ॥ १० ॥ सव दही यों के वीचमें गायका दही गुण में अधिक कहा है ॥

माहिष दधिगुणाः ।

माहिषं दधि सुस्निग्धं श्लेष्मलं वातपित्तनुत् ॥ स्वादुपाकमभिष्यन्दि वृष्यं गुर्व्वस्रदूषकम् ॥ ११ ॥

छागी दधि गुणाः । आजन्दध्युत्तमं ग्राहि लघु दोषत्रयापहम् ॥ शस्यते श्वास कासार्शः क्षय कार्श्येषु दीपनम् ॥ १२ ॥ पक्व दुग्ध दधि गुणाः ॥

पक्वं दुग्धभवं रुच्यं दधि स्निग्धं गुणोत्तमम् ॥ पित्तानिलापहं सर्व धात्वग्नि बल वर्द्धनम् ॥ १३ ॥

निःसार दुग्ध दधि गुणाः ।

भा० भैंस की दही का गुण ॥ भैंसकी दही बहुत चिकनी कफ़ की करनें वाली वात पित्त की नाशक ॥ पाकमें मधुर अभिष्यन्दि शुक्र को करनें वाली भारी रक्त दूषक होतीहै ॥ ११ ॥ बकरीके दहीका गुण ॥ बकरी का दही बहुत उत्तम काबिज हलका तीनों दोषों का नाशक है ॥ और श्वास कास बवासीर क्षय कार्श इनमें प्रशस्तहै तथा दीपन होताहै ॥ १२ ॥ औटाये हुवे दूध के दही का गुण पके हुवे दूध की दही रुचि को करनें वाली चिकनी गुण में अच्छी ॥ पित्त वात की नाशक और सब धातु अग्नि बल इनको बढानें वाली है ॥ १३ ॥

निः सार दूधके दही का गुणः ॥

असारं दधि सङ्ग्राहि शीतलं वातलं लघु ॥ विष्टम्भि दीपनं रुच्यं ग्रहणी रोग नाशनम् ॥ १४ ॥

गार्यो दधि गुणाः । गालितं दधि सुस्निग्धं वातघ्नं कफ़कृद्गुरु ॥ बल पुष्टिकरं रुच्यं मधुरं नातिपित्तकृत् ॥ १५ ॥ शर्करादि सहित दधि गुणाः ॥

भा० असार दही काबिज शीतल वात को करनें वाली हलकी ॥ विष्टंभि दीपन रुचिको करनें वाली ग्रहणी रोग की नाशक है ॥ १४ ॥

निचोड़ी हुई दही का गुण। निचोड़ी दही बहुत चिकनी वात नाशक कफ को करनें वाली भारी॥ बल पुष्टि को करनें वाली रुचि कर मधुर और अति पित्त करने वाली है॥ १५॥ शर्करा केसहित दही का गुण॥

सशर्करं दधि श्रेष्ठं तृष्णा पित्ता स्रदा ह जित्॥ सगुडं वात नुहृष्यं बृंहणं तर्पणं गुरु॥ १६॥

अथ रात्रौ दधि भोजन निषेधः॥

न नक्तं दधि भुञ्जीत नचाप्य घृत शर्करम्॥ नामुद्ग सूपं नाक्षौद्रं नोष्णा नाम लकै विना॥ अथ मर्थः॥

भा० शर्करा के सहित दही श्रेष्ठ तृषा रक्त पित्त दाह इनको जीतने वालीहै॥ और गुड के सहित वात नाशक शुक्र को करने वाली पुष्ट तर्पण भारी होतीहै॥१७॥ अनन्तर रात मे दधि भोजन का निषेध॥ रात में दही नखावे और विनाशर्करा घृत के भी नखावे॥ तथा विना मूङ्ग की दाल के औरविनामधु के भी नखावे और नगरम न आंव लोंके विना नखावे॥ येह अर्थ है कि।

रात्रौ दधि न भुञ्जीत भुञ्जीत चेत्त दा अघृत शर्कर नामुद्ग सूपं क्षौद्र मुष्णं विना मल कैश्च दधि न भुञ्जीत। तेन घृत शर्करा दि युक्तं दधि रात्रावपि भुञ्जीते त्यर्थः। तथा च। शस्यते दधिनो रात्रौ शस्तं चाम्बु घृता न्वितम्॥ रक्त पित्त कफो त्थेषु विकारे ष्वहितं नैव तत्॥१७॥ तद म्बु घृता न्वित मपि॥

अथ ह्यु विशेषेण विधि निषेधौ।

भा० रात में दही न खावे और खावेतो वे घी शक्कर मूङ्ग की दाल मधु उष्ण विना आंवलो केभी दही न खावे॥ उस्से घृत शर्करा दि युक्त दही रात मे भी खावे येह अर्थ है। वैसे कहाहे। रात में दही प्रशस्त नहीहे और जल घृत से युक्त ^

प्रशस्त है ॥ रक्त पित्त कफ के विकारों में वोह प्रशस्त नहीं है ॥ १७॥ वोह जल घृत युक्त भी । अनन्तर ऋतु विशेष करके विधि निषेध ।

हेमन्ते शिशिरे चापि वर्षासु दधि शस्यते ॥ शरद्ग्री ष्म वसन्तेषु प्रायशस्तद्विगर्हितम् ॥ १८॥

अथा विधिना दधि सेवने दोष माह ॥

ज्वरासृक्पित्त वीसर्प कुष्ठ पाण्डामय भ्रमान् ॥ प्रा- प्नुयात्कामला चोग्रां विधिं हित्वा दधि प्रियः ॥ १९

भा० हेमन्त शिशिर और वर्षामें दही प्रशस्त है ॥ और शरद ग्रीष्म वसन्त में प्रायः वोह निंदित है ॥ १८॥ अनन्तर विना विधि के दधि सेवन में दोष कहेते है ॥ ज्वर रक्त पित्त वीसर्प कुष्ठ पांडु रोग भ्रम ॥ और उग्र कामला रोग येह विधि छोड के दहीसेवन करनें से होते हैं ॥ १९॥

॥ अथ सरस्य मस्तु नश्च लक्षणं गुणाश्च

दध्नस्तु परि यो भागो घनः स्नेह समन्वितः ॥ स लोके सर इत्युक्तो दध्नो मण्डस्तु मस्त्विति ॥ २०॥

सरः स्वादु गुरुर्वृष्यो वात वन्हि प्रणाशनः ॥ साम्लो दस्ति प्रशमनः पित्त श्लेष्म विवर्द्धनः ॥ २१॥

भा० अनन्तर सर और मस्तु इनका लक्षण और गुण ॥ दही के ऊपर का जो गाढा चिकना इसे युँहि स्ता है ॥ उसको लोकमें सर ऐसा कहा है और दही के पानी को मस्तु ऐसा कहा है ॥ २०॥ सर मधुर भारी शुक्र को करनें वाला वात अग्नि का नाशक ॥ और खटाई के सहित वस्ति का शमन करनें वाला पित्त कफ़ को वडानें वाला है ॥ २१॥

मस्तु क्लम हरं बल्यं लघु भक्ताभिलाषकृत् ॥ स्रो तो विशोधनं ह्लादि कफ तृष्णा निलापहम् ॥ २२॥

अच्छ्यं प्रीणनं शीघ्रं भिनत्ति मल सञ्च यम्॥

इति श्री भाव प्रकाशे दधिवर्गः।

भा० दही का पानी क्रम नाशक बलके हित हलका भोजन में रुचि को कर ने वाला॥ सोतों का शोधन करनें वाला ल्हादि कफ तृषा वात इनका नाश क है॥२२॥ अच्छ्य प्रीणन और शीघ्र मल के सचय को फोड़ता है॥

इति भाव प्रकाशे दधि वर्गः।

अथ तक्र वर्गः

तत्र तक्रस्य भिन्नानि नामानि लक्षणानि गुणा श्च

घोलन्तु मथितं तक्र मुद श्विच्छ च्छि कापि च॥ सस

रं निर्जलं घोलं माथि तन्त्व सरो द कम्॥ २३॥

तक्रं पाद जलं प्रोक्त मुद श्वित्व र्द्ध वारि कम्॥ छच्छि

का सार हीना स्यात् स्वच्छा प्रचुर वारि का॥ २४॥

घोलं तु शर्करा युक्तं गुणै र्ज्ञेयं रसाल वत्॥

भा०- अनन्तर तक्र वर्गः॥ उसमें मठे के अलग नाम और लक्षण तथा गुण॥ घोल मथित तक्र उद श्वित छच्छि का येह मठे के भेदके नाम है॥ पूर्वोक्त सर के सहित निर्जल को घोल कहेते हैं और मथित जिसमें सर और जल नहो उसको कहेते हैं॥ २३॥ जिसमे चौथाई जल होताहै उसको तक्र कहाहे और जिसमें आधा जल होताहै उसको उदश्वित कहाहै॥ तथा सार हीन स्वच्छ बहुत जल से युक्त को छच्छिका कहेते है॥ २४॥ शर्करा। युक्त घोल रसाल के समान गुण में जानना चाहिये॥

मथितं मट्ठा इति लोके।

छच्छिका छाच्छ इति लोके ॥

वात पित्त हरं ह्लादि मथितं कफ पित्त नुत् ॥ तक्रंग्रा
हि कषायाम्लं स्वादु पा करसं लघु ॥ २५ ॥ वीर्य्यो
ष्णं दीपनं वृष्यं प्रीणनं वात नाशनम् ॥ ग्रहण्यादि
मतां पथ्यं भवेत्संग्राहि लाघवात् ॥ २६ ॥ किन्त
स्वादु विपा कित्वान्नच पित्त प्रकोप णम् ॥ कषायो
ष्णं दीपनं वृष्यं प्रीणनं वात नाशनम् ॥ २७ ॥ क-
षायो ष्णा विपा कित्वा द्रौक्ष्या च्चापि कफा पहम् ॥

भा० महया इस प्रकार लोक में कहेते हे ॥ छाछ इस प्रकार लोक में कहे
ते हे ॥ मथित वात पित्त का नाशकल्हादि कफ पित्त का नाशक हे ॥ तक्र का
विज कसेला खट्टा पाक रस में मधुर हलका ॥ २५ ॥ वीर्य्य में उष्ण दीपन
शुक्रको करनें वाला प्रीणन वात नाशक हे ॥ और संग्रहणी वाले के हितहे
मद्य कादिन होताहे हलके पनसे ॥ २६ ॥ मधुर पाक होनें से पित्त प्रकोप कर
नें वाला नंहींहे ॥ कसेला उष्ण दीपन वृष्य प्रीणन वात नाशक हे ॥ २७ ॥ कसेला
उष्ण विपाक नहोनें से और रूक्ष तासे भी कफ नाशकहे ॥

न तक्र सेवी व्यथते कदाचित् न तक्र दग्धाः प्रभवन्ति
रोगाः ॥ यथा सुराणां अमृतं सुखाय तथा नराणां भु
वि तक्रमाहुः ॥ २८ ॥ उदश्वित्कफ कृद्बल्यं आमघ्नं
परसंमतम् ॥ कूच्चिका शीतला लघ्वी पित्त श्रम तृ
षा हरी ॥ २९ ॥ वात नुत्कफ कृत्सा नु दीपनी ल-
घु रान्विता ॥ अथो द्भुत घृत स्तोको द्भुता
नु द्भुत घृतानां तक्राणां गुणाः ॥

भा० तक्र का सेवन करनें वाला कदा चित् दुःखी नहीं पाता तक्र से दग्ध रोग उत्पन्न नहीं होते ॥ जैसे देवता ओंको सुख के वास्ते अमृत होताहे वैसेही मनुष्यों को भूलोक मे तक्र कहाहे ॥२८॥ उदश्वित् कफ को करनें वाला बलके हित परम आंव का नाशक कहाहे ॥ छच्छिका शीतल हलकी पित्त श्रम तृषा की नाशक हे ॥२९॥ वात नाशक कफको करनें वाली है और लोह् लवंसे युक्त दीपन हे ॥ अनन्तर घी निकाला और थोड़ा घी निकाला तथा वे घृत निकाला हुवा ऐसे तक्रा का गुण ॥

समुद्धृतं घृतं तक्रं पथ्यं लघु विशेषतः ॥ स्तोकोद्धृ-
त घृतं तस्माद् गुरु वृष्यं कफा वहम् ॥ ३० ॥ अनु
द्धृत घृतं सान्द्रं गुरु पुष्टि कफ प्रदम् ॥

अथ दोष विशेषे व्याधि विशेषे तक्र विशेषाः

वाते ऽम्लं शस्यते तक्रं शुण्ठी सैन्धव संयुतम् ॥ पि-
त्ते स्वादु सिता युक्तं सव्योष माधिके कफे ॥ ३१॥ हि
ङ्गु जीर युतं घोलं सैन्धवे नच संयुत म् ॥

भा० अच्छी तरह घी निकाला हुवा तक्र पथ्य और विशेष करके हलका होता है॥ थोड़ा घृत निकाला हुवा उस्से भारी शुक्र को करनें वाला और कफको करनें वाला है ॥ ३०॥ वे निकाला हुवा सान्द्र भारी पुष्टि कफको करने वाला है अनन्तर दोष विशेष में और रोग विशेष में तक्र विशेष को कहेते हे ॥ वातमें अम्ल तक्र सोंठ सैन्धव मे युक्त ॥ पित्त में मधुर चीनी के साहित और कफमें त्रिकुटके सहित हितहे ॥३१॥ हींङ्ग जीरे के साहित और सैन्धव के सहित ॥

भवे दती ववा तघ्न मर्शो ऽती सार हृत्य रम् ॥ ३२॥
रुचिदं पुष्टिदं बल्यं वस्ति शूल विना शनम् ॥ मू-
त्र कृच्छ्रे तु सगुडं पाण्डु रोगे स चित्र कम् ॥ ३३॥

अथा मपक्व तक्र गुणाः

तक्र मामं कफं कोष्ठे हन्ति कराठे करोति च ॥ पीनस श्वास कासादौ पक्व मेव प्रयुज्यते ॥ ३४ ॥

भा० और सैन्धव के सहित घोल अती व वात नाशक और ववासीर अतीसा रका परम नाशक है ॥ ३२ ॥ तथा रुचिको करनें वाला पुष्टि को देने वाला व लके हित वस्ति शूल का नाशक है ॥ मूत्र कृच्छ्र में गुड़के सहित और पांडु रोग में चित्रक के सहित हितहै ॥ ३३ ॥ अनन्तर कच्चे और पक्के तक्र का गुण ॥ कच्चा मठा कोष्ठ में कफ़ को नाशकरता है । और कंठ में कफ को करता है ॥ पीनस श्वास कासा दिक में पकाही योजना किया जाताहै ॥ ३४ ॥

अथ तक्र सेवन निमित्तानि

शीत काले ऽग्नि मान्द्ये च तथा वाता मयेषु च ॥ अरु चौ स्रोतसां रोधे तक्रं स्याद मृतो पमम् ॥ ३५ ॥ तत्तु हन्ति गर छर्दि प्रसेक विषमज्वरान् ॥ पाराडु मेदो ग्रह रायर्शो मूत्र ग्रह भगन्दरान् ॥ ३६ ॥ मेहं गुल्ममती सारं शूल प्लीहो दरा रुचीः ॥ श्वित्र कोठ गत व्याधीन् कुष्ठ शोथ तृषा कृमीन् ॥ ३७ ॥

भा० अनन्तर तक्र सेवन के कारण ॥ शीत काल अग्नि मान्द्य तथा वात रो ग मेंभी ॥ अरुचि में सोंतों के अवरोध में तक्र अमृत के समान होताहै ॥ ३५ ॥ वोह विष वमन प्रसेक विषम ज्वर इनको ॥ और पांडु रोग मेद ग्रहणी रो ग ववासीर मूत्र ग्रह भगन्दर इनको ॥ ३६ ॥ तथा प्रमेह वाय गोला अतीसार शूल प्लीहोदर अरुचि ॥ श्वित्र कोठगत रोग कुष्ठ शोथ तृषा कृमि इनको ना शकरता है ॥ ३७ ॥

तक्रस्या विषयाः । नैव तक्रं क्षते द द्यात् नोष्ण काले न दुर्बले ॥ न मूर्च्छा भ्रम दाहेषु न रोगे रक्त पित्त जे ॥ ३८ ॥

अथ गव्यादीनां तक्राणां विशिष्टा गुणाः ॥

यान्युक्तानि दध्न्यष्टौ तद्गुणं तक्रमादिशेत् ॥

इति श्री भावप्रकाशे तक्रवर्गः ।

भा० तक्रका अविधय ॥ तक्र क्षत में न देवे न उष्ण काल में न दुर्बल में ॥ न मूर्च्छा भ्रम दाह में न रक्त पित्त के रोग में देवे ॥ ३७ ॥ अनन्तर गाय आदि के तक्रों का विशेष गुण ॥ जो आठ दहीयों के गुण कहे हैं वोह गुण तक्र में जान लेवे ॥　इति भाव प्रकाशे तक्र वर्गः ॥

अथ नवनीत वर्गः

तत्र नवनीतस्य नामानि गुणाश्च

मृक्षणं सरजं हैयङ्गवीनं नवनीतकम् ॥ नवनीतं हितं गव्यं वृष्यं वर्ण बलाग्नि कृत् ॥ ३९ ॥ संग्राहि वात पित्तासृक् क्षयार्शोऽर्दित कासहृत् ॥ तद्धितं बालके वृद्धे विशेषादमृतं शिशोः ॥ ४० ॥

[माहिश्रस्य गुणाः ।]

भा० अनन्तर माखन के वर्गः । उसमें माखन के नाम और गुण । मृक्षण सरज हैयङ्गवीन नवनीतक येह माखन के नाम हैं ॥ गायका माखन पथ्य शुक्र को करनें वाला वर्ण बल अग्नि को करनें वाला ॥ ३९ ॥ काबिज वात पित्त रक्त क्षय बवासीर अर्दित कास इनका नाशक है ॥ वोह बालक वृद्ध को हित है विशेष करके बालक को अमृत के समान है ॥ ४० ॥ अनन्तर भैंस के माखन का गुण ॥

नवनीतं महिष्यास्तु वात श्लेष्म करं गुरु ॥ दाह पित्त श्रम हरं मेदः शुक्र विवर्द्धनम् ॥ ४१ ॥

अथ पयसो नवनी तस्य गुणाः ॥

दुग्धोऽत्थं नवनी तंतु चक्षुष्यं रक्त पित्त नुन्नू॥ वृष्यं
बल्य मति स्निग्धं मधुरं ग्राहि शीत लम् ॥ ४२॥

अथ सद्यः समुद्धृत नवनीत गुणाः

भा० भैंस का मारवन वात कफ को करनें वाला भारी ॥ दाह पित्त श्रम का नाशक मेद शुक्र का बढ़ानें वाला है ॥ ४१॥ अनन्तर दूध के मारवन का गुण ॥ दूधका मारवन नेत्र के हित रक्त पित्त का नाशक ॥ शुक को करनें वाला बल के हित बहुत चिकना मधुर काविज शीतल है ॥ ४२॥
अनन्तर ताजे मारवन का गुण ॥

नव नी तन्तु सद्यस्कं स्वादु ग्राहि हिमं लघु ॥ मेध्यं
किञ्चि त्कषा याम्ल भीष त्तक्रां श संक मात्तू ॥ ४३॥

अथ चिर तन नव नीत गुणाः ।

भा० ताजा मारवन मधुर काविज शीतल हलका ॥ कान्ति को करनें वाला कुछ एक कसेला थोड़े मठे के अंश मिलनें से ॥ ४३॥
अनन्तर पुरानें मारवन का गुण॥

सक्षार कटु काम्ल त्वा च्छर्द्य र्शः कुष्ट कारकम् ॥
श्ले ष्मलं गुरु मे दस्यं नव नीतं चिरन्त नम् ॥ ४४॥

इति श्री भाव प्रकाशे नव नीत वर्गः॥

भा० क्षार के सहित कडुक खट्टा पन होनें से वमन ववासीर कुष्ट इनको करनें वाला है ॥ कफ को करनें वाला भारी मेद को करने वाला पुराना मारवन है॥ ४४ ॥

इति भाव प्रकाशे मारवन वर्गः ॥

अथ घृतवर्गः

तत्र घृतस्य नामानि गुणाश्च

घृतमाज्यं हविः सर्पिः कथ्यन्ते तद्गुणा अथ ॥ घृतं रसायनं स्वादु चक्षुष्यं वह्नि दीपनम् ॥ ४५॥ शीतवीर्यं विषालक्ष्मी पापपित्तानिलापहम् ॥ अल्पाभिष्यन्दि कान्त्योजस्तेजो लावण्य बुद्धिकृत् ॥ ४६॥ स्वरस्मृतिकरं मेध्यमायुष्यं बलकृद्गुरु ॥ उदावर्त्तज्वरोन्माद शूलानाह व्रणान् हरेत् ॥ ४७॥ स्निग्धं कफकरं रक्षः क्षय वीसर्प रक्तनुत् ॥

भा० अनन्तर घृत वर्गः। उसमें घृतके नाम और गुण। घृत आज्य हविः सर्पिः येह घृत के नाम हैं॥ अनन्तर गुण कहेते है॥ घृत रसायन मधुर नेत्र के हित अग्निदीपन ॥४५॥ शीतवीर्य है और विष अलक्ष्मी पाप पित्त वात इन का नाशक है ॥ थोड़ा अभिष्यन्दि कान्ति ओज तेज लावण्य बुद्धि इनको करनेंवाला ॥ ४६॥ स्वरस्मृति को करनें वाला मेध्य आयु के हित बल को करनें वाला भारी॥ उदावर्त्त ज्वर उन्माद शूल अफारा व्रण इनको हरता है ॥४७॥ चिकना कफ को करनें वाला रक्ष क्षय वीसर्प रक्त इनका नाशक है॥

गव्यस्य घृतस्य गु०। गव्यं घृतं विशेषेण चक्षुष्यं वृष्यमग्निकृत् ॥ स्वादुपाककरं शीतं वातपित्तकफापहम् ॥४८॥ मेधा लावण्य कान्त्योजस्तेजो वृद्धिकरं परम् ॥ अलक्ष्मी पापरक्षोघ्नं वयसः स्थापकं गुरु ॥ ४९॥ बल्यं पवित्रमायुष्यं सुमङ्गल्यं रसायनम् ॥ सुगन्धं रोचकं चारु सर्वाज्येषु गुणाधिकम् ॥ ५०॥

भा० गाय के घृत का गुण । गायका घृत विशेष करके नेत्र के हित शुक्र को करनें वाला अग्नि को करनें वाला ॥ मधुर पाक को करनें वाला शीतल और वातपित्त कफ इनका नाशक है ॥ ४८ ॥ और मेधा लावण्य कान्ति ओज तेज इनकी परम वृद्धि को करनें वाला ॥ अलक्ष्मी पाप राक्षस इनका नाशक वयका स्थापक भारी ॥४९॥ बलके हित पवित्र आयुके हित सुमंगल्य रसायन ॥सुगन्ध रोचन सुन्दर सब घृतो से गुण में अधिक है ॥५०॥

माहिषस्य गुणाः। माहिषन्तु घृतं स्वादु पित्त रक्ता निला पहम् ॥ शीतलं श्लेष्मलं वृष्यं गुरु स्वादु विपच्यते ॥५१॥ छागस्य गुणाः। आज माग्न्यक्षुरोत्यगिनं च। क्षुष्यं बल वर्द्धनम् ॥ कासे श्वासे क्षये चापि हितं। पाकेभवे त्कटुः ॥ ५२ ॥ अथ उष्ट्री घृतम् ॥ औष्ट्रं कटु घृतं पाके शोष क्रिमि विषा पहम् ॥ दीपनं कफ वातघ्नं कुष्ठ गुल्मो दरा पहम् ॥ ५३ ॥

भा० अनन्तर भैंसके घृत का गुण ॥ भैंस का घृत मधुर पित्त रक्त वात इन का नाशक ॥ शीतल कफ को करनें वाला शुक्रको करनें वाला भारी और पाक में मधुर होताहे ॥ ५१॥ अनन्तर बकरी के घृत का गुण ॥ बकरी का घृत अग्निको करता हे और नेत्र के हित बलको बढानें वाला ॥ कांस श्वास में भी हितहे और पाकमें भी कटु होता है ॥ ५२॥ अनन्तर ऊंटनी का घृत॥ ऊंटनी का घृत पाकमें कटु और शोष कृमि विष इनका नाशक ॥ दीपन कफ वात का नाशक कुष्ठवाय गोला उदर रोग इनका नाशक है ॥५३॥

अथ आविकं घृतम् । पाके लघ्वाविकं सर्पिः सर्व रोग विनाशनम् ॥ वृद्धिं करोति चास्थ्नां नाश्मरी शर्करा पहम् ॥५४॥ चक्षुष्य मग्नि स्युयरां वात दोष निवारणम् ॥ अथ नारी घृतम ॥

भा० अनन्तर भेड़का घृत ॥ भेडका घृत पाकमें हलका सर्व रोग का नाशक ॥ और हड्डी योंकी वृद्धि को करता है तथा पथरी शर्करा इनका नाशक है ॥ ५४॥ नेत्रके हित और ग्नि को करनें वाला और वात दोष का निवारण है ॥

अनन्तरस्त्री घृत ॥ कफे ऽ निले योनि दोषे पित्ते रक्ते च तद्धितम् ॥ चक्षुष्यमाज्यं स्त्रीणां वा सर्पिः स्यादमृतोपमम् ॥ ५५ ॥ अथा श्वी घृतम् ॥ वृद्धिं करोति देहाग्ने र्लघु पाके विषापहम् ॥ तर्पणं नेत्र रोगघ्नं दाहनुद्वडवा घृतम् ॥ ५६ ॥ दुग्ध घृतस्य गुणाः। घृतं दुग्ध भवं ग्राहि शीतलं नेत्र रोग हृत् ॥ निहन्ति। पित्त दाहास्र मद मूर्च्छा भ्रमा निलान् ॥ ५७ ॥

भा० कफ वात योनि दोष पित्त रक्त इनमें वोह हितहै ॥ स्त्री का घृत नेत्र के हित और घृत अमृत के समान होताहै ॥ ५५॥ अनन्तर घोडी का घृत ॥ देह अग्नि की वृद्धि को करता है और पाक में हलका विषनाशक ॥ तर्पण नेत्र रोग का नाशक दाह नाशक घोडी का घृत होताहै ॥ ५६॥ दूधके घृत का गुण ॥ दूधका घृत काविज शीतल नेत्र रोग का नाशक है ॥ और पित्त दाह रक्त मद मूर्च्छा भ्रम वात इनका नाशक है ॥ ५७॥

अथ हस्तिन दधिज घृतगुणाः।

हविर्हस्तिन दुग्धोत्थं तत्स्याद्धैयङ्गवीनकम् ॥
हैयङ्गवीनं चक्षुष्यं दीपनं रुचि कृत्परम् ॥ ५८॥
बल कृद्बृंहणं वृष्यं विशेषात् ज्वर नाशनम् ॥

पुराण घृतस्य गुणाः।

भा० अनन्तर हथनी के दही का घृत का गुण ॥ हथनी के घृतको हैयङ्गवीन कहते हैं ॥ हथनी का घृत नेत्र के हित दीपन परम रुचि को करनें वाला है ॥

॥५८॥ और बल को करनें वाला पुष्ट शुक्र का करनें वाला और विशेष करके ज्वर नाशक होताहे ॥ पुराने घीका गुण ॥

वर्षा दूर्द्धं भवे दाज्यं पुराणं तन्त्रि दोष नुत् ॥ मूर्च्छा कुष्ठ विषो न्मादा पस्मार तिमि रा पहम् ॥ ५९॥ यथा यथा ऽखिलं सर्पिः पुराण मधिकं भवेत् ॥ तथा तथा गुणैः स्वैः स्वै रधिकं तदु दा हृतम् ॥ ६०॥

अथ नूत नस्य घृतस्य विषयाः ॥

भा० बरस के ऊपर घी पुराना होताहै वोह त्रिदोष नाशक हे ॥ और मूर्च्छा कुष्ट विष उन्माद अपस्मार तिमिर इनका नाशक है ॥ ५९ ॥ सब घृत जैसे २ पुराना होताहे ॥ वैसे २ अपने २ गुणों करके गुण में अधिक कहाहे ॥ ६० ॥ अनन्तर ताजे घीका विषय ॥

योज येन्न व मे वाज्यं भोजने तर्पणे श्रमे ॥ बलक्षये । पाण्डु रोगे कामला नेत्र रोगयोः ॥ ६१॥

घृत प्रयो गस्या विषयाः

भा० नया घृत भोजन में तर्पण में श्रममें ॥ बल क्षय में पांडु रोगमें कामला और नेत्र रोगमें यो जना करे ॥ ६१॥ अनन्तर जिसें घृत न देना चाहिये सोक हेतेहैं ॥

राज यक्ष्मणि बालेच वृद्धे श्लेष्म कृते गदे ॥ रोगे सामे विसू च्यान्च विबन्धे च मदा त्यये ॥ ६२ ॥ ज्वरे च दहने मन्दे न सर्पि र्बहु मन्यते ॥

इति श्री भाव प्रकाशे घृत वर्गः ॥

भा० राज रोग में बालक और वृद्ध को कफ के रोगों ॥ आमके रोग में विसूचिमें विबन्धमें मदात्यय में ॥ ६२॥ और ज्वर में मन्दाग्नि में बहुत घृत अच्छा नहीं

हैं॥ इति भावप्रकाशे घृतवर्गः॥

अथ मूत्रवर्गः

तत्र गोमूत्रगुणाः॥

गोमूत्रं कटु तीक्ष्णोष्णं क्षारं तिक्तकषायकम्॥ लघ्वग्निदीपनं मेध्यं पित्तकृत्कफवातहृत्॥ ६३॥ शूलगुल्मोदरानाहकण्ड्वक्षिमुखरोगजित्॥ किलासगदवातामवस्तिरुक्कुष्ठनाशनम्॥ ६४॥ कासश्वासापहं शोथकामलापाण्डुरोगहृत्॥

भा० अथ मूत्र वर्गः। उसमें गो मूत्र का गुण। गो मूत्र कटु तीखा उष्ण क्षार तिक्त कषायक॥ हलका अग्नि दीपन मेध्य पित्त को करनें वाला कफ वातका नाशक॥ ६३॥ शूल वाय गोला उदर अफारा कंडू नेत्र रोग मुख रोग इनको जीतनें वाला है। किलास रोग आम वात वस्ति पीड़ा कुष्ट इनका नाशक है॥ ६४॥ कास श्वास इनका नाशक सूजन कामला पांडु रोग इनका नाशक है॥

कण्डूकिलासगदशूलमुखाक्षिरोगान् गुल्मातिसारमरुदामयमूत्ररोधान्। कासं सकुष्ठजठरक्रिमिपाण्डुरोगान् गोमूत्रमेकमपि पीतमपाकरोति॥ ६५॥ सर्वेष्वपि च मूत्रेषु गोमूत्रं गुणतोऽधिकम्। अतोऽविशेषात्कथने मूत्रं गोमूत्रमुच्यते॥ ६६॥ प्लीहोदरश्वासकासशोथवर्चोग्रहापहम्॥ शूलगुल्मरुजानाहकामलापाण्डुरोगहृत्॥ ६७॥ कषायं तिक्ततीक्ष्णं च पूरणात्कर्णशूलनुत्॥

॥५८॥ और बल को करनें वाला पुष्ट शुक्र का करनें वाला और विशेष करके ज्वर नाशक होताहै ॥ पुराने घीका गुण ॥

वर्षा दूर्द्धं भवे दाज्यं पुराणं तन्नि दोष नुत् ॥ मूर्च्छा कुष्ठ विषो न्मादा पस्मार तिमि रा पहम् ॥ ५९॥ यथा यथा ऽखिलं सर्पिः पुराण माधिकं भवेत् ॥ तथा तथा गुणैः स्वैः स्वै रधिकं तद्रु दा हृतम् ॥ ६०॥

अथ नूत नस्य घृतस्य विषयाः॥

भा० वरस के ऊपर घी पुराना होताहै वोह त्रिदोष नाशक है ॥ और मूर्च्छा। कुष्ट विष उन्माद अपस्मार तिमिर इनका नाशक है ॥ ५९॥ सब घृत जैसे२ पुराना होताहै ॥वैसे २ अपने २ गुणों करके गुण में अधिक कहाहै ॥ ६०॥ अनन्तर ताजे घीका विषय ॥

योज येन्न व मे वाज्यं भोजने तर्पणे श्रमे ॥ बलक्षये। पाण्डु रोगे कामला नेत्र रोगयोः॥ ६१॥

घृत प्रयो गस्या विषयाः

भा० नया घृत भोजन में तर्पण में श्रममें ॥बल क्षय में पांडु रोगमें कामला और नेत्र रोगमें यो जना करे ॥ ६१॥ अनन्तर जिसें घृत न देना चाहिये सोक हे तेहैं ॥ राज यक्ष्मणि बालेच वृद्धे श्लेष्म कृते गदे ॥ रोगे सामे विसू च्यान्च विबन्धे च मदा त्यये ॥ ६२॥ ज्वरे च दहनें मन्दे न सर्पि र्बहु मन्यते ॥

इति श्री भाव प्रकाशे घृत वर्गः ॥

भा० राज रोग में बालक और वृद्धको कफ केरोगमें ॥आमके रोग में विसूचिमें विबन्धमें मदा त्यय में ॥ ६२॥ और ज्वर में मन्दाग्नि में बहुत घृत अच्छा नहीं

है ॥ इति भाव प्रकाशे घृत वर्गः ॥

अथ मूत्र वर्गः

तत्र गो मूत्र गुणाः ॥

गो मूत्रं कटु तीक्ष्णो ष्णं क्षारं तिक्त कषाय कम् ॥ ल-
घ्वग्नि दीपनं मेध्यं पित्त कृत्कफ वात हृत् ॥ ६३ ॥ शू
ल गुल्मो दरा नाह कण्ड्व क्षि मुख रोग जित् ॥ किला
सग दवा ताम वस्ति रुक् कुष्ठ नाशनम् ॥ ६४ ॥ कास ।
श्वासा पहं शोथ कामला पाण्डु रोग हृत् ॥

भा० अथ मूत्र वर्गः । उसमें गो मूत्र का गुण । गो मूत्र कटु तीखा उष्ण क्षार तिक्त कषायक ॥ हलका अग्नि दीपन मेध्य पित्त को करनें वाला कफ वातका नाशक ॥ ६३ ॥ शूल वाय गोला उदर अनाह कंडू नेत्र रोग मुख रोग इनको जीत ने वाला है । किलास रोग आम वात वस्ति पीड़ा कुष्ट इनका नाशक है ॥ ६४ ॥ कास श्वास इनका नाशक सूजन कामला पांडु रोग इनका नाशक है ॥

कण्डू किलास गद शूल मुखा क्षि रोगान् गुल्मा ति
सार मरु दा मय मूत्र रोधान् कासं स कुष्ठ जठर क्रि
मि पाण्डु रोगान् गो मूत्र मेकमपि पीत मपा करोति
॥ ६५ ॥ सर्वेष्वपि च मूत्रे षु गोमूत्रं गुणतो ऽधिकम् ।
अतो ऽवि शेषात् कथने मूत्रं गोमूत्र मुच्यते ॥ ६६ ॥
प्लीहो दर श्वास कास शोथ वर्चोग्रहा पहम् ॥ शूलगु
ल्म रुजा नाह कामला पाण्डु रोग हृत् ॥ ६७ ॥ कषायं
तिक्त तीक्ष्ण ञ्च पूर णात् कर्णशूल नुत् ॥

भा० खुजली किलास रोग शूल मुख नेत्र रोग ॥ गुल्म अति सार वात रोग मूत्र रोध ॥ कास कुष्ट के सहित उदर रोग क्रिमि पांडु रोग इनको ॥ एक गो मूत्र पिया हुवा नाश करता है ॥ ६५ ॥ सब मूत्रों में गोमूत्र गुण में अधिक है ॥ इस वास्ते विशेष करके कहनें में मूत्र गो मूत्र को कहते हैं ॥ ६६ ॥ प्लीहो दर श्वास कास सूजन मल ग्रह इनका नाशक है ॥ शूल वाय गोला पीड़ा अफारा कामला पाण्डु रोग इनका नाशक ॥ ६७ ॥ कसैला तिक्त तीखा डालने से कर्ण शूल नाशक है ॥

मानुष मूत्र गुणाः । नर मूत्रं गरं हन्ति सेवि तन्तद्र सायनम् ॥ रक्त पामा हरं तीक्ष्णं सक्षार लवणं स्मृतम् ॥ ६८ ॥ गोजावि महिषीणां तु स्त्री णां मूत्रं प्रशस्यते ॥ खरोष्ट्रे भनरा श्वानां पुंसां मूत्रं हितं स्मृतम् ॥ ६९ ॥ इति श्री भाव प्रकाशे मूत्र वर्गः ॥

भा० मनुष्य के मूत्र का गुण ॥ मनुष्य का मूत्र विषको नाश करता है और सेवन किया हुवा वोह रसायन है ॥ और रक्त पामा का नाशक तीखा क्षार लवण युक्त कहा है ॥ ६८ ॥ गाय बकरी भैंस इन स्त्रियों का मूत्र प्रशस्त है ॥ और गधा ऊंट हाथी मनुष्य घोड़ा इन में नरों का मूत्र हित कहा है ॥ ६९ ॥

इति भाव प्रकाशे मूत्र वर्गः ॥

अथ तैल वर्गः

तत्र तैलस्य स्वरूप निरूपणम् ॥

तिलादि स्निग्ध वस्तू नां स्नेह स्तैल मुदाहृतम् ॥ तत्तु वात हरं सर्वं विशेषा त्तिल सम्भवम् ॥ १ ॥

[अथ तिल तैल गुणाः]

भा० अनन्तर तैल वर्गः । उसमें तैल का स्वरूप निरूपण । तिलादि स्निग्ध पदार्थों की चिकनाई को तैल कहा है ॥ वोह सब वात नाशक है विशेष कर

के तिलका ॥१॥ अनन्तर तिल तैल का गुण ॥

तिल तैलं गुरु स्थैर्य्य बल वर्ण करं सरम् ॥ वृष्यं विकाशि विशदं मधुरं रस पाकयोः ॥ २ ॥ सूक्ष्मं कषायानुरसं तिक्तं वात कफापहम् ॥ वीर्य्ये णोष्णं हिमं स्पर्शे दृंहणं रक्त पित्त कृत् ॥ ३ ॥ लेखनं बद्ध विण्मूत्रं गर्भा शय विशोधनम् ॥ दीपनं बुद्धिदं मेध्यं व्यवायि व्रण मेह नुत् ॥४॥ श्रोत योनि शिरः शूल नाशनं लघुताकरम् । त्वच्यं केश्यञ्च चक्षुष्य मभ्यङ्गे भोजने ऽन्यथा ॥५॥

भा० तिलका तेल भारी स्थैर्य्य बल वर्ण इनको करने वाला सर ॥ शुक्रको करनें वाला विकाशि विशद रस पाकमें मधुर ॥ २॥ सूक्ष्म पीछे से कसेला तिक्त वात कफ का नाशक ॥ वीर्य्य में उष्ण शीतल स्पर्श में पुष्ट रक्त पित्तको करनें वाला ॥ ३॥ लेखन मल मूत्र को बान्धनें वाला गर्भाशय का शोधन॥ दीपन बुद्धि को देनें वाला मेध्यके हित व्यवायि व्रण प्रमेह का नाशक ॥ ४॥ कर्ण योनि शिर इनके शूलका नाशक और हलका पन करनें वाला ॥ त्वचाके हित केशके हित नेत्र के हित अभ्यङ्ग में येह गुण हैं और भोजन में इसके विपरीत गुण हैं ॥५॥

छिन्न भिन्न च्युतो त्पिष्ट मथित क्षत पिच्चि ते ॥ भग्न स्फुटित विद्धाग्नि दग्ध विश्लिष्ट दारि ते ॥ ६॥ तथा भिहत निर्भुग्न मृग व्याघ्रादि विक्षते ॥ वस्तौ पाने ऽन्न संस्कारे नस्ये कर्णा क्षि पूरणे ॥ ७ ॥ सेकाभ्यङ्ग वगा हेषु तिल तैलं प्रशस्यते ॥

भा० छिन्न भिन्न च्युत उत्पिष्ट मथित क्षत पिच्चित ॥ भग्न स्फुटित विद्ध ।- अग्नि दग्ध विश्लिष्ट दारित ॥ ६॥ तथा अभिहत निर्भुग्न मृग व्याघ्र आ।- दि विक्षत ॥ इनका विशेष अर्थ भग्न निदान में किया है इनमें वस्ति में ।-

पीनें में अन्न के संस्कार में नस्यमें कर्ण नेत्र में भरनें में ॥ ७॥ सेक अभ्यङ्ग अवगाह इनमें तिक्त का तेल प्रशस्त है ॥

(क) ननु बृंहण लेखन योः कथं सामाना धि करण्य। मित्याह । रूक्षा दि दुष्टः पवनः स्रोतः सङ्को चयेद्यदा ॥ रसो सम्यग्वहन् कार्श्यं कुर्य्या द्रक्ता द्यवर्द्धयन्॥ ८॥ तेषु प्रवेष्टुं सरत्व सौक्ष्म्य स्निग्ध त्वमा र्द्दवैः॥ तैलं क्षमं रसं नेतुं कृशानां तेन बृंहणम् ॥ ९॥

भा० (क) शंका। बृंहण और लेखन काके से सामाना धि करण्य सो कहते हैं। रूक्षादि करके दुष्ट हुवा पवन जवसं कोच करता है ॥ रस अच्छी तरह वहता हुवा रक्त दियों को नव ढाता हुवा कृश ताको करता है ॥ ८॥ सौक्ष्म्य स्निग्धता और मृदुता इन करके रससे उनमें प्रवेश करनें को ॥ तैल ही समर्थ है रसमें ले जानें को इस वास्ते कृशोंका पुष्ट करनें वाला है ॥ ९॥

व्यवायि सूक्ष्मती क्ष्णोष्ण सरत्वै र्मेदसः क्षयम् ॥ शनैः प्रकुरु ते तैलं तेन लेखन मीरि तम् ॥ १०॥ द्रुतं पुरीषं बध्नाति स्वलितं तन्न वर्त्त येत्॥ ग्राहकं सार कञ्चा पि तेन तैल सुदी रितम् ॥ ११॥ घृत मब्दा त्परं पक्वं हीन वीर्यं प्रजायते ॥ तैल पक्वम पक्वं वा चिर स्थायि गुणा धि कम् ॥ १२॥

सरिसव राई तैल गुणाः।

भा० व्यवायि सूक्ष्म तीक्ष्ण उष्ण और सरत्व इनसे मेदका क्षय ॥ धीरे २ करता है इस वास्ते तैल लेखन कहा है ॥ १०॥ पतले मल को वान्ध ता है और उस स्वलित को निकाल ता है ॥ उस्से तैल ग्राहिक और सारक कहा है ॥ ११॥ पका हुवा घृत वरस भर के ऊपर हीन वीर्य होता है ॥ और तैल कच्चा वा पका हुवा

विरस्थायि गुणमें अधिक है ॥१२॥ सरसों और राई इनके तेलका गुण ॥

दीपनं सार्षपं तैलं कटु पाक रसं लघु ॥ लेखनं स्पर्श वीर्य्योष्णं तीक्ष्णं पित्तास्त्र दूषकम् ॥ १३ ॥ कफमेदोऽनिला शोघ्न शिरः कर्णा मयापहम् ॥ कण्डू कुष्ट कृमि श्वित्र कोठ दुष्ट कृमि प्रणुत् ॥ १४ ॥ तद्वद्राजिक योस्तैलं विशेषान्मूत्र कृच्छ्र कृत ॥

भा० सरसों का तेल दीपन पाक और रस में कटु हलका लेखन स्पर्श और वीर्य्य में उष्ण तीक्ष्ण रक्तपित्त का दूषक ॥ १३ ॥ कफ मेद वात तथा सीर त्रिगे रोग करण रोग इनका नाशक ॥ और कंडू कुष्ट कृमि श्वित्र कोठ दुष्ट कृमि इनका नाशक ॥१४ वैसेही राइयोंका तेल है विशेष करके मल मूत्र कृच्छ्र का करनेवाला है ॥

राजि कयोः कृष्ण राई आरक्त राई द्वयोः ॥ १५ ॥ तौरी तैल गुणाः ॥ तीक्ष्णोष्णं तुवरी तैलं लघु ग्राहि कफास्त्रजित् ॥ वन्हि कृद्विष हृत्कण्डू कुष्ट कोठ कृमि प्रणुत् ॥ १६ ॥ मेदो दोषा पहञ्चापि व्रण शोथ हरं परम् ॥ अथ अतसी तैल गुणाः ॥

भा० राई काली और लाल दोनों का ॥ तुवरी तैल । तुवरी तैल तीखा उष्ण हलका काबिज कफ रक्त को जीतनेंवाला ॥ अग्नि को करनें वाला विष नाशक और खुजली कुष्ट कोठ कृमि इनका नाशक ॥ १६ ॥ मेद दोष का नाशक और परम व्रण शोथका नाशक ॥ अनन्तर अलसीके तेल का गुण ॥

अतसी तैल माग्नेयं स्निग्धोष्णं कफ पित्त कृत् ॥ कटु पाक म चक्षुष्यं बल्यं वात हरं गुरु ॥ १६ ॥ मल कृद्रसतः स्वादु ग्राहि त्वग् दोष हृद्घनम् ॥

वस्तौ पाने तथाभ्यङ्गे नस्ये कर्णस्य पूरणे ॥ १७॥ अ
नुपान विधौ चापि प्रयोज्यं वात शान्तये ॥

भा० अलसीका तेल आग्नेय चिकना उष्ण कफ पित्त को करनें वाला ॥ पाक में कटु नेत्र के अहित बल के हित वात नाशक भारी होताहे ॥ १६॥ मलको करनें वाला रसमें मधुर काविज त्वचा के दोषका नाशक गाढ़ा होताहे ॥ वस्तिमें पीने में तथा अभ्यङ्ग में नासमें कानके डालनें में ॥ १७॥ अनुपान विधि मेंभी वात शान्ति के अर्थ योजना करनी चाहिये ॥

वर रे तैल गुण ॥ कुसुम्भ तैल मम्लं स्या दुष्णं गुरु
विदा हि च ॥ चक्षुर्ष्या महितं वल्यं रक्त पित्त कफ प्र
दम् ॥ १८॥ अथ खाख सवीज तैलस्य गुण ॥
तैलं तु खस बीजानां वल्यं वृष्यं गुरु स्मृतम् ॥ वात
हृत्कफ हृच्छी तं स्वादु पाक रसं च तत् ॥ १९॥

भा० अनन्तर कुसुंभ के तेल का गुण ॥ कुसुंभ का तेल खट्टा होताहे और उष्ण भारी विदाहि ॥ नेत्रों के अहित वलके हित रक्त पित्त कफ इनको करनें वालाहे ॥ १८॥ अनन्तर खस खस के तेलका गुण ॥ खस खस का तेल बलके हित शुक्र को करनें वाला भारी कहाहे ॥ वात नाशक और कफ नाशक शीतल रसपाक में मधुर वोह होताहे ॥ १९॥

एरण्ड तैल गुण ॥ एरण्ड तैलं तीक्ष्णोष्णं दीप
नं पिच्छिलं गुरु ॥ वृष्यं त्वच्यं वयः स्थापि मेधा का
न्ति बल प्रदम् ॥ २०॥ कषाया नु रसं सूक्ष्मं योनि शु
क्र विशोधनम् ॥ विस्रं स्वादु रसे पाके सतिक्तं कटुकं
सरम् ॥ २१॥ विषम ज्वर हृद्रोग पृष्ठ गुह्यादि शूल
नुत् ॥ हन्ति वातो दरा नाह गुल्मा ष्ठीला कटिग्रहान् ॥ २२

भा० अनन्तर अंडीके तैल का गुण ॥ अंडीका तैल तीखा गरम दीपन पिच्छिल भारी ॥ शुक्र को करनें वाला त्वचाके हित वयको स्थापन करनेंवाला मेधा कान्ति बल इनको करनें वालाहै ॥ २०॥ पीकेसे कसेला सूक्ष्म योनि शुक्र का शोधन ॥ दुर्गंधि युक्त रसमें मधुर और पाक में कुछ तिक्त कटुक सर ॥ २१॥ विषम ज्वर हृद रोग पीठ गुदा आदिके मूलका नाशक है ॥ वातो दर अफारा वाय गोला अष्ठीला कटिग्रह ॥ २२॥

वात शोणित विड् बन्ध ब्रध्न शोथा मविद्र धीन् ॥ आम वात गजेन्द्रस्य शरीर वन चारिणः ॥ २३॥ एकए व निहन्ताय मेरण्ड स्नेह केशरी ॥ राल तैल गुणाः तैलं सर्जर सोद्भूतं विस्फोट व्रण नाशनम् ॥ कुष्ठपा मा क्रिमि हरं वात श्लेष्मा मया पहम् ॥ २४॥ सर्व तैल गुणाः। तैलं स्वयोनि गुण कृद्वाग् भटेना खिलं मतम् ॥ अतः शेषस्य तैलस्य गुणा ज्ञेया स्वयोनिव त् ॥ २५॥ इति श्री भाव प्रकाशे तैल वर्गः ॥

भा० वात रक्त बद्ध मल वद सूजन आम विद्रधि इनको नाश करता है ॥ शरीर रूपी बन में विचरनें वाले आम वात रूपी गजेंद्र को ॥ २३॥ एकही नाश करनें वाला अंडी रूप सिंह है ॥ अनन्तर राल के तैलका गुण ॥ रालका तैल विस्फोट व्रण इन का नाशक है ॥ और कुष्ठ पामा कृमि इनका नाशक तथा वात कफ के रोग कानाशक है ॥ २४॥ सब तैल के गुण ॥ जिसका तैल होताहै उसीके समान गुण में होताहै ऐसा वाग भटने सब तैलों कागुण मानाहै ॥ इस वास्ते वाकी तैलके गुण अपनें कारण के समान। जानना चाहिये ॥ २५॥

इति भाव प्रकाशे तैलवर्गः॥

अथ सन्धानवर्गः

तत्र काञ्जिकस्य लक्षणं गुणाश्च।

सन्धितं धान्यमण्डादि काञ्जिकं कथ्यते जनैः॥का
ञ्जिकं भेदि तीक्ष्णोष्णं रोचनं पाचनं लघु॥२६॥ दा
हज्वरहरं स्पर्शात्पानात् वातकफापहम्॥ माषादि
वटकैर्यत्तु क्रियते तद् गुणाधिकम्॥२७॥ लघुवा
तहरन्तत्तु रोचनं पाचनं परम्॥

भा० अनन्तर सन्धान वर्गः॥ उसमें कांजी का लक्षण और गुण॥ सन्धान किया हुवा धान्य मंडादिक को जन कांजी कहते हैं॥ कांजी भेदन करनें वाली तीखी उष्ण रोचन पाचन हलकी होतीहे॥२६॥ स्पर्श से दाह ज्वर की नाशक और पीने से वात कफ की नाशक है॥ उड़द आदिके बड़े डालके जो की जाती है वोह गुणमें अधिक होतीहै॥२७॥ हलकी वात नाशक रोचन परम पाचन होतीहै॥

शूलाजीर्णविबन्धाम नाशनं बस्तिशोधनम्॥२८॥
शोषमूर्च्छाभ्रमार्त्तानां मदकण्डूविशोषिणाम्।कु
ष्ठिनां रक्तपित्तीनां काञ्जिकं न प्रशस्यते॥२९॥
पाण्डुरोगे यक्ष्मणि च तथा शोथातुरेषु च॥क्ष
तक्षीणे तथा श्रान्ते मन्दज्वरनिपीडिते॥३०॥रा
ते वान्तु हितं प्रोक्तं काञ्जिकं दोषकारकम्॥

अथ तुषोदकस्य लक्षणं गुणाश्च

भा० शूल अजीर्ण विबन्ध आम इनका नाशक बस्ति शोधन॥२८॥ शोष मूर्छा भ्रम इनसे पीडित को और मद कंडू विशोष वालोंको॥ कुष्ट वालोंको रक्तपित्त वालों को कांजी अच्छी नहीहे॥२९॥ पांडु रोग राज यक्ष्मा तथा शोथ से

पीड़ित ॥ क्षत क्षीण तथा श्रान्त मन्द ज्वर से पीड़ित ॥ ३०॥ इनको कांजी और दोष कारक कहीहै ॥ अनन्तर तुषोदक का लक्षण और गुण ॥

तुषोदकं यवै रामैः सतुषैः शकली कृतैः । यवैः उदके संहितैः सन्धान वर्गोक्त त्वात् ॥ तुषाम्बु दीपनं हृद्यं पाण्डु क्रिमि गदा पहम् । तीक्ष्णोष्णं पाचनं पित्त रक्त कृद्वस्ति शूल नुत् ॥ ३१॥

अथ सौवीरस्य लक्षणं गुणाश्च

सौवी रन्तु यवै रामैः पक्वै र्वा निस्तुषैः कृतम् ॥ गोधूमै रपि सौवीर माचार्य्याः केचि दूचिरे ॥ ३२॥ सौवीरन्तु ग्रह ण्यर्शः कफ घ्नं भेदि दीपनम् ॥ उदावर्त्ता ङ्ग मर्दास्थि शूलाना हेषु शस्य ते ॥ ३३॥

भा० मे छिलके तक कच्चे टुकड़े किये हुवे जवों से तुषोदक होताहै ॥ उदक मे संहित यवों से क्योंकि संधान वर्ग में कहने से ॥ तुषोदक दीपन हृद्य पांडु रोग क्रिमि रोग इनका नाशक ॥ तीक्ष्ण उष्ण पाचन पित्त रक्त को करने वाला वस्ति शूलका नाशक है ॥ ३१॥ अनन्तर सौवीर का लक्षण और गुण ॥ कच्चे जव अथवा पके हुवे वे छिलकों के से किया हुवा सौवीर है ॥ कोई आचार्य्य गेहूं सेभी सौवीर होताहै ऐसा कहते हैं ॥ ३२॥ सौवीर संग्रहणी ववासीर कफ इनका नाशक भेदि दीपन है ॥ उदावर्त्त अङ्गमर्द अस्थि शूल अफारा इनमें प्रशस्त है ॥ ३३॥

अथारनालस्य लक्षणं गुणाश्च।

आरनालन्तु गोधूमै रामैः स्यान्नि स्तुषी कृतैः ॥ पक्वै र्वा सन्धि तैस्तत्तु सौवीर सदृशं गुणैः ॥ ३४॥

अथ धान्याम्लस्य लक्षणं गुणाश्च।

भा० अनन्तरआरनालका लक्षण और गुण। दे छिलके के कच्चे गेहूं येंसे आरनाल होताहै॥ अथवा पके सन्धान किये उनसे वोह सो वीर के सदृश गुणमें होताहै॥ ३४॥ अनंतर धान्याम्ल का लक्षण और गुण॥

धान्याम्लं शालि चूर्णञ्च कोद्रवा दि कृतं भवेत्॥
धान्याम्लं धान्य योनि त्वात्प्रीणनं लघु दीपनम्॥३५
अरुची वात रोगेषु सर्वेष्वा स्थापने हितम्॥

अथ शिराडा क्या लक्षणं गुणाश्च

शिरण्डा की राजि का युक्तैः स्यान्मूलकदल द्रवैः॥
सर्षप स्वर से नापि शालि पिष्ट क संयुतैः॥ ३६॥
सन्धि तै रिति शेषः।

भा० चावल का चूर्ण और कोदो आदि से बनाया हुवा धान्याम्ल होताहै॥ धान्य से होने से धान्याम्ल होताहै वोह प्रीणन हलका दीपन है॥३५॥ अरुचि में वातरोग में और सब आस्थापन में हितहै॥ अनन्तर शिराडा की का लक्षण और गुण॥ राई से युक्त मूलीके पत्तों कारस॥ और सरसों के स्वरस से भी चावलकी पिठी से युक्त इनसे शिण्डा की होतीहै॥ ३६॥ सन्धितैरिति शेषः

शिराडाकी रोचनी गुर्वी पित्त श्लेष्म करी स्मृता॥

अथ शुक्तस्य लक्षणं गुणाश्च

कन्द मूल फला दीनि सस्नेह लवणा नि च॥ यत्र
द्रव्ये ऽभि सूयन्ते तच्छु क्त मभि धी यते॥ ३७॥
शुक्तं कफघ्नं तीक्ष्णोष्णं रोच नं पाचनं लघु॥ पां-
ड्वक्रिमि हरं रूक्षं भेदनं रक्त पित्त कृत॥३८॥

अथ सन्धानस्य लक्षणं गुणाश्च।

भा० पिराडा की रोचन भारी पित्त कफ को करनें वाली कहीहै ॥ अनन्तर शुक्त का लक्षण और गुण। कन्द मूल फल आदि और चिकनाई लवण॥ येह जिस द्रव्य में पड़ते हैं उसको शुक्त कहते हैं ॥ ३७॥
शुक्त कफ नाशक तीखा उष्ण रोचन पाचन हलका ॥ पाण्डु क्रिमि का नाशक रूखा भेदन रक्त पित्त का करनें वाला है ॥ ३८॥

अनन्तर सन्धान का लक्षण और गुण ॥

कन्द मूल फलाढ्यं यत् तत्तु विज्ञेय मासुतम् । तद्रुच्यं पाचनं वात हरं लघु विशेषतः ॥ ३९ ॥

अथ मद्यस्य नामानि लक्षणं गुणाश्च।

मद्यन्तु सीधुर्मैरेय मिराच मदिरा सुरा ॥ कादम्बरी वारुणी च हालापि बल वल्लभा ॥४०॥ यत्स्यं यन्मादकं लोके तन्म द्य मभि धीयते ॥ यथारिष्टं सुरा सीधु रास वाद्य मने कधा ॥४१॥ मद्यं सर्वभवे दुष्णं पित्त कृद्वात नाशनम् ॥ भेदनं शीघ्र पाकञ्च रूक्षं कफ हरं परम् ॥ ४२॥ अम्लञ्च दीपनं रुच्यं पाचनं चाशु कारि च ॥ तीक्ष्णं सूक्ष्मञ्च विशदं व्यवा यिच विकाशि च ॥ ४३ ॥

भा० कंद मूल फल से युक्त जो होताहै उसको आसुत जानना चाहिये ॥ वोह रुचि को करनें वाला पाचन वात नाशक विशेष करके हलका होताहै ॥ ३९॥ अनन्तर मद्यके नाम लक्षण और गुण। मद्य सीधू मैरेय इरा मदिरा सुरा॥ कादंबरी वारुणी हाला बल वल्लभा ॥ येह मदिरा के नाम हैं ॥ ४०॥ जो पानी नशा करनें वाला है उसको लोग मद्य कहते हैं ॥ जैसे अरिष्ट सुरा सीधु और आसव आदि अनेक प्रकार के हैं ॥४१॥ सब मद्य उष्ण पित्त करनें वाले वात नाशक ॥ भेदन शीघ्र पाक रूखे परम कफ नाशक हैं ॥ ४२ ॥

और खट्टे दीपन रुचि को करनें वाले पाचन आशुकारी ॥ तीक्ष्ण सूक्ष्म विशद व्यवायि और विकाशि होतेहैं ॥४३॥

अथारिष्टस्य लक्षणं गुणाश्च।

पक्वौषधाम्बु सिद्धं यन्मद्यं तत् स्याद रिष्टकम् ॥ (क) अरिष्टं मद्य मिति लोके। यथा द्राक्षा रिष्टम्। दश मूला रिष्टम्। वव्बू ला रिष्ट मिति। अरिष्टं लघु पाकेन सर्व तश्च गुणा धिकम्॥ अरिष्टस्य गुणा ज्ञेया वीज द्रव्य गुणैः समाः ॥४४॥

भा० अनन्तर अरिष्ट के लक्षण और गुण॥ पक्व औषध का जो सिद्ध जलहै उसको मद्य कहेते हे और वो अरिष्टकहै ॥ (क) लोक में मद्य कहेते हैं। जैसे द्राक्षा रिष्ट। दश मूला रिष्ट। ववूला रिष्ट इस प्रकार। अरिष्ट पाक करके हलका और सबसे गुणमें अधिक होताहै ॥ वीजद्रव्य। गुणके समान अरिष्ट का गुण जानना चाहिये ॥४४॥

अथ सुरा पान लक्षणं गुणाश्च ॥

शालि षष्टि कपिष्टादि कृतं मद्यं सुरा स्मृता ॥ सुरा गुर्वी बलस्तन्य पुष्टि मेदः कफ प्रदा॥४५॥ ग्राहि शोथघ्न गुल्मार्शो ग्रहणी मूत्र कृच्छ्र नुत् ॥ अथ सुरा भेदो वारुणी तस्या लक्षणं गुणाश्च ॥४६॥

भा० अनन्तर सुरा पानका लक्षण और गुण॥ सांठी चांवल की पिट्ठी आदिसे बनाया हुवा मद्यको सुरा कहाहै ॥ सुराभारी बल दुग्ध पुष्टि मेद कफ को करनेंवाली॥४५॥ काविज्ञ सूजन वाय गोला ववासीर संग्रह णी मूत्र कृच्छ्र इनका नाशक है॥ अनन्तर सुराका भेद वारुणी उसका लक्षण और गुण ॥४६॥

पुनर्नवा शिला पिष्टे र्वारुणी विहिता स्मृता ॥

संहिते स्ताल खर्जूर रसे यां सापि वारुणी ॥४७॥
सुरा वद्वारुणी लघ्वी पीनसा ध्मान शूलनुत् ॥
सुरा तो भेदार्थ लघ्वी ति।

अथ सीधु द्वयस्य लक्षणं गुणा श्च।

भा० पुनर्नवा शिला पिष्ट से विहित वारुणी कही है ॥ और ताड खजूर इनके रसके संधान से जो होतीहै वोभी वारुणी है ॥४७॥ सुराके समान वारुणी हलकी और पीनस आध्मान शूल इनकी नाशक है ॥ सुरासे भेदार्थ हलकी ऐसा कहाहै ॥ अनन्तर दोनों सीधू का लक्षण और गुण ॥

इक्षोः पक्वैः रसैः सिद्धः सीधुः पक्वरसश्च सः ॥ आमै स्तैरेव यः सीधुः सच शीतरसः स्मृतः ॥४८॥
सीधुः पक्व रसैः श्रेयः स्वराग्नि बल वर्ण कृत् ॥ वात पित्त करः सद्यः स्नेहनो रोचनो हरेत् ॥४९॥
विबन्ध मेदः शोफार्शः शोफोदर कफामयान् ॥ तस्मा दल्प गुणः शीतः रसः संलेखनः स्मृतः ॥५०

अथा सवस्य लक्षणं गुणाश्च।

भा० ईखके पक्क रससे सिद्ध सीधु और पक्क रस वोहै ॥ तथा उसी कच्चे रससे जो सीधू होताहै उसको शीत रस कहाहै ॥४८॥ पक्क रस सीधू श्रेयहै वोह स्वर अग्नि बल वर्ण इनको करने वाला ॥ और वात पित्त को करने वाला तत्काल ॥ स्नेहन रोचन होताहै ॥ ४९॥ और विबन्ध मेद शोफ ववासीर शोफोदर कफ के रोग इनको नाश करता है ॥ इससे अल्प गुण शीत रस कहाहै ॥ और लेखन कहाहै ॥ ५०॥ अनन्तर आसव का लक्षण और गुण ॥

यद पक्वौष धाम्बुभ्यां सिद्धं मद्यं स आसवः ॥
यथा लोहास वादिः।

आसवस्य गुणा ज्ञेया वीज द्रव्य गुणैः समाः ॥

अथ नव पुराण मद्य गुणाः ॥

मद्यं नव मभिष्यन्दि त्रिदोष जनकं सरम् ॥ अहृद्यं वृंहणं दाहि दुर्गंधं विशदं गुरु ॥ ५१॥ जीर्णन्तदे व रोचिष्णु क्रिमि श्लेष्मा निला पहम् ॥ हृद्यं सुगन्धि गुण वल्लघु स्रोतो विशोध नम् ॥ ५२॥

भा० जो अपक्व औषध के जलसे सिद्ध मद्य वोह आसव है ॥ जैसे लोहा सव आदि । आसव के गुण वीज द्रव्य के गुणके समान जानना चाहिये ॥ अनन्तर नया और पुराने मद्य का गुण । नवीन मद्य अभि ष्यन्दि त्रिदोष को करनें वाला सर ॥ अहृद्य पुष्ट दाह को करनें वाला दुर्गन्धि विशद भारी ॥ ५१ ॥ और वोही जीर्ण पुराना रुचिका करनें वाला क्रमि कफ वात इनका नाशक ॥ हृद्य सुगन्धि गुण युक्त हलका सोतों का शोधन करनें वाला है ॥ ५२ ॥

अथ सात्विकानां मद्यं पिवतां चेष्टा विशेषाः ॥ ॥

सात्विके गीत हास्या दि राजसे साहसा दिकम् ॥ तामसे निन्द्य कर्माणि निद्रा ञ्च मदिरा चरेत् ॥ ५३॥ आचरेत् कुर्य्यात् । विधिना मात्र या काले हितै र न्नैर्यथा वलम् ॥ प्रहृष्टो यः पिवे न्मद्यं तस्य स्याद मृतं यथा ॥ ५४॥ ५४ ॥ ५४ ॥

भा० मद्य पीने वाले सात्विकादि योंके चेष्टा विशेष । सात्विक के गीत हास्य आदि राजसमें साहसा दिक ॥ ५३ ॥ तामसमें निन्द्य कर्म और निद्रा इनको मदिरा करती है ॥ विधि और मात्रा से समय पर हित अन्नके साथ वला नुसार ॥ हर्ष युक्त हुवा जो पीता है उसको मद्य अमृत के समान जानना चाहिये ॥ ५४॥

किन्तु मद्यं स्वभावेन यथै वान्नं तथा स्मृतम् ॥ अयुक्ति युक्तं रोगाय युक्ति युक्तं यथा मृतम् ॥ ५५ ॥

अथ मद्यानां गन्धनाशनोपायः॥

मुस्तैल वालु गद जीर कधान्य कैल। यश्चर्व यन्नु सदसि वाचं माभिव्य नक्ति॥ स्वाभाविकं मुखज मुञ्झ निपूति गन्धं। गन्धञ्च मद्यल शुनादि भवञ्च नूनम्॥ ५६॥ इति श्री भाव प्रकाशे सन्धान वर्गः॥

भा० मद्य स्वभाव से जैसे अन्न वैसे कहाहै॥ लेकिन बेतर कीव से पीया हुवा रोग॥ को करता है और तर कीव के साथ पीया हुवा अमृत के समान होताहै॥ ५५॥ अनन्तर मद्यों का गन्ध नाशन उपाय॥ ॥ नागर मोथा लानुका कुट जीरा धनियां इलाय ची इनको चबाकर जो सभामें बोले उसकी स्वाभाविक मुखकी गन्धि होतीहै और दुर्गंध तथा मद्य लसुन आदिकी गन्ध निश्चय दूर होतीहै॥ ५६॥

इति भाव प्रकाशे सन्धान वर्गः॥ + ॥

अथ मधुवर्गः

तत्र मधुनो नामानि गुणाश्च।

मधु माक्षी कमाक्षीक क्षौद्र सारघ्य मीरितम्॥ माक्षिका वरटी भृङ्ग वान्त पुष्पर सोद्भवम्॥ ५७॥ मधु शीतं लघु स्वादु रूक्षं ग्राहि विलेखनम्॥ चक्षुष्यं दीपनं स्वर्यं व्रण शोधन रोपणम्॥ ५८॥ सौकुमार्य करं सूक्ष्मं परं स्रोतो विशोधनम्॥ कषाया नुरसं ह्लादि प्रसाद जनकं परम्॥ ५९॥

भा० अनन्तर मधु वर्गः। उसमें मधुके नाम और गुण। मधु माक्षी कमाक्षीक क्षौद्र सारघ्य येह मधुकेनाम हैं॥ मक्खी बर्रै भँवरा इनका गेरा हुवा पुष्परस से उत्पन्न है॥ ५७॥ मधु शीतल हलका मधुर रूखा काविज लेखन। नेत्रके हित दीपन स्वरको अच्छा करने वाला व्रण शोधन रोपण॥ ५८॥ सुकुमारता को करनें

वाला सूक्ष्म अत्यन्त सोतों का शोधन ॥ पीछे से कसैला हर्षको देनें वाला और प रम स्वच्छता को करनें वाला ॥ ५९ ॥

वर्ण्यं मेधा करं वृष्यं विशदं रोचनं हरेत् ॥ कुष्ठार्शः कास पित्तास्त्र कफ मेह क्लम कृमीन् ॥ ६० ॥ मेदस्तृ ष्णा वमि श्वास हिक्कातीसार विड् ग्राहान् ॥ दाह क्षत क्षयांस्तत्तु योग वाह्य ल्प वात लम् ॥ ६१ ॥ अथ मधु भेदाः । माक्षिकं भ्रामरं क्षौद्रं पैत्तिकं छात्र मित्यपि ॥ आर्घ्यं मौद्दालकं दाल मित्यष्टौ मधु जातयः ॥ ६२ ॥ अथ तेषां लक्षणं गुणा श्च ॥

भा० वर्णके हित कान्ति को करनें वाला पुष्ट को करनें वाला विशद रोचन है और ॥ कुष्ठ ववासीर कास रक्त पित्त कफ प्रमेह क्लम क्रमि इनको ॥ ६० ॥ और मेद तृषा वमन श्वास हिचकी अतीसार मल ग्रह इनको तथा ॥ दाह क्षत क्षय इनको भी दूरकरता है और योग वाही अल्य वात को करनें वाला है ॥ ६१ ॥ अनन्तर मधु के भेद। माक्षिक भ्रामर क्षौद्र पैत्तिक छात्र ॥ आर्घ्य औद्दालक और दाल इस प्र० कार आठ मधुकी जाती है ॥ ६२ ॥ अनन्तर उनके लक्षण और गुण ।

तत्र माक्षिकस्य लक्षणम् ।

माक्षिकाः पिङ्ग वर्णास्तु महत्यो मधु माक्षिका ॥ ताभिः कृतं तैल वर्णं माक्षिकं परि कीर्त्ति तम् ॥ ६३ ॥ माक्षिकं मधुषु श्रेष्ठं नेत्रा मय हरं लघु ॥ कामलार्शः क्षत श्वास कास क्षय विनाशनम् ॥ ६४ ॥

अथ भ्रामरस्य लक्षणं गुणा श्च ॥

किञ्चित्सूक्ष्मैः प्रसिद्धेभ्यः षट्पदेभ्योऽलिभिश्चितम् निर्मलं स्फटिकाभं यत्तन्मधु भ्रामरं स्मृतम् ॥ ६५ ॥

भा० उक्त माक्षिक का लक्षण। माक्षिक पिङ्ग वर्ण वडी मधु मक्खी होतीहै ॥ उनसेकिया हुवा तेल के समान वर्ण ऐसे को माक्षिक कहाहै ॥ ६३॥ माक्षिक मधु श्रेष्ठ नेत्ररोगका नाशक हलका होताहै और कामला बवासीर क्षत श्वास कास क्षय इनका नाशक है ॥ ६४॥ अनन्तर भ्रामर का लक्षण और गुण ॥ किंचित् सूक्ष्म प्रसिद्ध षट पद भंव ऐसे संचय किया हुवा ॥ निर्मल स्फटिक के समान जो होताहै। उसको भ्रामर कहतेहैं ॥ ६५॥

भ्रामरं रक्त पित्त घ्नं मूत्र जाड्य करं गुरु ॥ स्वादु पाक म
भिष्यन्दि विशेषा त्पिच्छिलं हिमम् ॥ ६६ ॥

अथ क्षौद्रस्य लक्षणं गुणाश्च ॥

माक्षिकाः कपिलाः सूक्ष्माः क्षुद्रा ख्यास्तत्कृतं मधु ॥
मुनिभिः क्षौद्र मित्युक्तं तद्वर्णात् कपिलं भवेत् ॥ ६७
गुणै र्माक्षिकवत् क्षौद्रं विशेषा न्मेहना शनम् ॥

अथ पौत्ति कस्य लक्षणं गुणाः ॥

भा० भ्रामर रक्त पित्त का नाशक मूत्र जडता इनको करने वाला भारी ॥ पाकमें मधुर अभिष्यन्दि विशेष करके पिच्छिल शीतल होताहै ॥ ६६॥
अनन्तर क्षौद्र का लक्षण और गुण ॥ ॥
सूक्ष्म कपिल क्षुद्र नाम जो मक्षिका होती है उनका किया हुवा जो मधुहै ॥ उसको मुनियोंनें क्षौद्र ऐसा कहाहै और वोह वर्ण में कपिल होताहै ॥ ६७ ॥ गुणमें माक्षिक के समान क्षौद्र होताहै विशेष करके प्रमेह नाशक है ॥
अनन्तर पौत्तिक का लक्षण और गुण ॥ ॥

कृष्णा या मश कोपमा लघुतरा प्रायो महा पीडिका॥
वृक्षा नान्तरु कोट रान्तर गताः पुष्या सर्वं कुर्वते ॥ ६८
तास्तज्ज्ञैरिह पूतिका निगदिता स्ताभिःकृतंमाध्विया
तुल्यंयत् मधु तद्वने चरजनैः संकीर्त्तितं पौत्तिकम् ६९

पौत्तिकं मधु रूक्षोष्णं पित्त दाहास्र वात कृत् ॥ विदा
हि मेह कृच्छ्र घ्नं ग्रन्थ्यादि क्षत शोषि च ॥ ७० ॥

भा० जो काली मच्छर के समान बहुत छोटी प्राय: बड़ी पीड़िका ॥ पुरानें वृक्ष के खोड़ में रहने वाली पुष्पके आसव को करती है ॥ ६८ ॥ उन को उनके जानने वाले मनुष्योंनें यहां पर पुत्तिका ऐसा कहाहै ॥ उनका बनाया हुवा घृत के समान ॥ जो मधु होताहै उसको बनके विचर ने वाले जनोंनें पौत्तिक कहाहै ॥ ६९ ॥ पौत्तिक मधु रूखा उष्ण पित्त दाह रक्त वात इनको करनेवाला ॥ विदाहि और प्रमेह मूत्र कृच्छ्र इनका नाशक तथा गांठ आदि क्षत शोषि भीहै ॥ ७० ॥

छात्रस्य लक्षणं गुणा: ॥

वरटा: कपिला: पीता: प्रायो हिम वतो वने ॥ कुर्व
न्ति छत्र का कारं तज्ज्ञं छात्रं मधु स्मृतम् ॥ ७१ ॥
छात्रं कपिल पीतं स्यात् पिच्छिलं शीतलं गुरु ॥ स्वादु
पाकं कृमि श्वित्र रक्त पित्त प्रमेह जित् ॥ ७२ ॥
भ्रम तृण्मोह विष हृत् तर्पणं च गुणाधि कम् ॥

अथार्घ्य स्य लक्षणं गुणा: ।

मधूक वृक्ष निर्य्यासं जरत्कार्वा श्रमोद्भवम् ॥ स्रव
न्त्या र्घ्य न्तदा ख्यातं श्वेत कं मालवे पुन: ॥ ७३ ॥
तीक्ष्ण तुण्डा स्तु या पीता मक्षिका: षट् पदो मा: ।
आर्घ्या स्ता स्त त्कृतं यत्त दार्घ्य मित्य परे जगु: ॥ ७४
आर्घ्य मध्वति चक्षुष्यं कफ पित्त हरं परम् ॥ कषा
यं कटुकं पाके तिक्तञ्च बल पुष्टि कृत् ॥ ७५ ॥

भा० ॥ ॥ छात्र का लक्षण और गुण ॥ ॥ वर्रै कपिल पीली प्राय: हि-

मान्लयके बनमें होतीहें ॥ वोह छाते के आकार को बनाती है। उसका मधु
छात्रक हो ता है ॥ छात्रकपिल पीला होताहै और पिछिल शीतल भारी ॥
पाकमें मधुर होतीहै ॥ और कृमि श्वित्र रक्त पित्त प्रमेह इनको जीतने वाला
॥ ७२॥ तथा भ्रम तृषा मोह विष इनका नाशक तर्पण गुण में अधिक होता
है॥ ॥ ॥अनन्तर अर्घ्य का लक्षण और गुण ॥ ॥ ॥
महुवे के वृक्षका गोन्द जरत्कारी श्रम में उत्पन्न ॥ भिरते हैं सफेद उसको आ
र्घ्य ऐसा कहाहै और मालवे में भी होताहै ॥ ७३॥ जो भौंरे के समान मक्खिया ती
क्ष्ण मुख वाली पीली होतीहैं ॥ वोह आर्घ्य है उनका किया हुवा जो मधु है उस
को और आचार्य्य अर्घ्य कहेते हैं ॥ ७४॥ आर्घ्य मधु अति नेत्रके हित और अ
त्यन्त कफ पित्त का नाशक है ॥ और कसेला पाक में कटु तिक्त बल पुष्टिको
करने वाला है ॥ ७५॥

अथौद्दालकस्य लक्षणं गुणाः।

प्रायो वल्मीक मध्यस्थाः कपिलाः स्वल्प कीट काः।
कुर्वन्ति कपिलं स्वल्पं तत्स्या दौद्दालकं मधु ॥ ७६॥
औद्दालकं रुचि करं स्वर्य्यं कुष्ठ विषा पहम् ॥ क
षाय मुष्ण मम्लञ्च कटु पाकञ्च पित्त कृत् ॥ ७७

अथ दालस्य लक्षणं गुणाः ॥

भा० अनन्तर औद्दालका लक्षण और गुण। बाय लता ओंके बीच रहनेवा
ली कपिल छोटे कीडे होतहैं ॥ वोह थोडा कपिल वर्ण मधु करती है उसको औद्दा-
लक मधु कहेते हैं ॥ ७६॥ औद्दालक रुचि को करने वाला स्वरके हित कुष्ट विष
का नाशक ॥ कसेला उष्ण खट्टा पाक मे कटु पित्तको करने वाला होताहै ॥ ७७॥
अनन्तर दाल का लक्षण और गुण ॥

मं स्नुत्य पतितं पुष्पा द्यत्तु पत्रो परि स्थितम् ॥ मधु
राम्ल कषा यञ्च तद्दालं मधु कीर्त्ति तम् ॥ ७८॥ दा
लं मधु लघु प्रोक्तं दीपनीयं कफा पहम् ॥

कषाया नुरसं रूक्षं रुच्यं छर्दि प्रमेह जित्॥ ७९ ॥अ
धिकं मधुरं स्निग्धं बृंहणं गुरु भारिकम् ॥
[लघु पाके गुरु भारिकं तुलितम् । अथ नव पु
राण मधु गुणाः ॥]

भा० जो पुष्प से चूकर पत्ते पर गिरा ठहरा रहता है ॥ मीठा खट्टा कसेला उस को दाल मधु कहते हैं ॥ ७८॥ दाल मधु हलका दीपन कफ नाशक कहाहै। और पीछे से कसेला रूखा रुचि को करनें वाला और वमन तथा प्रमेह को जीतनें वालाहै ॥ ७९॥ बहुत मीठा चिकना पुष्ट तोल मेंभारी ॥ पाकमें हलका और तोलमें भारी होतीहै । अनन्तर नये और पुराने मधु के गुण ॥

नवं मधु भवेत् पुष्टये नाति श्लेष्म हरं सरम् ॥ पु
राणं ग्राहकं रूक्षं मेदोघ्न मति लेखनम् ॥ ८० ॥
मधुनः शर्करा याश्च गुड स्यापि विशेषतः ॥ एक स
म्वत्सरे त्वर्त्ति पुराणत्वं स्मृतं बुधैः ॥ ८१॥
अथ मधुनः शीतस्य गुणाधिक्य मुष्णतायां निषेधः

भा० नया मधु पुष्ट होताहै बहुत कफ नाशक नहीं होता तथा सर होताहै ॥ पुराना काविज रूखा मेद नाशक अति लेखन होताहै ॥ ८०॥ मधु की शर्करा और विशेष करके गुड़की भी शर्करा ॥ एक वरस के बाद पुरानी पंडि तोंनें कहीहै॥ ८१॥ अनन्तर शीत मधुका गुणाधिक्य और उष्णतामें निसेध कहे तेहैं॥

विष पुष्पा दपि रसं सविषा भ्रमरा दयः ॥ गृही
त्वा मधु कुर्वन्ति तच्छीतं गुण वन्मधु ॥ ८२॥
विषान्वयात्तु दुष्णेन तु द्रव्ये णोष्णो नवा सह ॥उष्णा
र्त्तस्योष्ण काले च स्मृतं विषसमं मधु ॥ ८३॥

भा० विष पुष्प सेभी रस को विष वाले भ्रमरादि क ॥ लेकर मधु करते हैं तिस्से शीत गुण वाला मधु होता है ॥ ८२॥ विषसे उत्पन्न होने से वोह मधु उष्ण। द्रव्य के साथ ॥ उष्ण से पीड़ित को उष्ण कालमें वियके समान मधु कहा है॥ ८३॥ अथ मय नम् । मय नन्तु मधुच्छिष्टं मधु शेषञ्च । सिक्थ कम् ॥ मक्षा धारो मदन कं मधूषित मपिस्मृ तम् ॥ ८४॥ मदनं मृदु सुस्निग्धं भूतघ्नं व्रण रोपणम् भग्न सन्धान कृद्वात कुष्ठ वी सर्प रक्त जित् ॥ ८५॥

इति श्री भाव प्रकाशे मधु वर्गः।

भा० अनन्तर मोम ॥ मयन मधुच्छिष्ट मधु शेष सिक्थक ॥ मक्षा धार मदनक मधूषित येह मोम के नाम कहे हैं ॥ ८४ ॥ मोम मृदु चिकना भूतका नाशक व्रण रोपण ॥ टूटे हाड को जोड़ने वाला वात कुष्ट वीसर्प रक्त इनको जीतनेवाला है ॥ ८५॥ ॥इति भाव प्रकाशे मधु वर्गः॥ ॥

अथेक्षुवर्गः

तत्रादो इक्षो र्नामानि गुणाश्च ॥

इक्षु र्दीर्घ च्छदः प्रोक्त स्तथा भूमि रसो ऽपि च ॥ गुड मूलो ऽसि पत्रश्च तथा मधु तृणः स्मृतः ॥ १॥ इक्षवो रक्त पित्तघ्ना बल्या वृष्या कफ प्रदाः ॥ स्वादु पाक रसाः स्निग्धा गुरवो मूत्र ला हिमाः ॥ २॥

अथेक्षुभेदाः

पौण्ड्रको भीरुकश्चापि वंशकः शत पोरकः ॥का
न्तार स्तापसेक्षुश्च काण्डेक्षुः सूचि पत्रकः ॥३॥
नैपालो दीर्घ पत्रश्च नील पोरो ऽथ कोशकः इत्ये
ता जातयस्तेषां कथयामि गुणानपि ॥४॥

अथ श्वेत पौण्ड्रा भीर री गुणाः ॥

भा० अनन्तर ईख के भेद । पौण्ड्रक भीरुक वंशक शत पोरक ॥ कान्तारता
पसेक्षु काण्ड क्षु सूचि पत्रक ॥३॥ नैपाल दीर्घ पत्र नील पोर और कोशक ॥
इस प्रकार ये जाति उनकी हैं और गुणों को कहते हैं ॥४॥
अनन्तर सुफेद पौण्ड्रा भौर री उनके गुण ॥

वात पित्त प्रशमनो मधुरो रस पाकयोः ॥ सुशीतो बृं-
हणो बल्यः पौण्ड्रको भीरुकस्तथा ॥५॥

अथ कारेया कुशि आर गुणाः ॥

कोश कारो गुरुः शीतो रक्त पित्त क्षयापहः ॥ ॥
कान्तारेक्षु गुणाः ॥ कान्तारेक्षुर्गुरुर्वृष्यः श्लेष्म
लो बृंहणःसरः ॥ वंशोया गुणाः ॥ दीर्घ पोरः सु
कठिनः सक्षारो वंशकः स्मृतः ॥ शत पोरक गुणाः ।
शत पर्वा भवेत्किञ्चित्कोश कार गुणान्वितः ॥ विशे
षात्किञ्चिदुष्णश्च सक्षारः पवना पहः ॥६॥

भा० वात पित्त का शमन मधुर रस और पाक में ॥ सुशीत पुष्ट बल के हित पौं
ढा और भौरी होते हैं ॥५॥ अनन्तर काले गन्ने के गुण ॥ ॥
काला गन्ना भारी शीतल रक्त पित्त क्षय इनका नाशक है ॥ कान्तार ईख
के गुण ॥ कान्तार ईख भारी शुक्र को करने वाला कफ को करने वाला-

पुष्ट सर होताहै ॥ अनन्तर लंबी पोर का ईख ॥ बहुत कठिन क्षार के सहित वंशक कहा गया है ॥ अनन्तर शत पोर का गुण ॥ शत पोर कुछ कोश कारके समान गुणमें होताहै ॥ विशेष करके कुछ गरम क्षार के सहित वात नाशक है ॥ ६॥

तापसेक्षुगुणाः ॥

तापसेक्षुर्भवेन्मृद्वी मधुरा श्लेष्म कोपनी ॥ तर्पणी रुचि कृच्चापि वृष्याच बल कारिणी ॥ ७ ॥

काण्डेक्षुगुणाः । एवं गुणोस्तु काण्डेक्षुः स तु वात प्रकोपणः ॥ [अथ सूची पत्र नैपाली दीर्घ पत्र नील पोराणां गुणाः ॥] सूची पत्रो नील पोरो नैपालो दीर्घ पत्रकः ॥ ८ ॥ वातलाः कफ पित्त घ्नाः सकषाया विदाहिनः ॥ [मनो गुप्ता गुणाः] मनो गुप्ता वात हरी तृष्णा मय विनाशिनी ॥ सुशीता मधुरा तीव रक्त पित्त प्रणाशिनी ॥ ९ ॥

अथ बाल युव वृद्धेक्षुगुणाः ।

भा० अनन्तर ताप से क्षु के गुण । तापसे क्षु मुलायम मधुर कोप को करनें वाला ॥ तर्पण रुचि को करनें वाला शुक्रको करनें वाला बल को करनें वाला है ॥ ७ ॥ कांडे क्षुका गुण । ऐसे ही गुण वाला काण्डे क्षु होताहै और वोह वात को करनें वाला है ॥ अनन्तर सूची पत्र नैपाली दीर्घ पत्र नील पोर इनके गुण ॥ सूची पत्र नील पोर नैपाल दीर्घ पत्रक ॥ ८ ॥ येह वात को करनें वाले कफ़ पित्त के नाशक कषाय के सहित विदाहि होते हैं ॥ मनो गुप्त के गुण ॥ मनो गुप्ता वात नाशक तृषा रोगका नाशक ॥ शीतल मधुर अतीव रक्त पित्त की नाशक है ॥ ९ ॥ अनन्तर बाल युवा वृद्ध ऐसे ईखके गुण ॥

बाल इक्षुः कफं कुर्य्यान्मेदो मेह कर श्च सः ॥ ५ ॥

युवा तु वात हृत् स्वादु रीष त्तीक्ष्ण श्च पित्त नुत् ॥१०॥
रक्त पित्त हरो वृद्धः क्षत हृद्ब ल वीर्य्य कृत् ॥

भा० बाल ईख कफ को करता है और मेद मेह को करनें वाला वोह है॥ युवा वात नाशक मधुर थोड़ा तीखा पित्त नाश होताहै ॥१०॥ वृद्ध रक्त पित्त का नाशक क्षत नाशक और बल वीर्य को करनें वालाहै ॥

अथाङ्ग भेदेन भेदः ॥

मूले तु मधुरो ऽत्यर्थं मध्ये ऽपि मधुरः स्मृतः ॥ अग्रे ग्रन्थिषु विज्ञेय इक्षुः पटु रसो जनैः ॥११॥

अथ दन्त पीडितेक्षु रसस्य गुणा ॥

दन्त निष्पी डित स्येक्षो रसः पित्ता स्त्र नाशनः ॥ शर्करा सम वीर्य्यः स्या दवि दाही कफ प्रदः ॥१२॥

अथ यन्त्र पीडितेक्षु रसस्य गुणाः ।

भा० अनन्तर अंगभेदसे भेद । मूलमें अत्यन्त मधुर मध्य मेंभी मधुर कहा है॥ अग्रमें और ग्रन्थि में ईख लवण रस जन जानते है॥ ११॥ अनन्तर दन्त पीड़ित ईख के रस का गुण। दन्त पीड़ित ईखका रस रक्त पित्त का नाशक है॥ शर्करा के सम वीर्य होताहै और अवि दाही कफ को करनें वालाहै॥१२॥
अनन्तर कोल्हू में पेरे हुवे ईख के रस का गुण ॥ × ॥

मूला ग्रजन्तु ग्रन्थ्यादि पीड नान्मल सङ्क रात् ॥ किंञ्चि त्काल विधृत्या च विकृतिं याति यान्त्रि कः ॥ १३॥ तस्मा द्विदाही विष्टम्भी गुरुः स्याद् यान्त्रि को रसः॥ अथ पर्यु षितेक्षु रसस्य गुणाः ॥

रसः पर्यु षितो नेष्टो ह्य म्लो वाता पहो गुरुः ॥ कफ पि-

न्नकरः शोथी भेद नघ्नाति मूत्रलः ॥ १४ ॥

अथ पक्कस्येक्षु रसस्य गुणाः ॥ ० ॥

भा० मूल अग्र गांठ आदि के पीड़न से मल संकर से ॥ कुछ देर रखनें से कोल्हू का बिगड़ जाता है ॥ १३ ॥ इस वास्ते विदाही विष्टंभी भारी कोल्हू का रस होता है ॥ अनन्तर बासी ईखके रसका गुण ॥ बासी रस अच्छा नहीं होता और खट्टा वात नाशक भारी ॥ कफ पित्त को करनें वाला शोथ को करनें वाला है ॥ १४ ॥

अनन्तर पके हुवे ईख के रस का गुण ॥

पक्को रसो गुरुः स्निग्धः सुतीक्ष्णः कफ वात नुत् ॥ गु

ल्मा नाह प्रशमनः किञ्चि त्पित्त करः स्मृतः ॥ १५ ॥

अथेक्षुरस स्य विकाराणां गुणाः ॥

इक्षो र्विकारा स्तृड् दाह मूर्च्छा पित्तास्त्र नाशनाः ॥

गुर वो मधुरा बल्याः स्निग्धा वात हराः सराः ॥ १६

वृष्या मोह हराः शीता वृंहणा विष हारिणः ॥

अथ फाणित । इस कारा व च्छो या इति लोके ।

भा० पके का रस भारी चिकना तीखा कफ वात का नाशक ॥ और वाय गोला अफारा इनका शमन करनें वाला कुछ पित्त को करनें वाला कहा है ॥ १५ ॥ ॥ ॥ अनन्तर ईखके रसके विकारों का गुण ॥ ॥ ईख के विकार तृषा दाह मूर्च्छा रक्त पित्त इनके नाशक हैं ॥ भारी मधुर बलके हित चिकने वातनाशक सर हैं ॥ १६ ॥ शुक्र को करनें वाला मोह नाशक शीतल पुष्ट विष नाशक है ॥

तस्य लक्षणं गुणा श्च ॥

इक्षोः रसस्तु यः पक्कः किञ्चि द्गाढो बहु द्रवः ॥ स रा

ते क्षुवि कारेषु ख्यातः फाणित संज्ञया ॥ १७ ॥

फाणितं गुर्वभिष्यन्दि बृंहणं कफ शुक्र कृत् ॥ वात पित्त श्रमान् हन्ति मूत्र बस्ति विशोधनम् ॥ १८ ॥

अथ मत्स्य रुडी । राब काकब खण्ड राब इ ति लोके । तस्यं लक्षणं गुणा श्च ।

भा॰ अनन्तर राब । उसका लक्षण और गुण । ईख का रस पका हुवा कुछ गाढा बहुत पतला ॥ वोही ईख के विकारों मे फाणित नामसे प्रसिद्ध है ॥ १७ ॥ राब भारी अभिष्यन्दि पुष्ट कफ शुक्रको करनें वाली ॥ वात पित्त श्रमों की नाश कर है और मूत्र वस्ति शोधन है ॥ १८ ॥ अनन्तर खांड राब । उसका लक्षण और गुण ॥

इक्षो रसोयः सम्प क्वो घनः किञ्चि द् द्रवा न्वितः मन्दं यत् स्यन्दते तस्मा त्तन्मत्स्य रुडी निगद्यते ॥ १९ ॥ मत्स्य रुडी भेदिनी बल्या लव्वी पित्ता निला प हा ॥ मधुरा बृंहणी वृष्या रक्त दोष पहास्मृता ॥ २० ॥

अथ गुडस्य लक्षणं गुणा श्च ॥

भा॰ ईखका रस जो पका हुवा गाढा कुछ पतला ॥ जो थोड़ा दि घल ताहै । इस वास्ते उसको मत्स्य डी कहेते हैं ॥ १९ ॥ मत्स्य डी भेदन बलके हित हल॰ की पित्त वात की नाशक ॥ मधुर पुष्ट शुक्र को करनें वाली रक्त दोष की नाशक कहीहै २० ॥ अनन्तर गुड का लक्षण और गुण ॥

इक्षो रसो यः सम्प क्वो जायते लोष्ट वद्दृढः ॥ सगु डो गौड देशे तु मत्स्य रुड्येव गुडो मतः २१ गुडो वृ ष्यो गुरुः स्निग्धो वातघ्नो मूत्र शोधनः ॥ नाति पि त्त हरो मेदः कफ कृमि बल प्रदः ॥ २२ ॥

अथ पुराण गुडस्य गुणाः ॥

भा० ईखका रस जो पका हुआ ढेले के मानिन्द दृढ होताहै ॥ वोह गुड गौड देश में गत्त्यंडी को गुड कहेते है ॥ २३॥ गुड शुक्र को करनें वाला भारी चिकना वात नाशक मूत्रका शोधन करनें वाला ॥ न अति पित्त का नाशक मेद कफ कृमि बल इनको करने वाला है ॥ २२॥ अनन्तर पुरानें गुडका गुण ॥

गुडो जीर्णो लघुः पथ्यो ऽनभिष्यन्द्यग्निपुष्टिकृत्
पित्तघ्नो मधुरो वृष्यो वातघ्नो ऽसृक्प्रसादनः॥ २३॥
नवीन गुडस्य गुणाः। गुडो नवः कफश्वासकासकृमिकरो ऽग्निकृत्॥ श्लेष्माणमाशु विनिहन्ति सदार्द्रकेण पित्तं निहन्ति च तदेव हरीतकीभिः॥ शुण्ठ्या समं हरति वातमशेषमित्थं दोषत्रयक्षयकराय नमो गुडाय॥२४॥ अथ खांड गुणाः ॥

भा० पुराना गुड हलका पथ्य अनभिष्यन्दि अग्नि पुष्टि को करनें वाला ॥ पित्त नाशक मधुर शुक्रको करनें वाला वात नाशक रुधिर को स्वच्छ करनें वाला है॥ २३॥ अनन्तर नये गुड का गुण ॥ नया गुड कफ खास कास कृमि को करनें वाला अग्नि दीपन है ॥ गुड अद्रक के साथ शीघ्र कफ को नाश करता है हड़के साथ पित्त को नाश करता है सोंठ के साथ अशेष वात को नाशकरता है ऐसे त्रिदोष नाशक गुड को नमस्कार ॥ २४॥ अनन्तर खांड का गुण ॥

खण्डन्तु मधुरं वृष्यं चक्षुष्यं बृंहणं हिमम्॥ वात पित्त हरं स्निग्धं बल्यं वान्ति हरं परम् ॥२५॥
खण्ड मति प्रसिद्धम्। अथ सिता। चीनी इति लोकप्रसिद्धा। तस्य लक्षणं गुणाः। खण्डन्तु सिकता रूपं सुश्वेतं शर्करा सिता ॥ सितासु मधुरा रुच्या वात पित्ता स्र दाह हृत ॥ २६॥

भा० खांड मधुर शुक्र को करनें वाली नेत्र के हित पुष्ट शीतल ॥ वात पित्त की नाशक चिकनी बलके हित परम वमन की नाशक है ॥ २५ ॥ खांड अति प्रसिद्ध है । अनन्तर चीनी । इस प्रकार लोक में प्रसिद्ध है ॥ उसका लक्षण और गुण ॥ खांड तो वालू सरीखी होती है और बहुत सुफेद शर्करा को चीनी कहते हैं चीनी बहुत मधुर रुचि को करनें वाली और वात रक्त पित्त दाह इनको नाश करनें वाली है ॥ २६ ॥

मूर्च्छा छर्दि ज्वरान् हन्ति सुशीता शुक्र कारिणी ॥

अथ गुड़ शर्करा मिश्री द्वयो र्गुणाः ॥

भवे त्तुल्य सिता शीता रक्त पित्त हरी लघुः ॥ सितो पला सरा लघ्वी वात पित्त हरी हिमा ॥ २७ ॥

मधु खण्ड गुणाः । मधुजा शर्करा रूक्षा कफ पित्त हरी गुरुः ॥ छर्द्य तीसार तृड् दाह रक्त हृत् तुवरा हिमाः ॥ २८ ॥ यथा यथैषां नैर्मल्यं मधुरत्वं तथा तथा ॥ स्नेह लाघव शैत्यादि सरत्वञ्च तथा तथा ॥ २९

॥ इति श्री भाव प्रकाशे इक्षु वर्गः समाप्तो द्रव वर्गः ॥

भा० और मूर्च्छा वमन ज्वर इनको नाश करती है बहुत शीतल शुक्र को करनें वाली है ॥ अनन्तर गुड शर्करा मिश्री दोनों के गुण । गुड शर्करा शीतल रक्त पित्त की नाशक हलकी होती है ॥ और मिश्री सरहलकी वात पित्त की नाशक शीतल है ॥ २७ ॥ अनन्तर मधु खंडके गुण । मधुकी शर्करा रूखी कफ पित्त की नाशक भारी ॥ वमन अतीसार तृषा दाह रक्त इनकी नाशक कसेली शीतल होती है ॥ २८ ॥ जैसी जैसी सफाई होती है वैसी२ मधुरता और चिकनाई हलका पन शैत्य आदि और सरत्व होता है ॥ २९ ॥

इति भाव प्रकाशे इक्षु वर्गः ॥

अथानेकार्थनामवर्गः

(क) तत्र द्व्यर्थानि नामानि। यथा। अश्मन्तकः। अम्ललोणिकाकोविदारश्च कठिल्लकः कारवेल्लो रक्त पुनर्नवा च कुलकः। पटोलः कुपीलुश्च कुचिला इतिलोके प्रसिद्धः। कोशातकी। महाकोशातकी राजकोशातकी च दीप्यकः। यवान्यज मोदाच। मरुचकः फणिज्जकः पिण्डीतकः। मरुवकः। मरुषा इतिलोके पिण्डीतकः मयन फर इति लोके मधूलिकः। मूर्वा जलयष्टीच। रुचकम्

भा० – अनन्तर अनेकार्थनामवर्गः। (क) उस्में दो अर्थके नाम जैसे। अश्मन्तक। लोनिया साग और लाल कचनार दोनोका येह एक नाम है कठिल्लक। लाल गदहपूरना और करेला। कुलक। पटोल कुचिला। कोशातकी दोनो तुरई। दीप्यक। अजमोदा। अजवाइन। (मरुचक) मरसा मयन फल (मधूलिक) मरोड फली जलयष्टी। (रुचक)

सौवर्चलं बीजपूरकञ्च। लोणिका। लोणिशाकञ्चाङ्गेरीशाकञ्च बभ्रुकः क्षारलवणञ्च वाल्हीकम्। कुङ्कुमं हिङ्गुच। पिचुनकम्। धान्यकं तुत्थञ्च। स्वादुकण्टकः। गोक्षुरो विकङ्कतश्च। अग्निमुखी। भल्लातकी लाङ्गलीच। अग्नि

शिखम् । कुङ्कुमं कुसुम्भश्च । अज शृङ्गी । मेष शृङ्गीच । प्रियङ्गुः । फलिनीकङ्गुश्च । भृङ्गः भृङ्गराजस्त्वक्च । समङ्गा । मञ्जिष्ठा लज्जालूश्च । अमोघा । विडङ्गः पाटलाच । मोचा । कदली

भा० – सोंचल विजोरा (नौरंगी का) नौनियाचूक । (वसुक) लाल आक खारीनमक । (वाल्हीक) । केसरहींङ्ग । वितुन्नक । धनिया लीला थोथा । स्वादुकंटक । गोखरू विककत । अग्निमुखी भिलावा करिहारी (अग्निशिख) केसर कुसुम । अजशृंगी । मेडासींङ्गी काकडासींङ्गी । प्रियङ्गु । कङ्गनी फूल प्रियंगू । भृङ्ग । भाङ्गरा दारचीनी । समङ्गा । मजीठ । छुईमुईला दरखत । अमोघा । वायविडंग पाटला । (मोचा) केला ।

शाल्मलिश्च । कुटन्नटः । श्योनाकः कैवर्त्तीमुस्तञ्च । कुनटी । धनिकामनःशिलाच । घोएटा । पूगो वदरीच । त्रिपुटा । त्रिवृत्सूक्ष्मैलाच । शटी । कर्चूरोगन्धपलाशी च । दन्तशठः । जम्बीरः कपित्थश्च । दन्तशठा । अम्लिकाचाङ्गेरीच । अरुणास् । मञ्जिष्ठा अतिविषाच । कणा । पिप्पली जीरकश्च । तालपर्णी । मुशलीमुराच । पीलुपर्णी ।

भा० – सेमल । कुटन्नट । सोनापाठा जलमोथा (कुनटी) धनिया मैनसिल । घोएटा । सुपारी बेर । त्रिपुटा । निसोथ । छोटी इलायची । शटी । कचूर गन्धपलाशी । दन्त शठ । जंवीरी कैथ । (दन्तशठा) । इमलीचूक । अरुणा । मजीठ । अतीस । (कणा) पीपल जीरा । तालपर्णी मुसली मुरा । पीलुपर्णी

मूर्वा बिम्बीच । ब्राह्मणी । भार्ङ्गीस्फका च । अपरा

जिता। विष्णुक्रान्ता शालिपर्णीच। आस्फोता। अपराजिता सारिवाच। पारावतपदी। ज्योतिष्मती काकजङ्घाच। शारदी। सारिवा जलपिप्पली च। उग्रगन्धा। वचा यवानीच। परिव्याधः। कर्णिकारो जलवेतसश्च। अञ्जनम्। स्रोतोऽञ्जनं सौवीरञ्च। अग्निचित्रको भल्लातश्च। कृमिघ्नः। विडङ्गो हरिद्राच। तेजनः। शरो वेणुश्च। तेजनी। तेजवती मूर्वाच। रोचनः। कम्पिल्यः रोचनाच। रोचना। गोरोचना। राजादनम्। क्षीरिका प्रियालश्च। शकुलादनी। कटुका जलपिप्पली च। गोलोमी। श्वेतदूर्वा वचा। पद्मा। पद्मचारिणी भार्ङ्गीच। श्यामा

भा० – मरोड़फली कुन्दरू। (ब्राह्मणी) भारंगी स्टका। (अपराजिता) विष्णुकन्ता सालपर्णी। आस्फोता। कुरंट सारिवा। पारावतपदी। मालकङ्गनी काकजंघा। शारदी। सारिवा जलपीपल। उग्रगन्धा। बच अजवायन। परिव्याध। अमलतास जलवेत। अंजन। रसौत सुरमा। अग्नि। चित्रक भिलावा। कृमिघ्न। वायविडंग हलदी (तेजन) शरपन बांस। (तेजनी) मरोड़फली। मालकंगनी (रोचन) खूबकला गोरोचन। रोचना। गोरोचन (राजादन। खिरनी चिरौंजी। शकुलादनी। कुटकी जलपीपल। गोलोमी। सफेद दूब बच। पद्मा। कमलिनी भारंगी। श्यामा।

सारिवा प्रियङ्गुश्च। धान्यम्। धान्याकं शाल्यादिच। सहवीर्य्या नीलदूर्वा महाशतावरीच। सेव्यम्। उशीरं लामज्जकञ्च। उदुम्बरः। जन्तु

फलं ताम्रञ्च । ऐन्द्री । इन्द्रवारुणी इन्द्राणीच।
कटम्भरा । कटुका प्रोथनाकञ्च । क्षारः । यवक्षा
रः स्वर्जिकाच । गण्डीरः शाकविशेषोगण्डीनीति
लोके गण्डारी मञ्जिष्ठाच । गन्धारी । दुरालभा ।
गन्धपलाशीच । चित्रा । इन्द्रवारुणी वृहद्दन्तीच
तुण्डकेरी । कार्पासी बिम्बीच । धारा । गुडूची क्षी
रकाकोली च । बालपत्रः । खदिरो यवासश्च ।
वारि । बालकमुदकञ्च । अङ्गारवल्ली । भार्गीगु
ञ्जाच । अमृणालम् । लामज्जकम् उशीरञ्च । कु
ण्डली गुडूचीकोविदारश्च । गन्धफली । प्रिय
ङ्गुःश्चम्पककलिकाच । दीर्घमूलः । यवासः

भा० - सारिवा प्रियंगु । (धान्य) धनियाधान । सहवीर्या । नीली दू
ब बडीसतावर । सेव्य । खस पीली ख । उडुंवर । गूलर ताम्बा । ऐन्द्री
। इन्द्रायन इन्द्राणी । कटंभरा । कुटकीसोनापाठा । (क्षार) जवाखार
सज्जीखार । (गण्डीर) गांडर मजीठ । (गन्धारी) जवासा गन्धप
लाशी (चित्रा) इन्द्रायन बडी दन्ती । तुंडिकेरी । कपासी कुन्दरू
(धारा) गिलो क्षीर का कोली । बालपत्र । खैर जवासा । वारि ।
सुगन्धवाला जल । (अङ्गारवल्ली) । भारंगी मूंज । अमृणाल
पीली खस । (कुण्डली) गिलोय लाल कचनार । गन्धफ
ली । प्रियंगु चंपक कलिका । (दीर्घमूल) जवासा ।

शालिपर्णीच । पिच्छिला शाल्मली शिंशिपाच।
पुष्पफलः । कपित्थः कूष्माण्डश्च । पोटगलः । न
लः काशश्च यवफलः । कुटजो वंशश्च । देवी । मूर्वा

स्टंका च विश्वा। शुराठनातिविषा च। शीनशिवम् ।सैन्धवं मिश्रेया च। कर्कशः। काम्पिल्यः कास मर्द्दश्च। चर्मकषा। शातला मांस रोहिणी च। नन्दिवृक्षः। अश्वत्थ भेदो गो मुखयन्न शाखः। वेलिपापीयर इति लोके। तुणिश्च। पयः क्षीर मुदकश्च। रुहा। दूर्वा मांस रोहिणी च। सिंही। वृहती वासा च॥ अथ त्र्यर्थानि नामानि। क्रमुकः। पूग ब्रह्मदः पट्टिका लोध्रश्च। क्षुरकः। कोकिलाक्षो गो क्षुरस्तिलक नाम पुष्पविशेषश्च। प्रियकः।

भा०- सालपर्णी। पिच्छिला। सेमल मीसस। डुष्य फल। कैथ पेठा। पोट गन्ल। नल कास। यव फल। कुरैया वांस (देवी) मरोड फली स्टका। विज्ञ्वा। सोंठ अतीस। शीन शिव। सैन्धा मिश्रेया। (कर्कश) कवीला कसौन्दी। (चर्म कषा) सीका काई मांस रोहिणी। (नन्दीवृक्ष) पीपल का भेद तून। (पयः) दूध पानी। रुहा। दूर्वा मास रोहिणी। (सिंही) कटेली वासा। अनंतर तीन अर्थ वाले नाम। क्रमुक। सुपारी ब्रह्म दारु पठानी लोध। (क्षुरक) मखाना गोखरू तिलक नाम पुष्प विशेष। (प्रियक)

प्रियङ्गु कदम्बो ऽसनश्च। पृथ्वीका। काला जाजी वृहदेला हिङ्गु पत्री च। भूनीकम्। भूनिम्ब कतृणा भूस्तृणश्च। सोमवल्कः। कह्लारः श्वेत खदिरो घृतपूर्णकञ्जश्च। सौगन्धिकं कल्हारं कतृणं गन्धकञ्च। भृङ्गः भृङ्गराजस्त्वग् भ्रमरश्च। अरिष्टः निम्बोरसोनं मद्यञ्च। २

मर्कटी कपिकच्छुरपामार्गः करञ्जी च। अम्बष्ठा पाठा चाङ्गेरी माचिका च। कृष्णा। पिप्पली काला जाजी नीलीच। क्षीरिणी। दुग्धिका क्षीरकाकोली श्वेतसारिवाच। मधुपर्णी। गुडूची गम्भारी नीलाच। मण्डूकपर्णः स्योनाकः सः स्त्रियां तु मञ्जिष्ठा। ब्रह्ममाण्डूकी च। श्रीपर्णी। गम्भारी गणिकारिका कट्फलञ्च। अमृता। गुडूची। हरीतकी धात्रीच। अनन्ता। दुरालभा नीलदूर्वा लाङ्गलीच। ऋष्यप्रोक्ता। अतिबला महाशतावरी कपिकच्छुञ्च कृष्णवृन्ता। पाटली गम्भारी माषपर्णीच। जीवन्ती। गुडूची शाकविशेषे वन्दा च। लता। सारिवा प्रियङ्गु ज्योतिष्मती च।

भा०—प्रियंगु कदंब आसन (पृथ्वीका) स्याह जीरा बड़ी इलायची। हिङ्गु पत्री। (भूतिक) चिरायता कतृण भूतृण (सोमवल्क) कुत्सल सफेद कथ्था घन पूर्णकरंज। सौगन्धिक) कल्हार कतृण गन्धक। (भृङ्ग) भाङ्गरा त्वक भौरा। अरिष्ट)। नीम लहसन मद्य। मर्कटि। केवांच अपामार्ग करंजी। अम्बष्ठा। पाढल। चौक किमांच। कृष्णा पीपल काला जीरा नील। क्षीरिणी। दुध्धी क्षीरकाकोली श्वेत सारिवा। मधुपर्णी। गिलोय। कुम्हेर नील। (मण्डूकपर्णी) सोना पाठा मजीठ। ब्रह्मी। श्रीपर्णी। कुम्हेर अरनी कायफल। अमृता। गिलोय हड आंवला। अनन्ता। जवासा नील दूर्वा लाङ्गली। ऋष्यप्रोक्ता। अतिबला। बडी सतावर। किवांच। कृष्णवृन्ता। पाटली। कुम्हेर माषपर्णी। जीवन्ती। गिलोय शाक विशेषवन्दा। लता। सारिवा प्रियगु माल

कंगनी। समुद्रान्ता। दुरालभा कार्पासी स्पृक्का च। हैम वती। हरीतकी श्वेतवचा पीतदुग्धः सेहुराडः यस्य मूलञ्चोक इति प्रसिद्धम्। अव्यथा। हरीतकी महाश्रावणी पद्मचारिणीच। षड्ग्रन्था। वच गन्ध पलाशी करञ्जीश्च। वरदा। सुवर्चला हुरहुर इति लोके अश्वगन्धा वाराही गेठीति लोके। इक्षु गन्धाः काशः कोकिला क्षो गोक्षुर क्षीरविदारीच। कालस्कन्धः तमाल स्तिन्दुकं कालखदिरश्च। महौषधम्। शुण्ठी रसोनो विषञ्च। मधु। क्षौद्रं पुष्परसो मद्यञ्च। कपीतनः। आम्रातकः शिरीषी गर्दभाण्डश्च। मदनः। पिण्डीतकी धत्तूरः सिक्थकञ्च। शतपर्वा। वंशो दूर्वा वचा च

भा०—समुद्रान्ता। जवासा कार्पासी स्पृक्का। हेमवती। हरीतकी श्वेतवच। पीतदुग्ध। सेहुण्ड। (अव्यथा) हरीतकी। बड़ी मुंडी पद्मचारिणी। षट्ग्रन्था। वच गन्ध पलाशी करञ्ज। (वरदा) हुरहुर असगंध सुयनी। (इक्षुगन्धा) काशताल मखाना गोखरू क्षीर विदारी। कालस्कन्ध। तमाल तेन्दू कालखदिर। महौषध। सोंठ लहसन। विष। मधु। क्षौद्र। पुष्परस मद्य। कपीतन। अम्बाडी। सिरस पिलखन। मदन मैनफल धतूरा मोम। (शतपर्वा) वांस दूब बच।

सहस्रवेधी अम्लवेतसो मृगमदा हिङ्गु च ताम्रपुष्पी धातकी पाटला श्यामा त्रिवृच्च सदापुष्पाः। श्वेतार्को रक्तार्कः कुन्दश्च। सुरभी मल्लकी मुरैलवालु

कम् । लक्ष्मीः । ऋद्धिर्वृद्धिः शमीच । कालानुसा र्य्यम् । कालीयकं नगरं शैलेयञ्च । चाम्पेयः । चम्पको नागकेसरः पद्मकेसरश्च । नादेयी । गणिकारिका जलज म्बूर्जलवेतसी च । पाक्यम् । विडं सौवर्चलं यवक्षारश्च । विशल्या । लाङ्गली गुडूची लघुदन्तीच । इन्द्रद्रुः । ककुभो देवदारुः कुटजश्च । काश्मीरम् कुङ्कुमं पुष्करमूलं काश्मीरी गम्भारीच । गुन्द्रः पटेरकः शरश्च । गुन्द्रा । प्रियङ्गुर्भद्रमुस्तकश्च । चुक्रम् । चुक्रमम्लवेतसं वृक्षाम्लश्च पारिभद्राः । निम्बः पारिजातो देवदारुश्च । पीतदारु । हरिद्रा देवदारु सरलश्च । वीरः । ककुभो वीरणा काकोली च वीरतरुः । ककुभो वीरणा शरश्च । मयूरः । अपामार्गोऽजमोदा तुन्थञ्च । रक्तसारः । रक्तचन्दन पतङ्गः खदिरश्च ।

भा० – (मत्स्यवेधी) अमलवेत । कस्तूरी हींग । नाग पुष्पी । धवपात्ता काली निसोथ । सदापुष्प । सफेद आंक लाल आंक कुन्द । सुरभी) सलई मरोड़ फली ल्वालुका । लक्ष्मी । ऋद्धि वृद्धि शमी । कालानुसार्य्य) पीतचन्दन नगर शिलारस । (चाम्पेय चम्पा) नाग केसर पद्मकेसर । नादेयी । अरनी जल । जामुन जल वेत । पाक्य । विड सोंचल जवाखार । विशल्या । करिहारी गिलोय छोटी दन्ती इन्द्रद्रु । अर्जुन देवदार कुरैय्या । काश्मीर । केसर पुष्करमूल कुम्हेर । गुन्द्र । पटेरक शर । गुन्द्रा । प्रियंगु बड़ा मोथा । चुक्र । अमलवेत चूक वृक्षाम्ल । पारिभद्र । नीम पारिजा देवदार । पीतदारु । हल्दी

देवदारु सरई । वीर । अर्जन वीरणका कोली ' वीर तरु) अर्जनवी रण सरपत । (मयूर) अपामार्ग अजमोद् ऊंतिया । रक्तसार । रक्त चन्दन पतंग रैवर । (

वदरा । सुवर्चला अश्वगन्धा वाराही च । वसिरः । रक्तापामार्गो गजपिप्पली समुद्र लवणञ्च । सौवीरम् । अञ्जनभेदो वदर सन्धानभेदश्च । वञ्जुलः, अशोको वेतसस्ति निशश्च । शिला । मनःशिला जतु गैरिकञ्च सोमवल्ली । वाकुची गुडूची ब्राह्मीच । अक्षीवः । शोभाञ्जनो महानिम्बः समुद्रलवणञ्च । कारवी । कालाजाजी शताह्वाजमोदा च । धामार्गवः । रक्तापामार्गो राजकोशातकी महाकोशातकीच । दुःस्पर्शः । यवासः कपि कच्छूः

भा० - वदरा । सुवर्चला असगन्ध वाराही । वसिर । लाल अपामार्ग गज पीपल खारी नमक । (सौवीर) अञ्जनभेद वेर सन्धानभेद । वंजुल । अशोक वेत । तिनिस । (शिला) मैनसिल शिलाजीत गेरू । सोमवल्ली । बावची गिलोय ब्राह्मी । अक्षीव । सहिंजन महानिम्ब समुद्रलवण । कारवी कालाजीरा सोफ अजमोदा (धामार्गव) लाल अपामार्ग दोनो तुरई । दुःस्पर्शः । जवासा किंमाच ।

करटकारी च । पलाशः किंशुको गन्धपलाशी पत्रञ्च । कालमेषी । मञ्जिष्ठा वाकुची श्यामा त्रिवृञ्च पत्नंकषा गुग्गुलु गोक्षुरो लाक्षाच । मधुरसा द्राक्षा मूर्वा गम्भारीच । रसा रास्ना शल्लकीपाठा चाश्रेयसी । हरीतकी रास्ना गजपिप्पलीच ।

लोहम्। अयः कांस्य मगरु च । सहा। मुद्गपर्णी व
ल्ली भेदः ककही इति लोके । शतपत्नी सेवती गुलाव
इति लोके। रास्ना नाकुली नील पुष्पः। सिन्दुवारः ।

भा० – कटेली । पलाश। गन्धपलाशी पत्रज । कालमेषी। मजीठ बावुचीकाली निसोथ। पलंकषा । गूगल गोखरू लाक्षा मीच रसा। दारव मरोड़ फली कुहेर । रसा। रासना सल्लई पाठा। श्रेयसी । हड़ रास्ना गंज पीपल । लोह । लोहा कासा अगर । सहा मुद्गपर्णी कही सेवनी । रास्ना कुली नील पुष्प सिन्दुवार ।

अथ बह्वर्थानि नामानि । अक्ष शब्दः स्मृतोऽष्टा
सु सौवर्चल विभीतके । कर्षपद्मास शकटेन्द्रि
य पाशके । ककारव्यः काक माची च काकोली का
क णान्तिका॥ काक जङ्घा काक नासा काकोदुम्ब
रिकापि च । सप्तस्वर्थेषु कथितः काक शब्दो विच
क्षणैः॥ सर्पद्विरद मेषेषु सीसके नाग केसरे ॥
नागवल्ल्यां नागदन्त्यां नाग शब्दः प्रयुज्यते ॥
मांसे द्रवे चेक्षुरसे पारदे मधुरादिषु । बाल रोगे
विषे नीरे रसो नवसु वर्त्तते ॥ इति श्रीभावप्रका
शे हरीतक्यादि द्रव्याणां नामानि गुणाश्च ॥

भा० – अनंतर बहुत अर्थवाले नाम । अक्ष शब्द आठमें कहा है सोचल बहेड़ा इन्द्रीय पासा और ककाख्य काक माची काकोली गुञ्जा ॥ काक जंघा कौव्वा ठोठी कठिया गूलर सात अर्थों में काक शब्द बुद्धिवानीने कहे है । साप गज में ढा सीसा नाग केसर । नाग वल्ली नाग दन्ती इनमें नाग शब्द कहा है ॥ मांस में द्रव वस्तु ईखके

रस मे पारेमे मधुरादिकमें ॥ बाल रोगमें विषमें जलमें इन नवोंमें रस शब्द हे ॥ इति श्री भाव प्रकाशे हरीत क्यादि द्रव्योंके नाम और गुण ॥

अथ मान परिभाषा

न मानेन विना युक्ति द्रव्याणां जायते क्वचित् । अतः प्रयोग कार्य्यार्थ मान मत्रोच्यते मया ॥ १ ॥ चरकस्य मतं वैद्यै राद्यै यस्मान्मतं ततः । विहाय स सर्व मानानि मागधं मान मुच्यते ॥ २ ॥ त्रसरेणु बुधैः प्रोक्त स्त्रिंशता परमाणुभिः । त्रसरेणुस्तु पर्य्यायैर्नाम्ना वंशी निगद्यते ॥ ३ ॥ जाला न्तर गतैः सूर्य्य करै र्वंशी विलोक्यते । षड्वंशी भिर्मरीचिःस्यात्ताभिः षड्भिश्च राजिका ॥ ४ ॥

भा० – अनंतर परिभाषा ॥ तोलके विना द्रव्योंकि युक्ति कहीं नहीं होती । इस वास्ते प्रयोग करनेके अर्थ यहांपर मान कहता हूं ॥ १ ॥ चरक का मत और जिस्से प्राचीन वैद्योंने माना हे उस्से ॥ सब मानों को छोड़ कर मागध मानको कहेता हूं ॥ २ ॥ विद्वानोंने तीस परमाणुको त्रसरेणु कहाहे ॥ त्रसरेणु पर्य्याय नामसे वंशी कहाहे ॥ ३ ॥ झरोकेकी सूर्य्यकी किरणों से वंशी देखा जाता हे ॥ छः वंशीकी मरीचि होती हे और छः मरीचियोंकि राई ॥ ४ ॥

तिसृभी राजिका भिश्च सर्षपः प्रोच्यते बुधैः । यवोष्ट सर्षपैः प्रोक्तो गुञ्जास्या त्तच्चतुष्टयम् ॥ ५ ॥ षड्भिस्तु रत्तिकाभिः स्यान्माषको हेम धानकौ । माषैश्चतुर्भिः शाणः स्याद्धरणः स निगद्यते ॥ ६ ॥

टङ्कः स एव कथितस्तद्द्वयं कोल उच्यते । क्षुद्रको वटकश्चैव द्रङ्क्षणः स निगद्यते ॥ ७ ॥ कोलद्वयन्तु कर्षः स्यात् स प्रोक्तः पाणिमानिका । अक्षः पिचुः पाणितलं किञ्चित्पाणिश्च तिन्दुकम् ॥ ८ ॥ विडालपदकं चैव तथा षोडशिका मता । करमध्यो हंसपदं सुवर्णं कवलग्रहः ॥ ९ ॥

भा० – तीन राई का सरसों पंडितोंने कहा है ॥ आठ सरसों का जव कहा है और चार जव की गुञ्जा होती है ॥ ५ ॥ छः रत्ती का मासा और उसको हेम धानक भी कहते हैं ॥ चार मासे का शाण उसको धरण भी कहते हैं ॥ ६ ॥ वोही टंक कहा गया है दो टंक को कोल कहते हैं ॥ उसको क्षुद्रक वटक द्रङ्क्षण कहते हैं ॥ ७ ॥ दो कोल का कर्ष होता है उसको पाणिमानिका भी कहा है ॥ अक्ष पिचु पाणितल किंचित् पाणि तिन्दुक ॥ ८ ॥ विडालपदक तथा षोडशिका येह भी उसके नाम कहे हैं ॥ करमध्य हंसपद सुवर्ण कवलग्रह ॥ ९ ॥

उदुम्बरञ्च पर्य्यायैः कर्षमेव निगद्यते । स्यात्कर्षाभ्यामर्द्धपलं शुक्तिरष्टमिका तथा ॥ १० ॥ शुक्तिभ्याञ्च पलं ज्ञेयं मुष्टिराम्रञ्चतुर्थिका । प्रकुञ्चः षोडशी विल्वं पलमेवात्र कीर्त्यते ॥ ११ ॥ पलाभ्यां प्रसृतिर्ज्ञेया प्रसृतञ्च निगद्यते । प्रसृतिभ्यामञ्जलिः स्यात्कुडवोऽर्द्धशरावकः ॥ १२ ॥

भा० – उदुम्बर येह पर्य्याय से कर्षकोही कहा है ॥ दो कर्ष से अर्द्ध पल होता है उसको शुक्ति अष्टमिका कहते हैं ॥ १० ॥ दो शुक्तियों से पल जानना चाहिये उसको मुष्टि आम्र चतुर्थिका । प्रकुञ्च षोड

ौ विल्व येह यहां परकहाहै ॥ ११॥ दो पलों से प्रसृति जान नी
ाहिये उसको प्रसृत भी कहते हैं॥ दो प्रसृति की अंजलि होती है
उसको कुडव अर्द्ध शरावक ॥ १२॥

अष्टमानञ्च स ज्ञेयः कुडवाभ्याञ्च मानिका। श
रावोऽष्टपलं तद्वज्ज्ञेयमत्र विचक्षणैः ॥ १३॥
शरावाभ्यां भवेत् प्रस्थः चतुः प्रस्थैस्तथाढकः।
भाजनं कांस्यपात्रं च चतुःषष्टिपलश्च सः ॥ १४॥ च
तुर्भिराढकैर्द्रोणः कलशो नल्वणोऽर्मणः। उन्मा
नश्च घटो राशि द्रोणपर्यायसञ्ज्ञितः ॥ १५॥ द्रो
णाभ्यां सूर्य्यकुम्भौ च चतुःषष्टि शरावकः। सूर्य्या
भ्याञ्च भवेद्द्रोणी वाहो गोणी च सा स्मृता ॥ १६॥

भा० - अष्टमान जानना चाहिये दो कुडवों की मानिका होती है॥ उसको शराव अष्टपल वैसेही यहां पर जानना चाहिये ॥ १३॥ दो शराबों से प्रस्थ होता है वैसेही चार प्रस्थ से आढक होता है ॥ उसको भाजन कांस्यपात्र चतुषष्टि पल कहा है॥ १४॥ चार आढक का द्रोण होता है कलश नल्वण अर्मण ॥ उन्मान घट राशि येह द्रोण पर्याय की संज्ञा कही है॥ १५॥ दो द्रोण से सूर्य्यकुम्भ और चतुषष्टि शरावक होता है॥ दो सूर्प्य से द्रोणी होती है उसको वाह गोणी कहते हैं॥ १६॥

द्रोणी चतुष्टयं खारी कथिता सूक्ष्मबुद्धिभिः। च
तुःसहस्रपलिका षण्णवत्यधिका च सा ॥ १७॥
पलानां द्विसहस्रञ्च भार एकः प्रकीर्त्तितः। तुला
पलशतं ज्ञेयं सर्वत्रैवैष निश्चय ॥ १८॥ मापट
ङ्काक्षविल्वानि कुडवप्रस्थमाढकम्। राशिर्गो

णी खारिकेति यथोत्तर चतुर्गुणाम् ॥ १९ ॥

भा० – चार द्रोणी की खारी सूक्ष्म बुद्धियोंनें कहीहै ॥ वोहचा हजार छानवे पलिका की होती है ॥ १७ ॥ और दो हजार पल का एक भार कहाहै ॥ सोपल की तुला जाननीचाहिये येह सब गह निश्चय है ॥ १८ ॥ मासा टंक अक्षबिल्वकुडव प्रस्थ आ क ॥ राशिगोणी खारी येह यथोत्तरचौगुनी है ॥ १९ ॥

(क) मागधपरिभाषाया षड् रत्तिको माषश्चतु र्विंशतिरत्तिकष्टङ्कःषणवतिरत्तिकः कर्षः । अ यञ्चरक सम्मतः । सुश्रुतमते । पञ्च रत्तिको मा षो विंशतिरत्तिकष्टङ्कोऽशीतिरत्तिकः कर्षः । अ य मेव कालिङ्ग परिभाषायामपि । यतस्तत्राष्टर त्तिकोमाषो द्वात्रिंशद्रत्तिकष्टङ्क साईटङ्क द्व य मितः कर्षः ॥

भा० – मागध परिभाषामें छ रत्तिका मासा चौवीस रत्तिका टंक वे रत्तिका कर्ष । येह चरक के सम्मतहै । सुश्रुतके मतमें का मासा वीस रत्तिका टंक अस्सी रत्तिकाकर्षहै ॥ यही कालिङ्ग रिभाषा मेंभीकहाहै जैसे आठ रत्तिका मासा बत्तीस ... ट टंक का कर्ष ॥

गुञ्जादिमानमारभ्य यावत्स्यात्कुडव स्थितिः । द्रवार्द्र शुष्क द्रव्याणां तावन्मानं समं मतम् ॥ २० ॥ प्रस्थादि मान मारभ्य द्विगुणं तद्द्रवार्द्रयोः । मा नन्तथा तुलायास्तु द्विगुणं न क्वचित्स्मृतम् ॥ २१ ॥ मृद्वृक्ष वेणु लोहादेर्भाण्डं यच्चतुरङ्गलम् । विस्ती

अतिमात्रं च दोषाय प्रस्थो सस्थे बहूदकम् ॥

इति मान परिभाषा ॥

भा० – आठ गुंजा का अथवा कहीं पर सात गुंजा का मासा होता है चार मासेका शाण उसको निष्क और टंक भी कहते हैं ॥ २५ ॥ और छः मासे का गद्यान तथा दस मासेका कर्ष होता है ॥ चार कर्ष का पल कहा है दश शाण के बराबर होता है ॥ २६ ॥ चार पल का कुडव । और प्रस्थादिक पहिले जैसे माने हैं ॥ मात्राकी तो कुछ स्थिति होती है क्योंकि काल अग्नि वय बल ॥ २७ ॥ प्रकृति दोष और देश इनको देखकर मात्राकी कल्पना करे ॥ क्योंकि थोड़ी औषध रोगको दूर नहीं करती जैसे थोड़ा पानी बहुत आगको ॥ २८ ॥ बहुत मात्रा दोष को करती है जैसे खाँर हान में रखे हुे नाजमें बहुत जल ॥ अनंतर औषधियोंका विधान ॥

अथ भेषजानां विधानानि ॥

स्वरसश्च तथा कल्कः क्वाथश्च हिम फाण्टकौ ।
ज्ञेयाः कषायाः पञ्चैते लघवः स्युर्यथोत्तरम् ॥ २९ ॥

तत्रादौ स्वरस विधिः ॥

आहतात् तत् क्षणाच्छिन्नाद् द्रव्यात् क्षुण्णात् समुद्भवेत् । वस्त्रनिष्पीडितो यश्च स्वरसो रस उच्यते ॥ ३० ॥

(क) आहतात् शीताग्नि कीटादि भिरनुपहतात् ।

भा० – अनंतर औषधियोंका विधान । स्वरस तथा कल्क क्वाथ हिम फाण्टक ॥ येह पांच प्रकार के कषाय उत्तरोत्तर हलके जानने चाहिये ॥ २९ ॥ उसमें पहिले स्वरस की विधि । उसी क्षण काटके लाई हुई को कूटकर कपडे से छानके जो निकलता है उसको स्वरस कहते हैं ॥ ३० ॥ (क) पाला आग कीट आदि से खराब नहुई ॥

- क्षुण्णात् । संपिष्टात् । कुडवञ्चूर्णितं द्रव्यं हिमञ्च

द्विगुणे जले। अहोरात्रं स्थितं तस्माद्भवेद्वा रस उत्तमः॥ ३१॥ चूर्णितञ्चूर्णीकृतं। आदाय शुष्कद्रव्यं वा स्वरसानामसम्भवे। जलेऽष्टगुणिते साध्यं पादशिष्टं च गृह्यते॥ ३२॥ स्वरसस्य गुरुत्वाच्च पलमर्द्धं प्रयोजयेत्। निशोषितञ्चाग्निसिद्धं पलमात्रं रसं पिबेत्॥ ३३॥ निशोषितं निशायामुषितं

भा० — पीसीहुईमे। अथवा चूरा कियेहुवे पावभर द्रव्यको दुगनेजलमें॥ एक दिन रखे इससे उत्तम रस होताहै॥ ३१॥ चूर्ण किया हुवा। स्वरसके असंभवसे सूके द्रव्यको लेकर॥ आठगुने जलमें सिद्धकरके चौथाई बाकी रहे तब निकाललें॥ ३२॥ स्वरसको गुरुत्व होनेसे अर्द्ध पल देवे रातके बासी और अग्नि सिद्ध रसको पलभर पीवे॥ ३३॥ रातको रक्खा हुवा॥

सिता मधु गुडं क्षारान् जीरकं लवणं तथा। घृतं तैलञ्च चूर्णादीन् कोलमात्रान् रसे क्षिपेत्॥ ३४॥ कोलष्टङ्कद्वयंच। तण्डुलजलविधिः।

कण्डितं तण्डुलपलञ्जलेऽष्टगुणिते क्षिपेत्। भावयित्वा जलं ग्राह्यं देयं सर्वत्र कर्मसु॥ ३५॥ भावयित्वा कोमलीकृत्य। अथ हिमविधिः

क्षुण्णं द्रव्यं पलं सम्यक् षड्भिर्नीरपलैः प्लुतम्। निशोषितं हिमः सस्यात् तथा शीतकषायकः॥ ३६॥

भा० — चीनी मधु गुड क्षार जीरा तथा लवण॥ घृत तैल और चूर्ण आदियोंको दो टंक रसमें डाले॥ ३४॥ दोटंक। चावलके धोवन की विधि। कूटे हुवे पावभर चावलोंको अठगुने पानीमें डाले॥ धोके जल लेना चाहिये सब कामोंमें देना चाहिये॥ ३५॥ अनंतर हिमकी विधि॥

जद कुट किये हुवे पल भर द्रव्य को छ पल पानी में भिजोवे॥ वोह रात भर का भिजोया हुवा हिम है तथा शीत कषाय कहते हैं॥ ३६॥

तस्य मानं सतं पाने पलद्वयमितं बुधैः। क्षुण्णं चूर्णीकृतं॥ अथ मंथ विधिः॥ जलेचतुःपले शीते क्षुण्णं द्रव्य पलं क्षिपेत्। मृत्पात्रे मन्थयेत् सम्यक् तस्माच्च द्विपलं पिबेत्॥ ३७॥ क्षुण्णं चूर्णीकृतं समन्थयेत् मथ्नीयात्। अथ फाण्ट विधिः। क्षुण्णे द्रव्य पले सम्यक् जलमुष्णं विनिःक्षिपेत्। मृत्पात्रे कुडवोन्मानं ततस्तु स्रावयेत्पटात्॥ ३८॥

भा०-उसकी तोल पीनेमें दो पल कही है॥ चूर किया हुवा। अनंतर मन्थ विधि। शीतल चार पल जलमें जवकुट किया हुवा पल भर द्रव्य डाले मिट्टी के बरतन में अच्छी तरह मले उसमें से दो पल ले कर पीवे॥ ३७॥ चूर्ण किया हुवा। मथे। अनंतर फाण्ट की विधि। जवकुट किये हुवे पल भर द्रव्य में पाव भर गरम जल मिट्टी के बरतन में ले उसके अनंतर उसे कपडे से छन वा लेवे॥ ३८॥

स स्याच्चूर्णद्रवः फाण्टस्तन्मानं द्विपलोन्मितम्। सौद्रं सिता गुडादींस्तु कर्षमात्रान्विनिःक्षिपेत्॥ ३९॥ क्षुण्णे चूर्णीकृते स चूर्णद्रवः फाण्टः स्यादित्यन्वयः (अथ कल्क विधिः) द्रव्यमार्द्रं शिलापिष्टं शुष्कं वा सजलं भवेत्। प्रक्षिप्य गालयेद्वस्त्रे तन्मानं कर्षसंमितम्

भा०-वोह चूर्णद्रव है और उसको फांट भी कहते हैं। उसकी तोल दो पल है॥ मधु चीनी गुड आदि उसमें कर्ष भर डाले॥ ३९॥ चूर्ण किये हुवे में वोह चूर्णद्रव फांट होता है इस प्रकार अन्वय है॥ अनंतर कल्क की।

विधि। गीली दवाको सिलपर पीसे अथवा सूकीको जलके साथ पीसे उसको कपडे में डालकर निचोडे उसकी तोल तोलाभर दे॥ ४०॥

कल्के मधु घृतं तैलं देयं द्विगुण मात्रया। सिता गुड समन्द्याद्द्रवो देय श्चतुर्गुणः॥ ४१॥ अथचूर्णविधिः॥ अत्यन्त शुष्कं यद्द्रव्यं सुपिष्टं वस्त्रगालितम्। न न्स्याच्चूर्णं रजः क्षोद स्तन्मात्रा कर्ष संमिता॥ ४२॥ चूर्णे गुडः समोदेयः शर्करा द्विगुणा मता। चूर्णेषु भर्जितं हिङ्गु देयं नोत्क्लेद कृद्भवेत्॥ ४३॥ लिहेच्चूर्णं द्रवैः सर्वैर्घृताद्यै र्द्विगुणोन्मितैः। पिबेच्चतुर्गुणै रेवं चूर्णमालोडितं द्रवैः॥ ४४॥

भा० - कल्कमें मधु घृत तैल मात्रासे दुगना देना चाहिये॥ चीनी गुड सम भाग देवे और द्रव चौगुना देना चाहिये॥ ४१॥ अनंतर चूर्णविधि॥ बहुत सूके हुवे द्रव्यको अच्छी तरह पीसकर कपड छानकरे॥ वोह चूर्ण है उसको रज क्षोदक हेतेहैं॥ उसकी मात्रा तोलाभर है॥ ४२॥ चूर्ण में गुड सम भाग देना चाहिये और शर्करा दुगनी कहीहै॥ चूर्ण में भूनके हींङ्ग देना चाहिये वोह उत्क्लेद कारी नहीं होता॥ ४३॥ चूर्णको सब घृतादिक द्रव दुगने लेकर चाटे॥ और चौगुने मिलाकर घोलके पीवे॥ ४४॥

चूर्णावलेह गुटिका कल्का नामनु पानकम्। पित्त वात कफातङ्के त्रियेकं पलमाहरेत्॥ ४५॥ यथा तैलं जले प्राप्तं क्षणेनैव विसर्पति। अनुपानबला दङ्गे तथा सर्पति भेषजम्॥ ४६॥ भावनाविधिः॥ द्रवेण यावता सम्यक् चूर्णं सर्वं प्लुतम्भवेत्। भावनायाः प्रमाणन्तु चूर्णे प्रोक्तं भिषग्वरैः॥ ४७॥

जव कुट किये हुवे पल भर द्रव्य को छ पल पानी में भिजोवे ॥ वोह रात भर का भिजोया हुवा हिम है तथा शीत कषाय कहते हैं ॥ ३६ ॥

नस्य मानं मतं पाने पल द्वयमितं सुधैः । क्षुण्णं चूर्णी कृतं ॥ अथ मंथ विधिः ॥ जले चतुः पले शीते क्षुण्णं द्रव्य पलं क्षिपेत् । मृत् पात्रे मन्थयेत् सम्यक् तस्माच्च द्वि पलं पिबेत् ॥ ३७ ॥ क्षुण्णं चूर्णी कृतं मन्थयेत् मथ्नीयात् । अथ फाण्ट विधिः । । क्षुण्णे द्रव्य पले सम्यक् जलमुष्णं विनिःक्षिपेत् । मृत्पात्रे कुडवोन्मानं ततस्तु स्रावयेत्पटात् ॥ ३८ ॥

भा० – उसकी तोल पीने में दो पल कही है ॥ चूर्ण किया हुवा । अनंतर मन्थ विधि । शीतल चार पल जल में जवकुट किया हुवा पल भर द्रव्य डाले मिट्टी के बरतन में अच्छी तरह मले उसमें से दो पल ले कर पीवे ॥ ३७ ॥ चूर्ण किया हुवा । मथे । अनंतर फाण्ट की विधि । जवकुट किये हुवे पल भर द्रव्य में पावभर गरम जल मिट्टी के बरतन में ले उसके अनंतर उसे कपडे से छनवा लेवे ॥ ३८ ॥

सस्याच्चूर्णद्रवः फाण्टस्तन्मानं द्वि पलोन्मितम् । सौद्रं सितागुडादींस्तु कर्षमात्रान्विनिःक्षिपेत् ॥ ३९ ॥ क्षुण्णे चूर्णी कृते स चूर्ण द्रवः फाण्टः स्यादित्यन्वयः (अथ कल्क विधिः) द्रव्यमार्द्रं शिलापिष्टं शुष्कं वा स जलं भवेत् । प्रक्षिप्य गालयेद्वस्त्रे तन्मानं कर्ष संमितम्

भा० – वोह चूर्ण द्रव है और उसको फांट भी कहते हैं । उसकी तोल दो पल है ॥ मधु चीनी गुड आदि उसमें कर्ष भर डाले ॥ ३९ ॥ चूर्ण किये हुवे में वोह चूर्ण द्रव फांट होता है इस प्रकार अन्वय है ॥ अनंतर कल्क की ।

विधि । गीली दवाको सिलपर पीसे अथवा सूकीकोजलके साथ पीसे उसको कपड़े में डालकर निचोड़े उसकी तोल तोलाभर है ॥ ४० ॥

कल्के मधु घृतं तैलं देयं द्विगुणमात्रया । सिता गुड समन्द्द्याद्द्रवो देयश्चतुर्गुणः ॥ ४१ ॥ अथचूर्णविधिः ॥ अत्यन्तशुष्कं यद्द्रव्यं सुपिष्टं वस्त्रगालितम् । तत्स्याच्चूर्णं रजः क्षोदस्तन्मात्रा कर्षसंमिता ॥ ४२ ॥ चूर्णे गुडः समो देयः शर्करा द्विगुणा मता । चूर्णेषु भर्जितं हिङ्गु देयं नोत्क्लेदकृद्भवेत् ॥ ४३ ॥ लिहेच्चूर्णं द्रवैः सर्वैर्घृताद्यैर्द्विगुणोन्मितैः । पिवेच्चतुर्गुणैरेवं चूर्णमालोडितं द्रवैः ॥ ४४ ॥

भा० – कल्कमें मधु घृत तैल मात्रासे दुगना देना चाहिये ॥ चीनी गुड सम भाग देवे और द्रव चौगुना देना चाहिये ॥ ४१ ॥ अनंतर चूर्णविधि ॥ बहुत सूके हुवे द्रव्यको अच्छी तरह पीसकर कपड छानकरे ॥ वोह चूर्ण है उसको रज क्षोदक कहते हैं ॥ उसकी मात्रा तोला भर है ॥ ४२ ॥ चूर्णमें गुड सम भाग देना चाहिये और शर्करा दुगनी कही है ॥ चूर्णमें भूनके हींङ्ग देना चाहिये वोह उत्क्लेदकारी नही होता ॥ ४३ ॥ चूर्णको सब घृतादिक द्रव दुगने लेकर चाटे ॥ और चौगुने मिलाकर घोलके पीवे ॥ ४४ ॥ के

चूर्णावलेह गुटिका कल्कानामनुपानकम् । पित्तवातकफातङ्के त्रिद्व्येकं पलमाहरेत् ॥ ४५ ॥ यथा तैलं जले प्राप्तं क्षणेनैव विसर्पति । अनुपानबलादङ्गे तथा सर्पति भेषजम् ॥ ४६ ॥ भावनाविधिः ॥ द्रवेण यावता सम्यक् चूर्णं सर्वं प्लुतम्भवेत् । भावनायाः प्रमाणं तु चूर्णे प्रोक्तं भिषग्वरैः ॥ ४७ ॥

॥ अथ पुटपाकविधिः ॥ पुटपाकस्य कल्कस्यस्वरसो गृह्यतेयतः। अतस्तुपुटपाकानां युक्तिरत्रोच्यते मया ॥ ४८ ॥ पुटपाकस्य पाकोऽयं लेपस्याङ्गारवर्णता। लेपञ्च द्व्यङ्गुलंस्थूलं कुर्य्याद्व्यङ्गुलमानकम्।

भा०- चूर्ण अवलेह गोली कल्क इनका अनुपान ॥ पित्तवातकफके रोगमें क्रमसे तीन दो एकपल लेवे ॥ ४५॥ जैसे तेल जलमें डालाहुवा सगमें फैलजाताहै ।वैसेही अनुपानकेवलसे शरीरमें औषधफैलताहै ॥ ४६ ॥ अनंतर भावनाविधि ॥ जितने द्रवसे अच्छीतरहपरसब चूर्ण तर होजाताहै ॥ वोह भावनाका प्रमाण चूर्णमें वैद्योंनेकहाहै ॥ ४७॥ अनंतर पुटपाक विधि ॥ पुटपाककल्कका स्वरस जिस कारण लियाजाताहै ॥ इसवास्ते पुटपाककी युक्ति यहांपरकहताहूं ॥ ४८॥ पुटपाकका पाक यह हैकि लेपका अंगारेके समान वर्ण होना ॥ लेप दोअंगुलमोटा दोअंगुलभरकरे ॥ ४९ ॥

काश्मरीवटजम्ब्वादिपत्रैर्वेष्टनमुत्तमम्। पलमात्रोरसोग्राह्यः कर्षमात्रं मधुक्षिपेत् ॥५०॥ कल्कचूर्णद्रवाद्यास्तु देयाःकोलमिताबुधैः॥ उष्णोदकविधिः॥ अष्टमेनांशशेषेण चतुर्थेनार्द्धकेनवा अथवाक्वथनेनैव सिद्धमुष्णोदकंभवेत्॥ ५१॥ श्लेष्मामवातमेदोघ्नं वस्तिशोधनदीपनम्। कासश्वासज्वरान्हन्ति पीतमुष्णोदकंनिशि ॥ ५२॥

भा०- कुम्हेर वट जामन आदिके पत्तोंसे लपेटना उत्तम है ॥ पलभर रसलेवे औरतोलाभर मधुडाले ॥ ५० ॥ कल्क चूर्ण द्रव आदिक आठ मासे देवे ॥ गरम पानीकी विधि ॥ आठवां हिस्सा बाकी रहने से अथवा उबाल आनेसेही सिद्ध उष्णोदक होताहै ॥ ५१॥ कफ आ

म वातमेद इनका नाशक वस्ति शोधन दीपन। है और कास श्वास ज्वर इनको नाश करता है रातमें पीयाहुवा गरमजल॥५२॥

उष्णोदकं सु इवदाइतिलोके। क्षीरपाकविधिः।

क्षीरमष्टगुणं द्रव्यात् क्षीरान्नीरं चतुर्गुणम्। क्षीराव शेषं तत्पीतं शूलमामोइवंजयेत्॥५३॥ क्वाथविधिः॥

पानीयं षोड़शगुणं क्षुणे द्रव्यपलेक्षिपेत्। मृत्पात्रे क्वाथयेद् ग्राह्यमष्टमांशावशेषितम्॥-५४॥ कर्षा दौतु पलंयावद्दद्यात् षोड़षकंजलम्। ततस्तु कुडवं यावत्तोयमष्टगुणंभवेत्॥ ५५॥ चतुर्गुणमतश्चोर्द्धं यावत् प्रस्थादिकंजलम्। (षोडशिकं षोडशगुणम्)

भा० – क्षीरपाकविधि॥ दूध द्रव्यसे अठगुना और दूधसे पानी चौगुना बाकी रहे हुवे उस दूधके पीनेसे वोह आमके शूलको जीतता है॥५३॥ काढ़ेकी विधि॥ सोलह गुने पानीमें पलभर द्रव्यको डाले॥ मिट्टीके बरतनमें औटावें और आठवां हिस्साबाकी रहे तबनिकाललेवे॥५४॥ कर्षादिकसे पलभर जबतक दवाहो तबतक सोलह गुना जल देवे॥ उसके अनंतर पावभर जबतक हो अठगुना जल होनाचाहिये॥ ५५॥ इस के ऊपर चौगुनाजल जबतक सेरभरहो॥ सोलह गुना॥

तज्जलंपाययेद्धीमान् कोष्णं मृद्वग्निसाधितम्। शृ तः क्वाथः कषायश्च निर्यूहः स निगद्यते॥ ५६॥

(क्वाथपानमात्रामाह।)

मात्रोत्तमा पलेनतत् स्यात् त्रिभिरक्षैस्तु मध्यमा। ज घन्या च पलार्द्धेन स्नेहक्वाथौषधेषुच॥ ५७॥

तन्त्रान्तरे। क्वाथ्यद्रव्यपलेवारि द्विरष्टगुणमिष्यते

चतुर्भागावशिष्टन्तु पेयं पलचतुष्टयम् ॥ ५८ ॥ दीप्तानलं महाकायं पाययेदञ्जलिं जलम्। अन्ये त्वर्द्धं परित्यज्य प्रसिन्नं तु चिकित्सकाः ॥ ५९ ॥

भा० – उस मन्द आंच से पकाया हुवा जल को सील गरम बुद्धिवान पीवे। अब क्वाथ कषाय निर्यूह उस को कहते हैं ॥ ५६ ॥ काढ़े के पीने की मात्रा को कहते हैं। एक पल की उत्तम मात्रा है और तीन तोले को मध्यम मात्रा ॥ निकृष्ट दो तोले की स्नेह क्वाथ औषधों में भी ॥ ५७ ॥ तन्त्रान्तरसें। पल भर क्वाथ करने योग्य द्रव्य में जल दुगना वा अठगुना कहा है ॥ चौथाई बाकी रहे हुवे चार पल जल को पीना चाहिये ॥ ५८ ॥ दीप्ताग्नि और बड़े शरीर वाले को अंजली भर काढ़ा पिलावे ॥ बाकीयों को आधा छोड़ के पैसे भर वैद्य पिलावे ॥ ५९ ॥

क्वाथत्यागमनिच्छन्नास्त्वष्टभागावशेषितम्। पारस्पर्योपदेशेन वृद्धवैद्याः पलद्वयम् ॥ ६० ॥ (क)

अष्टभागावशेषितस्य चतुर्भागावशिष्टापेक्षया गुरुत्वात् दीप्तानलं महाकायं पलद्वयं पाययेन्मध्याग्निमल्पकायं पलमात्रं पाययेत् मात्रोत्तमा पलेन स्यादित्यादि वचनात् ॥

भा० – काढ़े का छोड़ना न चाहने वाले को अष्टमांश बाकी रहे हुवे दो पल को वृद्ध वैद्य परंपरा के उपदेश से देवे ॥ ६० ॥ (क) अष्टमांश बाकी बचे को चौथाई बाकी बचे की अपेक्षा से भारी होने से दीप्ताग्नि और बड़ी काया वाले को दो पल पिलावे। मध्य अग्नि और अल्प काया वाले को पलभर पिलावे उत्तम मात्रा एक पल से होती है इत्यादि वचन से ॥

क्वाथे क्षिपेत् सितामंशैश्चतुर्थाष्टमषोडशैः। वातपित्तकफातङ्के विपरीतं मधु स्मृतम् ॥ ६१ ॥

जीरकं गुग्गुलं क्षारं लवणं च शिलाजतु। हिङ्गु त्रिकटुकं चैव क्वाथे शाणोन्मितं क्षिपेत् ॥ ६२ ॥ क्षीरं घृतं गुडं तैलं मूत्रं चान्यत् द्रवं तथा। कल्कं चूर्णादिकं क्वाथे निक्षिपेत् कर्षसंमितम् ॥ ६३ ॥ तत्रोपविश्य विश्रान्तः प्रसन्नवदनेक्षणः। औषधं हेम रजतं मृद्भाजनपरिस्थितम् ॥ ६४ ॥ पिबेत् प्रसन्नहृदयः पीत्वा पात्रमधोमुखम्। विधायाऽस्य सलिलं ताम्बूलाद्युपयोजयेत् ॥ ६५ ॥ अवलेहविधिः ॥ क्वाथादेर्यत्पुनः पाकाद्घनत्वं सा रसक्रिया। सोऽवलेहश्च लेहश्च तन्मात्रा स्यात् पलोन्मिता ॥ ६६ ॥

भा०—काढेमें चीनी चतुर्थ अष्टम और षोडश भागोंसे क्रमसे साथ वात पित्तकफके रोगमें डाले और मधु इस्से विपरीत कहा है ॥ ६१ ॥ जीरा गुगल खार लवण शिलाजीत ॥ हींग त्रिकुटा इनको काढे में च्यार मासे डाले ॥ ६२ ॥ दूध घृत गुड तेल मूत्र और द्रव तथा। कल्क चूर्ण आदिक काढे में तोला भर डाले ॥ ६३ ॥ वहां पर बैठ कर दम लेके प्रसन्न मुख दृष्टि होके सोने चान्दी वा माटी के बरतन में रखी हुई दवा को। ६४ ॥ प्रसन्न हृदय होके पीवे पीकर बरतन को औन्धा करके कुल्ला कर पान आदि देवे ॥ ६५ ॥ अनंतर अवलेह। काढा आदि योंका जो फिरसे पकाकर गाढा करना उसको रसक्रिया कहते हैं। वोह अवलेह और लेह है उस्की मात्रा पलभर की है ॥ ६६ ॥

सिता चतुर्गुणा कार्या चूर्णाच्च द्विगुणो गुडः। द्रवं चतुर्गुणं दद्यादिति सर्वत्र निश्चयः ॥ ६७ ॥ सुपक्वे तन्तुमत्त्वं स्यादवलेहेऽप्सु मज्जनम् ॥

स्थिरत्व पीडिते मुद्रां गन्धवर्णा रसोद्भवः॥ ६८॥

दुग्धमिक्षुरसं यूषं पञ्चमूलकषायजम्। वासाकाथं यथा योग्य मनुपानं प्रशस्यते॥ ६९॥ वटकाविधिः॥ वटका अथ कथ्यन्ते तन्नाम गुटिका वटी। मोदको वटिका पिण्डी गुडो वर्त्तिस्तथोच्यते॥ ७०॥ लेह्वत् साध्यते वह्नौ गुडो वा शर्करा थवा। गुग्गुलुर्वा क्षिपेत्तत्र चूर्णं तन्निर्मिता वटी॥ ७१॥ तत्र वह्नि सिद्धे गुडादौ॥ कुर्यादवह्नि सिद्धे न कचिद् गुग्गुलुनावटी द्रवेण मधुना वापि गुटिकां कारयेद्बुधः॥ ७२॥

भा० – चूर्णसे चीनी चोगुनी और गुड़ दुगना॥ द्रव चोगुना देवे इस प्रकार सब जगह निश्चय है॥ ६७॥ अच्छी तरह पकी हुई में तार छूटते हैं और जलमें डूबता है॥ और दवानेसे स्थिरताहोती है तथा गंध वर्ण रस मालूम होता है॥ ६८॥ दूध ईखका रस पंचमूलके काढ़ेका जूस॥ और वांसा का काढा यथा योग्य अनुपान प्रशस्त है॥ ६९॥ अनंतर वटकाविधि। अनंतर वटका कहते हैं उस का नाम गुटिका वटि है॥ मोदक वटिका पिंडी गुड तथा वर्त्ति कहते हैं॥ ७०॥ गुड अथवा शकर लेह के समान अग्निपर सिद्ध की जाती है॥ अथवा उसमे गूगल डाले उस्से वनाई हुई गोली है॥ ७१॥ उस्से अग्नि सिद्ध गुड आदि में। कहीं पर विन अग्नि सिद्ध गूगलसे गोली होती है॥ जलसे वा मधुसे पंडित गोलीव नावे॥ ७२॥

सिता चतुर्गुणा देया वटीषु द्विगुणो गुडः। चूर्णो चूर्ण समः कार्य्यो गुग्गुलुः मधु तत् समम्॥ ७३॥

(तत्समम्। चूर्णसमम्।)

द्रवं तु द्विगुणं देयं मोदकेषु भिषग्वरैः॥ द्रवं द्रवरूप

द्रव्यं, कर्षप्रमाणं तन्मात्रा बलं दृष्ट्वा प्रयुज्यते। बल मिति कालादेरप्युपलक्षणम्। घृततैलयोर्विधिः। कल्कोश्चतुर्गुणी कृत्य घृतं वातैलमेवच। चतुर्गुण द्रवे साध्यं तस्य मात्रा पलोन्मिता ॥ ७४ ॥

(मात्रा पलोन्मिता। भक्षणाय।)

निक्षिप्य क्वाथयेत्तोयं क्वाथ्य द्रव्याच्चतुर्गुणम्। पाद शिष्टं गृहीत्वा तु स्नेहस्तेनैव साधयेत् ॥ ७५ ॥ चतुर्गुणं मृदु द्रव्ये कठिनेऽष्टगुणं जलम्। मृद्वादि क्वाथ्य संघाते दद्यादष्टगुणं पयः ॥ ७६ ॥ अत्यन्त कठिने द्रव्ये नीरं षोडशिकं मतम् ॥

भा० - गोलीमें चीनी दुगनी देनी चाहिये और गुड़ दुगना देना चाहिये ॥ चूर्णचूर्णके सम करना चाहिये गूगल मधु उसके बराबर ॥ ७३ ॥ चूर्ण के समान। चेंग मोदक में द्रव दुगना देवे ॥ पतली वस्तु। उसकी मात्रा एक तोला देखकर देवे ॥ काल आदि योंका उपलक्षण है। घृत तैलकी विधि। घृत वा तैल कल्क से चौगुना करके ॥ चौगुने द्रवमें सिद्ध करे उसकी मात्रा पलभरकी है ॥ ७४ ॥ भक्षणके अर्थ। चौगुने जलमें औषध डालकर औटावे ॥ चौथाइ बाकी को लेकर तेल उसीसे सिद्ध करे ॥ ७५ ॥ चौगुना मुलायम दवामें और सख्त दवामें अठगुना जल ॥ मृदु आदि क्वाथ्य संघातमें अठगुना पय देवे ॥ ७६ ॥ अत्यन्त कठिन द्रव्य में जल सोलह गुना कहा है ॥

(क) मृदु द्रव्ये आर्द्र द्रव्ये गुडूच्यादौ। कठिने शुष्क द्रव्ये शुण्ठ्यादौ अत्यन्त कठिने। चिरशुष्के देवदार्व्यादौ ॥ कर्षादितः पलं यावत् क्षिपेत् षोडशिकं जलम्। तदूर्द्ध्वं कुडवं यावत् भवेदष्टगुणं पयः ॥ ७७ ॥

प्रस्थादितः क्षिपेन्नीरं खारीं यावच्चतुर्गुणम्।(क)
पूर्वं चतुर्गुणं मृदु द्रव्य इत्यादिना क्वाथ्य द्रव्यं तन्मृदुत्वादि गुण भेदेन जल गत परिमाण मुक्तम्। इदानीं केचिदाचार्याः कर्षादितः पलं यावदित्यादि वचने क्वाथ्य द्रव्य गत परिमाण भेदेन जलगत परिमाणं मन्यन्ते।

भा० – मुलायम गीली गिलोय आदिमें। कठिन सूकी सोंठ आदि अत्यन्त कठिनमें। बहुत दिनके सूके हुवे देव दारु आदिमे। कर्षसे पल तक में सोलह गुना जल डाले। उसके ऊपर कुडवतक में अठगुना जल डाले॥ ७७॥ सेर भरसे लेकर खारीतक में चौगुना जल डाले (क) पहिले चौगुना मृदु द्रव्य इत्यादि करके क्वाथ्य द्रव्य उस मृदु त्वादि गुण भेदसे जलका तोल कहाहै। अब कोई आचार्य कर्ष से लेकर पलतक इत्यादि वचन से क्वाथ्य द्रव्यके परिमाण भेदसे जलका तोल मानते हैं॥

अम्बु क्वाथ रसै यत्र पृथक् स्नेहस्य साधनम्। कल्कस्यांशस्तत्र दद्याच्चतुर्थं षष्ठमष्टमम्॥ ७८॥
(क) अस्यायमर्थः। अम्बुना स्नेह साधने कल्कं स्नेहस्य चतुर्थमंशं दद्यात्। क्वाथेन स्नेह साधने स्नेहस्य षष्ठ भागं कल्कं दद्यात्। स्वरसैः स्नेह साधने स्नेहस्याष्टम भागं कल्कं दद्यात्।

भा० – जल क्वाथ रसोंसे जहांपर अलग स्नेह साधन कहाहै॥ वहां पर कल्क का चतुर्थ षष्ठ अष्टम अंश देवे॥ ७८॥ (क) यह अर्थ है कि जलसे स्नेह साधनमें स्नेह का छटा भाग कल्क देवे। स्वरससे स्नेह सिद्धि करनेमें स्नेहका आठवाभाग कल्क देवे। पुनः विशेषकहे

(पुनर्विशेषमाह।)

दुग्धे दधिरसे तक्रे कल्को देयोऽष्टमांशिकः। कल्का च्च सम्यक् पाकार्थं तोयमत्र चतुर्गुणम् ॥७९॥
कल्कात्। कल्कद्रव्यात्। चतुर्गुणं तोयं पेषणार्थम्।
द्रवाणि यत्र स्नेहेषु पञ्चादीनि भवन्ति हि। तत्र
स्नेहसमान्याहुर्यथा पूर्वञ्चतुर्गुणम् ॥ ८० ॥
(क) अस्यायमर्थः। यत्र स्नेहेषु आदीनि पञ्च
द्रव्याणि दुग्ध दधि स्वरसतक्र कल्कोपयुक्त ज
लानि प्रत्येकं स्नेहसमानि बोद्धव्यानि यथा पूर्वम् ॥
दुग्धदधिस्वरसतक्रं समुदितं स्नेहाच्चतुर्गुणं भवति।
द्रव्येण केवलेनैव स्नेहपाको भवेद्यदि। तत्रा
म्बुपिष्टः कल्कः स्याज्जलञ्चात्र चतुर्गुणम् ८१॥

भा० - पुनः विशेष कहते हैं॥ दूध दही रस मठा इनमें कल्क अ ष्टमांश देवे॥ कल्क से अच्छी तरह पकनेके अर्थ यहां पर जल चौ गुना देवे॥ ७९। कल्क द्रव्य से चौगुना जल पीसनेके वास्ते। जिस स्नेह में द्रव्यादि पांच होते हैं॥ उस्में स्नेह सम कहा है जैसे पहिले चौगु ना॥ ८०॥ (क) इसका येह अर्थ है कि जिस स्नेह में आदि पांच दूध दही स्वरस मठा कल्क इनमें उपयुक्त जल प्रत्येक स्नेह सम जानने चाहिये जैसे पहिले। दूध दही मठा स्वरस ये हुकहे हुवे स्ने ह से चौगुने हैं॥ यदि केवलद्रव्य से ही स्नेह पाक होतो। उस्से ज ल से पीसके कल्क देवे और जल इस्में चौगुना देवे॥ ८१॥

अत्र कल्कद्रव्ये ॥ क्वाथेन केवलेनैव पाको यत्रोदितः
क्वचित्। क्वाथ्यद्रव्यस्य कल्कोऽपि तत्र स्नेहे नयुज्यते
॥८२॥ कल्कहीनस्तु यः स्नेहः स साध्यः केवले द्रवे।

केवलद्रवे। क्वाथेतरस्मिन् स्वरसादिरूपे ॥

पुष्पकल्कस्तु यः स्नेहस्तत्रतोयं चतुर्गुणम्। स्नेहा

न्स्नेहाष्टमांशश्च पुष्पकल्कः प्रयुज्यते ॥ ८३ ॥

वर्त्तिवत्स्नेहकल्कः स्याद्यदाङ्गुल्याविवर्त्तितः।

शब्दहीनोऽग्निनिक्षिप्तः स्नेहःसिद्धोभवेत्तदा ॥ ८४ ॥

यदा फेनोद्गमे तैले फेनशान्तिश्च सर्पिषि। वर्णगन्ध

रसोत्पत्तिः स्नेहः सिद्धोभवेत्तदा ॥ ८५ ॥ ॥

भा० — अनंतरकल्क द्रव्यमें। जहां कहींपर केवल काढेसे ही पाक कहाहै ॥ उस स्नेहमें काढेकी दवा काही कल्क दियाजाताहै ॥ ८२ ॥ कल्कहीन जोस्नेह है वोह केवल द्रवसें सिद्ध करना चाहिये ॥ केवलद्रवमें अर्थात् काढे से इतर स्वरसादि रूप द्रवमें ॥ पुष्पकल्क काजो स्नेह है उसमें जल चौगुना डालना चाहिये ॥ स्नेह से स्नेह का अष्टमांश पुष्पकल्क डालाजाताहै ॥ ८३ ॥ जब अंगुलीसे चलानेसे बत्तीसी हो वोह स्नेह कल्क है ॥ जब अग्निमें डालनेसे स्नेह शब्द हीन होवे तब सिद्ध हुवा जाने ॥ ८४ ॥ जब झाग तैल में उठै और घृत में झाग जातेरहें ॥ और वर्ण गन्ध रस होनेसें तब स्नेह सिद्ध होताहै ॥ ८५ ॥

स्नेहपाकस्त्रिधा प्रोक्तो मृदुर्मध्यः खरस्तथा। ईषत्

सरसकल्कस्तु स्नेहपाको मृदुर्भवेत् ॥ ८६ ॥ मध्यपाक

स्य सिद्धिश्च कल्के नीरसकोमले। ईषत्कठिनकल्क

श्च स्नेहपाको भवेत् खरः ॥ ८७ ॥ तदूर्ध्वं दग्धपा

कः स्याद्दाहकृन्निःप्रयोजनः। आमपक्वश्चनिर्वीर्यो

वन्हिमान्द्यकरो गुरुः ॥ ८८ ॥

भा० — स्नेहपाक तीन प्रकारका कहाहै मृदु मध्य और खर ॥ थोडा रसके सहित कल्क वाला स्नेह पाक मृदु है ॥ ८६ ॥ और रससे रहित कोमल

कल्क में मध्य पाक का सिद्ध स्नेह जानना चाहिये ॥ थोड़ा कठिन कल्क वाला स्नेह पाक खरहोताहै ॥ ८७ ॥ इसके ऊपर दग्धपाक होताहै वोह दाहकादि वे प्रयोजन है ॥ और कच्चा पका हुवा निर्वीर्य अग्निमान्द्य को करने वाला भारी होता है ॥ ८८ ॥

नस्यार्थे स्यान्मृदुः पाको मध्यमः सर्वकर्मसु । अभ्य ङ्गार्थः खरः प्रोक्तो युञ्ज्यादेवं यथोचितम् ॥ ८९ ॥ घृततैलगुडादींश्च साधयेन्नैकवासरे । प्रकुर्वन्त्यु षितास्त्वेते विशेषाद्गुणसञ्चयम् ॥ ९० ॥

[अथसन्धानविधिः] द्रवेषु चिरकालस्थं द्रव्यं य त्सन्धितं भवेत् । आसवारिष्टभेदैस्तु प्रोच्यते भेष जोचितम् ॥ ९१ ॥ भेषजेषु यदुचितं तद्भेषजोचि तम् । [तत्र आसवारिष्टयोर्लक्षणमाह ।] यदपक्वौषधाम्बुभ्यां सिद्धं मद्यं स आसवः । अरिष्टः क्वाथसाध्यः स्यात् तयोर्मानं पलोन्मितम् ॥ ९२ ॥

भा० नासके अर्थ मृदु पाक और मध्य पाक सबका मोंमे ॥ तथा अभ्यङ्ग के अर्थ खर पाक कहाहै इस प्रकार यथोचित योजना करे ॥ ८९ ॥ घृत तेल गुड़ आदि योंका एकदिन में बनावे ॥ विशेष करके वासी हुवे येह गु ण संचय को करते हैं ॥ ९० ॥ अनंतर सन्धान विधि । द्रवमें बहुतकाल (काजो द्रव्य सन्धित होताहै ॥ औरसब अरिष्ट इनभेदोंसे औषधोचित उसको कहता हूं ॥ ९१ ॥ औषधियोंमें जोउचित वोह भेषजोचित है । उसमें आसव अरिष्टोंका लक्षण कहते हैं ॥ जो कच्चे औषधके जल से । सिद्ध मद्य होताहै वोह आसव है ॥ अरिष्ट काढ़ेसे बनता है उनका तोल पल भर है ॥ ९२ ॥ (सामान्यतोऽरिष्टविधिः ।) ॥

अनुक्तमानारिष्टेषु द्रवाद्द्रोणं गुडात्तुलाम् । क्षौद्रं क्षि

पेद्गुडादर्द्धं प्रक्षेपं दशमांशिकम् ॥ ९३ ॥ दशमांशिकम् । गुडस्यैव दशमांशं। द्विविधं सीधुमाह। ज्ञेयः शीतरसः सीधुरपक्वमधुरद्रवैः (मधुरद्रवै इक्षुरसादिभिः।) सिद्धः पक्वरसः सीधुः सम्यक्क मधुरद्रवैः। परिपक्वान्नसन्धानात् समुत्पन्नां सुराञ्जगुः ॥ ९४ ॥ सुरामण्डः प्रसन्ना स्यात्ततः कादम्बरी घना। तदधोजगलो ज्ञेयो मेदको जगला द्घनः ॥ ९५॥

भा० सामान्यसे अरिष्टकी विधि। जिस अरिष्टमें तोल्न नहीं कही है उसमें द्रोण जल और गुड तुलाभर ॥ गुडके आधा मधु और प्रक्षेप गुडका दशवा भाग डाले ॥ ९३ ॥ गुडका दशमांश। दो प्रकारके सीधुको कहतेहै ॥ अपक्क मधुर द्रवोंसेजो होताहै उसको शीतरस सीधु जानना चाहिये। अर्थात् ईख आदिके रससे। पके हुवे मधुर द्रवसेजो सिद्ध होताहै उसकोपक्व रस सीधुकहतेहैं ॥ परिपक्व अन्नके सन्धान से उत्पन्न हुई को सुराकहतेहैं ॥ ९४ ॥ सुरामण्ड प्रसन्नाहै उस्से कादंवरी गाढी होती है ॥ उसके नीचेका जगल जानना चाहिये और जगलसे मेदक गाढा होताहै ॥ ९५॥

पक्वो सो हृतसारः स्यात् सुरा वीजं च किण्वकम्। सुरा वीजम् । यव गोधूम तण्डुलादि ॥ यत्तालखर्जूररसैः सन्धिता साहि वारुणी। कन्दमूलफलादीनि सस्नेह लवणानि च ॥ ९६ ॥ विनष्टं सन्धितो यस्तु तच्छुक्तमभिधीयते। अभिष्यन्ते ॥ द्रवेण प्लाव्य सन्धीयन्ते। विनष्टमम्लतां यातं मद्यं वा मधुरद्रवः। विनष्टं सन्धितो यस्तु तच्छुक्त

पं

मभिधीयते ॥ ९७ ॥ गुडाम्बुना सतैलेन कन्दशाक
फलैस्तथा ॥ सन्धितञ्चाम्लतांयातं गुडशुक्तं प्रचक्षते ॥
॥ ९८ ॥ एवमेव हि शुक्तं स्यान्मृद्वीकासम्भवंतथा।
तुषाम्बु सन्धितं ज्ञेय मामैर्विदलितैर्यवैः ॥ ९९ ॥

भा० पका वोह सार रहित होताहै उसको सुरावीज कियण्व कहतेहैं ॥ सूरवीज ॥ जब गेहूं तण्डुलादि ॥ जोनाड खजूर के रसों से सन्धान की जातीहै वोह वारुणी है ॥ कन्द मूल फल आदिक स्नेह स्नेहके सहित और लवण ॥ ९६ ॥ सन्धान किया हुवा जो गल्न जाताहै उसको शुक्त कहतेहैं ॥ द्रव से आस्रवन होकर सन्धान होताहै ॥ विनष्ट अथवा खट्टाहुवा जो मधुर द्रवहै ॥ विनष्ट सन्धान किया जोहै उसको शुक्त कहतेहैं ॥ ९७ ॥ गुड जल का तैलके सहित तथा कन्द शाक फलके साथ ॥ सन्धान अर्थात खान डाला हुवा जो खट्टा हो जाताहै उसको गुड शुक्त कहतेहैं ॥ ९८ ॥ ऐसे ही दाख का शुक्त होताहै ॥ कच्चा विद तिल जवों से सन्धान किया हुवा तुषाम्बु जानना चाहिये ॥ ९९ ॥

यवैस्तु निस्तुषैः पक्वैः सौवीरं सन्धितं भवेत् ॥ आ
रनालन्तु गोधूमै रामैः स्यान्निस्तुषीकृतैः ॥ १०० ॥
पक्वैर्वा संहितै स्तत्तु सौवीरसदृशं गुणैः। कल्मा
षधान्यं मण्डादि संहितं काञ्जिकं विदुः ॥ १०१ ॥
शिण्डाकि संहिता ज्ञेया मूलकैः सर्षपादिभिः॥

भा० निस्तुष पके हुवे जवोंसे सिद्ध किया हुवा सौवीर होताहै ॥ वे छिल्नके के कच्चे गेहूं योंसे आरनाल होताहै ॥ १०० ॥ और पके हुवे उनसे सन्धान किया हुवा सौवीरके समान गुणमें होताहै ॥ सुगन्धि युक्त धान्यके मंडादि से संहितको कांजिक कहतेहैं ॥ १०१ ॥ मूली सरसों से सहितको शिण्डाकी जानना चाहिये ॥

(अथधातूनां शोधनमारणविधिः।)

॥ तत्र मारणाय योग्यं सुवर्णमाह ॥

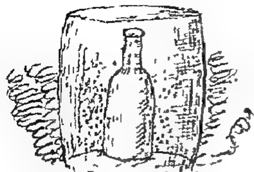
दाहे रक्तं सितं छेदे निकषे कुङ्कुमप्रभम्। तारशुल्बोज्झितं स्निग्धं कोमलं गुरु हेम सत्॥ १०२॥ (सत्। उत्तमम्)। तच्छेदे कठिनं रूक्षं विवर्णं समलं दलम्। दाहे छेदे सितं श्वेतं कषे स्फुटं लघु त्यजेत्॥ १०३॥ [शोधनविधिः] पत्लीकृतपत्राणि हेम्नो वह्नौ प्रतापयेत्। निषिञ्चेत् तप्ततप्तानि तैले तक्रे च काञ्जिके॥ १०४॥ गोमूत्रे च कुलत्थानां कषाये तु त्रिधा त्रिधा। एवं हेम्नः परेषाञ्च धातूनां शोधनं भवेत्॥ १०५॥

भा० अनंतर धातु शोधन मारण की विधिः। उसमें भस्म के योग्य सुवर्ण को कहते हैं॥ दाह में लाल काटने में सफेद कसौटी पर केसर के समान॥ चान्दी ताम्बे से रहित चिकना कोमल भारी ऐसा सोना उत्तम है॥ १०२॥ और वोह काटने में कठिन रूखा विवर्ण समल पत्र॥ दाह और काटने में सफेद कसमें स्फुट हलका ऐसे को न लेवे॥ १०३॥ अनंतर शोधनविधि। पतले सोने के वरक करके आग में तपावे॥ तपा २ कर तेल मठा कांजी॥ १०४॥ गोमूत्र कुरथी का काढा इनमें तीन २ वार बुझाव देवे॥ इस प्रकार सोने का और धातुवों का भी शोधन होता है॥ १०५॥

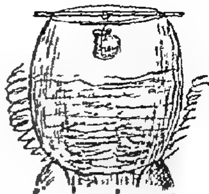
अथाशुद्धस्य सुवर्णस्य दोषमाह।

बलं सवीर्यं हरते नराणां रोगव्रजं पोषयतीह काये। असौख्यकार्यं च सदा सुवर्णमशुद्धमेतन्मरणञ्च कुर्यात्॥ १०६॥ [स्वर्णस्य मारणविधिः।] स्वर्णस्य द्विगुणं सूतमम्लेन सह मर्दयेत्। तद्गोलकसमं गन्धं निदध्यादधरोत्तरम्॥ १०७॥

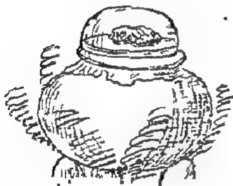
वालूका यंत्र



डोल का यंत्र



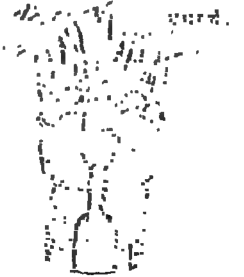
स्वेदन यंत्र



विद्याधर यंत्र







स्वर्णस्य अतितनू कृतपत्रस्य गन्धम्। गन्धकचूर्णम् गोलकञ्च ततो रुध्वा शराव दृढसंपुटे। त्रिंशद्वनोपलैर्दद्यात्पुटान्येव चतुर्दश॥ १०८॥ निरुत्थं जायतेभस्म गन्धो देयः पुनः पुनः॥ ॥

भा० ॥ अनंतर अशुद्ध सोनेका दोष कहते हैं॥ मनुष्योंका बल वीर्य्यके मदिन हरताहै॥ और बहुत से रोगोंको शरीरमें करताहै॥ सदा असौख्य करताहै और अशुद्ध येह सोना मरणभीकरताहै॥१०६॥ अनन्तर सोनेकी मारणविधि। सोनेका दुगना पारा खटाईके साथ घोटे॥ उस गोलकके समान ऊपर नीचे गन्धक देवे॥ १०७॥ सोनेका॥ वहुत पतलेकिये पत्रका। गन्धकचूर्ण। उसके अनंतर गोलककी सकोरेके दृढ संपुटमें बन्दकरके॥ तीस अरने उपलोंसे चौदह पुटदेवे॥ १०८॥ निरुत्थ भस्म होताहै गन्धक वार २ देनाचाहिये॥

(क) रुध्वा स वस्त्र कुट्टितं चिक्कण मृत्तिकया वनोपलः। गोइठा इति लोके निरुत्थं यत्पुनर्नजीवति। अथान्यप्रकारः। काञ्चने गलिते नाग्नं षोडशांशेन निःक्षिपेत्। चूर्णयित्वा तथाम्लेन घृष्ट्वाकृत्वातु गोलकम्॥ १०९॥ गोलकेन समं गन्धं दत्त्वा चैवा धरोत्तरम्। शराव सम्पुटे धृत्वापुटेद्द्विंशद्वनोपलैः॥११०॥ एवंसप्तपुटैर्हेम निरुत्थं भस्म जायते। अत्रापि पूर्ववद्गन्धः प्रदातव्या। [अन्यच्च]

भा० स वस्त्र कूटीहुई चिकनी माटीसे। गोइठा। निरुत्थ अर्थात् जो फिर सेनहीजीता। अनंतर दूसरा प्रकार। गला एहुवे सोनेमें सोलहवां भाग सीसाडाले॥ उसको पीसकर तथा खट्टे से घोटकर गोली करके॥ १०९॥ गोलकके समान गन्धक नीचे ऊपर देकर॥ उत्तर

सम्पुट मेंधरके वांस अरने उपलोंसे पुटदेवे॥ ११० ॥ ऐसी सात पुटोंसे सोना निरुत्थ भस्म होताहै ॥ इसमें भी पहिलेजैसा गन्धक देना चाहिये ॥ औरभी॥

काञ्चनाररसे घृष्ट्वा समसूतकगन्धयोः । कज्जलीं हेम पत्राणि लेपयेत् समया तया ॥ १११ ॥ हेमपत्र समया ॥ काञ्चनारत्वचः कल्केर्मूषा युग्मं प्रकल्पयेत् । धृत्वा तत्सम्पुटे गोलं स्त्रन्मूषा सम्पुटे च तत् ॥ ॥ ११२ ॥ निधाय सन्धिरोधञ्च कृत्वा संशोष्य गोलकम्- वह्निं खरतरं कुर्यादेवं दत्त्वा पुटत्रयम् ॥ ११३ ॥

भा० - समभाग पारा गन्धक,को कचनारकेरससे घोटकरकजली करे ॥ उस कजलीको उसीके समान सुवर्ण के पत्रोंकोलेपकरे ॥ १११ ॥ सुवर्णपत्रके समान । कचनारकी छालके कल्कसेदोघरियावनावे ॥ उसमें पुटमें गोलीको धरके और उसको मिट्टी के सम्पुट में ॥ ११२ ॥ रखकर कपड मिट्टी करके गोलेको सुकाके ॥ बहुततेज आंचदेवे ऐसे तीन पुट देनेसे ॥ ११३ ॥

निरुत्थं जायते भस्म सर्वकर्मसु योजयेत् । काञ्चनार प्रकारेण लाङ्गली हन्ति काञ्चनम् ॥ (लाङ्गलीकरिहारी) ॥ ज्वालामुखी तथा हन्यात् तथा हन्ति मनःशिला । शिलासिन्दूरयोश्चूर्णं समयोरर्कदुग्धकैः ॥ ११४ ॥ सप्तधा भावनां दद्याच्छोषयेच्च पुनः पुनः । ततस्तु गलिते हेम्नि कल्कोऽयं दीयते समः ॥ ११५ ॥

भा० निरुत्थभस्म होताहै उसको सव कामोंमे लावे ॥ कचनारकीतोर पर करिहारीसो नेको मारती है ॥ करिहारी ॥ वैसेही अग्निपारवरसीने को मारताहै औरमैनसिल सोनेकोमारताहै । समभाग मैनासल औरसिन्दूर इनकेचूर्णको आंक के दूधसे ॥ ११४ ॥ सातवार भावनादेवे औरफिर

२सुकावे॥ उसके अनंतर सोनेको गलाकर येह सम भाग कल्क देवे॥ ११५॥

पुनर्द्धमेदतितरां यथा कल्को विलीयते। एवंवेला त्रयं दद्यात्कल्कं हेम मृतिर्भवेत्॥ ११६॥

|एवं मारितस्य सुवर्णस्य गुणाः॥|

सुवर्णं शीतलं वृष्यं वल्यं गुरु रसायनम्। स्वादु तिक्तं चतुवरं पाकेच स्वादुपिच्छिलम्॥ ११७॥ पवित्रं वृंहणं नेत्र्यं मेधास्मृति मतिप्रदम्। हृद्यमायुष्करं कान्ति वाग्विशुद्धिस्थिरत्वकृत्॥११८॥

भा० – फिर धोंके खूब जोरसे जिसमें कल्क जल जावे॥ इस प्रकार तीन बार कल्क देवे इस्से सोना मरजाताहै॥ ११६॥ ऐसे मारेहुवे सोनेका गुण॥ सोना शीतल शुक्रको करनेवाला बलकारी भारी रसायन॥ मधुर तिक्त कसेला पाकमें मधुर पिछिल॥ ११७॥ पवित्र पुष्ट नेत्रके हित मेधास्मृति इनकी देनेवाला॥ हृद्य आयुको करनेवाला कान्ति वाणी की शुद्धता स्थिरताको करनेवाला॥ ११८॥

विषद्वयक्षयोन्माद त्रिदोषज्वर शोषजित्। वृष्यम् त्वषाय कासुकाय हितम्॥ असम्यङ्मारितं स्वर्णंवलं वीर्यञ्च नाशयेत्। करोति रोगान्मृत्युञ्च तद्धन्याद्यत्नतस्ततः॥ ११९॥ धात्वादि मारणोपयुक्तान् पुटप्रकारान्नाह रसप्रदीपे॥

भा० दोनों विष उन्माद सन्निपात ज्वर और शोष इनको जीतनेवालाहै। कामुकके हित। अच्छी तरह भस्म न किया हुवा सोना बल वीर्य्यको नाश करताहै॥ और रोगों को तथा मृत्युको करताहै इसवास्ते उसको यत्नसे मारे॥ ११९॥ रस प्रदीपमें धात्वादिके मारणोपयोगी पुटप्रकारों

को कहाहै ॥

लोहादेर पुनर्भावस्तु गुरुत्वं गुणाल्पता। सलिले तरणञ्चापि तन्सिद्धिः पुटनाद् भवेत् ॥ १२० ॥ गम्भीरे विस्तृते कुण्डे द्विहस्ते चतुरस्रके। वनोपल सहस्रेण पूरितं पुनरौषधम् ॥ १२१ ॥ कोष्ठे रुद्धे प्रयत्नेन गोविष्ठोपरि धारयेत्। वनोपल सहस्रार्द्धं कोष्ठिकोपरि निःक्षिपेत् ॥ १२२ ॥ वह्निं विनिःक्षिपेत्तत्र महापुटमिति स्मृतम्। कोष्ठं मृण मूषा गोविष्ठा गोइटा। [महापुटम्।]

भा० धातु आदियोंका फिरसे नजीना उनका गुरुत्व और गुणाल्पता है ॥ जलके ऊपर तैरना भी उसकी सिद्धि पुटसे होती है ॥ १२० ॥ गहरे और बडे दो हाथके चौकोर कुंडमें ॥ हजार अरने उपले भरे फिर औषधको ॥ १२१ ॥ कोष्टमें पल के साथ बन्दकरके गोइटोंके ऊपर रक्खे ॥ पान्सौ अरने उपले कोष्ठिक के ऊपर डाले ॥ १२२ ॥ उसमें आंच लगावे इसको महापुट कहाहै मट्टीकी घरिया। गोइटा। महापुट ॥

सपाद हस्तमानेन कुण्डे निम्ने तथायते। वनोपल सहस्रेण पूर्णे मध्ये विधारयेत् ॥ १२३ ॥ पुटन द्रव्यसंयुक्तां कोष्ठिकां मुद्रितां मुखे। अर्धानि करडानि अर्द्धान्युपरि निक्षिपेत् ॥ १२४ ॥ एतद् गजपुटं प्रोक्तं स्यात्सर्वपुटोत्तमम् ॥

भा० -सवाहाथ के मानसे गहरे तथा चौडे कुंड से ॥ हजार अरने उपलों से भरेहुवेमें ॥ १२३ ॥ पुटनद्रव्यसे युक्त माटीकी घरियाको बन्दकरके रक्खें ॥ आधे कंडे नीचे और आधेको ऊपर डाले ॥ १२४ ॥ येह गज।

पुट कहाहै सब पुटोंमें उत्तमहै॥

(क) हस्तश्चतुर्विंशत्यङ्गुलप्रमाणः स सपादः तेन त्रिंशदङ्गुलप्रमाणेनेत्यर्थः अतएवोक्तम्। साधारणनराङ्गुल्या त्रिंशदङ्गुलको गजः।

| इति गजपुटम् | अरत्निमात्रके कुण्डे पुटं वाराहमुच्यते॥ वितस्तिमात्रके खाते कथितं कौक्कुटं पुटम्॥१२५॥ अरत्निस्तु कनिष्ठेन मुष्टिनेत्यमरः॥ निःसृतकनिष्ठया मुष्ट्योपलक्षितो हस्तोऽरत्निरित्यर्थः

भा०-(क) चौबीस उंगल प्रमाण हाथ सपाद उससे तीस अंगुल प्रमाण करके येह अर्थहै। इसीवास्ते कहाहै। साधारण मनुष्यकी तीस अंगुल का गज होताहै॥ इतिगजपुट॥ कोहनीसे चिटली उंगलीतक के कुंड में जो पुट होताहै उसको वाराह पुट कहतेहैं॥ वितस्त भरके गढेमें कौकुकुट पुटकहाहै॥१२५॥ कनिष्ठाके साथ मुष्टि से इस प्रकार अमर में कहाहै। निःकली हुई चिटली उंगली उसकरके उपलक्षित॥ हस्त अरत्निहै॥

षोडशाङ्गुलके खाते कस्यचित्कौक्कुटं पुटम्॥ यत्पुटं दीयते खाते अष्टसंख्यैर्वनोपलैः॥१२६॥ कपोतपुटमेतत्तु कथितं पुटपण्डितैः। गोष्ठान्तर्गोखुरक्षुण्णं शुष्कं चूर्णितगोमयम्॥१२७॥ गोवरं तत्समाख्यातं वरिष्ठं रससाधने। दृढाण्डस्थितैर्यत्र गोवरैर्दीयते पुटम्॥१२८॥

भा० किसीके सोलह अंगुलके गढेमें॥ कौकुट पुट होताहै॥ जो गढेमें आठ अरने उपलोसे पुट दिया जाताहै॥ १२६॥ उसको पुट पंडितोंने कपोत पुट कहाहै॥ गोशाला में गायके खुरसे खुदा सूका चूर्णित गोव

र होताहै ॥ १२७ ॥ उसको गोबर कहाहै वोह रस धान में श्रेष्ठ है ॥ बड़े बरतन में रक्खे हुवे गोबर से जहां पर पुट दिया जाता है ॥ १२८ ॥

तद्गोवर पुटं प्रोक्तं भिषग्भिः सूतभस्मनि । वृहद्भाण्डे तुषैः पूर्णे मध्ये मूषां विधारयेत् ॥ क्षिप्त्वाग्निं मुद्रयेत् भाण्डं तद्भाण्डं पुटमुच्यते ॥ १२९ ॥

[अथ यन्त्रप्रकारानाह तत्रैव ।]

भाण्डे वितस्तिगम्भीरे मध्ये निहितकूपिका । कूपिका कण्ठपर्यन्तं वालुकाभिश्च पूरिते ॥ १३० ॥ भेषजं कूपिकासंस्थं वन्हिना यत्र पच्यते । वालुकायन्त्र मेतद्धि यन्त्रं तत्रबुधैः स्मृतम् ॥ १३१ ॥ वालुकायन्त्रम् ॥

भा० उसको वैद्योंने पारेके भस्म में गोबर पुट कहाहै ॥ धानके छिलकोंसे पूर्ण बड़े बरतनके बीचमें घरियाको रक्खे ॥ आगडालकर बरतनको बन्दकरदे उसको भाण्ड पुटकहते हैं ॥ १२९ ॥ अनंतर उसीमें यन्त्र प्रकारोंको कहाहै . . . . शीशीको रक्खे ॥ शीशीको रेतसे कंठतक भरे । जिसमें ॥ १३० ॥ शीशीकी दवा आगसे पकाई जाती है ॥ . . . यन्त्र . . है ॥ १३१ ॥ वालुकायन्त्र ॥

निबद्ध मौषधं सूतं भूर्जेनतत् त्रिगुणं वरे । रसपोटलिका काष्टे दृढं बध्वा गुणेन हि ॥ १३२ ॥ सन्धान पूर्ण कुम्भान्तः खावलं बन संस्थितम् । अधस्तान् ज्वालयेदग्निं तत्तदुक्तक्रमेण हि ॥ १३३ ॥

भा० औषध और पारेको भोज पत्रमें बान्धे और उसको तीनपरत किये हुये कपडे में बांधे ॥ अनंतर उस रस पोटलीको काष्ट में मजबूत डोरीसे बान्धकर ॥ १३२ ॥ कांजीसे भरेहुवे घडेके भीतर बीचमें लटका

कर रक्खे ॥ नीचे उसके कहे हुवे क्रमसे आग वाले ॥ १३३॥

दोलायन्त्रमिदं प्रोक्तं स्वेदनाख्यं तदेव हि। [दोलायन्त्रम्] सन्धानं (काञ्जिकादि) साम्बुस्थालीमुखे बद्धे वस्त्रे स्वेद्यं निधाय च। पिधाय पच्यते यन्त्रे तद्यन्त्रं स्वेदनं स्मृतम् ॥ १३४ ॥ [स्वेदनं यन्त्रं] अथ स्थाल्यां रसं क्षिप्त्वा निदध्यात्तन्मुखोपरि। स्थालीमूर्द्धमुखीं सम्यङ् निरुध्य मृदुमृत्स्नया ॥ १३५ ॥ ऊर्द्धस्थाल्यां जलं क्षिप्त्वा चुल्यामारोप्य यत्नतः। अधस्ताज्ज्वालयेदग्निं यावत्प्रहरपञ्चकम् ॥ १३६ ॥

भा० - इसको दोलायन्त्र कहा है और स्वेदनाख्य भी वोही है ॥ दोलायन्त्र। कांजी आदि। जलसहित तसले के मुखपर कपडेको बांधकर स्वेद वस्तु को रखके बन्द करके पकाया जाता है। जिस यन्त्र में उसको स्वेदन यन्त्र कहा है ॥ १३४॥ स्वेदन यन्त्र ॥ नीचेके तसलेमें पारेको डालकर उसके मुखपर ऊपर मुख करके तसला रक्खे। उसको अच्छीतरह चिकनी मिट्टीसे बन्द करके ॥ १३५॥ ऊपरके तसले में जल डालकर चल्हे के ऊपर यत्न से रक्खे ॥ और नीचे पांच पहर आग वाले ॥ १३६ ॥

स्वाङ्गशीतं ततो यन्त्राद्गृह्णीयाद्रसमुत्तमम्। विद्याधराभिधं यन्त्रमनत्तज्ज्ञैरुदाहृतम् ॥ १३७ ॥ [विद्याधर यन्त्रम्।] वालुकाभिः समस्ताङ्गं गर्ते मूषां रसान्विताम्। दीप्तोपलैः संवृणुयाद्यन्त्रं भूधरनामकम् ॥ १३८ ॥ [भूधरयन्त्रम्] यन्त्रं डमरुसंज्ञं स्यात्तत्स्थाल्योर्मुद्रिते मुखे। डमरुयन्त्रम्

भा० - स्वाङ्गशीत होनेपर उसमें से यत्नके साथ उत्तम रसको लेवे ॥

उसको जानने वालोंने इसको विद्याधर नाम यन्त्र कहाहै ॥ १३७ ॥ विद्याधर यन्त्र ॥ रसयुक्त घरियाको गढेमें रेतसे और जलने उपलोंसे सम्पूर्ण अंगको बन्द करे उसको भूधर नामक यन्त्र कहते हैं ॥ १३८ ॥ भूधर यन्त्रम् । दोनो तसलों के मुख जोड़ देवे उसको डमरु यन्त्र कहते हैं ॥ डमरु यन्त्र ॥

[अथ मारणाय योग्यरूप्यमाह ।]

गुरु स्निग्धं मृदु श्वेतं दाहच्छेदघनक्षमम् । स्वर्णादिरहितं स्वच्छं तारं नवगुणं शुभम् ॥ १३९ ॥ [अथायोग्यम्] कठिनं कृत्रिमं रूक्षं रक्तं पीतदलं लघु । दाहच्छेदघनैर्नष्टं रूप्यं दुष्टं प्रकीर्तितम् ॥ १४० ॥ [अथशोधनविधिः] पत्तलीकृतपत्राणि तारस्याग्नौ प्रतापयेत् । निषिञ्चेत्तप्ततप्तानि तैले तक्रे च काञ्जिके ॥ १४१ ॥ गोमूत्रे च कुलत्थानां कषायेच त्रिधा त्रिधा । एवं रजतपत्राणां विशुद्धिः सम्प्रजायते ॥ १४२ ॥

भा० अनन्तर मारणके योग्य चान्दीको कहतेहैं ॥ भारी चिकनी मुलायम सुफेद तपाने और काटनेमें चोट सहनेवाली ॥ स्वर्ण आदि से रहित स्वच्छ यह चान्दीके नव अच्छे गुणहै ॥ १३९ ॥ अनन्तर योग्य । कठिन कृत्रिम रूखी लाल पीले पत्र वाली हलकी । दाहछेद और घनसेंनष्ट ऐसी चान्दी को खराब कहाहै ॥ १४१ ॥ अनंतर शोधनविधि । चान्दीके पतले पत्र करके आगमें तपावे ॥ तथा २ करतेल मठा कांजी ॥ १४१ ॥ गोमूत्र औरकुरथी के काढेमें तीन २ वार बुझावे ॥ इसप्रकार चान्दीके पत्रों की शुद्धि होतीहै ॥ १४२ ॥

(अथाशुद्धस्य रूप्यस्य दोषमाह)

रूप्यंत्वशुद्धं प्रकरोति तापं विवन्धकं वीर्य्यवलक्षयञ्च ·

देहस्यपुष्टिं हरते तनोति रोगांस्ततः शोधनमस्य कुर्यात्॥ १४३॥ [अथरूप्यमारण विधिः]॥

भागैकं तालकं मर्द्यं याममम्लेन केनचित्। तेन भागत्रयं तारपत्राणि परिलेपयेत्॥ १४४॥ धृत्वा मूषापुटे रुध्वा पुटेत् त्रिंशद्वनोपलैः। समुद्धृत्य पुनस्तालं दत्त्वा रुद्धा पुटे पचेत्॥ १४५॥

भा० - अनंतर अशुद्ध चान्दी के दोष कहते हैं॥ अशुद्ध चान्दी ताप विबन्ध और वीर्यबलका क्षय करती है॥ शरीरकी पुष्टी हरती है और रोगों को करती है इसवास्ते इसका शोधनकरे॥ १४३॥ अनंतर चान्दी की मारण विधि एक भाग हरताल को किसी खटाई के साथ एकपहर घोटकर॥ उससे तीन भाग चान्दीके पत्रोंको लेपकरावे॥ १४४॥ उनको घरिये में रखकर बन्दकर के तीस अरने उपलों से पुटदेवे॥ उसको निकालकर फिर से हरताल देकर बन्दकर पुटमें पकावे॥ १४४॥

एवंचतुर्दशपुटैस्तारंभस्म प्रजायते। अथान्य प्रकारः। स्नुहीक्षीरेण संपिष्टं माक्षिकं तेन लेपयेत्। तालकस्य प्रकारेण तारपत्रस्य बुद्धिमान्॥ १४६॥ पुटेच्चतुर्दश पुटैस्तारंभस्म प्रजायते॥

[एवंमारितस्य रूप्यस्य गुणाः]

रौप्यंशीतं कषायञ्च स्वादुपाकरसं सरम्। वयसः स्थापनं स्निग्धं लेखनं वातपित्तजित्॥ १४७॥ प्रमेहादिकरोगांश्च नाशयत्यचिराद्ध्रुवम्॥

भा० ऐसे चौदह पुटमें चान्दी का भस्म होता है॥ अनंतर दूसरा प्रकार॥ रूपा माखीको थूवरके दूधमें पीसे उससे॥ हरताल के तरह चान्दी

केपत्रोंकोलेपकरे ॥ १४ ॥ चौदह पुंटदेवे इससे चान्दीभस्महोतीहै। इस प्रकार चान्दीके भसमका गुण है ॥ चान्दी शीतल कसेली पाक रस में मधुर ॥ वपकीस्थापन चिकनी लेखन वान पित्तकोजीननेवाली है ॥ १४७॥ और प्रमेह आदिक रोगों को निश्चय नाश करती है ॥

[अथ मारणा योग्य ताम्रमाह]

जवा कुसुम सङ्काशं स्निग्धं गुरु घन क्षमम्। लोह नागोज्झितं ताम्रं मारणाय प्रशस्यते ॥ १४८॥

[अथा योग्य ताम्रमाह]

कृष्णं रूक्षं मतिस्वच्छं श्वेतं चापि घना सहम्। लोह नाग युतं चेति शुल्वं दुष्टं प्रकीर्त्तितम् ॥ १४९॥

अथशोधनविधिः पत्तलीकृतपत्राणि ताम्रस्याग्नौ प्रतापयेत्। निषिञ्चेत्तप्ततप्तानि तैले तक्रे च काञ्जिके ॥ १५०॥ गोमूत्रेच कुलत्थानां कषायेच त्रिधात्रिधा। एवं ताम्रस्य पत्राणां विशुद्धिः संप्रजायते ॥ १५१॥

भा० — अनन्तर मारण योग्य ताम्रको कहते हैं ॥ अडहुलके फूल के सदृश लाल चिकना भारी घन सहनेवाला ॥ लोहा और सीसा इनसे रहित ताम्बा मारणके अर्थ अच्छाहै ॥१४८॥ अनंतर अयोग्य ताम्र को कहतेहैं। काला रूखा अति स्वच्छ श्वेत घनको नसहनेवाला ॥ लोह नाग से युक्त ऐसा ताम्बा दुष्ट कहाहै ॥ १४९॥ अनंतर शोधन की विधि ॥ ताम्बे के पतले पत्र करके आगमें तपावे। उनकोतपा २ करतेल मटा कांजी ॥ १५०॥ गोमूत्र कुरथी का काढा इनमें तीन २ वार बुझावे ऐसे ताम्बेके पत्रोंकी शुद्धि होती है ॥ १५१॥

एको दोषो विषे ताम्रे त्वशुद्धेऽष्टौ भ्रमो वमिः। विरेकः स्वेद उत्क्लेदो मूर्छा दाहोऽरुचिस्तथा॥ १५२॥

नविषं विष मित्याहुस्ताम्नन्तु विषमुच्यते। एको दो
षो विषेताम्ने त्वष्टौ दोषाः प्रकीर्त्तिताः॥ १५३॥

अथ ताम्रस्य मारण विधिः।

सूक्ष्माणि ताम्र पत्राणि कृत्वा संस्वेदयेद्बुधः।
वासरत्रय मम्लेन ततः खल्वे विनिःक्षिपेत्॥१५४॥
पादांशं सूतकं दत्वा याम मम्लेन मर्द्दयेत्। तत उ
द्धृत्यपत्राणि लेपयेद्द्विगुणेन च॥ १५५॥

भा० विषमें एक दोष अशुद्ध ताम्रमें आठ दोष है॥ भ्रम वमन विरेक स्वेद उत्क्लेद मूर्च्छा दाह अरुचि येह है॥ १५२॥ विषको विष नहीं कहते है ताम्रको विष कहते हैं॥ एक दोष विषमें कहा है और आठ दोष ताम्रमें कहे हैं॥ १५३॥ अनन्तर ताम्रके मारण की विधि। सूक्ष्म ताम्रके पत्र करके बुद्धिमान उनको संस्वेदन करे॥ तीन दिन खटाईके साथ उसके अनन्तर खरलमें डाले॥ १५४॥ उसमें चौथाई पारा देकर एक पहर खटाईके साथ घोटे॥ उस्से लेकर दुगने से उन पत्रोंको लेप करे॥ १५५॥

गन्धकेनाम्ल घृष्टेन तस्यकुर्याच्च गोलकम्। ततः पि
ष्ट्वा च मीनाक्षी चाङ्गेरी वा पुनर्नवाम्॥ १५६॥

(चाङ्गेरी चतुष्पत्राम्ला लोनिका भेदः।)

तत्कल्केन बहिर्गोलं लेपयेद्व्यङ्गुलोन्मितम्। धृत्वा
तद्गोलकं भाण्डे सरावेण चरोधयेत्॥ १५७॥

भा० - खटाईसे घोटे हुए गन्धक से उसकी गोली करे॥ उसके अनन्तर मछेछी चांङ्गेरी अथवा पुनर्नवा इसको पीसकर॥ १५६॥ उसके कल्कसे दो अंगुल मोटा गोलकके बाहर लेप करे॥ उसे गोलक को बरतनमें रखकर सकोरेसे बन्द करदे॥ १५७॥

तात्तु काभिः प्रपूर्व्वाथ विभूति लवणाम्बुभिः॥ दत्त्वा भाण्ड मुखे मुद्रां ततश्चुल्यां विपाचयेत्॥ १५८॥ क्रम वृद्धाग्निना सम्यग्यावद्यामचतुष्टयम्। स्वाङ्ग शीतं समुद्धृत्य मर्द्दयेच्छूरणाद्रवैः॥ १५९॥ यामैकं गोलकं तच्च निःक्षिपेच्छूरणोदरे॥ मृदा लेपस्तु कर्त्तव्यः सर्व्वतोऽङ्गुष्ठ मात्रकः॥ १६०॥ पाच्यं गज पुटे क्षिप्तं मृतं भवति निश्चितम्। वमनं च विरेकं च भ्रमं क्लम मथारुचिम्॥ १६१॥ विदाहं स्वेद मुत्क्लेदं नकरोति कदाचन॥

भा० तालूसे भरके और विभूतलवण जल इसे भाण्ड मुख में मुद्रा देकर उसके अनंतर चूल्हे पर पकावे॥ १५८॥ क्रमवृद्ध अग्नि से अच्छी तरह पर चार पहर आंच देवे॥ स्वाङ्ग शीत होनेपर निकालकर सूरण के रससे घोटे॥ १५९॥ एक पहर उस गोलक को सूरणके भीतर रक्खे॥ मिट्टी से सब तरफ अंगुष्ठ मात्र लेपकरना चाहिये॥ १६०॥ पाच्यको गज पुट में डालनेसे अवश्य मरता है॥ वमन विरेक भ्रमक्लम और अरुचि॥ १६१॥ विदाह स्वेद उत्क्लेद इनको कभी नहीं करता॥

एवं मारितस्य ताम्रस्य गुणाः।

ताम्रं कषायं मधुरं सतिक्त मम्लञ्च पाके कटु सारकञ्च। पित्तापहं श्लेष्महरञ्च शीतं तद्रोपणं स्याल्लघु लेखनञ्च॥ १६२॥ पाण्डूदराशोंज्वर कुष्ठ कास श्वास क्षयान् पीनस मम्लपित्तम्। शोथं क्रमिं शूलमपाकरोति प्राहुर्बुधा बृंहण मल्पमेतत्॥ १६३॥ एको दोषो विषेताम्रे त्वसम्यग्मारितेऽपिनः। दाहः स्वेदोऽरुचिर्मू

क्लेदो रेको वमिर्भ्रमः॥१६४॥ रेको विरेकः॥

भा० - रांगे मारित ताम्र का गुण॥ ताम्र कसैला मधुर तिक्त खट्टा पाक में कटु सारक। पित्तनाशक कफ नाशक शीतल और रोपण हलका लेखन होता है॥१६२॥ पांडु रोग उदर रोग ज्वर कुष्ठ कास श्वास क्षय पीनस अम्लपित्त॥ सूजन कृमि शूल इनको दूर करता है, और पंडितोंने कहा है कि यह थोडा पुष्ट भी है॥१६३॥ एक दोष विषमें और अच्छी तरह न मरे ताम्र में॥ दाह स्वेद अरुचि मूर्च्छा क्लेद विरेचन भ्रम यह होते हैं॥१६४॥ विरेक॥

अथ वङ्गस्यरूपनिरूपणम्॥

वङ्गं च गिरिजं तच्च खुरकं मिश्रकं द्विधा। तयोस्तु खुरकं श्रेष्ठं मिश्रकं त्वहितं मतम्॥१६५॥

॥ तस्याशुद्धस्यदोषमाह॥

वङ्गं विधत्ते खलु शुद्धिहीनमाक्षेपकम्पौच किलास गुल्मौ। कुष्ठानि शूलं किल वातशोथं पाण्डुप्रमेहञ्च भगंदरञ्च॥१६६॥ विषोपमं रक्तविकारवृन्दं क्षयञ्च कृच्छ्राणि कफज्वरञ्च। सोहाश्मरी विद्रधिमुष्क रोगान्नागोऽपि कुर्यात्कथितान्विकारान्॥१६७॥

भा० अनंतर रांगे का स्वरूप निरूपण। वह रांगा दो प्रकार का होता है, खुरक और मिश्रक॥ उनमें खुरक श्रेष्ठ है। और मिश्रक अहित कहा है॥ ॥१६५॥ उसके अशुद्ध का दोष कहते हैं॥ अशुद्ध रांगा आक्षेप कंप किलास कुष्ठ वायगोला॥ कुष्ठ शूल वातशोथ पांडु रोग प्रमेह भगन्दर॥१६६॥ इनको करता है और विषके समान रक्त विकार का वृन्द क्षय मूत्र कृच्छ्र कफज्वर इन ... अंडकोश के रोग करता है और सीसा भी ... १६७॥

तस्य शोधनमभिधायते वङ्गं नागौ प्रतप्तौच गालि

नौ नौनिषेचयेत्। त्रिधा त्रिधा विशुद्धिः स्याद्रवि दुग्धेऽपिचत्रिधा॥ १६८॥ (क) निषेचयेत् तैल तक्र काञ्जिक गोमूत्र कुलत्थक्वाथेषु प्रत्येक त्रिधा त्रिधा ततोऽर्कदुग्धेऽपि त्रिधा।

भा० उसकी शोधन विधिकहतेहैं। राङ्ग और सीसा इनको गलायके। तीन २ वार तेल मठा कांजी गोमूत्र कुरथीका काढा इनमें बुझावे और आकके दूधमें भी तीन वार बुझावे। इससे शुद्धहोताहै॥ १६८॥ (क) तेल मठ कांजी गोमूत्र कुरथी का काढा इनमेंहर एकमेंतीन २ वार अनंतर मदारके दूधमेंभीतीन वारबुझावे।

॥ अथ वङ्गस्य मारणविधिः॥

मृतपात्रे द्राविते वङ्गे चिञ्चा श्वत्थत्वचोरजः। क्षिप्त्वा वङ्गचतुर्थांशमयोदर्व्या प्रचालयेत्॥ १६९॥ चिञ्चा अमिली। रजश्चूर्णम् अयोदर्वी करछुली। ततो द्वियाममात्रेण वङ्गं भस्म प्रजायते॥ अथ भस्म समं तालं क्षिप्त्वाम्लेन विमर्द्दयेत्॥ ततो गज पुटे पक्त्वा पुनरम्लेन मर्द्दयेत्॥ १७०॥ तालेन् दशमांशेन याममेकं ततः पुटेत्॥ एवं दशपुटैः पक्वं वङ्गं भवति मारितम्॥ १७१॥

भा० अनंतर राङ्गकीमारणविधि॥ मिट्टीकेबरतनमेंपिघलायेहुवेराङ्गमें इमली पीपल इनकी च्छालका चूर्ण॥ राङ्गकी चौथाई डालकर लोहेकी कडछीसे चलावे॥ १६९॥ इमली। करछी उससेदो पहरमें राङ्ग भस्म होताहै॥ अनंतर भस्मके समान हरताल को डालकर खटाई से घोटे॥ १७०॥ दशमांशहरतालसे एक पहरभर फिरसे पुटदेवे॥ ऐसी दस पुटदेनेसे राङ्गका भस्महोताहै॥ १७१॥

एवं मारितस्य बङ्गस्य गुणाः

वङ्गं लघु सरं रूक्षं कुष्ठमेहकफ क्रमीन ॥ निहन्ति पाण्डुं सश्वासं नेत्र्यमीषत् तु पित्तलं ॥ १७२॥ सिंहो गजौघं तु यथा निहन्ति तथैव वङ्गोऽखिलमेह वर्गम् । देहस्य सौख्यं प्रबलेन्द्रियत्वं नरस्य पुष्टिं विदधाति नूनम् ॥ १७३॥ अथ यशदस्यस्वरूपं ॥ यशदङ्गिरिजं तस्य दोषाः शोधन मारणे । वङ्गस्येवहि बोद्धव्या गुणास्तु गणयाम्यथ ॥ १७४॥

भा० - इसप्रकार भस्म कियेहुवे रङ्ग का गुण ॥ राङ्ग हलका सर रूखा होताहै और कुष्ठ प्रमेह कफ कृमि इनको नाश करताहै और पांडु रोग श्वास इनको भी नाश करताहै तथा नेत्रकेहित थोडे पित्तको करनेवाला है ॥ १७२॥ जैसे सिंह गजकेगिरोह को नाश करताहै वैसेही रङ्ग संपूर्ण प्रमेहवर्गको नाशकरताहै ॥ मनुष्य के देहका सौख्य प्रबलेन्द्रियत्व इनको अवश्य करताहै ॥ १७३॥ अनंतर जसदका स्वरूप ॥ पहाडी जसद उसके दोष शोधन मारणमें । राङ्ग के ही समान गुण जानने चाहिये और कहताहूं ॥ १७४॥

यशदं तुवरं तिक्तं शीतलं कफपित्तहृत् । चक्षुष्यं परमं मेहान् पाण्डुं श्वासञ्च नाशयेत् ॥ १७५॥

[अथसीसकस्य शोधनम् ॥]

तस्य साहजिका दोषा रङ्गस्येव निदर्शिता । शोधनञ्चापि तस्येव भिषग्भिर्गदितं पुरा ॥ १७६॥

भा० जसद कसैला तिक्त शीतल कफ पित्तका नाशक । परम नेत्रकेहित और प्रमेह पांडुरोग श्वास इनको नाशकरताहै ॥ १७५॥ अनंतर सीसेका शोधन । उसके सहजिक दोष रङ्ग केसमान कहेहैं ॥ और शोधन भी वैद्योंने

उसी के समान कहा है ॥ १७६ ॥

अथ सीसस्य मारणविधिः

ताम्बूल रससंपिष्ट शिलालेपात्पुनः पुनः । द्वात्रिंशद्भिः पुटैर्नागो निरुत्थं भस्म जायते ॥ १७७ ॥ शिलामनःशिला ॥ अन्यच्च ॥ अश्वत्थचिञ्चात्वक्चूर्णञ्च तुर्यांशेन निक्षिपेत् । मृत्पात्रे विद्रुतोनागो लोहदर्व्या प्रचालितः ॥ १७८ ॥ यामेकेन भवेद्भस्म तत्तुल्या स्यान्मनःशिला । काञ्जिकेन द्वयं पिष्ट्वा पचेद् गजपुटेनच ॥ १७९ ॥ स्वाङ्गशीतं पुनः पिष्ट्वा शिलया काञ्जिकेनच । पुनः पचेत्सरावाभ्यामेवंयष्टि पुटैर्मृतिः ॥

॥ और भी ॥ पीपल इमली इनके छाल का चूर्ण चतुर्थांश करके ॥ मट्टी के बरतन में गलाये हुवे नाग पर डाले और लोहे की करछी से चलाता जाय ॥ १७८ एक पहर में भस्म होता है उसके समान मैनसिल ले कर ॥ दोनों को कांजी में पीसकर गजपुट में पकावे ॥ १७९ ॥ स्वाङ्गशीत होने पर फिर से मैनसिल और कांजी के साथ फिर उसको ऐसे पकावे ऐसे साठ पुट से मरता है ॥ १८०

एवं मारितस्य सीसस्य गुणाः ॥ सीसं वङ्गगुणं ज्ञेयं विशेषान्मेहनाशनम् ॥ नागस्तु नागशततुल्यबलं ददाति । व्याधिञ्च नाशयति जीवनमातनोति । वह्निं प्रदीपयति कामबलं करोति । मृत्युञ्च नाशयति सन्तत सेवितः सः ॥ १८१ ॥

भा० ऐसे नाग भस्मके गुण। सीसा राङ्ग के गुण जानना चाहिये विशेषक रके प्रमेह नाशक है। नाग सौ हाथी के समान बलको देता है॥ रोगोंको नाश करता है। जीवनको करता है। अग्निको दीपन करता है काम बलको करता है और मृत्युको नाश करता है निरन्तर सेवन करनेसे ॥ १८१॥

अथ लोहस्याशुद्धस्य दोषमाह॥ षण्ढत्वकुष्ठामयमृत्युकारी हृद्रोगशूलौ कुरुते ऽश्मरीञ्च। नानारुजानांच तथा प्रकोपं कुर्याच्च हृल्लासमशुद्धलोहम्॥ ॥८२॥ अतस्तस्य दोषशान्तये शोधनमभिधीयते। पत्तली कृतपत्राणि लोहस्याग्नौ प्रतापयेत्। निषिञ्चेत्तप्ततप्तानि तैले तक्रे च काञ्जिके॥८३॥ गोमूत्रे च कुलत्थानां कषाये च त्रिधा त्रिधा। एवं लोहस्य पत्राणां विशुद्धिः संप्रजायते॥ १८४॥

भा० अनन्तर अशुद्ध लोहेके दोष कहते हैं॥ नपुंसकता कुष्ट मृत्यु इन को करनेवाला और हृदोग शूल इनको करता है और अश्मरी कोभी। अनेक रोगों का प्रकोप करता है तथा हृल्लास इनकोभी अशुद्ध लोहा करता है इस वास्ते उसकी दोष शान्ति के अर्थ शोधन कहेता हूं॥ लोहेके पतले पत्र करके अग्निमें तपावे॥ और तपा तपा कर तेल मठा कांजी॥ १८३॥ गोमूत्र कुलथी का काढा इनमें तीन २ बार बुझावे। ऐसे लोह पत्रोंकी शुद्धि होती है॥ १८४॥

अथ लोहस्य मारणविधिः

शुद्धं लोहभवं चूर्णं पातालगरुडीरसैः। मर्द्दयित्वा पुटे वह्नौ दद्यादेवं पुटत्रयम्॥ १८५॥ पुटत्रयं कुमार्य्याश्च कुठारच्छिन्निकारसैः। पुटषट्कं ततो दद्यादेवं तीक्ष्णमृतिर्भवेत्॥ १८६॥ अन्यच्च।

क्षिपे द्वादशमांशेन दरदं तीक्ष्णचूर्णतः। मर्दयेत्क
न्यकाद्रावैर्यामयुग्मं ततः पुटेत्॥ १८७॥ एवंसप्तपु
टैर्मृत्युं लोहचूर्णमवाप्नुयात्। सत्योऽनुभूतो योगेन्द्रैः
क्रमोऽन्यो लोहमारणे॥ १८८॥ कथ्यते रामराजेन
कौतूहलधियाऽधुना। सूतकात्द्विगुणं गन्धं दत्त्वा
कुर्याच्च कज्जलीम्॥ १८९॥ ॥ ॥

भा० - अनंतर लोहकी मारणविधि॥ शुद्धलोहके चूर्णको पताल सूलीके रस से घोटकर अग्नि में देवे ऐसे तीन पुट देवे॥ १८५॥ तीन पुट घीकुवारके कुरैय्या के रससे॥ छः पुट देवे ऐसे लोह भस्म होता है॥ १८६॥ और भी। लोहेसे बारह भागकरके सिंगरिफले॥ उसको घीकुवारसे दोपहर घोटवावे। उस के अनंतर पुट देवे॥ १८७॥ ऐसे सात पुट देनेसे लोह भस्म होता है॥ सत्य अनुभूत योगिराजोंसे क्रम दूसरा लोह भस्ममें॥ १८८॥ अब रामराजने कौतूहलबुद्धिसे। पारेसे दुगना गन्धक देकर कजली करके॥ १८९॥

द्वयोः समं लोहचूर्णं मर्दयेत्कन्यकाद्रवैः। यामयु
ग्मं ततः पिण्डं कृत्वा ताम्रस्य पत्रके॥ १९०॥ घर्मे
धृत्वा रुवूकस्य पत्रै राच्छादयेद्बुधः॥ यामद्वया
द्भवेदुष्णं धान्यराशौ न्यसेत्ततः॥ १९१॥ दत्त्वो
परि सरावन्तु त्रिदिनान्ते समुद्धरेत्॥ पिष्ट्वा च गा
लयेद्वस्त्राद्वेवं वारितरं भवेत्॥ १९२॥

भा० दोनोंके समान लोहचूर्णको घीकुवारके रससे॥ दोपहर घोटे उसके अनंतर पिंडकरके ताम्रके पात्र में॥ १९०॥ धरकर धूपमें अंडीके पत्रसे ढककर पंडित दोपहर। रक्खे उससे गरम होता है उसको अनंतर धानकी राशीमें रक्खे॥ १९१॥ सकोरेके ऊपर देकर तीन दिनके अनंतर निकाले॥ पीसकर कपडेमें छाने तब यह पानीमें तैर

ना है ॥१९२॥ दाडिमस्य दलं पिष्ट्वा तच्चतुर्गुणवारिणा।
तद्रसेनायसञ्चूर्णं सन्नीय स्नावयेद्दिनि॥ १९३॥
आतपे शोषयेत्तच्च पुटेदेवं पुनः पुनः। एकविंश
तिवारैस्तन् म्रियते नात्र संशयः॥ १९४॥ एवं स
र्वाणि लोहानि स्वर्णादीन्यपि मारयेत्।

एवं मारितस्य लोहस्य गुणाः॥

लोहं तिक्तं सरं शीतं कषायं मधुरं गुरु। रूक्षं वय
स्यं चक्षुष्यं लेखनं वातलं जयेत्॥ १९५॥ क
फं पित्तं गरं शूलं शोफार्शः प्लीहपाण्डुताः। मेदो
मेह क्रिमीन् कुष्ठं तत्किट्टं तद्वदेव हि॥ १९६॥

भा० - अनारके पत्तोंको उससे चौगुनें पानीके साथ पीसकर॥ उसरस
से लोहचूरको सानकर भिजोदेवे॥ १९३॥ इसको धूपमें सुकावे इसप्रका
र वार२ पुट देवे॥ इकीस दफेमें लोह मर जाता है इसमें कोई संशय
नहीं॥ १९४॥ ऐसे सब लोह स्वर्णादिकोंको मारे॥ इसप्रकार मारेहुवे
लोहका गुण॥ लोह तिक्त सर शीतल कसेला मधुर भारी॥ रूखा वयके
हितनेत्रके हित लेखन वातको करनें वाला है॥ १९५॥ और कफ पित्त
विष शूल शोफ ववासीर पिलही पाडुता॥ मेदमेह क्रिमिकुष्ट इनको
नाश करता है और उसका कीट उसीके समान गुणमें होता है॥ १९६॥

गुञ्जामेकां समारभ्य यावत् स्युर्नवरक्तिकाः। ताव
ल्लोहं समश्नीयाद्यथा दोषानलं नरः॥ १९७॥
कुष्माण्डं तिलतैलं च माषान्नं राजिकां तथा। मद्य
मम्लरसञ्चैव वर्जयेल्लोहसेवकः॥ १९८॥ शिला
गन्धार्क दुग्धाक्ताः स्वर्णाद्याः सर्वधातवः। म्रियन्ते

द्वादश पुटैः सत्यं गुरु वचो यथा ॥ १९९ ॥

अथोपधातूनां मारण प्रकार माह ॥

तत्र स्वर्ण माक्षिक स्या शुद्धस्य दोष माह ॥ ॥

मन्दानलत्वं बलहानि मुग्रां विष्टम्भितां नेत्र ग-
दां शकुष्टान् । मालां तथैव व्रण पूर्विकाञ्च कुर्या
द शुद्धं खलु माक्षिकञ्च ॥ २०० ॥

भा० एक रत्ती से शुरू करके नौ रत्ती तक । मनुष्य दोष और अग्नि बल के अनु सार सेवन करे ॥ १९७ ॥ पेठा तिल का तेल उड़द राई । तथा मद्य अम्ल रस इनको लोहका सेवन करने वाला न सेवन करे ॥ १९८ ॥ मैनसिल गन्धक आक का दूध इनके साथ सुवर्णादि सब धातु ॥ बारह पुट से मरते हैं सत्य गुरु के वचनानुसार ॥ १९९ ॥ अनंतर उपधातुवोंके मारण का प्रकार कहते हैं । उसमें सोना मारवी अशुद्ध का दोष कहते हैं ॥ अग्नि मान्द्य बल हानि उग्र विष्टम्भिता नेत्र रोग शकुष्ट ॥ गंड माला इनको विन सोधी सोना मारवी करती है ॥ २०० ॥

अतस्तस्य दोष शान्तये शोधन मभि धीयते । माक्षि-
कस्य त्रयो भागा भागैकं सैन्धवस्यच । मातुलुङ्ग
द्रवैर्वाथ जम्बीरस्य द्रवैः पचेत् ॥ २०१ ॥ चालये
ल्लोहजे पात्रे यावत् पात्रं सुलोहितम् । भवेत्त
तस्तु संशुद्धिः स्वर्ण माक्षिक मृच्छति ॥ २०२ ॥

भा० इस वास्ते उसकी दोष शान्ति के अर्थ शोधन कहते हैं । सोनामारवी के तीन भाग एक भाग सैन्धव ॥ इनको नींबूके रससे अथवा जंबीरी के रस से पकावे ॥ २०१ ॥ लोहेके पात्रमें चलावे तबतक पात्र लाल हो ॥ उस्से सोना मारवी शुद्ध होती है ॥ २०२ ॥

अथ मारण विधि ॥

कुलत्थस्य कषायेण घृष्टा तैलेन वा पुटेत् । तक्रे
ण वाजमूत्रेण म्रियते स्वर्णमाक्षिकम् ॥ २०३॥

[अथ तारमाक्षिकस्य शोधनमाह ।]

सुवर्णमाक्षिकवद्दोषा विज्ञेयास्तारमाक्षिके । अत
स्तद्दोषशान्त्यर्थं शोधनं तस्य कथ्यते ॥ २०४ ॥ क
र्कोटीमेषशृङ्गुत्थैर्द्रवैर्जम्बीरजैर्दिनम् । भावये
दातपे तीव्रे विमला शुद्ध्यति ध्रुवम् ॥ २०५ ॥
(क) विमला तारमाक्षिकम् । कर्कोटी खेखसा ।
मेषशृङ्गी मेढ़ाशृङ्गी । [अथ मारणम् ।]
कुलत्थस्य कषायेण घृष्ट्वा तैलेन वा पुटेत् । तक्रे
ण वाजमूत्रेण तारमाक्षिक मृच्छति ॥ २०६ ॥

भा० – अनंतर मारणविधि ॥ कुरथीके काढेसे अथवा तेलसे घोंट कर पुट देवे ॥ अथवा मठेसे, या बकरीमूत्रसे सोना मारवी मरतीहै ॥ २०३॥ अनंतर रूपा मारवीका शोधन कहतेहैं ॥ सोना मारवीके समान दोष रूपा मारवीमें जानने चाहिये । इस वास्ते उस दोषकी शान्तीके अर्थ उसका शोधन कहते हैं ॥ २०४॥ खेखसा मेडासाङ्गी इनके रससे और जंभीरीके रससे दिनभर ॥ तीक्ष्ण धूपमें भावना देवे ।इस्से रूपा मारवी अवश्य शुद्ध होतीहै ॥ २०५॥ (क) रूपामारवी । खेखसा । मेढासीङ्गी । अनंतर मारण । कुरथीके काढेसे अथवा तेलसे पुट देवे ॥ मठेसे अथवा बकरीके मूत्रसे रूपा मारवी मरती है ॥ २०६ ॥ – अथतयोर्विशिष्टा गुणाः

न केवलं स्वर्णरूप्यगुणास्तापीजयोर्मताः । द्रव्या
न्तरस्य संसर्गात्सन्त्यन्येऽपि गुणास्तयोः ॥ २०७॥
माक्षिकं मधुरं तिक्तं स्वर्यं वृष्यं रसायनम् । चक्षुष्यं

वस्तिरुक कुष्ठ पाण्डु मेह विषो दरम् ॥ २०८ ॥ अर्शः शोफं क्षयं कण्डू त्रिदोषञ्च नियच्छति ।

[अथ तुत्थस्य शोधनमाह]

विष्ठया मर्दयेत्तुत्थ मार्जारक कपोतयोः । दशांशं टङ्कणं दत्त्वा पचे ल्लघु पुटे ततः ॥ २०९ ॥ पुटं दध्ना पुटं क्षौद्रे देयं तुत्थ विशुद्धये ॥

भा० अनंतर उनके विशेष गुण । केवल सोना चान्दी के ही गुण सोना माखी और रूपा माखी में नहीं हे ॥ किन्तु द्रव्यान्तर के संसर्ग से उनमें और भी गुण हे ॥ २०७ ॥ सोना रूपा माखी मधुर तिक्त स्वर के हित कामुक के हित रसायन ॥ नेत्र के हित वस्ति पीड़ा कुष्ठ पांडुरोग प्रमेह विष उदर ॥ २०८ ॥ ववासीर सूजन क्षय खुजली और त्रिदोष इनको नाश करती हे ॥ अनंतर नीला थोथे का शोधन कहते हैं ॥ कबूतर और बिल्ली इनकी विष्टा से खरल करे ॥ दशवां भाग सोहागा देकर लघु पुट में पकावे उसके अनंतर ॥ २०९ ॥ नीला थोथे की शुद्धि के अर्थ दही से और मधु से पुट देना चाहिये ॥

[एवं शुद्धस्य तुत्थस्य गुणाः] तुत्थकं कटुकं क्षारं कषायं वामकं लघु । लेखनं भेदनं शीतञ्च चक्षुष्यं कफ पित्त हृत् ॥ २१० ॥ विषाश्म कुष्ठ कण्डूघ्नं तद्गुणं खर्परं मतम् । अथ कांस्यस्य रीतेश्च शोधनन्त्वभिधीयते ॥ पत्तली कृत पत्राणि कांस्यस्याग्नौ प्रतापयेत् । निषिञ्चेत्तप्त तप्तानि तैले तक्रे च काञ्जिके ॥ २११ ॥ गोमूत्रे च कुलत्थानां कषाये त्रिधा त्रिधा । एवं कांस्यस्य रीतेश्च विशुद्धिः संप्रजायते ॥ २१२ ॥

भा० इसप्रकार शुद्ध लीला थोथेके गुण ॥ लीला थोथा कटुक खार क सेला वमन करानेवाला हलका ॥ लेखनभेदन शीतल नेत्रके हितकफ पित्त का नाशक ॥ २०१ ॥ ९ ॥ और विषपथरी कुष्ट खुजली इनका नाशक है उसका गुण खपरियामें माना है ॥ अनंतर कांसा और पीतल का शोधन कहते हैं ॥ कासेके पतले पत्र करके आगमें तपावे ॥ तप्त तप्तोंको तेल मठ्ठ कांजी ॥ २११ ॥ और गोमूत्र तथा कुरथीके काढ़ा इनमें तीन २ बार बुझावे ॥ ऐसा कांसा और पीतल की शुद्धि होती है ॥ २१२ ॥

[अथ मारणविधिः।] अर्के क्षीरेण संपिष्टो गन्धक स्तेन लेपयेत्। समेन कांस्यपत्राणि शुद्धान्यम्ल द्रवैर्मुहुः॥ २१३॥ ततोमूषापुटे धृत्वा पचेद्गजपुटे न च। एवं पुट द्वयात्कांस्य रीतिश्चम्रियते ध्रुवम्॥ ॥२१४॥ एवं मारितयोः कांस्यस्य रीतेश्च गुणाः। कांस्यं कषायं तीक्ष्णोष्णं लेखनं विशदं सरम्॥ ॥२१५॥ रीतिकानुभवेद्रूक्षा सतिक्ता लवणा रसे। शोधिनी पाण्डुरोगघ्नी कृमिहृन्नातिलेखनी॥ २१६॥

भा० अनंतर मारणविधि॥ आकके दूधसे पीसे हुवे समभाग गन्धकसे॥ कांसेके शुद्ध पत्र लेपकरे॥ और खट्टेके रससे बार ॥ २१३॥ उसके अनंतर मूषापुटमें रखकर गजपुटमें पकावे॥ इसप्रकारके दोपुटसे कांसा औरपीतल अवश्य मरता है ॥ २१४॥ इसप्रकार मारे हुवे कासा और पीतलके गुण। कांसा कसेला तीखा गरम लेखन विशद सर ॥ सारी नेत्रहित रूखा परस कफ पित्तका नाशक है ॥ २१५॥ पीतल रूखा तिक्त रससे लवण शोधन पांडुरोगका नाशक कृमि नाशक नबहुत लेखन है ॥ २१६॥

(अथ सिन्दूरस्य शोधनमाह।)

दुग्धाम्ल योगतस्तस्य विशुद्धिर्गदिता बुधैः। अथ गुणाः। सिन्दूरउष्णो वीसर्प कुष्ट कण्डुविषापहः।

भग्नसन्धानजननो व्रणशोधनरोपणः ॥ २१७ ॥
अथ शिलाजतुनः शोधनमाह ।] तत्र शोधनायोग्य
शिलाजतुमाह ।] गोमूत्रगन्धवत्कृष्णं स्निग्धं मृदु
तथा गुरु । तिक्तं कषायं शीतं च सर्वश्रेष्ठं तदायसम्
॥ २१८ ॥ (आयसम् अयस उपधातुः)
विन्ध्यादौ बहुलं तत्तु तत्र लोहं यतोऽधिकम् । तच्छो
धनमृते व्यर्थमनेकमलमेलनात् ॥ २१९ ॥

भा० अनन्तर सिन्दूरका शोधन कहतेहैं । दूध और खटाईके योगसे शुद्धि इसकी पंडितोंने कही है ॥ अनंतर गुण ॥ सिन्दूर उष्ण है और वीसर्प कुष्ठ खुजली विष इनका नाशक ॥ टूटेको जोडनेवाला व्रण शोधन रोपण है ॥ २१७ अनंतर शिलाजीतका शोधन कहतेहैं ॥ उसमें शोधन योग्य शिलाजीत को कहतेहैं ॥ गोमूत्रकीसी गन्धवाला काला चिकना मृदु तथा भारी ॥ तिक्त कसेला शीत सबसे उत्तम ऐसा वोह लोहेका होताहै ॥ २१८ ॥ (लोहेका उपधातु) विन्ध्याचलमें वोह बहुत होताहै । क्योंकि उसमें लोहा अधिक है वोह शोधनके विना व्यर्थ है । अनेक मलके मिलेरहनेसे ॥ २१९ ॥

शिलाजतु समानीय सूक्ष्मं खण्डं विधाय च । निक्षि
प्यात्युष्णपानीये यामैकं स्थापयेत्सुधीः ॥ २२० ॥
मर्द्दयित्वा ततो नीरं गृह्णीयाद्वस्त्रगालितम् । स्थाप
यित्वा च मृत्पात्रे धारयेदातपे बुधः ॥ २२१ ॥ उपरिस्थं
घनं यत्स्यात्तत्क्षिपेदन्यपात्रके । एवं पुनः पुनर्नीतं
द्विमासाभ्यां शिलाजतु ॥ २२२ ॥ भवेत्कार्य्यक्षमं
वह्नौ क्षिप्तं लिङ्गोपमं भवेत् । निर्धूमं च ततः शु
द्धं सर्वकर्मसु योजयेत् ॥ २२३ ॥ ॥ ॥

भा० शिलाजीतको नाकार बारीक करके। बहुत गरम पानी में डालके एक पहर रख छोड़े॥ २२०॥ उसको मलकर उसके अनंतर कपड़े से छानकर पानी लेलेवे॥ उसको मिट्टीके बरतन में रख कर धूपमें रखवावे॥ २२१॥ ऊपर जो गाढ़ा निकले उसको और बरतन में डाले॥ दोमहिने में इसप्रकार फिर २ शोधिया हुवा शिलाजीत॥ २२२॥ काम करनेमें समर्थ होताहै औ र आगमें डालनेसे लिंगके समान होताहै॥ तथा निर्धूम भी होता है उ सके अनंतर उसको सबकाममें योजना करे॥ २२३॥

(क) अथान्य प्रकारः। तत्र प्रथमतस्तस्य वहिर्मल म पाकर्तुं केवल जलेन प्रक्षालनं कर्त्तव्यं। ततस्त दन्तर्गत मृत्तिका सिकतादि दोष दूरीकरणाय्य वश्य माण क्वाथेन तत्र भावना देया।] तदाह वाग्भटः [व्याधिव्याधित सात्म्यं समनुसरन् भा वयेद यः पात्रे। प्राक्केवल जल धौतं शुष्कं क्वाथै स्ततो भाव्यम्॥ २२४॥ तुल्यं गिरिजेन जले वसु गुणिते भावनीयध क्वाथ्यम्॥ तत्क्वाथे पादांशे पू तोष्णे प्रक्षिपेद्गिरिजम्॥ २२५॥ तत्स मरसता ञ्जातं सशुष्कं प्रक्षिपेद्रसे॥ भूयः स्वैः स्वै रेवं क्वा थै र्भाव्यं वारान् भवेत्सप्त॥ २२६॥

भा० (क) अनंतर इस प्रकार। उसमें पहिले उसका बाहरका मैल दूर करनेके वास्ते केवल जलसे धोनाचाहिये। उसके अनंतर उसके अंतर्ग त मृत्तिकारेत आदिदोष दूरकरनेको इसकाढेसे उसमें भावना देनीचा हिये॥ उसकोवागभटने कहाहै। रोग रोगीके सात्म्यको अच्छीतरह अनु सरण करताहुवा लोहके पात्रमें॥ पहिलेकेवल जलसे धोके सुकाकर उसके अनन्तर काढोंसेभावना देना चाहिये॥ २२४॥ अठगुने जलमें शि लाजीतके समान भावनाके औषधोंका काढ़ा करना चाहिये॥ चौथाई।

बाकी छ नेहुवे गरस उसकाढेमें शिलाजीतको डाले ॥ २२५ ॥ उसके समान पतले हुवेको सुकाके फिरसे रसमें डाले ॥ ऐसे अपने २ काढोंसे सातवार भावना देना चाहिये ॥ २२६ ॥

अथ स्निग्धस्य शुद्धस्य घृतं तिक्तकसाधितम् । त्र्यहं युञ्जीत गिरिजमेकैकेन तथा त्र्यहम् ॥ २२७ ॥
फलत्रयस्य यूषेण पटोल्या मधुकस्य च । शिलाजमेवं देहस्य भवत्यत्युपकारकम् ॥ २२८ ॥
[क्वाथ द्रव्याणि भावना फलञ्चाह हारीतः ॥]
लोहस्थितं निम्बगुडूचिसर्पिर्यवैर्यथा वत्परिभावयेत्तत् । सन्तानिका कीट पतङ्ग दंश दुष्टौषधी दोष निवारणाय ॥ २२९ ॥ (क) सन्तानिका तद्वहिः संलग्न मृत्तिकादिमयी । एवं भावनां दत्त्वा संशोष्य केवलेन जलेन शोधनं कर्त्तव्यम् ॥

भा० - अनंतर पटोलसे सिद्ध किया घृत स्निग्ध और शुद्धमें तीन दिन डाले ॥ वैसेही तीन दिन एक २ के काढेसे शिलाजीत शुद्ध करे ॥ २२७ त्रिफला के पटोलके और महुवेके काढेमें योजना करे ॥ ऐसा शिलाजीत शरीर का अति उपकार कहाताहे ॥ २२८ ॥ क्वाथ औषध भावना फल कहाहै । हारीतने ॥ लोहेका मैल कीट पतंग इनका काटना और दुष्ट औषधिके दोष दूरकरनेके अर्थ नीम गिलोय घृत जव इनसे उसको भावना देवे ॥ २२९ ॥ उसके बाहर लगीहुई मृत्तिका आदि वाले । ऐसी भावना देकर सुकाके केवल जलसे शोधन करना चाहिये ॥

तत्प्रकारमाह अग्निवेशः

उष्णे च काले रवितापयुक्ते व्यभ्रे नियाने समभूमिभागे
चत्वारि पात्राण्यतितामसानि न्यस्यातपे तत्र कृता

वधानः ॥ २३० ॥ शिलाजतु श्रेष्ठमवाप्य पात्रे प्रक्षिप्य तस्माद्द्विगुणञ्च तोयम्। उष्णं तदर्द्धं कथितञ्च दत्त्वा विशोधयेत्तं मृदितं यथावत् ॥ २३१ ॥

भा० उस प्रकारको कहाहै अग्निवेशने ॥ उष्णकाल में अभ्ररहित सुर्य तापयुक्त निवात समभूमिपर ॥ अतितामस चार पात्रोंको उनमें फरक करके धूपमें रखकर ॥ २३० ॥ पात्रमें उत्तमशिलाजीत को डालकर उस्से दुगना जल उसमें डालके ॥ उस्से आधा औट्यगरम देकर उसको शोधन करे अच्छीतरह मलकर ॥ २३१ ॥

ततस्तु यत्कृष्णमुपैति चोर्द्ध्वं सन्तानिकावद्रविरश्मितप्तम्। पात्रे तदन्यत्र ततोनिदध्यात्तत्रापरं कोष्णजलं क्षिपेच्च ॥ २३२ ॥ पुनश्च तस्मादपरत्र पात्रे पश्चाच्च पात्रादपरत्र भूयः। यदाविशुद्धं जलमेव मूर्द्ध्नि कृष्णं समस्तं मलमेत्यधस्तात् ॥ २३३ ॥ तदा त्यजेत्तत्सलिलं मलञ्च शिलाजतुस्याज्जलशुद्धमेवम्।

भा० उसके अनन्तर ऊपरकी सूर्यकी किरणों में सन्तप्त हुवी मलाई के समान काला ऊपर का जो होताहै उसको दूसरे पात्रमें डाले उसमें और थोड़ा गरम जलभी डाले ॥ २३२ ॥ फिर उस्से और पात्रमें डाले और पिछले बरतन से दूसरे में फिरसे डाले ॥ जब शुद्ध जलही ऊपरहै काला सब मैं नीचे रहजावे ॥ २३३ ॥ तब उस जलमल को त्याग देवे वोह शुद्ध जलही शिलाजीत है ॥

एवं शोधितस्य शिलाजतुनो गुणानाह।
शिलाजतु स्मृतं तिक्तं कटूष्णं कटुपाकि च। रसायनं योगवाहि श्लेष्ममेहाश्मशर्करा ॥ २३४ ॥

मूत्रकृच्छ्रं क्षयं श्वासं शोथमर्शांसि पाण्डु नाम् । वा
तरक्तं तथाकुष्ठमपस्मारोदरं हरेत् ॥ २३५ ॥

[अथरसस्य शोधनविधिः ।] ततस्वेदनम् ।

नाना धान्यैर्यथा प्राप्तैस्तुषवर्जैर्जलान्वितैः । मृ
द्भाण्डं पूरितं रक्षेद यावदम्लत्व माप्नुयात् ॥ २३६ ॥

भा० इस प्रकार शोधेहुवे शिलाजीत का गुण कहतेहैं ॥ शिलाजीत तिक्त क टुवा उष्ण पाकमें कटु ॥ रसायन योग वाहि हे और कफ प्रमेह पथरी शर्करा ॥ २३४ ॥ मूत्रकृच्छ्र क्षय श्वास सूजन बवासीर पांडुता ॥ वातरक्त तथा कुष्ट अपस्मार उदर रोग इनको नाशकरताहे ॥ २३५ ॥ अनन्तर पारेकी शोधन विधि ॥ उसमें स्वेदन । वे छिलके के अनेक प्रकार के धान्य जोमिलजांवें उनको जलके युक्त । इनको मिट्टीके बरतनमें भरके रक्खे जबतक खट्टाहोवे ॥ २३६ ॥

तन्मध्ये भृङ्गराजमुण्डीविष्णुक्रान्तापुनर्नवा । मीना
क्षी चैव सर्पाक्षी सहदेवी शतावरी ॥ २३७ ॥ त्रिफला
गिरिकर्णी च हंसपादी च चित्रकम् । ससूलं कुट्ट
यित्वा तु यथालाभं विनिःक्षिपेत् ॥ २३८ ॥ पूर्वोक्त
भाण्ड मध्ये तु धान्याम्लकमिदं स्मृतम् । स्वेदनादि
षु सर्वत्र रसराजस्य योजयेत् ॥ २३९ ॥ विष्णुक्रान्ता
गिरिकर्णीच अपराजितैव श्वेतनीलपुष्पभेदात् ।
अत्यम्लमारनालं वा तदभावे प्रयोजयेत् ॥

भा० उसमें भाङ्गरा मुंडी विष्णुक्रान्त गदह पूरना मछछी नागफनी सहदेई सतावर ॥ २३७ ॥ त्रिफला नीलेफूलकी कूरंट हंसपदी चित्रक ॥ मूलके सहितकूट कर जो मिले उसको डाले ॥ २३८ ॥ पहिले बरतनमें जो खट्टेमें येह धान्याम्ल कहाहे ॥ पारेके स्वेदनादिक सब जगह में योजनाकरे ॥ २३९ ॥ विष्णुक्रान्ता ।

और गिरिकर्णी येह दोनो अपराजिता हि है नीला और श्वेत पुष्पके भेद से ॥ उसके अभावमें बहुत खट्टे आरनालको योजना करे ॥

(तदभावेधान्याम्लाभावे)

त्र्यूषणालवणाजाजीरजनीत्रिफलार्द्रकम्। मह्नावला नागबलामेघनादः पुनर्नवा ॥ २४० ॥ मेषश्रृङ्गी चित्रकञ्च नवसारंसमंसमम्। एतन्सर्वस्तं वा पूर्वोम्लैनेव पेषयेत् ॥ २४१ ॥ प्रालेप्यैतेन कल्केन वस्त्रमङ्गुलमात्रकम्। तन्मध्येनिःक्षिपेत्सूतं बद्ध्वा तत्त्रिदिनं पचेत् ॥ २४२ ॥ दोलायन्त्रेऽम्लसंयुक्ते जायते स्वेदितो रसः। (क) मेघनादः चवराई शाकविशेषः। मेषश्रृङ्गी मेढासृङ्गी। तदलाभे कर्कटश्रृङ्गी ग्राह्या। नवसारं। नवसादरं।

भा० — धान्याम्लके अभावसे ॥ त्रिकुटा लवण राई हलदी त्रिफला अद्रक ॥ बरियारा गुलसकरी चवराई गदहपूरना ॥ २४० ॥ मेढासींगी चित्रक नवसादर येह सब समभाग ॥ इनसब को अलग२ अथवा एक साथ ही पहिली खटाई से पिसवावे ॥ २४१ ॥ उसकल्कसे अंगुलबराबरमोटा लेप कपडे पर करावे ॥ उसकपडे में पारेको डालकर बान्धकर उसको तीनदिन पकावे ॥ २४२ ॥ अम्लयुक्त दोला यन्त्रमें पारा स्वेदित होता है ॥ (क) चवराई। मेढासींगी। उस्के अभावमें काकडासींगी लेनीचाहिये ॥ नवसादर।

अन्यच्च। मूलकानलसिन्धूत्थत्र्यूषणार्द्रकराजिका रसस्यषोडशांशेन द्रव्यं युञ्ज्यात पृथक् पृथक् २४३ द्रवैश्चयुक्त मानेषु मतंयान मितंबुधैः ॥ पट्टादुनेषु चैतेषु सूतं प्रक्षिप्य काञ्जिके ॥ २४४ ॥ स्वेदयेद्दिनमेकञ्च दोलायन्त्रे या युक्तिमान। स्वेदात्तीव्रोभवे

न्सूतो मर्द्दनाच्च सुनिर्मलः ॥ २४५ ॥ (क) मूलक मुरई अनलस्त्रिवृतकम् । त्र्यूषणं त्रिकटु राजिका राई अथमर्द्दनम् । इष्टिका चूर्णचूर्णाभ्यामादौ मर्द्यो रसस्ततः । दध्ना गुडेन सिन्धूत्थराजिका गृहधूमकैः ॥ अन्यच्च । कुमारिका चित्रक रक्त सर्षपैः कृतैः कषाये वृहती विमिश्रितैः । फलत्रिकेणापि विमर्द्दितो रसो दिनत्रयं सर्व मलैर्विमुच्यते । [अथमूर्च्छनम् ।] त्र्यूषणं त्रिफला वन्ध्या कन्दैः क्षुद्राद्वयान्वितैः ॥ २४६ ॥

भा० औरभी । मूली चित्रक सेंधव त्रिकुटा अदरक राई ॥ पारेके सोलवें भागसे सबको अलग २ लेवे ॥ २४३ ॥ जिसमें दवा की तोल नही कही है उनमें येह तोल पंडितोंने कहीहै ॥ कपडेमें लेकर इनमें पारा डालके कांजीमें ॥ २४४ ॥ एक दिन स्वेदनकरे दोला यन्त्रसे बुद्धि वान् ॥ स्वेदसे पारा तीव्र होता है और मर्द्दनेसे निर्मल होता है ॥ २४५ ॥ (क) मूली चित्रक त्रिकुट राई अनंतर मर्दन । ईटका चूर्ण और चूना इनसे पहिले पारेको मर्दन करना चाहिये उसके अनंतर ॥ दही गुड सैंधव राई घरका धूवां इनसे मर्दन करे ॥ औरभी घीकुवांर चित्रक लाल सरसों कटेली इनको मिलाके इनके काढेसे ॥ त्रिफलासेभी मर्दन किया हुवा पारा तीन दिनमें सब मलोंसे छूट जाता है ॥ अनंतर मूर्च्छन । त्रिकुटा त्रिफला वांझखेखसा दोनो कटेली इनसे युक्त ॥ २४६

चित्रकोर्णानिशाक्षारकन्यार्ककनकद्रवैः । सूतं कृतेन यूषेण वारान् सप्तभिर्मर्दयेत् ॥ २४७ ॥ इत्थं संमूर्च्छितः सूतस्त्यजत्सप्तापि कञ्चुकान् ।

भा० चित्रक पवाड हलदी क्षार घीकुवांर आकधतूरा इनके रससे और कियेहुवे जूससे सात वार मर्द्दन करे ॥ २४७ ॥ इसप्रकार समूर्छित पारा सातों कांचली को छोड तादे ॥

(क) वन्ध्या कन्दः बांझ खेखसा कन्दः क्षुद्रा द्वयं छोटी कटाई बड़ीकटाई। उर्णा। उर्णा मेषका। निशा हरिद्रा क्षारः यवक्षारः। कन्या। कुमारिका अर्कपत्ररसः। कनक धत्तूर पत्ररसः। [अथोर्द्ध्वपातनम्] मयूर ग्रीव ताप्याभ्यां नष्टपिष्टी कृतस्यच। यन्त्रे विद्याधरे कुर्यादूसेन्द्रस्योर्द्ध्व पातनम्॥२४८॥

भा० बांझ खेखसा दोनो कटेली। उर्णा मेषका। हल्दी। जवाखार। घीकुवार। आकके पत्तेकोरस धतुरेके पत्तेकारस। अनंतर ऊर्द्ध्व पातन। नीला थोथा सोना मारवी इनसे नष्ट और पीस गये पारेका॥ विद्याधर यन्त्र में ऊर्द्ध्व पातन करे॥ २४८॥

ताप्यंम् सुवर्ण मारवी। नष्टपिष्टी कृतस्य। कुमारिका द्रव योगेन तावन्मर्दनं कर्त्तव्यं यावत्पारदः पृथक् न दृश्यत इत्यर्थः। विद्याधर यन्त्रे डमरु यन्त्रे। अथाधःपातनम्। त्रिफला शिग्रु शिखिभिर्लवणा सुरिसं युतैः। नष्टपिष्टं रसं कृत्वा लेपयेदूर्द्ध्व भाजनम्॥ २४९॥ ततो दीप्तैरधः पात मुपलैस्तस्य कारयेत्। यन्त्रे भूधर संज्ञेतु ततः सूतो विशुध्यति॥ २५०॥

भा० - सोना मारवी। घीकुवांर के रससे तवतक मर्द्दन करना चाहिये। जबतक पारा अलग न दिखाई देवे॥ डमरु यन्त्र में॥ अनंतर अधःपातन। त्रिफला सहिंजना चित्रक निमक राई रसके सहित नष्ट पारेको करके ऊपरके बरतन में लेपकरे॥ २४९॥ उसके अनंतर बलते हुवे उपलोंसे उसका अधःपातन करावे॥ भूधर नाम यन्त्रमें उसमें पारा शुद्ध होताहै॥ २५०॥

स्वेदनादिक्रियाभिस्तु शोधितो ऽसो यदा भवेत्। त
दा कार्याणि कुरुते प्रयोज्यः सर्वकर्मसु ॥ २५१ ॥

अथ मुख्य दोष हरः शोधन विधिः

गृह कन्या हरति मलन्त्रि फलाग्निस्त्रि त्रकोविषं
हन्ति। तस्मादेभिर्मिश्रै वारान् संमूर्च्छ येत् सप्त ॥

[अथ सर्व दोष हरः संक्षिप्त शोधन विधिः ॥]

कुमारिका चित्रक रक्त सर्षपैः कृतः कषायैर्बृहती
वि मिश्रितैः। फलत्रिकेणापि विमर्दितो रसो दिन
त्रयं सर्व मलैर्विमुच्यते ॥ २५३ ॥

भा॰ जब स्वेदनादिक्रिया ओंसे येह शुद्ध होताहै ॥ तब कामोंकोकरता
है तब सबकामोंमें योजना करना चाहिये ॥ २५१ ॥ अनन्तर मुख्य दो
ष नाशक शोधन विधि। घीकुवार मलकी नाश करताहै त्रिफला अग्नि
को चित्रक बिषको नाशकरताहै ॥ इसवास्ते इनको मिलाके सातवार सं
मूर्छन करावे ॥ २५२ ॥ अनन्तर सर्व दोष नाशक संक्षिप्त शोधन विधि ॥ घीकु
वार चित्रक लाल सरसो दोनों कटेली को मिलाके कियेहुवे काढ़ेसे ॥ और
त्रिफलेसे भी मर्द्दन किया हुवा पारा तीन दिनसे सब मलोंसे छूट जाता है ॥

कुमार्य्या च निशा चूर्णै दिनं सूतं विमर्दयेत्। एवं कद
र्थितः सूतो षण्डो भवति निश्चितम् ॥ २४ ४ ॥ वह्नौ
यधी कषायेण स्वेदितः सबली भवेत्। सर्पाक्षी चि
ञ्चिकाबन्ध्याभृङ्गाब्दैः स्वेदितो बली ॥ २५५ ॥ त
तः स पावक द्रावैः स्विन्नः स्या दति दीप्तिमान् । सर्पा
क्षी। नाग फणी चिञ्चिका अम्बिली बन्ध्या बांझ खे
खसा भृङ्गः भृङ्गराजः। अब्दो मुस्ता पावकः चित्रकम्

भा० घीकुंवार मे और हलदी के चूर्णसे दिन भर पारेको रगडे ॥ ऐसा दूषित पारा निश्चितस्य गड होताहै ॥ २५४ ॥ वहुत ओषधियोंके कषायसे स्वेदित वोह पारा वली होताहै ॥ २५५ ॥ और नाग फन इसली खेरवसा भाङ्गरा नागर मोथा ॥ उस्से चित्रक के रससे स्वेदन कियाहुवा अति दीप्ति मान होताहै ॥ नागफनी । इसली । खेरवसा । भागरा । मोथा चित्रक ।

अथ रसस्य मारणविधिः।

धूम्रसारं रसं तोरी गन्धकं नव सादरम् । यामैकं मर्द्दयेदम्ले भागं कृत्वा समं समम् ॥ २५६ ॥ काचकूप्यां विनिक्षिप्य तां च मृद्वस्त्र मुद्रया । विलिप्य परितो वक्त्रे मुद्रां दत्वा विशोषयेत् ॥ २५७ ॥ अधः सच्छिद्र पिठरी मध्ये कूपीं निवेशयेत् । पिठरीं वालुका पूरै र्भृत्वा चाकूपि कागलम् ॥ २५८ ॥ निवेश्य चुल्यां तदधो वह्निं कुर्य्याच्छनैः शनैः । तस्मादप्यधिकं किञ्चित्पावकं ज्वालयेत् क्रमात् ॥ २५९ ॥

भा०- अनंतर पारेकी। मारण विधि ॥ धूमसार पारा तोरी गन्धक नव सादर इनको समभाग लेकर खटाई से एक पहर घोटे ॥ २५६ ॥ कांचकी कूपीमें डालकर उसको मृदुवस्त्र कीमुद्रासे लीपकर मुखके आसपास और मुद्रादेकर सुकादेवे ॥ २५७ ॥ नीचे छिद्रसहित हांडीमें कुपीको डाले ॥ हांडीको रेतसे कूपीके गलेतक भरके ॥ २५८ ॥ चूल्हे पर रखके उस्के नीचे अग्नि धीरे २ वाले ॥ क्रमसे उस्सेभी कुछ अधिक अग्निको वाले ॥ २५९

एवं द्वादशभिर्यामै र्म्रियते रस उत्तमः । स्फोटयेत् स्वाङ्गशीतं तमूर्द्ध गङ्गन्धकं त्यजेत् ॥ २६० ॥ अधस्थञ्च मृतं सूतं गृह्णीयात्तन्तु मात्रया ॥ यथोचितानुपानेन सर्वकर्मसु योजयेत् ॥ २६१ ॥

अथान्यप्रकारः] अपामार्गस्य वीजानां मूषा युग्मं प्रकल्पयेत्। तत्संपुटे क्षिपेत्सूतं मल्लयू दुग्धमिश्रितम्॥ २६२॥ (मल्लयूकाष्ठोदुम्बरिका)॥ द्रोणपुष्पी प्रसूनानि विडङ्गमरिमेदकः। एतच्चूर्णं मध्योर्द्ध्वं दत्वा मुद्रां प्रदीयते॥ २६३॥ तद्गोलं स्थापयेत् सम्यक् मृन्मूषा संपुटे पचेत्। एवमेव पुटेनैव सूतकस्भस्म जायते॥ २६४॥ तत्रयोज्यं यथा स्थाने यथा मात्रं यथा विधि॥ ॥ ॥

भा० — ऐसें वार पहरसें उत्तम पारा मर्ता हैं॥ स्वाङ्ग शीत होनेपर उस्को तोडै ऊपर का गलेमें लगा हुवा त्यागदेवे॥ २६०॥ नीचेका मराहुवा पारा लेवै॥ उसको मात्रासे॥ यथोचित अनुपानके द्वारा सब कामोंमेयोजना करावे॥ २६१॥ अनंतर दूसरा प्रकार॥ अपामार्ग के वीजोंकी दोघरिया वनावे॥ उस संपुटमें पारेको कठिया गूलरके दूधके साथ डाले॥ २६२॥ कठिया गूलर॥ गुम्माके फूल वायबिडंग दुर्गन्धखदिर॥ इनका चूर्ण नीचे ऊपर देकर मुद्रा देवै॥ २६३॥ उस गोलक को अच्छी तरह स्थापन करे मिट्टीकी घरियांके संपुटमें पकावे॥ इस प्रकारके पुटसे पारा भस्म होताहै॥ २६४॥ उस्को यथास्थानमें यथामात्र यथा विधि योजना करना चाहिये॥

[अथान्यप्रकारः॥]

काष्ठोदुम्बरिका दुग्धे रसं किञ्चिद्दिनं मर्दयेत्। तद्दुग्ध घृष्टं हिङ्गोश्च मूषा युग्मं प्रकल्पयेत्॥ २६५॥ क्षिप्त्वा तत्संपुटे सूतं तत्र मुद्रां प्रदापयेत्॥ घृत्वा तद्गोलकं गाढ़ं मृन्मूषा संपुटेऽधिके॥ २६६॥

अन्यप्रकारः] नागवल्ली रसै र्घृष्टः कर्कोटीकन्द ग

गर्भितः। मृन्मूषा संपुटे पक्वः सूतो यात्येव भस्मताम् ॥ २६७॥ [अथकर्पूररसस्यविधिः] तत्र पारदस्य संक्षिप्तं शोधनं कर्त्तव्यं। शुद्धसूतसमं कुर्यात्प्रत्येकं गैरिकंसुधीः। इष्टिकां खटिकां तद्वत् स्फटिकां सिन्धुजन्मच ॥ २६८ ॥ वल्मीकं क्षारलवणं भाण्डरञ्जकमृत्तिकाम्। सर्वाण्येतानि सञ्चूर्ण्य वाससा चापि शोधयेत् ॥ २६९ ॥

भा० अनंतर दूसरा प्रकार ॥ कठिया गूलरके दूधसे पारेको थोड़ा मर्दन करे· हीङ्ग को उस दूध से पीसकर दो घरियावनावे ॥ २६५॥ उस संपुट में पारेको डाल कर उसका मूं वन्दकरे ॥ उस गोलककी मिट्टीके मूषा संपुट मेंडाले ॥ २६६ ॥ गजपुटमें ही पकावे पारा भस्म होताहै ॥ दूसरा प्रकार ॥ पान केरस से घोटा हुवा खेखसे के कन्दसे गर्भित ॥ मिट्टी के संपुट में पक्व पारा भस्म हो जाताहै ॥ २६७॥ अनंतर कपूररसकी विधि ॥ उसमें पारेका संक्षिप्त शोधन करना चाहिये। शुद्ध पारे के समान हरएक कोलेवे गेरू ॥ ईट खड़ी फिटकरी सैन्धव ॥ २६८॥ वमई खार लवण खपरा। इन सब को चूर्ण करके कपड़े से छाने ॥ २६९॥

खटिका खरी। स्फटिका फटकरी सिन्धुजन्म। सैन्धवम्। वल्मीकम् ववडर क्षारलवणम्। खारीनोन भाण्डरञ्जक मृत्तिका। काविसा।

एभिश्चूर्णैर्युतं सूतं यावद्यामं विमर्दयेत्। तच्चूर्ण सहितं सूतं स्थाली मध्ये परिक्षिपेत् ॥ २७० ॥

भा० खडी। फटकरी। सैन्धव। वमई। खारीनिमक। खपरिया। इन चूर्णसे युक्त पारा एक पहर तक मर्दन करावे ॥ उसचूर्णके सहित पारा तसलेके बीचमें डाले ॥ २७०॥

तस्याः स्थाल्यामुखे स्थाली मपरां धारयेत्समाम् ॥ स व स्त्र कुट्टित मृदा मुद्रयेदनयोर्मुखम् ॥ २७१॥ संशोष्य मुद्रयेद्भूयो भूयः संशोष्य मुद्रयेत् ॥ सम्यग्विशोष्य मुद्रां तां स्थालीञ्चुल्यां विधारयेत् ॥ २७२॥ अग्निं निरन्तरं दद्याद्यावद्दिन चतुष्टयम् ॥ अङ्गारोपरि तद्यन्त्रं रक्षेद्यत्ना दहर्निशम् ॥ २७३॥ शनैरुद्घाटयेद्यन्त्रं। मूर्द्ध स्थाली गतं रसम् ॥ कर्पूरवत् सुविमलं गृह्णीयाद् गुणवत्तरम् ॥ २७४॥ तदेव कुसुम चन्दन कस्तूरी कुङ्कुमैर्युतम् ॥ खादन् हरति फिरङ्ग व्याधिं सोपद्रवं सपदि ॥ २७५॥ विन्दति वन्हेर्दीप्तिं पुष्टिं वीर्यबलं विपुलम् ॥ रमयति रमणीशतकं रसकर्पूरस्य सेवकः सततम् ॥ २७६॥ इति कर्पूर रसः॥

भा॰ उस स्थालीके मुखपर दूसरी स्थालीको जोड़े। इनका मुख वस्त्रके सहित कूटकर मिट्टीसे जोड़े ॥ २७१॥ सुकाके फिरसे कपड मिट्टी करे और फिर से सुकावे ॥ अच्छीतरह मुद्राको सुकाकर स्थाली को चूल्हे पर रक्खे ॥ २७२॥ और चारदिन तक अग्नि निरन्तर देवे ॥ अङ्गारे के ऊपर उस यन्त्र को रक्खे यत्न से रातदिन ॥ २७३॥ धीरेसे यन्त्रको खोले ऊपरकी स्थाली में लगा रस ॥ कपूर के समान विमल कोले वे वोह बहुत अच्छा गुणमें होताहै ॥ २७४॥ उसी को लवङ्ग चन्दन कस्तूरी केसर इनसे युक्त ॥ को खाने से तत्काल उपद्रव से सहित फिरंगरोग को नाश करता है ॥ २७५॥ अग्निदीपन होताहै और पुष्ट वीर्य बल बहुत होताहै ॥ निरन्तर रसकपूर का सेवन करने वाला सो स्त्रियों को भोग करताहै ॥ २७६॥ इति कर्पूर रसः॥

[अथ सिन्दूर रसः॥ शुद्धसूतस्य गृह्णीया द्विषग्भाग च

तुष्टयम् ॥ शुद्धगन्धस्य भागैकं तावत्कृत्रिम गन्धकम् ॥ अथवा पारदस्यार्द्धं शुद्धगन्धक मेवहि ॥ तयोः कज्ज लिकां कुर्य्याद्दिन मेकं विमर्द्दयेत् ॥ २७८ ॥ मृत्तिकां वाससा सार्द्धं कुट्टयेदति यत्नतः ॥ तया वारत्रयं सम्यक्का चकूपीं प्रलेपयेत् ॥ २७९ ॥ मृत्तिकां शोषयित्वा तु कूप्यां कज्जलिकां क्षिपेत् ॥ तां कूपीं वालुकायन्त्रे स्था पयित्वा रसं पचेत् ॥ २८० ॥ अग्निं निरन्तरं दद्याद् या वद्दिन चतुष्टयम् ॥ गृह्णीयादूर्द्ध सं लग्नं सिन्दूर सदृशं रसम् ॥ ॥इति सिन्दूररसः ॥

एवं मारितस्य मूर्च्छितस्य पारदस्य गुणाः ॥

भा० अनन्तर सिन्दूर रसः ॥ वैद्य शुद्धपारे के चार भाग लेवे ॥ और शुद्ध गन्धक का एक भाग उतनाही कृत्रिम गन्धक ॥ २७७ ॥ अथवा पारेके आधा शुद्ध गन्धक ॥ उनकी कज्जली करके एकदिन घोटै ॥ २७८ ॥ मिट्टीको कपड़े के साथ अतियत्न से कूटे ॥ उससे तीनवार अच्छीतरह काँचकूपी को लेपकरे ॥ २७९ ॥ मिट्टीको सुखाके कज्जलीको कुप्यामें डाले ॥ उस कुप्पीको वालुका यन्त्रमें स्थापनकरके पारेको पकावे ॥ २८० ॥ अग्नि निरन्तर चारदिन तक देवे ॥ ऊपर लगाहुवा सिन्दूर के समान रसको लेवे ॥ इति सिन्दूर रसः॥

पारदः कृमिकुष्ठघ्नो जयदो दृष्टि कृत्सरः ॥ मृत्यु हन्त्र म हावीर्य्यो योगवाही ज्वरापहः ॥ २८१ ॥ स्मृत्योजो रूप दो दृष्यो वृद्धि कृद्धातु वर्द्धनः ॥ षाण्डत्वनाशनः शूरः खेचरः सिद्धिदः परः ॥ २८२ ॥ पारदः सकलरोगहा स्मृ त षड्रसो निखिलयोग वाहकः ॥ पञ्चभूतमय एष कीर्त्तितस्तेन तद्गुण गणो विराजते ॥ २८३॥

भा० इस प्रकार मारेहुवे मूर्च्छित पारे का गुण ॥ पारा कृमि कुष्ठनाशक जय को करनेवाला दृष्टि करनेवाला सर ॥ मृत्युनाशक महावीर्य्य योगवाही ज्वरनाशक ॥ २८१ ॥ मृत्युको जीतनेवाला रूपको देनेवाला शुक्रको करनेवाला वृद्धि करनेवाला धातु बढ़ानेवाला ॥ नपुंसकता का नाशक रस खेचर सिद्धिको देनेवाला है ॥ २८२ ॥ पारा सब रोगोंका नाशक कहाहै यरस से युक्त संपूर्ण योग वाहक ॥ पंचभूत मय यह कहाहै इसवास्ते उसके गुण गणों से विराजताहै ॥ २८३ ॥

[रसामृते] यस्य रोगस्य यो योगस्तेनैव सह योजितः ॥
रसेन्द्रो हन्तितं रोगं नर कुञ्जर वाजिनाम् ॥ २८४ ॥
[अथोपरसानां शोधनविधिः।] तत्र हिङ्गुलस्य शोधन विधिः।] मेषी क्षीरेण दरद मम्ल वर्गैश्च भावितम्।
सप्त वारान् प्रयत्नेन शुद्धिमायाति निश्चितम् ॥ २८५ ॥

भा० रसामृत में कहाहै । जिस रोगका जो योगहै उसीके साथ योजना कियाहुवा । पारा मनुष्य गज घोड़ा इनके उस रोगको नाश करता है ॥ २८४ ॥ [अनन्तर उपरसों की शोधन विधिः। उसमें सिंगरिफ का शोधन। भेड़ीके दूधसे और अम्लवर्ग से सातवार भावना दियाहुवा सिंगरिफ निश्चय शुद्धिको प्राप्त होता है ॥ २८५ ॥

[एवं शोधितस्य हिङ्गुलस्य गुणाः।] तिक्तं कषायं कटु हिङ्गुलं स्यान्नेत्रामयघ्नं कफपित्त हारि । हृल्लास कण्डु ज्वर कामलांश्च प्लीहामवातौ च गरं निहन्ति ॥ २८६ ॥
[अथ हिङ्गुलाद्रसा कर्षण विधिः।] निम्बू रसे निम्बपत्र रसैर्वा याममात्रकम् । घृष्ट्वा दरद मूर्द्धन्तु पातयेत् सूत युक्तिवत् ॥ २८७ ॥ तत्रोर्द्ध पिठरीलग्नं गृह्णीया द्रसमुत्तमम् ॥ शुद्धमेव हितं सूतं सर्व कर्मसु योजयेत् ॥ २८८

भा० ऐसे शोधेहुवे सिंगरिफ का गुण । तिक्त कसैला कटु हिंगुल होता है और नेत्र रोगका नाशक कफ पित्तका नाशक ॥ हृल्लास खुजली ज्वरका मला इन कोनाशकरताहै तथा पिलही आमवात और विष इनको नाशकरताहै ॥ २८६ ॥ अनन्तर सिंगरफ से पारा निकालने की विधि॥ निम्बूके रस से अथवा निम्बपत्र के रससे एक पहर ॥ सिंगरफ को घोटकर डमरू यंत्रसे निकाले ॥ २८७ ॥ उसमें ऊपर की हांडीमें लगाहुवा उत्तम रसको निकाले ॥ शोधा पारा सब कामोंमें योजना करे वोह हित होताहै ॥ २८८ ॥

[अथ गन्धकस्याशुद्धस्य दोषमाह ।] अशुद्धो गन्धकः कुर्यात्कुष्ठं पित्तरुजां भ्रमम् ॥ हन्ति वीर्यं वलं रूपं तस्माच्छुद्धः प्रयुज्यते ॥ २८९ ॥

[अथ शोधनविधिः ।] लोहपात्रे विनिःक्षिप्य घृतमग्नौ प्रतापयेत् ॥ तप्ते घृते तत्समानं क्षिपेद्गन्धकजं रजः ॥२९०

विद्रुतं गन्धकं दृष्ट्वा तनुवस्त्रे विनिःक्षिपेत् ॥ यथा वस्त्राद्विनिःसृत्य दुग्धमध्येऽखिलं पतेत् ॥ २९१ ॥ एवं स गन्धकः शुद्धः सर्वकर्मोचितो भवेत् ॥

भा० अनन्तर अशुद्ध गन्धक के दोषोंको कहतेहैं ॥ अशुद्ध गन्धक कुष्ठ पित्तके रोग भ्रम ॥ इनको करता है और वीर्य वल रूप इनको नाश करता है इसवास्ते शुद्ध प्रयोग करना चाहिये ॥ २८९ ॥ अनन्तर शोधन विधि ॥ लोहे के पात्रमें घृत डालकर आगपर तपावे ॥ तप्त घृतमें उसके समान गन्धक का चूर्ण डाले ॥ २९० ॥ गन्धक के गलनेपर उसको बारीक वस्त्रपर डाले ॥ जैसे कपड़े से निकलकर सम्पूर्ण दूधमें गिरजावे ॥ २९१ ॥ इस प्रकार वोह शुद्ध गन्धक सबकाम के योग्य होता है ॥

[एवं शुद्धस्य गन्धकस्य गुणाः ।] गन्धकः कटुकस्तिक्तो वीर्य्योष्णस्तुवरः सरः ॥ पित्तलः कटुकः पाके दद्रु

वीसर्पजन्तुजित ॥ २६२ ॥ हन्ति कुष्ठक्षय प्लीह कफवाता
न् रसायनम् ॥ [अथाभ्रकस्याशुद्धस्य दोषमाह।]
पीडां विधत्ते विविधान्नराणां कुष्ठं क्षयं पाण्डु गदञ्च
कुर्य्यात् ॥ हनू पार्श्व पीडाञ्च करोत्यसह्या मशुद्धमभ्र
ङ्गुरु वन्हि हत्स्यात् ॥ २६३ ॥

[अथाभ्रकस्य शोधन विधिमाह।] कृष्णाभ्रकं धमे
द्वन्हौ ततः क्षीरे विनिःक्षिपेत् ॥ भिन्नपत्रं तु तत्कृत्वा त
ण्डुलीयाम्ल योर्द्रवैः ॥ २६४ ॥
भावयेदष्टयामं तदेव मभ्रं विशुद्ध्यति ॥

भा० ऐसे शुद्ध गन्धक के गुण। गन्धक कडुक तिक्त वीर्य्य उष्ण कसैला सर ॥ पित्तको करनेवाला पाकमें कडु होता है और खुजली वीसर्प कृमि इन को जीतनेवाला है ॥ २६२॥ और कुष्ठ क्षय पिलही कफ वातके रोगों को नाश करताहै तथा रसायन है ॥ [अनन्तर अशुद्ध अभ्रक का दोष कहते हैं।] मनुष्योंके अनेक प्रकारकी पीडाओं को करताहै और कुष्ठ क्षय पाण्डुरोग इन को भी करताहै ॥ तथा हृदय पसली इनकी असह्य पीडाको करता है अशुद्ध अभ्रक भारी अग्निनाशक है ॥ २६३॥

[अनन्तर अभ्रकके शोधनकी विधि कहते हैं।] काले अभ्रक को आगमें तपाकर उसके अनन्तर दूधमें डाले ॥ उसको अलग पत्र करके चव राई नीम्बू इनके रससे ॥ २६४ ॥ आठ पहर भावना देवे वोह अभ्रक इसप्रकार शुद्ध होता है

[अथ तस्य मारणम्।] कृत्वा धान्याभ्रकं तत्तु शोषयित्वा
थ मर्द्दयेत् ॥ अर्क क्षीरै र्दिनं खल्वे चक्राकारं च कारयेत्
॥ २६५ ॥ वेष्टयेदर्कपत्रैश्च सम्यग्गज पुटे पचेत् ॥ पुनर्म
र्द्दं पुनः पाच्यं सप्तवारान् पुनः पुनः ॥ २६६ ॥ ततो वट

जटा क्वाथे स्तद्वद्देयं पुटत्रयम् ॥ म्रियते नात्र सन्देहः प्रयो ज्यं सर्वकर्मसु ॥ तुल्यं घृतं मृताभ्रेण लोहपात्रे विपाच येत् ॥ घृतेजीर्णे तदभ्रन्तु सर्वयोगेषु योजयेत् ॥ २६८ ॥

[अथ धान्याभ्रकस्य विधिः ॥] पादांशशालि संयुक्त म-भ्रं बद्धाथ कम्बले ॥ त्रिरात्रं स्थापयेन्नीरे ततक्लिन्नं म र्दयेत्करैः ॥ २६६ ॥ कम्बलाद्गलितं सूक्ष्मं बालुका रहि तञ्च यत् ॥ तद्धान्या भ्रमिति प्रोक्त मभ्र मारण सि द्धये ॥ ३०० ॥ [एवं मारितस्याभ्रकस्य गुणाः।]

भा० अनन्तर उस्का मारण। धान्याभ्रक करके उस्को सुखाकर अनन्तर मले। आक के दूधमें एकदिन चक्राकार करे ॥ २६५॥ आकके पत्तों से लपेटकर अ च्छी तरह गजपुट में फूकदेवे ॥ फिरसे घोटे फिरसे पकावे बार २ सात बार ॥ २६६ ॥ उस्के अनन्तर बटकी जटाके काढ़े से वैसेही तीन पुट देना चाहिये ॥ मरजाना है इसमें कोई सन्देह नहीं उस्को सब कर्म्म में योजना करना चाहिये ॥ २६७ ॥ मरहुवे अभ्रक के समान घृत कढ़ाई में पकावे ॥ घृतके जीर्ण होनेमें वोह अभ्रक सर्वयोग में योजना करे ॥ २६८ ॥

अनन्तर धान्याभ्रक की विधि ॥] चौथाई धानसेयुक्त अभ्रक को कंबलमें बान्धकर अनन्तर ॥ तीनदिन जलमें रक्खे उस गलेहुवे को हाथों से मर्दन करे ॥ २६६ ॥ कम्बल से गलित सूक्ष्म औरजो बालूसे रहित है ॥ उसको धान्याभ्रक कहाहे भ्रभ्रक मारण सिद्धिके अर्थ ॥ ३०० ॥

इस प्रकार मारेहुवे अभ्रक का गुण ॥

अभ्रं कषायं मधुरं सुशीतमायुष्करन्धातु विवर्द्ध न ञ्च ॥ हन्यात्त्रिदोषं व्रणमेह कुष्ठं प्लीहोदरं ग्रन्थि विषक्रमींश्च ॥ ३०१ ॥ रोगान् हन्ति दृढयति वपुर्वी-र्य्यवृद्धिं विधत्ते ॥ नारुणयाढ्यं रमयति शतं योषितां नित्यमेव ॥ ३०२ ॥ दीर्घायुष्कान् जनयति सुतान् सिंह

तुल्य प्रभावान् ॥ मृत्योर्भीतिं हरति सुतरां सेव्यमानं मृताभ्रम् ॥ ३०३ ॥ [अथ तालकस्याशुद्धस्य दोषमाह] अशुद्धं तालमायुघ्नंकफ मारुतमेह कृत् ॥ तापस्फो टाङ्ग सङ्कोचं कुरुते तेन शोधयेत् ॥ ३०४ ॥

[अथ तालस्य शोधनमाह ।] तालकं ...शः कृत्वा त- च्चूर्णं काञ्जिके पचेत् ॥ दोलायंत्रेण यामेकं ततः कूष्मा एडजद्रवे ॥ ३०५ ॥ तिलतैले पचेद्यामं यामञ्च त्रिफला जले ॥ एवंयंत्रे चतुर्यामं पक्वं शुद्ध्यति तालकम् ॥ ३०६ ॥

भा० अभ्रक कसैला मधुर सुशीत आयुको करनेवाला और धातु बढानेवाला है ॥ और व्रणप्रमेह कुष्ठ स्रीहोदर गांठ विषकृमि इनको नाश करताहै ॥ ३०१ ॥ रोगों को नाश करता है शरीरको दृढ़ करताहै और वीर्य्य वृद्धिको करता है ॥ तारुण्य से भराहुवा नित्यही सौ स्त्रियों से भोग करताहै ॥ ३०२ ॥ सिंह के समान प्रभाव वाले पुत्रोंको उत्पन्न करताहै । और मृत्युके भयको हरता है सेवन कियाहुवा अभ्रकभस्म ॥ ३०३ ॥

[अनन्तर अशुद्ध हरताल का दोष कहते हैं ।] अशुद्ध हरताल आयुनाशक कफ वात प्रमेह इनको करनेवाली ॥ ताप फोड़े शरीर संकोच इनको करतीहै ॥ इसवास्ते इसे शोधनकरे ॥ ३०४ ॥

[अनन्तर हरतालका शोधन कहते हैं ॥] हरतालको बारीक पीसकर उस चूर्णको कांजी में दोलायंत्रसे पकावे ॥ एक पहर उसके अनन्तर पेठेके रस से पकावे ॥ ३०५ ॥ तिलके तेलमें एक पहर पकावे और एक पहर त्रिफलाके पानी में पकावे ॥ इस प्रकार यंत्रमें चार पहर पकीहुई हरताल शुद्ध होतीहै ॥ ३०६ ॥

[अथ तालस्य मारण विधिः।] सदलं तालकं शुद्धं पौन र्नवं रसेन तु ॥ खल्वे विमर्दयेदेकं दिनं पश्चाद्विशोषयेत् ॥ ३०७ ॥ ततः पुनर्नवाक्षारैः स्थाल्यामर्द्धं प्रपूरयेत् ॥ तत्र तद्गोलकं धृत्वा पुनस्तेनैव पूरयेत् ॥ ३०८ ॥

आकराठं पिठरं नस्य पिधानं धारयेन्मुखे ॥ स्थालीचुल्यां समारोप्य क्रमाद्वन्हिं विवर्द्धयेत् ॥ ३०९ ॥ दिनान्यन्तर शून्यानि पञ्च वन्हिं प्रदापयेत् ॥ एवं तन्म्रियते तालं मात्रा तस्यैक रक्तिका ॥ ३१० ॥ अनुपानान्यनेकानि यथा योग्यं प्रयोजयेत् ॥

भा॰ अनन्तर हरताल की मारण विधि ॥ तबकी शुद्ध हरताल को गदह पूरना के रस से एकदिन घोटे पीछे सुकादेवे ॥ ३०७ ॥ उसके अनन्तर पुनर्नवाके खार से आधी हांडी को भर देवे उसमें उस गोले को धरके फिरसे उसी से भर देवे ॥ ३०८ ॥ गलेतक उसके मूं पर ढकना रखे ॥ हांडी को चूल्हे पर रखके क्रम से आंच बढ़ावे ॥ ३०९ ॥ ढाई दिन आग देवे इस प्रकार हरताल मरती है ॥ उस की मात्रा एक रत्ती है ॥ ३१० ॥ यथोचित अनेक अनुपानों की योजना करे ॥

[एवं शोधितस्य मारितस्य तालकस्य गुणाः।] हरितालं कटुस्निग्धं कषायोष्णं हरेद्विषम् ॥ कण्डू कुष्ठास्य रोगास्र कफपित्तक च व्रणान् ॥ ३११ ॥ [अन्यच्च] तालकं हरते रोगान् कुष्ठ मृत्यु ज्वरापहम् ॥ शोधितं कुरुते कान्तिं वीर्य्यवृद्धिं तथायुषम् ॥ ३१२ ॥

भा॰ इस प्रकार शोधके मारीहुई हड़तालका गुण ॥ हड़ताल कड़ची चिकनी कसैली गरम होती है ॥ और कफ खुजली विष कुष्ट मुखरोग रक्त कफ पित्त कच व्रण इनको दूर करतीहै ॥ ३११ ॥ [औरभी।] हरताल रोगोंको हरती है और कुष्ठ मृत्यु ज्वर इनकी नाशक ॥ शोधी हुई कान्ती को करती है और वीर्य्यवृद्धि तथा आयुषको करती है ॥ ३१२ ॥

[अथ मनःशिलाया अशुद्धाया दोषमाह।] तालकस्यैव भेदोऽस्ति मनोगुप्ते स्तदन्तरम् ॥ तालकं त्वतिपीतं स्याद्रक्ता मनःशिलाः ॥ मनःशिलामन्द बलं करोति ।

जन्तुं क्लवंशोधन मन्तरेण। मलस्य बन्धं किल मूत्ररोधं सशर्करं कृच्छ्र गदञ्च कुर्यात्॥ ३१४॥

[अथ तच्छोधनविधिः।] पचेत् त्र्यहमजामूत्रे दोला यन्त्रे मनः शिलाम्॥ भावयेत्तत्सप्तधा पित्ते रजायाः सा विशुद्ध्यति॥ ३१५॥ [एवं शोधितायाः मनः शिलाया गुणानाह।] मनः शिला गुरुर्वर्ण्या सरोष्णा लेखनी कटुः॥ तिक्ता स्निग्धा विषश्वास कास भूत विषास्त्रनुत्॥ १६॥

[अथ खर्परस्तुत्थभेदस्तस्य शोधन विधिः।] नरमूत्रे च गोमूत्रे सप्ताहं रसकम्पचेत्॥ दोलायंत्रेण शुद्धःस्यात्ततः कार्य्येषु योजयेत्॥ ३१७॥

भा० अनन्तर अशुद्ध मनसिल के दोष कहतेहैं।] हरताल का ही भेदहै। मैनसिल का और उसका अन्तर येह है कि हरताल बहुत पीली होतीहै और मैनसिल लाल होताहै॥ ३१३॥ विनाशोधे मैनसिल मनुष्य को कमज़ोर करती है मलबन्ध मूत्रका अवरोध और शर्कराके सहित मूत्रकृच्छ्र को करतीहै॥ १४॥ [अनन्तर उसकी शोधन विधि॥ मैनसिल बकरी के मूत्र से दोला यंत्र में पकावे॥ और बकरीके पित्तेसे सात भावनादेवे इस प्रकार योह शुद्ध होतीहै॥ ३१५॥ [इस प्रकार शोधीहुई मैनसिल का गुण कहतेहैं॥ मैनसिल भारी रंगत को अच्छा करने वाली सर उष्ण लेखन कटु॥ तिक्त चिकनी होतीहै। और विष श्वास कास भूत विष रक्त इनकी नाशक है॥ ३१६॥

अनन्तर खपरिया तीला थोथे का भेदहै॥ उसकी शोधन विधि॥ नरमूत्र में और गोमूत्र में खपरिये को सातदिन॥ दोलायन्त्र से पकावे ऐसे शुद्ध होती है उसके अनन्तर काममें लावे॥ ३१७॥

[अथ तस्यगुणाः] खर्परं कटुकं क्षारं कषायं वामकं लघु। लेखनं भेदनं शीतं चक्षुष्यं कफ पित्त हृत्॥ ३१७॥

विषाश्म कुष्ठकण्डूनां नाशनं परमं मतम् ॥

[अथ सर्वोपरसानां साधारण शोधनविधिः] सूर्य्यावर्त्तो वज्रकन्दः कदलीदेवदालिका ॥ शिग्रुः कोशातकी वन्ध्या काकमाची च बालकम् ॥ ३१८ ॥ एषामेकरसेनैव त्रिक्षारैर्लवणैः सह ॥ भावयेदम्लवर्गैश्च दिनमेकं प्रयत्नतः ॥ ३१९ ॥ ततः पचेच्च तद्द्रावे दोलायन्त्रे दिनं सुधीः ॥ एवं शुद्ध्यन्ति ते सर्वे प्रोक्ता उपरसा हि ये ॥ ॥ ३२० ॥ [विशेषश्च] कङ्कुष्ठं गैरिकं शङ्खः कासीसं टङ्कणं तथा ॥ नीलाञ्जनं शुक्तिभेदाः क्षुल्लकाः सवराटकाः ॥ ३२१ ॥ जम्बीरवारिणा स्विन्नाः क्षालिताः कोष्णवारिणा ॥ शुद्धिमायान्त्यमी योज्या भिषग्भिर्योगसिद्धये ॥ ३२२ ॥

भा० अनन्तर इसका गुण। खपरिया कटुक क्षार कसैला वमन करानेवाला हलका ॥ लेखन भेदन शीतल नेत्रहित कफ पित्तका नाशक ॥ ३१७ ॥ और विष पथरी कुष्ठ खुजली इनका परम नाशक कहाहै ॥

[अनन्तर सब उपरसों की साधारण शोधन विधि ॥] सूर्य्यावर्त्त वज्रकन्द कदली घघरवेल ॥ सहिंजना तोरी खेखसा किमाच सुगन्धवाला ॥ ३१८ ॥ इनके एकही रससे तीनों क्षार लवणके साथ ॥ अम्लवर्ग से एकदिन यत्नके साथ भावना देवे ॥ ३१९ ॥ उसके अनन्तर उसके रसमें दोला यंत्र से एक दिन पकावे ॥ वोह कहेहुवे सब उपरस इसप्रकार शुद्ध होतेहैं ॥ ३२० ॥

[विशेष] कंकुष्ठ गेरू शंख कसीस सोहागा ॥ तथा काली सुरमा सीपके भेद कौड़ियों के सहित ॥ ३२१ ॥ जम्बीरी के रससे स्विन्न-सील गरम जलसे धोये हुवे ॥ येह शुद्ध होते हैं वैद्य योग सिद्धि के अर्थ इनकी योजना करे ॥ २२ ॥

[एवं शोधितानामुपरसानां पृथग्गुणा गुणग्रन्थे द्रष्टव्याः।]

[अथ रत्नानां शोधनमारण विधिः] तत्राशुद्धस्य वज्रस्य दोषमाह । अशुद्धं कुरुते वज्रं कुष्ठं पार्श्व व्यथां तथा ॥ पाण्डुतां पङ्गुरत्वञ्च तस्मात् संशोध्य मारयेत् ॥ ३२३ ॥ [अथ वज्रस्य शोधन विधिः] कुलत्थ कोद्रवक्काथे दोला यन्त्रे विपाचयेत् ॥ व्याघ्री कन्दगतं वज्रं त्रिदिनं तद्विशुध्यति ॥ ३२४ ॥ व्याघ्री कण्टकारिका। [अन्यः शोधनविधिः।] गृहीत्वाऽन्हि शुभे वज्रं व्याघ्री कन्दोदरे क्षिपेत् ॥ माहिषी विष्ठया लिप्तं कारीषाग्नौ विपाचयेत् ॥ ३२५ ॥ त्रियामायां चतुर्यामं यामिन्यन्ते ऽश्वमूत्रके ॥ सेचयेत्पाचये देवं सप्तरात्रेण शुध्यति ॥ ३२६ ॥

दूसवास्ते शोधकर मारे ॥ ३२३ ॥
अनन्तर हीरेकी शोधन विधिः ॥ कुरथी कोदोंके काढ़ेमें दोला यंत्रसे पकावे ॥ कटेली के कंद गत हीरा तीन दिन में शुद्ध होताहै ॥ ३२४ ॥ कटेली । [दूसरी शोधन विधिः । अच्छेदिन हीरा लाकर कटेल्ली कंद के उदर में डाले ॥ भैंसके गोबर से लीपकर करसीकी आगमें पकावे ॥ ३२५ ॥ तीन पहरमें और रातके अन्तमें चौथे पहार में घोड़ेके मूत्रसे पकावे । इस प्रकार सातदिन में हीरा शुद्ध होताहै ॥ ३२६ ॥

[अथ वज्रस्य मारणविधिः] हिङ्गु सैन्धव संयुक्ते क्षिपेत्क्वाथे कुलत्थजे ॥ नष्टं नष्टं पुनर्वज्रं भवेद्भस्म त्रिसप्तधा ॥ ३२७ ॥ [अन्य मारण प्रकारः]

मेषशृङ्गं भुजङ्गास्थि कूर्म्मपृष्ठाम्लवेतसम्। शशदन्तं समम्पिष्ट्वा वज्रीक्षीरेण गोलकम्॥ ३२८॥ कृत्वा तन्मध्यगं वज्रं म्रियते ध्मातमेवहि॥

[मारितस्य वज्रस्य गुणाः]

आयुः पुष्टिं बलं वीर्य्यं वर्णं सौख्यं करोति च॥ सेवितं सर्वरोगघ्नं मृतं वज्रं न शंसयः॥ ३२९॥

[अथ शेषरत्नानां शोधनमारण विधिः] वज्रवत्सर्वरत्नानि शोधयेन्मारयेत्तथा॥ शुद्धानां मारितानाञ्च तेषां शृणु गुणानपि॥ ३३०॥ मणयो वीर्य्यतः शीता मधुरास्तुवरा रसात्॥ चक्षुष्या लेखनाश्चापि सारका विषहारकाः॥ ३३१॥ धारणात्ते तु मङ्गल्या ग्रहदृष्टिहरा अपि॥

[उपरत्नानां शोधनमारण विधिश्चिन्त्यः॥

भा० अनन्तर हीरेकी मारण विधि॥ हींङ्ग सेन्धा इनसे युक्त कुरथीके काढेमें तपा तपाकर इक्कीसवार डाले॥ ३२७॥ [दूसरा मारण प्रकार। मेंढे का सींग सांपकी हड्डी कछवेकी पीठ अमलवेत खरगोश का दांत इनको सम भाग लेकर थूहर के दूधसे पीसकर गोला करे॥ ३२८॥ उसके बीचका हीरा धौंकनेसेही मरजाता है॥ [मारेहुवे हीरेके गुण]

आयु पुष्टि बल वीर्य वर्ण सौख्य इनको करता है॥ और सेवन किया हुवा हीरे का भस्म सब रोगोंका नाशक है इसमें कुछ संशय नहीं॥ ३२९॥

[अनन्तर बाकी रत्नोंका शोधन मारण विधि।] हीरेके सदृश सब रत्नों को शोधन करे और मारे॥ शुद्ध मारेहुवे उनका गुण सुनों॥ ३३०॥ मणि वीर्यसे शीत मधुर कसैले रससे॥ नेत्रके हित लेखन भी और सारक विष नाशक है॥ ३३१॥ वे धारण से मंगल को देनेवाले और ग्रह दृष्टि के नाशक भी हैं॥

उपरत्नों की शोधन मारण विधि चिन्तन योग्य है॥

[अथ विषाणां शोधन विधिः]

[तत्र वत्सनाभस्य स्वरूप निरूपणम् ॥] सिन्दुवार सदृक् पत्रो वत्सनाभ्या कृतिस्तथा ॥ यत् पार्श्वेन नरोर्द्धद्धि वत्सनाभः स भाषित ॥ ३३२॥

[विषस्य शोधन विधिः] गोमूत्रे त्रिदिनं स्थाप्यं विषं तेन विशुद्ध्यति ॥ रक्त सर्षपतैलाक्ते तथा धार्य्यञ्च वाससि ॥ ३३३॥ ये गुणा गरले प्रोक्ता स्ते स्यु र्हीना विशोधनात् ॥ तस्माद्विषं प्रयोगे तु शोधयित्वा प्रयोजयेत् ॥ ३३४ ॥

[अथ विषस्य गुणाः।]

विषं प्राणहरं प्रोक्तं व्यवायि च विकाशि च ॥ आग्नेयं वात कफ हृत् योगवाहि मदावहम् ॥ ३३५॥

भा० अनन्तर विषोंकी शोधन विधि ॥ इसमें वचनाभ का स्वरूप कथन। सिन्दुवार के समान पत्र और वत्सनाभि का सा जो वृक्ष के बगल बढ़ताहै वोह वत्सनाभ कहाहे ॥ ३३२॥ [विषकी शोधन विधिः] गोमूत्र में तीन दिन रक्खे उससे विष शुद्ध होता हे ॥ वैसेही लाल सरसों के तेलसे डूबे हुवे कपड़े पर रक्खे ॥ जो गुण विषमें कहेहें वोह शोधन करने से हीन हो जातेहैं ॥ इस वास्ते विषको प्रयोग में शोधन करके डाले ॥ ३३४॥

[अनन्तर विषके गुण] विष प्राण नाशक कहाहै और व्यवायि तथा विकाशि भी कहाहे ॥ आग्नेय वात कफ का नाशक योगवाही मोह करनेवालाहै ॥ ३३५॥

(क) व्यवायि सकल काय गुणव्यापन पूर्व्वक पाक गमन शीलं। विकाशि ओजः शोषण पूर्व्वक सन्धिबन्ध शिथली करण शीलम्। आग्नेयम् अधिकाग्न्यंशं। योगवाहि सङ्गि गुणग्राहकम्। मोहावहं तमोगुण प्राधान्येन बुद्धि विध्वंसकम् ॥

तदेव युक्तियुक्तन्तु प्राणदायि रसायनम् ॥ योगवाहि परं वात श्लेष्मजित् सन्निपात हृत् ॥ ३३६ ॥

भा० (क) संपूर्ण शरीर गुणव्यापन पूर्वक पाक होनेवाला। ओजको शोषण पूर्वक सन्धि बन्धको ढीला करनेवाला। अधिक अग्निअंशसाथीके गुणको लेनेवाला। तमो गुण की प्रधानता से बुद्धिनाशक। वोहि युक्ति युक्त प्राण को देनेवाला रसायन है॥ योग वाहि परम वात कफ को जीतनेवाला सन्निपात का नाशक है॥ ३३६॥

[अथोप विषाणां निरूपणम्।]

अर्कक्षीरं स्नुहीक्षीरं लाङ्गली करवीरकः॥ गुञ्जाहि फेनो धत्तूरः सप्तोप विषजातयः॥ ३३७॥ एतेषां शोधनं चिन्त्यं गुणास्तत्र तत्र द्रष्टव्याः।

[अथ द्रव्याणां गुणवतामवधिः] गुणहीनं भवेद्वर्षा दूर्द्ध तद्रूपमौषधम्॥ मास द्वयात तथा चूर्णं लभते हीन वीर्य्यताम्॥ ३३८॥ हीनत्वं गुटिका लेहो लभेते वत्सरं यदि॥ हीनास्यु र्घृत तैलाद्या श्चतुर्मासाधिका स्तथा॥ ३३९॥

भा० अनन्तर उपविषों का निरूपण॥ आकका दूध थूहरका दूध कलिहारी कनेर॥ गुंजा अफीम धतूरा यह सात जातके उपविष हैं॥ ३३७॥ इनका शोधन चिन्तन करना चाहिये गुण वहां २ पर देखने चाहियें॥ [अनन्तर गुणवाले द्रव्यों की अवधि॥ जैसे किसी वैसीही दवा बरस के ऊपर गुणहीन होजाती है॥ तथा दो महीने में चूर्ण वीर्य्य हीन होता है॥ ३३८॥ और एक बरस में गुटिका अवलेह हीनवीर्य्य होते हैं॥ घृत तैल आदि वैसेही चार महीने अधिकमें हीन होते हैं॥ ३३९॥

(क) घृत तैलाद्या इति योगविशेषणम्। चतुर्मासाधिकः वत्सरादुपरि चत्वारो मासा अधिका येषु ते। घृत तैल यो र्विशे

षमाह । [तन्त्रान्तरे] घृतमब्दात्परं पक्कं हीनवीर्य्य त्व माप्नुयात् ॥ तैलं पक्क मपक्कञ्च चिरस्थायि गुणाधिकम् ॥ ३४०॥ (क) तदपि षोडश मासा भ्यन्तरिणं पक्कं तैलं गुणाधिकं बोद्धव्यम् ।

औषध्यो लघुपाकाः स्युर्निर्वीर्य्या वत्सरात्परम् ॥ औषध्यो धान्यादयः लघुपाकाः शीघ्रपाकाः निर्वीर्य्याः स्युः पुराणाः स्युर्गुणै र्युक्ता आसवा धातवो रसाः ॥

[अथ स्नेहपान विधिः ।]

भा० (क) घृत तैल आदि इस प्रकार योग विशेषण है बरस के ऊपर चार महीने । घृत तैल में विशेष कहते हैं । तन्त्रान्तरमें । पका घृत बरस के ऊपर हीन वीर्य्य होता है ॥ तैल पक्क और अपक्क बहुतदिन रहता है । और गुणाधिक है ॥ ३४० ॥ (क) वोहभी सोलह महीने भीतर का पकातैल गुणाधिक जानना चाहिये ॥ बरसके ऊपर लघुपाक और निर्वीर्य्य होताहै ॥ आसव धातु रस ये पुराने गुणयुक्त होते हैं ॥ [अनन्तर स्नेह पान की विधि ।]

स्नेहश्चतुर्विधः प्रोक्तो घृततैलं वसा तथा ॥ मज्जा च तं पिबेन्मर्त्यः किञ्चिदभ्युदिते रवौ ॥ ३४१ ॥ स्थावरो जङ्गमश्चैव द्वियोनिः स्नेह उच्यते ॥ तिलतैलं स्थावरेषु जङ्गमेषु घृतवरम् ॥ ३४२ ॥ द्वाभ्यां त्रिभिश्चतुर्भि र्वा यमक स्त्रिवृत्तो महान् ॥

भा० स्नेह चार प्रकार का कहाहै घृत तैल चरबी तथा गूदा ॥ उनको मनुष्य कुछ दिन निकलनेपर ॥ ३४१ ॥ स्थावर और जंगम ऐसा दो योनि स्नेह कहाहै ॥ स्थावर में तिल तैल और जंगम में घृत श्रेष्ठ है ॥ ३४२ ॥ घृत तैल इन दो के मिलाने से यमक संज्ञक स्नेह होता है ॥ और घृत तैल चरबी इनसे त्रिवृत तथा घृत तैल चरबी गूदा इनसे महान् होता है ॥

(क) [अस्या यमर्थः] द्वाभ्यां स्नेहाभ्यां घृत तैलाभ्यां

यमकाख्यः स्नेहः स्यात्। त्रिभिः स्नेहैः घृततैल वसाभिः त्रिवृत्ताख्यः स्यात्। चतुर्भिः घृततैलवसामज्जाभिर्महान्महास्नेहः स्यादित्यर्थः। पिबेत् त्र्यहं चतुर्हं पञ्चाहं षड्हानि चेति॥ [यदुक्तम्]

मृदुकोष्ठ स्त्रिरात्रेण स्निग्धस्नेहोपसेवया॥ मध्यकोष्ठश्चतुर्भिश्च दिवसैः स्निह्यति ध्रुवम्॥ ३४३॥ पञ्चभिर्वाथ षड्भिर्वा दिनैः क्रूरो विशुद्ध्यति॥ सप्तरात्रात्परं स्नेहः सात्मी भवति सेवितः॥ ३४४॥

भा० इसका यह अर्थ है कि। दोसे यमकाख्य स्नेह। तीनों से त्रिवृत्ताख्य चारोंसे महान् होता है॥ इनको तीन दिन चारदिन पांचदिन अथवा छ दिन पीवे॥ मृदु मध्य क्रूर कोष्ठकी अपेक्षा से तीनदिन चारदिन पांचदिन अथवा छ दिन पीवे। जैसे कि कहा है। मृदुकोष्ठ तीन दिन में स्नेहके सेवन से स्निग्ध होता है॥ मध्यकोष्ठ चारदिन में अवश्य स्निग्ध होता है॥ ३४३॥ क्रूरकोष्ठ पांच अथवा छःदिनमें शुद्ध होता है॥ सात दिनके परे सेवन किया हुवा स्नेह सात्म्य होजाता है॥ ३४४॥

(क) मृदुमध्यक्रूरकोष्ठानां सर्वेषां सप्तरात्रात्परं सात्मी भवति। वातानुलोम्य वन्हिदीप्ति कोष्ठशुद्धि मृदुस्निग्धाङ्गता स्वरवचनाङ्गलाघव धातुपुष्टि द्विजदार्ढ्य निर्जरता बलवर्णकारी भवति॥

नन्वु भक्तद्वये वातानुलोम्यादीन् करोति।

दोषकालवयो वन्हि बलान्यालोक्य योजयेत्॥ हीनाञ्च मध्यमां ज्येष्ठां मात्रां स्नेहस्य बुद्धिमान्॥ ३४५॥ असात्म्या तथाऽकाले मिथ्याहार विहार

नः ॥ स्नेहः करोति शोथार्शस्तन्द्रा निद्रा विसंज्ञिताः ॥
॥ ३४६ ॥ देया दीप्ताग्नये मात्रा स्नेहस्यैकपलोन्मिता ॥
मध्यमाय त्रिकर्षा स्याज्जघन्याय द्विकार्षिकी ॥ ३४७॥
(मध्यमाय मध्यमाग्नये जघन्याय हीनाग्नये)
अथवा स्नेहमात्राः स्युस्तिस्रोन्याः सर्वसम्मताः ॥ अ-
होरात्रेण महती जीर्यत्यन्हि तु मध्यमा ॥ ३४८ ॥
जीर्य्यत्यल्पा दिनार्द्धेन सा विज्ञेया सुखावहा ॥
[अयमर्थः] याहोरात्रेण जीर्यति सा मात्रा महती ।
एवं मध्यमा कनिष्ठा च ज्ञेया ।
अल्पा स्याद्दीपनी वृष्या स्वल्पदोषे प्रपूजिता ॥ मध्य
मा स्नेहनी ज्ञेया बृंहणी भ्रम हारिणी ॥ ३४९ ॥ ज्येष्ठा
कुष्ठ विषोन्माद ग्रहापस्मार नाशिनी ॥

भा० (क) सब मृदु मध्य क्रूरकोष्ठ वालों के सातदिन के परे सात्म्य होना है वातको अनुलोम करके अग्निदीपन कोष्ठ शुद्धि मृदु स्निग्ध अङ्गता स्वर वचन शरीर लाघ बलवर्णको करनेवाला होताहै ॥ न कि भक्ष्यमें वातानुलोम्यादिकों को करताहै । दोषकाल वय अग्नि बल इनको देखकर स्नेहकी हीन मध्य अधिक मात्राको योजना करे ॥ ३४५ ॥ वे मात्रा के तथा अकाल में मिथ्या आहार विहार में । स्नेह सूजन बवासीर तन्द्रा निद्रा विसंज्ञिता इनको करताहै ॥ ३४६ ॥ दीप्ताग्नि की स्नेहकी एकपल प्रमाण मात्रा देनी चाहिये ॥ और मध्यम अग्निवालेको दो तोले देनी चाहिये ॥ ३४७ ॥ मध्यमाग्नि की और हीन अग्निवाले की । और सबके सम्मत तीन स्नेहकी मात्रा होती है ॥ बड़ी मात्रा जो दिनरात में पचतीहै और दिनमें जो पचजातीहै वोह मध्यम ॥ ३४८॥ और जो आधे दिन में पचतीहै उसको अल्पमात्रा जाननी चाहिये वोह सुखावह है ॥ (येह अर्थहै कि) जो रातदिन में पचती है वो बड़ी मात्रा है । ऐसेही मध्यम कनिष्ठ जाननी चाहिये । अल्प मात्रा

शुक्रको करनेवाली है। और अल्पदोष में पूजित है॥ मध्यम स्नेहकी मात्रा पुष्ट भ्रम नाशक होती है॥ ३४९॥ और वही कुष्ट विष उन्माद ग्रह अपस्मार इन की नाशक है॥ [सुश्रुतः पुनरेवाह]

यामात्रा प्रथमे यामे गते जीर्य्यति वासरे॥ सा मात्रा दीपयत्यग्नि मल्प दोषे च पूजिता॥ ३५०॥ या मात्रा वासर स्यार्द्धे व्यतीते परिजीर्य्यति॥ सा वृष्या वृंहणीच स्या न्मध्यदोषे प्रपूजिता॥ ३५१॥ या मात्रा चरमे यामे स्थितेऽन्हः परिजीर्य्यति॥ सामात्रा स्नेहनी ज्ञेया बहु दोषे षु पूजिता॥ ३५२॥ केवलं पैत्तिके सर्पि र्वातिके लवणान्वितम्॥ देयं बहुकफे वाह्नि व्योष क्षार समन्वितम्॥ ३५३॥ रूक्षक्षत विषार्त्तानां वातपित्त विकारिणाम्॥ हीनमेधा स्मृतीनाञ्च सर्पिः पानं प्रशस्यते॥ ३५४॥ कृमिकोष्ठा निलाविष्टा प्रवृद्ध कफ मेदसः॥ पिवेयु स्तैल सात्म्यास्तैलं दार्ढ्यार्थिन स्तु ये॥ ३५५॥ व्यायामा कर्षिताः शुष्क रेतोरक्ता महारुजाः॥

भा० सुश्रुत ने फिरसे ही कहाहे। जो मात्रा पहर भर गुज़रने पर पचती है। वोह मात्रा अग्निको दीपन करती है। और थोड़े दोषमें अच्छी है॥ ३५०॥ जो मात्रा दो पहर गुज़रने पर पचती है वोह मात्रा शुक्रको करनेवाली पुष्ट होती है और मध्य दोष में अच्छी होती है॥ ३५१॥ जो मात्रा दिनके चौथे पहर में पचती है उस मात्राको स्नेहनी जानना चाहिये वोह बहुत दोषमें पूजित होती है॥ ३५२॥ पैत्तिक में खाली घृत और वातिकमें लवण के सहित॥ देना चाहिये तथा बहुत कफमें चित्रक त्रिकुटा क्षार युक्त॥ ३५३॥ देना चाहिये रूक्ष

क्षत विष इनसे पीड़ित वात पित्तके विकार वालों को ॥ और हीन मेधा स्मृति को घृतपान अच्छाहै ॥ ३५४ ॥ क्रूर कोष्ठ वात इन करके आयिष्ट और बढ़े हुवे कफ मेद वाले ॥ तथा दृढ़ता के चाहने वाले जो हैं वे तल सात्म्य रोगमें तेलको पीवें ॥ ३५५ ॥ कसरत से आकर्षित शुष्क वीर्य्य वे रक्तवाले बड़ी पीड़ावाले येहभी तेल पीवें ॥

(क्रूराशयाः क्रूरकोष्ठाः सर्वतः सर्वस्मात् स्नेहात् ।)
शीतकाले दिवास्नेह मुष्णकाले पिबेन्निशि ॥ वात
पित्ताधिके रात्रौ वातश्लेष्माधिके दिवा ॥ ३५६ ॥
नस्याभ्यञ्जनं गण्डूष मूर्द्ध कर्णाक्षि तर्पणे ॥ तैलं
घृतंवा युञ्जीत दृष्ट्वा दोष बलाबलम् ॥ ३५७ ॥ घृ
ते कोष्णं जलं पेयं तैलेयूषः प्रशस्यते ॥ वसामज्ज्ञ
पिबेत्स्वाड् मनुपानं सुखावहम् ॥ ३५८ ॥ स्नेह द्वि
षः शिशून् वृद्धान् सुकुमारान् कृशानपि ॥ तृष्णा
लुकां तुष्णकाले सह भक्तेन पाययेत् ॥ ३५९ ॥
सर्पिष्मती बहुतिला यवागूः स्वल्प तण्डुला ॥

भा० (क्रूर आशय क्रूरकोष्ठ सब स्नेह से सब तरफ) शीतकाल में दिनमें स्नेह और उष्णकाल में रातको पीवे ॥ और वात पित्ताधिक में रातको और वात कफाधिकमें दिनमें ॥ ३५६ ॥ पीवे नास अभ्यंग गण्डूष और शिर कान नेत्र इनके तर्पण में ॥ तेल घृतको योजना करे दोषोंके बलाबल देखकर ॥ ३५७ ॥ घृतपर सालगरम जल पीना चाहिये और तेल पर जूस प्रशस्त होताहै वसा मज्जा पर अनुपान माड पीवे येह सुखावह है ॥ ३५८ ॥ स्नेह से द्वेष करने वालों को और बालक वृद्ध सुकुमार कृश इनको भी ॥ और तृषा वालेको उष्णकालमें भोजन के साथ पिलावे ॥ ३५९ ॥ घी की बहुत तिलसे युक्त थोड़े चावल वाली यवागू ॥

सुखोष्णा सेव्यमाना तु सद्यः स्नेहन कारिणी ॥ ३६० ॥

शर्करा चूर्ण संयुक्तं दोहनस्थे घृते नु गाम्॥ दुग्ध्वा क्षीरं पिबेद्रूक्षः सद्यः स्नेहन मुत्तमम्॥ ३६१॥ मिथ्याचारा द्बहुत्वा द्वा यस्य स्नेहोन जीर्य्यति॥ विष्टम्भा वापि जीर्य्येत वारिणोष्णेन वामयेत॥ ३६२॥ स्नेहस्याजीर्ण शङ्कायां पिबेदुष्णोदकं नरः॥ ततो द्गारो भवेच्छुद्धो भक्ते चापि रुचिस्तथा॥ ३६३॥ स्नेहेन पैत्तिकस्याग्निर्यदा तीव्रतरी कृतः॥ तदास्यो दीर्य्यते तृष्णां विषमान्तस्य पाययेत्॥ ३६४॥ शीतलं पायसं तेन तृष्णा तस्य प्रशाम्यति॥ अजीर्णो वर्जयेत् स्नेह मुदरी तरुण ज्वरी॥ ३६५॥

भा० गरम दील सेवन की हुई तत्काल स्नेह न करनेवाली है॥ ३६०॥ दुहने के बरतन में शर्करा चूर्ण से युक्त घृत मिलाके उसमें गायका दूध दुहकर रूक्ष पुरुष पीवे वोह तत्काल उत्तम स्नेहन है॥ ३६१॥ मिथ्याचार से अथवा बहुत होनेसे जिसका स्नेह नहीं पचता॥ विष्टंभ होके भी पचजाता [illegible] अजीर्ण शंकामें [illegible] में रुचि हो [illegible] ॥ तब इसको [illegible] से उसकी तृ[illegible] [illegible] ज्वर वाला स्नेह को न सेवन करे॥ ३६५॥

॥ दुर्बलोऽरोचकी स्थूलो मूर्च्छितो मेद पीडितः॥ दत्तवस्ति र्विरक्तश्च वान्तस्तृष्णा श्रमान्वितः॥ ३६६॥ अकाल प्रसवा नारी दुर्दिने च विवर्जयेत्॥ स्वेद्यः संशोध्य मद्यस्त्री व्यायामासक्त चिंतकाः॥ ३६७॥

वृद्धबाल कृशा रूक्षाः क्षीणास्त्राः क्षीणरेतसः ॥ वाता-
र्त्तास्तिमिरार्त्ता ये तेषां स्नेहन मुत्तमम् ॥ ३६८ ॥ वाता
नुलोम्यं दीप्ताऽग्नि र्वर्च्चः स्निग्ध मसंहतम् ॥ मृदु-
स्निग्धाङ्गता ग्लानिः स्नेह द्वेषोऽथ लाघवम् ॥ ३६९
विमलेन्द्रियता सम्यक् स्निग्धे रूक्षे विपर्य्ययः ॥ भ-
क्त द्वेषो मुखस्त्रावो गुदे दाहः प्रवाहिका ॥ ३७० ॥
तन्द्रातीसार षण्डत्वं भृशं स्निग्धस्य लक्षणम् ॥
रूक्षस्य स्नेहनं स्नेहे रति स्निग्धस्य रूक्षणम् ॥ ३७१ ॥

भा० दुर्बल अरुचिवाला स्थूल मूर्च्छावाला प्रमेह से पीडित ॥ वस्ति दि
या हुवा विरेचन लिया हुवा वमन लिया श्रम युक्त ॥ ३६६ ॥ और अकालमें
प्रसूत हुई येह त्यागदेवे और दुर्दिनमेंभी त्यागदेवे ॥ स्वेदन और संशोधन
करके मद्य स्त्री कसरत इनको बहुत करनेवाले ॥ ३६७ ॥ वृद्ध बालक कृश
रूखे क्षीण रक्तक्षीण धातु ॥ वात से पीडित तिमिर रोगवाले जो हैं उनको
स्नेहन अच्छाहै ॥ ३६८ ॥ वातका नीचे होना दीप्त अग्नि मल चिकना औ
र ढीला ॥ मृदु और स्निग्धता सुस्ती स्नेह द्वेष और हलकापन ॥ ३६९ ॥
इन्द्रियोंकी स्वच्छता अच्छीतरह स्निग्ध होनेमें येह लक्षण होतेहैं ॥ और
रूक्षमें इससे विरुद्ध लक्षण होतेहैं । भोजनमें द्वेष मुखस्राव गुदामें दाह प्रवा
हिका ॥ ३७० ॥ तन्द्रा अतीसार नपुंसकता येह बहुत स्निग्धका लक्षण है ॥
रूक्षका स्नेहसे स्नेहन और स्निग्धका रूक्षण ॥ ३७१ ॥

श्यामाक चणका चैश्व तक्रपिण्याक शक्तुभिः ॥ दी-
प्ताग्निः शुद्ध कोष्ठ श्च पुष्टधातु दृढेन्द्रियः ॥ ३७२ ॥
निर्जरो बलवर्णाढ्यः स्नेह सेवी भवेन्नरः ॥ स्नेहे व्या
याम संशीत वेगाघात प्रजागरान् ॥ ३७३ ॥ दिवास्व-
प्न मभिष्यन्दि रूक्षान्नञ्च विवर्जयेत् ॥

[अथ पञ्च कर्माणि]

प्रथमं वमनं पश्चाद्विरेक स्त्वानु वासनम् ॥ एतानि पञ्च कर्माणि निरूहो नावनं तथा ॥ ३७४॥

[अथ वमन विधिः] शरत्काले वसन्ते च प्रावृट्काले च देहिनाम् ॥ वमनं रेचनञ्चैव कारयेत्कुशलो भिषक् ॥ ३७५॥ बलवन्तं कफव्याप्तं हृल्लासादि निपीड़ितम् ॥ तथा वमन सात्म्यञ्च धीर चित्तञ्च वामयेत् ॥ ३७६ ॥ विष दोषे स्तन्यरोगे मन्देऽग्नौ श्लीपदेऽर्बुदे ॥ हृद्रोगे कुष्ठवीसर्पे मेहाजीर्णे भ्रमेषु च ॥ विदारिका पचीकास श्वास पीनस वृद्धिषु ॥ अपस्मारे ज्वरोन्मादे तथा रक्तातिसारिषु ॥ ३७८ ॥ नासा तालोष्ठ पाकेषु कर्णस्रावेऽधि जिह्वके ॥ गल शुण्ड्यामतीसारे पित्तश्लेष्म गदे तथा ॥ ३७९ ॥ मेदोगदेऽरुचौ चैव वमनं कारयेद् भिषक् ॥

भा० सांवां चना आदिसे और मठा खल सत्तू इनसे करे ॥ दीप्त अग्नि शुद्ध कोष्ठ धातुपुष्ट दृढेन्द्रिय ॥ ३७२॥ निर्जर बल वर्णसे युक्त स्नेह सेवन करने वाला मनुष्य होता है ॥ स्नेहमें व्यायाम बहुत प्रीत वेगोंका रोकना रातको जागना ॥ ३७३॥ दिनमें सोना अभिष्यन्दि रूक्ष अन्न इनको त्याग देवे ॥ [अनन्तर पंचकर्म्म] पहिले वमन पीछे विरेचन अनुवासन ॥ निरूह बस्ति नस्य येह पंच कर्म्म हैं ॥ ३७४॥ [अनन्तर वमन विधिः] शरद कालमे वसन्तमें और प्रावृट्कालमें भी मनुष्योंको ॥ वमन विरेचन कुशलवैद्य करावे ॥ ३७५॥ बलवान कफसे व्याप्त हल्लास आदिसे पीड़ित इनको ॥ तथा वमन सात्म्य और धीर चित्तवाले को वमन करावे ॥ ३७६॥ विषदोष स्तन्यरोग मन्दाग्नि श्लीपद अर्बुद इनमें ॥ और हृद्रोग में कुष्ठमें वीसर्प प्रमेह

अजीर्ण भ्रम इनमें भी ॥ ३७७॥ तथा विदारिका अपचीकास श्वास पीनस अण्ड वृद्धि इनमें ॥ अपस्मार में ज्वर उन्माद तथा रक्तातिसार इनमें ॥ ३७८॥ और नाक तालु होठ इनके पाकमें कर्णस्राव में अधि जिव्हक में ॥ गल शुंडी अतीसार तथा पित्त कफ के रोग ॥ ३७९॥ मेदरोग अरुचि मेंभी वैद्य वमन करावे।

(दुष्ट दूध पीने से उत्पन्न हुवे बालक के रोग में भी वमन करावे।)

(स्तन्यरोगे दुष्ट दुग्ध जनिते बालस्य रोगे)

न वामनी यस्तिमिरी न गुल्मी नोदरी कृशः॥ नातिवृद्धो गर्भिणी च न स्थूलो न क्षतातुरः॥ ३८०॥ मदार्त्तो बालको रूक्षः क्षुधितश्च निरूहितः॥ उदावर्त्त्यूर्द्ध रक्ती च दुश्छर्दः केवलानिली ॥ ३८१॥ पाण्डुरोगी कृमीव्याप्तः पठनात् स्वरघातवान् ॥ एतेऽप्यजीर्ण व्यथिता वाम्या ये विषपीडिताः॥ ३८२॥ कफ व्याप्ताश्च ते वाम्या मधुकक्वाथ पानतः॥

भा० तिमिर रोगवाला गुल्म रोगवाला उदर रोगवाला कृश ॥ अतिवृद्ध गर्भिणी स्थूल क्षतातुर ॥ ३८०॥ मद पीडित बालक रूक्ष क्षुधित निरूहवस्ति लियाहुवा ॥ उदावर्त वाला ऊर्द्ध रक्तवाला और केवल वातरोग वाला इनको वमन न देवे ॥ ३८१॥ पाण्डुरोग वाला कृमिसे व्याप्त पढनेसे स्वरघात हुवा ॥ येह अजीर्णसे पीडित होंतो भी वमन करानी चाहिये और जो विषसे पीडित हैं वे भी वमन कराने चाहिये ॥ ३८२॥ कफ ने व्याप्त हुये महुवे के काढे के पान से वमन कराने चाहिये ॥

(क) ऊर्द्ध रक्ती यस्य नासादि कर्णास्य मार्गे रक्ते प्रवर्त्तते सः। भुक्त रूक्ष कर्कश द्रव्यो दुश्छर्दः मधुक स्थाने मधुकेति द्वितीयः पाठ।

सुकुमारं कृशम्बालं वृद्धं भीरुञ्च वामयेत् ॥ पाययित्वा यवागूं वा क्षीर तक्र दधीनि च ॥ ३८३ ॥

असात्म्यैः श्लेष्मलै र्भोज्यै र्दोषानुत्क्लेश्य देहिनाम् ॥ स्निग्ध स्विन्नाय वमनं दत्तं सम्यक् प्रवर्त्तते ॥ ३०४ ॥ वमनेषु च सर्वेषु सैन्धवं मधुवाहितम् ॥ वीभत्सं व मनं दद्याद्विपरीतं विरेचनम् ॥ ३०५ ॥

(वीभत्सम् अरुच्यं विपरीतम् रुच्यम्।)

क्वाथ्य द्रव्यस्य कुडवं स्त्रपयित्वा जलाढ़के ॥ अर्द्ध भागावशिष्टञ्च वमनेष्ववचारयेत् ॥ ३०६ ॥ क्वा थपाने नवप्रस्था ज्येष्ठा मात्रा प्रकीर्त्तिता ॥ मध्यमा षण्मिता प्रोक्ता त्रिप्रस्था च कनीयसी ॥ ३०७ ॥ वम ने च विरेके च तथा शोणितमोक्षणे ॥ अर्द्ध त्रयोद श पलं प्रस्थमाहु र्मनीषिणः ॥ ३०८ ॥

(अर्द्ध त्रयोदश पलं सार्द्ध षट्कम्)

भा० (क) जिसके नाक आंख कान मुख इन मार्ग से रक्त निकलता है वो ह । खाया रूखा कर्कश ऐसा द्रव्य दुःखदाई है । मधुक की जगह में मधुक ऐसा दूसरा पाठ है । सुकुमार कृश बालक वृद्ध भीरु इनको ॥ यवागू अथ वा दूध मठा दही इनको पिलाकर वमन करावे ॥ ३०३ ॥ मनुष्यों के दोषों को असात्म्य कफकारी भोजनोंसे उखेड़ कर वमन करावे ॥ स्निग्ध स्विन्न वाले को वमन दिया हुवा अच्छी तरह होता है ॥ ३०४ ॥ सब वमनों में अथवा मधु येह हित है ॥ स्वादमें खराब वमन देवे और स्वादमें अच्छा विरेचन देवे ॥ ३०५ ॥ अरुचिको करने वाला । और रुचिको करने वाला । काढ़े की पाव भर दवाको चार सेर पानीमें भिजोयकर ॥ औटाके आधा पानी बाकी रहे को वमन में देवे ॥ ३०६ ॥ क्वाथ पावमें नौसेर बड़ी मात्रा कही है ॥ और मध्यम मात्रा छ सेर की कही है तथा हीनमात्रा तीनसेर की कही है ॥ ३०७ ॥ वमन में विरेचनमें तथा फस्तमें साढ़े छ पलका सेर मुनियों ने कहा है ॥ ३०८

(साढ़े छ पल)

कल्क चूर्णावलेहानां त्रिपलं मात्रयोत्तमम् ॥ मध्यमं द्विपलं विद्यात्कनीयस्तु पलं भवेत् ॥ ३८९॥ वमने चाष्ट वेगास्तु : पित्तान्ता उत्तमास्तु ते ॥ षड्वेगा मध्यमा वेगा चत्वारस्त्वपरे मताः ॥ ३९०॥ कफं कटुक तीक्ष्णोष्णैः पित्तं स्वादु हिमैर्जयेत् ॥ सस्वादु लवणाम्लोष्णैः संसृष्टं वायुना कफम् ॥ ३९१॥

भा० कल्कचूर्ण अवलेह इनकी मात्रा उत्तम तीन पलहै ॥ मध्यम दो पल और हीनपल भरकी होतीहै ॥ ३८९॥ वमन में पित्तान्त आठ वेग जोहोते हैं वोह उत्तमहै ॥ और छः वेग मध्यम तथा चार वेग हीन हैं ॥ ३९०॥ कफ कोकटु तीक्ष्ण इनसे पित्तको मधुर शीतलसे जीते ॥ मधुर के सहित अम्ल उष्ण इन से वात मिलेहुवे कफ कोजीते ॥ ३९१॥

कृष्णां कट्फलं सिन्धुं च कफे कोष्णजलैः पिबेत् ॥ पटोल वासा निम्बाश्च पित्ते शीतजलैः पिबेत् ॥३९२॥ (कट्फलं मयनफलम्) सश्लेष्म वात पीड़ायां। सक्षीरं मदनं पिबेत् ॥ अजीर्णे कोष्णपानीयं सिन्धुं पीत्वा वमेत्सुधीः ॥ ३९३॥ (मदनं मयनफलम्) वमनं पाययित्वा तु जानुमात्रासने स्थितम् ॥ कण्ठमेरण्ड नालेन स्पृशन्तं वामयेद्भिषक् ॥ ३९४॥ प्रसेको हृद्ग्रहः कोठः कण्डूर्दुश्छर्दिते भवेत् ॥ अतिवान्ते भवेत्तृष्णा हिक्कोद्गारो विसंज्ञता ॥ ३९५॥ जिह्वा निःसरणं चाक्ष्णोर्व्यावृत्ति हनु संहतिः ॥ रक्तछर्दिः ष्ठीवनञ्च कण्ठपीड़ा च जायते ॥ ३९६॥

भा० पीपल कायफल सैन्धव इनको कफमें सील गरम जलसे पीवें ॥ पटोल बासा निम्ब इनको पित्तमें शीतल जलसे पीवे ॥ ३९२॥ (मैनफल) कफ के सहित वातकी पीडामें दूधके सहित मैनफल को पीवे ॥ ३९३॥ अजीर्ण मे सैन्धव सील गरम पानी से पीकर वमन करे ॥ मयनफल । वमन द्रव्यको पिलाकर घुटने से बैठकर ॥ कठको अंडीके नालसे स्पर्श कराकर वमन करावे ॥ ३९४ ॥ प्रसेक हृद ग्रहकोढ खुजली येह लक्षण दुच्छर्दिन में होना है ॥ अतिवान्तमे तृषा हिचकी डकार विसज्ञता ॥ ३९५॥ जीभ का निकलना नेत्र पीडा आंखोंका निकलना मुखका खुला रहना ॥ रक्त की छर्दि थूक कठमे पीडा । येह लक्षण होते है ॥ ३९६ ॥

(हनु संहतिः हन्वो रमिलनम्) वमनस्याति योगे तु मृदुः कुर्य्याद्विरेचनम् ॥ वमने न प्रविष्टायां जिव्हायां कवलः ग्रहः ॥ ३९७ ॥ स्निग्धाम्ल लवणो र्युक्तै र्घृत क्षीर रसैर्हितैः ॥ (रसैर्मांस रसैः) फलान्यम्लानि खादेयु स्तस्य चान्येऽग्रतो नराः ॥ ३९८ ॥ निःसृतान्तु तिलद्राक्षा कल्क लिप्तां प्रवेशयेत् ॥ (निःसृतां जिह्वां) व्यावृत्ते ऽक्षिणि घृता भ्यक्ते पीडनञ्च शनैःशनैः ॥ हनुमोक्षे स्मृतः स्वेदो नस्यञ्च श्लेष्म वातहृत् ॥ ३९९ ॥ रक्तपित्त विधानेन रक्तष्ठीव मुपाचरेत् ॥ धात्री रसाञ्जनो शीर लाजाचन्दन वारिभिः ॥ ४००॥ मन्थं कृत्वा पाययेच्च सघृतं क्षौद्र शर्करम् ॥

भा० ठवडे का नमिलना । वमन के अतियोगमे मृदु विरेचन करे ॥ वमन करके प्रविष्ट जिह्वामे कवलग्रह ॥ ३९७॥ चिकना और लवण इनकरके युक्त घृत क्षीर रस इन करके देवे ॥ रस अर्थात मांसरस । खट्टे फलोको खावेउसके पहले ॥ ३९८॥ और नि ःसृतको तिलद्राक्षा के कल्क से भी लिप्तयोगीतकरे

व्यावृत्त नेत्रमें घृतसे अभ्यक्त को धीरे दवावे ॥ हनुमोक्ष में स्वेद कहाहै और नास कफ वातका नाशक ॥ ३९९ ॥ रक्तपित्त विधानसे रक्तष्ठीव का उपचार करे ॥ आंवले रस वनखस खीला चन्दन सुगन्धवाला इनसे मन्थ ॥ ४०० ॥ करके घृत मधु शर्करा इनके साथ पिलावे ॥

शाम्यन्त्यनेन तृष्णाद्या रोगाश्छर्दि समुद्भवाः ॥ ४०१ ॥ हृत्कण्ठ शिरसां शुद्धिर्दीप्ताग्नित्वञ्च लाघवम् ॥ कफ पित्त विनाशश्च सम्यग्वान्तस्य लक्षणम् ॥ ४०२ ॥ ततोऽपराह्ले दीप्ताग्निं मुद्गषष्टिक शालिभिः ॥ हृद्यैश्च जाङ्गलरसैः कृत्वा यूषञ्च भोजयेत् ॥ ४०३ ॥ तन्द्रा निद्रास्य दौर्गन्ध्यं कण्डूञ्च ग्रहणीं विषम् ॥ सुवान्तस्य न पीडायै भवन्त्येते कदाचन ॥ ४०४ ॥ अजीर्णे शीत पानीयं व्यायामं मैथुनं तथा ॥ स्नेहाभ्यङ्गञ्च रोषञ्च दिनमेकं सुधीस्त्यजेत् ॥ ४०५ ॥

[इति वमनाधिकारः]

भा० इससे तृषा आदिक रोग वमन से उत्पन्नहुवे शमन होते हैं ॥ ४०१ ॥ हृदय कण्ठ शिर इनकी शुद्धि दीप्त अग्नि हलकापन कफ पित्तका नाश येह अच्छी तरह वमन कियेहुवेका लक्षण है ॥ ४०२ ॥ उसके अनन्तर अपराह्न कालमें दीप्त अग्निवाले को मूंग साठी चावल हृद्य जांगलरस से यूस करके भोजन करावे ॥ ४०३ ॥ तन्द्रा निद्रा मुखकी दुर्गन्धता खुजली संग्रहणी विष ये ॥ सुवान्त के पीडाके अर्थ कदाचित भी नहीं होते ॥ ४०४ ॥ अजीर्ण शीतल जल कसरत तथा मैथुन तेलका लगाना क्रोध इनको एक दिन छोड़ देवे ॥ ४०५ ॥ [इति वमनाधिकार ।]

[अथ विरेचन विधिः ।]

स्निग्ध स्विन्नाय वान्ताय दद्यात्सम्यग्विरेचनम् ॥

अवान्तस्य त्वधःस्रस्तो ग्रहणीं छादयेत्कफः ॥ ४०६ ॥ मन्दाग्निं गौरवं कुर्य्याज्जनयेद्वा प्रवाहिकाम् ॥ अथ-वा पाचनै रामं बलासं परि पाचयेत् ॥ ४०७ ॥ अतो वसन्ते शरदि देहशुद्धौ विरेचयेत् ॥ अन्यदात्ययि के कार्य्ये शोधनं शीलयेद्बुधः ॥ ४०८ ॥

भा० अनन्तर विरेचनकी विधि ॥ स्निग्ध स्विन्न वान्तके अर्थ अच्छीतरह विरेचन देवे ॥ अनन्तर वमन लियेवाले के ऊपर कफ ग्रहणी को ढक देताहै ॥ ४०६ ॥ मन्दाग्नि भारीपन इनको करताहै ॥ और प्रवाहिका को करताहै अथवा पाचनोंसे आम और कफ इसको पकावे ॥ ४०७ ॥ वसन्त और शरदमें देह शुद्धि के अर्थ विरेचन लिवावे ॥ और अवश्यक कार्य्य में शोधनको करावे ॥ ४०८ ॥

(आत्ययिके प्राणसङ्कटे)

पित्ते विरेचनं युञ्ज्यादामोद्भूते गदे तथा ॥ उदरे च तथाध्माने कोष्ठशुद्धौ विशेषतः ॥ ४०९ ॥ दोषाःकदाचित्कुप्यन्ति जिता लङ्घनपाचनैः ॥ शोधनैः शोधिता ये तु नतेषां पुनरुद्भवः ॥ ४१० ॥ बालो वृद्धो भृशं स्निग्धः क्षतक्षीणो भयान्वितः ॥ श्रान्तस्तृषार्त्तः स्थूलश्च गर्भिणी च नवज्वरी ॥ ४११ ॥ नवप्रसूता नारी च मन्दाग्निश्च मदात्ययी ॥ शल्यार्दितश्च रूक्षश्च न विरेच्या विजानता ॥ ४१२ ॥

भा०(प्राण संकट में। पित्तमें तथा आमके रोग मे विरेचन न देवे ॥ और उदर में तथा आध्मानमें विशेष करके कोष्ठ शुद्धिमें विरेचन देवे ॥ ४०९ ॥ लंघन पाचन औषधि से दूर हुवेदोष कदाचित् फिरसे हो आते हैं ॥ और जो शोधन से शुद्ध किये जाते हैं वे फिरसे नही होते ॥ ४१० ॥ बालक

वृद्ध अत्यन्त स्निग्ध क्षत क्षीण भययुक्त ॥ श्रान्त तृषासे पीड़ित स्थूल गर्भिणी नवज्वर वाला ॥ ५११ ॥ नव प्रसूत स्त्री मन्दाग्निवाला मदात्यय वाला ॥ शल्य से पीड़ित और रूक्ष येह जानने वालेके द्वारा विरेचन देनेके योग्य नहींहै ॥ ५१२ ॥

जीर्णज्वरी गरव्याप्तो वातरोगी भगन्दरी ॥ अर्शः पाण्डूदर ग्रन्थि हृद्रोगारुचि पीड़िताः ॥ ५१३ ॥ योनिरोग प्रमेहार्त्ता गुल्मप्लीह व्रणार्द्दिताः ॥ विद्रधि च्छर्दि विस्फोट विसूची कुष्ठसंयुताः ॥ ५१४ ॥ कर्ण नासा शिरो वक्त्र गुद मेढ्रा मयान्विताः ॥ प्लीह शोथादि रोगार्त्ताः कृमिक्षारा निलार्द्दिताः ॥ ५१५ ॥ शूलिनो मूत्रघातार्त्ता विरेकार्हा नरा मताः ॥ बहु पित्तो मृदुः प्रोक्तो बहुश्लेष्मा च मध्यमः ॥ ५१६ ॥ बहु-वात क्रूर कोष्ठो दुर्विरेच्यः स कथ्यते ॥ मृद्वीमात्रा मृदौ कोष्टे मध्यकोष्टे च मध्यमा ॥ ५१७ ॥ क्रूरे तीक्ष्णा मता द्रव्यै र्मृदु मध्यम तीक्ष्णकैः ॥

भा० जीर्णज्वर वाला विषसे व्याप्त वातरोग वाला भगन्दर वाला ॥ ववासीर पांडु रोग उदरगांठ हृद्रोग अरुचि इनसे पीड़ित ॥ ५१३ ॥ योनिरोग प्रमेह से पीड़ित वायगोला पिलही व्रण से पीड़ित ॥ विद्रधि वमन विस्फोट विसूचि कुष्ठ इनसे युक्त ॥ ५१४ ॥ कान नाक शिर मुख गुदा लिंग इनके रोगोंसे युक्त ॥ पिलही सूजन नेत्ररोग इनसे पीड़ित कृमि क्षार वात इनसे पीड़ित ॥ ५१५ ॥ शूलवाले मूत्रघात से पीड़ित ये मनुष्य विरेचन देनेके योग्य है ॥ अधिक पित्त वाला मृदुकोष्ठ कहाहै और अधिक कफ वाला मध्यकोष्ठ तथा अधिक वात वाला क्रूर कोष्ठ होता है वोह दुर्विरेच्य कहाहै ॥ मृदुकोष्ठ में मृदुमात्रा मध्य कोष्ठ में मध्यमात्रा ॥ ५१७ ॥ क्रूर कोष्ठमें तीक्ष्णमात्रा मृदु मध्य तीक्ष्ण द्रव्यों से कहीहै ॥

मृदुर्द्राक्षा पयश्चञ्चु तैलैरपि विरिच्यते ॥ मध्यमस्त्रि-वृतातिक्ता राजवृक्षै विरिच्यते ॥ क्रूरार्क पयसा हेमक्षीरी दन्ती फलादिभिः ॥ ४१९ ॥

(क) चञ्चुतैलम् एरण्ड तैलम् । राजवृक्षः । घनवहेरा। हेमक्षीरी । चोक । दन्तीफलम् । वृहद्दन्ती फलम् । जयपालेति प्रसिद्धम् ॥

मात्रोत्तमा विरेकस्य त्रिंशद्वेगैः फलान्तकः ॥ वेगैर्विंशति भिर्मध्या हीनोक्ता दशवेगिका ॥ ४२० ॥

भा० मृदुकोष्ठ वालेको दाख दूध अंडीकातेल इनसेभी दस्त होते हैं ॥ ४१८ मध्य कोष्ठ को निसोथ कुटकी अमलतास इनसे दस्त आतेहैं ॥ क्रूरको आंक के दूधसे और चोक जमालगोटा आदिसे दस्त होते हैं ॥ ४१९ ॥
(क) अंडीका तेल । अमलतास । चोक । वड़ाजमालगोटा । जुल्लाव की उत्तममात्रा तीसंदस्तोंसे होतीहै । वोह कफ नाशक होती है । वीस दस्तों से मध्यम और दससे हीन मात्रा कही है ॥ ४२० ॥

द्विपलं श्रेष्ठमाख्या तं मध्यमं च पलं भवेत् ॥ पलार्द्धञ्च कषायाणां कनीयस्तु विरेचनम् ॥ ४२१ ॥ कल्क मोदक चूर्णानां कर्ष मध्वाज्य लेहतः ॥ कर्षद्वयं पलंवापि वयोरोगाद्य पेक्षया ॥ ४२२ ॥ पित्तोत्तरे त्रिवृच्चूर्णं द्राक्षाकाथा दिभिः पिबेत् ॥ त्रिफला काथ गोमूत्रैः पिबेद्व्योषं कफार्दितः ॥ ४२३ ॥ त्रिवृत्सैन्धव शुण्ठीनां चूर्णमम्लैः पिबेन्नरः ॥ वातार्दितो विरेकाय जाङ्गलानां रसेन वा ॥ ४२४ ॥ एरण्ड तैलं त्रिफला काथेन द्विगुणेन वा ॥ युक्तं पीतं पयोभिर्वा

न चिरेण विरिच्यते ॥ ४२५॥

(शीघ्रमेव विरिच्यत इत्यर्थः) त्रिवृता कौटजं बीजं पिप्पली विश्वभेषजम् ॥ समृद्वीका रसं क्षौद्रं वर्षा काले विरेचनम् ॥ ४२६॥ त्रिवृद्दुरालभा मुस्तशर्करोदीच्य चन्दनम् ॥ द्राक्षाम्बुना सयष्ट्याह्व शीतलञ्च घनात्यये ॥ ४२७ ॥ (उदीच्यम्बाला घनात्यये शरदि)

भा० कषायों की मात्रा उत्तम दोपल मध्यम पलभर और हीन आधापल जुल्लाव की दवामें होती है ॥ ४२१ ॥ कल्क मोदक चूर्ण इनकी तोलाभर मधु घृत मिलाके ॥ दोतोले या चार तोले वयरोग आदिकी अपेक्षा से देवे ॥ ४२२ ॥ पित्ताधिकमें निसोथका चूर्ण दाख के काढेके साथ पीवे ॥ कफ से पीड़ित त्रिकुटाके चूर्ण को त्रिफला क्वाथ और गोमूत्रके साथ पीवे ॥ ४२३ ॥ वातार्दित मनुष्य विरेचन को निसोथ सेन्धा सोंठ इनका चूर्ण अम्लके साथ पीवे अथवा जाङ्गल मांस इसके साथ पीवे ॥ ४२४ ॥ अथवा अरण्डीके तेलको दुगने त्रिफला के काढे से ॥ अथवा दूधके साथ पीनेसे शीघ्र दस्त होते हैं ॥ ४२५ ॥ निसोथ इन्द्रजव पीपल सोंठ ॥ और मुनक्का इनका रस मधुके साथ वर्षाकाल में विरेचन देवे ॥ २६ ॥ निसोथ जवासा नागरमोथा शक्कर सुगन्धवाला चन्दन ॥ दाख के रससे मुलेहठीके सहित वीरणमूल इनको शरदकाल में देवे ॥ ४२७ ॥

(सुगन्धवाला शरद में ।)

पिप्पली नागरं सिन्धुं श्यामां त्रिवृतया सह ॥ लिह्यात् क्षौद्रेण शिशिरे वसन्ते च विरेचनम् ॥ ४२८॥

(श्यामा कृष्णा सारिवा) वृत्ता शर्करा तुल्या ग्रीष्मकाले विरेचनम् ॥ अभया मरिचं शुण्ठी विडङ्गामलकानि च ॥ ४२९ ॥ पिप्पली पिप्पलामूलं त्वक् पत्रं मुस्तमेव च ॥ एतानि सम भागानि दन्ती च त्रिगुणा भवेत् ॥ ४३० ॥ त्रिवृताष्ट गुणा ज्ञेया षड्गुणा चात्र शर्करा ॥

भा॰ पीपल सोंठ सुफ़ेद सुहागा काली निसोथ के साथ चूर्ण करके मधुके साथ शिशिर में और वसंतमें भी जुलाब देवे ॥ ४२८ ॥ निसोथ शक्कर बराबर इनको ग्रीष्म में देवे ॥ हड़ मिरच सोंठ वायविड़ंग आंवले ॥ ४२९ ॥ पीपल पीपलामूल तज पत्रज नागर मोथा ॥ इनको समभाग और दन्ती तिगुनी ॥ ४३० ॥ निसोथ अठगुनी और इसमें छ गुनी शक्कर ॥

मधुना मोदकान् कृत्वा कर्षमात्रान् प्रमाणतः ॥ एकैकं भक्षयेत्प्रातः शीतञ्चानु पिबेज्जलम् ॥ तावद्विरिच्यते जन्तु र्यावदुष्णं न सेवते ॥ ४३२ ॥ पानाहार विहारेषु भवेन्नियन्त्रणः सदा ॥ विषम ज्वर मन्दाग्नि पाण्डु कास भगन्दरान् ॥ ४३३ ॥ पृष्ठ पार्श्वोरु जघन जङ्घोदर रुजं जयेत् ॥ तैला भ्यङ्गञ्च रोषञ्च दिनमेकं सुधीस्त्यजेत् ॥ ४३४ ॥ सततं शीलना देव पलितानि प्रणाशयेत् ॥ अभया मोदका ह्येते रसायनवराः स्मृताः ॥ ४३५ ॥

[इति अभयादि मोदकः]

भा॰ लेकर मधुकेसाथ कर्ष प्रमाण मोदक करके ॥ ४३१ ॥ एक २ प्रातःकाल खावें और पीछेसे शीतल जल पीवे ॥ तबतक दस्त आतेहैं जबतक मनुष्य उष्णजल नहीं सेवन करता ॥ ४३२ ॥ खान पान विहारमें सदा पथ्यसे रहे ॥ विषमज्वर मन्दाग्नि पाण्डुरोग कास भगन्दर इनको ॥ ४३३ ॥ और पीठ पसली छाती कटिदेश जांघ उदर इनकी पीड़ा को जीतता है ॥ तेल लगाना और क्रोध इनको बुद्धिवान् एक दिन त्यागदेवे ॥ ४३४ ॥ निरन्तर सेवन करने से ही बालोंकी सुफ़ेदी दूर होती है ॥ येह रसायन में श्रेष्ठ अभया मोदक कहा है ॥ ४३५ ॥ इति अभयादि मोदक ॥

पीत्वा विरेचनं शीतजलैः संसिच्य चक्षुषी ॥ सुगन्धि किञ्चिदाघ्राय ताम्बूलं शीलयेद् बुधः ॥ ४३६ ॥

निर्वातस्थो न वेगांश्च धारयेन्न शयीत च ॥ शीताम्बु न स्पृशेत्क्वापि कोष्णनीरं पिबेन्मुहुः ॥ ४३७ ॥ बला सौषध पित्तानि वायुर्वान्ते यथा व्रजेत् ॥ रेकात्तथा मलं पित्तं भेषजञ्च कफो व्रजेत् ॥ ४३८ ॥ दुर्विरक्त स्य नाभेस्तु स्तब्धता कुक्षिशूल रुक् ॥ पुरीषवातस ङ्गश्च कण्डू मण्डल गौरवम् ॥ ४३९ ॥ विदाहोऽरु- चिराध्मानं भ्रमश्छर्दिश्च जायते ॥ तं पुनः पाचनैः स्नेहैः पक्त्वा स्निग्धन्तु रेचयेत् ॥ ४४० ॥ तेनास्योप द्रवा यान्ति दीप्ताग्नि लघुता भवेत् ॥ विरिक्तस्याति योगेन मूर्च्छा भ्रंशो गुदस्य च ॥ ४४१ ॥ शूलं कफा तियोगः स्यान्मांस धावन सन्निभम् ॥ मेदो निभञ्ज लाभासं रक्तञ्चापि विरिच्यते ॥ ४४२ ॥ तस्य शीता- म्बु भिः सिक्त्वा शरीरं तण्डुलाम्बु भिः ॥ मधु मिश्रै स्तथा शीतैः कारयेद्वमनं मृदु ॥ ४४३ ॥

भा॰ जुल्लाव की दवाको पीकर ठंडेपानी से आँखोंको छपके देकर ॥ थोड़ी सी सुगन्ध वस्तुको सूंघकर पानखावे ॥ ४३६ ॥ निर्वात स्थानमें रहे और दस्तों को नरोके और सोवेभी नहीं ॥ शीतल जलको कहीं पर भी नछूवे गरम सील जलको बार २ पीवे ॥ ४३७ ॥ जैसे वमनमें कफ औषध पित्त वायु निकल ते हैं ॥ वैसे दस्तसे मल पित्त और औषध तथा कफ येहभी निकलते हैं ॥ ४३८ ॥ अच्छे जुल्लाब नऊनेके नाभमें स्तब्धता कूखमें शूल पीड़ा ॥ मलवात सङ्ग खुजली चकत्ते भारीपन ॥ ४३९ ॥ विदाह अरुचि आध्मान भ्रम वम न येह होतेहैं ॥ उसको फिरसे पाचन स्नेह द्रव्योंसे पकाकर स्निग्ध ऊवे को दस्त करावे ॥ ४४० ॥ उस करके इसके उपद्रव दूर होते हैं और दीप्ताग्नि हल कापन होताहै ॥ बहुत दस्तोंके होने से मूर्च्छा गुद भ्रंश ॥ ४४१ ॥ शूल कफ

का अतियोग मांस के धोवन के समान ॥ और मेदके समान जलसा तथा रक्तभी दस्त में निकलताहै ॥ उसका शरीर शीतलजल से सींच कर शीतल चावल के जलके मधु मिलाके उससे तथा शीतलजल वस्तकसे मृदु वमन करावे ॥ ५५३॥

सहकार त्वचः कल्को दध्ना सौवीर केनवा ॥ पिष्ट्वा नाभि प्रलेपेन हन्त्यतीसार मुल्वणम् ॥ ५५४ ॥ सौवीरं तु यवैरामैः पक्वैर्वा निस्तुषीःकृतैः। (सौवीरं सन्धानम्) अजाक्षीरं रसञ्चापि वैष्किरं हारिणं तथा ॥ शालिभिः षष्टिकैस्तुल्ये मसूरै र्वापि भोजयेत् ॥ ५५५ ॥ वर्त्तिका-लाव विकर कपिञ्जलक तित्तिराः ॥ चकोर क्रकरा द्याश्च विष्किराः समुदाहृताः ॥ ५५६ ॥ कपिञ्जल इति ख्यातो लोके कपिशतित्तिराः ॥

क्रकरः। कराट इति लोके । हारिणस्ताम्रवर्णःस्यान्मृगः।

भा० आमकी छालका कल्क दही अथवा सौवीरक के साथ पीस कर नाभि पर लेपकरने से उल्वण अतीसार नाश होताहै ॥ ५५४ ॥ बे छिलके के कच्चे वाप के जवोंसे कांजीके समान जो किया जाता है उसको सौवीर कहतेहैं ॥ ब-करीका दूध बटेर आदिका रस तथा हरिण आदिका रस ॥ साठीचावलों के साथ अथवा मसूरकी दालके साथ भोजन करावे ॥ ५५५॥ बटेर लवा विकि र भूरे रंगका तीतर तीतर ॥ चकोर कराट आदि येह विष्किर कहे हैं ॥५५६॥ भूरे रंगके तीतर को लोकमें कपिंजल कहतेहैं) कराट । हरिण लाल रंगका होताहै ।

शीतैः संग्राहि भिर्द्रव्यैः कुर्यात्स्तं ग्रहणं भिषक् ॥ लाघवे मनसस्तुष्टा वनु लोमङ्गतेऽनिले ॥ ५५७॥ सुविरिक्तं नरं ज्ञात्वा पाचनं पाययेन्निशि ॥ इन्द्रि-याणां बलं बुद्धेः प्रसादो वन्हि दीप्तिता ॥ ५५८ ॥

धातु स्थैर्य्यं वयस्थैर्य्यम्भवेद्रे च न सेवनात् ॥प्रता
प सेवां शीताम्बु स्नेहाभ्यङ्ग मजीर्णताम् ॥ ४४९ ॥
व्यायामं मैथुनञ्चैव न सेवेत विरेचितः ॥ शालि
षष्टि कमुद्गाद्यै र्यवागूम्भोजयेत् कृताम् ॥ ४५० ॥
जङ्गल्ल विष्किराणां वा रसैः शाल्योदनं हितम् ॥
हरिणैणा कुरङ्गर्ष्य वातायु मृगमात्वकाः ॥ ४५१ ॥

भा० हलकापन चित्तकी प्रसन्नता वातका अनुलोमन इस प्रकार के लक्षण होनेमें ॥ शीतल संग्राहि औषधी से वैद्य संग्रहण करे ॥ ४४७ ॥ अच्छी तरह दस्तहुवे मनुष्य को जानकर सायंकाल में पाचन पिलावे ॥ ॥ इन्द्रियोंका बल बुद्धि की स्वच्छता अग्निकी दीप्तिता ॥ ४४८ ॥ धातुकी स्थिरता वयको स्थिरता येह विरेचन के सेवन से होता है ॥ धूप सेवा शीतल जल चिकनाई तेलका लगाना अजीर्णता ॥ ४४९ ॥ कसरत मैथुन इनको विरेचन लियाहुवा न सेवन करे ॥ साठी चावल मूंग आदि से यवागू को बनाकर भोजन करावे ॥ ४५० ॥ हिरण अथवा बंदर आदियों के मांस रससे चावल हितहैं ॥ हिरण एण कुरंग वातायु मृग मात्वक । ५१

राजीवः पृषतश्चैव जङ्गलाः शरभादयः ॥
[अथ स्नेहवस्ति विधिः] वस्तिर्द्विधानु वासाख्यो नि
रुहश्च ततः परम् ॥ यः स्नेहो दीयते सः स्यादनु वा-
सननामकः ॥ ४५२ ॥ कषायक्षीर तैलै र्यो निरुहः
स निगद्यते ॥ वस्तिभिर्दीयते यस्मात्तस्मा द्वस्ति रि-
तिस्मृतः ॥ ४५३ ॥
(वस्तिभिः मृगादीनां मूत्राशयैः) तत्रानु वासना
ख्यो हि वस्तिर्यः सोऽत्र कथ्यते ॥ अनुवासन भेद
श्च मात्रा वस्ति रुदीरितः ॥ ४५४ ॥ पलद्वयन्तस्य

मात्रा तस्मादर्द्धापि वा भवेत् ॥ अनुवास्यस्तु रूक्षः स्यात्तीक्ष्णाग्निः केवलानिली ॥ ४५५ ॥ नानुवास्यस्तु कुष्ठी स्यान्मेही स्थूलस्तथोदरी ॥ नास्थाप्या नानुवास्याश्च जीर्णोन्माद तृड़ार्दिता: ॥ ४५६ ॥ शोय मूर्च्छारुचि भय श्वास कास क्षयातुरा: ॥ नेत्रं कार्य्यं सुवर्णादि धातुभिर्वंस वेणुभि: ॥ ४५७ ॥

भा० राजीव पृषत और शरभ येह मृगके भेदहैं इनका खुलासा मांस वर्ग में देखलेना ॥ [अनन्तर स्नेह वस्ति की विधि ।]

वस्ति याने झकना येह दो प्रकारकी होती हैं अनुवासन और निरूह जो तैलादिक दियेजाते हैं वोह अनुवासन नाम वस्ति है ॥ ४५२ ॥ काढ़ा दूध तेल इनसे जो दिया जाता है उसको निरूह कहते हैं ॥ जिस कारण वस्तिके द्वारा दिया जाता है इसवास्ते उसको वस्ति कहा है ॥ ४५३ ॥ वस्ति अर्थात् मूत्राशय ॥ उसमें अनुवासन नाम वस्ति उसको यहांपर कहते हैं ॥ अनुवासन का भेद मात्रा वस्ति कहीहै ॥ ४५४ ॥ उसकी मात्रा दो पलकी और आधी भी होती है रूखा तीक्ष्ण अग्नि वाला और केवल वातरोग वाला येह अनुवासन वस्तिके योग्यहैं ॥ ४५५ ॥ कुष्ठ रोग वाला प्रमेह वाला स्थूल तथा उदर रोगवाला ॥ येह आस्थापन वस्तिके योग्य नहीं हैं और न अनुवासन वस्ति के योग्य हैं ॥ और जीर्ण उन्माद तृषा इनसे पीड़ित ॥ ४५६ ॥ तथा सूजन मूर्च्छा अरुचि भय श्वास कास क्षय इनसे पीड़ित येहभी आस्थापन और अनुवासन के योग्य नहीं हैं ॥ नली सुवर्णादि धातुवों की अथवा बांस की करनी चाहिये ॥ ४५७ ॥

नले दन्ते विषाणाग्रे मणिभिर्वा विधीयते ॥

(नेत्रं नाड़ी तथा चोक्तं विश्वप्रकाशे)

नेत्रं मन्थगुणे वस्त्रे तरुमूले विलोचने ॥ नेत्र तन्त्रे च नाड्यां च नेत्रो नेतरि भेद्यव ॥ ४५९ ॥ शरद्वर्षां तु षड्‌वर्षात् यावन्मानं षडङ्गुलम् ॥ ततो द्वा

दश कं यावन्मानं स्यादष्ट सम्मितम् ॥ ४५९॥ ततः
परं द्वादशभि रङ्गुलैर्नेत्र दीर्घता ॥ मुखच्छिद्रं कला-
याभं च्छिद्रं कोलास्थि सन्निभम् ॥ ४६०॥ यथा स-
ङ्ख्यं भवेन्नेत्रं श्लक्ष्णं गोपुच्छ सन्निभम् ॥ गोपुच्छ
सन्निभं मूले स्थूलं तस्मात् क्रमात्कृशम् ॥ ४६१॥
(क) मुखछिद्रादि प्रमाणं नेत्रं क्रमेण षड्वर्षा यद्वा द
शवर्षाय तदूर्द्ध वर्षाय ज्ञेयम् ॥

आतुराङ्गुष्ठ मानेन मूले स्थूलं विधीयते ॥ कनि-
ष्ठिका परीणाह मग्रे च गुटिकामुखम् ॥ ४६२॥
(परिणाहोऽत्र स्थौल्यम्)
तन्मूले कर्णिके द्वे च कार्य्ये भागाच्चतुर्थकात्॥
(कर्णिका गवादि कर्णवत्) योजयेत्तत्र वस्तिञ्च
बन्धद्वय विधानतः ॥ मृगाज शूकर गवां महिष-
स्यापि वा भवेत् ॥ (वस्तिरिति शेषः)

भा० मर्कट दांत सींग अथवा मणि इनकी बनावे ॥ नेत्र अर्थात् नली
इस प्रकार कहाहै विश्व प्रकाश में ॥ मथानी की रस्सी वस्त्र दरखत की ज-
ड़ आंख ॥ आंखों की पट्टी नली और पेशावाह इतने अर्थ नेत्र शब्द के हैं ऐसा
विश्व प्रकाशमें कहाहै ॥ ४५८ ॥ एक बरस से छ बरस तक छ अंगुल नलीका
प्रमाण कहाहै ॥ उसके ऊपर बारह बरसतक आठ अंगुलकी कहीहै ॥ ४५९
उसके ऊपर बारह अंगुलकी लंबाई होनी चाहिये नली की ॥ मुखका छिद्र म
टरकी बराबर या जरबेरी के बराबर ॥ यथा संख्य नेत्र साफ न लगावदुम हो-
वे ॥ (क) जड़में मोटा उसक्रमसे पतला ॥ मुखके छिद्रादिक काप्र
माण नाड़ीके क्रमसे छ बरसवालेको बारह बरसवाले को और उसके ऊपर
बरस वालों को जानना चाहिये ॥ रोगीके अंगूठे के प्रमाणसे जड़में स्थूल कहाहै

और चिटली उंगली के बराबर मोटी आगे और मुख गोली के समान होनी चाहिये ॥ ४६२॥ (परिणाह यहांपर मोटाई। उसके मूलमें दोकान चौथाई भाग से करने चाहियें। गायके कानके समान उसमें सरके फांसकी तरह से मूत्रकी थैली लगावे। हरिन बकरा सूअर बैल और भैंसकी भी होवे ॥
मूत्रकी थैली येह शोष है ॥

मूत्रकोशस्य वस्तिस्तु तदलाभे तु चर्मणः॥ कषायरक्तः स मृदुर्वस्तिः स्निग्धो दृढो हितः॥ ४६२॥ व्रणवस्तेस्तु नेत्रं स्यात् श्लक्ष्णमष्टाङ्गुलोन्मितम्॥ मुद्गछिद्रं गृध्रपक्षनलिका परिणाहि च॥ ४६३॥ शरीरोपचयं वर्णं बलमारोग्यमायुषः॥ कुरुते परिवृद्धिञ्च वस्तिः सम्यगुपासितः॥ ४६४॥ दिवा शीते वसन्ते च स्नेहवस्तिः प्रदीयते॥ ग्रीष्म वर्षा शरत्काले रात्रौ स्यादनुवासनम्॥ ४६७॥ नचातिस्निग्धमशनं भोजयित्वा नु वासयेत्॥ मदं मूर्च्छाञ्च जनयेद्द्विधा स्नेहः प्रयोजितः॥ ४६६॥

भा० मूत्रकी थैली उसके अभावमें चमड़े की थैली॥ स्याही लाल मुलायम चिकनी मजबूत ऐसी वस्ति अच्छी होती है॥ ४६२॥ व्रण वस्ति की नली साफ आठ अंगुलकी होतीहै और मूङ्गके बराबर छिद्र तथा गिद्धके परकी नली बराबर मोटाई कहीहै॥ ४६३॥ अच्छी तरह वस्ति सेवन की हुई शरीर की पुष्टता बल वर्ण आरोग्य और आयु इनको करती है और तैय्यारी को भी करती है॥ ४६४॥ दिन और शीतकालऋतु तथा वसन्त में स्नेह वस्ति दीजाती है॥ ग्रीष्म वर्षा और शरत् काल तथा रात इनमें अनुवासन वस्ति होती है॥ ९६५॥ अति स्निग्ध भोजन को खिलाकर अनुवासन न करावे॥ दोबार स्नेह दियाहुवा मद और मूर्च्छा को करताहै॥ ४६६॥

(द्विधा भोजने वस्तौ च)

रूक्षं भुक्तवतो ह्यन्नं बलं वर्णञ्च ह्रापयेत् ॥ युक्त
स्नेहमतो जन्तुं भोजयित्वानुवासयेत् ॥ ४६७ ॥
(युक्तस्नेहं यथोचित स्नेहं भोज्यं भोजयित्वेत्यर्थः)
हीनमात्रा वुभौ वस्ती नातिकार्य्यकरौ स्मृतौ ॥ अ-
तिमात्रौ तथा नाह क्लमातीसार कारकौ ॥ ४६८ ॥
(उभौ वस्ती अनुवासन निरुहाख्यौ)

भा० भोजन में और वस्ती में। रूक्ष अत्यन्त भोजन करने वाले के बल और वर्ण को घटाता है ॥ उचित स्नेह वाले मनुष्य को भोजन कराके अनुवासन करावे ॥ ४६७ ॥ यथोचित स्नेह भोज्यको भोजन कराके। हीन मात्र दोनो वस्ति अतिकार्य्य करनेवाली नहीं कहीहै ॥ तथा अतिमात्रदोनों वस्ति अफारा क्लम अतीसार इनको करने वाली हैं ॥ ४६८ ॥
(दोनों वस्ति अर्थात् अनुवासन निरुह)

उत्तमा स्यात्पलैः षड्भिर्मध्यमा स्यात्पलैस्त्रिभिः।
पलार्द्धेन हीना स्यादुक्ता मात्रानुवासने ॥ ४६९ ॥
शताह्वा सैन्धवाभ्याञ्च देयं स्नेहेच चूर्णकम् ॥
तन्मात्रोत्तम मध्यान्त्या षट्चतुर्द्वय माषकैः ॥४७०॥
विरेचना त्सप्तरात्रे गते जातबलाय च ॥ भुक्तान्ना
यानुवास्याथ वस्तिर्देयोऽनुवासनः ॥ ४७१ ॥ अथा
नुवास्यं स्वभ्यक्त मुष्णाम्बु स्वेदितं शनैः ॥ भोज
यित्वा यथा शास्त्रं कृतञ्च ङ्क्रमणं नरः ॥ ४७२ ॥

भा० छ पलकी उत्तम तीन पलकी मध्यम और एक पलकी हीन यह अनुवासन में मात्रा कही है ॥ ४६९ ॥ सोंफ और सेन्धा इनसे स्नेहमें चूर्ण देना चाहिये ॥ उसकी मात्रा उत्तम मध्यम हीन छ चार और दो मासे से होती है ॥ ४७० ॥ विरेचन से सात दिन बीतने पर बल होवे को। भोजन कराके अनुवासन के योग्य

को अनुवासन वस्ति देनी चाहिये ॥ ४७१॥ अनन्तर स्वभ्यक्त गरम जलसे स्नान किये हुवे अनुवासन के योग्यको भोजन कराके शास्त्रके अनुसार ट हलाके उसके अनन्तर ॥ ४७२॥

उत्सृष्टानिल विण्मूत्रं योजयेत् स्नेह वस्तिना ॥

(उष्णाम्बु स्वेदितम् । उष्णाम्बुना स्नपितम्)

सुप्तस्य वामपार्श्वेन वामजङ्घा प्रसारिणः ॥ कुञ्चितापर जङ्घस्य नेत्रं स्निग्धे गुदे न्यसेत ॥ ४७३॥ बद्धं वस्ति मुखं सूत्रे वामहस्तेन धारयेत् ॥ पीड़ये द्दक्षिणेनैव मध्यवेगेन धीरधीः ॥ ४७४॥ जृम्भाकासक्षवादींश्च वस्तिकाले न कारयेत् ॥ त्रिंशन्मात्रामितः कालः प्रोक्तो वस्तेस्तु पीड़ने ॥ ४७५॥ ततः प्रणिहिते स्नेहे उत्तानो वाक् शतं भवेत् ॥ स्वजानुनः करावर्त्तं कुर्य्याच्छोटिकया पुनः ॥ ४७६॥ एषा मात्रा भवेदेका सर्वत्रैवेष निश्चयः ॥

भा० वात मल मूत्र करचुके हुवेको स्नेह वस्ति वैद्य देवे ॥

(गरम जलसे स्नान कराये हुवे को।) बायें करवट लेटे हुवे ॥ और बांई जांघ पसारे हुवे ॥ तथा दहिनी जांघको सिकोडे हुवे की गुदामें चिकनाई लगाकर नाड़ी को डाले ॥ ४७३॥ डोर से बन्धे हुवे वस्ति मुखको बायें हाथ से पकडे ॥ धीर बुद्धिवाला मनुष्य मध्य वेगसे दहने हाथ से दबावे ॥ ४७४॥ वस्ति समय में जंभाई खांसी छींक आदि न करावे ॥ तीस मात्रा काल वस्तिके पीडन में कहा है ॥ ४७५॥ उसके अनन्तर प्रणिहित स्नेहमें उत्तान सौ की गिनती तक रहै ॥ अपने घुटनेपर हाथ फेरके चुटकी बजावे और फिरसे फेरै ॥ ४७६॥

यह एक मात्रा होनी है सब जगह येह निश्चय है ॥

निमिषो न्मेषणं पुंसा मङ्गुल्या च्छोटिकाथवा ॥ ४७७ ॥ गुर्व्व क्षरो च्चारणं वा स्यान्मात्रेयं स्मृता बुधैः ॥ प्रसारितैः सर्व्व गात्रै र्यथा वीर्य्यं प्रसर्पति ॥ ४७८ ॥

(यथा वीर्य्यं स्नेहादि)

ताडये त्तलयो रेन न्त्रींस्त्रीन्वारान् शनैः शनैः ॥ स्फिजो श्चैव तथा श्रोणीं शय्याञ्चैवोत् क्षिपे त्ततः ॥ ४७९ ॥ स्फिजो श्चैनं स्वपाणिभ्यां पूर्ववत्ताडये द्बुधः ॥ शय्याञ्च पदतस्तस्य त्रीन् वारानुत् क्षिपे त्ततः ॥ ४८० ॥ जाते विधाने तु ततः कुर्य्या न्निद्रां यथा सुखम् ॥ सानिलः सपुरीषश्च स्नेहः प्रत्येति यस्य तु ॥ ४८१ ॥ उपद्रवं विना शीघ्रं स सम्यगनु वासितः ॥

(उपद्रवस्थाने तुष चोषाविति सुश्रुते पाठः)

भा० मनुष्यों के नेत्रों का निमिष और उन्मेष अथवा अंगुली से चुटकी ॥ ४७७ ॥ वा गुरु अक्षर का उच्चारण इसको मात्रा पंडितों ने कहीहै ॥ सब गात्र फैलाने से वीर्य्य के अनुसार फैल जाता है ॥ ४७८ ॥ स्नेहादि । इसको तलुवे में धीरे २ तीन २ वार चोट देवे ॥ और चूतड़ तथा कमर इनमें भी धीरे २ थपेड़ देवे उसके अनन्तर खाटको पावोंकी तरफ से ऊंची करे ॥ ४७९ ॥ बुद्धीवान अपने हाथोंसे पूर्ववत् चूतड़ों में थपेड़ देवे ॥ उसके अनन्तर उसकी खाट को पांयने की तरफ से तीनवार उठावे ॥ ४८० ॥ विधान के होनेपर उसके अनन्तर यथा सुख निद्रा करे ॥ जिसके वात और मलके सहित स्नेह विना उपद्रव के शीघ्र लौट आताहै वोह अच्छा अनुवासन किया हुवा है ॥ (उपद्रव की जगहमें तुष चोष इस प्रकार सुश्रुत में पाठ है)

जीर्णान्न मथ सायान्हे स्नेहे प्रत्यागते पुनः ॥ लघ्वन्नं भोजयेत्कामं दीप्ताग्निस्तु नरोयदि ॥ ४८२ ॥

अनुवासिनाथ दातव्य मितरे ऽन्हि सुखोदकम् ॥ धा
न्य शुण्ठी कषायं वा स्नेह व्यापत्ति नाशनम् ॥ ४८३

(सुखोदक मुष्णोदकं व्यापत्ति र्व्याधिः)

अनेन विधिना षड्वा सप्त वाष्टौ नवापि वा ॥ वि
धेया व स्तयस्तेषा मन्ते चैव निरूहणम् ॥ ४८४॥
दत्तस्तु प्रथमो वस्तिः स्नेहयेद् वस्ति वङ्क्षणौ ॥
सम्यग्दत्तो द्वितीयस्तु मूर्द्धस्थ मनिलं जयेत् ॥
॥४८५॥ बलं वर्णञ्च जनये त्तृतीयस्तु प्रयोजितः।
चतुर्थ पञ्चमौ दत्तौ स्नेहयेतां रसासृजौ ॥ ४८६॥
षष्ठो मांसं स्नेहयति सप्तमो मेद एवच ॥ अष्टमो
नवमश्चापि मज्जानञ्च यथा क्रमम् ॥ ४८७॥

(यथा क्रम मिति वचना दष्टमोऽस्थि स्नेहयेत्)

भा० अनन्तर फिरसे स्नेह लौट आने पर सायंकाल में जीर्ण। और हलके अन्नको दीप्ताग्निवाला मनुष्य भोजन करे ॥ ४८२॥ अनुवासिन को दूसरे दिन सील गरम जल देना चाहिये ॥ अथवा धनियां सोठ इनका काढ़ा देवे येह स्नेह व्याधिका नाशक है ॥ ४८३॥ सील गरम जल। रोग। इस विधिसे छ सात आठ अथवा नौ ॥ वस्ति करनी चाहिये उनके अखीर में निरूहण देना चाहिये ॥ ४८४ ॥ प्रथम दीहुई वस्ति पेडू और वंक्षण को तर करती है ॥ अच्छे पकार दी हुई दूसरी वस्ति ऊपर की वात को जीतती है ॥ ४८५॥ और तीसरी दीहुई वल वर्ण को करती है ॥ चौथी पांचवी दीहुई रस और रक्त को तर करतीहै ॥ ४८६॥ छठी मांस को स्नेह करती है। और सातवी मेद् को। अष्टम नवम क्रमके अनु सार तर करती है ॥ ॥ ४८७॥(यथा क्रम इस वचन से आठवीं अस्थि को चिकनी करती है

एवं शुक्रगता न्दोषान् द्विगुणः साधु साधयेत् ॥

[अष्टादशाधिक वस्तिः]

अष्टादशाष्टदशकान् वस्तीनां यो निषेवते ॥ स कुञ्जरबलोऽश्वस्य जवतुल्योऽमरप्रभः ॥ ४८८ ॥ रूक्षाय बहुवाताय स्नेहवस्तिं दिने दिने ॥ दद्याद्वैद्यस्तथान्येषामग्न्याबाधभयात् त्र्यहात् ॥ ४८९ ॥ स्नेहोऽल्पमात्रो रूक्षाणां दीर्घकालमनत्ययः ॥ (अनत्ययः । अबाधः) तथा निरूहः स्निग्धानामल्पमात्रः प्रशस्यते ॥ अथ वा यस्य तत्कालं स्नेहो निर्याति केवलः ॥ ४९० ॥ तस्याप्यल्पतरो देयो न हि स्निग्धेऽवतिष्ठते ॥

भा० इस प्रकार पुरुषगत दोषोंको दुगना अच्छा साधन करे ॥ अठारह से अधिक वस्ति । जो छत्तीस वस्ति सेवन करताहै । वोह गजके समान बल वाला और अश्वके तुल्य बल देवता के समान कान्ति युक्त होताहै ॥ ४८८ ॥ रूक्ष और बहुत वात वाले को स्नेह वस्ति प्रतिदिन देवे ॥ तथा वैद्य औरों की अग्नि बाधा भयसे तीसरे दिन देवे ॥ ४८९ ॥ रूक्षों को अल्पमात्र स्नेह बहुत कालतक अदोष होताहै ॥ वैसेहि स्निग्धोंको निरूह अल्पमात्र प्रशस्तहै ॥ अथवा जिसके केवल स्नेह तत्काल निकलता है ॥ ४९० ॥ उसको बहुत थोड़ा देना चाहिये स्निग्धके न रहनेमें ॥

(अवतिष्ठते दत्तः स्नेह इति शेषः)

अशुद्धस्य मलोन्मिश्रः स्नेहो नैति यदा पुनः ॥ तदाङ्गसदनाध्माने शूलं श्वासश्च जायते ॥ ४९१ ॥ पक्वाशये गुरुत्वञ्च तत्र दद्यान्निरूहणम् ॥ तीक्ष्णं तीक्ष्णौषधैर्युक्तं फलवर्तिं तथापि वा ॥ ४९२ ॥ यथानुलोमनो वायुर्मलः स्नेहश्च जायते ॥ तथा विरेचनं दद्यात्ती

तणं नस्यञ्च शस्यते ॥ ४६३॥ यस्य नोपद्रवं कुर्य्यात् स्नेह वस्तिरनिः सृतः ॥ सर्व्वोऽल्पो व्यावृतो रौक्ष्या दुपेक्ष्यः स विजानता ॥ ४६४॥ अनाया नन्त्वहोरात्रे स्नेहं संशोधनै र्हरेत् ॥ स्नेह वस्तावनायाते नान्यः स्नेहो विधीयते ॥ ४६५॥ गुडूच्येरण्ड पूतीक भार्गी वृषकरौ हिषम ॥ शतावरी सहचरं काकनासां पलोन्मिताम् ॥ ४६६॥ यवमाषातसी कोल कुलत्थान् प्रसृतोन्मितान् ॥ चतुर्द्रोणेऽम्भसः पक्त्वा द्रोण शेषेण तेन च ॥ ४६७॥ पचेत्तैलाढकं सर्वै जीवनीयैः पलोन्मितैः ॥ अनुवासन मेतद्धि सर्व वात विकारनुत् ॥४६८

भा० दीया हुवा स्नेह यह शेष है। जब फिरसे अशुद्ध का मलसे मिला हुवा स्नेह नहीं निकलता ॥ तब शरीरमें पीडा आध्मान शूल और श्वास यह होते हैं ॥ ४६१॥ पक्वाशय में भारीपन होताहै उसमें निरूहण देवे ॥ तीक्ष्ण औषधों से युक्त तीक्ष्ण फल वर्त्ति अर्थात् गुदामें वत्ती देवे अनुलोमन होवे अथवा ॥ ४६२॥ जैसे वायु मल और स्नेह अनुलोम न होवे ॥ वैसे तीक्ष्ण विरेचन देवे और नासभी प्रशस्त है ॥ ४६३॥ जिसकी न निकली हुई स्नेह वस्ति उपद्रवको नहीं करती ॥ वो सर्व था थोडा रूक्षता के कारण व्यावृत्त होता है इसवास्ते जाननेवाले के द्वारा उपेक्षा करने योग्य है ॥ ४६४॥ जो स्नेह दिन रात में भी न किले उस्को संशोधन से निकाले ॥ स्नेह वस्तिके न निकलने में और स्नेह न विधान करे ॥ ४६५॥ गिलोय अंडी कांज भारंगी वांसा रामकपूर ॥ सतावर कटसरैया कौवाठोडी इनको एक पल लेवे ॥ ४६६॥ और जव उडद अलसी झरबेरी कुरथी इनको दो २ पल लेवे ॥ चार द्रोण जलमे पकाकर चौथाई बाकी रहै तव उसे ॥ ४६७॥ सब जीवनीयोंकी पल प्रमाण औषधिके साथ चार सेर तेल पकावे ॥ यह अनुवासन सब वात रोगोंकी नाशक है ॥ ४६८॥

(क) पूतीकः। करञ्जः। रोहिषं तृणं सुगन्धतृण विशेषः।

काकनासा। कौआठोठी। मस्तृतम्। पलद्वयम्। षोढ़ा सप्त व्यापदस्तु जायते वस्तिकर्म्मणः॥ दूषितानू समुदायेन तांश्चिकित्स्याच्चु सुश्रुतान्॥ ४९९॥ समुदायेन समुचित नेत्रादि सामग्र्या। पानाहार विहाराश्च परिहाराश्च कृत्स्नशः॥ स्नेह पान समाः कार्य्या नात्र कार्य्या विचारणा॥

भा० (क) करंज। रामकपूर। कौवाठोढ़ी। दोपल। वस्ति कर्म्म से छः सात दोष होते हैं॥ समुदाय करके दूषित उनकी सुश्रुत से चिकित्सा करनी चाहिये॥ ४९९॥ समुचित नाड़ी आदि सामग्री से। पान आहार विहार और परिहार येह सम्पूर्ण स्नेह पान के समान करना चाहिये इसमें कोई विचार न करना चाहिये॥

[अथ निरुहवस्ति विधिः।]

निरुह वस्ति बहुधा भिद्यते कारणान्तरैः॥ नैरेव तस्य नामानि धृतानि मुनि पुङ्गवैः॥ ५००॥

(कारणान्तरैः। समवायि कारण भेदैः)

निरुहस्या परन्नाम प्रोक्त मास्थापनं बुधैः॥ स्वस्थाने स्थापना दोष धातूनां स्थापनं मतम्॥ ५०१॥

निरुहस्य प्रमाणं तु प्रस्थ पादोत्तरं परम्॥ मध्यमं प्रस्थ मुद्दिष्टं हीनञ्च कुड़वास्त्रयः॥ ५०२॥

(परं श्रेष्ठम्) अति स्निग्धोऽक्लिष्ट दोषः क्षतः क्षीणः कृशस्तथा॥ (अक्लिष्ट दोषः) अदत्तोऽन्न लोशन इति यावत् तत्तोरष्कः उरः क्षतवान्॥ आध्मान छर्दि हिक्कार्शः कास श्वास प्रपीड़ितः।

भा॰ अनन्तर निरूह वस्ति की विधि। निरूह वस्ति कारणान्तरोंसे अनेक प्रकारकी है॥ उन्हीं कारणों से उनके नाम मुनियों ने कियेहैं॥ ५०० ॥ सम वायिकारणोंभेद से। बुद्धिवानोंने निरूह का नाम आस्थापन कहाहै॥ दोष धातुवोंका अपनें स्थानमें स्थापन होने से स्थापन कहा है॥ ५०१॥ निरूहका परम प्रमाण सवासेर कहाहै॥ और मध्यम सेरभर कहाहै॥ तथा हीन तीनपाव कहाहै॥ ५०२॥ अति स्निग्ध और अक्लिष्ट दोष क्षत क्षीण तथा कृश॥ न दियाहुवा उत्क्लेशन। उर क्षत वाला। आध्मान वमन हिचकी बवासीर कास श्वाससे पीड़ित।

गुद शोफातीसारार्त्तो विसूची कुष्ठ संयुत:॥ ५०३॥ गर्भिणी मधुमेही च नास्थाप्यश्च जलोदरी॥ वात व्याधा वुदावर्त्ते बाधासृग्विषमज्वरे॥ ५०४॥ मूर्च्छा तृष्णोदरा नाह मूत्रकृच्छ्राश्मरीषु च॥ वृद्ध्यसृग्दर मन्दाग्नि प्रमेहेषु निरूहणम्॥ ५०५॥ शूलेऽम्ल पित्ते हृद्रोगे योजयेद्विधिवद् बुध:॥ उत्सृष्टा निलविण मूत्रं स्निग्धं स्विन्नमभोजनम्॥ ५०६ मध्याह्ने गृहमध्ये च यथायोग्यं निरूहयेत्॥

भा॰ और गुद शोफ अतीसार इनसे पीड़ित विसूची कुष्ठ से युक्त॥ ५०३॥ गर्भिणी मधुमेह वाला और जलोदरी येह आस्थापन योग्य नहीं हैं॥ और वात रोग में उदावर्त्त में वद रक्त विषम ज्वर इनमें॥ ५०४॥ मूर्च्छा तृषा उदर आनाह मूत्रकृच्छ्र पथरी इनमें भि॥ अंडवृद्धि रक्त प्रदर मन्दाग्नि प्रमेह इनमें निरूहण देवे॥ ५०५॥ शूल अम्ल पित्त हृद्रोग। इनमें भी विधि के अनुसार योजना करे॥ अधोवात मल मूत्र करचुके ऊवे स्निग्ध और स्विन्न तथा भोजन न किये को॥ ५०६॥ मध्यान्ह में घरके बीच यथा योग्य निरूहण करे॥

(स्निग्धम्। स्वभ्यक्तम्। स्विन्नम्। उष्णाम्बु स्नापितम्) स्नेह वस्ति विधानेन बुध:

कुर्य्यान्निरूहणम् ॥ जाते निरूहे च ततो भवेदुत्कट
कासनः ॥ ५०७ ॥ तिष्ठेन्मुहूर्त मात्रन्तु निरूहा गमने
च्छया ॥ अत्र मुहूर्त मात्र शब्देनैतदपि बोधितम्
निरूह प्रत्यागमनकालो मुहूर्त मात्रः ।
अनायातं मुहूर्ते तु निरूहं शोधनैर्हरेत् ॥ निरूहै
रेव मतिमान् क्षार मूत्राम्ल सैन्धवैः ॥ ५०८ ॥

भा० तेल लगायाहुवा । गरम जलसे स्नान किया हुवा । पंडित स्नेह वस्तिकी विधिसे निरूहण करे ॥ निरूह होनेपर उकड़ू होके ॥ ५०७ ॥ दो घड़ी ठहरे निरूहके आनेकी इच्छासे । यहां पर मुहूर्त मात्र शब्द से यहभी जनाया है । निरूह के लौट आनेका काल मुहूर्त मात्र है ॥ दो घड़ीमें निरूह न आवेतो शोधन से निकाले । बुद्धिवान् क्षार मूत्र अम्ल सैन्धव इनसे युक्त निरूह सेही शोधनकरे ॥ ५०८ ॥

यस्य क्रमेण गच्छन्ति विट् पित्त कफ वायवः ॥
लाघवं चोपजायेत सुनिरूहं तमादिशेत् ॥ ५०९ ॥
यस्य स्याद् वस्ति वव्हाल्प वेगोहीन मलानिलः ॥
मूर्च्छार्त्ति जाड्या रुचिमान् दुर्निरूहं तमादिशेत् ॥
॥ ५१० ॥ विविक्तता मनस्तुष्टिः स्निग्धता व्याधि निग्र
हः । आस्थापने स्नेहवस्त्योः सम्यग्दाने तु लक्षणम् ॥
५११ ॥ (विविक्तता । दत्तौषध निःसरणम्)
अनेन विधिना युञ्ज्यान्निरूहं वस्तिदानवित् ॥

भा० जिसके क्रमसे मल पित्त कफ वायु निकलतेहैं । और हलका पन होताहै उसको निरूह कहतेहैं । ५०९ ॥ वद्धन अथवा अल्प वेगहोताहै ॥ और हीन मलवान होताहै । तथा मूर्च्छा पीड़ा जाड्य अरुचि युक्त उस्को दुर्निरूह जाने ॥ ५१० ॥ अलग होतो मनकी प्रसन्नता

स्निग्धता व्याधि निग्रह ॥ आस्थापन और स्नेहवस्ति के अच्छे देनेमें येह लक्षण हैं। हैं ॥ ५११॥ दिये हुवे औषधका निकलना। वस्तिदान को जाननेवाला इस विधिसे निरूहको योजना करे ॥

द्वितीयं वा तृतीयं वा चतुर्थं वा यथोचितम् ॥ ५१२॥ स स्नेह एकः पवने पित्ते द्वौ पयसा सह ॥ कषाय कटु मूत्राद्या कफे तूष्णा स्त्रयो हिताः ॥ ५१३॥ पित्त श्लेष्मा निलाविष्टं क्षीर यूष रसैः क्रमात् ॥ निरूहं भोजयित्वा च ततस्तमनु वासयेत् ॥ ५१४॥ सुकुमारस्य वृद्धस्य बालस्य च मृदु र्हितः ॥ वस्तिस्तीक्ष्णः मयुक्तस्तु तेषां हन्या द्बलायुषी ॥ ५१५॥ दद्यादुत्क्लेशनं पूर्व्वं मध्यं दोष हरन्ततः ॥ पश्चात्सं शमनीयञ्च दद्या द्वस्तिं विचक्षणः ॥ ५१६॥ एरण्डबीजं मधुकं पिप्पली सैन्धवं वचा ॥ हवुषा फल कल्कश्च वस्तिरुत् क्लेशनः स्मृतः ॥ ५१७॥ इत्युत्क्लेशन वस्तिः॥

भा० दूसरी तीसरी अथवा चौथी यथोचित योजना करे ॥ ५१२॥ वोह स्नेह वातमें एक पित्तमें दो पयके साथ ॥ और कफमें उष्ण कषाय कटु मूत्र आदिसे तीन हितहैं ॥ ५१३॥ पित्त कफ वात इन करके आविष्ट को दूध जूस रस इनसे क्रमके साथ ॥ भोजन करा कर निरूह देवे उसके अनन्तर अनुवासन वस्ति देवे ॥ ५१४॥ सुकुमार बालक वृद्ध इनको मृदु वस्ति हितहै ॥ तीक्ष्ण वस्ति देने से उनका बल आयु नाश होता है ॥ ५१५॥ पहिले उत्क्लेशन देवे। मध्यमें दो पहर उसके ॥ पीछे संशमनीय देवे वस्ति चतुर ॥ ५१६॥ अंडीकी जड़ महुवा पीपल सेन्धा वच ॥ हाउ वेरके फलका कल्क यह। उत्क्लेशन वस्ति कही है ॥ ५१७॥ इति उत्क्लेशन वस्ति॥

शताह्वा मधुकं बिल्वं कौटजं फल मेवच ॥ स काञ्जि

कः सगोमूत्रो वस्तिर्दोषहरः स्मृतः ॥ ५१८ ॥

[इति दोषहर वस्तिः]

प्रियङ्गुर्मधुकं मुस्ता तथैवच रसाञ्जनम् ॥ सक्षीरः
पास्येत वस्ति दोषाणां शमनः स्मृतः ॥ ५१९ ॥

[इति शमन वस्तिः]

त्रिफला क्वाथ गोमूत्र क्षौद्र क्षार समायुताः ॥ ऊषका-
दि प्रतीवापै वस्तयोः लेखनाः स्मृताः ॥ ५२० ॥
(ऊषकादि प्रतीवापाः। ऊषकादि गण विशेष चूर्ण
प्रक्षेपाः) [इति लेखनवस्तयः]
वृंहण द्रव्य निष्क्वाथैः कल्कै मधुरकैर्युताः ॥ सर्पिर्मांस
रसोपेता वस्तयो वृंहणाः स्मृताः ॥ ५२१ ॥ इति वृंहण व-
स्तयः] वदर्य्यैरावती शेलु शाल्मली पुष्पजाङ्कुराः ॥

भा॰ सौंफ मङ्कुवा वेल इन्द्रजव ॥ कांजी और गोमूत्र के साथ यह वस्ति दोष हर कही है ॥ ५१८ ॥ (इति दोषहर वस्ति)॥ प्रियंगु मङ्कुवा नागर मोथा वैसे ही रसोत ॥ दूधके सहित वस्ति प्रशस्त है। वोह दोषोंकी शमन कही है ॥ ५१९ (इति शमन वस्ति) ॥ त्रिफला का काढ़ा गोमूत्र मधु जवाखार इनसे युक्त ऊषकादि प्रतीवाप से लेखन वस्ति कही है ॥ ५२० ॥ ऊषकादि गण विशेषके चूर्णको डालना ॥ (इति लेखनवस्ति ॥) वृंहण द्रव्यके काढ़े में मधु करके कल्क से युक्त ॥ और घृत मांस रस से युक्त वृंहण वस्ति कही है ॥ ५२१ ॥ (इति वृंहण वस्ति।) बेर वटपत्री लिसोढ़ा सेमल के फूलोंके अङ्कुर ॥

(ऐरावती। नारङ्गी। शेलुः। बङ्गआर।)

क्षीर सिद्धाः क्षौद्रयुक्ता नाम्ना पिच्छिल संज्ञिताः ॥
अजोरभ्रैण रुधिरै र्युक्ता देया विचक्षणैः ॥ ५२२ ॥

(अजश्छागः। उरभ्रोमेषः। एणः कृष्णमृगः।)
मात्रा पिच्छिलवस्तीनां पले द्वादश भिमता॥
(इति पिच्छिलवस्तयः।) दत्त्वादौ सैन्धवस्याक्षं मधुनः
प्रसृति द्वयम् ॥ ५२३॥

भा॰ नारङ्गी। बड़बार। दूधसे सिद्ध किये मधुके युक्त येह पिच्छिल नाम वस्ति है॥ बकरा मेढ़ा काला हिरन इनके रुधिर से युक्त चतुर के द्वारा देनी चाहियें॥ ५२२॥ (बकरा मेढ़ा कालाहिरन। पिच्छिल वस्ति की मात्रा बारह पल कही है॥ (इति पिच्छिल वस्ति)) ॥ दो पल मधु और एक तोला मधु पहिले देकर ॥ ५२३॥

विनिर्मथ्य ततो दद्यात् स्नेहस्य प्रसृति त्रयम्॥ एकी
भूते ततः स्नेहे कल्कस्य प्रसृति क्षिपेत्॥ ५२४॥
संमूर्च्छिते कषायन्तु चतुः प्रसृति सम्मितम्॥ गृ
ह्णीयाच्च तदा वाथ मन्ते द्विप्रसृतोन्मितम्॥ ५२५॥
लिप्त्वा विमथ्य दद्याच्च निरुहं कुशलो भिषक्॥
एवं प्रकल्पितो वस्तिर्द्वादश प्रसृति र्भवेत्॥ ५२६॥
वाते चतुष्पलं क्षौद्रं दद्यात् स्नेहस्य षट् पलम्॥ पि
त्ते चतुष्पलं क्षौद्रं स्नेहं दद्यात्पलत्रयम्॥ ५२७॥
कफे तु षट्पलं क्षौद्रं दिपेत् स्नेहं चतुष्पलम्॥

भा॰ मथकर उसके अनन्तर स्नेहको छ पल देवे॥ उसके अनन्तर स्नेह के मिलजाने पर दोपल कल्क डाले॥ ५२४॥ संमूर्च्छित होने पर कषाय आठ पल प्रमाण लेवे॥ अथ वातके अन्तमें इसको चार पल प्रमाण॥ ५२५॥ डालकर और मथके कुशल वैद्य निरूह को देवे॥ इस प्रकार कल्पना की हुई वस्ति बारह प्रसृति होती है॥ ५२६॥ वातमें चार पल मधु और स्नेह छ पल देवे॥ तथा पित्तमें चारपल मधु और स्नेह तीन पल देवे।

॥ ५२७॥ कफ में छं पल मधुस्नेह चार पल डाले ॥ इति निरुह वस्तिकी मात्रा

एरराड क्वाथ तुल्यांशं मधु तैलं पलाष्टकम ॥ शतपुष्पा पलार्द्धेन सैन्धवार्द्धे न संयुतम् ॥ ५२८॥ मधु तैलक संज्ञोऽयं वस्तिर्दारु विलोडितः॥ मेदो गुल्म कृमि प्लीह मलोदावर्त्त नाशनः॥ ५२९॥ बल वर्ण कर श्चै व वृष्यो दीपन बृंहणः॥ [मधु तैलक वस्तिः।] क्षौद्राज्य क्षीरं तैलानां प्रसृतं प्रसृतं भवेत् ॥ हवुषा सैन्धवा क्षांशो वस्तिः स्याद् यापनः परः॥ ५३०॥

[इति पाचन सारकः यापनवस्तिः]

भा० अंडी के काढ़ेके समान मधु तेल आठ पल॥ सौंफ आधा पल सैन्धव एक तोला इनसे युक्त ॥ ५२८॥ मधु तैलक नाम येह वस्ति लकडीसे विलोइ हुई ॥ मेद वायु गोला कृमि पिलही मल उदावर्त्त इनको नाशक है ॥ ५२९॥ और बल वर्ण को करनेवाला वृष्य दीपन पुष्टहे ॥ मधु तैलक वस्ति ॥ मधु घृत दूध तेल यह दो दो पल होवे ॥ हाउ बेर सैन्धव येह एक एक तोला येह पाचन वस्ति है ॥ ५३०॥ [इति पाचन सारक यापन वस्ति]

एरराड मूल निष्क्वाथो मधु तैलं स सैन्धवम् ॥ एष युक्त रथोवस्तिः सबचा पिप्पली फलः॥ ५३१॥ [युक्त रथो वस्तिः।] पञ्च मूलस्य निष्क्वाथे स्तैलं मा गधिका मधु ॥ ससैन्धवः सयष्ट्याह्वः सिद्ध वस्ति रिति स्मृतः॥ ५३२॥ ॥ इति सिद्ध वस्तिः।]

स्नानमुष्णो दकैः कुर्य्या द्दिवा स्वप्न मजीर्णताम् ॥ वर्जयेदपरं सर्व माचरेत् स्नेह वस्तिवत् ॥ ५३३॥

भा० अंडीकी जड़का काढ़ा मधु तेल और सैन्धवके सहित ॥ और वच पीपल के सहित येह युक्तरथो वस्तिहै ॥ ५३१॥ इति युक्तरथो वस्ति ॥]
पंच मूलके काढ़ेके साथ तेल पीपल मधु ॥ सैन्धव के सहित और मुलहठी के सहित सिद्ध वस्ति इस प्रकार कही है ॥ ५३२॥ सिद्धवस्ति ॥
गरम जलसे स्नान करे दिनमें सोना अजीर्णता इनको त्याग देवे बाकी सब स्नेह वस्ति के समान करे ॥ ५३३॥

[अथोत्तर वस्ति विधिः] अतः परम्प्रवक्ष्यामि वस्तिमुत्तर संज्ञितम् ॥ निरूहा दुत्तरो यस्मा त्तस्मा दुत्तर संज्ञकः ॥ ५३४॥ द्वादशा ङ्गुलकं नेत्रं मध्येच कृतकर्णिकम् ॥ मालती पुष्प वृन्ताभं च्छिद्रं सर्षप निर्गमम् ॥ ५३५ पञ्च विंशति वर्षाणा मधो मात्रा द्विकार्षिकी ॥ न दूर्द्ध म्पल मात्रा च स्नेहस्योक्ता भिषग्वरैः ॥ ५३६॥ अथ स्थापन शुद्धस्य तृप्तस्य स्नान भोजनैः ॥ स्थितस्य जानु मात्रे च विष्टे स्निग्ध शलाकया ॥ ५३७ ॥ स्निग्धया मेढ्र मार्गे तु ततो नेत्र न्नियोजयेत् ॥ शनैः शनै र्घृता भ्यक्तं मेढ्र रन्ध्राङ्गुलानि षट् ॥ ५३८ ॥ ततोऽव पीडये द्वस्तिं शनैर्नेत्रं विनिर्हरेत् ॥

भा० अनन्तर उत्तर वस्ति की विधि ॥ इसके उपरांत उत्तर संज्ञित वस्तिको कहता हूं ॥ जिस कारण निरूह से उत्तर कही है ॥ उस कारण उत्तर संज्ञक येह वस्ति है ॥ ५३४ ॥ बारह उंगल की नली के बीच में कान की ड्डई चमेली के फूलके डंठल के समान छिद्र सरसों निकलने के माफिक होनी चाहिये ॥ ५३५॥ पच्चीस बरसके नीचे दो तोलेकी मात्रा है ॥ उसके ऊपर पलभर मात्रा स्नेहकी कही है ॥ ५३६ ॥ अनन्तर आस्थापन से शुद्ध और स्नान भोजन से तृप्त ॥ और घुटना टेककर बैठे को स्निग्ध ॥

॥ ५३७॥ लिंग मार्गमें चिकनी सलाई करके उसके अनन्तर नली लगा देवे ॥ धीरे २ घी लगाकर लिंग छिद्रमें छ अङ्गुल करे ॥ ५३८॥ उसके अनन्तर वस्ति को दवावे और धीरे २ नली को निकाल लेवे ॥

ततः प्रत्यागते स्नेहे स्नेह वस्तिक्रमो हितः ॥ ५३९ ॥
स्त्रीणां कनिष्ठिका स्थूल नेत्रं कुर्य्याद्दशाङ्गुलम् ॥
मुद्ग-प्रवेशयोग्यञ्च योन्यन्तश्चतुरङ्गुलम् ॥ ५४०॥
द्व्यङ्गुलं मूत्रमार्गे च सूक्ष्मं नेत्रं वियोजयेत् ॥ मूत्र
कृच्छ्र विकारेषु बालानां त्वेक मङ्गुलम् ॥ ५४१ ॥
शनै निष्कम्पमाधेयं सूक्ष्मं नेत्रं विचक्षणैः ॥ माल-
ती पुष्पवृन्ताभ नेत्र मित्युदितं पुनः ॥ ५४२॥

भा० उसके अनन्तर स्नेह लौट आनेपर स्नेहवस्ति क्रमहित है ॥ ५३९ ॥ स्त्री यों की चिटली उंगलियों के समान मोटी और दस अंगुल लम्बी नली करे ॥ और मूङ्ग जाने माफिक छिद्र करे तथा उस योनि के भीतर चार अंगुल करे ॥ ५५० ॥ सूक्ष्म नली दो अंगुल मूत्रमार्ग में योजना करे ॥ और मूत्र कृच्छ्र विकारमें बालकों को एक अंगुल ॥ ५४१ ॥ धीरे न कांपता हुवा सूक्ष्म नली को चतुर भीतर करे ॥ चमेली के फूल के डंठल की समान नली इस प्रकार कहा है ५५२॥

सूक्ष्म शब्दाभिधाने बालानां तुलोऽपि नेत्रस्य
सूक्ष्मता बोधनार्थे ॥ योनि मार्गेषु नारीणां स्नेह मात्रा द्वि
पालिकी ॥ मूत्र मार्गे पलोन्मानं बालानां च द्विकार्षिकी
॥ ५४३॥ उत्ताना ये स्त्रिये दद्यां दूर्ध्वजानु वै विचक्षणः
॥ अप्रत्यागच्छति भिषग्वस्ता वुत्तर संज्ञिते ॥ ५४४॥
भूयोवस्तिं विदध्याच्च संयुक्तं शोधनैर्गुणैः ॥ फलव-
र्त्ति विदध्याद्वा योनिमार्गे दृढाम्भिषक् ॥ ५४५॥

सूत्रे विनिर्मितां स्निग्धां शोधन द्रव्य संयुताम् ॥ दह्य-
माने तथा वस्तौ दद्याद्वस्ति विशारद: ॥ ५५६॥ क्षीर
वृक्ष कषायेण पयसा शीतलेन वा ॥

(दह्यमाने वस्तौ) यस्मिन् स्थाने वस्ति दत्तस्तस्मिन्
दह्यमाने ॥] वस्ति शुक्र रुजः पुंसां स्त्रीणां मार्त्तव
जा रुज: ॥ ५५७॥ हन्यादुत्तर वस्तिस्तु नोचितो मेह
नात् क्वचित् ॥ सम्यग्दत्तस्य लिङ्गानि व्यापदः क्रम
मेवच ॥ ५५८॥ वस्ते रुत्तर संज्ञस्य समान: स्नेह
वस्तिना ॥

भा० सूक्ष्म शब्द के कहने से बालकों की नली उससे भी सूक्ष्म होनी चाहिये । स्त्रियों को योनि मार्ग में दो पल की स्नेह मात्रा होनी चाहिये ॥ और मूत्र मार्ग में पलभर तथा बालकों को दो तोलेकी होनी चाहिये ॥ ५५३॥ चतुर ऊपर घुटने कीइई उत्तान स्त्रीको पिचकारी देवे ॥ उत्तर वस्ति देनेपर लौट कर न आवे तो वैद्य ॥ फिर से ॥ ५५४॥ शोधन गुणों से युक्त वस्तिको देवे ॥ अथवा योनि मार्ग में दृढफल वत्ति अर्थात वस्तिको देवे ॥ ५५५॥ सूतसे बनाई हुई चिकनी शोधन द्रव्यसे युक्त देवे ॥ तथा पेडू पर जलन होनेमें चतुर ॥ ५५६॥ क्षीर वृक्षोंके काढ़ेसे अथवा शीतल जलसे वस्ति देवे ॥ जहां वस्ति दीहै वहां पर जलन होनेमें । पुरुषोंकी वस्ति शुक्र की और स्त्रियों की आर्त्तवकी पीड़ा ॥ ५५७॥ उत्तर वस्ति नाश करती है येह मूत्र मार्गसे और कहीं पर योग्य नहीं है ॥ अच्छी तरह दिये हुवेके लक्षण दोषका क्रमभी ॥ ५५८॥ स्नेह वस्तिके समान उत्तर वस्ति कही है ॥

[अथ फलवर्त्तिविधिः ।] घृताभ्यक्ते गुदे क्षिप्त्वा श्ल-
क्ष्णा स्वाङ्गुष्ठ सन्निभा ॥ मल प्रवर्त्तिनी वर्त्ति: फल
वर्त्तिश्च सा स्मृता ॥ १॥

[अथ नस्य ग्रहण विधिः]

नस्यं तत्कथ्यते धीरै र्नासा ग्राह्यं यदौषधम् ॥ नावनं नस्य कर्मेति तस्य नाम द्वयंमतम् ॥ २॥

(नस्यकर्म नासिकायां कर्म चिकित्सा येन तत् नस्यकर्म)

नस्य भेदो द्विधा प्रोक्तो रेचनं स्नेहनं तथा ॥ रेचनं कर्षणं प्रोक्तं स्नेहनं बृंहणं मतम् ॥ ३ ॥ कफ पित्तानिलध्वंसी पूर्व मध्यापराह्न के ॥ दिनस्य गृह्यते नस्यं रात्रा वप्युत्कटे गदे ॥ ४ ॥

(दिनस्य । त्रिधा विभक्तस्य । पूर्व भागादौ ।)

भा० अनन्तर फलवर्त्ति अर्थात् बत्ती देना उसकी विधि ॥ अपने अंगुठे के समान मोटी चिकनी बत्ती घृत लगाई हुई गुदा में डाली हुई और मलको निकालने वालीको फलवर्त्ति कहाहै ॥ १॥ [अनन्तर नासलेनेकी विधि ॥ जो औषध नाकसे ग्रहण करने योग्य है उसको धीर नास कहते हैं ॥ नावन और नस्य कर्म येह उसके दोनाम कहे हैं ॥ २॥ नाककी चिकित्सा । जिससे वोहनस्य कर्महै ॥ नासका भेद दो प्रकार कहा है रेचन तथा स्नेहन ॥ रेचन घटाना कहाहै और स्नेहन बढ़ाना है ॥ ३॥ कफ पित्त वात का नाशक क्रमसे दिनके पूर्वान्ह मध्यान्ह और अपरान्ह ॥ में नास लिया जाताहै और उत्कट रोग में रातको भी लिया जाता है ॥ ४ ॥

(तीन प्रकार विभाग किये दिनके पूर्व भागादि में ।)

नस्यन्त्यजेद्भोजनान्ते दुर्दिने चोपतर्पितः ॥ तथा नव प्रतिश्यायी गर्भिणी ज्वर दूषितः ॥ अजीर्णी दत्तवस्तिश्च पीतस्नेहो दकासवः ॥ ५ ॥ क्रुद्धः शोकाभिभूतश्च तृषार्त्तो वृद्ध बालकौ ॥ वेगावरोधी श्रान्तश्च स्नातु कामश्च वर्ज्जयेत् ॥ ६ ॥ (नस्य निषेधः)

भा० भोजनान्तमें दुर्दिनमें नास नलेवे । और तर्पै लिया हुवा । नये जुकाम वा

ना गर्भिणी ज्वरसे दूषित ॥ अजीर्णवाला दीहुई बस्तिवाला और स्नेह अव-क आसव पियाहुवा ॥ क्रुद्ध शोक करके अभिभूत प्यासे पीड़ित वृद्ध बालक ॥ वेगोंको रोकनेवाला श्रान्त स्नान काम येहभी नास त्याग देवें ॥ ६ ॥ (नास येह शेष हैं)

अष्टवर्षस्य बालस्य नस्यकर्म समाचरेत् ॥ अशीतिवर्षादूर्द्ध्वञ्च नावनं नैव दीयते ॥ ७ ॥ अथ वैरेचनं नस्यं ग्राह्यं तैले सुतीक्ष्णकैः ॥ तीक्ष्णैर्भेषजसिद्धैर्वा स्नेहैः क्वाथैः रसैस्तथा ॥ ८ ॥ नासिकारन्ध्रयोरष्टौ षट्चत्वारश्च बिन्दवः ॥ प्रत्येकं रेचनं योग्यं मुख्यमध्याल्पमात्रया ॥ ९ ॥ नस्यकर्मणि दातव्यं शाणैकं तीक्ष्णमौषधम् ॥ हिङ्गुस्याद्यवमात्रन्तु माषैकं सैन्धवं मतम् ॥ १० ॥ क्षीरञ्चैवाष्टशाणं स्यात्पानीयञ्च त्रिकार्षिकम् ॥ कार्षिकं मधुरद्रव्यं नस्यकर्मणि योजयेत् ॥ ११ ॥ अवपीडः प्रधमनं द्वौ भेदावपरौ स्मृतौ ॥

भा॰ आठ बरसके बालक को नस्य कर्म करावे ॥ अस्सी बरस के ऊपर नास नहीं दियाजाता ॥ ७ ॥ अनन्तर विरेचनका नास तीक्ष्ण तेलसे लेना चाहिये ॥ अथवा तीक्ष्ण औषध से सिद्ध स्नेह क्वाथ तथा रस इनसे भी ॥ ८ ॥ दोनों नथनों में आठ छ और चार बूंदें ॥ हर एक रेचन योग्यको उत्तम मध्य अल्प मात्रासे लेना चाहिये ॥ ९ ॥ नस्य कर्म में तीक्ष्ण औषध चार मासे देना चाहिये ॥ हींङ्ग जव बराबर और एक मासे सैन्धव कहाहै ॥ १० ॥ दूध बत्तीस मासे और पानी तीन तोले ॥ तथा एक तोला मधुर द्रव्य नस्य कर्म में योजना करे ॥ ११ ॥ अवपीड़ और प्रधमन दो भेद और कहेहैं ॥

शिरोविरेचनस्यार्थे तौ तु देयौ यथायथम् ॥ १२ ॥

कल्की कृता दौषधाद्यः पीडितो निःसृतो रसः ॥ सोऽ
वपीडः समुद्दिष्टस्तीक्ष्णद्रव्य समुद्भवः ॥ १३ ॥ षडङ्गु
ला द्विवक्त्राया नाड़ी चूर्णान्तया धमेत् ॥ तीक्ष्णं कोल
मितं वक्त्रवातैः प्रधमनं हितम् ॥ १४ ॥ ऊर्द्ध जत्रु गते
रोगे कफजे स्वर संक्षये ॥ अरोचके प्रतिश्याये शिरः
शूले च पीनसे ॥ १५ ॥ शोफापस्मार कुष्ठेषु नस्यं वै
रेचनं हितम् ॥ भीरुस्त्री कृश बालानां नस्यं स्नेहेन
शस्यते ॥ १६ ॥ गलरोगे सन्निपाते निद्रायां विषमज्व
रे ॥ मनो विकारे क्रमिषु युज्यते चाव पीडिनम् ॥
अत्यन्तोत्कट दोषेषु विसंज्ञेषु च दीयते ॥ चूर्णं प्रध-
मनं धीरैस्तद्धि तीक्ष्णतरं यतः ॥ १७ ॥ [नस्यं वैरेच-
नं यथा] नस्यं स्याद्गुड शुण्ठीभ्यां पिप्पली सैन्धवेनवा

भा० उनको शिरो विरेचन के अर्थ देने चाहियें ॥ १२ ॥ कल्क किये हुवे औष
ध के निचोड़नेसे जो निकला हुवा रसहै ॥ तीक्ष्ण द्रव्य से निकला वोह अव-
पीड़ कहाहै ॥ १३ ॥ छ अंगुल की दो मुखवाली जो नल्ली है उससे चूर्ण डालक
र फूंके ॥ वोह चूर्ण कोल प्रमाण मुखके वातसे धोंकना हित होता है ॥ १४ ॥
जत्रु के ऊपर के रोग में कफके रोग में स्वर क्षय में ॥ अरुचि में जुकाम में शिर
के शूलमें पीनस रोगमें ॥ १५ ॥ सूजन मिरगी कोढ़ इनमें वैरेचन नस्य हि
तहै ॥ भीरु कृश बालक इनको नास चिकनाई के साथ प्रशस्त है ॥ १६ ॥
गलरोग में सन्निपात में निद्रामें विषमज्वर में ॥ चित्त विकार में क्रमि में अ
व पीड़क नस्य अच्छा है ॥ १७ ॥ विष संज्ञा अत्यन्त उत्कट दोष में भी दिया
जाता है ॥ धीर के द्वारा फूकना जो है वोह खूब तीक्ष्ण का हैं ॥ १८ ॥
वैरेचन नास जैसे । गुड़ सोंठ नास है अथवा पीपल सेन्धव ॥

॥ जलपिष्टैन कर्त्तव्यं नासामूर्द्ध भवा गदाः ॥ १९ ॥

मन्या हनु गलोद्भूता नश्यन्ति भुजपृष्ठजाः॥ मधूक सार कृष्णाभ्यां बच मरिच सैन्धवैः॥ २०॥ नस्यं कोष्णाम्भसा पिष्टं दद्यात् संज्ञा प्रबोधनम्॥ अपस्मारे तथोन्मादे सन्निपाने ऽपतन्त्रके॥ २१॥ सैन्धवं श्वेत मरिचं सर्षपा कुष्ठ मेवच॥ बस्त मूत्रेण संपिष्टं नस्यन्तन्द्रा निवारणम्॥ २२॥

(श्वेत मरिचं सहिजन का बीजं)

रोहितस्य च पित्तेन भावितं मरिचं वचा॥ कट्फलं चेति तच्चूर्णं देयं प्रधमनं बुधैः॥ २३॥ अथ बृंहण नस्यस्य कल्पना कथ्यते ऽधुना॥ मर्षश्च प्रतिमर्षश्च द्वौ भेदौ स्नेहने मतौ॥ २४॥

भा० इनको जलसे पीसके नास लेनेसे कान आंख नाक इनके ऊर्ध्व भव रोग॥ १९॥ और मन्याहनु गला इनमें हुवे तथा भुजा और पीठ के रोग नाश होतेहैं॥ महुवे का साल पीपल और वच मिरच सैन्धव इनको॥ २०॥ सील गरम जलसे पीसकर नास देवे यह संज्ञा प्रबोधन है॥ अपस्मार तथा उन्माद सन्निपात अपतन्त्रक इनमें॥ २१॥ सैन्धव सफेद मिरच सरसों कूट॥ इनको बकरी के मूत्रसे पीसकर नास तन्द्रा का दूर करनेवालाहै॥ २२॥ सहिजन का बीज। रोहू मछली के पित्तेसे भावना दियाहुवा मरिच वच। कायफल इनके चूर्णको बुद्धिवान् के द्वारा प्रधमन देना चाहिये॥ २३॥ अनन्तर बृंहण नासकी कल्पना कहताहूं॥ स्नेहनमें मर्श और प्रतिमर्श दो भेद कहे हैं॥ २४॥

मर्षस्य तर्पणी मात्रा मुख्या शाणैः स्मृता ऽष्टभिः॥ मध्यमा तु चतुःशाणैः हीना शाण मिता मता॥ २५॥ एकैकस्मिं स्तु मात्रेयं देया नासा पुटे बुधैः॥ मर्षस्य हि निषेकं वा धीव्य दोष बला-

बलम् ॥ २६ ॥ एकान्तरं द्व्यन्तरं वा नस्यं दद्याद्विचक्षणः॥ (एकान्तरंम् एकं दिनमन्तरं नस्य शून्यं यत्र तदेकान्तरम् ॥) त्र्यहं पञ्चाहमथवा सप्ताहं वा सुयन्त्रितः॥ (क) अथवा त्र्यहम्। त्रीण्यहानि यावत्। प्रतिदिनं एवं पञ्चाहं सप्ताहञ्च। सुयन्त्रितः। सावधानः। यथाऽऽच्छिक्कं न भवति। मर्मे शिरो विरेके च व्यापदो विविधाः स्मृताः॥ दोषोत् क्लेशात् क्षयाच्चैव विज्ञेया स्ता यथा क्रमम् ॥ ॥ २७ ॥ दोषोत्क्लेश निमित्तासु युञ्ज्याद्वमन शोधनम् ॥ (वमन रूपं शोधनम्।)

भा० मर्षे की नर्षणी मुख्यमात्रा आठ शाण से कहीहै ॥ मध्यम चार शाण की और हीन चार माशेकी कहीहै ॥ २५ ॥ एक २ नासा पुट में इस मात्राको देना चाहिये ॥ मर्षाकी दो तीन वार दोषके बला बल को देखकर ॥ २६ ॥ एक दिन बीचमें देकर अथवा दो दिन बीचमें देकर बुद्धिवान नास देवे ॥ एक दिन बीचमें देनाहै। जिस्से। तीनदिन पांचदिन अथवा सातदिन सावधान होके देवे ॥ (क) अथवा तीन दिन। प्रतिदिन ऐसेही पांच दिन अथवा सात दिन। सावधान। जैसे वे छींक न होवे। मर्म के शिरो विरेकमें विविध रोग कहेहैं ॥ दोषके उत्क्लेश से और क्षय से वोह यथा क्रम जानने चाहियें ॥ २७॥ दोषोत्क्लेश निमित्त में वमन शोधन योजना करे ॥ (वमन रूप शोधन)

अथ क्षय निमित्तासु यथास्वं बृंहणं हितम् ॥ शिरो नासादि रोगेषु सूर्य्यावर्त्तार्द्ध भेदके ॥ २८॥ दन्त रोगेऽबले हीने मन्यावाह्वपासे गदे ॥ मुख शोषे कर्णनादे वात पित्त गदे तथा ॥ २९ ॥ अकाल प-

अकालपलिने चैव केशश्मश्रु प्रपातने ॥ पूज्यते बृंहणं नस्यं स्नेहैर्वा मधुरद्रवैः ॥ ३०॥

[बृंहणं नस्यं यथा] सशर्कर पयः पिष्टं भृष्टमाज्येन कुङ्कुमम् ॥ नस्यप्रयोगतो हन्याद्वातरक्तभवारुजः ॥ ३१॥ भ्रूशङ्खादि शिरः कर्ण सूर्य्यावर्त्तार्द्ध भेदकान् ॥ नस्यं स्यादणु तैलेन तथा नारायणेन वा ॥ ३२॥ माषादिना वा सर्पिर्भिस्तद्रेषज साधितैः ॥

भा० और लय निमित्त में बृंहण हितहै ॥ शिर नाक नेत्र इनके रोगों में और सूर्य्यावर्त्त अर्द्ध भेदक इनमें ॥ २८॥ दंतरोग में अवल में मन्या बाहुकंधा इनके रोगों में ॥ मुखरोग शोष में कर्णनाद में वात पित्त के रोग में तथा ॥ २९॥ अकालमें सिरके बाल पकनेमें केश और दाढ़ी इनके गिर जानेमें ॥ बृंहण नास हित है। अथवा मधुर द्रव और स्नेहसे हितहै ॥ ३०॥ बृंहण नस्य जैसे। शर्करा के सहित दूध और घृतसे भूनी हुई केसर पीस के ॥ नस्य प्रयोग सेवात रक्त की पीड़ा दूर होतीहैं ॥ ३१॥ भंव शंख नेत्र शिर कान सूर्य्यावर्त्त अर्द्धभेदक इनको भीनाशकरता है ॥ अणु तैलसे अथवा नारायण तैलसे नास देवे ॥ ३२॥ माष आदि करके अथवा उन औषधों से साधित घृतसे नास देवे ॥

भा॰ अणु तेल सुश्रुतने कहाहै ।] (क) जैसे तिल पेरने उपकरण अथात् को ल्हू आदि के उनको लाकर जिनसे बहुत दिनतक तेल पेला गया हो उनको टुकड़े २ करके ऊखलों कूट कर कढ़ाई में पानी से भिगोकर काढ़ा करे उस्से तेल निकलता है उस तेलको हाथ से जलमें से निकलकर वात नाशक औषध कल्क से पकावे वोह अणुतेल है वोह वातरोग का नाशक है ॥

तैलं कफे स्याद्वाते च केवले पवने तथा ॥ दद्यान्नस्यं सदापित्ते सर्पिर्मज्जानमेव च ॥ ३३ ॥ माषात्मगुप्तरास्नाभिर्बलारुबुकरौहिषैः ॥ कृतोऽश्वगन्धया क्वाथो हिङ्गुसैन्धवसंयुतः ॥ ३४ ॥ कोष्णो नस्यप्रयोगेण पक्षाघातं सकम्पनम् ॥ जयेदर्दितवातञ्च मन्यास्तम्भापबाहुकौ ॥ ३५ ॥ प्रतिमर्शस्य मात्रा तु द्वित्रिविन्दुमिता मता ॥ प्रत्येकशो नासिकया स्नेहनेऽति विनिश्चितम् ॥ स्नेहे ग्रंथिद्वयं यावन्निमग्ना चोद्धृता ततः ॥ ३६ ॥ तर्ज्जनीयं स्रवेद्विन्दुं सा मात्रा विन्दुसंज्ञिता ॥

भा॰ तेल कफमे और वातमें भी तथा केवल वातमें भी नास देवे ॥ औ पित्तमें घृत मज्जा को भी देवे ॥ ३३ ॥ उड़द के वांच रास्ना खरियारा अंडी राम कपूर ॥ असगंध इनका बनाया काढ़ा हींग सैन्धवके साथ ॥ ३४ ॥ गरम सील नासके प्रयोग से सकंपन पक्षाघातको जीतता है ॥ और अर्दित वात मन्यास्तंभ अपवाहुक ॥ ३५ ॥ इनको भी नाश करता है प्रतिमर्श की मात्रा दो विन्दु कही है ॥ हरएक से नासिका के द्वारा स्नेहन में अति विनिश्चित है ॥ स्नेहमें ग्रन्थि द्वय तक डूबी और फिरसे निकाली गई उस्से ॥ ३६ ॥ जो टपकानी सैं तर्जनी की बून्द उसमात्रा को विन्दु संज्ञा है ॥

एवं विधै विन्दु संज्ञे रष्टाभिः एणशा उच्यते ॥ ३७ ॥

स्नेहो मर्शः नस्येषु प्रतिमर्शो द्विबिन्दुकः ॥ समयाः प्रतिमर्शस्य बुधैः प्रोक्ताश्चतुर्दश ॥ ३८ ॥ प्रभाते दन्तकाष्ठान्ते गृहान्निर्गमने तथा ॥ व्यायामाध्वव्यवायान्ते विण्मूत्रान्तेऽञ्जने कृते ॥ ३९ ॥ कवलान्ते भोजनान्ते दिवास्वप्नोत्थिते तथा ॥ वमनान्ते तथा सायं प्रतिमर्शः प्रयुज्यते ॥ ४० ॥ ईषदुच्छिङ्कनात् स्नेहो यथा वक्त्रं प्रपद्यते ॥ नस्ये निषिक्तन्तं विन्द्यात् प्रतिमर्शः प्रमाणतः ॥ ४१ ॥ (मात्रायुक्तम्)

भा॰ इस प्रकार की आठ बून्दोंको ग्रहण करते हैं ॥ ३७ ॥ वोह मर्श नास में देना चाहिये और प्रतिमर्श दो बून्दकी होतीहै ॥ प्रतिमर्श के समय पंडितों ने चौदह कहे हैं ॥ ३८ ॥ सवेरे दातवन के बाद घरसे निर्गमनमें तथा ॥ कसरत मार्ग चलना इनमें और मैथुनके अन्तमें मल मूत्रके अन्तमें अंजन करने पर ॥ ३९ ॥ कवल के अन्तमें भोजनके अन्तमें दिनमें सोके उठनेपर तथा ॥ वमन के अन्तमें तथा सायंकाल में प्रतिमर्श देवे ॥ ४० ॥ थोडेसे छींकने से स्नेह जैसे मुखमें आजाताहै ॥ नासमें दिये द्रव उसको प्रमाण से प्रतिमर्श जाने ॥ ४१ ॥ (मात्रायुक्त।

उच्छिष्टन्न पिबेच्चैन निष्ठीवेन्मुखमागतम् ॥ (उच्छिष्टम्। नस्यावशिष्टं) क्षीणे तृष्णास्यशोषार्त्ते बाले वृद्धे च पूज्यते ॥ ४२ ॥ प्रतिमर्शान्न जायन्ते रोगाश्चैवोर्द्ध्वजत्रुजाः ॥ वली पलितनाशश्च दलमिन्द्रियजं भवेत् ॥ ४३ ॥ बिभीतनिम्बगम्भारी शिवा पीलुश्च काकिनी ॥ एकैकतैलनस्येन पलितं नश्यति ध्रुवम् ॥ ४४ ॥ अथ नस्यविधिं वक्ष्ये

नस्य ग्रहण हेनवे ॥ देशे वातरजो मुक्ते कृतदन्त निघर्षणम् ॥ ४५ ॥ विशुद्धं धूमपानेन स्विन्नभाल गलं तथा ॥ उत्तान शायिनं किञ्चित् प्रलम्ब शिरसं नरम् ॥४६॥ आस्तीर्ण हस्तपादञ्च वस्त्राच्छादित लोचनम् ॥ समुन्नामित नासाग्रं वैद्यो नस्येन योजयेत् ॥ ॥४७॥ कोष्णेना च्छिन्न धारेण हेमताराादि शुक्तिभिः ॥ शुक्त्या वा यंत्र युक्त्या वा स्रोतैर्वा नस्य माचरेत् ॥ ॥ ४८ ॥ (स्रोते वस्त्रे तदुपलक्षिते तूलेरपि)

भा० उच्छीष्ट की नपीवे और सुखमें आयेहुये को थूंक देवे ॥ (नासकी बाक़ी) क्षीणमें तथामें सुख शोष से पीड़ित में रूक्ष की नासको भी प्रशस्तहै॥ ४२॥ ऊर्द्ध जत्रु केरोग प्रतिमर्श से नहीं उत्पन्न होतेहैं ॥ और झुर्रियां बालोंकी सुफ़ैदी इनका नाशक तथा इन्द्रियों को बल होता है ॥ ४३॥ बहेड़ा नीम कुम्हेर हड़ तिसोढ़ा कोयाठोली ॥ इनके एक २ के तेलकी नास से बालों की सफ़ेदी अवश्य नाश होती है ॥ ४४ ॥ [अनन्तर नास ग्रहण के हेतु नासकी विधि कहते हैं ॥]: वायु और धूल से रहित देशमें दातुन किया हुवा ॥ ४५ ॥ धूम्र पानसे विशुद्ध हुवा माथा और गले में चिकनाई लगाया हुवा ॥ चित लेटाहुवा कुछ सिरको नीचे किये हुवे ऐसे मनुष्य को ॥ ४६ ॥ हाथ पांव फैलाकर कपड़े से नेत्र ढक के ऊपर नाक के अग्रको करके वैद्य नासको डाले ॥ ४७॥ सील गरम बराबर धारसे सोना चांदी की सुतुही से ॥ अथवा सीपसे अथवा जिस्में युक्तिके साथ फोवे से नास देवे ॥ ४८॥ (वस्त्र उसकरके उपलक्षित रुईसे भी)

नस्ये प्रासिच्यमानेषु शिरो नैव प्रकम्पयेत् ॥ न कुप्येन्न प्रभाषेत नोच्छिंकेन्नहसे तथा ॥ ४९॥ एतै र्हि विहितैः स्नेहो नैवान्तः सम्प्रपद्यते ॥ ततः कास प्रतिश्याय शिरोऽक्षि गद सम्भवः ॥ ५०॥ शृङ्गाट

क मभिव्याप्य स्थापयेन्न गिलेद् द्रवम् ॥ पञ्च सप्त दशौ वस्यमा, त्रा स्नेहस्य धारणे ॥ ५१॥ उपविश्या-थ निष्ठीवे न्नासा वक्रागतं द्रवम् ॥ वाम दक्षिण पार्श्वाभ्यां निष्ठीवेन्सं मुखेन हि ॥ ५२॥ नीते नस्ये मनस्तापं रजः क्रोधञ्च सन्त्यजेत् ॥ शयीत निद्रा न्त्यक्त्वाच प्रोत्तानो वाक् शतन्नरः ॥ ५३॥

भा० नास डालने के समय में शिरको न हिलावे ॥ न गुस्सा करे न बोले न छींके न हंसे ॥ ४६ ॥ इस प्रकार किया हुवा नास स्नेह भीतर नहीं जाता ॥ उसे खांसी जुकाम सिर नेत्र इनके रोग होनेहे ॥ ५० ॥ शृङ्गाटक में फैला कर स्थापन करे द्रवको निगले नहीं ॥ पांच सात दश मात्रा तक स्नेह धारण करे ॥ ५१ ॥ नाक से मुखमें आयेहुवे द्रवको बैठके थूंके ॥ बांये दहने तरफ थूके और सामने न थूंके ॥ ५२ ॥ नास लेनेपर मनस्ताप, धूल और क्रोध इनको त्याग देवे लेटे नींद न लेवे चित सौ की गिन्ती तक ठहरे ॥ ५३॥

नद्या शिरो विरेकान्ते धूमो वाक्यसोहितः ॥ नस्येत्रीण्युप दिष्टानि लक्षणानि प्रयोगतः ॥ ५४ ॥ शुद्ध हीनाति योगा हि विज्ञेया: शास्त्र चिन्तकैः ॥ लाघवं मल सं शुद्धि: स्त्रोतसां व्याधिसंक्षयः ॥ ५५॥ चित्तेन्द्रिय प्रसादश्च शिरसः शुद्धि लक्षणम् ॥ कण्डू मदेहो गुरुता स्त्रोतसां कफ संस्त्रवः ॥ ५६ ॥ मूर्द्धि हीन विशुद्धे स्तु लक्षणं परि कीर्त्तितम् ॥

(हीन विशुद्धे हीन नस्ये न विशुद्धेः)

मस्तु लुङ्गागमो वात वृद्धि रिन्द्रिय विभ्रमः ॥ शून्यता शिरसश्चापि मूर्ध्नि गाढं विरेचिते ॥ ५७ ॥

भा० तथा शिरो विरेचन के अन्तमें कुल्ला अथवा कवल दितेहे ॥ नासमें क हे ऊवे तीन लक्षण प्रयोगसे ॥ ५४॥ शुद्धि हीन अतियोग शास्त्रके चिन्तक जाने ॥ हलकापन मलकी अच्छीतरह शुद्धि ॥ सोतोंके रोगका नाश ॥ ५५ चित्त इन्द्रियकी प्रसन्नता येह शिरके शुद्धिका लक्षण है ॥ शरीर में खुज ली भारीपन सोतोंसे कफका स्राव ॥ ५६॥ शिरकी हीन शुद्धिका येह लक्ष ण कहाहै ॥ हीन नस्यसे विशुद्धि का। मगज़ का निकलना वातकी वृद्धि इन्द्रिय भ्रम ॥ शिरका सूनापन भी येह लक्षण शिरके अधिक विरेचनमें होते हैं ॥ ५७ ॥

मस्तुलुङ्गम् । मस्तकान्तः स्नेहः इन्द्रिय विभ्रमः। इन्द्रियाणा मन्यथा विषय ग्रहणः। हीनाति शुद्धे शिरसि कफ वातघ्न माचरेत् ॥ तत्र हीनेन नस्येन शुद्धे वातघ्न माचरेत् ॥ ५८ ॥ सम्यक् विशुद्धे शिरसि सर्प्पि र्नस्यं न दीयते ॥ कफ प्रसेकः शिरसो गुरुते न्द्रिय विभ्रमः ॥ ५९ ॥ लक्षणन्तदति स्निग्धे तत्र रूक्षं प्रदापयेत् ॥ भोजयेच्चा नभिष्यन्दि नस्येवातिक मा दिशेत् ॥ ६० ॥ वातिकम् । वातलमुपदिशेत् ॥

इति पञ्च कर्म्माणि ॥

भा० सिरके भीतर का गूदा। इन्द्रियोंका अन्यथा विषय गृहण। हीन औ र अतिशुद्ध शिरमें कफ वात नाशक उपाय करे ॥ उसमें हीन नस्य से शुद्ध में वात नाशक उपायकरे ॥ ५८॥ अच्छी तरह शुद्ध ऊवे शिरमें नास से घृत दियाजाता है ॥ कफ स्राव शिरमें भारीपन इन्द्रिय भ्रम ॥ ५९॥ येह लक्षण स्निग्धमें होते हैं। उसमें रूक्ष औषध देवे ॥ और अनभिष्यन्दि भो जन करावे। और नासमें वातल वस्तु उपदेशकरे ॥ ६० ॥ वातल उप देशकरे। इति पञ्च कर्म्म।

अथ धूमपान विधिः।

धूमस्तु षड्विधः प्रोक्तः शमनो बृंहण स्तथा ॥ रेचनः

कासहा चैव वामनो व्रण धूमनः ॥ ६१॥ शमनस्य तु पर्य्यायो मध्यः प्रायोगिकःस्तथा ॥ वृंहणस्य च पर्यायो स्नेहनो मृदुरेव च ॥ ६२॥ रेचनस्यापि पर्यायो शोधनस्तीक्ष्णएव च ॥ अधूमार्हाश्च खल्वेते श्रान्तो भीतश्च दुःखितः॥ ६३॥ दत्तवस्ति विरिक्तश्च रात्रौ जागरितस्तथा ॥ पिपासितश्च दाहार्त्त स्तालु शोषी तथोदरी ॥ ६४॥ शिरोऽभितापी तिमिरी च्छर्द्याध्मान प्रपीड़ितः॥ क्षतोरस्कः प्रमेहार्त्तः पाण्डुरोगी च गर्भिणी ॥ ६५॥ रूक्षः क्षीणोऽभ्यवहृत क्षीर क्षौद्र घृतासवः॥ अन्नान्न दधि मत्स्यश्च बालो वृद्धः कृशास्तथा ॥ ६६॥ अकाले चाति पीतश्च धूमः कुर्य्या दुपद्रवान् ॥

भा॰ अनन्तर धूम्रपान विधिः॥ धूम छ प्रकारका कहाहै। शमन वृंहण तथा ॥ रेचन कास नाशक वमन व्रण धूमन येह है ॥ ६१॥ शमनका पर्य्याय मध्य तथा प्रायोगिक है ॥ और वृंहण का पर्य्याय स्नेहन तथा मृदु है ॥ ६२॥ रेचन का पर्य्याय शोधन और तीक्ष्ण है ॥ धूमके अयोग्य येहैं ॥ श्रान्त भीत दुःखित ॥ ६३॥ वस्ति दिया हुवा विरेचन लिया हुवा रातमें जागा हुवा ॥ प्यासा दाहसे पीड़ित तालु शोषवाला तथा उदरवाला ॥ ६४ ॥ शिरमें अभितापवाला तिमिर रोगवाला और वमन आध्मान इनसे पीड़ित ॥ उरक्षत वाला प्रमेह से पीड़ित पाँडुरोग वाला गर्भिणी ॥ ॥ ६५॥ रूक्ष क्षीण दूध मधु घृत आसव इनको पीया हुवा ॥ अन्न दही मछली इनको भोजनकिया हुवा और बाल वृद्ध दुबला ॥ ६६ ॥ अकालमें बहुत पीया हुवा धूम उपद्रवों को करता है ॥

तत्रेष्टं सर्पिषः पानं नावनाञ्जन तर्पणम् ॥ सर्पि

रिक्षु रसं द्राक्षां पयो वा शर्करम्बु वा ॥ मधुराम्लौ रसौ वापि वमनाय प्रदापयेत ॥ ६८ ॥ धूमस्तु द्वादशात वर्षात गृह्यते शीनकात न च ॥ कास श्वास प्रति श्यायो मन्याहनु शिरोरुजः ॥ ६९ ॥ वातश्लेष्म विकारांश्च हन्याद्धूमः सुयोजितः ॥ धूमोपयोगा त्पुरुषः प्रसन्नेन्द्रिय वाङ्मनः ॥ ७० ॥ दृढकेश द्विजश्मश्रुः सुगन्धि वदनो भवेत ॥ धूमनाडी भवेत्तत्र त्रिखण्डा च त्रिपर्व्विका ॥ ७१ ॥ कनिष्ठि का परीणाहा राजमाषा गमान्तरा ॥

[राजमाषागमः सुभस्ता नाडी]

भा० उससे घृतपान इष्ट है और नास अंजन तर्पण इष्ट है ॥ ६७ ॥ ऊख का रस दाख दूध अथवा शर्वत ॥ अथवा मधुर अम्लरस वमनको अर्थ देवे ॥ ६८ ॥ धूम बारह वरस से ग्रहण किया जाता है । और उस्से से नहीं ग्रहण किया जाता ॥ कास श्वास जुकाम मन्याहनु शिर इनकी पीड़ा ॥ ६९ ॥ वात कफ के रोग इनकी अच्छी तरह योजना किया धूम नाश करता है ॥ धूम के उपयोग से पुरुष प्रसन्न इन्द्रिय वाणी और मन होता है ॥ ७० ॥ और केश दान्त दाढ़ी येह दृढ होते हैं ॥ उसमें धूवेंकी नली तीन टुकड़े का वा तीन पोर वाली ॥ ७१ ॥ चिटली उंगली के समान मोटी और बड़ा उड़द जाने मा फिक छिद्र वाली होनी चाहिये ॥

धूम नाडी भवेद्दीर्घा शमने रोगिणः ऽङ्गुलेः ॥ ७२ ॥ चत्वारिंशन्मिते स्तद्वद् द्वात्रिंश च्छिमेदो मता ॥

(मृदो बृंहणः) नीतो चतुर्विंशतिभिः कासघ्ने षोडशो न्मितेः ॥ (नीतो रेचने) दशाङ्गुले वामनीये तथा स्यां द्वार नाडिका ॥ (तथा दशाङ्गुलमिता)

भा० रोगियों की वामन में चालीस अंगल लंबी धूवेकी नलीहोतीहे ॥
वैसेही स्नेहन में बत्तीस उंगलकी कहीहै ॥७२॥ बृंहण में । रेचन
न चौबीस अंगल खास नाथक में सोलह अंगल की नली कही है ॥
(रेचन में) वामनीय में दस अंगल और दस उंगलकी ब्रणकी नली होनी
है ॥ (तथा ब्रणाङ्गुल ।)

कलाय मण्डलस्थूला कुलत्थागम रन्ध्रिका ॥ अथे
पिहां प्रलिम्पेत्तु सप्लक्षां द्वादशाङ्गुलाम ॥
(ईषिकाम् शरकाण्डम् ॥) धूम द्रव्येन कल्केन-
लेपश्चाष्टाङ्गुलः स्मृतः ॥ कल्कं कर्षमितं लिप्त्वा
च्छाया शुष्कञ्च कारयेत् ॥ ७३॥ इषिका मपनी
याथ स्नेहाक्तां वर्त्तिमादरात् ॥ अङ्गारे दीपितां कृ-
त्वा धृत्वा नेत्रस्य रन्ध्रके ॥ ७४॥ वदनेन पिबेद्धूमं व
दनं नैव संत्यजेत् ॥ नासिकाभ्यां ततः पीत्वा मुखे नै
व वमेत्सुधीः ॥७५॥ शराव संपुटे न्यस्त्वा कल्कम
ङ्गार दीपितम् ॥ छिद्रे नेत्रं निवेश्याथ व्रणं तेनैव
धूपयेत् ॥ ७६॥ एलादि कल्कं वामने स्निग्धं स-
र्जरसं मृदौ ॥ रेचने गोदा कल्कञ्च श्वासघ्नं तु
द कोपशमम् ॥ ७७॥

भा० मटर के समान मोटी और कुलथी जाने लायक छिद्रवाली । अनन्तर
बारह उंगल के माफ सरकंडे को । धूम द्रव्य के कल्क से आठ उंगल लेप कहा
है ॥ एक कर्ष कल्क का लेप करके छायामें सुकवावे ॥७३॥ सरकंडे को
निकालकर स्नेह युक्त बत्ती को ॥ जलाके नली के छिद्र पर धरके ॥७४॥
मुख से धूवाँ पीके और मुखसेही छोड़े ॥ और उसके अनन्तर नाससे पीकर
मुखसे ही निकाले ॥७५॥ शराव संपुटमें अंगारे से दीपित कल्क को डा

लेकर नलीमें छिद्रमें लगाकर व्रणको उसी धूवेंसे धूपदेवे ॥ ७६॥ शमन में इलायची आदिका कल्क और बृंहण में शल चिकनाई ॥ रेचन में दस्तावर कल्क कास नाशक में कटेली मरिच ॥ वमन में स्नायु चर्म्म से युक्त धूम पान देवे ॥ व्रणमें नीम वच आदि सब धूपन प्रशस्त है ॥ ७७॥

वमने स्नायु चर्माढ्यं दद्याद्धूमस्य पानकम् ॥ व्रणे निम्ब वचाद्यन्च धूपनं सं प्रशस्यते ॥ ७८ ॥ अन्येऽपि धूमा गेहेषु कर्त्तव्या रोग शान्तये ॥

[सयथा] मयूर पिच्छं निम्बस्य पत्राणि वृहती फलम् ॥ मरिचं हिङ्गु मांसी च बीजं कार्पास सम्भवम् ॥ ॥७६॥ छागरोमाहि निर्मोको विष्ठा वैडालिकी तथा ॥ (अहि निर्मोकः सर्प कञ्चुकः)

गज दन्तश्च तच्चूर्णं किञ्चिद् घृत विमिश्रितम् ॥ गेहेषु धूपनं दत्तं सर्वान् बाल ग्रहान् हरेत् ॥ ८०॥ पिशाचान् राक्षसान् हत्वा सर्व्वज्वर हरं भवेत् ॥

[इत्यपराजितो धूमः।]

भा० रोग शान्ति के वास्ते औरभी धूवं घरमें करे ॥ वोह जैसे । मोर पंख नीम के पत्ते दोनों कटेली ॥ मरिच हीङ्ग जटा मासी कपास के बीज ॥७६॥ बकरे के रोवें सांपकी केंचली बिल्लीकी विष्टा ॥ हाथीदन्त इनका चूर्ण थोड़े से घृतको मिलाके ॥ घरमें धूवां दिया हुवा सब बाल ग्रहोंको हरता है ॥ ८०॥ पिसाच और राक्षसों को मारके सबज्वरोंका नाशक है ॥ इति अपराजितो धूपः ॥

मनस्तापं रजः क्रोधो धूमपाने निवारयेत् ॥ नेत्राणि धातु जान्याहुर्नलं वंशादि जान्यपि ॥८१॥

[अथ गण्डूष कवल प्रति सारण विधिः।]

तत्र गण्डूष कवल प्रतिसारणानां भेदकानि लक्षणान्याह ॥] [तत्र गण्डूषः] स्नेह क्षीर कषायादि द्रवैः सम्पूर्णमाननम् ॥ आपूर्य्य स्थीयते तावद्विधि गण्डूष धारणे ॥ ८२ ॥ कफ पूर्णास्यता यावच्छेदो दोषस्य वा भवेत् ॥ नेत्र घ्राण स्रुति र्य्यावत्तावद्गण्डूष धारणम् ॥ ८३ ॥ गण्डूषान् सुस्थितः कुर्य्यात् स्विन्नभाल गलादिकः ॥ मनुजस्त्रीं स्तथा पञ्च सप्तवा दोष-नाशनात् ॥ ८४ ॥

गलादिक इत्यादि शब्देन गण्डकपोलौ गृह्येते सम्भुतोक्तत्वात् ॥ चतुर्विधः स्याद्गण्डूषः स्नेहनः शमनस्तथाः ॥ शोधनो रोपणश्चैव कवलश्चापि तादृशः ॥ ८५ ॥

भा० मनका सन्ताप धूल क्रोध इनकी धूम पानमें न करे ॥ नस्तो धातुवोंको अथवा वास आदिककी भी कहीहै ॥ ८१ ॥ अनन्तर कुल्ला कवल और मंजन इनकी विधि ॥

लक्षणोंको कहतेहैं

संपूर्ण मुख भरके ॥ तब तक रक्खा जाताहै गण्डूष धारण में ॥ ८२ ॥ तब तक में कफ से पूर्ण मुख होवे । और दोषका छेदन जब तक में हो ॥ तथा आंख नाक को बहना जब तक में हो तब तक कुल्ले को धारण करना चाहिये ॥ ८३ ॥ स्वस्थ शिर गला आदिकमें चिकनाई लगाकर कुल्लोंको करे ॥ मनुष्य तीन तथा पांच सात दोष नाशन तक करे ॥ ८४ ॥ गलादिक इत्यादि शब्दसे गण्ड कपोल लियेहैं । सुश्रुत के कहने से । चार प्रकारको गण्डूष होताहै ॥ स्नेहन तथा शमन ॥ शोध और रोपण वैसेही कवल भी । ॥ ८५ ॥

स्निग्धोष्णैः स्नैहिको वाते स्वादुशीतैः प्रसादनः ॥

पित्ते कट्वम्ल लवणैा रूक्षैाः संशोधनङ्कफे ॥ ८६ ॥ कषाय तिक्त मधुरैः कटूष्णैा रोपणो व्रणे ॥ दद्याद्द्रवेषु चूर्णञ्च गण्डूषे कोलमात्रकम् ॥ ८७ ॥ कर्षमात्रः कल्कश्च कवले दीयते बुधैः ॥ धार्यन्ते पञ्चमा द्वर्षा द्गण्डूषाः कवलादयः ॥ ८८ ॥ व्याधेरपचयस्तुष्टि र्वैशद्यं वक्त्र लाघवम् ॥ इन्द्रियाणां प्रसादश्च गण्डूषे विधृते भवेत् ॥ ८९ ॥ हरे दास्यस्य वैरस्यं शोषपाकं व्रणं तृषाम् ॥ दन्त चालञ्च गण्डूषो वैशद्यं तु करोति हि ॥ ९० ॥

[अथ कवलः] वात पित्त कफघ्नस्य द्रव्यस्य कवलं मुखे ॥ अर्द्धं निःक्षिप्य संचर्व्य निष्ठीवेत्कवले विधिः ॥ ९१ ॥ कवलः कुरुते काङ्क्षा मन्नेषु हरते कफम् ।

भा० वातमें स्निग्ध उष्णसे स्नेहिक गण्डूष दियाजाताहै ॥ और पित्तमें मधुर शीतसे प्रसादन ॥ तथा कफमें कटु अम्ल लवण और रूक्ष इन से शोधन करे ॥ ८६ ॥ कषाय तिक्त मधुर से कटु उष्ण रोपण व्रणमें करे ॥ व्रण गण्डूषमें चूर्ण आठ माशेदेवे ॥ ८७ ॥ एक तोला कल्क कवलमें दिया जाताहै ॥ पांच बरस से गंडूष कवलादिक लिये जातेहैं ॥ ८८ ॥ रोग का घटना प्रसन्नता वैशद्य मुखमें हलका पन ॥ इन्द्रियों की प्रसन्नता गण्डूष धारण में येह लक्षण होतेहैं ॥ ८९ ॥ मुख की विरसता शोष पाक व्रण तथा ॥ दांत का हिलना इनको दूर करताहै ॥ और गण्डूष वैशद्य कोकरताहै ॥ ९० ॥ [अनन्तर कवल] वात पित्त कफ नाशक द्रव्य का कवल मुखमें ॥ आधा डालकर और चबा के उसको थूंके येह कवल की विधि ॥ ९१ ॥ कवल भोजनमें इच्छाको करताहै और कफको हरता है ॥

तृष्णां शोषञ्च वैरस्यं दन्त चालञ्च नाशयेत् ॥ ९२ ॥

[अथ प्रतिसारणम्] दन्त जिह्वा मुखानां यच्चूर्णं कल्को व लेहकैः॥ शनैर्घर्षणं मङ्गुल्या तदुक्तं प्रतिसारणम्॥ ९३॥ वैरस्यं मुखदौर्गन्ध्यं मुखशोकं तथा तृषाम्॥ अरुचिन्दन्त पीडाञ्च निहन्ति प्रति सारणम्॥ ९४॥ हीने जाड्य कफोत् क्लेशा वरस ज्ञान मेवच॥ अति योगान्मुखे पाकः शोषस्तृष्णा वमिः क्लमः॥ ९५॥ [अथ स्वेदविधिः।]

स्वेद श्चतुर्विधः प्रोक्तस्तापोष्म स्वेद संज्ञितः॥ उपनाहो द्रवः स्वेदः स्सर्वे वातार्त्ति हारिणः॥ ९६॥ ताप स्वेद उष्मस्वेदश्च ताभ्यां संज्ञितः [उपनाहःस्वेदः]

भा० तथा तृषा शोष विरसता दांतों का हिलना इनको नाश करता है॥ ९२॥ [अनन्तर मञ्जन॥ दांत जीभ मुख इनको जो चूर्ण कल्क अवलेह इनसे॥ धीरे २ उंगली से घिसना उसको प्रतिसारण कहाहै॥ ९३॥ विरसता मुखकी दुर्गन्धि मुखशोष तथा तृषा॥ अरुचि दांतों की पीड़ा इन को प्रतिसारण नाश करताहै॥ ९४॥ हीनमें जड़ता कफ का उत्क्लेश रस का न जानना होना है॥ और अतियोग से मुखमें पाक शोष तृषा वमन क्लम॥ ९५॥ होताहै॥ [अनन्तर स्वेद विधि।]
स्वेद चार प्रकारका कहाहै। ताप उष्म स्वेद संज्ञित। उपनाह द्रव स्वेद येह सब वातकी पीड़ाके नाशक हैं॥ ९६॥ ताप स्वेद उष्म स्वेद उनके एके संज्ञा किया गया॥ [उपनाह स्वेद।]

स्वेदो तापोष्मजो प्रायः श्लेष्मघ्नो समुदीरितो॥ उपनाहस्तु वातघ्नः पित्तसङ्गे द्रवोहितः॥ ९७॥ (द्रवोहि द्रवस्वेद) महाबले महाव्याधौ शीते स्वेदो महान् स्मृतः॥ दुर्बले दुर्बल स्वेदो मध्यमे म

द्यमो मतः ॥ ९८॥ वलासे रूत्तणः स्वेदो रूक्षस्निग्धः कफानिले ॥ (रूत्तणः रूत्तयतीति रूक्षणः नन्द्यादित्वाल्लु प्रत्ययः।) कफ मेदो वृते वाते कोष्णं गेहं रवेः करान् ॥ नियुद्धं मार्ग गमन ङ्गुरु प्रावरणं ध्रुवम् ॥ ९९ ॥ चिन्ता व्यायाम भारांश्च सेवेता मय मुक्तये ॥ येषां नस्यं प्रदातव्यं वस्तिश्चा पिहि देहिनाम् ॥ १०० ॥ शोधनीयाश्च ये केचित् पूर्वं स्वेद्याश्च ते मताः॥ स्वेद्या ऊर्द्धन्त्वयोऽपीह भगन्दर्य्ये र्शसस्तथा ॥ १०१ ॥ अश्मर्य्या चातुरो जन्तुः शामये च्छस्त्र कर्मणा ॥

भा० ताप और उष्मज स्वेद प्रायः कफ नाशक कहेहैं ॥ उपनाह वात नाशक है पित्त सङ्गमें द्रव हितहै ॥ ९७॥ द्रवस्वेद । महाबल पीन महा रोग में महान् स्वेद कहा है ॥ दुर्बल को दुर्बल स्वेद और मध्यम को मध्यम कहाहै ॥ ९८ ॥ कफ में रूक्षण स्वेद और कफ वातमें रूक्ष स्निग्ध स्वेद कहाहै ॥ जो रूक्ष करै वोह रूक्षण नन्द्यादित्व से ल्यु प्रत्यय होता है । कफ मेदसे घिरे वातमें गरम घर सूर्य्य के किरण ॥ लड्न्त रस्ते का चलना भारी ओढ़ना येह निश्चय हितहै ॥ ९९ ॥ और चिन्ता कसरत तथा भार इनको रोग दूर होनेके वास्ते सेवन करे ॥ जिन मनुष्यों को नास देना है और वस्ति भी जिनको देनी है ॥ १०० ॥ और जो कोई शोधनके योग्य है उनको पहिले स्वेदन करना चाहिये ॥ येह तीनो पश्चात् स्वेद न करने योग्य है भगंदर वाला ववासीर वाला ॥ १०१ ॥ और अश्मरी वाला । ये रोगी मनुष्य शस्त्र कर्म्म से अच्छे होते हैं ॥

(शस्त्र कर्मणः ऊर्ध्व पश्चात्स्वेनि सश्रुत)

पश्चात् स्वेद्या हृते शल्ये मूढगर्भ गदे तथा ॥ काले प्रजाताऽकाले वा पश्चात् स्वेद्या नितम्बिनी ।१०२

सर्वान् स्वेदान् निवाते च जीर्णेन्नेवा विचारयेत ॥ स्वे
दाद्धातु स्थिता दोषाः स्नेह क्लिन्नस्य देहिनः ॥ २०३॥
द्रवत्वं प्राप्य कोष्ठान्त गत्वा यान्ति विरेकताम् ॥
स्नेहाभ्यक्त शरीरस्य शीतैराच्छाद्य चक्षुषी ॥ २०४ ॥

भा० शास्त्र कर्मके पश्चात् इस प्रकार सुश्रुत में कहा है ॥ शल्य के निकालने में तथा मूढ गर्भ रोगमें पीछेसे स्वेदन करना चाहिये ॥ कालमें प्रसव हुई। अथवा अकालमें प्रसव हुई नितम्बवाली स्त्रीको पीछेसे स्वेदन करना चाहिये ॥ २०२ ॥ सब स्वेदों को निवात स्थानमें और जीर्णके अन्तमें करे ॥ स्वेदसे स्नेह क्लिन्न वाले मनुष्य के धातुमेंके दोष ॥ २०३ ॥ पिघल कर कोष्ठ भीतर होके दस्त होके निकल जाते हैं ॥ शरीर में तेल लगाये हुवे के नेत्रों को शीतल से आच्छादन करके ॥ २०४ ॥

स्विद्यमान शरीरस्य ः हृदयं शीतलैः स्पृशेत् ॥
(शीतै राद्रैव स्त्रा दिभिः।) अजीर्णी दुर्बली मेही क्षतः
क्षीणः पिपासितः ॥ अतीसारी रक्त पित्ती पाण्डुरो
गी तथोदरी ॥ २०५॥ मेदस्वी गर्भिणी चैव नहि स्वेद्या
विजानता ॥[स्वेदादेषां यान्ति देहो विनाशं नै साध्यत्वं
यांति चैषां विकाराः।]
एतान्यपि मृदु स्वेदैः स्वेद साध्यान् पाचरेत् ॥ मृदु
स्वेदं प्रयुञ्जीत तथा हन्मुष्क दृष्टिषु ॥ २०६॥
अति स्वेदात्सन्धि पीड़ा दाह स्तृष्णा क्लमो भ्रमः ॥

भा० शरीर का पसीना निकाले हुवे के हृदयको शीतल वस्त्रसे स्पर्शकरे ॥ (गीले कपडे आदिसे) अजीर्ण वाला दुर्बल प्रमेहवाला उर क्षतवाला क्षीण प्यासा ॥ अतीसार वाला रक्तपित्त वाला पांडुरोग वाला तथा उदर रोगवाला ॥ २०५ ॥ मेदवाला गर्भिणी इनको जानने वालेमे स्वेदन न कराना चाहिये ॥ स्नेह

से इनके देहका नाश होताहै और इनके रोग साध्य नहीं होते ॥ इनको भी स्वेद साध्य होवेंतो मृदु स्वेद से उपचार करे ॥ तथा हृदय अण्ड कोश दृष्टि इनमें मृदु स्वेद करे ॥ २०६ ॥ अति स्वेद से सन्धिमें पीड़ा दाह तृषा ग्लानि भ्रम

पित्ता सृक पिडका कोपस्तत्र शीतै रुपा चरेत् ॥ २०७॥

[तत्र ताप स्वेद माह] तेषु तापाभिधः स्वेदो वालुका वस्त्र पाणिभिः ॥ प्रतप्तै रम्ल सिक्तैश्च कायेऽलक्त क वेष्टिते ॥ २०८ ॥ [उष्म स्वेदमाह] अथवा वात निर्नाशि द्रव्य क्वाथ रसादिभिः ॥ उष्णैर्घटं पूरयित्वा पार्श्वे छिद्रं विधायच ॥ २०९ ॥ विमुद्र्यास्यं त्रिखण्डां च धातुजां काष्ठजा मुत ॥ षडङ्गुला स्या ङ्गो पुच्छां नाडीं युञ्ज्याद्विहस्तकाम् ॥ २१० ॥ मुखोप विष्टं स्वभ्यक्त ङ्गुरु प्रावरणा वृतम् ॥ हस्ति शुण्डिकया नाड्या स्वेदये द्वात रोगिणाम् ॥ २११ ॥

भा० पित्त रक्तकी फुनसियों को होताहै उसमें शीतल उपचार करे ॥ २०७ ॥ उसमें तापस्वेद को कहतेहैं ॥ उसमें ताप नाम स्वेद रेत कपड़ा हाथ इनको ॥ तपाकर अम्ल द्रव्य सींचके चियड़े से लपेटी हुई काया में किया जाताहै ॥ २०८ ॥ [उष्म स्वेद को किया जाताहै ॥ अथवा वात नाशक औषध का उष्ण काढ़ा रस आदिसे ॥ घड़ेको भरकर बगलमें छिद्र करके ॥ २०९ ॥ मुखको बन्द कर तीन टुकड़े वालीसुवर्णादि धातुकी अथवा लकड़ी की ॥ छः अंगुल मुखवाली गावदुम दो हाथकी नली उसमें लगावे ॥ २१०॥ तेल लगाकर उष्ण और भारी कपड़ेको ओढ़के अच्छी तरह बैठे हुवे वातरोग वालेको हाथी सूंडका नाड़ी से स्वेदन करे ॥ ॥ २११ ॥

(क) त्रिखण्डामिति स्वेदमोक्षार्थम् षडङ्गुलास्या

मिति। मूले षडङ्गुलं विशालमुखं गोपुच्छमिव क्रमकृशम्॥ तेनाग्रे गोपुच्छाग्र परिमाणेन कृशाम् नाडीम् अन्तः सरन्ध्रां द्विहस्तिकाम् हस्तद्वय परिमाणाम्। हस्तिशुण्डिकयेति हस्तिशुण्डेव क्रमघ्रकृत्वान्नाड्याइयं संज्ञा।

पुरुषा याममात्रां वा भूमिं संमार्ज्य खादिरैः॥ काष्ठैर्दग्ध्वा तथा भुन्य क्षीर धान्याम्ल वारिभिः॥११२॥ वातघ्न पत्रैराच्छाद्य शयानं स्वेदयेन्नरम्॥

भा० (क) तीन टुकडे स्वेदकी आसानी के वास्ते। मूलमें छ अंगुल विशाल मुख गोपुच्छके समान क्रमसे पतली। उस्से अग्रमें गोपुच्छ परिमाण से पतली नाड़ी भीतर छिद्र सहित दोहाथकी हाथीकी सूंडके समान क्रमसे पतली होनेसे नाड़ी का येह नामहे॥ अथवा साढ़े तीन हाथ भूमिको छिड़क के खैरकी लकड़ी से जलकर उसीप्रकार दूध धान्याम्ल जलसे छिड़क कर॥११२॥ अंडीके पत्तों से ढककर लेटे हुवे मनुष्य को स्वेदन करे॥

एवं माषादिभिः स्विन्नैः शयानं स्वेद माचरेत्॥११३

[उपनाह स्वेदः] तथो पनाह स्वेदञ्च कुर्य्याद्वातहरौषधैः॥ प्रदह्य देहं वातार्त्तं क्षीर मांस रसादिभिः॥११४ अम्लपिष्टैः स लवणैः सुखोष्णैः स्नेह संयुतैः॥ उत ग्राम्या नूपमांसै र्जीवनीय गणेन च॥११५॥ दधि सौवीर क क्षीरै वीरि तरवादिना तथा॥ कुलत्थ माष गोधूमै रतसीतिल सर्षपै॥ शतपुष्पा देवदारु शेफाली स्थूल जीरकैः॥११६॥

भा० इस प्रकार माषादि स्विन्न से लेटे हुवे का स्वेदन करे॥११३॥

उपनाह स्वेद। वैसेही वात नाशक औषधों से उपनाह स्वेद करे॥ दूध मांस रस आदियोंसे वातसे पीडित शरीर को गरम करके ॥ २२४॥ कांजी से पीसा हुवा लवण के सहित तेलके सहित सील गरम से ॥ या ग्राम्य अनूप मांस तथा जीवनीय गणसे ॥ २२५॥ तथा दही सौवीरक दूध इन से और वीर तरादि से। तथा कुरथी उड़द गेहूं और अलसी तिल सरसों इनसे॥ सौंफ देवदारु शेफालि कालीजीरी ॥ २२६॥

शेरण्डमूल जीरैश्च रास्ना मूलक शिग्रुभिः॥ मिसिकृष्णा कुठेरैश्च लवणैश्चाम्ल संयुतैः॥२२७॥ प्रसारण्याश्च गन्धाभ्यां बलाभि र्दशमूलकैः॥ गुडूच्या वानरी बीजै र्यथा लाभ समाहृतैः॥२२८॥ क्षुणैः स्विन्नैश्च वस्त्रेण बद्धैः स स्वेदयेन्नरम्॥ महा शाल्वण संज्ञोऽयं योगः सर्वानिलार्त्ति हृत्॥ २२९॥

(क)। अस्यायमर्थः। उपनाह स्वेदञ्च कुर्य्यात् केन प्रकारेण त्या काङ्क्षायां तत्प्रकार माह। वात हरौषधैः कथम्भूतैः। अम्ल पिष्टैः। अम्लेन काञ्जिक तक्रादिना पिष्टैः सलवणैः। स्नेह संयुतैः। क्षीर मांस रसान्वितैः। सुखो…। तानात्ते देहं प्रदह्य प्रलिप्य स्वेदयेदित्यर्थः।

भा० अरण्डी की जड़ और जीरा इनसे रासना मूली सहिजना इनसे। सौंफ पीपल। सफेद तुलसी और अम्ल से युक्त लवण इनसे॥ २२७॥ गंधप्रसारिणी असगंध इनसे बरियारा दशमूल इनसे॥ गिलोय किवांच के बीज इन से इनमें जो मिलजावे उसको लाकर ॥ २२८॥ जव कूट करके स्वेदित कर के वस्त्रसे बान्धकर उससे स्वेदन करे॥ महाशाल्वण नाम यह योग सब वातकी पीड़ा को नाश करताहै ॥ २२९॥

(क) इसका यह अर्थहै कि उपनाह स्वेद करे किस प्रकार से। इस आ-

डांका में उस प्रकार को कहते हैं ॥ वात नाशक औषधों से। कैसी काँजी से पीसी हुई। काँजी मठा आदि से पीसी हुई। लवण के सहित। दूध मांस के रस से युक्त सील गरम। वात से पीड़ित देहको लेप करके स्वेदन करे ॥

अथवा म्लेन संपिष्टैः कोष्णैः सूक्ष्म पुटस्थितैः ॥ भेषजैः स्वेदयेत्किं वा स्विन्नैः कोष्णैः पटस्थितैः ॥ ॥ २३० ॥ [द्रवस्वेद माह] द्रव स्वेदस्तु वातघ्नो द्रव्य क्वाथेन पूरिते ॥ कटाहे कोष्ठके वापि सूपविष्टेव गाहयेत् ॥ २३१ ॥ सौवर्णं राजतं वापि ताम्रं लौहञ्च दारुजम् ॥ कोष्ठ कन्तत्र कुर्वीतो च्छ्राये षड्विंशदङ्गुलम् ॥ २३२ ॥ आयामे वा तदेव स्याच्चतुष्कोणन्तु चिक्कणम् ॥

भा० अथवा अम्लसे पीसे हुये सील गरम सूक्ष्म पुट स्थित। औषधसे स्वेदन करे अथवा स्विन्न सील गरम कपड़े में स्थितसे स्वेदन करे ॥ २३० ॥ [द्रव स्वेदको कहते हैं ॥ द्रव स्वेद वात नाशक है। औषधियों के काढ़े से भरी हुई कढ़ाई में अथवा हौज़ में भी बावड़ी में बैठ करके मांई न्हावे ॥ २३१ ॥ सोनेका चान्दीका ताम्बेका लोहेका कोष्ठक उसमें करे ऊंचाई में छब्बीस अंगुल ॥ २३२ ॥ और चौड़ाई में भी इतना ही होवे चौकोन साफ़ बनावे ॥

[पक्षान्तरमाह। नाभेः षडङ्गुलं यावन्मग्नं क्वाथस्य धारया ॥ कोष्णया: स्कन्धयोः सिक्त स्तिष्ठेत् स्निग्ध तनुर्नरः ॥ २३३ ॥ (क) [अथ मर्थः।] प्रथम तो वातघ्न द्रव्य क्वाथेन कराठ पूरिते कोष्ठ के कटाहे वा सूपविष्ट स्तिष्ठेत् ॥ अथवा नाभेः षड्ङ्गुल मूर्द्धं यावत्क्वाथे मग्न उपविष्टः। पश्चा-

त्क्वाथस्य धारया स्कन्धयोः सिच्यमानस्तिष्ठेत् ॥ यावत्कोष्ठकं परिपूर्णं भवतीत्यर्थः। क्वाथपक्षे प्रथमः स्नेहाभ्यक्त तनुरुप विशेत् ॥ मुहूर्त्तकं समारभ्य यावत्स्याच्चतुष्टयम् ॥ तावत्तदवगाहेत यावदारोग्य निश्चयः॥ १३४॥ एवं तैलेन दुग्धेन सर्पिषा स्वेदयेन्नरम् ॥ एकान्तरो द्व्यन्तरो वा युक्तः स्नेहोऽवगाहने ॥ १३५॥

(क) एतावता क्वाथो दुग्धञ्च नित्यमेव युज्यते स्नेहस्तु दिनमेकन्द्वे वा दिने गमयित्वा युक्तः। अग्निमान्द्य शङ्कयेति भावः।

भा॰ पक्षान्तर को कहते हैं। नाभसे छ अंगुल तक डूबा हुवा और गरम तील काढ़ेकी धारसे कंधेपर सींचा हुवा स्निग्ध शरीर मनुष्य ठहरे ॥ १३३॥ (क) येह अर्थहै कि पहले वातनाशक औषधके काढ़े से गलेतक भरे हुवे कोष्टकयाह में बैठा रहे ॥ अथवा नाभिसे छ अंगुल ऊपर जबतक काढ़े में डूबा बैठा हुवा। पीछे से काढ़ की धार से कन्धोंपर सींचा हुवा ठहरे ॥ तब तक कोष्ट भरजावे। क्वाथ पक्षमें पहले से शरीर में तेल लगाया हुवा ठहरे। एक मुहूर्त्त से चार मुहूर्त्त तक। तब तक न्हावे जबतक आरोग्य निश्चय है ॥ १३४॥ इस प्रकार तेल दूध और घृतसे मनुष्य को स्वेदन करे एक दिन बीच देकर अथवा दोदिन बीच देकर स्नेह युक्त हुवा स्नान करे ॥ १३५॥ उस्से काढ़ा दूध नित्यही योजना करे। और स्नेह एक या दो दिन बीच देकर योजना करे। अग्निमान्द्य की शंका से यह मतलब है ॥

शिरा मुखे र्लोमकूपै र्धमनीभिश्च तर्पयेत् ॥ शरीरे बलमाधत्ते युक्तः स्नेहोऽवगाहने ॥ १३६॥ जलसिक्तस्य वर्द्धन्ते यथा मूलेऽङ्कुरादयः॥ तथैव धातु वृद्धि

र्हि स्नेह सिक्तस्य जायते ॥ १३७ ॥ नातः परतरः कश्चि दुपायो वातनाशनः ॥ पीनः शूलव्यु परमे स्तम्भ गौरव निग्रहे ॥ १३८ ॥ दीप्तेऽग्नौ मार्द्दवे जात स्वेदनादि रतिर्मता ॥

(अथ मूर्द्ध तैल विधिः)

अभ्यङ्गः परिषेकश्च पिचुर्वस्ति रिति क्रमात् ॥ मूर्द्ध तैलञ्च तुर्द्धास्याद् बलवत्त यथोत्तरम् ॥ १३९ ॥

(क) अभ्यङ्गः तैलेन शिरसो मर्द्दनम् । परिषेकः । शिरसि धारा पातनं पिचुः । तैलाक्त तूल । फाहा इति लोके वस्ति र्वक्ष्यमाणः ॥

भा० शिर मुख लोम कूप धमनी के द्वारा तृप्त करे । स्नेह युक्त स्नान करने से शरीर में बल होता है ॥ १३६ ॥ जैसे मूलमें जल सींचे सें अंकुरादिक बढ़ते हैं । वैसेही स्नेह सींचे सो धातुवृद्धि होती है ॥ १३७ ॥ इस्से सिवाय और कोई उपाय वात नाशक नहीं है ॥ पीन शूल का उपरम स्तम्भ और भारीपन इनका निग्रह ॥ १३८ ॥ दीप्त अग्नि मृदुता येह स्वेदनसे होते हैं ॥

[अनन्तर मूर्द्ध तैल विधि ॥ अभ्यंग परिषेक पिचु वस्ति इस क्रम से ॥ मूर्द्ध तैल चार प्रकारका है वोह यथोत्तर बल वाले हैं ॥ १३९ ॥

(क) तैल से शिरका मलना । सिर पर धार देनी । फाहा । वस्ति वक्ष्यमाण है ॥

त्रयोऽभ्यङ्गादयः पूर्वे प्रसिद्धाः सर्व्वतः स्मृताः ॥ शिरो वस्ति विधिश्चात्र प्रोच्यते सुश्रुतस्मतः ॥ १४० ॥ शिरो वस्तिश्चर्म्मणः स्याद्विमुखो द्वादशाङ्गुलः ॥ शिरः प्रमाणस्तं बद्धा मस्तके माषपिष्टकैः ॥ १४१ ॥ सन्धिरोधं विधायाशु स्नेहैः कोष्णैः प्रपूरयेत् ॥ तावद्धार्य्यं स्तु यावत्स्यान्नासा

कर्णामुख श्रुतिः ॥ १५२॥ वेदनोप शमो वापि मात्रा णां वा सहस्त्रकम् ॥ स्वजानुनः करावर्त्तं कुर्य्याच्छो टिकया युतम् ॥ १५३ ॥ एषा मात्रा भवेदेका सर्व्वे त्रैवैष निश्चयः ॥ विना भोजनमेवात्र शिरो वस्तिः प्रशस्यते ॥ १५४॥ प्रयोज्यस्तु शिरोवस्तिः पञ्च सप्त दिनानिवा ॥ विमोच्य शिरसो वस्तिं गृह्णीयाच्च समन्ततः॥ १५५॥

भा॰ अभ्यंगादिक तीन पहले सब तरफ प्रसिद्ध कहेहैं ॥ सूत्त सम्मती से शिरो वस्ति की विधि यहाँपर कहते हैं ॥ १५० ॥ शिरोवस्ति चमड़ेकी दो मुख बारह अङ्गुल होतीहै ॥ शिरके प्रमाण उसको मस्तक में बान्धकर उड़द की पीठी से ॥ १५१॥ शीघ्र सन्धिको बन्द करके सील गरम स्नेहसे भरदेवे । तब तक धारण करे जब तक नाक कान मुख इनमें से स्राव हो वे ॥ १५२॥ वेदना का शामन अथवा हज़ार मात्रा तक धारण करे ॥ अप ने घुटने पर हाथ फेरे । चुटकी के साथ ॥ १५३॥ येह एक मात्रा होती है सब जगह येह निश्चय है ॥ यहाँपर भोजनके बिनाही शिरो वस्ति प्रशस्त है ॥ १५४॥ शिरो वस्ति पाँच सात दिन देनी चाहिये ॥ शिरकी वस्ति को विमोचन करके आस पास से शिरपर ग्रहण भी करे उसके अनन्तर सील गरम जलमें स्नान करे ॥

ऊर्द्ध कायन्ततः कोष्णे नीरे स्नानं समाचरेत् ॥ अनेन दुर्ज्जया रोगा वातजा यान्ति सङ्क्षयम् ॥ १५६॥ शिरः कम्पादयस्तेन सर्व्व कालेषु युज्यते ॥

पञ्च सप्त दिनानि वेत्युक्ता सर्व्वकाले ष्विति शिरः कम्पादि रोगानु वृत्तौ ज्ञेयम् ॥

[अथ कर्णपूरण विधिः]

स्विदये त्कर्ण देशान्तु किञ्चिन्नुः पार्श्व शायिनः॥ मूत्रैः स्नेहैः रसैरुष्णैः श्रोत्र रन्ध्रं प्रपूरयेत् ॥ २५७ कर्णञ्च पूरितं रक्षेच्छत पञ्च शतानि वा ॥ सहस्रं वापि मात्राणां श्रोत्रकण्ठ शिरोगुदे ॥ २५८॥ मूत्राद्यैः पूरणं कर्णे भोजनात्प्राक् प्रशस्यते ॥ तैलाद्यैः पूरणं कर्णे भास्करेऽस्त मुपागते ॥ २५९॥ [तद्यथा] कर्णे शूलाकुले कोष्णं वस्तमूत्रं ससैन्धवम् ।निः क्षिपेत्तेन शाम्यन्ति शूल पाकादिका रुजः॥ ॥ २५०॥ शृङ्गवेरञ्च मधुकं सैन्धवं तैलमेवच ॥ कदूष्णं कर्णयोर्देय मेतत् स्याद् वेदनापहम्।२५१॥

भा० इससे दुर्ज्जय वातके रोग नाशको प्राप्त होतेहैं ॥ २५६॥ उससे शिरः कम्पादिक सब कालमें रहतेहैं ॥ पांच सात दिन इस प्रकार कहकर सबकाल में इस प्रकार शिरः कंपादि रोगकी अनुवृत्ति में जानना चाहिये ॥

[अनन्तर कर्ण विधि ॥ थोड़ेसे करवट हुवेके कर्णदेशमें स्वेदन करे ॥ मूत्र स्नेह उष्ण रस इनसे कर्ण छिद्रको भरदेवे ॥ २५७ ॥ भरे हुवे कर्णकी रक्षा करे सौ पान्सौ ॥ अथवा हजार मात्रा कान कंठ और शिरके रोगमें ॥ २५८ ॥ कर्ण में मूत्रादिक से पूरण भोजन से पहिले प्रशस्त है ॥ कानमें तैलादिक का डालना सूर्य्यास्त होनेपर प्रशस्त है ॥ २५९॥ वोह जैसे] शूलसे व्याकुल कर्णमें सीत गरम वकरी का मूत्र सैन्धव के सहित ॥ डाले वसेस शूलपाक आदि रोग शमन होते हैं ॥ २५०॥ अद्रक मधुवा सैन्धव तेल । कदु उष्ण इनको कानों में देना चाहिये ॥ येह वेदना का नाशक है ॥ २५१॥

पीतार्क पत्र माज्येन लिप्तो वन्हौ प्रतापयेत् ॥ तद्रसः श्रवणे क्षिप्तः कर्णशूल हरः परः॥२५२॥ [अथ लेप विधिः] आलेपस्य तु नामानि लेपो ले-

पन लिप्तकौ ॥ दोषघ्नो विषहा वर्ण्यः स च लेपस्त्रिधामतः ॥ १५३ ॥ त्रिप्रमाणश्चतुर्भाग स्त्रिभागार्द्धाङ्गुलोन्नतः ॥ आर्द्रो व्याधिहरः स स्याच्छुष्को दूषयति छविम् ॥ १५४ ॥

[चतुर्भाग त्रिभागार्द्धाङ्गुलोन्नतः दोषघ्नो लेपो यथा] शोथघ्न दारु सिद्धार्थ सुण्ठी शोभाञ्जनत्वचाम् ॥ आरनालेन पिष्टानां प्रलेपः सर्व्व शोथहा ॥ १५५ ॥ (शोथघ्नी पुनर्नवा।)

भा० ज़र्द आंक के पत्तों को घृत लगाकर आग पर सेके ॥ उस का रस कान मे डालने से वोह अत्यन्त कर्णशूल का नाशक है ॥ १५२ ॥ [अनन्तर लेपविधि।] आलेप के नाम। लेप लेपन लिप्तक। येह नाम हैं ॥ वे दोषघ्न विषनाशक वर्णको अच्छा करने वाले ऐसे तीन प्रकार कहेहैं ॥ १५३ ॥ तीन प्रमाण कहेहैं। चतुर्भाग त्रिभाग और अर्धा ङ्गुल ऊंचा ॥ वोह गीला रोग नाशक होता है। और सूका छवि को बिगाड़ता है ॥ १५४ ॥ चतुर्भाग त्रिभाग और अर्द्धाङ्गुल ऊंचा दोष नाशक लेप जैसे। पुनर्नवा देवदारु सरसों सोंठ सहिंजने की छाल ॥ इसको आरनाल से पीस कर लेप सब शोथ नाशक है ॥ १५५ ॥
(आरनाल कां कों प्रकरण में देख लेना) (पुनर्नवा शोथ नाशक)

शिरीष मधुयष्टी च तगरं रक्तचन्दनम् ॥ एला मांसी निशायुग्मं कुष्ठं वालकमेव च ॥ १५६ ॥ इति संचूर्ण्य लेपोऽयं पञ्चमांस घृतस्तुतः ॥ जलेन क्रियते सुज्ञै र्दशाङ्ग इति संज्ञितः ॥ १५५ ॥ वीसर्पञ्च विषस्फोटान् शोथ दुष्ट व्रणान् जयेत् ॥

[विषहा लेपो यथा] अजादुग्ध तिलैर्लेपो नवनी

तेन संयुत: ॥ शोथ मारुष्करं हन्ति लेपो वा कृष्ण मार्त्तिक: ॥ १५६॥ (नवनीते नार्द्धिकेण।) [पराथे लेपो यथा] रक्त चन्दन मञ्जिष्ठा लोध्र कुष्ठ प्रियङ्गव: ॥ वटाङ्कुरा मसूराश्च व्यङ्गघ्नां मुख कान्तिदा: ॥ १५७॥ अथ लेप विधिश्चैव प्रोच्यते सुज्ञ सम्मत: ॥ आलेपश्च प्रदेहश्च द्वौ भेदौ तस्य भाषितौ ॥ १५८॥ चर्माद्र्रं माहिषं यद्व त्प्रोच्यते संमित स्तयो: ॥ शीतस्तनु र्विशोषी च प्रलेप: पित्त हन्मत: ॥ १५९॥ आर्द्रो घनस्तथोष्ण: स्या त्प्रदेह: श्लेष्म वातहा ॥

भा० सिरीस मुलहठी नगर लालचन्दन। इलायची जटामांसी दोनों हलदी कूट सुगन्धवाला ॥ १५६॥ इनको पीस कर यह लेप पांचवां भागघृत से युक्त ॥ जलसे कियाजाताहै इसको बुद्धिवानों ने दशाङ्ग ऐसा कहा है ॥ १५५॥ येह विसर्प विषफोड़े सूजन दुष्टव्रण इनको जीतता है ॥ विष नाशक लेप जैसे ॥ बकरीके दूधसे तिलोंको पीस कर माखन के साथ ॥ येह लेप भिलावेकी सूजन को नाश करता है अथवा काली मिट्टी का लेप नाश करताहै ॥ १५६॥ (आधे माखन से) विषहा लेप जैसे। लाल चन्दन मजीठ लोध कूट प्रियङ्गु। वटके अङ्कुर मसूर इनका लेप व्यङ्ग नाशक मुखकी कान्ति को देने वाला है ॥ १५७॥ अनन्तर बुद्धिवानों की सम्मती से लेप विधि कहते हैं ॥ आलेप और प्रदेह येह दो भेद उसके कहे हैं ॥ १५८॥ उनका प्रमाण भैंसके गीले चमड़े के समान कहाहै ॥ शीतल पतला सूका हुवा प्रलेप पित्त नाशक कहा है ॥ १५९॥ गीला गाढ़ा तथा उष्ण प्रदेह होताहै येह कफ वात का नाशक है ॥

न रात्रौ लेपनं कुर्य्या च्छुष्यमाणं न धारयेत् ॥१६०॥ शुष्यमाण मुपेक्षेत प्रदेहं पीड़नम्प्रति ॥ तमसा

पिहितो ह्यूष्मा लोम कूप मुखे स्थितः ॥ २६१॥ विना लेपेन निर्याति रात्रौ न लेपयेदतः॥
(नमसा रात्र्यन्ध कारेण) रात्रावपि प्रलेपादि र्व्रणे देयो विचक्षणेः ॥ अपाकि न्यति गम्भीरे रक्तश्लेष्म समुद्भवे ॥ २६२॥ [प्लेपो यथा]
मधुकं चन्दनं मूर्वा नलमूलञ्च पर्पटम् ॥ उशीरं बालकं पद्मं प्रलेपः पित्त शोथ हृत् ॥ २६३॥

भा० रात को लेप न करे और सूके व्रणे को न धारण करे ॥ २६०॥ पीड़न के वास्ते सूके व्रणे को भी रहने देवे ॥ रोम कूपके मुखमें रहने वाली गरमी नमसे ढकी रहती है ॥ २६१॥ वोह रातमें बिना लेपके निकलती है इसवास्ते लेप न करे ॥ (रात की अन्धेरी से) चतुर व्रणमें रातको भी प्रलेपादि देना चाहिये ॥ कचे अति गम्भीर रक्तपित्त से उत्पन्न व्रने में ॥ २६२॥
[प्रलेप जैसे। महुवा चन्दन मरोड़फली नरकुलकी जड़ पित्त पापड़ा ॥ खस सुगंधवाला पद्माख इनका लेप पित्तके शोथ का नाशक है ॥ २६३॥

[प्रदेहो यथा। बीजपूर जटा हिंस्रा देवदारु महौषधम् ॥ रास्नाऽरणिः प्रदेहोऽयं वात शोथ विनाशनः॥ ॥ २६४॥ (अरणि रग्निमन्थः) कृष्णा पुराण पिण्याक शिग्रु त्वक् सिकता शिवा ॥ गोमूत्र पिष्टः कोष्णोऽयं प्रदेहः श्लेष्म शोथहा ॥ २६५॥
[अथ शोणितस्रावण विधिः]

भा० प्रदेह जैसे। बिजौरे की जड़ कठेली देवदारु सोंठ। रास्ना अरणी इनका यह प्रदेह वात शोथ का नाशक है ॥ २६४॥ अग्निमन्थ। पीपल पुरानी खल सहिंजने की छाल रेत हड़ ॥ गोमूत्र से पीसा कुछ गरम यह सील गरम प्रदेह कफ शोथ का नाशक है ॥ २६५॥ [अनन्तर रक्त स्रावण विधिः।]

शोणितं स्रावयेज्जन्तो रामयं प्रसमीक्ष्य च ॥ प्रस्थं
प्रस्थार्द्ध मथवा प्रस्थार्द्धार्द्ध मथापि वा ॥ २६६ ॥
शरत्काले स्वभावेन शोणितं स्रावयेन्नरः ॥ त्वग्
दोष ग्रन्थि शोथाद्या नश्यन्ति रुधिरोद्भवाः ॥ २६७॥
अभ्रे वर्षासु विद्युत्सु शीते ग्रीष्मे शरद्यपि ॥ मध्या
न्हे शीतकाले च रुधिरं स्रावयेद् बुधः ॥ २६८ ॥
मधुरं वर्णतो रक्तः मशीतोष्णं तथा गुरु ॥ शोणितं
स्निग्ध विस्रञ्च विदग्धं पित्तवद्भवेत् ॥ २६९॥ विस्र
ता द्रवता राग श्चलनं विलयस्तथा ॥ भूम्यादि पञ्च
भूताना मेते रक्ते गुणाः स्मृताः ॥ २७०॥

भा० मनुष्य रोगको देखकर रुधिर निकलवावे ॥ प्रस्थभर आधाप्रस्थ अ
थवा उससे भी आधा निकलवावे ॥ २६६ ॥ मनुष्य शरत्कालमें स्वभावसे ही
रुधिर निकलवावे ॥ त्वचाके दोष गाँठ सूजन आदिक रक्तसे उपजे नाशको प्रा
स होतेहैं ॥ २६७ ॥ बादल के न होनेमें बिजली संयुक्त वर्षामें शीत ग्रीष्म में
शरद में भी । मध्यान्ह मे शीतकालमें भी बुद्धिवान् रुधिर निकलवावे ॥२६८
मधुर वर्णसे रक्त अशीत उष्ण तथा भारी ॥ चिकनी दुर्गन्धि युक्त विदग्ध रु
धिर पित्तको करने वाला होता है ॥२६९॥ दुर्गन्धता पतलापन राग चलन
तथा विलय ॥ भूमि आदि पांच भूतोंको यह गुण रक्तमे कहे हैं ॥ २७०॥

रक्ते दुष्टे भवेच्छोथो रक्तमण्डलमेवच ॥ व्यथा
दाहश्च पाकश्च कराडूश्च पिड़काङ्गमः ॥ २७१॥
वृद्धे रक्ताङ्ग नेत्रत्वं शिराणां पूर्णता तथा ॥ गात्रा-
णां गौरवं निद्रा मेहो दाहश्च जायते ॥ २७२॥ क्षीणे
ऽस्रे मधुराकाङ्क्षा मूर्च्छा च त्वचि रूक्षता ॥ शैथि-

त्यञ्च शिराणां स्याद्वाता दुन्मार्ग गामिता ॥ १७३॥ (वातात् रूक्षदे शयज नितात्) अरुणं फेनिलं रूक्षं परुषं तनु शीघ्रगम् ॥ आस्कन्दि सूचीनिस्तोदि रक्त स्याद्वात दूषितम् ॥ १७४॥ पित्तेन पीतं हरितं नीलं श्यावञ्च विस्त्रकम् ॥ अस्त्रा दूष्यं माक्षिकाणां पिपीलिका मनिष्टकम् ॥ १७५॥ शीतलं बहुलं स्निग्धङ्गैरिकोदक सन्निभम् ॥ मांस पेशी प्रभं स्कन्दि मन्दगं कफ दूषितम् ॥ १७६॥ द्विदोष दुष्टं संसृष्टं त्रिदुष्टं पूति गन्धकम् ॥ सर्व लक्षण संयुक्तं काञ्जिकाभञ्च जायते ॥ १७७॥

भा० दुष्ट रक्तमें सूजन लाल चकत्ते। पीड़ा दाह पाक खुजली फुनसियां यह होतीहैं ॥ १७१॥ रक्त के बढ़ने में शरीर और नेत्र लाल शिराओंकी पूर्णता तथा ॥ अङ्गोंमें भारीपन निद्रा प्रमेह और दाह येह होतेहैं ॥ १७२॥ रक्त के क्षीणमें मधुरकी इच्छा मूर्च्छा त्वचामें रूक्षता। शिथिलता शिराओंकी होती है ॥ वात से उन्मार्ग गमन होताहै ॥ १७३॥ (रूक्ष और क्षीणता से) अरुण झागवाला रूखा कठोर सूक्ष्म शीघ्र चलनेवाला फुटकियों से युक्त सुई सी चुभनेवाला। ऐसा रक्त वातसे दूषित होता है ॥ १७४॥ पित्त से पीला हरा नीला काला दुर्गन्धि युक्त ॥ अमधुर ऊष्ण मक्षिका और चींटी इनको अप्रिय होताहै ॥ १७५॥ कफसे बिगड़ाहुवा शीतल मोटा चिकना गेरूकेजल सदृश ॥ मांसकी थैली समान गांठोंसे युक्त मन्द चलनेवाला होता है ॥ १७६॥ दो दोषों से बिगडा हुवा मिलेहुवे लक्षण होताहै तथा तीन दोषों से दुष्ट दुर्गन्धिवाला होता है ॥ सब लक्षणों से युक्त कांजी के समान होता है ॥ १७७॥

विषदुष्टं भवेत्श्यावं नासिको न्मार्गगं तथा ॥ विस्रं काञ्जिक संकाशं सर्वकुष्ठ करं तथा ॥ १७८॥ इन्द्रगोप प्रभं ज्ञेयं प्रकृति स्थम संहतम् ॥ शोथे दाहे

ऽङ्गपाके च रक्तवर्णोऽसृजः स्रुतौ ॥ १७९ ॥ वातरक्ते तथा कुष्ठे सपीडे दुर्जयेऽनिले ॥ पाण्डुरोगे श्लीपदे च विषदुष्टे च शोणिते ॥ १८० ॥ ग्रन्थ्यर्बुदापचीक्षुद्र रोगाधि मन्थकाभिधे ॥ विदारी स्तन रोगेषु गात्राणां सादगौरवे ॥ १८१ ॥ रक्ताभिष्यन्द तन्द्रायां पूतिघ्राणास्य देहिके ॥ यकृत् प्लीह विसर्पेषु विद्रधौ पिडकोद्गमे ॥ १८२ ॥ कर्णौष्ठ घ्राण वक्त्राणां पाके दाहे शिरो रुजि ॥ उपदंशे रक्त पित्ते रक्त स्रावे प्रशस्यते ॥ १८३ ॥ दोषेष्वेषु प्रच्छनैर्वा जलौका लावकादिभिः ॥ अथवापि शिरा मोक्षैः कार्य्ये द्रक्त पातनम् ॥ १८४ ॥ न कुर्वीत शिरा मोक्षं कृशस्याति व्यवायिनः ॥ क्लीवस्य भीरोर्गर्भिण्याः सूतायाः पाण्डु रोगिणः ॥ १८५ ॥

भा० विषसे उष्ण काला नाकसे आनेवाला । दुर्गन्धि युक्त काँजी के समान सब कुष्ठों को करने वाला होता है ॥ १७८ ॥ प्रकोलस्थ पतला और बक्री के समान जानना चाहिये ॥ सूजन दाह अंगपाक रक्तवर्ण फस्त ॥ १७९ ॥ वात रक्त तथा कुष्ठ पीडाके सहित दुर्जय वातमें ॥ पाण्डुरोग श्लीपद विषसे दुष्ट रुधिर ॥ १८० ॥ गांठ अर्बुद अपची क्षुद्ररोग अधिमन्थक ॥ विदारी स्तनरोग शरीरकी पीड़ा और भारीपन ॥ १८१ ॥ रक्ताभिष्यन्द तन्द्रा दुर्गन्धियुक्त नाक मुख देह वाला ॥ तिल्ली पिलही विसर्प विद्रधि और फुनसियों के होने में ॥ १८२ ॥ कान होठ नाक मुख इनका पाक दाह शिरकी पीड़ा ॥ उपदंश रक्त पित्त इनमें फस्त अच्छी है ॥ १८३ ॥ इन दोषों में पछने से अथवा जोक तूम्बी इनसे ॥ अथवा फस्त से रुधिर निकलवावे ॥ १८४ ॥ दुर्बल की वज्रन मैथुन करनेवाले की नपुंसक की डरपोक की गर्भिणी की जच्चा की पाण्डु रोग वाले की ॥ १८५ ॥

पञ्च कर्म्म विशुद्धस्य पीत स्नेहस्य चार्शसाम् ॥ सर्वो

ङ्ग शोथ युक्ताना मुदरि श्वास कासिनाम् ॥ २८६ ॥ छर्द्यतीसार कुष्ठाना मति स्विन्नतरो रपि ॥ ऊन षोड़ श वर्षस्य गत सप्तति कस्य च ॥ २८७ ॥ आघातात् स्रुत रक्तस्य शिरा मोक्षो न शस्यते ॥
(तथा च स्रुतरक्तस्य रक्त पित्तादिना गत रक्तस्य)
एषां चात्ययिके रोगे जलौका भि र्विनिर्हरेत् ॥ तथा च विष जुष्टानां शिरामोक्षो न शस्यते ॥ २८८ ॥ गो शृङ्ग न जलौकाभिर लावूभि रपि त्रिधा ॥ वातपित्त कफैर्दुष्टं शोणितं स्रावयेद् बुधः ॥ २८९ ॥ द्विदोषा भ्यान्तु दुष्टं यत् त्रिदोषै रपि दूषितम् ॥ दूषितं स्रा वयेद् युक्त्या शिरामोक्षैः पदे स्तथा ॥ २९० ॥ गृह्णा ति शोणितं शृङ्गं दशाङ्गुल मितं म्बलात् ॥ जलौ का हस्त मात्रं तु तुम्बी तु द्वादशा ङ्गुलम् ॥ २९१ ॥

भा० पंच कर्मसे शुद्ध की स्नेह पीयेकी बवासीर वालेकी ॥ सब अंगमें शोथ युक्त की उदर वाला श्वास कास वाले की ॥ २८६ ॥ वमन अतीसार कुष्ठ वाले की अति स्विन्न शरीर वालेकी ॥ सोलहवरस से कम की और सत्तर बरस वा ले की ॥ २८७ ॥ चोट से रुधिर निकले की इनको फस्त अच्छी नहीं है ॥ उसी प्रकार रक्त पित्तादि निकले रक्तका ॥ इनके रोग बहुत बढ़ जानेमें जोकों से रुधिर निकाले ॥ वैसेही विष युक्तों को शिरा मोक्ष अच्छा नहीं है ॥ २८८ ॥ सीङ्ग से जोकों से और तूम्बी से भी तीन प्रकार ॥ वात पित्त कफ से दुष्ट रुधि र को बुद्धिवान निकलवावे ॥ २८९ ॥ दो दोषों से जो दुष्ट और जो तीनों दोषों से दूषित ॥ ऐसे बिगड़े रुधिर को नस्तर से युक्ति के साथ निकलवावे ॥ २९० ॥ दश अङ्गुल की सींगी के द्वारा बलात्कारसे निकलवावे ॥ और हाथभरकी जोंक तथा बारह अंगल की तूम्बी ॥ २९१ ॥

पदमङ्गुल मात्रस्य शिरा सर्वाङ्ग शोधिनी ॥ पीने

निरन्ने मूर्च्छार्त्ति निद्राभीति मदश्रमे ॥ २८२॥ शु-
क्रैर्ना स्त्रावयेद्रक्तं तथा विण्मूत्र सङ्गिनाम् ॥ शो.
णिते चा प्रवृत्ते तु कुष्ठ त्रिकटु सैन्धवैः ॥ २८३॥
मर्दयेत व्रण वक्त्रञ्च तेन रक्तं प्रवर्त्तते ॥ तस्मान्न
शीते नात्युष्णे ना स्विन्ने नाति तापिते ॥ २८४॥ पी
त्वा यवागूं तस्स्य स्त्रावयेच्छोणितं बुधः ॥ अति
स्विन्नस्योष्ण काले तथैवाति शिरा व्यधात् ॥ २८५
अति प्रवर्त्तते रक्तं तत्र कुर्य्यात्प्रति क्रियाम् ॥

भा० नस्तर एक अंगल का मस सरोरुह हैं ॥ शीतमें अपवास में मूर्च्छा पीड़ा नि को
द्रा भय मद श्रम इनसे ॥ २८२॥ शुक्र में फस्त न खुलवावे और मल मूत्र सङ्गि
योंकी ॥ रुधिर के न निकलने में कूट त्रिकुटा सैन्धव इनसे ॥ २८३॥ व्रण का
मुख मले । उस्से रक्त निकलता है ॥ इस वास्ते न शीतमें न अति उष्ण में
न अति स्विन्न में न अति तापित में रुधिर निकलवावे ॥ २८४॥ यवागू को
पीकर तृप्त हुवे की फस्त खुलवावे ॥ अति स्विन्नकी उष्णकाल में वैसेही अ
ति शिरा व्यध से ॥ २८५॥ रक्त बहुत निकलता है उसका इलाज करे ॥

अति प्रवृत्ते रक्ते तु लोध्र सर्ज्जर साञ्जनैः ॥ २८६॥ य
व गोधूम चूर्णैश्च धव धन्वन गैरिकैः ॥ सर्प निर्म्मो
कि का चूर्णै व्रणतः स्थापितं नरः ॥ २८७॥ मुखं
व्रणस्य दद्याच्च शीते क्षौम चरे व्रणाम् ॥ विध्येद्
ऊर्द्ध शिरान्ताव दहेत् क्षारेण वन्हिना ॥ २८८॥ व्र
णं कषायं सन्धत्ते रक्तं स्कन्दयते हिमः ॥ व्रणास्यं
भोजयेत् क्षारो दाहः सङ्कोचयेच्छिराः ॥ २८९॥

भा० बहुत रक्त के निकलने में लोध राल रसवत इनसे ॥ १९६॥ और जव गेहूं के चूर्णसे और धव जवासे गेरू इनसे ॥ और सांपकी कैंचली का चूर्ण वारं नरफ रखके मनुष्य इनसे ॥ १९७॥ व्रण का मुख वान्धकर शीतल द्रव्यों से उपचार करे ॥ अथवा उसके ऊपर सिराको वान्धे । और क्षार अग्नि से जलावे ॥ १९८॥ व्रण को कषाय जोड़ना है और शीतल रक्तको जमाना है ॥ व्रणके मुखमें क्षार योजना करे और दाह सिरा का सङ्कोच करते हैं ॥ १९९ ॥

रक्ते दुष्टेऽवशिष्टेऽपि व्याधिर्नैव प्रकुप्यति ॥ अतो रक्षेत् सावशेषं रक्तं नाति स्रुति र्हिता ॥ २००॥ आन्ध्य माक्षेपकं तृष्णान्तिमिरं शिरसो रुजः ॥ पक्षाघातं श्वास कासौ हिक्कादाहौ च पाण्डुताम् ॥२०१ कुरुतेऽतिस्रुतं रक्तं मरणं वा करोति च ॥ देहस्योत्पत्ति रस्रजो देहस्ते नैव धार्य्यते ॥ २०२॥ रक्तं जीवस्य चाधार स्तस्मा द्रक्षेद सृग् बुधः ॥ शीतोप चारैः कुपिते स्रुत रक्तस्य मारुते ॥ २०३॥ कोष्णेन सर्पिषा शोथं सव्यथं परिषेचयेत् ॥ क्षीणस्यैण शशोरभ्र हरिण च्छाग मांसजः ॥२०४॥

भा० दुष्ट रक्तके वाक़ी रहने में भी व्याधी प्रकोप को नहीं प्राप्त होती ॥ इसवास्ते अवशेष के सहित रक्षाकरो रक्त का वहुत निकलना हितनहीं है ॥ २००॥ अन्धापन आक्षेपक तृषा तिमिर शिरकी पीड़ा ॥ पक्षाघात श्वास कास हिचकी दाह पांडुता ॥ २०१॥ इनको वहुत निकला रक्त करताहै ॥ और मरण को भी करताहै । रक्त से शरीर की उत्पत्ति है और देह उसीसे रहता है ॥ २०२॥ रक्त जीवका आधार है इसवास्ते वुद्धिवान् रक्त की रक्षाकरे ॥ ।फ़स्त लिये का शीत उपचार से कुपित ऊदे वातमें ॥ २०३॥ सील गरम घृतसे पीड़ाके शोथको सींचे ॥ क्षीण को हरिण खरगोश उरभ्र लाल हिरन वकरा इनका ॥ २०४॥

रसः समुचितैः पाने क्षीरं षष्टिकया हितम् ॥ पीड़ा

शान्ति र्लघुत्वं च व्याध्युपद्रव संक्षयः ॥ २०५ ॥ मनः स्वास्थ्यम्भवे च्चिन्हं सम्यक् निःसारिते ऽसृजि ॥ व्यायाम मैथुनं क्रोध शीतस्नान प्रधानकान् ॥२०६ एकाशनं दिवानिद्रा क्षाराम्ल कटु भोजनम् ॥ शोकं वाद मजीर्णञ्च त्यजेदावल दर्शनात् ॥ २०७ ॥

[अथप्रसादनकर्म्माणि]

सेक आश्च्योतनं पिण्डी बिडालस्तर्पणं तथा ॥ पुट पाकोऽञ्जनञ्चेति कृत्वा नेत्र मुपाचरेत् ॥ २०८ ॥

भा० पेयारुचा प्रशस्त है और पीनेमें साठी चावलके साथ दूध हित है ॥ पीड़ा की शान्ति हलकापन रोगके उपद्रवों का नाश ॥ २०५ ॥ मनकी स्वस्थता होती है। अच्छी तरह फस्त लियेमें येह लक्षण होते हैं ॥ कसरत मैथुन क्रोध शीतलस्नान कठोर वान इनको ॥ २०६ ॥ एकबार भोजन दिनमें शयन क्षार अम्ल कटु इन रसोंका भोजन ॥ शोक वाद और अजीर्ण इनको बल आने तक त्याग देवे ॥ २०७ ॥

[अनन्तर नेत्र की स्वच्छता के कर्म्म ।] सेक आश्च्योतन पिंडी बिड़ाल तर्पण तथा ॥ पुट पाक अञ्जन इनको करके नेत्रका इलाज करे ॥ २०८ ॥

[अथ कल्पो विधिः तत्र सेक विधिः।]

सेकस्तु सूक्ष्म धाराभिः सर्व्वस्मिन्नयने हितः ॥ मीलिताक्षस्य मर्त्यस्य प्रदेय श्चतुरङ्गुलात् ॥ २०९ ॥ स सस्नेहो भवेत् वाते पित्ते रक्ते च रोपणः ॥ लेखनस्तु कफे कार्य्य स्तस्य मात्राभि धीयते ॥ २१० ॥ षड्भिर्वाचां शतैः स्नेहे चतुर्भिश्चैव रोपणे ॥ ते स्त्रिभिर्लेखने कार्य्यः सेको नेत्र प्रसादने ॥ २११ ॥

भा० [अनन्तर कल्प विधि ।] उसमें सेक विधि ॥ मनुष्य की आंख बन्द कर वाकर चार उंगल ऊपर से सेक देना चाहिये । येह सब प्रकार के नेत्र रोग में हित है ॥ २०८ ॥ स्नेह के सहित वातमें हितहै और पित्त तथा रक्तमें रोपण ॥ कफ में लेखन करना चाहिये उसकी मात्रा कहता हूं ॥ २१० ॥ स्नेहमें छः सौ मात्रा और रोपण में चारसौ मात्रा तथा तीनसौ मात्रा लेखन में नेत्र प्रसादन सेक करना चाहिये ॥ २११ ॥

निमेषोन्मेषणं पुंसा मङ्गुल्या च्छोटिकाथ वा ॥ गुर्वक्षरोच्चारणं वा वाङ्मात्रेयं स्मृता बुधैः ॥ २१२॥ सेकस्तु दिवसे कार्यो रात्रौ चात्यन्तिके गदे ॥ एरण्डस्य दलैः पिष्टैः पक्वमाज्यं पयो हितम् ॥ २१३ ॥ सुखोष्णं नेत्रयोरन्तः सिक्तं वातार्त्ति नाशनम् ॥

भा० मनुष्यों का निमेष और उन्मेष उंगली की चुटकी ॥ अथवा गुरु अक्षरका उच्चारण इसको बुद्धि वालों ने वाङ्मात्रा कहाहै ॥ २१२ ॥ सेक दिनमें करना चाहिये और रातमें अत्यन्तिक रोगमें करना चाहिये ॥ अरण्डी के पत्ते पीसकर उस्से पकाया हुवा बकरी का दूध हितहै ॥ २१३ ॥ सील गरम नेत्र के भीतर सींचा हुवा वात की पीडा का नाशक है ॥

[अथाश्च्योतन विधिः ।]

क्वाथ तोयासव स्नेह विन्दुना यत्तु पातनम् ॥ चक्षुषोन्मीलिते नेत्रे प्रोक्तमाश्च्योतनं हितम् ॥ २१४॥ विन्दवोऽष्टौ लेखने षु रोपणे दश विन्दवः ॥ स्नेहने द्वादश प्रोक्ताः शीतले कोष्ण रूपिणः ॥ २१५ ॥ उष्णे तु शीत रूपाः स्युः सर्वत्रैवैष निश्चयः ॥ वाते तिक्तं तथा स्निग्धं पित्ते मधुर शीतलम् ॥ २१६॥ कफे तिक्तोष्ण रूक्षं क्रमादाश्च्योतनं हितम् ॥ आश्च्यो

ननानां सर्वेषां मात्रास्या द्वाक् शतोन्मिता ॥ २१७॥ नाँ
ततः परं लोचनाँस्भे षजा नामयोगतः ॥ आश्च्यो
तनं न कर्त्तव्यं निशायां केन चित् क्वचित् ॥ २१८॥
[तद्यथा] बिल्वादि पञ्च मूलेन वृहत्येरण्ड शिग्रुभिः
॥ क्वाथ आश्च्योतने कोष्णो वाताभिष्यन्द नाशनः॥
२१६॥ [अथ पिण्डी विधिः।] युक्त भेषज कल्क
स्य पिण्डीक बल मात्रया ॥ वस्त्र खण्डेन संबद्धा ने
त्रेःभिष्यन्द नाशिनी ॥ २२०॥

भा० अनन्तर आश्च्योतन विधि ॥ काढ़ा मधु आसव स्नेह इनको दो उंगल ऊंचे से नेत्र में जो बून्द २ टपकाना है उसको आश्च्योतन कहा है वोह हित है ॥ ॥ २१४॥ लेखन में आठ बून्द रोपण में दश बून्द ॥ स्नेह में बारह बून्द कहे हैं ॥ शीतल में सील गरम ॥ २१५॥ उष्ण में शीत होवे ऐसे सब जगह निश्च य है। वात में तिक्त तथा स्निग्ध पित्त में मधुर और शीतल ॥ २१६॥ कफ में तिक्त उष्ण रूक्ष क्रमसे आश्च्योतन हित है ॥ सब आश्च्योतनोंकी सौ मात्रा होती हैं॥ २१७॥ उसके अनन्तर नेत्रों को औषधों के प्रयोग से ॥ आश्च्योतन न करना चाहिये रातमें किसी से कभी ॥ २१८ ॥ [वोह जैसे] बेल आदि पञ्चमूल और कटेली अंडी सहिंजन इनका ॥ काढ़ा आश्च्योतन में गरम सील वाताभिष्यन्द का नाशक है ॥ २१६ ॥ [अनन्तर पिंडी विधि] युक्त औषध के कल्क की पिंडी कवल मात्रा से ॥ वस्त्र से टुकड़े से बन्धी हुई नेत्र के अभिष्यन्द की नाशक है ॥ २२०॥

स्निग्धोष्णा पिण्डिका वाते पित्तसा शीतला मता ॥
रूक्षोष्णा श्लेष्मणि प्रोक्ता विधिरुक्तो बुधैरयम् ॥
२२१॥ [सा यथा।] धात्री विरचिता पित्ते शिग्रु प
त्र कृता कफे ॥ [अथ विडालक विधिः।].
विडालको वहिर्लेपो नेत्र पक्ष्म विवर्जितः ॥ तस्य

मात्रा परि ज्ञेया मुखालेप विधानवत् ॥ २२२ ॥ यष्टी
गैरिक सिन्धूत्थ दार्वी तार्क्ष्यैः समांशकैः ॥ जलपि
ष्टैर्बहि र्लेपः सर्व नेत्रामया पहः ॥ २२३ ॥

[अथ तर्पण विधिः] वाता तप रजोहीने वेश्मन्युत्तान
शायिनः ॥ अभितो माष चूर्णेन क्लिन्नेन परि पिण्ड
तौ ॥ २२४ ॥ समौ दृढौ च संबाधौ कर्त्तव्यौ नेत्र कोशयोः
॥ पूरयेत् घृत मण्डेन विलीनेन सुखोदकैः ॥ २२५ ॥
सर्पिषा शतधौतेन क्षीरजेन घृतेनवा ॥

भा० स्निग्ध उष्ण पिंडिका वात में और पित्तमें वो शीतल कही है ॥ रूखी उष्ण कफ में कही है ॥ येह विधि बुद्धि वानों ने कहीहै ॥ २२१ ॥ वोह जैसे । आवलों से बनाई हुई टिकिया पित्तमें । सहिंजने के पत्तों की कफ में हित है ॥
[अनन्तर बिडालक विधि ॥ नेत्र पक्ष्म से रहित बाहर लेपको बिडालक कहते हैं ॥ उसकी मात्रा मुख आलेप के विधान समान जाननी चाहिये ॥ २२२ ॥ मुलहठी गेरू सैन्धव दारुहल्दी रसौत इनको सम भाग लेकर ॥ जलसे पीसके बाहर लेप किया हुवा सब नेत्र रोगोंका नाशक है ॥ २२३ ॥
[अनन्तर तर्पण विधिः।] वात आतप धूल इनसे रहित घरमें चित सोये हुवे के ॥ नेत्र में चारों तरफ उड़द के गीले चून को लगावे ॥ २२४ ॥ सम और दृढ़ आँखों के चारों तरफ से घेर करे जैसे कमेरी होती है ॥ उसके भीतर ढिघला घृत या मांड वा सील गरम जल इसे ॥ २२५ ॥ अथवा सौवारका धोया घृत या दूधका घृत इनसे भरे ॥

निमग्नान्यदि पक्ष्माणि यावत स्यु स्तावदेव हि ॥
॥ २२६ ॥ पूरयेत् मीलिते नेत्रे तत उन्मीलयेच्छनैः ॥
भिषग्भिरेष विख्यात स्तर्पणस्योदितो विधिः ॥ २२७ ॥
यद्रूक्षञ्च परिष्यन्दि नेत्रं कुटिल माविलम् ॥ शीर्ण

पक्ष्म शिरोत्पात कृच्छ्रोन्मीलनं संयुतम् ॥ २२८ ॥ तिमिरार्जुन शुक्राद्यै रभिष्यन्दाधि मन्थकैः ॥ शुष्काक्षि पाक शोथाभ्यां युतं वात विपर्य्ययैः॥२२९ दत्तेन तर्पयेत् सम्यङ् नेत्र रोग विशारदः॥ तर्पणं धारयेद्वर्त्म रोगे वाक्शतं बुधैः॥ २३०॥ स्वस्थे कफे सन्धि रोगे वाचां पञ्च शतानि च ॥ षट् शतानि कफे कृष्ण रोगे सप्त शतानि हि ॥ २३१॥ दृष्टि रोगे शता न्यष्टा वधिमन्थे सहस्रकम् ॥

भा॰ निमग्न नेत्र पक्ष्म जब तक होते हैं तब तक ही भरे ॥ २२६॥ उसके अनन्तर धीरे २ खोले ॥ वैद्यों ने येह तर्पण की विधि प्रसिद्ध कही है ॥ २२७॥ जो रूखा परिष्यन्दि कुटिल मैला ॥ नेत्र पलकें गिरीहुई शिरोत्पात कष्टसे उन्मीलन से युक्त ॥ २२८॥ तिमिर अर्जुन शुक्र आदिसे युक्त और अभिष्यन्द अधिमन्थक इनसे ॥ तथा शुष्क नेत्र पाक शोथ इनसे युक्त वात विरुद्धों से॥२२९॥ दिये हुवे औषध से अच्छी तरह पर नेत्र रोग का जानने वाला तर्पण करे ॥ वर्त्म रोगमें सौमात्रा तर्पण धारण करे ॥ २३०॥ स्वस्थ में कफ के सन्धिरोग में पांच सौ ॥ और छ सौ तथा कफ के कृष्ण रोग में सात सौ ही ॥ २३१॥ दृष्टि रोग में आठसौ अधिमन्थ में हजार ॥

सहस्रं वात रोगेषु धार्य्यमेवहि तर्पणम् ॥ २३२॥ पूर्णं चापाङ्ग मार्गेण स्रावयित्वाक्षि शोधयेत् ॥ स्विन्नेन यव पिष्टेन स्नेह वीर्य्ये रितं ततः ॥ २३३॥ यथा स्वन्धूम पानेन कफमस्य विरेचयेत् ॥ एकाहं वा त्र्यहं वापि पञ्चाहं तर्पणञ्चरेत् ॥२३४॥ तर्पणे तृप्ति लिङ्गानि नेत्रस्यैतानि लक्षयेत् ॥ सुखं स्वभाववोधत्वं वैशद्यं नेत्र पाटवम् ॥२३५॥ निर्वृत्ति र्व्याधिशा

न्तिश्च क्रिया लाघव मेवच ॥

(क) निर्वृत्तिः सुखं क्रियालाघवम् । नेत्रस्य क्रियायां निमेषोन्मेषादौ लघुता । गुर्वाविल मति स्निग्ध मश्रु कराडूप देहवत् ॥ घर्षतोद युतं नेत्र मतित र्पित मादिशेत् ॥ २३६ ॥ आस्त्राव शोफ पीड़ाद्य मुपदेह समाकुलम् ॥ रूक्ष मस्त्राव मरुणं नेत्रं स्या द्धीन तर्पितम् ॥ २३७ ॥ अनयोर्दोष बाहुल्या त् प्रयतेत् चिकित्सिते ॥ रूक्ष स्निग्धोपचारा भ्या मेतयोः स्यात्प्रति क्रिया ॥ २३८ ॥

(अनयोः अतितर्पित हीन तर्पितयोः)

भा० और वातरोग में हज़ार मात्रा तर्पण रखना ही चाहिये ॥ २३२॥ अपाङ्ग मार्ग से पूर्ण में स्राव कराकर नेत्र शोधन करावे ॥ स्विन्न जवके आटे से स्नेह वीर्य में जो कहा है उस्से ॥ २३३ ॥ अपने तौर पर धूम पान करके इसके कफको निकाले ॥ एकदिन वा तीनदिन अथवा पांचदिन तर्पण करे ॥ २३४ ॥ तर्पण इन नेत्रके तृप्ति लक्षणों को जानलेवे ॥ सुख स्वप्न अवबोधता वैशद्य नेत्र की पटुता ॥ २३५ ॥ सुख क्रिया लाघव रोगकी शान्ति येह लक्षण हैं ॥

(क) सुख । नेत्र की क्रिया में अर्थात् निमेष उन्मेष आदि में लघुता । भारी मैला अति स्निग्ध और अश्रु खुजली इत्यादि के मानिन्द ॥ घर्ष तोद से युक्त अर्थात् पीडा विशेष इनसे युक्त नेत्र को अति तर्पित कहे ॥ २३६ ॥ आस्राव सूजन पीड़ा इत्यादि की सी आकुल ॥ रूखी पानी का आना अरुण नेत्र होते हैं हीन तर्पण से ॥ २३७ ॥ इनकी दोषों की अधिकता से चिकित्सा में यत्न करे ॥ रूक्ष स्निग्ध उपचार से इनकी चिकित्सा होती है ॥ २३८ ॥

(अति तर्पित और हीन तर्पितों की)

दुर्दिना त्यूष्ण शीतेषु चिन्तायां संभ्रमेषु च ॥ अशान्तो पद्रवे चापि तर्पणं न प्रशस्यते ॥ २३९ ॥

[अथ पुटपाक विधिः] द्वे विल्वे स्निग्ध मांसस्य परं द्र व्य पलं मतम् ॥ द्रवस्य कुडवोन्मानं सर्व मेकत्र पेष-येत् ॥ २४० ॥ तदेकत्र समालोड्य पत्रैःसुपरि वेष्टि-तम् ॥ पुट पाक विधाने न तत् पश्चात्तद्रसं बुधैः ॥ ॥ २४१ ॥ तर्पणोक्ते न विधिना यथा वदव धारयेत् ॥ दृष्टि मध्ये निषेच्यः स्या न्नित्य मुत्तान शायिनः ॥ २४२ ॥ स्नेह नो लेखन श्चैव रोपण श्चेति स त्रिधा । हितः स्निग्धोऽति रूक्षस्य स्निग्धस्य स तु लेखनः ॥ ४३

भा० दुर्दिन से अतिशीत में उष्ण में चिन्ता में संभ्रम में ॥ उपद्रव के शान्त न होने में नेत्र तर्पण प्रशस्त नहीं है ॥ २३९॥ [अनन्तर पुटपाक विधिः।] हरिण आदि का मांस दो पल और औषध पल २ भर ॥ और द्रव पावभर सब को एक जगह पीसे ॥ २४०॥ इन सबको एक जगह मिलाकर पत्तोंसे अच्छी त रह लपेट के ॥ पुट पाक के विधान से उसको पकाकर उसके अनन्तर उस र सको ॥ २४१॥ तर्पण में कहे हुवे विधानसे अच्छी तरह पर धारण करे॥ नि त्य चित सुलाकर दृष्टि के बीचमें डाले ॥ २४२॥ वोह स्नेहन लेखन रोपण ऐसे तीन प्रकार होता है ॥ अति रूक्ष को स्निग्ध हित होता है और स्निग्धको लेख न हित है ॥ २४३॥

(क) दृष्टे र्बलार्थः इतरः पित्तास्रग व्रण वातनुत् ।

(इतरो रोपणः) स्नेह मांस वसा मज्ज मेदः स्वादौष धैः कृतः ॥ स्नेहनः पुटपाकः स्याद्धार्योऽयं वाक् श तं नरः ॥ २४४॥ जाङ्गलानां यकृन्मांसै र्लेखन द्रव्य संयुतैः ॥ कृष्ण लौह रजस्ताम्र शङ्ख विद्रुम सिन्धु जैः ॥ २४५ ॥ समुद्र फेन कासीसं स्रोतोऽञ्जन दधि म स्तुभिः ॥ लेखनो वाक् शतं तस्य परन्धारण मिष्य-

ते ॥ स्तन्य जाङ्गल मध्वाज्य तिक्त द्रव्य विपाचितम् ॥

भा॰ दृष्टि के बलके वास्ते और बाक़ी पित्त रक्त व्रण वात इनके नाशक हैं ॥ रोपण । तेल मांस वसा मज्जा मेद औषध से पकाये द्रवे । येह स्नेहन पुट पाक है ॥ इस मनुष्य सौ मात्रा तक धारण करे ॥ २४४॥ हरिन आदिकों के यकृत् मांस लेखन द्रव्य से युक्त ॥ कान्ति लोह का चूरा ताम्बा शंख मूंगा सैन्धव ॥२४५॥ समुद्र फेन कसीस सुरमा दहीका पानी इनसे लेखन सौ मात्रा तक रखे ॥ २४६॥ स्त्री का दूध मृगमांस मधु तिक्त द्रव्य से पकाया घृत ॥

लेखनात् त्रिगुणो धार्यः पुट पाकस्तु रोपणः॥ [तिक्तक द्रव्याण्याह] निम्बामृता वृष पटोल निदिग्धिका भिः स्यात् पञ्च तिक्तक इति प्रथितो गणोऽयम् ॥ २४८॥ आचरेत् तर्पणोक्तां तु क्रियां व्यापत्ति दर्शने ॥ व्यापत्ति दर्शने मिथ्या कृत पुटपाक जनित व्याधि दर्शने ॥

तेजांस्यनिल माकाश मादर्शम्भा स्वराणि च ॥ नेक्षेत तर्पिते नेत्रे यश्च वा पुट पाकवान् ॥ २४९॥

भा॰ येह रोपण पुटपाक लेखन से तिगुना धारण करना चाहिये ॥ २४७॥ तिक्तक द्रव्यों को कहते हैं ॥ नीम गिलोय वांसा परोल कटेली आदसे ॥ पंच तिक्तक होता है ॥ इस प्रकार यह गण कहा है ॥ २४८॥ रोग दर्शन में तर्पण में कहई किया करे ॥ (क) मिथ्या किये हुवे पुटपाक से उत्पन्न रोगों के देखने में । तेज वात आकाश आइना और प्रकाशवाली वस्तु इनको ॥ तर्पण किया हुवा और पुटपाक किया हुवा न देखे ॥ २४९॥

[अथाञ्जन विधिः।] अथ संपक्व दोषस्य प्राप्त मञ्जन माचरेत् ॥ अञ्जनं क्रियते येन तद्द्रव्यं चाञ्जनम् मतम् ॥ २५०॥ [तद्यथा] रसो वटीस्तथा

चूर्णमिति त्रिविध मञ्जनम् ॥ यथा पूर्वं बलं तेषु स्नेह माहुर्मनीषिणः ॥ २५१ ॥ तत्प्रत्येकं त्रिधा प्रोक्तं लेखनं रोपणं तथा ॥ स्नेहनञ्चेति लिङ्गानि तेषां विस्तरतः शृणु ॥ २५२ ॥ लेखनं क्षार तीक्ष्णा म्ल रसै रञ्जन मुच्यते ॥ नेत्र वर्त्म शिराजाल स्रोत्र शृङ्गाटक स्थितम् ॥ २५३ ॥ मुख नासाक्षि भिर्दोष मुत्क्लिश्य स्रावयेच्च तत् ॥ कषायं तिक्तकं चापि सस्नेहं रोपणं मतम् ॥ २५४ ॥ स्नेहस्य शैत्यात् व-र्ण्ये स्यात् दृष्टेश्च बलवर्द्धनम् ॥ मधुरं स्नेह मण्डं तदञ्जनं स्यात् प्रसादनम् ॥ २५५ ॥

भा० अनन्तर अञ्जन विधिः। अनन्तर पकेहुवे दोषवाले को अञ्जन करे ॥ जिस्से अञ्जन किया जाता है उस द्रव्यको अञ्जन कहते हैं ॥ २५० ॥ वोह जैसे] रसवटी तथा चूर्ण ऐसे तीन प्रकार अंजन होता है ॥ उनमें पहले १ स्नेह वलयुक्त मुनियों ने कहा है ॥ २५१ ॥ वोह हरएक तीन प्रकार लेखन रोपण तथा ॥ स्नेह न इस प्रकार उनके लक्षण विस्तार से सुनो ॥ २५२ ॥ क्षार तीक्ष्ण अम्ल रसों से लेखन अञ्जन कहते हैं ॥ नेत्र वर्त्म शिराजालका शृङ्गाटक में स्थित ॥ २५३ ॥ मुख नाक आंख इनसे दोषको उखेड़ कर वोह बहाता है ॥ कषाय तिक्तभी स्नेहके सहित रोपण कहा है ॥ स्नेहको शीतता होनेसे व्रणको हित होता है और दृष्टिके बलको बढ़ाने वाला है ॥ मधुर स्नेह से युक्त जो अञ्जन होता है प्रसादन है ॥ २५५ ॥

दृष्टिदोष प्रसादार्थे स्नेह नार्थञ्च तद्धितम् ॥ स्वेरण्ड मात्रा वर्त्तिस्तु लेखनी स्यात् प्रमाणतः ॥ २५६ ॥ सार्द्धं करेण कथिता रोपणी वर्त्तिरिष्यते ॥ क्रियते स्नेहनी वर्त्ति र्द्वि हरेणु कमात्रया ॥ २५७ ॥

ते ॥स्तन्य जाङ्गल मध्वाज्य तिक्त द्रव्य विपाचितम् ॥

भा॰ दृष्टि के बलके वास्ते और बाकी पित रक्त भ्रण वात इनके नाशक हैं ॥ रोपण । नेल मांस वसा मज्जा मेद औषध से पकाये हुवे । येह स्नेहन पुट पाक है ॥ इस मनुष्य सौ मात्रा तक धारण करे ॥ २५४॥ हरिण आदिकों के यकृत् मांस लेखन द्रव्य से युक्त ॥ कान्ति लोह का चूरा नाम्बा शंख मूंगा सैन्धव ॥२४५॥ समुद्र फेन कसीस सुरमा दहीका पानी इनसे लेखन सौ मात्रा तक रखे ॥ २४६॥ स्त्री का दूध मृगमांस मधु तिक्त द्रव्य से पकाया घृत ॥

लेखनात् त्रिगुणो धार्यः पुट पाकस्तु रोपणः॥

[तिक्तक द्रव्यारायाह] निम्बामृता वृष पटोल निदिग्धिका भिः स्यात् पञ्च तिक्तक इति प्रथितो गणोऽयम् ॥ २४०॥ आचरेत् तर्पणोक्तां तु क्रियां व्यापत्ति दर्शने ॥ व्यापत्ति दर्शने मिथ्या कृत पुटपाक जनित व्याधि दर्शने ॥

तेजांस्यनिल माकाश मादर्शान्भा स्वराणि च ॥
ने क्षेत तर्पिते नेत्रे यश्च वा पुट पाकवान् ॥ २४८॥

भा॰ येह रोपण पुटपाक लेखन से तिगुना धारण करना चाहिये ॥ २४७ ॥ तिक्तक द्रव्यों को कहते हैं ॥ नीम गिलोय बांसा परोल कटेली आदसे ॥ पंच तिक्तक होता है ॥ इस प्रकार यह गण कहा है ॥ २४८ ॥ रोग दर्शन में तर्पण में कही हुई क्रिया करें ॥ (क) मिथ्या किये हुवे पुटपाक से उत्पन्न रोगों के देखने में । तेज वात आकाश आइना और प्रकाशवाली वस्तु इनको ॥ तर्पण किया हुवा और पुटपाक किया हुवा न देखे ॥ २४६ ॥

[अथाञ्जन विधिः।] अथ संपक्व दोषस्य प्राप्त मञ्जन माचरेत् ॥ अञ्जनं क्रियते येन तद्द्रव्यं चाञ्जनम् मतम् ॥ २५०॥ [नद्यथा] रसो वटीस्तथा

चूर्ण मिति त्रिविध मञ्जनम् ॥ यथा पूर्वं बलं तेषु स्नेह माहु र्मनीषिणः ॥ २५१ ॥ तत प्रत्येकं त्रिधा प्रोक्तं लेखनं रोपणं तथा ॥ स्नेहन ञ्चेति लिङ्गानि तेषां विस्तरतः शृणु ॥ २५२ ॥ लेखनं क्षार तीक्ष्णा म्ल रसै रञ्जन मुच्यते ॥ नेत्र वर्त्म शिराजाल स्रोत शृङ्गाटक स्थितम् ॥ २५३ ॥ मुख नासादि भिर्दोष मुत्क्लिश्य स्रावयेच्च तत ॥ कषायं तिक्तकं चापि सस्नेहं रोपणं मतम् ॥ २५४ ॥ स्नेहस्य शैत्यात् व-र्ण्यं स्यात् दृष्टेश्च बलवर्द्धनम् ॥ मधुरं स्नेह मपन्नं तद ञ्जनं स्यात् प्रसादनम् ॥ २५५ ॥

भा० अनन्तर अञ्जन विधिः। अनन्तर पकेङ्गवे दोषवाले को अञ्जन करे ॥ जिस्से अञ्जन किया जाता है उस द्रव्यको अञ्जन कहते हैं ॥ २५० ॥ वोह जैसे] रसवटी तथा चूर्ण ऐसे तीन प्रकार अंजन होता है ॥ उनमें पहले १ स्नेह - बलयुक्त मुनियों ने कहा है ॥ २५१ ॥ वोह हरएक तीन प्रकार लेखन रोपण तथा ॥ स्नेह न इस प्रकार उनके लक्षण विस्तार से सुनो ॥ २५२ ॥ क्षार तीक्ष्ण अम्ल रसों से लेखन अञ्जन कहते हैं ॥ नेत्र वर्त्म शिराजालका शृङ्गाटक में स्थित ॥ २५३ ॥ मुख नाक आंख इनसे दोषको उखेड़ कर वोह बहाता है ॥ कषाय तिक्तभी स्नेहके सहित रोपण कहा है ॥ स्नेहको शीत ना होनेसे व्रणकी हित होना है और दृष्टि के बलको बढ़ाने वाला है ॥ मधुर स्नेह से युक्त जो अञ्जन होता है प्रसादन है ॥ २५५ ॥

दृष्टिदोष प्रसादार्थे स्नेह नार्थञ्च तद्धितम् ॥ रेणुक-मात्रा वर्त्तिस्तु लेखनी स्यात् प्रमाणतः ॥ २५६ ॥ सा र्द्ध करेणु कमिता रोपणी वर्त्ति रिष्यते ॥ क्रियते स्ने हनी वर्त्ति र्द्वि हरेणु कमात्रया ॥ २५७ ॥

स्य मात्रा तु पिष्टा वर्त्ति मिता मता ॥ चूर्णे तु लेखनं वैद्यै द्वि शलाकं प्रदीयते ॥ २५८ ॥ रोपणं त्रिशला कं स्या च्चतस्त्रः स्नेह नाञ्जने ॥

(च्चतस्त्रः शलाकाः स्नेहनाञ्जने चूर्णे)

मुखेया मुकुला कारा कलाय परि मण्डला ॥ अ ष्टाङ्गुला शलाका स्या दश्मजा धातुजाथवा ॥ ५९ ॥

(कलाय परि मण्डला अग्रे कलाय वद्वर्त्तुला ।)

ताम्र लोहाश्म संजाता शलाका लेखने मता ॥ सु वर्ण रजतोद्भूता स्नेहने समुदाहृता ॥ २६० ॥

भा० दृष्टि दोष की सफ़ाई के अर्थ और स्नेहन के अर्थ वोह हित है ॥ प्रमाण से अंडी के बीज के समान लेखनी वत्ती होती है ॥ २५६ ॥ और डेढ में बड़ी के बीज समान रोपणी वत्ति कही है ॥ और स्नेहनी वत्ति दो में बड़ी के बीज के समान जानी हैं ॥ रसांजन की मात्रा पिष्ट वत्ती के समान होती है ॥ लेखन चूर्ण वैद्यों के द्वारा दो सलाई दिया जाता है ॥ रोपण तीन सलाई और स्नेहन अञ्जन में चार सलाई दिया जाता है ॥

जो मुख में फूल की कली के समान मटर के बराबर गोलाई ॥ आठ अंगल की सलाई होती है पत्थर की अथवा धातु की ॥ २५८ ॥ अग्र में मटर के समान गोल । ताम्बा लोहा पत्थर इनकी सलाई लेखन में कही है ॥ सोने चान्दी की सलाई स्नेहन में कही है ॥ २६० ॥

अङ्गुली च मृदुत्वे न रोपणे संप्रयुज्यते ॥ कृष्ण भा गा वधिं त्निम्न्या दपाङ्गं यावदञ्जनम् ॥ २६१ ॥ हे मन्ते शिशिरे चैव मध्यान्हे ऽञ्जन मिष्यते ॥ पूर्वा न्हे वापराह्णे वा ग्रीष्मे शारदि चेष्यते ॥ २६२ ॥ व र्षास्वनभ्रे नात्युष्णो वसन्ते तु सदैव हि ॥ अथवा

सर्वदा प्रातः सायं वाञ्जन माचरेत् ॥ २६३॥ नाति शीतोष्ण वाताभ्र वेलायां तत्प्रयुज्यते ॥ श्रान्तो ऽथ रुदिते भीते पीत मद्ये नवज्वरे ॥ २६४॥ अजीर्णे वेगघाते च नाञ्जनं संप्रयुज्यते ॥ रागोप देशो तिमिरं शूलं संरम्भ मेवच ॥ २६५॥ निद्रा क्षयश्च कुरुते निषिद्धे युक्त मञ्जनम् ॥

भा० अंगुली मुलायम होने से रोपण में दीजाती है ॥ अञ्जन कृष्ण भाग को छोड़ कर अपाङ्ग तक् लगावे ॥ २६१॥ हेमन्त और शिशिर में मध्यान्ह में अञ्जन कहा है ॥ पूर्वान्ह अथवा अपरान्ह में ग्रीष्म शरद में कहा है ॥ २६२ ॥ वर्षा में बादल न होने पर न बहुत गरमी में और वसन्त में सदा ही अञ्जन देवे ॥ अथवा सर्वदा संझा सवेरे अञ्जन लगावे ॥ २६३॥ उसको अति शीत उष्ण वात अभ्र ऐसे समय में न लगावे ॥ श्रान्त रुदित भीत इनको और मद्य पीये को नवज्वर वालेको ॥ २६४॥ अंजन न करे और अजीर्ण में वेगके अवरोध में भी अञ्जन नहीं लगाया जाता है ॥ राग उपदेश तिमिर शूल संरम्भ ॥ २६५॥ और निद्रा नाश इनको निषिद्ध में किया हुवा अञ्जन करता है ॥

[अथ वर्ती लेखनी यथा]

शङ्खनाभि विभीतस्य मज्जापथ्या मनःशिलाः ॥ पिप्पली मरिचं कुष्ठं वचाचेति समांशकम् ॥ २६६ ॥ छागं क्षीरेण संपिष्य वर्त्तिं कुर्याद् यवो न्मिनाम् ॥ एरण्ड मात्रां संपिष्य जलैः कुर्या द्यथा ञ्जनम् ॥ २६७ ॥ तिमिरं मांस वृद्धिञ्च काचं पटल मर्वुदम् ॥ रात्र्यन्धं वार्षिकं पुष्पं वर्त्ति श्चन्द्रोदया हरेत् ॥ २६८ ॥

[इति चन्द्रोदया वर्त्ति लेखनी]

भा० अनन्तर लेखनी वर्ती जैसे। शंख की नाभ बहेडे की गिरी हड़ मैनसिल

पीपल मिरिच कूठ वच इनको बराबर लेकर ॥ २६६॥ बकरी के दूधसे पीस के जव बराबर वत्ती करे ॥ अरंडी के बराबर जलसे पीसकर अंजन करे ॥ ॥ २६७॥ तिमिर मांसवृद्धि काच पदल अर्बुद ॥ रात्र्यन्ध वरसानी फूली । इनको यह चन्द्रोदय वर्त्ति नाश करती है ॥ २६८॥

[इति चन्द्रोदयवर्त्ति लेखनी ।]

[अथ रोपणी वर्त्तिः। अशीति स्तिल पुष्पाणि षष्टि पिप्पलि तण्डुलाः॥ जाती पुष्पाणि पञ्चाशन्मरि चानि तु षोड़श ः॥ २६९॥ सूक्ष्म पिष्टाम्बुना वर्त्तिः कृता कुसुम का भिधा ॥ तिमिरा र्जुन शुक्राणां नाशि नी मांस वृद्धि नुत ॥ एतस्या अञ्जने प्रोक्ता मात्रा सा र्द्ध हरेणुका ॥ (इति कुसुमिका रोपणी वटी)

भा० अनन्तर रोपणी वर्त्ति ॥ अस्सी तिलके फूल साठ पीपल के दाने। चमेली के फूल पचास सोलह मिरच ॥ २६९॥ जल से इनको बारीक पीस कर कुसुमिका नाम वत्ती बनावे ॥ यह तिमिर अर्जुन शुक्र इनको नाश करने वाली और मांस वृद्धि की नाशक है ॥ २७०॥ अंजन में इसकी मात्रा डेढ़ मेवड़ी के समान कही है ॥ ॥ इति कुसुमिका रोपणी वटी ॥

[अथ स्नेहनी वर्त्तिः] धात्र्यक्ष पथ्या बीजानि एक द्वि त्रि गुणानि च ॥ पिष्ट्वा वर्त्ति जलैः कुर्य्या दञ्जनं द्वि हरेणुकम् ॥ २७१॥ नेत्र स्रावं हरत्याशु वात रक्त रु जन्तथा ॥ [अथ रस क्रिया लेखनी यथा]

तुत्थ माक्षिक सिन्धूत्था सिता शंख मनः शिलाः॥ गैरिकं सिन्धु फेनञ्च मरिचं चेति चूर्णयेत् ॥ २७२॥ संयोज्य मधुना कुर्य्या दञ्जनार्थं रस क्रियाम् ॥

वर्त्म रोगार्मतिमिरकाच शुक्रहरीं पराम् ॥ २७३॥

[अथ रोपणी रस क्रिया] रसाञ्जनं सर्ज्ज रसो जाती पुष्पं मनः शिलाः ॥ समुद्र फेणो लवणं गैरिकं मारिचन्तथा ॥ २७४॥ एतत्समांशं मधुना पिष्टं प्रक्लिन्न वर्त्मने ॥ अञ्जनं क्लेद कण्डुघ्नं पक्ष्मणाञ्च प्ररोहणम् ॥ २७५॥

भा० अथ स्नेहनी वर्त्ति ॥ आंवले बहेडे हड इनके बीज क्रमसे एक दो तीन गुना ॥ इनको जलसे पीसकर दो मेवड़ी के वीज समान अञ्जन करे ॥ २७२। येह नेत्र स्रावको शीघ्र नाश करता है ॥ तथा वात रक्त की पीड़ा को नाश करता है ॥ [अनन्तर रसक्रिया लेखनी जैसे। शीला थोथा सोना माखी सैन्धव मिश्री शंख मैनसिल ॥ गेरू समुद्रफेन मिरच इनकी पिसवावे ॥ ॥ २७२॥ मधुके साथ मिलाकर अञ्जनके अर्थ रस क्रिया करे ॥ येह वर्त्म रोग अर्म तिमिर कांच शुक्र इनको नाश करने वाली है ॥ २७३॥ [अनन्तर रोपण रस क्रिया ॥ रसवत राल चमेली के फूल मैनसिल ॥ समुद्र फेन लवण गेरू तथा मरिच के साथ पीसके प्रक्लन्न वर्त्मन में अञ्जन क्लेद कण्डूका नाशक और पलकों का प्ररोहण है ॥ २७५॥

[अथ स्नेहनी रस क्रिया] कनकस्य फलं घृष्ट्वा मधुना नेत्रमञ्जयेत् ॥ ईषत्कर्पूर सहितं स्तन्त नेत्र प्रसादनम् ॥ २७६॥ [अथ चूर्ण तल्लेखनं यथा] दत्ताण्डत्वच्छिलाकाच शङ्ख चन्दन सैन्धवैः ॥ अञ्जनं हरते नित्यं सर्वानक्षि गदान् बलात् ॥ २७७॥

(दत्तः कुक्कुटः तथा च निघण्टुः)

कृक वाकुस्तथा दत्तः कालज्ञोऽथ शिखण्डिक इति।

भा० अनन्तर स्नेहनी रस क्रिया ॥ निर्मली के फल को मधुके साथ घिस कर नेत्र में अंजन करे ॥ थोड़े से कपूर के साथ नेत्र प्र सादन कहाहे ॥ २७६ ॥
अनन्तर लेखन चूर्ण जैसे । मुरगे के अंडेके छिलके शंख चन्दन सैन्धव ॥ इनका अञ्जन सब नेत्र के रोगोंको बलात् कारसे नाश करताहे ॥ २७७ ॥ मुरगा । उस प्रकार निघंटु में कहाहे ॥ कृक वाकु तथा दक्ष कालज्ञ और शिखंडिक इति ॥ [अथ रोपण चूर्णम् ।]

शिलायां रसकं पिष्ट्वा सव्यगा लाव्य वारिणा ॥ गृह्णी या त्तज्जलं सर्वन्त्यजे चूर्ण मधोगतम् ॥ २७८ ॥ शुष्कं तच्च जलं सर्व्वं पर्पटी सन्निभं भवेत् ॥ विचूर्ण्य भावयेत्सम्यक् त्रिवेलं त्रिफला रसैः ॥ २७९ ॥ कर्पूरस्य रजस्तत्र दशमांशेन निःक्षिपेत् ॥ अञ्जये न्नयनन्तेन सर्वदोष प्रशान्तये ॥ २८० ॥ समस्त नेत्र रोगघ्नं चूर्ण मेतन्न संशयः ॥

भा० अनन्तर रोपण चूर्ण ॥ सिलपर खपरिया को पीस कर अच्छी तरह पानी से घोल कर ॥ उसका सब जल ग्रहण करे और नीचे के चूर्ण को त्यागदेवे ॥ २७८ ॥ जब वोह सब जल सूक जावे तब वोह पपड़ी के समान हो जाता है ॥ पीस कर तीन वार त्रिफला के रस से भावना देवे ॥ २७९ ॥ उसमें कपूर का चूरण दसवां हिस्सा डाले । उसे सब दोषों की शान्ति के अर्थ नेत्र को आंजे। २८० ॥ यह चूर्ण सब रोग का नाशक है इसमें कुछ संशय नहीं ॥

अथ स्नेहनं चूर्णम् । अग्नि तप्तं हि सौवीरं निषिञ्चेन् त्रिफला रसैः ॥ सप्त वेलं तथा स्तन्यैः स्त्रीणां सिक्तं विचूर्णितम् ॥ २८१ ॥ (सौवीरं श्वेत मञ्जनम् ।) अञ्जये त्तेन नयने प्रत्यहं चक्षुषो हितम् ॥ सर्व्वा नक्षि विकारां स्तु हन्या देतन्न संशय ॥ २८२ ॥

भा॰ अनन्तर स्नेहन चूर्ण ॥ आगमें तपाया हुवा सुरमा त्रिफलाके रसमें वुझावे ॥ सात वार तथा स्त्री के दूधसे सींच के बारीक पीसकर॥ २८०॥ उसे नेत्रमें हर रोज अंजन करे वोह नेत्रके हितहै ॥ सब नेत्रके रोगोंको नाश करता है इसमें कोई संशय नहीं ॥ २८१ ॥

[अथ प्रत्यञ्जन विधिः]

गतदोष मपेताश्रु प्रपश्यत् सम्यगम्भसि ॥ प्रक्षाल्यादि यथा दोषं कार्य्यं प्रत्यञ्जनन्ततः ॥ २८२॥

तथा निर्वात देशेऽदि धावनं सम्प्रयोजयेत् ॥ प्रत्यञ्जने कृते दद्याच्चूर्णं तीक्ष्ण प्रसादनम् ॥ २८३॥

[तद्यथा] शुद्ध नागेन्द्र तुल्यन्तु शुद्धं सूतं विनिःक्षिपेत् ।
कृष्णाञ्जनं तयोस्तुल्यं सर्वमेकत्र चूर्णयेत् ॥ २८४॥

दशमांसेन कर्पूरं तस्मिं चूर्णे विनिःक्षिपेत् ॥ एतत्प्रत्यञ्जनं नेत्र गद जिन्नयनामृतम् ॥ २८५॥

(कृष्णाञ्जनं श्रोतोऽञ्जनम्) [तथा च मदनपालः]

श्रोतोऽञ्जनन्तु तद्विद्या दञ्जनाभं यदञ्जनम् ॥

भा॰ अनन्तर प्रत्यञ्जन की विधि ॥ गतदोष और गत अश्रुपानी में अच्छी तरह देखे ॥ आंखों को धोके दोषके अनुसार प्रत्यञ्जन करना चाहिये ॥ तथा निर्वात देशमें नेत्र धोवे ॥ प्रत्यञ्जन करने के अनन्तर प्रसादन तीक्ष्ण चूर्ण देवे ॥ २८३॥ (वोह जैसे) शुद्ध शीशे के बराबर शुद्ध पारा डाले ॥ काला सुरमा इन दोनों के बराबर इन सबको एक जगह पीसे ॥ २८४॥ उस चूर्ण में दसवां हिस्सा कपूर डाले ॥ यह प्रत्यञ्जन नेत्र रोग का जीतनेवाला नेत्रामृत है ॥ २८५॥ काला सुरमा । वैसे मदनपाल ने कहा है ॥ श्रोतोऽञ्जन उस को जानना चाहिये जो काजल के समान होता है ॥

[नयनामृतं प्रत्यञ्जनम्]

[अथ दृष्टिप्रसादनी शलाका]

त्रिफला भृङ्ग शुण्ठीनां रसैस्तद्वच्च सर्पिषा ॥ गोमूत्र मध्वजा क्षीरैः सिक्तो नागः प्रतापितः ॥ २८५ ॥ तच्छलाका हरत्येव सर्वान् नेत्र भवान् गदान् ॥

[इति भेषजानां विधानानि]

[अथ भेषज भक्षण समयः ॥ भैषज्य मभ्यवहरेत्प्रभाते प्रायशो बुधः ॥ कषायांस्तु विशेषेण तत्र भेदस्तु दर्शितः ॥ १ ॥ ज्ञेयः पञ्चविधः कालो भैषज्य ग्रहणे नृणाम् ॥ किञ्चित्सूर्योदये जाते तथा दिवस भोजने ॥ २ ॥ सायन्तने भोजने च मुहुश्चापि तथा निशि ॥

भा॰ अनन्तर दृष्टि प्रसादनी शलाका ॥ त्रिफला भङ्गरा सोंठ इनका रस वैसेही घृत ॥ गोमूत्र मधु बकरी का दूध इनसे सीसे को तपाकर सींचे ॥ २८५ ॥ उसकी सलाई सब नेत्र के रोगों को नाश करती है ॥ ॥ इस प्रकार औषधों के विधान ॥ [॥ अनन्तर औषध भक्षण का समय ॥] बुद्धिवान् प्रायशः औषध को सवेरे सेवन करे ॥ और कषायों को विशेष करके सवेरे सेवन करे । उसमें भेद कहा है ॥ १ ॥ मनुष्यों को औषध ग्रहण में पांच प्रकार का काल जानना चाहिये ॥ कुछेक सूर्योदय के होनेमें तथा दिनके भोजन में ॥ २ ॥ सायंकाल में और सायंकाल के भोजन में तथा फिरसे रात्रको ॥ येह पांच समय हैं ॥

तत्र प्रथम कालः] प्रायः पित्त कफो द्रेके विरेक वमनार्थयोः ॥ लेखनार्थे च भैषज्यं प्रभातेऽन्नमाहरेत् ॥ ३ ॥ [अथ द्वितीय कालः । भेषज्यं वि-

गुणे पाने भोजनाग्रे प्रशस्यते ॥ अरुचौ चित्र भोज्यै
श्च मिश्रं रुचिर माहरेत् ॥४॥ समानवाते विगुणे
मन्दे ऽग्नावति दीपनम् ॥ दद्याद्भोजन मध्ये च भे
षज्यं कुशलो भिषक् ॥५॥ व्यान कोपे तु भेषज्यं
भोजनान्ते समाहरेत् ॥ हिक्का क्षेपक कम्पेषु पूर्वम-
न्ते च भोजनात् ॥६॥ [अथ तृतीय कालः]
उदाने कुपिते वाते स्वर भङ्गादि कारिणि ॥ ग्रासे ग्रा-
सान्तरे देयं भेषज्यं सान्ध्य भोजने ॥७॥ प्राणे प्रदु
ष्टे सान्ध्यस्य भुक्तस्यान्ते प्रदीयते ॥ औषधं प्राय
शो धीरैः कालोऽयं स्यात् तृतीयकः ॥ ८ ॥

भा॰ उसमें प्रथम काल । प्रायः पित्त कफ के बढने में विरेचन वमन के अर्थ ॥ और लेखन के अर्थ प्रातःकाल में विना भोजन किये औषध सेवन करे ॥ ३॥ [दूसरा काल । अपान वात के प्रकोपमें भोजन के पहिले औषध प्रशस्त है ॥ अरुचि में अच्छे स्वाद युक्त भोजनों में मिलाके सेवन करे ॥ ॥४॥ समान वात के बिगड़ने में और मन्दाग्नि में अतिदीपन ॥ औषध भोजन के वीचमें कुशल वैद्य देवे ॥ ५॥ व्यान वायुके कोपमें भोजन के अन्त में औषध सेवन करे ॥ हिचकी आक्षेप कम्प इनमें भोजन से पहिले और अन्त में औषध देवे ॥ ६॥ अनन्तर तीसरा काल ॥ स्वर भंगादि करनेवाले उदान वातके कोपमें सायंकाल के भोजनमें ग्रास २ के बीचमें औषध देना चाहिये ॥७॥ प्राण वात के दुष्ट होनेमें सायंकाल के भोजन के अन्तमें प्रायः औषधि दिया जाता है येह तीसरा काल है ॥८॥

[अथ चतुर्थ कालः] मुहुर्मुहुश्च तृट् छर्दि हिक्का
श्वास गरेषु च ॥ सान्नञ्च भेषजं दद्या दिति काल
श्चतुर्थकः ॥ ९॥ [अथ पञ्चम कालः]

ऊर्द्धजत्रु विकारेषु लेखने बृंहणे तथा ॥ पाचने श मने देया भनन्नं भेषजं निशि ॥ १०॥

[इति पञ्चम कालः ॥] [निरन्नस्य भेषजस्य गुण-माह] वीर्य्याधिकं भवति भेषज मन्नहीनम् ॥ ह-न्यात्तदामयम संशय माशु चैव ॥ तद्बाल वृद्ध युवती मृदुभिश्च पीतम् ॥ ग्लानिं परान्नयति चाशु बलक्षयञ्च ॥ ११ ॥ [सान्नस्य भेषजस्य गुणमाह] शीघ्रं विपाक मुपयाति बलं न हिंस्या । दन्ना वृतन्न च मुहुर्वदना न्निरेति ॥ एतद्धितं स्थविर बाल कृ शाङ्गनाभ्यः । प्राग्भोजना यदशितं किल तच्च तद्वत् ॥ १२ ॥

भा० अनन्तर चौथा काल । तृषा वमन हिचकी श्वास विष इनमें अन्नके सहित औषध देवे यह काल चौथा है ॥ ९॥ अनन्तर पंचम काल ॥ गलेकी हड्डी के ऊपर के रोगोंमें और लेखन बृंहण में तथा ॥ पाचन शम न में रातको विना भोजन के औषध देवे ॥ १०॥ इति पंचम काल ॥ निरन्न औषधका गुण कहते हैं ॥ अन्नहीन औषध वीर्य्याधिक होता है ॥ और इन रोगों को निःसंशय शीघ्र नाश करता है ॥ और वोह बालक वृद्ध युवती तथा मृदु इनका पीया हुवा ॥ अत्यन्त ग्लानिको करता है और शीघ्र बलका नाश करता है ॥ ११ ॥ [अन्नके सहित औषधका गुण॥] अन्न से युक्त औषध शीघ्र विपाक को प्राप्त होता है और बलको नाश नहीं करता उसको मुखसे फि र न निकाले ॥ येह वृद्ध बालक दुर्बल स्त्री इनको हित है ॥ जो भोजन के पहिले सेवन किया गया है वोह उसीके समान है ॥ १२॥

(अन्नावृत वत् भेषज मिति शेषः)

औषध शेषे भुक्तं भोजन शेषे यदौषधं पीतम् ॥ न करोति गदोप शमनं प्रकोप यत्यन्य रोगांश्च ॥ १३॥

(पीतमित्युपलक्षणं लीढादिकं च।)

अनुलोमोऽनिलः स्वास्थ्यं क्षुत्तृष्णा सुमनस्कता॥
लघुत्वमिन्द्रियोद्गारशुद्धिर्जीर्णौषधाकृतिः॥२४॥
क्लमो दाहोऽङ्गसदनं भ्रममूर्च्छा शिरोरुजः॥ अर
तिर्बलहानिश्च सावशेषौषधाकृतिः॥ २५॥

[अथ भेषजलक्षणविधिमाह चरकः]

देवान् गुरूंस्तथा विप्रान् पूजयित्वा प्रणम्य च॥ आ
शिषश्च समादाय श्रद्धया भेषजं भजेत्॥ २६॥
रसायनमिवर्षीणां देवानाममृतं यथा॥ सुधेवो
त्तमनागानां भैषज्यमिदमस्तु ते॥ २७॥

भा॰ अन्नसे युक्त औषध। औषध शेषमें भोजन किया हुवा और जो औ षध भोजन के शेषमें पीया गया॥ रोगोंका शमन नहीं करता और अन्य रोगों को प्रकोप करता है॥ २३॥ खाया आदिभी। वातका अनुलोम स्वस्थता क्षुधा तृ षा चित्तकी प्रसन्नता॥ हलकापन इन्द्रियों में डकार येह जीर्ण औषध का ल क्षण है॥ २४॥ क्लम दाह शरीर में पीड़ा भ्रम मूर्च्छा शिरमें पीड़ा॥ बेचैनी बलकी हानी साव शेष औषध का लक्षण है॥ २५॥

अनन्तर औषध लक्षण विधि कही है चरक ने॥ देव गुरु तथा ब्राह्मण इन का पूजन करके और नमस्कार करके॥ आशिर्वाद लेकर श्रद्धासे औषधका से वन करे॥ २६॥ येह आशिर्वाद। इसका अर्थ। ऋषियों की रसायन के समा न और जैसे देवताओं को अमृत॥ उत्तम नागों की सुधा के समान तुमको येह दवा होवे॥ २७॥

ब्रह्म दक्षाश्वि रुद्रेन्द्र भूचन्द्रार्कानिलानलाः॥ दे
वाश्च सौषधि ग्रामा भूभिदेवाश्च पान्तु वः॥ २८॥
औषधं हेमरजत मृद्भाजन परिस्थितम्॥ पिबेदास

जनस्याग्रे प्रसन्न वदनेक्षणः ॥ २९ ॥ विश्रान्तस्तूप विश्याथ पीत्वा पात्र मधोमुखम् ॥ निःक्षिप्याच म्य सलिलं ताम्बूला द्युप योजयेत् ॥ ३० ॥

इति श्री मिश्र लटकन तनय श्रीमन् मिश्र भाव विरचि ते विरचिते भावप्रकाशे पञ्चमं प्रकरणं चिकित्सायां सप्ताङ्गानि संपूर्णानि ॥ ५ ॥ ❋ ॥

भा० ब्रह्मा दक्ष प्रजापति अश्विनीकुमार इन्द्र पृथ्वि चन्द्र सूर्य वात अग्नि। देव औषधि के सहित ग्राम देवता और भूमिदेव तुम्हारी रक्षा करो ॥ २८ ॥ इति । औषध को सोने चान्दी अथवा मिट्टी के बरतन में रख के। प्रसन्न मुख दृष्टि हो के इष्ट जनों के आगे पीवे ॥ २९ ॥ विश्रान्त होके बैठ के पीकर पात्रको औंधा करके ॥ जल से आचमन करके पान इलायची आदिकोखावे ॥ ३० ॥ इतिश्री मिश्र लटकन पुत्र श्री भाव मिश्र विरचित भाव प्रकाशमें पांचवां प्रकरण चिकित्सा में सात अंग संपूर्ण ॥

[अथ चिकित्सार्थं रोगिणः परीक्षा तत्र वाग्भटः ।]

दर्शन स्पर्शन प्रश्नैः परीक्षेत रोगिणम् ॥ आयुरा दि दृशः स्पर्शा च्छीतादि प्रश्नतः परम् ॥ १ ॥

(क) आयुरादि आदि शब्दात्साध्य त्वा साध्यत्वादि दृ शः दर्शनेन अत्र सम्पदादि भ्यश्च भावे क्विप् । स्पर्शन शीतादि शीतोष्ण मृदु कठिनत्वादि नाड़ी परीक्षणम् वा। प्रश्नतः उदर लाघव गौरव तृषाऽतृषा क्षुधाऽबुभुक्षा बला बलादि ॥

भा० अनन्तर चिकित्सा के अर्थ रोगी की परीक्षा ॥ उसमें वाग्भट ने कहा है।

दर्शन स्पर्श प्रश्न इनसे रोगी की परीक्षा करे ॥ दृष्टि से आयु आदि के स्पर्श से शीतादिक प्रश्नसे और परीक्षा करे ॥ १५

(क) आदि शब्द से साध्यता और असाध्यता आदि । दर्शन से । यहां पर संपदादि से भावमें क्रिय होता है । स्पर्शन शीतादि । शीत उष्ण मृदु कठिन आदि अथवा नाडी परीक्षा ॥ प्रश्नसे पेटका हलकापन भारीपन प्यासका होना न होना । भूखका होना न होना बल अबल आदि ॥

मिथ्या दृष्टा विकारा हि दुराख्याता स्तथैव च ॥ तथा दुष्परि दृष्टाश्च मोहयेयु श्चिकि त्सकान् ॥ २॥

(तत्र दर्शनं नेत्र जिह्वा मूत्रा दीनां कर्त्तव्यम्)

[तत्र नेत्र परीक्षा यथा] नेत्रं स्यात पवना द्रूक्षं धूम्रवर्णं तथारुणम् ॥ कोणं गतं प्रविष्टं च तथा स्तब्ध विलोकनम् ॥ ३॥ हरिद्रा खण्ड वर्णं वा रक्तं वा हरितं तथा ॥ दीपद्वेषि सदाहञ्च नेत्रं स्या त्पित्त कोपतः ॥ ४॥ चक्षु र्बलास बाहुल्यात् स्निग्धं स्यात्सलिल स्रुतम् ॥ तथा धवल वर्णञ्च ज्योति र्हीनं बलान्वितम् ॥ ५॥

भा० मिथ्या देखेहुवे रोग तथा दुराख्यात तथा दुष्परिदृष्ट येह वैद्यों को मोह करता है ॥ २॥ उसमें नेत्र दर्शन जिह्वा मूत्र आदियों का करना चाहिये ॥

[उसमें नेत्र परीक्षा जैसे] रूक्ष धूम्र वर्ण तथा अरुण ॥ कोना निकला हुवा और दबाहुवा तथा स्तब्ध देखना ऐसे नेत्र वात से होते हैं ॥ ३॥ हल्दी की गांठ के समान वर्ण अथवा लाल वा हरित ॥ तथा दीवे का दुश्मन दाह के सहित नेत्र पित्त प्रकोप से होते हैं ॥ ४॥ कफ की अधिकता से नेत्र चिकने पानी भरे हुवे ॥ तथा श्वेत वर्ण ज्योति हीन बल युक्त होते हैं ॥ ५॥

नेत्रं द्विदोष बाहुल्यात्स्या दोष द्वय लक्षणम् ॥

त्रिदोष लिङ्ग सङ्गेन तन्मारयति रोगिणम् ॥ ६ ॥ त्रिदोष दूषितं नेत्र मन्तर्भग्नं भृशं भवेत् ॥ त्रिलिङ्ग सलिल स्रावि प्रान्ते नोन्मील यत्यपि ॥ ७ ॥

[अथ जिह्वा परीक्षा] शाक पत्र प्रभा रूक्षा स्फुटना रसना निलात् ॥ रक्ता श्यावा भवेत्पित्ता त्लिप्ताद्री धवला कफात् ॥ ८ ॥ परिदग्धा खरस्पर्शा कृष्णा दोष त्रयेऽधिके ॥ सैव दोष द्वयाधिक्ये दोष द्वितय लक्षणम् ॥ ९ ॥

भा० दो दोषों की अधिकता से नेत्र दो दोषों के लक्षण होते हैं ॥ त्रिदोष के लक्षण मिलजाने से वोह रोगी को नाश करता है ॥ ६ ॥ त्रिदोष से दूषित नेत्र भीतर अत्यन्त भग्न होता है ॥ तीनों के लक्षणों संयुक्त जलको बहने वाला प्रान्तमें उन्मीलन भी नहीं होना ॥ ७ ॥

[अनन्तर जीभकी परीक्षा ॥ शाक पत्रके समान रूखी फटी जीभ वातसे होती है ॥ लाल भूरी पित्तसे होती है। और लिसी गीली सफ़ेद कफसे होती है ॥ ॥ ८ ॥ फुलसी ऊर्वु खरदरी काली त्रिदोष की अधिकता में होती है ॥ वोही दो दोषों के अधिक में दो दोषों के लक्षणवाली होती है ॥ ९ ॥

[अथ मूत्र परीक्षा] वातेन पाण्डुरं मूत्रं रक्तं नीलञ्च पित्ततः ॥ रक्त मेव भवेद्रक्ता द्धवलं फेनिलं कफात् ॥ ॥ १० ॥ (अथ शरीरस्य शैत्योष्ण त्वादि ज्ञानार्थं स्पर्शनं कार्य्यम्) [तत्र नाड़ी परीक्षा माह]

पुंसो दक्षिण हस्तस्य स्त्रियो वाम करस्य तु ॥ अङ्गुष्ठ मूलगां नाड़ीं परीक्षेत् भिषग्वरः ॥ ११ ॥ अङ्गुली भि स्तु तिसृभिर्नाड़ी मवहितः स्पृशेत् ॥ तच्चेष्टया

सुखं दुःखं जानीयात्कुशलोऽखिलम् ॥ २२॥ सद्यः स्नातस्य सुप्तस्य क्षुत्तृष्णा तप शीलिनः ॥ व्यायाम श्रान्त देहस्य सम्यक् नाड़ी न बुध्यते ॥ २३॥ वातेऽधिके भवेनाड़ी प्रव्यक्ता तर्जनी तले ॥ पित्ते व्यक्ता मध्यमा यां तृतीयाङ्गुलिका कफे ॥ २४॥ तर्जनी मध्यमा मध्ये वात पित्ताधिके स्फुटा ॥ अनामिकायां तर्जन्यां व्यक्ता वात कफे भवेत् ॥ २५॥ मध्यमा नामिका मध्ये स्फुटा पित्त कफेऽधिके ॥ अङ्गुलि त्रितयेऽपि स्याद्व्यक्ता सान्नि पाततः ॥ २६॥ वाताद्वक्रू गतिन्धत्ते पित्ताद्रुत प्लुत्य गामिनी ॥

भा० अनन्तर मूत्र परीक्षा ॥ वात से मूत्र सफ़ेद् और पित्त से लाल नीला ॥ और रक्त से लाल ही होता है तथा कफसे झाग से युक्त धौला होताहै ॥ २०॥ अनन्तर शरीर के शैत्य उष्णत्व ज्ञान के अर्थ स्पर्शन करना चाहिये ॥

[उसमें नाड़ी परीक्षा कहते हैं] पुरुष के दाहने हाथकी और स्त्रियों के वामें हाथकी ॥ अंगुष्ठ मूलसे गई हुई नाड़ी की वैद्य परीक्षा करे ॥ २१ ॥ जाना हुवा तीन अंगुलियों से नाड़ी को स्पर्श करे ॥ कुशल उसकी चेष्टा से संपूर्ण सुख दुःख को जाने ॥ २२॥ तत्काल स्नान किये की सोयेहुये की क्षुधा तृषा युक्त की ॥ कसरत से थके हुवे की इन सबकी नाड़ी अच्छी तरह नहीं मालूम होती ॥ २३॥ वातके अधिक में नाड़ी तर्जनी के नीचे प्रव्यक्त होती है ॥ पित्ताधिक में मध्यमा में व्यक्त होती है ॥ और तीसरी उंगली के नीचे कफमें व्यक्त होती है ॥ २४॥ तर्जनी मध्यमा के बीचमें वात पित्ताधिक में स्फुट होती है ॥ अनामिका और तर्जनी में वात कफ में प्रगट होती है ॥ २५॥ मध्यमा और अनामिका के मध्यमें पित्त कफ में प्रगट होती है ॥ सन्निपात से तीनों उंगली के नीचे व्यक्त होती है ॥ २६॥ वात से वक्र गति को धारण करती है पित्तसे उछल के चलती है ॥

कफा न्मन्दगति र्ज्ञेया सन्निपाता दति द्रुता ॥ २७ ॥ व
क्र मुत् प्लुत्य चलति धमनी। वात पित्ततः॥ वहेद्व
क्र ञ्च मन्दञ्च वात श्लेष्मा धिकं त्वतः ॥ १८ ॥ उत्
प्लुत्य मन्दञ्च लति नाड़ी पित्त कफेऽधिके ॥ कामा
त् क्रोधा द्वेगवहा क्षीणा चिन्ता भयप्लुता ॥ १६ ॥
स्थित्वा स्थित्वा च लेत्या सा हन्तिस्था न च्युता तथा॥
अति क्षीणा च शीता च प्राणान् हन्ति न शंसयः॥
२०॥ ज्वर कोपेन धमनी सोष्णा वेगवती भवेत् ॥

भा० कफ से मन्द गति जाननी चाहिये और सन्निपात से बहुत शीघ्र गति चलती है ॥ २७ ॥ पित्त के कोप से धमनी टेढ़ी उछल के चलती है ॥ वात कफाधिक से टेढ़ी और मन्द चलती है ॥ १८ ॥ पित्त कफ के अधिक में नाड़ी उछल के मन्द चलती है। काम और क्रोध से वेगसे चलती है चिन्ता और भय से युक्त क्षीण होती है ॥ १६ ॥ जो ठहर २ के चलती है वोह स्थान च्युत वोह नाश करती है ॥ अति क्षीण और शीत प्राणों को नाश करती है। इसमें कोई संशय नहीं ॥ २०॥ धमनी ज्वर कोप से गरम और वेगवाली होती है ॥

मन्दाग्नेः क्षीण धातो श्च सैवं मन्दतरा मता ॥ २१ ॥
चपला क्षुधितस्य स्यात् तृप्तस्य भवति स्थिरा ॥ सु
खिनो स्थिरा ज्ञेया तथा बलवती मता ॥ २२ ॥

[अथ येन येन रोगाणां ज्ञानं स्यात्त तदाह]

हेतु स्तदनु संप्राप्तिं पूर्व रूपञ्च लक्षणम् ॥ तथैवो
पशयः पञ्च रोग विज्ञान हेतवः ॥ २३ ॥

[तत्र हेतो र्लक्षण माह]

भा॰ मन्दाग्नि वालेकी और क्षीण धातु वालेकी योही मन्द वर्त्तन होतीहै ॥ २१॥ क्षुधित की चपल और तृप्तकी स्थिर होनी है ॥ सुखी की भी स्थिर जाननी चाहिये ॥ तथा बलवती होती है ॥ २२॥

[अनन्तर जिस २से रोगका ज्ञान होताहै उस २को कहते हैं] कारण उस्के पश्चात् सम्प्राप्ति और पूर्वरूप लक्षण। तथा उपशय येह पांच रोगों के विशेष ज्ञान के हेतु हैं ॥ २३॥ [उस्मे हेतु का लक्षण कहते हैं]

यत्तु नस्याद्विना येन तस्य तद्धेतु रुच्यते ॥ शास्त्रे सं व्यवहाराय तत् पर्यायान् प्रचक्ष्महे ॥ २४ ॥ निदानं कारणं हेतु र्निमित्तं च निबन्धनम् ॥ मूल मायतनं तत प्रत्ययोऽपि निगद्यते ॥ २५॥

(तत्र हेतु र्व्याधीनां ज्ञानाय हेतु र्यथा)

(क) वर्षारूक्ष श्रमहिमानशनानि मैथुन शोक चिन्ता भयादयो वातप्रकोप हेतवो वातजान् व्याधीन् बोधयन्ति । शरत् कट्वम्लोष्ण तीक्ष्ण क्रोध तृषाक्षुधाभिघाता तपादय: पित्त प्रकोप हेतु: पित्तजान् व्याधीन् बोधयन्ति। वसन्त मधुर स्निग्ध शीतादय: कफ प्रकोपहेतव: कफजान् व्याधीन् बोधयन्ति ॥

भा॰ जिसके विना जो नहीं होता वोह उसका हेतु कहते हैं ॥ शास्त्र में व्यवहार के अर्थ उसके पर्यायों को कहना हूं ॥ २४॥ निदान कारण हेतु निमित्त और निबन्धन ॥ मूल आयतन और प्रत्यय भी कहते हे ॥ २५॥ उस्में हेतु व्याधि के ज्ञान के अर्थ हेतु जैसे ॥—

(क) वर्षा रूक्ष श्रम शीतल भोजन मैथुन शोक चिन्ता भयादिक वात प्रकोप के हेतु वातके रोगोंको जनाते हैं ॥ शरद कटु अम्ल उष्ण तीक्ष्ण क्रोध तृषा क्षुधा अभिघात आतप आदिक पित्त प्रकोपके कारण पित्त के रोगोंको जनाता

है। वसन्त मधुर चिकनाई सिक्तादिक कफ के कोपका कारण कफके रोगों को जनाना है॥

[अथ संप्राप्ते र्लक्षण माह] यथा दुष्टेन दोषेण यथा चानु विसर्पता॥ उत्पत्ति र्याम यस्या सौ संप्राप्ति र्जा ति रागतिः॥ २६॥ (क) यथा दुष्टेन दोषेण यथा कारण भेदेन दोषेण यथा चानु विसर्पिता। अनेकधा दोषाणां विसर्पता मूर्द्धोध स्तिर्यगा दि गतिभेदेन। तथा च विसर्पता। आमयस्य या उत्पत्तिः। असौ संप्राप्तिः। शास्त्र व्यवहाराय संप्राप्तेः पर्य्यायानाह जाति रागति। रिति। संप्राप्ते रौपाधिक भेदानाह।

भा॰ [अनन्तर सम्प्राप्ति का लक्षण कहने हैं] जैसे दुष्ट दोष से जैसे अनेक प्रकार फैलने से जो रोग की उत्पत्तिहै येह संप्राप्ति जाति आगति है॥ २६॥ (क) जैसे दुष्ट दोष से अर्थात् जैसे कारण भेददोषकरके। अनेक प्रकार दोषों का ऊपर नीचे तिर्य्यक् आदि भेदसे। तथा फैलीहुई। रोग की जो उत्पत्ति है। येह संप्राप्ति है। शास्त्र व्यवहार के अर्थ संप्राप्ति के पर्यायों को कहने हैं॥ जाति आगति। संप्राप्ति के औपाधिक भेदों को कहने हैं॥

सङ्ख्या विकल्प प्राधान्य बलकाल विशेषनः॥ सा भिद्यते यथा त्रैव वक्ष्यन्ते ऽष्टौ ज्वरा इति॥२७॥

(ख) सङ्ख्या दि रूप विशेषास्तेभ्यः सा संप्राप्ति र्भिद्यते भेदवती क्रियत इत्यर्थः। तत्र संख्यां विवृणोति। यथा ज्वरो ऽष्टधा अतीसारः षड्विध इत्यादि विकल्पं विवृ णोति। दोषाणां समवेतानां विकल्पो ऽंशांश कल्पना समवेतानां समुदिता नां दोषाणां अंशांश कल्पनाहीन म-

ध्याधिक भेदै र्भाग कल्पना विकल्पः। प्राधान्यं विवृणोति। (ख) स्वातन्त्र्य पारतन्त्र्याभ्यां व्याधेः प्राधान्य मादिशेत्॥ व्याधेः स्वातन्त्र्येण प्राधान्यं पारतन्त्र्येण ऽप्राधान्यञ्च वदेदित्यर्थः। यथा स्वतन्त्रस्य ज्वरस्य प्राधान्यं ज्वराधीनानां श्वासादीनामप्राधान्यम्॥

भा॰ संख्या विकल्प प्राधान्य बल काल इनके विशेष से जो भेद को प्राप्त है जैसे वहाँ पर कहा है आठ ज्वर इस प्रकार॥ २७॥ संख्यादि रूप विशेष उनसे जोह संप्राप्ति भेदको प्राप्त है उसमें संख्या को कहते हैं॥ जैसे ज्वर आठ प्रकार अतीसार छ प्रकार इत्यादि। विकल्प को कहते हैं। मिले हुवे दोषों की अंशांश कल्पना। हीन मध्य अधिक भेदसे भाग कल्पना विकल्प है। (प्राधान्य को कहते हैं)

(ख) स्वतन्त्रता और परतन्त्रता इनसे रोगका प्राधान्य कहें॥ रोगकी स्वतन्त्रता से प्रधानता और परतंत्रता से अप्रधानता कहे। जैसे स्वतंत्र ज्वरका प्राधान्य और ज्वरके आधीन श्वास आदियोंको अप्रधानता होती है॥

(ग) [बलं विवृणोति] हेत्वादि कार्त्स्न्या वयवै र्बलाबल विशेषम्। अत्रापि व्याधिरित्यनुवर्त्तते हेत्वादेः हेतु पूर्वरूप रूपाणाम्। कार्त्स्न्येन साकल्येन अवयवैः एकदेशेन व्याधेर्बलाबलयो विंशेषणम्। विशेष बोधः। कालं विवृणोति।

भा॰ बलको कहते हैं। कारणादि संपूर्ण अवयवों से बल और अबल विशेषण है। यहां भी रोग के येह फिरसे कहा है। हेतु आदिका अर्थात् कारण पूर्व रूपोंका। संपूर्णता करके एक देश से रोगका बलाबल में विशेषण है विशेष बोध। कालको कहते हैं।

(घ) नक्तं दिनर्त्तु भुक्तांशे व्याधि कालो यथा मलम्॥ नक्त मव्याव्ययं रात्रि वाचकम्। एनेनैतदुक्तं यस्मिन्न क्तादि रंशो यस्य दोषस्य प्रकोप उक्तोऽस्ति सोऽंशास्त स्य दोषजस्य व्याधेः काल इत्यर्थः। नक्तादि रंशेषु वातादे प्रकोपे उक्तो वाग्भटेन।

ते व्यापिनोऽपि हृन्नाभ्यो रधो मध्योर्द्ध संश्रयाः। वयोऽहो रात्रि भुक्ता नामन्त मध्या दिगाः क्रमा दिति॥ २८॥ वात पित्त कफाः। ऋतुषु वातादिको यथा। वर्षासु शिशिरे वायुः पित्तं शरदि उष्णके॥ वसन्ते तु कफः कुप्ये देषा प्रकृति रार्त्तवी॥ २९॥

भा॰ रात दिन ऋतु और भोजन कियाहुवा इनके अंशोंसे दोषके अनुसार व्याधि कालहै॥ (घ) नक्त यहां पर अव्यय रात्रि वाचक है। इसे यह कहा है कि जिसमें रात्रि आदि अंश जिस दोषका प्रकोप कहा है वोह अंश उस दोषके रोगका काल येह अर्थ है। नक्तादि के अंशमें वातादि प्रकोप कहा है वाग्भट ने। वात पित्त कफ संपूर्ण शरीर में फैलेहुवे भी हृदय नाभ के नीचे वायु हृदय नाभके बीचमें पित्त और हृदय नाभके ऊपर कफ। इस क्रमसे रहते हैं॥ वय दिन रात और भोजन कियेहुये इनके अन्त मध्य आदि क्रमसे रहते हैं॥ २८॥ वात पित्त कफ। ऋतु में वातादिक जैसे। शीत वर्षा में वायु। उष्ण शरद में पित्त। और वसन्त में तो कफ कुपित होताहै। येह ऋतु की प्रकृति है॥ २९॥

[संप्राप्तिर्व्याधीनां ज्ञानाय हेतु र्यथा]

(क) मिथ्याहार विहार कुपिता वाताद्या मामाय गमन रस दूषण कोष्ठाग्नि वहिर्नि स्सरण रूपं ज्वरोत्पत्ति प्र-

कारं बोधयन्ति। तथा व्याधीनां सङ्ख्या दोषांश कल्पना प्राधान्य बल कालांश्च बोधयन्ति। तेषु ज्ञातेषु चिकित्सा विशेषश्च स्यात्॥

[अथ पूर्वरूपस्य लक्षणमाह]

पूर्वरूपन्तु तद्येन विज्ञाङ्गाविन मामयम्॥ सामान्यं च विशिष्टं च द्विविधन्तदु दाहृतम्॥ ३०॥
सामान्यं तत्र दोषाणां विशेषै रनधिष्ठितम्॥ विशिष्टमीषद्व्यक्तं स्याद्विशेषैश्च समन्वितम्॥ ३१॥

(८८क) दोषाणां विशेषाः जृम्भातिशयनेत्रदाहाग्निमान्द्यादयः। तत्र पूर्वरूपं व्याधीनां ज्ञानाय हेतुर्यथा। श्रमादयो भाविनं ज्वरं बोधयन्ति। अयच अत एव श्रमादयोऽतिशयित जृम्भायुक्ता भाविनं वातज्वरं नेत्रदाह युक्ताः पित्तज्वरं वन्हिमान्द्य युक्ता भाविनं कफज्वरं बोधयन्ति॥

भा॰ संप्राप्ति रोगोंके ज्ञानार्थ हेतु जैसे। (क) मिथ्या आहार विहार से कुपित वातादि आमाशय में जाकर रसको विगाड के कोष्ठाग्नि को बाहर निकाल कर ज्वरकी उत्पत्ति को जमाताहै। वैसे रोगों की संख्या दोषकी अंश कल्पना प्राधान्य बल कालों को जनाताहै। उनके जानने में चिकित्सा विशेष होताहै। [अनन्तर पूर्वरूपका लक्षण कहतेहैं]
पूर्वरूप वोह है जिस्से होनेवाला रोग जाना जाता है। सामान्य और विशिष्ट दो प्रकार वोह कहा है॥ ३०॥ सामान्य वोह है जो दोष विशेषों अधिष्ठित नहीं है॥ विशिष्ट वोह है जो थोड़ा व्यक्त और विशेष करके युक्त है॥ ॥ ३१॥ (क) दोषोंके विशेष जंभाई की अधिकता नेत्रदाह अग्निमान्द्य

आदिक। उसमें रोगोंके पूर्वरूप ज्ञान के अर्थ कारण जैसे। श्रमादिक होने वाले ज्वरको जनाने हैं। और इसीवास्ते श्रम आदिक अधिक जम्भाई से युक्त होने वाले ज्वर को और नेत्र दाहादि युक्त पित्तज्वर को जनाने हैं। तथा अग्निमान्द्य, कफज्वर को जनाने हैं॥

[अथ लक्षणस्य लक्षण माह।] पूर्वरूपं विशिष्टं यद्व्यक्तं तत् लक्षणं स्मृतम्॥ संस्थानं लिङ्गं चिन्हञ्च व्यञ्जनं रूप माकृतिः॥ ३२॥

(क) विशिष्टं पूर्वरूपम्। ईषद्व्यक्तं रूपम्। तदेव सम्यग् व्यक्तं लक्षणं स्मृतं तस्य शास्त्रे व्यवहाराय पर्यायानाह संस्थान मित्यादि लक्षणं व्याधेर्ज्ञानाय हेतुर्यथा। स्वेदावरोधः सन्तापः सर्वाङ्ग ग्रहणन्तथा॥ युगपद् यत्र रोगेतु स ज्वरः परिकीर्त्तितः॥ ३३॥

युगपदे तल्लक्षणं ज्वरं बोधयति।

भा० अनन्तर लक्षण का लक्षण कहने हैं। पूर्वरूप विशिष्ट जो व्यक्त होता है उसको लक्षण कहाहै। संस्थान लिंग चिन्ह व्यंजन रूप आकृति येह उस्के पर्य्याय हैं॥ ३२॥ (क) पूर्वरूप विशिष्ट। थोड़ा व्यक्त रूप। वोही अच्छी तरह व्यक्त लक्षण कहा है। उसका शास्त्रमें व्यवहार के वास्ते पर्य्यायों को कहने हैं। संस्थान इत्यादि लक्षण रोग ज्ञानके अर्थ कारण जैसे। पसीने का अवरोध, सन्ताप तथा शरीर में अकड़ाव। येह एक साथ जिस रोगमें होने हैं वोह ज्वर कहाहै॥ ३३॥

(एक साथ येह लक्षण ज्वर को जनाना है)

[अथोपशयस्य लक्षण माह]

औषधान्न विहाराणामुपयोगं सुखावहम्॥ नृणा मुपशमं विद्यात् सहि सात्म्य मिति स्मृतः॥ ३४॥

[तत्र वातस्योपशममाह]

मधुर लवणाम्ल स्निग्ध नस्योष्ण निद्रा गुरु रवि कर वस्ति स्वेदसंमर्दनानि। दधि जलदा पोषाभ्यङ्ग सन्तर्पणानि। प्रकुपित पवमानं शान्तमेतानि कुर्युः॥३५॥ [अथ पित्तस्योपशममाह।]

तिक्त स्वादु कषाय शीत पवनच्छाया निशाव्यंजनज्योत्स्ना भूगृह यन्त्र वारि जलजं स्त्री गात्र संस्पर्शनम्। सर्पिः क्षीर विरेक सेक रुधिर स्राव प्रदेहादिकम्॥ पानाहार विहार भेषजमिदं पित्ते प्रशान्तिं नयेत्॥३६॥ [अथ कफस्योपशममाह]

रूक्षाक्षार कषाय तिक्त कटुक व्यायाम निष्ठीवनम्। धूमान्युष्ण शिरो विरेक वमन स्वेदोपवासादिकम्॥ स्त्री सेवाध्वनि युद्ध जागर जलक्रीडाङ्गना सेवनम् पानाहार विहार भेषजमिदं श्लेष्माणमुग्रं हरेत्॥३७

भा० अनन्तर उपशम का लक्षण कहते हैं। औषध अन्न विहारों का सुख वह उपयोग है उसको मनुष्यों का उपशम जानो उसे सात्म्य ऐसा कहा है॥३४॥ [उसमें वातका उपशय कहते हैं। मधुर लवण अम्लके सहित स्निग्ध नास उष्ण निद्रा भारी सूर्य्य की किरण वस्ति स्वेद संमर्दन। दधि जलद संपूर्ण अभ्यंग सन्तर्पण येह प्रकोप को प्राप्तहुवे वातको शमन करते हैं॥॥३५॥ [अनन्तर पित्तका उपशम कहते हैं। तिक्त मधुर कषाय शीत वात छाया रात पंखा चान्दनी तहखाना यंत्र मेंघ और जलज स्त्री के शरीर का सस्पर्श। घृत दूध और जुल्लाव सेक रक्त स्राव प्रदेह आदिक। येह पान आहार विहार और औषध पित्तको शमन करते हैं॥३६॥

अनन्तर कफ का उपशम कहते हैं ॥ रूक्ष क्षार कषाय तिक्त कटु कसरत नि ष्ठीवन धूम उष्ण शिरो विरेचन वमन स्वेद उपवासादिक ॥ मैथुन मार्ग चल ना रातकोजागना जलक्रीड़ा स्त्री सेवन ॥ पान आहार विहार येह औषध उग्र कफको हरना है ॥ ३७ ॥

(क) जलक्रीडा कफं कथं हरति। तदाह। जलक्रीडा जनित शैत्ये नाव रुद्धोष्मा पङ्कलिप्ता भितः पाकाग्नि रिवोग्रो भूत्वा कफं शोषयतीति समाधिः॥ उपशमो व्याधे र्ज्ञानाय हेतु र्यत उक्तञ्चरकेण। गूढ लिङ्ग संकीर्ण लक्षणञ्च व्याधि मुपशमानु पशमाभ्यां परीक्षेदिति ॥

[तथा च सुश्रुते] अभ्यङ्ग स्वेदन स्नेहै र्विकारो वातिकस्तुयः॥ न शाम्येत्तत्र विज्ञेयो रक्तमत्रास्ति दूषितम् ॥ ३८ ॥ सर्वेषा मेव रोगाणां निदानं कुपिता मलाः॥ तत्प्रकोपस्य तु प्रोक्तं विविधा हित सेवनम्। ॥ ३९ ॥ (क) सर्वेषां रोगाणां निदानं सन्निकृष्टं कारणम्। कुपिताः स्व हेतु दुष्टा मलाः वात पित्त कफा एवेत्यन्वयः ॥

भा० जल क्रीड़ा कफको कैसे हरता है सो कहते हैं। जल क्रीडा की शैत्यता से अवरुद्ध उष्मा पङ्क लिप्त आस पास पाकाग्नि के समान उग्र होकर कफ को सुकाता है इस प्रकार की समाधि है। उपशम रोग के ज्ञानके अर्थ कारण जैसे कि कहाहै चरक ने ॥ संकीर्ण लक्षण रोग उपशम अनुशम से परीक्षा करे ॥ [वैसे सुश्रुतने कहा है] अभ्यंग स्वेद स्नेह इनसे रोग वातिक न शमन होवे उसमें जानना चाहिये इसमें रक्त दूषित है ॥ ३८ ॥ उन रोगों के कारण कुपित मलहैं ॥ उनके प्रकोप का कारण अनेक प्रकारका

अहित सेवन है ॥ ३९॥ (क) सब रोगों का निदान सन्निकृष्ट कारण। अपने कारण से दुष्ट मल वात पित्त कफ है इस प्रकार अन्वय है॥

[तथा च वाग्भटः] दोषा एव हि सर्वेषां रोगाणामेक कारणमिति। (क) नन्वागन्तुज व्याधिषु व्यभिचारः स्यात्। तन्न। तत्राप्युत्पत्त्यनन्तरं दोषप्रकोपस्यावश्यम्भावित्वात्। उत्पन्न द्रव्येषु गुणयोगस्येव। [उक्तञ्च चरके] आगन्तु हि यथा पूर्वो जायते। पश्चान्निजैर्दोषैरनुबध्यत इति। तत्प्रकोपस्य तु। दोषप्रकोपस्य तु। निदानम्। विविधानि नाना विधानि। यान्यहितान्यसात्म्यान्याहार विहारादीनि। तेषां सेवनं यथा वायोः प्रकोपस्य निदानानि।

नीवारस्त्रिपुटः सतीनचणकः श्यामाकमुद्गाढकी।
निष्पावश्च मकुष्ठ कश्च वरटा मङ्गल्यकः कोद्रवः।
यद् द्रव्यं कटुकं सतिक्त तुवरं शीतञ्च रूक्षं लघु।स्व
ल्पाशो विषमाशनं निरशनं भुक्तेह्यजीर्णेऽशनम्॥४०॥

भा० उस प्रकार वाग्भट ने कहा है। दोष ही सब रोगों का एक कारण है॥ (क) शंका। आगन्तुक रोग में व्यभिचार होता है॥ उत्पन्न द्रव्य में गुण योग का सी कहा है। चरक में। आगन्तुक पहले होता है। पीछे से निज दोषों से युक्त होता है। दोष प्रकोप का निदान नाना प्रकार के जो असात्म्य आहार विहारादिक। उनका सेवन। जैसे वायु के प्रकोप का निदान। तिन्नी के चावल खेसारी मटर चना सांवा कंगुनी मूङ्ग अरहर। सेमके बीज मकुष्ट वरटै मसूर कोद्रव॥ और जो द्रव्य कटु कसैला तिक्त कसैला शीतल रूखा हलका स्वल्प भोजन करनेवाले विषम भोजन लंघन अजीर्ण में भोजन।

भुक्त जीर्णतरं परिश्रम भरो गर्त्तादि कोष्णं घनम्॥ बाहुभ्यांन्तरणन्तनो: प्रतपनं मार्गेऽति यानम्पदा। दण्डादि प्रहति स्तथोच्च पतनम् धातुक्षयो जागरः। मार्गस्या वरणं व्यवाय भृशता वा तादि वेगाहतिः॥ ४१॥ अत्यर्थं वमनं विरेचन मति स्रावोऽधिक श्चा सृजो। रोगान्मांस विहीनता ति मदन श्चिन्ताच शोको भयम्। वर्षावे शिशिरो दिनस्य रजने भागो तृतीयो घनाः। प्राग् वातस्तु हिनं शरीर मरुतो दुष्टे रमी हेतवः। ४२॥

भा० भोजन किया बहुत जीर्ण हो नावे परिश्रम भार गर्तादिक उष्ण घन। बाहुवोंसे तैरना वृक्ष से गिरना पैदल मार्ग बहुत चलना दंड आदि की चोट। यांऊं चे से गिरना धातुक्षय रातका जागना मार्गका आवरण मैथुन की अधिकता वातादि वेगसे नष्ट॥ ४१॥ अत्यन्त वमन विरेचन अति स्राव अधिक रक्त के। रोग मांस विहीनता अतिकाम चिन्ता शोक भय। वर्षा शिशिर दिन और रात का तीसरा भाग और मेघ। प्राग्वात हिन शरीर के दुष्ट वात होने में येह कारण हे॥ ४२॥

(क) नीवारः प्रसाधिकाः। तीनी इति लोके। त्रिपुटः खेसारी इति लोके। सतीनः वर्त्तुलकलायः निष्पावः। कोलशिम्बी सदृश फला। राज शिम्बि स्तस्या बीजमन्नं भवति। वरटि वराटिका। कुसुम्भ बीजम्। वररै इति लोके। मङ्गल्यको मसूरः। विषमाशनम्। बहुस्तोक मकाले वा भुक्तं नद्विषमाशनम्।

(ख) अतियानम्। पादाभ्यामतिचलनम्। तरोः प्रपतनम्। तरोरित्युपलक्षणम्। जागरः रात्रौ। वातादि वेगाहतिः। आदि शब्देन विरामूत्राश्रु छिक्कोद्गार छर्दि शुक्र क्षुत्तृषो च्छ्वास निद्राः संगृह्यन्ते। दिनस्य त्रिधा विभक्तस्य। एवं रजनेश्च। यस्य पुनरुक्तिस्तेन तेन वातस्याति दुष्टि र्बोद्धव्या।

भा० (क) दूध थोड़ा व बहुत वे समय में भोजन किया अथवा विषमाशन है। वातादि वेगों का रोकना आदि शब्द से मल मूत्र आंसु छींक डकार वमन शुक्र क्षुधा तृषा उच्छ्वास निद्रा लीगई है। तीन प्रकार विभक्त दिनका। ऐसे ही रातका। जिसकी पुनरुक्ति उस २ से वातकी भांति दुष्टि जाननी चाहिये।

[अथ पित्तस्य प्रकोप कारणानि यथा]

कट्वम्लोष्ण विदाहि तीक्ष्ण लवण क्रोधोपवासा तप स्त्री सम्भोग तृषा क्षुधाभि हनन व्यायाम मद्यादिभिः। भुक्ते जीर्य्यति भोजने च शरदि ग्रीष्मे तथा प्राणिनाम् मध्यान्हे च तथार्द्ध रात्र समये पित्त प्रकोपो भवेत् ॥ ४३॥

[विदाहि लक्षणम्]

विदाहि द्रव्य मुद्गार मम्लं कुर्य्यात्तथा तृषाम्। हृदि दाहञ्च जनये त्पाकङ्गच्छति नाच्चिरात् ॥ ४४॥

[अन्यच्च] माषै स्तिलैः कुलत्थैश्च मत्स्यै र्मेषाभिषेण च। गव्येण दधि तक्रेण नृणां पित्तं प्रकुप्यति ॥ ४५॥

भा० अनन्तर पित्तके प्रकोप कारण जैसे। कटु अम्ल उष्ण विदाही तीक्ष्ण लवण क्रोध उपवास आतप। स्त्री संभोग तृषा क्षुधा अभिघात कसरत मद्य

आदि से । भोजन के पचने पर शरद ग्रीष्म में । तथा प्राणियों का मध्यान्ह में तथा अर्धरात्रि के समय में पित्त प्रकोप होता है ॥ ४३॥
[विदाहि लक्षण] विदाही द्रव्य खट्टी डकार तथा तृषा और हृदय में दाह उत्पन्न करता है । उस का देरसे पाक होता है ॥ ४४॥ औरभी । माष तिल कुरथी मछली मेंढेका मांस। इन द्रव्यों से तथा दही मठ्ठे से मनुष्यों का पित्त कुपितहोना है ॥ ४५॥

[अथ श्लेष्म प्रकोप कारणानि यथा।]

गुरु पटु मधुराम्ल स्निग्ध माषे स्तिलैश्च । द्रव दधि दिन निद्रा शीत सर्पिः प्रपूरैः । प्रथम दिवस भागे रात्रि भागेऽपि चाद्ये । भवति हि कफ कोपो भुक्त मात्रे वसन्ते ॥ ४६॥ (क) प्रथम दिवसभागे त्रिधा विभक्तस्य दिवसस्य प्रथम भागे । एवं रात्रे श्चाद्यभागे । ननु सर्व्वेषां रोगाणां निदानं दोषा एव किमन्य दप्यस्ती ति संशये चरक आह ।

निदानार्थ करो रोगो रोगस्या प्युप लभ्यते ॥

इति रोगस्य निदानार्थ करः निदानस्य रोगोऽपि उप लभ्यते दृश्यते । अत्र दृष्टान्तमाह ।

भा० अनन्तर कफ प्रकोप कारण जैसे । भारी लवण अम्ल स्निग्ध तिल उड़द इन से ॥ और द्रव दही दिनको सोवना शीत घृत प्रपूर इनसे प्रथम दिनके भागमें ॥ तथा रात्रिके भी प्रथम भागमें ॥ तथा भुक्तमात्रमें वसन्त में कफ प्रकोप होता है ॥ ४६॥ (क) पू०) सब रोगों का निदान दुष्ट दोष ही है की और भी है । इस संशय में चरक ने कहा है ॥ रोगका निदानार्थक रोगभी दिखाई देता है । इसमे दृष्टान्त कहा है ॥

तद्यथा ज्वर सन्तापा द्रक्त पित्त मुदीर्य्यते ॥ रक्त पित्ता ज्ज्वरस्ताभ्यां श्वासश्चा प्युप जायते ॥ ४७॥ प्लीहा

भिद्धा जठरं जठराच्छोफ एव च ॥ अर्शोभ्यो जाठरं दुःखं गुल्मश्चाप्युपजायते ॥ ५८॥ प्रतिश्यायादथोत्कासः कासात्संजायते क्षयः ॥

(क) अन्येत्वाहु र्मधुकोशे । रोगस्य रोगश्चे न्निदानं तथा निदान मित्येवोच्येत । तद्दिहाय निदानार्थकर इति वचन मेतद् बोधयति । रोगस्य रोगो निदानार्थ करः । निदान कार्य्ये करणे सहायः । निदानन्तु रक्तपित्तादीन् कतिचिद्रोगान् प्रति ज्वरादि रेव हेतु रिति सिद्धान्तः ।

भा० जेह जैसे । ज्वर सन्ताप से रक्त पित्त प्रकोप होना है ॥ रक्त पित्त से ज्वर उस से श्वास होना हैं ॥ ५७॥ पिलही की वृद्धि से उदर रोग और उदर रोग से सूजन व बवासीर से जाठर रोग और वायगोला भी होना है ॥ ५८ ॥ कुकाम से कास और खांसी से क्षय होना है ॥

(क) औरों ने कहा है । मधुकोशमें । रोग का रोग कारण होने तो वैसे निदान ऐसाही कहे ॥ उसको छोड़कर निदानार्थकर इस प्रकार येह वचन बोध कराता है । रोग का रोग निदानार्थ कर । अर्थात् निदान कार्य करने में सहाय । निदान तो रक्त पित्तादी कुछ एक रोगों के प्रति ज्वरादिक ही कारण येह सिद्धान्त है ॥

अत एवाग्रे स्पष्टमेव चरकः । कश्चिद्धि रोगो रोगस्य हेतुर्भूत्वेति । प्रथमस्य रोगस्य ज्वरादेर्यो दुष्टो दोषो हेतुः स एव पश्चाद्भाविनो रक्तपित्तादे रपि रोगस्य हेतुः । सर्वेषा मेव रोगाणां निदानं कुपिता मलाः ॥

(क) इति नियमात् ननु यदा रक्त पित्तादि रूपद्रव लक्षण योगेन रोगस्य विधातः स्यात्तदा सर्वेषामिति वचनं सामान्यम् । निदानार्थकर इति विशेष वचनात् ।

भा॰ इसीवास्ते आगे स्पष्ट ही कहा है चरकने ॥ कोई रोग रोगका कारण हो के इस प्रकार। प्रथम रोग ज्वरादिक का जो दुष्ट दोष कारण है। वोही पीछे से होने वाले रक्तपित्तादिक दोषों का भी हेतु होता है ॥ सब ही रोगोंका निदान कुपित मल है ॥ (क) इस प्रकार के नियम से उसमें जब रक्त पित्त आदिके उपद्रव लक्षण ही योगसे रोगत्व विधान होता है। इसवास्ते सबोंका येह वचन सामान्य है। निदानार्थ ज्वर इस प्रकार के विशेष वचन से।

रोगस्य हेतौ रोगस्य वैचित्र्यमाह। कश्चिद्धि रोगो रोगस्य हेतुर्भूत्वा प्रशाम्यति। (ख) यथा ज्वरो रक्त पित्त मुत्पाद्य स्वयं प्रशाम्यति ननु यो दोषो द्रेकेण ज्वरो रक्त पित्त मुत्पादित वांस्तस्मिन् सति सतु ज्वरः कथं शाम्यति। तत्र व्याधि स्वभाव एव कारण मिति न दोषः।

न प्रशाम्यति चाप्यन्यो हेत्वर्थं कुरुतेऽपि च ॥

(ग) अन्यो हेत्वर्थमपि कुरुते स्वयञ्च न प्रशाम्यति। यथा प्रतिश्यायः कासं करोति स्वयञ्च न प्रशाम्यति। तथार्शो जठर गुल्मौ करोति स्वयञ्च न निवर्त्तत इति।

[अथ दोष धातु मलानां क्षीणानाञ्च चिकित्सामाह सुश्रुतः]

सं भा॰ रोगके कारणमें रोगकी विचित्रता को कहते हैं। कोई रोग रोग का हेतु होके शमन हो जाता है ॥ (ख) जैसे ज्वर रक्तपित्त को उत्पन्न करके आप शमन होता है। [शंका] जो दोष प्रकोप से ज्वर रक्त पित्तको उत्पन्न करता भया उसके रहते वोह ज्वर कैसे शमन होता है। उसमें रोग स्वभावही कारण है इस्से दोष नहीं है। और शमन नहीं होते तथा हेत्वर्थ को करैभी हैं। (ग) और हेत्वर्थ को करते भी हैं आप शमन नहीं होते। जैसे जुकाम खांसी को करता है और आप शमन नहीं होता ॥ वैसेही बवासीर जठर वावगोले

को करतीहै और नहीं हरती ॥ [अनन्तर दोष धातु मल क्षीणों की चिकित्सा कहते हैं सुश्रुत ॥]

अत्यन्त कुत्सिता वेतौ सदा स्थूल कृशौ नरौ ॥ श्रेष्ठो मध्य शरीर स्तु स्थूलः क्षीणो न पूजितः ॥ ४९ ॥ कर्षयेद् वृंहयेच्चापि सदा स्थूल कृशौ नरौ ॥ रक्षण ञ्चापि मध्यस्य कुर्व्वीत कुशलो भिषक् ॥ ५० ॥

[अन्यच्च] क्षपयेद् वृंहयेच्चापि दोषधातु मलान् भिषक् ॥ नरो रोगान्वितो याव द्रोगेण रहितो भवेत् ॥ ॥ ५१ ॥ (क) क्षपयेदति प्रवृद्धा न्दोषधातु मलां स्तत्र दैस्य हेतुभिरौषधान्न विहारै ह्रास यित्वा समी कुर्य्यात्। वृंहयेत्। क्षीणान् दोषादींस्त त्तद् वृद्धि हेतुभिरौषधान्न विहारैर्वर्द्ध यित्वा समी कुर्य्यात्।

भा० येह स्थूल और कृश अत्यन्त निन्दितहै। इनमें मध्य शरीर श्रेष्ठ है और स्थूल क्षीण अच्छे नहीं ॥ ४९ ॥ कुशल वैद्य मोटेको दुबला करे और कृशको पुष्टकरे और मध्यको रक्षण करे ॥ ५० ॥ (औरभी) वैद्य दोष धातु मल इनको घटावे और बढावे। रोगयुक्त मनुष्य जबतक रोग रहित होवे। ॥ ५१ ॥ (क) बढे हुवे दोष धातु मलों को घटावे उसमें क्षीण करनेवाले औषध अन्न विहार से घटाके समकरे। क्षीण दोषादियों को उनको बढानेवाले औषध अन्न विहार से बढाकर सम करे ॥

अस्वस्थो येन विधिना स्वस्थो भवति मानवः ॥ तमेव कार्य्ये द्वैद्यो यतः स्वास्थ्यं सदेप्सितम् ॥ ५२ ॥

[स्वस्थस्य लक्षण माह] समदोषः समाग्निश्च समधातु मलक्रियः ॥ प्रसन्नात्मेन्द्रिय मनाः स्वस्थ इत्य

भि र्धीयते ॥ ५३॥ समक्रियः। शारीरानु रूपकर्मा।
आत्मा शरीरं। तन्त्रान्तरेऽपि।

दिरामूत्राखिल दोष धातु समता काङ्क्षान्न पाने रुचि
र्भुक्तं जीर्य्यति दृष्टये परिणतिः स्वभाव बोधैः सुख
म् ॥ ५४॥ गृह्णीतो विषयान्यथा स्वमुचितान् वृ
त्तिं मनोवृत्तितः ॥ स्वस्थस्या भिहितं चतुर्दश विधं
जन्तोरिदं लक्षणम् ॥ ५५॥

भा० स्वस्थ मनुष्य जिस विधिसे स्वस्थ होता है। उसी को वैद्य करवे जिससे कि सदा स्वस्थ होवे ॥ ५२॥ स्वस्थ का लक्षण कहते हैं। सम दोष सम अग्नि सम धातु मल क्रिय। और प्रसन्न आत्मा इन्द्रिय मन ऐसे को स्वस्थ ऐसा कहते हैं ॥ ५३॥ शरीर के अनुसार कर्म करने वाला ॥ आत्मा शरीर तन्त्रान्तरमेंभी। मल मूत्र संपूर्ण दोष धातु समता इच्छा अन्नपानमें रुचि भोजन किया पचजाये पुष्टिके अर्थ परिणाम। सोने जागने से सुख ॥ ५४॥ मनो वृत्तिसे अपने यथोचित विषयों को ग्रहण करना ॥ स्वस्थ मनुष्य का येह चौदह प्रकारका लक्षण कहाहै ॥ ५५॥ (क) रुचिः शरीर कान्तिः नन्व

हर्निशं र्भु भुक्त वस्तु दोषाणां वृद्धेः कथं समदोषता।
उच्यते। अहोरात्र प्रथम भागादिषु तत्तद्दोष वृद्धेः स्वस्थ
श्लोक विधिभिरुपशमात्सम दोषतेति न दोषः।
[किञ्च] यत्समत्वं हि दोषाणां भिषग्भिर वधार्य्यते।
अतत् स्वास्थ्यं विना वक्तुं शक्यमन्येन हेतुना ॥ ५६॥
(क) तेन समदोष स्वस्थयो र्लक्षणमन्योन्यापेक्ष या

पन्न स्वस्थानु वृत्तिङ्करोति। ऋतुचर्य्याध्याये सेव्यत्वे नो-क्तम्। तथा मात्रा शीलयेन तृतीये ऽध्याये रक्तशालिः षष्ठिक यव गोधूम जाङ्गल मांस जीवन्ती शाकादि मोदक क्षीरादि। तथा यदोजस्करं रसायनं वाजीकरणं सर्व्वदा शीलनीयत्वेन निर्दिष्टम् ॥

भा० (क) रुचि अर्थात् कान्ति। शंका। रात दिन और भोजन किये में दोषों के बढ़ने से कैसी सम दोषता कहते हैं॥ दिन रात के प्रथम भागादिक में उन २ दोषों की वृद्धि को स्वस्थ वृत्तमें कही हुई विधि करके शमन होनेसे सम दोषता कही है॥ इस्से दोष नहीं है॥ किन्तु। वैद्यों ने दोषोंकी समता जो मानी है। वोह स्वस्थ्य के बिना और रीतिसे नहीं कहे सके ॥५६॥

(क) उसे समदोष और स्वस्थ के लक्षण अन्योन्य की अपेक्षा करके स्वस्थ समदोष स्वस्वस्थ में हित वोह स्वप्रमाण स्थित दोष धातु मल इनकी साम्यानुवृत्तिक रक्षा मुख्य स्वस्थानु वृत्तिको करता है। ऋतुचर्य्याध्यायमें सेव्यत्व करके कहा है। उस प्रकार मात्रा सेवन करे। तीसरे अध्याय में लालधान साठी जव गेहु जांगल मांस जीवन्ति शाकादि लड्डू दूध आदि। तथा जो ओज करनेवाला रसायन वाजीकरण यह सर्वदा शीलनी यत्न करके कहा है॥

[अथ दोष धातु मलानां वृद्धे निदाना न्याह।

तत्तद् वृद्धि करा हार विहारानि निषेवणात्॥ दोष धातु मलानां हि वृद्धि रुक्ता भिषग्वरैः॥ ५७॥

[अति वृद्धानां तेषां लक्षणा न्याह]

वाते वृद्धे भवेत्कार्श्यं पारुष्यं चोष्ण कामिता॥ गा-ढं मलं वल ज्वाल्पं गात्रस्फूर्त्ति र्विनिद्रता॥ ५८॥

विण्मूत्र नेत्र गात्राणां पीतत्वं क्षीणमिन्द्रियम्॥ शीतेच्छा तापमूर्च्छाः स्युः पित्ते वृद्धेऽल्पनिद्रता॥५९॥

भा० अनन्तर दोष धातु मल इनकी वृद्धिके कारणों को कहते हैं ॥ उन २ के बढ़ने वाले आहार विहार के नइन सेवन से। दोष धातु मल इनकी वृद्धि वै द्यो ने कही है ॥ ५७॥ [अति वृद्ध उनके लक्षणों को कहते हैं]
दात वृद्धिमें कृशता कठोरता उष्ण पदार्थ की इच्छा ॥ गाढमल अल्प बल शरीर में स्फूर्ति निद्राका थोड़ा आना येह लक्षण हैं ॥ ५८॥ मल मूत्र ने त्र शरीर में पीला पन क्षीण इन्द्रिय ॥शीत की इच्छा ताप मूर्च्छा और अल्प मूत्रता यह लक्षण पित्त बढ़ने में होते है ॥ ५९॥

विड़ादि शौल्यं शीतत्वं गौरवञ्चाति निद्रता ॥स
न्धि शैथिल्य मुत्क्लेदो मुखसेकः कफेऽधिके ॥
॥६०॥ रसे वृद्धे ऽन्न विद्वेषो जायते गात्र गौरवम् ॥ला
ला प्रसेक श्छर्दिश्च मूर्च्छा सादो श्रमः कफः॥६१॥
प्रवृद्धं रुधिरं कुर्य्या द्गात्र मारक्त वर्णकम् ॥ लोचन
ञ्च तथा रक्तं शिराः पूरयतेऽपि च ॥ ६२॥
[अन्यच्च] रक्तन्तु कुरुते वृद्धं विसर्प प्लीह विद्रधीन्॥
कुष्ठं वातास्त्रकं गुल्म पिरा पूर्ण त्वकामले ॥६३॥
गात्राणां गौरवं निद्रा मदो दाहश्च जायते ॥व्यङ्गाग्नि
साद संमोह रक्त त्वङ्नेत्र मूत्रता ॥ ६४ ॥ गुद मेढ्रा
स्य पाकार्शः पिड़का मशका स्तथा ॥

भा० मलादिकों की शुक्लता शीतता भारीपन अति निद्रता। सन्धिमें शिथि लता। मतली मुखमें पानी छूटना कफके अधिक होनेमें यह लक्षण होते हैं ॥ ६०॥ रसकी वृद्धिमें अन्नका द्वेष और शरीरमें भारीपन होना है॥ और लार बहना वमन मूर्च्छा वीर्य श्रम कफ येह होते हैं ॥ ६१॥ बढ़ा हुवा रुधिर शरीर का लाल वर्ण ॥ तथा लाल नेत्र और नसोंको भर ना भी है ॥ ६२॥

औरभी। क्षुद्र रक्त विसर्प पिलही विद्रधि इनको करता है॥ कोढ वातरक्त वायु गोला धिरापूर्णत्व कामला॥६३॥ शरीर में भारीपन निद्रा मद और दाह होता है॥ व्यङ्ग अग्निमान्द्य मोह रक्त त्वचा नेत्र मूत्रता॥६४॥ गुदा लिंग मुख इनमें पाक ववासीर फुनसी मस्से॥

इन्द्रलुप्ताङ्ग मर्दास्त्रग्दरास्तापं कराङ्घ्रिषु॥६५॥ प्रामये रक्तवृद्ध्युत्थान् रक्तस्रुति विरेचनैः॥ मांसवृद्धस्तु गण्डौष्ठ स्फिगुपस्थोरु बाहुषु॥६६॥ जङ्घयोः कुरुते वृद्धिं तथा गात्रस्य गौरवम्॥ उदरे पार्श्वयोर्वृद्धिं कास श्वासादय स्तथा॥६७॥ दौर्गन्ध्यं स्निग्धता गात्रे मेदो वृद्धौ भवेदिति॥ अन्यच्च॥ प्रवृद्धं कुरुते मेदः श्रममल्पेऽपि चेष्टिते॥ तृट् स्वेद गलगण्डौष्ठ रोग मेहादि जन्म च॥६८॥ श्वासं स्फिग् जठर ग्रीवा स्तनानां लम्बनं तथा॥ वृद्धान्यस्थीनि कुर्व्वन्ति अस्थीन्यन्यानि चास्थिषु॥६९॥ आचरन्ति तथा दन्तान् विकटान्महत स्तथा॥ मज्जा वृद्ध समस्ताङ्ग नेत्र गौरव माचरेत्॥७०॥

भा० इन्द्रलुप्त अंगमर्द रक्तप्रदर हाथ पांवों में जलन॥ रक्त वृद्धि के रोगों को रक्तस्राव विरेचन इनसे शमन करे॥ मांस वृद्धि गाल होठ चूतड़ लिंग जांघ बाहु इनमें॥६६॥ और जांघों में वृद्धि करता है। तथा शरीर का भारीपन पेट पसलीयों में वृद्धि कास श्वास आदिक होते हैं॥६७॥ मेद वृद्धि में दुर्गन्धता शरीर में और चिकनापन होता है॥ ॥औरभी॥ बढ़ा हुवा मेद थोडे से काम में श्रम॥ तृषा पसीना गलगंड होठ इनमें रोग और प्रमेह आदिकी उत्पत्ति॥६८॥ श्वास चूतड़ पेट गरदन छाती इनका लटकना।

इनको करना है ॥ वृद्ध अस्थि हड्डी में और हड्डी को करती है ॥ ६९॥ तथा दांत विकट और बड़े होतेहैं ॥ बढी मज्जा समस्त शरीर नेत्र इनमें भारीपन को करती है ॥७०॥

शुक्राश्मरी शुक्र वृद्धो शुक्रस्याति प्रवर्त्तनम्
॥ मल प्रवृद्धा वा टोपो जायते जठरे व्यथा ॥
॥ ७१ ॥ मूत्रे मुहु र्मुहुर्मूत्र माध्मानं वस्ति वेद
ना ॥ स्वेदे वृद्धे तु दौर्गन्ध्यं त्वचि कण्डूश्च जा
यते ॥ ७२॥ आर्त्त वाति प्रवृत्ति स्या दौर्गन्ध्य
ञ्चार्त्तवे भवेत् ॥ अङ्ग मर्द श्च जायेत लिङ्ग
स्यार्त्तवेऽधिके ॥ ७३॥ स्तनयो रति पीनत्वं
क्षीर स्रावो मुहुर्मुहुः ॥ तोदश्च तत्र भवति ।
स्तन्याधिक्यस्य लक्षणम् ॥ ७४॥ उदरादि
प्रवृद्धि स्तु वृद्धे गर्भेऽभिजायते ॥ स्वेदश्च ग
र्भवत्याः स्या त्प्रसवे व्यसनं महत् ॥ ७५॥

भा० शुक्रवृद्धि में शुक्र अश्मरी गर्भ और शुक्र का बहुत निकलना होता है ॥ मल बढनेमें उदर में गुड़ २ शब्द होता है ॥ ७१॥ मूत्र वृद्धि में वार वार मूत्र फेर का फूलना वस्ति की पीड़ा ॥ पसीने बढने में दुर्गन्धता त्वचामें और खाज होती है ॥ ७२॥ आर्त्तव के अधिक होने में आर्त्तवकी बहुत प्रवृत्ति और इनमें बहुत दुर्गन्धता होती है ॥ बदन टूटता भी है यह लक्षण है ॥ ७३॥ चूंचियों का बहुत भरजाना दुधका स्राव वार वार और उसमें चुभन होती है ॥ येह अधिक दुग्धका लक्षण है ॥ ७४॥ गर्भ के बढनेमें उदर आदि बढ जाते हैं ॥ और पसीना तथा गर्भवति को प्रसवमें बहुत क्लेश होता है ॥ ७५॥

[अथाति वृद्धानां दोषाणां मलानां ह्रासनमाह]

तत्तद्ह्रासकराहार विहार परिसेवणात् ॥ दोषधातु मलानां हि ह्रासो निगदितो नृणाम् ॥ ७६ ॥ पूर्वः पूर्वोऽति वृद्धत्वा द्वर्द्धयेद्धि परस्परम् ॥ तस्मादति प्रवृद्धानां धातूनां ह्रसनं हितम् ॥ ७७ ॥

[अथ दोष धातु मलानां क्षयस्य निदानान्याह]

असात्म्यान्न सदाक्रोध शोक चिन्ता भयश्रमैः ॥ अति व्यवाया नशना त्यर्थ संशोधनै रपि ॥ ७८ ॥ वेगानां धारणाच्चापि साहसाद भिघाततः ॥ दोषाणां मथ धातूनां मलानां च भवेत् क्षयः ॥ ७९ ॥

भा० अनन्तर बहुत बढ़े हुवे दोषमें इनका घटनी कहते हैं ॥ उनको घटाने वाले आहार विहार के सेवन से। दोष धातु मलों का घटना कहाहै ॥ ७६ ॥ पहिले २ बहुत बढ़ने से उत्तर २के बहुत बढ़ते हैं ॥ इसवास्ते बहुत बढ़े हुवे धातुवों का घटाना हितहै ॥ ७७ ॥ अनन्तर दोषधातु मलोंके क्षयके निदानों को कहते हैं ॥ असात्म्य अन्न सदा क्रोध शोक चिन्ता भय श्रम ॥ अतिमैथुन सवारी लंघन बहुत वमन विरेचनादि लेना इनसे ॥ ७८ ॥ चौदह वेगों के धारणसे भी और साहस अभिघात इनसे ॥ दोष धातु मल इनका क्षय होता है ॥ ७९ ॥

[तेषां क्षीणानां लक्षणा न्याह]

वात क्षयेऽल्प चेष्टत्वं मन्दवाक्त्वंविसंज्ञता ॥ पित्त क्षयेऽधिकः श्लेष्मा वह्निमान्द्यं प्रभाद पः ॥ ८० ॥ सन्धयः शिथिला मूर्च्छा रौक्ष्यन्दाहः कफ क्षये ॥ हृत्पीड़ा कण्ठशोषौ त्वक् शून्या तृट् रस क्षये ॥ ८१ ॥

शिरा: श्लथा हिमास्लेछा त्वक् पारुष्यं क्षये ऽसृजः॥ गराडौष्ठ कन्धरास्क न्धवक्षो जठर सन्धिषु ॥ ८२॥ उपस्थ शोथ पिराडीषु शुष्कता गात्र रूक्षता॥ तोदो धमन्यः शिथिला भवेयु र्मांस संक्षये ॥ ८३॥ प्लीहाभि वृद्धिः सन्धीनां शून्यता ननु रूक्षता॥ प्रार्थना स्निग्धमांसस्य लिङ्गं स्यान्मेदसः क्षये ॥ ८४॥ अस्थि शूल न्तनौ रौक्ष्यं नखदन्त त्रुटिस्तथा॥ अस्थि क्षये लिङ्गमेनद्वैधैः सर्व्वैरुदाहृतम् ॥ ८५॥ शुक्राल्पत्वं पर्वभेद स्तोदः शून्यत्व मस्थिनि॥ लिङ्गान्येतानि जायन्ते नराणां मज्ज संक्षये ॥ ८६॥ शुक्र क्षये रते शक्ति र्व्यथा प्रोफसि मुष्कयोः॥ चिरेण शुक्र सेकः स्यात्से के रक्ताल्प शुक्रता ॥ ८७॥

भा० उनक्षीणों के लक्षणों को कहते हैं ॥ वातक्षयमें अल्प चेष्टा मन्द वाक्य संज्ञान होना ॥ पित्त क्षयमें अधिक कफ अग्निमान्द्य कान्तिक्षय ॥ ८०॥ जोड़ोंमें ढ़ीलापन मूर्च्छा रूक्षता दाह होता है ॥ कफ क्षय में हृदयमें पीडा कंठ शोष त्वचाकी शून्यता तृषा होती है ॥ रस क्षय में ॥ ८१॥ ढीली नसें शीतल और खट्टे की इच्छा त्वचामें कठोरता रक्त क्षयमें ॥ गाल होठ गरदन कंधा छाती उदर जोड़ इनमें ॥ ८२॥ और लिङ्ग चुतड़ पिंडलि इनमें सूकापन गात्रकी रूक्षता। चुभन धमनीकी शिथिलता होती है मांस क्षयमें ॥ ८३॥ पिलही का वढना सन्धियों में शून्यता शरीरमें रूखापन ॥ चिकना मांसकी इच्छा येह लक्षण होते हैं मेदक्षयमें ॥ ८४॥ अस्थि शूल शरीर में रूक्षता नख दांतका टूटना ॥ अस्थि क्षय में येह लक्षण सब वैद्यों ने कहा है ॥ ८५॥ मनुष्यों के मज्जा क्षय में शुक्रकी अल्पता पोरोंमे पीड़ा चुभन शून्यता अस्थिमें ॥ येह लक्षण होतेहैं ॥ ८६॥ शुक्र क्षयमें मैथुन में अशक्ति लिङ्ग आंडोंमें पीड़ा ॥ देरमें शुक्र निकलता है और स्खलित होनेमें थोड़ा रक्त शुक्र होता है ॥ ८७॥

[अथौजः क्षयस्य निदानमाह]

ओजः संक्षीयते कोपाच्चिन्ताशोकश्रमादिभिः॥ रू

क्षतीक्ष्णोष्णकटुकैः कर्षणैरपरैरपि ॥८८॥

[अथ क्षीणौजसो लक्षणमाह]

बिभेति दुर्बलोऽभीक्ष्णं ध्यायति व्यथितेन्द्रियः॥

अभ्युत्थायोऽल्पना रूक्षः क्षामः स्यादोजसः क्षये॥

॥८९॥ पुरीषस्य क्षये पार्श्वे हृदये च व्यथा भवेत्॥

सशब्दस्यानिलस्योर्द्ध्वगमनं कुक्षिसंहतिः॥९०॥

[उदरसङ्कोचः] मूत्रक्षयेऽल्पमूत्रत्वं बस्तौ तोदश्च जा

यते॥ स्वेदनाशे त्वचो रौक्ष्यञ्च चक्षुषोरपि रूक्षता॥

॥९१॥ स्तब्धाश्च रोमकूपाः स्युर्लिङ्गं स्वेदक्षये भवेत्।

॥आर्त्तवक्षये स्वकाले वा भावस्तस्याल्पता थवा॥९२॥

भा० अनन्तर ओजक्षय निदान कहते हैं। क्रोधसे और श्रम शोक आदिसे। तथा रूक्ष तीक्ष्ण कटुके और कर्षणों से भी ओज क्षीण होता है॥८८॥ अनन्तर क्षीण ओजका लक्षण कहते हैं॥ डरता है दुर्बल सर्वदा चिन्तन करता है॥ पीड़ित इन्द्रिय उठनेके वास्ते चंचल चित्त रूक्ष कृश ओजक्षयमें होता है॥ ॥८९॥ [मल क्षयमें पसली और हृदयमें पीड़ा होती है। शब्द के सहित वात का ऊपर होना उदर का संकोच॥९०॥ मूत्र क्षयमें अल्प मूत्र पेड़ूमें चुभन होती है॥ पसीने के क्षयमें त्वचामें रूक्षता नेत्रों में भी रूक्षता॥९१॥ स्तब्ध रोम कूप येह लक्षण स्वेद क्षयमें होता है॥ आर्तवक्षय में आर्तवके कालमें अभाव अथवा इस्की कमी॥९२॥

जायते वेदना योनौ लिङ्गं स्यादार्त्तवक्षये॥ अभावः

स्वल्पता वास्यान्स्तन्यस्य भवेत्तथा॥९३॥ म्लानौ

पयोधरौ चैतल्लक्षणं स्तन्यसंक्षये॥ अनुन्नतो भवेत्

कुक्षि गर्भस्या स्पन्दन न्तथा ॥ ८४॥ इति गर्भक्षये प्रा
शै र्लक्षणं समुदाहृतम् ॥

[अथ क्षीणानां धातुदोष मलानां वर्द्धन माह]

तत्तत् संवर्द्धनाहार विहाराति निषेवणात् ॥ तत्तत्
प्राप्य नरः शीघ्रं तत्तत् क्षयमपोहति ॥ ८५॥ ओ
जस्तु वर्द्धते नृणां सुस्निग्धैः स्वादुभिस्तथा ॥ वृष्यै
रन्यै र्विशेषात्तु क्षीरमांस रसादिभिः ॥ ८६॥

[अन्यच्च] दोषधातु मलक्षीणो बलक्षीणोऽपि मानवः।
तत्तत् संवर्द्धनं यत्त दन्नपानं प्रकाङ्क्षति ॥ ८७॥ यद्य
दाहार जातन्तु क्षीणः प्रार्थयते नरः॥ तस्य तस्य
स लाभेन तत्तत् क्षय मपोहति ॥ ८८॥

[तत्र केन क्षीणः किङ्काङ्क्षतीत्य काङ्क्षया माह]

भा०. योनि में पीड़ा येह लक्षण होते हैं। दुग्धका न होना अथवा थोड़ा होना ॥ ८३॥ म्लान कुचा यह लक्षण दुग्ध क्षयमें होता है ॥ पटका पेट गर्भका न हीं लना ॥ ८४॥ इस प्रकार बुद्धिवानों ने गर्भक्षय लक्षण कहाहै ॥

अनन्तर क्षीण धातु दोष मल इनका बढ ना कहते हैं ॥ उन २ को बढ़ाने वाले आहार विहार इनके बढ़ने सेवन से ॥ मनुष्य उन २ को पाकर उन २ क्षय को खोता है ॥ ८५॥ मनुष्य का ओज स्निग्ध मधुर ॥ वृष्य और विशेष करके दूध मांस रस आदियों से बढ़ता है ॥ ८६॥ औरभी। दोष धातु मल क्षीण था बलक्षीण मनुष्य ॥ उन २ को बढानेवाले अन्नपान को चाहता है ॥ ८७॥ क्षीण मनुष्य जो २ आहार चाहताहै। उस २ कोमिलने में शीघ्र २ क्षय नष्ट होता है ॥ ८८॥ ३ [उसमें किससे क्षीण क्या चाहता है इस आकांक्षा में कहते हैं।]

कषाय कटु तिक्तानि रूक्ष शीत लघूनि च ॥ यव मुद्ग प्रियङ्गूंश्च वातक्षीणोऽभि काङ्क्षति ॥ ९९ ॥

[पित्त क्षीणः किं काङ्क्षतीत्या काङ्क्षया माह].

तिल माष कुलत्थादि पिष्टान्न विकृति स्तथा ॥ यस्तु शुक्ताम्ल तक्राणि काञ्जिकञ्च तथा दधि ॥ १०० ॥

कट्वम्ल लवणोष्णानि तीक्ष्णं क्रोधं विदाहि च ॥ समयं देश मुष्णञ्च पित्त क्षीणोऽभि काङ्क्षति ॥ १०१ ॥

मधुरं स्निग्ध शीतानि लवणाम्ल गुरूणि च ॥ दधि क्षीरं दिवा स्वप्नं कफ क्षीणोऽभि काङ्क्षति ॥ १०२ ॥

रस क्षीणो नरः काङ्क्षत्यम्भोऽति शिशिरं मुहुः ॥ रात्रि निद्रां हिमं चन्द्रं भोक्तुञ्च मधुरं रसम् ॥ १०३

इक्षु मांस रसं मन्थं मधु सर्पि गुडोदकम् ॥ द्राक्षा दाडिम शुक्तानि सस्नेह लवणानि च ॥ १०४ ॥

भा० कषाय कटु तिक्त रूक्ष शीतल हलका ॥ जव मूंग कंगनी इनको वात क्षीण चाहता है ॥ ९९ ॥ पित्त क्षीण क्या चाहता है । इस आकांक्षा में कहते हैं ॥ तिल उडद कुलथी बड़े आदि । बहीका पानी सिरका खटाई मठा कांजी तथा दही ॥ १०० ॥ कटु लवण अम्ल उष्ण तीक्ष्ण क्रोध विदाही ॥ समदेश उष्ण इनको पित्त क्षीण चाहता है ॥ १०१ ॥ मधुर स्निग्ध शीत लवण अम्ल भारी ॥ दूध दही दिनका सोना इनको कफ क्षीण चाहता है ॥ १०२ ॥ रस क्षीण मनुष्य बहुत शीतल जल बार बार चाहता है ॥ रात्रि निद्रा शीतल चन्द्र भोजनको मधुर रस ॥ १०३ ॥ ईख मांस रस मन्थ मधु घृत पर्यंत ॥ दाख अनार शुक्त स्नेह लवण सहित ॥ १०४ ॥

रक्त सिद्धानि मांसानि रक्त क्षीणोऽभिकाङ्क्षति ॥

अन्नानि दधि सिद्धानि षाड़वांश्च बहूनपि ॥२०५॥ स्थूल क्रव्यादमांसानि मांसक्षीणोऽभि काङ्क्षति ॥ षाड़वा मधुराम्लादि रस संयोग पाचिताः गुड़ाव प्रभृतयः ॥ मेदः सिद्धानि मांसानि ग्राम्यानूपौदकानि च सक्षाराणि विशेषेण मेदः क्षीणोऽभि काङ्क्षति ॥२०७॥ अस्थि क्षीणस्तथा मांसं मज्जास्थि स्नेह संयुतम् ॥ स्वाद्वम्ल संयुतं द्रव्यं मज्जा क्षीणोऽभि काङ्क्षति ॥२०८॥ शिखिनः कुक्कुटस्याण्डं हंस सारस योस्तथा ॥ ग्राम्यानूपौदकानाञ्च शुक्र क्षीणोऽभिकाङ्क्षति ॥ २०९ ॥ यवान्नं यवकान्नञ्च शाकानि विविधानि च ॥ मसूर माष यूषञ्च मल क्षीणोऽभि काङ्क्षति ॥ २१० ॥

भा० रक्त सिद्ध मांस रक्त क्षीण चाहता है ॥ दधि सिद्ध अन्न बहुतसे खाडव ॥ २०५ ॥ स्थूल क्रव्याद मांस मांस क्षीण चाहता है ॥ षाडव मधुर अम्ल आदि रस के संयोग से पकावे ॥ २०६ ॥ मेद सिद्धमांस ग्राम्य आनूप औदक ॥ क्षारके सहित विशेष करके मेद क्षीण चाहता है ॥ २०७ ॥ अस्थि क्षीण वैसे ही मांस मज्जा अस्थिसे युक्त ॥ मधुर अम्लयुक्त द्रव्य मज्जा क्षीण चाहता है ॥ २०८ ॥ मोर मुर्गे के अण्डे और हंस सारस के भी ॥ ग्राम्य आनूप औदक इनको शुक्र क्षीण चाहता है ॥ २०९ ॥ जव छोटे जव अनेक प्रकार के शाक ॥ मसूर उड़द इनका जूस इनको मलक्षीण चाहता है ॥ २१० ॥

पेयमिक्षुरसं क्षीरं सगुड़म्बदरोदकम् ॥ मूत्र क्षीणोऽभि लषति त्रपुसे र्वारुकाणि च ॥ २११ ॥ अस्थ्नो द्वितीये मद्यं निवात शयनासने ॥ गुरु प्रावरणं

देव स्वेद क्षीणो ऽभि काङ्क्षति ॥ ११२ ॥ कट्वम्ल लव
णोष्णानि विदाहीनि गुरूणि च ॥ फल शाका
नि पानानि स्त्री काङ्क्षत्यार्त्तव क्षये ॥ ११३ ॥ सुरा
शाल्यन्न मांसानि गोक्षीरं शर्करान्तथा ॥ आसवं
दधि हृद्यानि स्तन्यक्षीणो ऽभि वाञ्छति ॥ ११४ ॥
मृगाजा विवहौरोणां गर्भान्वाञ्छति संस्कृतान् ॥
वसा शूल्य भकारादीन् भोक्तुं गर्भ परिक्षये ॥ ११५ ॥

भा० पेय ईख रस गुड़के सहित बदरीरक ॥ और खीरा ककड़ी इनको चाह
ताहै ॥ १११ ॥ अभ्यङ्ग उबटना मद्य निवात में शयन आसन ॥ भारी कपड़ेका
ओढ़ना स्वेदक्षीण चाहताहै ॥ ११२ ॥ कटु अम्ल लवण उष्ण विदाही भारी ॥
फल शाक पान इनको स्त्री आर्त्तव क्षयमें चाहती है ॥ ११३ ॥ मदिरा चावल मांस
गायका दूध शर्करा ॥ आसव दही हृद्य इनको दुग्ध क्षीण वाली चाहती है ॥
११४ ॥ गर्भ क्षयमें मृग बकरी भेड़ सूवर इनके बनायेहु वे गर्भों को चाहती है ॥
और चरबी कबाब आदिक खानेको चाहती है ॥ ११५ ॥

[अथ बल लक्षण माह सुश्रुत मते]

रसादि शुक्र पर्य्यन्तं पुष्ट धातु निमित्त कम् ॥ चेष्टा
सु पाटवं यत्तु बलं तदभिधीयते ॥ ११६ ॥

[अथ बलस्य क्षय निदान माह] अभिघाताद्भयात् क्रो
धा च्चिन्तया च परिश्रमात् ॥ धातूनां सङ्क्षया च्छो
का द्बलं संक्षीयते नृणाम् ॥ ११७ ॥

[अथ बलक्षयस्य लक्षणम्] गौरवं स्तब्धता गात्रे मुख
म्लानि विवर्णता ॥ तन्द्रा निद्रा वात शोथो बल व्या
पत्ति लक्षणम् ॥ ११८ ॥

सूचीपत्र

मिलने का स्थानः श्री भवानी पर शाद व

गिरधर लाल शाके देहली

बाज़ार दरीबे कलाँ

१- पुस्तकें जो टीका होके छप रही हैं

२- चरक व सटीक

३- अमर कोश दोहा चौपाई में

और जो सटीक

सुश्रुत चरक

मिलेंगे आयुर्वेद चन्द्रिका

क़ीमत	
पेशगी ७) रु॰	मा बाद ९) रु॰
१॥) रु॰	२) रुपये